अष्टपाहुड
अमृत
भाग ४

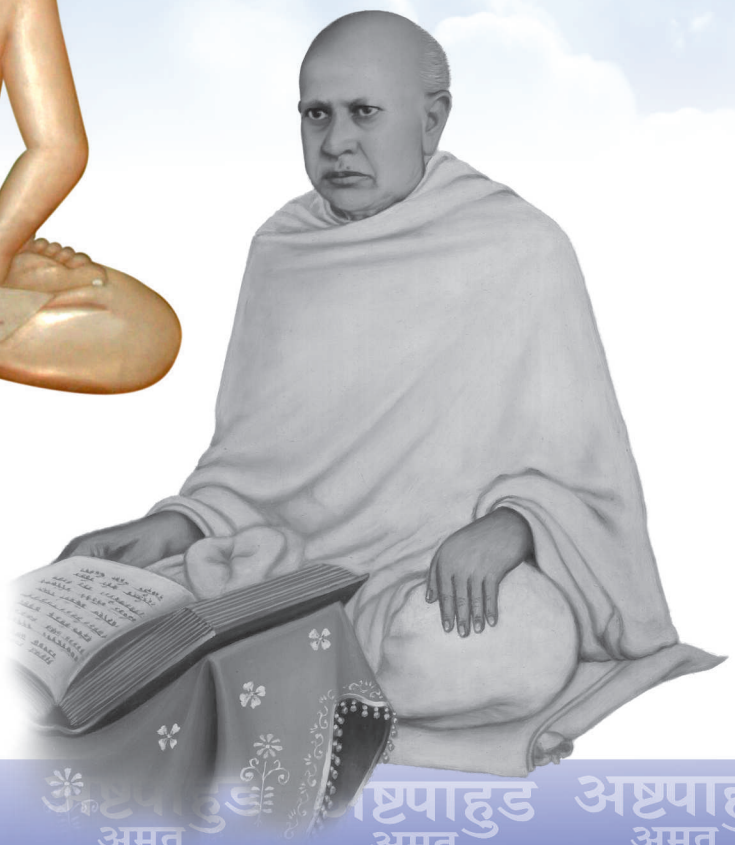

अष्टपाहुड अमृत

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(भाग-4)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम श्री अष्टपाहुड़
पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1973-74 में हुए शब्दशः प्रवचन
भावपाहुड़, गाथा 68 से 165; लिंगपाहुड़, गाथा 1-2
प्रवचन नं. 100 से 186

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2080

वीर संवत
2550

ई. सन
2024

—: प्रकाशन :—

वात्सल्य पर्व **रक्षाबन्धन** एवं
पूज्य बहिनश्री की जन्मजयन्ती
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के पश्चात् श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर पर नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। वर्तमान जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव से सुचारूरूप से परिचित है ही, तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रह जा सकता।

आपश्री ने स्वयं की अनुभवगर्भित कलम द्वारा निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसा होता है, उसे भाववाहीरूप से अनेक परमागमों में प्रसिद्ध किया है। जंगल में रहकर स्वरूप आराधना में लीन रहते-रहते, केवलज्ञान की तलहटी में पहुँचकर, स्वसंवेदनमयी प्रचुर स्वसंवेदन में रहकर पवित्र मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है। अनुभवप्रमाण इन सर्व से बलवान प्रमाण गिनने में आया है, जो आपके प्रत्येक वचन में प्रसिद्ध हो रहा है। अनेक महान आचार्यों ने भी आपका उपकार व्यक्त करके कहा है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यदि इस काल में मोक्षमार्ग को प्रसिद्ध न किया होता तो हम मोक्षमार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकते?

संवत् 49 में विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धरस्वामी की दिव्य देशना को प्रत्यक्ष सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर आपने अनेक परमागमों की रचना की है। पंच परमागम वर्तमान जैनसमाज में प्रसिद्ध हैं। उसमें अष्टपाहुड़ ग्रन्थ भी समाविष्ट है। अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की रचना देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ दार्शनिक दृष्टिकोण से रचा गया है। आठ अधिकार (पाहुड़) की रचना में प्रत्येक में भिन्न-भिन्न विषयानुसार सूत्रों की रचना की गयी है। प्रत्येक अधिकार में वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करके विपरीत अभिप्राय किस प्रकार के होते हैं और उनका क्या फल आता है तथा सम्यक् अभिप्राय का फल क्या आता है, उसका स्पष्ट चित्रण कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने चित्रित किया है।

शास्त्रों में तो आचार्य भगवन्तों ने निष्कारण करुणा से भव्य जीवों के हित के लिये रचना तो की है परन्तु वर्तमान दुषमकाल में उसका भाव समझना अत्यन्त विकट हो गया था और विपरीत अभिप्रायों की प्रचलितता और रूढ़िवाद में समाज जब डूबा हुआ था, ऐसे कलिकाल में, विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना को साक्षात् सुनकर भरतक्षेत्र में पधारनेवाले भावितीर्थाधिनाथ परमकृपालु सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सूर्य समान अवतार, मुमुक्षु जीवों के मिथ्यात्व-अन्धकार को मिटाने के लिये हुआ। अनेक रूढ़िचुस्तता, मिथ्या अभिप्राय, क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग समझकर, मानकर उसकी आराधना चलती थी, उसमें पूज्य गुरुदेवश्री ने निष्कारण करुणा से शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की अन्तरखोज द्वारा तथा श्रुतज्ञान की लब्धि द्वारा सत्य मोक्षमार्ग का स्वरूप खुल्ला किया। पूज्य गुरुदेवश्री ने 45 वर्ष तक अनेक परमागमों पर प्रवचन किये, जिसमें अनेकानेक सिद्धान्तों को प्रसिद्ध करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रसिद्ध किया। प्रत्येक प्रवचनों में आत्मा का मूलभूत स्वरूप, निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग का स्वरूप, मुमुक्षुता, सिद्धान्तिक वस्तु का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप, निमित्त-उपादान का स्वरूप, सर्वज्ञ का स्वरूप इत्यादि अनेक विषयों को स्पष्ट करके कहीं भ्रान्ति न रहे, इस प्रकार से प्रकाशित किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरश: प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्द भरपूर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टपाहुड़ परमागम पर, ई.स. 1973-74 में हुए प्रवचनों को प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन शृंखला के चतुर्थ भाग में भावपाहुड़ की गाथा- 68 से 165 तथा लिंगपाहुड़ की गाथा - 1-2 तक के प्रवचन क्रमांक-100 से 186 तक का समावेश किया गया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इसी अष्टपाहुड़ परमागम पर ई.स. 1970-71 में हुए प्रवचनों का शब्दश: प्रकाशन 'अष्टपाहुड़ प्रवचन' भाग 1 से 7 तक पूर्व में गुजराती एवं हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा चुका है। तथा सन् 1952 में हुए प्रवचन दैनिक 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' में उपलब्ध हैं, जिसका पहला भाग संकलित प्रवचन के रूप में 'अष्टपाहुड़ प्रवचन, भाग-1' पूर्व में इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में संग्रहित करने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हाल कर रखा, तदर्थ उसके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट

(vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन लें, कि जिससे यह वाणी शाश्वत् विद्यमान रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

समस्त प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारूलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर सके, इस उद्देश्य से प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि आपको कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का अनुग्रह करें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com पर शास्त्र-भण्डार, गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन के अन्तर्गत तथा vitragvani (app) पर भी उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधें, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

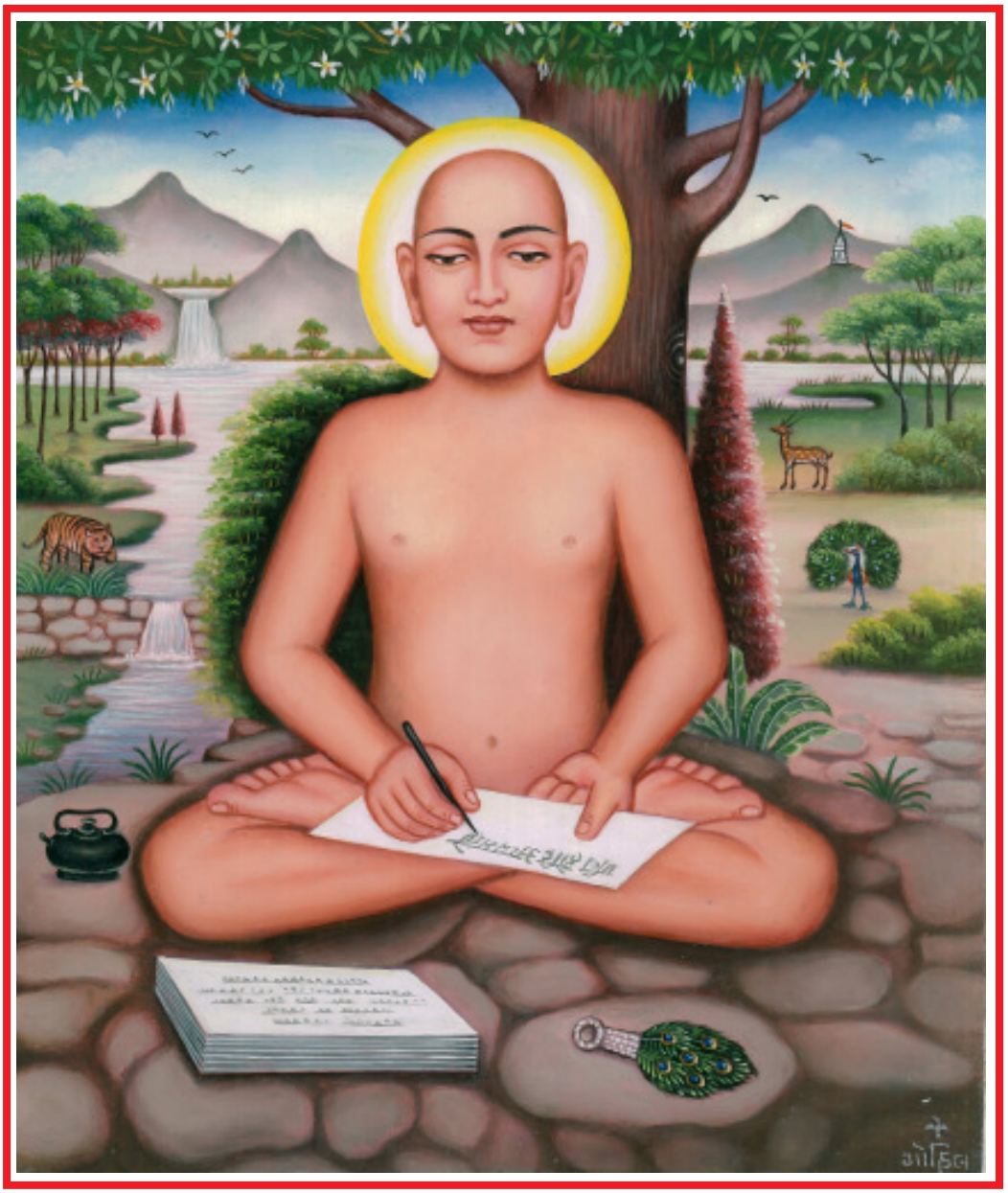

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
१००	२७-०१-१९७४	भावपाहुड़ ६८-६९	१
१०१	२८-०१-१९७४	६९ से ७२	१९
१०२	२९-०१-१९७४	७२ से ७६	३३
१२२	२४-१०-१९७०	७३ से ७७	५३
१२३	२५-१०-१९७०	७८ - ७९	७२
१०४	०१-०२-१९७४	७९	९०
१०५	१०-०२-१९७४	७९	१०७
१०६	११-०२-१९७४	७९ - ८०	१२४
१०७	१२-०२-१९७४	८१ - ८२	१४१
१०८	१३-०२-१९७४	८२ - ८३	१५७
१०९	१५-०२-१९७४	८३ - ८४	१७२
११०	१६-०२-१९७४	८५ से ८७	१८८
१११	१७-०२-१९७४	८८ से ९०	२०४
११२	१८-०२-१९७४	९१ - ९२	२२०
११३	१९-०२-१९७४	९३ - ९४	२३५
११४	२०-०२-१९७४	९५ - ९६	२५०
११५	२१-०२-१९७४	९६ - ९७	२६६
११६	२३-०२-१९७४	९७	२८०
१५५	२४-०५-१९७४	१०६, ९८-९९	२९६
१३१	०४-११-१९७०	९८ से १०१	३१२
१५७	२६-०५-१९७४	१०२ से १०५	३२९
१५८	२७-०५-१९७४	१०६ से १०८	३४६
१५९	२९-०५-१९७४	१०९ - ११०	३६२
१६०	३०-०५-१९७४	११० - १११	३७९
१६१	३१-०५-१९७४	१११ से ११४	३९६
१६२	०१-०६-१९७४	११४ - ११५	४१३

१६३	०२-०६-१९७४	११६ से ११८	४२२
१६४	०३-०६-१९७४	११९	४३७
१६५	०५-०६-१९७४	१२० से १२२	४४९
१६६	०६-०६-१९७४	१२२ से १२५	४६५
१६७	०७-०६-१९७४	१२५ से १२७	४८०
१६८	०८-०६-१९७४	१२७ से १३१	४९४
१६९	०९-०६-१९७४	१३१ से १३४	५०९
१७०	१०-०६-१९७४	१३५ से १३७	५२४
१७१	११-०६-१९७४	१३८ से १४०	५३९
१७२	१२-०६-१९७४	१४१ से १४४	५५३
१७३	१४-०६-१९७४	१४५ से १४८	५६८
१७४	१५-०६-१९७४	१४८	५८३
१५४	२१-१२-१९७०	१४८ - १४९	५९९
१५५	२३-१२-१९७०	१४९ - १५०	६१६
१७६	१७-०६-१९७४	१५१ - १५२	६३०
१७७	१८-०६-१९७४	१५२ से १५५	६४२
१७८	१९-०६-१९७४	१५५ से १५७	६५८
१७९	२१-०६-१९७४	१५८ से १६१	६७२
१८०	२२-०६-१९७४	१६२ से १६४, ३५ से ३७	६८७
प्रवचन नं० १८१ से १८३ भाग-३ में से देखना चाहिए।			
१८४	२६-०६-१९७४	१६५	७००
१८५	२८-०६-१९७४	१६५	७१५
१८६	२९-०६-१९७४	१६५, लिंगपाहुड़, १-२	७२९

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ईस्वी सन् १९७३-७४ के प्रवचन)

माघ शुक्ल ४, रविवार, २७-०१-१९७४
गाथा - ६८-६९, प्रवचन-१००

यह अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। गाथा-६८। **आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिये केवल नग्नपने की निष्फलता दिखाते हैं :-**

★ ★ ★

गाथा - ६८

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमइ।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं॥६८॥

नग्न अकेला नग्नपना धारण करना और चैतन्यद्रव्य की भिन्न भावना— सम्यग्दर्शनरहित रहना, वह तो दुःखकारक है।

अर्थ :- नग्न सदा दुःख पाता है,... क्योंकि जो चैतन्यस्वरूप आनन्द और ध्रुवस्वरूप, उसकी भावना अर्थात् सम्यग्दर्शन बिना, वह नग्नपना तो अकेला दुःख है। **सदा संसार-समुद्र में भ्रमण करता है...** नग्नपना अथवा बारह व्रत का लिंग या पंच महाव्रत का लिंग, वह सब अन्तर दृष्टि के स्वभाव की भावना बिना जिसे आत्मदर्शन नहीं, आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं, उसे जिनभावना होती नहीं। वह राग की और

नग्नपने की भावना में रुका हुआ होता है। आहाहा! वह नग्नपना और भले वह पंच महाव्रत आदि के परिणाम हों, तथापि वह संसार में भ्रमण करेगा। क्योंकि भगवान आत्मा चैतन्यघन (उसका) निर्विकल्प दृष्टि और अनुभव हुआ नहीं, इससे उसकी भावना स्वभाव-सन्मुख की होती नहीं, बाहर की होती है। आहाहा!

और नग्न बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्वानुभव... बोधि शब्द प्रयोग किया है न! **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्वानुभव को नहीं पाता है,...** यह नग्न की बाह्य क्रिया या पंच महाव्रतादि के परिणाम, वह सम्यग्दर्शन—आत्मा के सन्मुख से वह तो विमुख की क्रिया है। भगवान आत्मा के सनमुख की बोधि सम्यग्दर्शन, सन्मुख का ज्ञान और सन्मुख का चारित्र, वह नहीं पावे। क्योंकि बाहर दिशा और बाहर की ओर झुकाव, उसका सब झुकाव है। अन्तर द्रव्य-सन्मुख का झुकाव उसे नहीं है, ऐसा कहते हैं। **स्वानुभव को नहीं पाता है। कैसा है वह नग्न?-जो जिनभावना से रहित है।** निर्विकल्प सम्यग्दर्शन बिना उसकी भावना में तो राग और निमित्तपने की भावना होती है। वह सब निष्फल है। चार गति में भटकने के लिये है।

जिनभावना शब्द है न? '**बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं**' बहुत काल भटकेगा चार गति में। क्योंकि भव और भव का भाव, उससे रहित चैतन्य के द्रव्य की दृष्टि अनुभव, द्रव्य का आश्रय, सत्यार्थ वस्तु का अवलम्बन जहाँ नहीं और यह बाहर के अवलम्बन में रुका हुआ चार गति में भटकेगा। आहाहा! समझ में आया? कितने ही कहते हैं, आवे न नग्नपना। बाह्य वेश नग्न भी कहाँ है? नग्नपना, वह भी पूजनीक और वन्दनीक है, ऐसा डालते हैं। यहाँ कहते हैं कि आत्मा के दर्शन बिना... शुद्धसहित परमात्मस्वरूप की भावना, वह तो सम्यग्दर्शन में होती है। उसके बिना का नग्नपना और क्रिया सब निष्फल है। मोक्ष के लिये निष्फल, संसार के लिये सफल है। संसार में करता आया है, उसका फल मिलता आया है, उसमें सफल है।

भावार्थ :- 'जिनभावना' जो सम्यग्दर्शन-भावना... अर्थ किया है। बोधि और जिनभावना दो है न! बोधि में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन लिये और जिनभावना में उसका मुख्य सम्यग्दर्शन लिया। वह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है तरणहार? पूरे चैतन्य को संसार समुद्र से उद्धार करने की जो दृष्टि है, उसकी तो खबर नहीं होती। समाज उद्धार करो।

लो, पण्डितजी! कहते हैं न? देश उद्धार करो, शास्त्र उद्धार करो। उसमें आत्म-उद्धार कहाँ आया? शास्त्र बनाओ और ऐसे बनाओ और बाहर प्रसिद्ध करो। उसमें क्या हुआ तुझे? गुप्त शास्त्र भण्डार में हो, उन्हें बाहर प्रसिद्ध करो। परन्तु भाई! उसमें आत्मा को क्या आया? आहाहा! समाज सुधारो, व्यवहार का सुधार करो। ... आहार देते हैं सब। उसका सुधारा करो। परन्तु उसमें आत्मा को क्या?

मुमुक्षु : आत्मा को उसमें.... पर की महिमा तो आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर के कारण महिमा, उसमें आत्मा को किसका आवे?

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक अपने को मिला, वह बाहर का पदार्थ था तो महिमा आयी या नहीं आत्मा को?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से है ही नहीं। आहाहा! बाहर के कारण से ही नहीं। शास्त्र के उद्धार और शास्त्र का ज्ञान, वह भी कहीं आत्मा के उद्धार के लिये नहीं। आहाहा! आत्मा का उद्धार तो आत्मज्ञान और आत्मदर्शन, वह उद्धार है। आहाहा! वह तो स्वसन्मुख से होता है, उसमें कोई परसन्मुख से कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? दोपहर में आया नहीं था कल? कि आत्मा में करण नाम का गुण है साधकपने, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय में वह करण कारण होता है। सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में वह कारक होता है। आहाहा! शास्त्रज्ञान और... तो नहीं, परन्तु वहाँ तक आया, उसमें तो (कि) अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण जो परिणाम हैं, जिनसे समकित पावे, ऐसा जो व्यवहार का कथन शास्त्र में है, वह यहाँ काम का नहीं, कहते हैं।

मुमुक्षु : करणलब्धि परिणामों से तो पावे ही पावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात उससे पावे नहीं। उससे अभाव करे तो पावे। क्योंकि आत्मा स्वयं ही करण-साधकगुण के पवित्र भाव से भरपूर है। आहाहा! यह साधक—करण नाम के गुण से भरपूर है आत्मा। इससे उसे करणगुण का अथवा गुणी का ही आधार है। सम्यग्दर्शन होने में गुणी का—गुण का आधार है। करण, वह गुण और गुणी

करण है। पूर्व की पर्याय है, उसे करण है नहीं, ऐसा यहाँ तो सिद्ध किया है। आहाहा! बात लोगों को... महिमा चैतन्य भगवान... राग हो, विषय आसक्ति भी हो, परन्तु भावना में वह चीज़ नहीं। धर्मी की भावना तो सम्यक् चैतन्य के सन्मुख एकाग्र होना, वह भावना होती है। आहाहा! बहुत बात! जहाँ शक्तियाँ पड़ी हैं और जो शक्तिवान भगवान है, उसके ऊपर नजर करने से, उसे कारण बनाकर कार्य होता है। दूसरा कोई कारण-फारण है नहीं। वह तो व्यवहार कहो या अभूतार्थ... यह कहते हैं न कि व्यवहारचारित्र पाले तो निश्चय होगा। ऐसा आया है लेख में। बड़ी पुस्तक है न इतनी २०० रुपये की। देखा है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। वहाँ आया है तुम्हारे? जयपुर में आया है?

मुमुक्षु : हरिभाई के पास पुस्तक थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ढाई सौ रुपये की पुस्तक है। वैसे सौ रुपये की है परन्तु ढाई सौ लिये। लाख पुस्तकें छपायी हैं न? हजार-हजार। हजार पुस्तक ढाई लाख के। उसमें यह लिखा है लो। निश्चयचारित्र न हो, तब तक व्यवहारचारित्र पालना।

मुमुक्षु : .... होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहारचारित्र निश्चय बिना होता ही नहीं। बहुत... ऐसी पुस्तक में ऐसा लिखा है, लो! उसमें यह बेचारे को खबर नहीं होती, सेठियाओं को खबर नहीं होती। सामने बाह्यत्याग में आकर्षित हो गये। परन्तु इसमें इस वस्तु का खून होता है। तत्त्व की पूरी बात बदल जाती है।

यहाँ तो कहते हैं, कि जिसे जिनभावना (अर्थात्) वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा की जिसे दृष्टि नहीं, उसे उसकी भावना नहीं। उस भावना बिना जितने पंच महाव्रत, नग्नपना ले या व्यवहार क्रिया करे, वह नौवें ग्रैवेयक में गया, वह तो व्यवहार क्रिया अभी है भी कहाँ? पण्डितजी! नौवे ग्रैवेयक में गया, भाई! उसमें जो शुभभाव था, मिथ्यादृष्टि के उत्कृष्ट शुभभाव, वह नौवें ग्रैवेयक में गया था, तब था। ऐसे शुभभाव की क्रिया अभी कहाँ है व्यवहार की? समझ में आया? ऐसा जो शुभभाव शुक्ललेश्या (कि

जिससे) नौवें ग्रैवेयक में गया, उससे भी कहीं आत्मा की प्राप्ति नहीं हुई। क्योंकि वह तो राग है, वह स्वयं संसार है। आहाहा! संसार से ससार के अभावस्वरूप भगवान आत्मा की प्राप्ति होगी? आहाहा! ... थोड़ी परन्तु बात बहुत बड़ी है उसकी।

सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? जिसने पूरे पूर्ण आनन्द और अनन्त शक्ति का समुदाय, उसकी सत्ता अस्तिरूप है, ऐसा जिसकी श्रद्धा के जोर में वीतरागी पर्याय में आया, उसे वीतरागी भावना ही होती है। भावना, वह अन्तर में एकाग्र होना, वह होती है। उसके बिना यह सब मुनिपना, नग्नपना, बाह्य क्रियाकाण्ड सब संसार के लिये है, तिरने के लिये तो निष्फल है। आहाहा! लोगों को बाह्य त्याग की महिमा (है) न, स्वयं न कर सके, ऐसा त्याग, इसलिए बाह्य त्याग देखकर महिमा आवे। यहाँ इनकार करते हैं कि बाह्य त्याग का फल आत्मा के लिये कुछ नहीं है। उसमें संसारफल है। आहाहा! जगत से बहुत (अलग बात है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टि हुई तो उसमें वह एकाकार ही है। भावना का अर्थ अन्तर एकाग्रता है, वह भावना। शुद्धस्वरूप में एकाग्रता, वह उसकी भावना। भावना अर्थात् कल्पना और चिन्तवना, वह कुछ नहीं। आहाहा! वस्तु जो है पूर्ण स्वरूप, उसकी रुचि की एकाग्रता। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन और जिनभावना कहलाता है।

मुमुक्षु : भावना का अर्थ क्या, राग या वीतरागता?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग। भावना का अर्थ। कहा न एकाग्रता। भावना अर्थात् कल्पना नहीं।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन हुआ पश्चात् आगे बढ़ने की तो भावना होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे बढ़ने का अर्थ अन्दर स्थिरता। परन्तु इच्छा नहीं। इच्छा हो, परन्तु वह काम की नहीं। अन्दर स्थिर होना, एकाग्र होना, वह फिर उसका कार्य है। आहाहा! दर्शन, वह स्वरूप की एकाग्रता और चारित्र भी उग्र एकाग्रता। दूसरी कोई चीज़ नहीं। आहाहा!

जिनभावना जो सम्यग्दर्शन-भावना उससे रहित जो जीव है, वह नग्न भी रहे

तो बोधि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाता है। लो! जहाँ अभी सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ मोक्षमार्ग की प्राप्ति किस प्रकार हो उसे? आहाहा! यह बाहर में... ...एक बार कहा था न पालनपुर में? श्रीमद् की जन्मजयन्ती मनायी थी। तब एक व्यक्ति कोई था। नाम भूल गये। पुस्तक आयी है उसकी। कोई था, नाम भूल गये। उसने वहाँ भाषण किया था। हिन्दुस्तान बाह्य त्याग की महिमा में फँस गया है। अन्तर दृष्टि का विषय और अन्तर भावना क्या है, उसकी उसे खबर नहीं, उसकी कीमत आती नहीं। कोई कहता था, क्या नाम? रमण? रसिक-रसिक। रसिक पारीख था कोई? रसिकलाल पारीख। श्रीमद् की जन्मजयन्ती थी पालनपुर। बहुत वर्ष हो गये। आहाहा! श्रीमद् की बात में था ऐसा कि दुनिया बाह्य का त्याग देखे तो... दृष्टि थी, उसका क्या अनुभव था, उसकी उसे खबर नहीं होती और यह बाह्य त्याग करके बैठे, उसमें हिन्दुस्तान ठगाया है। आहाहा! जगत ठगाया है। सच्ची बात। आहाहा! वह पुस्तक आयी है आज। आहाहा!

जिसे अभी अन्दर में मिथ्यात्व का त्याग नहीं, उसे बाह्य त्याग भी कहाँ था? आहाहा! समझ में आया? यह सब लेकर बैठते हैं न कि निवृत्त हो तो प्रतिमा लेकर बैठे। अकेले हो, स्त्री मर गयी हो। कोई साधन हो। फिर चलो प्रतिमा लें सात, दस प्रतिमा लें। परन्तु किसकी प्रतिमा? एक व्यक्ति ऐसा कहता था कि आठ प्रतिमा में बराबर पूजा नहीं होती, इसलिए अपने ग्यारह प्रतिमा लेनी है। और ऐसा कहता था एक आठ प्रतिमावाला। राजकोट आया था। (संवत्) २००६ के वर्ष की बात है। आठ प्रतिमावाला था। वह कहे, आठ प्रतिमा में लोग आदर नहीं देते। ग्यारह प्रतिमा लें तो अपने को... देखो, यह वस्तु। ऐसा कि आहार-पानी के लिये हम सबको छाँटकर अलग करना और बहुमान देना, ऐसा आठ प्रतिमा में नहीं होता, परन्तु यदि क्षुल्लक होवें तो छाँटकर अहो! पधारो... पधारो महाराज! हमारे यहाँ आहार-पानी... आहार-पानी का तो हो। आहाहा! अन्दर का आनन्द का भोजन है, उसे तो भूल गया।

यह सम्यग्दर्शन में तो आनन्द का भोजन है। उस आनन्द की भावना और शान्ति की भावना नहीं और अकेला द्रव्यलिंग धारण करता है, वह मोक्षमार्ग नहीं पाता, इससे मोक्षमार्ग नहीं पाता। इस क्रियाकाण्ड से कोई मोक्षमार्ग नहीं मिलता। आहाहा! क्योंकि

उस क्रियाकाण्ड का लक्ष्य बाह्य के ऊपर है और भगवान का आश्रय करना, वह तो अन्तर्मुख से है।

इसलिए संसार-समुद्र में भ्रमण करता हुआ संसार में ही दुःख को पाता है... आहाहा! नग्नपना या पंच महाव्रत के भाव, वे स्वयं दुःख हैं और नग्नपना दुःख का निमित्त है। आहाहा! सुखरूप भगवान आत्मा का तो पोषण दृष्टि में हुआ नहीं। पोषाता नहीं, यह बात पोसाती नहीं। उसमें यह क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत और यह बात उसे पोसाती है। आहाहा! बड़ा दृष्टि में अन्तर है, कहते हैं। वह **संसार में ही दुःख को पाता है तथा वर्तमान में भी जो पुरुष नग्न होता है, वह दुःख ही को पाता है।** वर्तमान में भी दुःख है। नग्नपना निभाना, दृष्टि है नहीं, ज्ञाता-दृष्टापने का भान नहीं और वह नग्नपना निभाना, सहन होना महादुःखरूप है उसे। समझ में आया? आचार्य स्वयं पुकारते हैं। स्वयं नग्न मुनि है, दिगम्बर सन्त है। भाव बिना अन्तर में निर्विकल्प वीतरागी दृष्टि बिना तेरा यह सब निष्फल है। अरेरे! जन्म-जरा-मरण के चक्र मिटे नहीं और वह भाव में रहे, वह स्वयं संसारभाव है तेरा। आहाहा!

वह दुःख ही को पाता है। सुख तो भावमुनि नग्न हों, वे ही पाते हैं। लो! आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, ऐसी अन्तर में अनुभव की दृष्टि हुई— परिणमन (हुआ), वह सुखी है। सुख कोई बाह्य में नहीं, धर्मी की सुखबुद्धि अन्तर में है। अज्ञानी की सुखबुद्धि पुण्य और दया, दान और व्रत में सुखबुद्धि है। सुखबुद्धि कहो या हितबुद्धि कहो या साधनबुद्धि कहो। आहाहा! वह अज्ञानी की शुभभाव में सुखबुद्धि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सुख तो भावमुनि को, सन्त को होता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि को सुख होता है। चौथे से सुख की शुरुआत (होती है), अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का भाव चौथे (गुणस्थान) से शुरु होता है। आहाहा! जैसा सिद्ध का आनन्द है, वह उसमें का ही आनन्द का अंश, नमूना... आहाहा! वह सम्यग्दर्शन से शुरु होता है। तब से वह जीव सुखी है। कहो, ऐसे... देखे, नग्न हो, हजारों रानियाँ छोड़े, महीने-महीने के अपवास करे, चार प्रकार के आहार, पानी बिना के, (तो भी) कहते हैं कि दुःखी है।

भगवान आनन्दस्वरूप अनाकुल शान्तरस का कन्द प्रभु, उसे जिसने स्पर्श किया

नहीं, उसकी सब क्रिया राग और पुण्य के स्पर्शवाली है, वह संसार खाते की है। ऐसा वीतराग मार्ग। क्योंकि जब तक मिथ्यात्व का त्याग नहीं, वहाँ अव्रत का बाह्य त्याग भी कहाँ से आवे उसे? आहाहा! पहले बन्धन के कारण में तो मिथ्यात्व पहला बन्धन है। अब वह बन्धन छूटा नहीं और अव्रत का त्याग हो गया? आहाहा!

इससे कहते हैं, सम्यक् चैतन्य के अनुभव बिना सब प्राणी दुःखी हैं। यह तो कहा न, उसमें आया न 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, (पै निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ यह हुआ कि नौवें ग्रैवेयक में गया, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण, शुक्ललेश्या, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, ऐसी जिसकी शुक्ललेश्या और जिसका शुभभाव, तथापि वह सुखी नहीं, वह तो दुःख है। आहाहा! वह सुख नहीं। कहा न कि 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो इसका अर्थ क्या हुआ? पंच महाव्रत के परिणाम, वह तो दुःख है। आहाहा! कहो, मगनभाई! यह सब सेठिया-बेठिया ने फिर बाहर के त्याग की महिमा कर डाली। ऐसा ही था। आहाहा! जरा सा कुछ छोड़े वहाँ तो ओहोहो! महाराज ने भारी छोड़ा। ब्रह्मचर्य लिया आजीवन का। परन्तु वह तो बाहर का है, शुभभाव है, उसमें मूल ब्रह्मचर्य कहाँ आया? समझ में आया? ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें सुख का सेवन, ऐसा जो ब्रह्मचर्य बिना बाहर का ब्रह्मचर्य (पालन करे) वह तो संसार है, कहते हैं। आहाहा! शुभभाव है। ऐसी बातें हैं, भाई! भगवान आत्मा आनन्द की खान है, वह हाथ आयी नहीं तो हाथ में यह पुण्य और पाप के परिणाम हाथ आये, उसे पकड़ा और पकड़ा। आहाहा! (वह तो) मिथ्यात्वभाव है, कहते हैं।

सुख तो भावमुनि नग्न हों वे ही पाते हैं। भावमुनि हो, उनकी दशा नग्न ही हो जाती है, इस बात में अन्तर नहीं। कोई ऐसा कहे कि भावमुनिपना हो और वस्त्र-पात्र भी हो द्रव्यलिंग में, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! जिसे भावलिंग अन्तर में प्रगट हुआ उसका द्रव्यलिंग तो नग्न ही होता है। आहाहा! उस नग्न की दशा का निमित्तपना ऐसा ही होता है उसे। उसे वस्त्रसहित हो और भावलिंग प्रगटे, वस्त्र रखने की बुद्धि है, उसे भावलिंग प्रगटे, ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु : वह तो परद्रव्य है, उसने क्या बिगाड़ा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य को किसने कहा? परद्रव्य की ममता का राग है, ऐसा कहते हैं। वस्त्र रखने का जो राग है, वह भावलिंग का नाश होकर नुकसान करता है।

मुमुक्षु : राग परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग परद्रव्य है तो राग तो अपनी पर्याय में विकार है न। परद्रव्य तो किस अपेक्षा से? निर्मल पर्याय भी परद्रव्य है। निर्मल पर्याय को परद्रव्य कहा है। क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से नई निर्मल पर्याय नहीं आती, वैसे निर्मल पर्याय में से नई पर्याय नहीं आती तो परद्रव्य में डाल दिया। परन्तु वह परद्रव्य है, सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान वह परद्रव्य है। आहाहा! उस परद्रव्य (में) निश्चयद्रव्य का भान होता है। आहाहा! किस अपेक्षा से कथन है, यह जानना चाहिए न! आहाहा! '**भूदत्थमस्सिदो**' आश्रय करती है, वह तो पर्याय है। त्रिकाल भूतार्थ जो वस्तु है, वह तो ध्रुव है। परन्तु उसका आश्रय करती है, वह तो पर्याय—निर्मल पर्याय है। परन्तु उस पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, इस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन की पर्याय को भी परद्रव्य कह दिया। आहाहा! और अपने स्वरूप में एकाग्र हुआ, इसलिए वह भी स्वद्रव्य की ही दशा है। आहाहा! यह अपेक्षा।

और स्वद्रव्य कहा है पुण्य-पाप में। निर्मल पर्याय स्वद्रव्य की पर्याय, वह स्वद्रव्य है। पुण्य-पाप अधिकार। और पुण्य-पाप का भाव, वह परद्रव्य है। जीव के मोक्ष के मार्ग को द्रव्यान्तर का कोई सहारा है नहीं। राजमल टीका है। यह कलश में है। भगवान आत्मा के निर्मल स्वभाव के आश्रय में भगवान है अकेला। उसे परद्रव्य का सहारा, परद्रव्य का—रागादि का सहारा मोक्षमार्ग के लिये नहीं। आहाहा! द्रव्यान्तर का सहारा नहीं, ऐसा लिया है। राजमल टीका। द्रव्यान्तर अर्थात्? अन्य द्रव्य की, रागादि की भी जहाँ अन्तर में स्वभाव के मार्ग का जिसे सहारा—मदद नहीं। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है। उसे पोसाती नहीं यह बात और बाह्यपना सब पोसाता है, वह संसार है, कहते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ६९

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिये कहते हैं—जो द्रव्य नग्न होकर मुनि कहलावे उसका अपयश होता है:—कल एक बड़ा लेख आया था। महावीरकीर्ति गुजर गये न, फिर उसे आचार्यपद दिया है। वह बहुत भ्रष्ट हो गये। महावीरकीर्ति के सब साधु उसे प्रमाण करके... मोटर रखे और यह करे और वह करे, सब रखे।

मुमुक्षु : चन्दा करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चन्दा करे। सब यह तो कल आया था। लेख आया था। जैनसन्देश (में)। अरेरे! यह क्या परन्तु? आहाहा! महावीरकीर्ति आये तो पूरा ट्रक घास का भरा हुआ था उनके साथ। सब साधुओं के लिये पूरा घास का ट्रक ऐसा। क्या है यह? ....

मुमुक्षु : उसमें परद्रव्य क्या नुकसान करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं करता। परद्रव्य से मेरा निभाव है, यह उसकी मान्यता नुकसान करती है।

मुमुक्षु : घास....

पूज्य गुरुदेवश्री : घास भी रखा किसलिए? कौन प्रयोग करता था? बड़ा ट्रक खड़ा था यहाँ। भगवानदास के उसमें था न, वह कहे कि यह क्या? पूरा ट्रक भरा था। दस-बारह साधु थे न! सबको सोने का चाहिए। ट्रक साथ में चले। अरे! भगवान! यह क्या मार्ग है? दुनिया बाह्य त्याग में मर गयी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो किसलिए साधुपना लिया परन्तु? आहाहा! बापू! सन्त का मार्ग अन्दर स्वभाव से सरल है, बाहर से कठिन है। आहाहा! 'मनुष्य होना मुश्किल है, साधु कहाँ से होय? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ।' आहाहा! जिसका अवतार सफल है, जिसका जन्म माता ने दिया, वह जन्म (भव)रहित होने के लिये है। आहाहा! ऐसा

मुनिभाव अलौकिक वस्तु है। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं हो तो मुनि तो कहाँ रहे? बहुत कठिन, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे। ... अरे! व्यवहारचारित्र कहाँ, बापू? व्यवहार था ही कहाँ? निश्चय बिना का व्यवहार तो अन्ध है। निश्चय में अनारूढ़, व्यवहार में आरूढ़, व्यवहारमूढ़, अनादिरूढ़। यह (शब्द) ४१३ गाथा समयसार में है। समयसार ४१३ गाथा। व्यवहार में मूढ़, अनादिरूढ़, स्वभाव में अनारूढ़ ऐसे तीन बोल हैं। स्वभाव में आरूढ़ नहीं, जहाँ प्रभु विराजता है। आहाहा! और ... स्वभाव में आरूढ़ नहीं। पर से भिन्न पड़कर अन्तर आश्रय नहीं और अकेला व्यवहार है, वह तो व्यवहारमूढ़ है। उसे व्यवहार कहते ही नहीं। ४१३ गाथा में कहते हैं, निश्चय बिना का व्यवहार तो व्यवहार में मूढ़ है। आहाहा! वह तो अनादिरूढ़ भाव है, वह कहीं नया नहीं। निश्चय स्वभाव में आरूढ़ हुआ, उसे फिर राग की मन्दता का भाव (होवे), उसे व्यवहार कहा जाता है। जागृत हुए बिना का व्यवहार कैसा? आहाहा! ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को एकान्त लगे, हों! मनुष्यों को।

मुमुक्षु : न समझे उसे लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगे।

मुमुक्षु : निश्चय बिना का व्यवहार अन्धा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्धा है। जिसे जाननेवाला-देखनेवाला तो है नहीं कोई। वह व्यवहार अन्धा, अपने स्वभाव से अन्धा है, जड़ है वह तो।

मुमुक्षु : व्यवहार बिना निश्चय....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार बिना निश्चय होता है, व्यवहार बिना निश्चय होता है। व्यवहार की रुचि छोड़कर निश्चय होता है। व्यवहार की रुचि रखकर निश्चय होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! जगत के साथ खड़े रहना अनमेल होकर। अतड़ा अर्थात् किसी के साथ मेल नहीं। कठिन पड़े ऐसा है, भाई! सत्य ऐसी

चीज़ है। चारित्रदोष हो। समझ में आया? आता है न, छहढाला में नहीं आता? क्या आता है? 'लेश न संयम तो भी...'

मुमुक्षु : चारित्रमोह (वश) लेश न संयम, पै सुरनाथ जजै हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जजै हैं। छह ढाला में आता है न। 'लेश न संयम, पै सुरनाथ जजै हैं।' आदर करते हैं।

मुमुक्षु : दर्शनपाहुड़ में उसमें भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न उसमें दर्शनपाहुड़ में भी है। सबमें है। उसमें से ही लिया है न! सम्यग्दर्शन पूजनीय है। ... आहाहा!

मुमुक्षु : दर्शनमोह....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चारित्रमोहवश, परन्तु ऐसा। स्वयं वश हो गया है राग में, इसलिए संयम नहीं। चारित्रमोह से वश हुआ है, ऐसा नहीं। चारित्रमोह के उदय में अपने पुरुषार्थ की कमजोरी से वश हुआ है, इसलिए संयम नहीं। पण्डितजी! हमारे पण्डितजी ठीक ... हैं। ... में तो लोग जरा आलोचना करे ऐसा है। ...योगसार न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। वह तो एक सातावेदनीय से निरोगता न रहे, असाता से रोग न हो और पैसा बाँटने में समाज ... के लिए है, इस बात में खोट है। पण्डितजी... ऐसा कहते हैं। इसलिए उसे मैं पीछे से कहता हूँ। ... आहाहा! यह वस्तु बापू! यह कहीं किसी के पक्ष की बात है यह? यह तो सत्य के धारा की श्रेणी की बातें हैं। पहले इसका निश्चित तो—निर्णय तो करे व्यवहार विकल्प से कि वस्तु तो यह ही है, दूसरे प्रकार से है नहीं। समझ में आया? पहले तो यह विकल्प से ऐसा निर्णय आये बिना रहता नहीं। तथापि उससे होता है, ऐसा नहीं। ... यथार्थ अनुभव निर्णय में होता है। यथार्थ अनुभव में निर्णय होता है। आहाहा!

यह वस्तु में कहते हैं कि **हे मुने! तेरे ऐसे नग्नपने से तथा मुनिपने से क्या साध्य है?** जो साधकर सिद्ध करना है, वह बात सिद्ध है, उस सम्यग्दर्शन की तो तुझे खबर

नहीं। आहाहा! यहाँ तो भगवान ... यहाँ तो जैनदर्शन बाह्य-अभ्यन्तर राग का त्याग, बाह्य त्याग, अन्तर आनन्द की दशा की ... और खड़े-खड़े आहार—खड़े-खड़े आहार, निर्दोष जिसका ज्ञान। ज्ञान में करण, करावन, अनुमोदन, कम, अधिक या विपरीत न हो। ऐसा ज्ञान जिसे हो, उसे जैनदर्शन कहते हैं, लो! अब ऐसा जैनदर्शन... आहाहा! कठिन बातें, भाई! अब ऐसे जैनदर्शन बिना उसे दूसरे में ... जैनदर्शन नहीं, वहाँ सम्यग्दर्शन भी नहीं, व्यवहार सम्यग्दर्शन भी नहीं। आहाहा! उसके साधु और साध्वी सब व्यवहार सम्यग्दर्शनरहित गृहीत मिथ्यात्वी हैं। ऐसी कठिन बात लगे।

दिगम्बर जैनदर्शन के अतिरिक्त जो दर्शन सब, वे तो गृहीत मिथ्यात्व है। अब उसमें आकर भी जब नग्नपना और बाह्य क्रिया अकेली हो, परन्तु स्वभाव में श्रद्धा का ज्ञान और भान न हो, वह भी निष्फल है। वह जैन नहीं, वह जैन ही नहीं। जिसने मिथ्यात्व को जीता नहीं, सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया, वह जैन कहाँ है? आहाहा! जैन कोई बाहर के वाडा से जैन कहलाता है? दिगम्बर में हम जन्मे, इसलिए (हम जैन हैं)। इन्द्रलालजी कहते थे वे तुम्हारे जयपुर के। दिगम्बर में जन्मे वे तो सब भेदज्ञानी तो हैं। दिगम्बर में जन्में, अब उन्हें चारित्र (लेना है), ऐसा कहते थे वे। पत्रिका में आया था। आहाहा! जयपुर में थे न जयपुर में? गुजर गये। हमने देखा नहीं।

यहाँ कहते हैं कि **हे मुने! तेरे ऐसे नग्नपने से तथा मुनिपने से क्या साध्य है?** बाहर का नग्नपना और व्यवहार की क्रिया से तुझे क्या साध्य है भगवान? भाई! आहाहा! उसमें तो वहाँ तक कहा सर्वविशुद्ध में तो, आत्मा आत्मा को जाने, इससे साध्य क्या है तुझे? स्वस्वामीसम्बन्ध में वहाँ तक (कहा) आत्मा पर को जाने? कि नहीं। आत्मा आत्मा को जाने। भगवान! ऐसा भेद पाड़कर तुझे क्या साध्य है? तुझे साबित क्या करना है? उसमें तुझे लाभ का कारण क्या है? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा मुनिपना और ऐसा नग्नपना। दो बात है न? पहला नग्नपना, ऐसा मुनिपना क्रिया व्यवहार की। **क्या साध्य है?**

कैसा है—पैशून्य अर्थात् दूसरे का दोष कहने का स्वभाव... आहाहा! दूसरे के दोष कहने का स्वभाव तेरा पड़ गया, अब तेरा मुनिपना किस काम का? पैशून्य

(अर्थात्) चुगली-चुगली। **हास्य अर्थात् दूसरे की हंसी करना,...** आहाहा! सच्चे धर्मात्मा हों, उनकी हंसी करे (कि) लो, यह हो गये धर्मी। आहाहा! नहीं संयम, नहीं त्याग, नहीं ... हो गये ज्ञानी समकिती। समकिती-भेदज्ञानी को तो आस्रव का त्याग होता है, उसे भेदज्ञान कहते हैं। ऐसा कहा है ७२ गाथा में तो। रतनलालजी ऐसा अर्थ करते हैं। ७२ गाथा है न ७२। जिसे आस्रव का त्याग नहीं, उसे भेदज्ञान कैसा? ऐसा है पाठ। ७२ गाथा। परन्तु वह तो अभिप्राय की बात है। जिसके अभिप्राय में आस्रव का त्याग नहीं, उसे भेदज्ञान कैसा? ऐसा कहते हैं वहाँ। ७२ गाथा कर्ताकर्म। वे अर्थ करते हैं। बहुत बार आता है। कल भी आया था जैनसन्देश में। आज आया। ऐसा कि जो कोई आस्रव के परिणाम से छूटे, व्यवहार त्याग हो और छूटे तो उसे भेदज्ञानी कहा जाता है, तो उसे ज्ञानी (कहा जाता है)। अरेरे!

फूलचन्दजी ने जवाब दिया था। भाई! ऐसा नहीं। जिसके अभिप्राय में से आस्रव न छूटे, उसे भेदज्ञान कैसा? राग से भिन्न न पड़े और आत्मा के आश्रय में न जाये, उसे भेदज्ञान कैसा? वह तो श्रद्धा की अपेक्षा से आस्रव से छूटा है, चारित्र की अपेक्षा से तो आस्रव है। वरना तो छठवाँ गुणस्थान हो जाये। आहाहा! शास्त्र का अर्थ ऐसा करे। यदि आस्रव से निवृत्त न हो तो भेदज्ञान कैसा? परन्तु आस्रव से निवृत्त न हो अर्थात् क्या? ऐई! श्रद्धा से यदि 'आस्रव मेरे हैं' ऐसा उसमें से न निवृत्त हो और स्वभाव की एकाग्रता न हो तो उसे भेदज्ञान कैसा? ऐसा कहते हैं। यह तो चौथे गुणस्थान की बात है। आस्रव अर्थात् बाह्य त्याग और बाह्य त्याग की महिमा इतना सब....

बाह्य त्याग अकेला नग्नपना धारण करे और कदाचित् पंच महाव्रत के, अहिंसा, सत्य, अचौर्य के परिणाम शुभ हों, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! धर्म तो भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप आनन्द का नाथ आत्मा है। सत् चिदानन्द, सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान, आनन्द अर्थात् अतीन्द्रिय सुखस्वरूप प्रभु है। ऐसे आनन्द के नाथ को जिसने आश्रय में लिया नहीं, उसका जिसे अन्तर में अवलम्बन नहीं, वह सब क्रियाकाण्ड करनेवाले सब धर्मी नहीं, अधर्मी हैं। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा एक समय में सच्चिदानन्द, सत् अर्थात् शाश्वत् अस्ति धारक, जिसकी उत्पत्ति नहीं, जिसका नाश नहीं

और ज्ञान तथा आनन्द जिसका स्वभाव है, ऐसा प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा, उसकी जिसे अन्तर अनुभव स्वस्वभाव का ज्ञान और स्वस्वभाव की दृष्टि नहीं और वह नग्न होकर घूमे, बाबा होकर, योगी होकर, (वे सब) बिना एक के शून्य हैं। बाह्य त्याग करके बैठे। बाबा बुद्धि बिना के बाबा हों, वे भवसागर में डूब मरेंगे।

जिसे आत्मा चैतन्यमूर्ति भगवान... आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में प्रभु आत्मा देह से—यह तो मिट्टी है, इससे—भिन्न, कर्म के रजकण अन्दर प्रारब्ध हैं, जिसके कारण यह सुख-दुःख के संयोग आवे, वह कर्म भिन्न चीज़ जड़ है, मिट्टी है। अन्दर में पुण्य और पाप के भाव हों, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोगवासना, वह पाप है और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण भगवान आदि का हो, वह सब पुण्य विकार है। भगवान आत्मा की जाति अलग है, प्रभु! आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव से भी प्रभु भिन्न चीज़ है। उस चीज़ को जब तक दृष्टि में और अनुभव में न ले और बाह्य नग्नपना बाह्य त्याग करके बैठे, उसका फल संसार—भटकने का है। आहाहा! समझ में आया? नाम सुना है नरसिंह मेहता का? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहिं।' सुना है या नहीं कभी? सुना है? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहिं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' जूनागढ़।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो खबर है न! खबर है न! जूनागढ़ के हैं खबर न हो महाजन को? ...बहुत वर्ष से जानते हैं महाजन लोगों को।

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, महा शुद्धता और पवित्रता का भण्डार ऐसे आत्मा का जिसे अन्तर ज्ञान और अन्तर अनुभव नहीं, उसकी दृष्टि में वह पूरा आत्मा ऐसा है, उसका स्वीकार नहीं, ऐसे जीव भले त्याग करके बैठे, मुनि होकर बैठे, साधु होकर बैठे, नग्न होकर जंगल में बसे, वह सब उसका फल निरर्थक है। चार गति में भटकने का है, उसकी गति का अन्त आता नहीं। आहाहा! यह कहते हैं, देखो न! आहाहा! ऐसा भान नहीं, वह धर्मी की हंसी करता है। लो, समकिती हो गये। गृहस्थाश्रम में हो, सम्यग्दृष्टि अनुभवी गृहस्थाश्रम में

हो, स्त्री, कुटुम्ब के परिवार में दिखाई दे, तथापि अन्दर से निर्लेप है। जैसे नारियल का गोला नारियल में रहने पर भी भिन्न रहता है। गड़गड़िया होता है न गड़गड़िया? रहे उसमें, परन्तु पृथक् रहता है। उसी प्रकार धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि आत्मा का जिसे भान है, ऐसे गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी वे गृहस्थाश्रम के भाव से गड़गड़िया भिन्न रहते हैं। धीरुभाई! यह सब तीनों डॉक्टर आये थे आज। नवरंगभाई आये हैं न। नवरंगभाई आये हैं, प्रवीणभाई आये हैं, चन्दुभाई आये हैं राजकोट से। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, संत आड़तिया रूप से परमात्मा की बात जगत को प्रसिद्ध करते हैं, भाई! यह चिदानन्द प्रभु है, उसकी जिसे अन्तर निर्विकल्प अनुभव की दृष्टि नहीं और जिसे ऐसा परमात्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका जिसे अन्तर में सत्ता का—अस्तित्व का जिसे अन्तर दृष्टि में स्वीकार नहीं, वे सब प्राणी बाह्य त्याग करके बैठे, वे सब चार गति में भटकनेवाले हैं। उसकी कीमत कुछ नहीं। आहाहा!

कहते हैं, हंसी। **मत्सर अर्थात् अपने बराबरवाले से ईर्ष्या रखकर...** स्वयं मुनिवेश धरे, बाह्य त्याग हो और दूसरा कोई धर्मात्मा हो, उसके साथ मश्करी करे, ले! यह भी हो गया बड़ा! अब कल का अभी ठिकाना बिना का व्यापार करता था और यह हो गया बड़ा। भाई! कल का चाहे जो हो। लोग नहीं कहते? सौ चूहे मारकर बिल्ली पाट पर बैठी। ऐसा कहते हैं अपने काठियावाड़ में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। हमारे काठियावाड़ की यह कहावत है। सौ चूहे मारकर बिल्ली पाट पर बैठी, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो जगत के सबका भान है बहुत समय से। आहाहा! ऐसे नहीं बैठे। बहुत पाप कल के किये हो अनेक प्रकार से, परन्तु क्षण में गुलाँट खाकर आत्मा का भान कर सकता है। ऐसा नहीं कि ऐसे पाप किये इसलिए अब धर्म नहीं होगा। समझ में आया? पानी अग्नि के निमित्त से उष्ण हुआ। पानी अग्नि के निमित्त से उष्ण हुआ, तथापि उसमें शीतलता ऐसी भरी है कि गुलाँट खाये तो वह जिससे उष्ण हुआ, उसे मिट्टी कर डाले। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा चाहे जितने विकारीभाव और अज्ञानभाव सेवन किये हों, तथापि उसके स्वरूप का भान करे तो अज्ञान का नाश कर डाले। उसमें उसे कुछ दूरी न लगे कि इतना काल चाहिए। घास के बड़े पर्वत हों, एक दियासलाई बस है। एक दियासलाई रखे तो सड़सड़ाट राख हो जाये सब। इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्व के अनेक प्रकार के पाप किये हो अनादि है, परन्तु जिस क्षण जिसके चैतन्य के जिसे तेज का भान होता है, ओहो! मैं तो सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का नाथ हूँ, ऐसी दृष्टि के काल में पूर्व के अज्ञान का भुक्का—नाश हो जाता है। ऐसा नहीं कि ऐसे पाप किये, इसलिए अब धर्मी नहीं हो सकता। ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया? गर्म पानी हुआ धगधगता, इसलिए अब ठण्डा नहीं होगा, ऐसा नहीं है। उसका ठण्डा स्वभाव रखकर गर्म हुआ है। गर्म हुआ है दशा में, वह स्वभाव ठण्डा रखकर हुआ है कि जिससे ठण्डे को जागृत करने पर वह उष्णता का नाश कर डालता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! अरे! उसकी बातें कहाँ इसने सुनी है!

कहते हैं कि जो भान में आया और दूसरा भान बिना का प्राणी मुनि हुआ (इसलिए) भानवाले की मश्करी करे। लो, यह है मुनि, यह साधु। हंसी-मश्करी करते हैं न। **दूसरे को नीचा करने की बुद्धि, माया अर्थात् कुटिल परिणाम...** जिसे हो। आत्मा का भान नहीं और माया—कुटिलता सेवन करता हो, कपट-कपट। आहाहा! **ये भाव उसमें प्रचुरता से पाये जाते हैं, इसलिए पाप से मलिन है और अयश अर्थात् अपकीर्ति का भाजन है।** जिसे आत्मा का अन्तर आनन्दस्वरूप की श्रद्धा का ज्ञान, भान नहीं, वे ऐसा मुनिपना लेकर बैठे, वे अपयश के, अपकीर्ति के भाजन हैं। वे यश के भाजन हैं नहीं। सूक्ष्म बातें, भगवान! आहाहा! वह स्वयं अन्दर कौन वस्तु है? अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति का सागर है वह। वस्तु है न, अस्ति है न! अस्ति वस्तु है तो उसमें अनन्त शान्ति, आनन्द आदि वस्तु में बसी हुई है। वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त गुण बसे हुए हैं। वस्तु है प्रभु आत्मा और उसमें ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि अनन्त शक्तियों का वास है। आहाहा! कभी देखा है इसने? वास्तु ले वास्तु तो कोई मकान में लेते होंगे या वृक्ष में लेते होंगे? इसी प्रकार आत्मा की वस्तु है, उसमें वास ले। भगवान आनन्द का नाथ है, उसमें जा। वहाँ तेरा विश्रामस्थान है, बाकी विश्राम

कहीं है नहीं। कहो, डॉक्टर! यह सब डॉक्टर-फॉक्टर के सब अभिमान, वे सब मिथ्या मूढ़ हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई!

हमारे वे प्राणजीवनभाई हैं न, कहते थे। प्राणजीवन डॉक्टर है न, जामनगर नहीं? वहाँ गये थे। वे आते थे, यहाँ भी आते हैं। वहाँ भी आते थे राजकोट। एक बार कहते थे, हमारे वहाँ जायें दवा रोज की देखने, तो हमारे ख्याल में तो आवे कि यह रोग बहुत कठोर है, परन्तु हम बाहर में तो ऐसा कहें कि अभी मिट जायेगा। इस इंजेक्शन से मिट जायेगा। घर जायें वहाँ सुने कि मर गया। प्राणजीवन कहते थे। है न प्राणजीवन। एक है न सोलेरियम। छह लाख रुपये का सोलेरियम। वह मशीन बताने के लिये ... महाराज! यह हमारी मशीन तो देखो, आपके दृष्टान्त में काम आवे न। सोलेरियम। सूर्य की किरणें आती हैं। उसमें १००वीं गाथा चलती थी। आहाहा! (संवत्) १९९० की बात है। १००वीं गाथा थी न, उसमें जामनगर में आयी हुई। उसमें यह दृष्टान्त देखने के लिये (गये थे)। सदर में। यह आत्मा के भान बिना सब डॉक्टर-फॉक्टर भी सब मूढ़ है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ५, सोमवार, २८-०१-१९७४
गाथा - ६९ से ७२, प्रवचन-१०१

अष्टपाहुड़। **भावार्थ :- पैशून्य आदि पापों से मलिन इस प्रकार नग्नस्वरूप मुनिपने से क्या साध्य है?** कहते हैं कि चुगली करना, दोष दिखलाना, हंसी करना, दूसरे को देखकर ईर्ष्या करना, ऐसे भाववाले को नग्नपना किस काम का? **उलटा अपकीर्तन का भाजन होकर व्यवहारधर्म की हंसी करानेवाला होता है, इसलिए भावलिंगी होना योग्य है। यह उपदेश है।** आहाहा! आनन्दस्वरूप अन्तर का अनुभव करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। बाकी नग्नपना, पंच महाव्रत, वह आत्मा को कोई लाभदायक नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ७०

आगे इस प्रकार भावलिंगी होने का उपदेश कराते हैं:—

पयहहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियइ॥७०॥

अर्थ :- हे आत्मन्! तू अभ्यन्तर भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध... अन्तर भावदोष मिथ्यात्व, भ्रान्ति, राग और पुण्य के विकल्प में प्रेम, वह अभ्यन्तर मिथ्यात्व का दोष है। आहाहा! एक समय की पर्याय में प्रेम, वह भी अभ्यन्तर मिथ्यात्व का दोष है। **तू अभ्यन्तर भावदोषों से (रहित) अत्यन्त शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग अर्थात् बाह्य निर्ग्रन्थ लिंग प्रगट कर,...** अन्तर में भगवान आत्मा के आनन्द की भेंट होकर द्रव्यलिंग धारण कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसकी प्राप्ति अनन्त काल में (हुई नहीं)। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ पूर्णानन्द परमात्मा स्वयं, उसकी भेंट करके... आहाहा! उसमें एकता करके भावलिंग ग्रहण करके फिर द्रव्यलिंग ग्रहण कर। अकेले द्रव्यलिंग से क्या है?

मुमुक्षु : करते-करते भावलिंग होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी पड़े नहीं द्रव्यलिंग करते-करते। आहाहा! जिसकी दिशा में ही अन्तर है। अन्तर्मुख की दृष्टि किये बिना, वह प्राप्त नहीं होगा, ऐसी वह चीज़ है। बाहर के चाहे जितने व्यवहार आचरण हो, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, वीर्याचार (और तपाचार) पाँच व्यवहार, वह कोई आत्मा के स्वभाव के साधन के लिये कारणभूत नहीं। आहाहा!

अन्तर का आनन्द और अन्तर का ज्ञान, उसे स्पर्श कर, वेदकर, अनुभव करके बाह्य द्रव्यलिंग धारण कर, ऐसा कहते हैं। **बाह्य निर्ग्रन्थ लिंग प्रगट कर,...** ऐसा। अभ्यन्तर ग्रन्थ की ग्रन्थी तोड़कर बाह्यग्रन्थ का त्याग कर, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! देखो न, जीवन चला जाता है मनुष्यों का। ... आया। भाई है सही न। आहाहा! वे बेचारे पन्द्रह दिन रह गये बेचारे। नहीं? ... रह गये। उन्हें सोने के अक्षर के समय बहिन के पास खड़े थे, मुझे बराबर ख्याल है। सोने के अक्षर लिखाये न जब, तब बहिन के पास खड़े थे। ... बराबर ख्याल है। लिखे जाते हैं न अभी। आहाहा!

अन्दर सोना को उत्कीर्ण किये बिना... आहाहा! जंग बिना की धातु चैतन्यधातु आत्मा है। उसे जंग नहीं। राग और द्वेष का मैल ही नहीं जिसे, ऐसे निर्मलानन्दस्वभाव को वेदकर, जानकर, अनुभव करके, स्पर्श करके द्रव्यलिंग धारण-प्रगट कर। माल हो तो वह बारदान शोभे। कोथलो—बारदान। माल बिना का बारदान क्या? इसी प्रकार द्रव्यलिंग तो बारदान—खोखा है। आहाहा! वह परमानन्द शान्तरस से भरपूर महाप्रभु है, आहाहा! उसकी दृष्टि उसमें पसरा और उस भावलिंग का अनुभव करके द्रव्यलिंग हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में होता ही है वह। द्रव्यलिंग नग्न ही होता है। बाह्य द्रव्यलिंग में उसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प ही होते हैं। आहाहा! जिसे भावलिंग सम्यग्दर्शनसहित स्थिरता अन्दर में प्रगटी है, उसे तो द्रव्यलिंग नग्न और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प ही होते हैं, दूसरा उसे होता नहीं। आहाहा! इससे ऐसा कहा न '**जिणवरलिंगं पयडहिं**' जिनवरलिंग को प्रगट कर। तो वह प्रगट किया व्यवहार से

कहा जाता है। आहाहा! अरे! करने का तो यह है मनुष्य भव पाकर। बाकी तो ऐसा का ऐसा जन्मे और मरता है मरण, उसका क्या अवतार? जिसने अवतार में आत्मा को पहिचाना, आत्मा को अनुभव किया, उसका अवतार सफल है। आहाहा! बाकी दुनिया में कीर्ति और इज्जत और दुनिया माने, दुनिया में प्रसिद्धि बहुत हो, वह धूलधाणी और वा-पानी है। स्वयं प्रसिद्ध में आया नहीं अन्दर में और बाहर की प्रसिद्धि दुनिया में बहुत हो, उसके साथ क्या है? आहाहा!

भावशुद्धि के बिना... चैतन्य की जागृति की दशा, निर्विकल्प वेदन... आहाहा! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन अर्थात् कि निर्विकल्प आनन्द का वेदन, ऐसी भावशुद्धि बिना **द्रव्यलिंग बिगड़ जायेगा...** द्रव्यलिंग तो बिगड़ जायेगा। आहाहा! सहनशीलता अन्तर से तो प्रगटी नहीं। तो बाहर की सहनशीलता फिर बिगड़ जायेगी, ऐसा कहते हैं। अन्तर में भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के सहनशील स्वभाव प्रगट हुआ नहीं। सहन करना (होता) ही नहीं, वह तो जानना और देखना ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! ऐसे **भावशुद्धि के बिना द्रव्यलिंग बिगड़ जायेगा...** यह अट्ठाईस मूलगुण का ठिकाना नहीं अभी। सहन नहीं होता वहाँ छेद हो जायेगा आर्तध्यान और रौद्रध्यान से। आहाहा!

क्योंकि भावमलिन जीव बाह्य परिग्रह में मलिन होता है। जिसका भाव मलिन है, राग की एकता है, वीतरागता का वेदन नहीं, ऐसे जीव तो **बाह्य परिग्रह में मलिन होता है।** अर्थात् राग को अपना मानेगा ही वह, ऐसा कहते हैं। शरीर की क्रिया और राग को अपना मानेगा ही। क्योंकि राग और शरीर की क्रियारहित भगवान आत्मा तो भासित हुआ नहीं। इसलिए उसे बाह्य परिग्रह से मलिनता ही होगी, ऐसा कहते हैं, देखा! आहाहा! यह पंच महाव्रत के परिणाम राग, दुःख और आकुलता, उससे वह स्वयं एकत्वबुद्धि में जुड़ जायेगा। आहाहा! **बाह्य परिग्रह में मलिन होता है।**

भावार्थ :- यदि भाव शुद्ध कर द्रव्यलिंग धारण करे तो भ्रष्ट न हो... आहाहा! अन्तर के स्वभाव का जिसने सत्यार्थ भगवान (आत्मा) का आश्रय लिया है, ऐसी भावशुद्धि जिसने प्रगट की है, और द्रव्यलिंग धारण करे तो भ्रष्ट न हो। नग्नपना हो, अट्ठाईस मूलगुण हो,... आहाहा! बाकी तो देह छूट जायेगी। भाव के भान बिना देह तो छूटेगी परन्तु दुःख की दशा में छूटेगी। आहाहा! 'जगत को मरण का दुःख है, धर्मी को

आनन्द की लहर।' आहाहा! वह तो मरण महोत्सव है धर्मी को तो। आहाहा! आनन्द का मण्डप डाला है न! वह आनन्द खिलता है मृत्यु के समय तो। आहाहा! उसका मरण सफल है। बाकी तो—वरना तो राग की एकता हुए बिना रहेगी ही नहीं। राग से भिन्न पड़कर चैतन्य की दृष्टि का अनुभव न करे, उसे राग की एकता की मलिनता नहीं टलेगी। आहाहा! अन्तर की-अन्तर की बातें हैं यह तो।

और भाव मलिन हों तो बाह्य परिग्रह की संगति से द्रव्यलिंग भी बिगाड़े,... जिसके भाव मलिन हैं, राग की... ओहोहो! 'राग आग दाह दहे सदा...' पण्डितजी! 'तातै समामृत सेईये।' आहाहा! छहढाला में आता है, लो! सादी भाषा में रखा है। चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग। 'राग आग दहे सदा...' वह आत्मा की शान्ति को जलाता है। आहाहा! 'तातै समामृत सेईये' समतारूपी अमृत का सेवन कर, कहते हैं। राग तो दुःखरूप है। और जिसे **बाह्य परिग्रह की संगति से द्रव्यलिंग भी बिगाड़े,...** उसका नग्नपना भी व्यवस्थित नहीं रह सकेगा। एक मनुष्य कहता था न कि महाराज! यह वर्तमान साधु मरते हैं, वे सब तड़पन करके मरते हैं, ऐसा मरण होगा? ऐसा कहता था।

मुमुक्षु : ऐसा समाधिमरण होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधिमरण ऐसा होगा? एक व्यक्ति आया था, दिगम्बर आया था। यह सब मरते हैं न जब क्षुल्लक, कोई सम्यक्त्व तो है नहीं, इसलिए फिर पीड़ा का पार नहीं होता। तड़पड़ाहट-तड़पट ऐसे से ऐसे। वह पूछता था। पाँचवें काल के समाधिमरण में ऐसे तड़फड़िया मरण होगा? ऐई! आहाहा! जिसने शीतल शान्त का पिण्ड आनन्दस्वरूप तो अनुभव किया नहीं, इससे उसे ऐसे अवसर पर फिर अस्थिरता सहन नहीं होगी। आहाहा! यह वेदना, यह पीड़ा, यह शीत, यह उष्णता यह वेदना में वेदाई जायेगा। आत्मा के आनन्द का वेदन नहीं। आहाहा! वहाँ बाह्य परिग्रह से बिगड़ जायेगा।

इसलिए प्रधानरूप से भावलिंग ही का उपदेश है, विशुद्ध भावों के बिना बाह्य भेष धारण करना योग्य नहीं है। लो! यहाँ तो यह कहा। सम्यग्दर्शन और अनुभव बिना... आहाहा! **बाह्य भेष धारण करना योग्य नहीं है।**

★ ★ ★

गाथा - ७१

आगे कहते हैं कि जो भावरहित नग्न मुनि है, वह हास्य का स्थान है:— नटश्रमण कहेंगे यहाँ।

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो णऽसवणो णग्गरूवेण॥७१॥

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के समय में तो ऐसा कहते हैं। दो हजार वर्ष पहले... भगवान के पास गये थे। उन्हें आकर लिखना पड़ा ऐसे (साधु) होंगे यहाँ। आहाहा!

अर्थ :- धर्म अर्थात् अपना स्वभाव... उसका .. उसका जहाँ वास नहीं। **तथा दशलक्षणस्वरूप में...** वह तो सब... अन्तर आनन्द का वास जहाँ स्वभाव का निवास नहीं। आहाहा! शान्तरस का पिण्ड प्रभु, जिसमें उसका वास नहीं। यह है न, देखो न! **'धम्मम्मि णिप्पवासो'** आहाहा! **वह जीव दोषों का आवास है...** आनन्दस्वरूप भगवान अमृत का पिण्ड प्रभु है, उसमें जिसका वास नहीं, वह दोष के आवास में है। भारी सूक्ष्म, भाई! ओहोहो! क्षण में देह चली जाती है। यह कोई तुम्हारी पुत्री कहती थी, ...बहिन गयी न, वह कहती थी। रात्रि के पौने तीन बजे दु:खता था। तीन बजे गुजर गये। सात बजे। यह पाव घण्टे तो उन्हें भी कुछ नहीं कि क्या होगा। आहाहा! पर्दा गिरा एकदम। बाहर की इज्जत... चाहे जो हो, परन्तु आनन्द का स्वरूप भगवान आत्मा वहाँ जिसकी दृष्टि नहीं, धर्म का निवास नहीं। इसलिए जिसे आनन्द का वास नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसमें चैतन्य भगवान शीतल चन्दन नाथ, उसमें जिसकी दृष्टि नहीं, वह धर्म की पिपासा और धर्म के वास बिना का है।

अपना स्वभाव आनन्द और शान्त शीतल शीतल है। अकषायस्वभाव वह स्वरूप आत्मा का है। पुण्य-पाप के विकल्प, वह तो आग, सुलगती आग है। आहाहा! निश्चय की बातें लोगों को ऐसी लगे कि कुछ साधन चाहिए न इसे। वह साधन ही यह है। स्वरूप का निर्मल परिणाम, वही उसका साधन है। वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, वही उसका साधन है। दूसरा कोई साधन है ही नहीं। वह तो अपने आ गया इसमें, करणगुण में। करणशक्ति में आ गया बहुत। आहाहा! वहाँ किसी की सिफारिश काम आवे, ऐसा

नहीं कि मैंने जगत को बहुतों को समझाया और बहुतों को धर्म प्राप्त कराया। अभी तू ही स्वयं धर्म समझा नहीं और क्या प्राप्त कराये दूसरे को ? आहाहा! यह सिफारिश वहाँ काम नहीं आती कि हमने जैनधर्म को रखा है। परन्तु कैसा जैनधर्म ? किसे जैनधर्म कहना ? आहाहा!

मुमुक्षु : उद्धार करना हो उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उद्धार तो जिसे आत्मा का उद्धार करना हो, वह जैनधर्म है। आहाहा! राग में से उठाकर वीतरागभाव में आत्मा को रखना, वह आत्मा का उद्धार है। पण्डितजी कहते थे न हुकमचन्दजी कि यह सब समाज उद्धार और देश उद्धार और शास्त्र उद्धार की बातें करते हैं। पण्डितजी बहुत अच्छे पके हैं। उनका आत्मा इस जाति की प्रभावना में....

मुमुक्षु : यह पक्ष हो गया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पक्ष का अर्थ... ऐसा कि यह सोनगढ़ के पक्ष में पण्डित हैं। बापू! सोनगढ़ कहीं कोई नयी चीज़ है ? आहाहा! निर्मलानन्द प्रभु सोना जैसा शुद्ध है, उसका अन्तर में पक्ष करना, वह पक्ष है। यह तो उसकी बात है, बापू! आहाहा! भाई! तुझे कहाँ जाना है ? कहाँ जाना है ? कहाँ रहना है ? सत् का सत्पना बाहर नहीं आवे तो कहाँ तुझे रहना है ? भगवान पूर्णानन्द का नाथ वह दृष्टि में तुझे न आया, वह ज्ञान में इसे न भाया, उसमें स्थिरता नहीं की, प्रभु! तूने क्या किया ? आहाहा! दुनिया तो बाहर के व्यवहार से लोग पसन्द करेंगे, अन्तर (प्राप्ति) नहीं होगी। आहाहा! 'लही भव्यता मोटुं मान' परमात्मा के मुख से ऐसा निकले कि यह प्राणी धर्म के योग्य है। अब तुझे किसका मान चाहिए है ? आनन्दघनजी कहते हैं, 'लही भव्यता मोटुं मान, कौन अभव्य त्रिभुवन अपमान ?' आत्मा नालायक है, ऐसा जिसके ज्ञान में आया, अब तुझे अपमान किसका चाहिए है ? आहाहा! अरे! मार्ग अलग, बापू! दुनिया का दिखाव करने के लिये, दुनिया में बाहर प्रसिद्धि के लिये मेहनत, वह सब खोखा-थोथा है। आहाहा!

'**धम्मम्मि णिप्पवासो**' '**णिप्पवासो**' जिसने भगवान आनन्द को वीतरागी श्रद्धा— दृष्टि में, रुचि में, विश्वास में जिसने लिया नहीं, उसका वास धर्म में तो नहीं।

दशलक्षणस्वरूप में जिसका वास नहीं है... वह चारित्रस्वरूप वीतराग... **वह जीव दोषों का आवास है...** आनन्द के अवास में नहीं, वह दोष का आवास है। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! दिगम्बर धर्म अर्थात् सनातन चैतन्य का स्वरूप। **अथवा जिसमें दोष रहते हैं...** जहाँ निर्मलानन्द प्रभु रुचि में, पोषाण में, श्रद्धा में आया नहीं, वहाँ तो धर्म का वास नहीं, वहाँ तो अधर्म का वास है। चाहे तो पंच महाव्रत पालता हो, वह सब अधर्म है। आहाहा! गजब बातें हैं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी अधर्म है। आहाहा! धर्म से बन्ध पड़े? और बन्ध का कारण भाव, वह धर्म होगा?

वह इक्षु के फूल के समान है,... इक्षु का फल होता है न। शेरडी नहीं शेरडी? गन्ना-गन्ना। उसका फूल कैसा? कुछ काम का नहीं। गन्ने का फूल होता है। **इक्षु के फूल के समान है,...** नहीं गन्ध, नहीं सुगन्ध, नहीं माल, नहीं कस, कुछ नहीं होता। आहाहा! **जिसके न तो कुछ फल ही लगते हैं,...** फूल फिर उसे फल नहीं होते गन्ने में। **और न उसमें गन्धादिक गुण ही पाये जाते हैं।** आहाहा! ऐसा गन्ना है रस अन्दर। उसी प्रकार भगवान आनन्द का रस है। उसके भान बिना ऊपर के फूल, यह सब बाह्य क्रियाकाण्ड आदि, वह तो गन्ध बिना की चीज़ है। कहो, कहाँ गन्ने का रस और कहाँ गन्ने का फूल! इसी प्रकार कहाँ चैतन्य आनन्द का रस और कहाँ उसके पुण्य-पाप के परिणाम के फूल... आहाहा!

गन्धादिक... गन्ध नहीं होती उसमें। यह और ऐसा दृष्टान्त दिया है। वरना तो कैसिया के फूल होते हैं न! कैसिया-कैसिया। पीले फूल होते हैं। कुछ सुगन्ध नहीं, कुछ नहीं। उसके बदले यह वह रसवाली चीज़ है, उसका फूल रखा, ऐसा। रस है न? गन्ने का रस। छिलका अलग चीज़ है, रस अलग चीज़ है, फूल अलग चीज़ है। उस फूल को फल नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ऐसा आनन्द का नाथ अन्तर आनन्दरस से भरा है, उसकी जिसे खबर नहीं, वह सब ईक्षु के फूल जैसे हैं, कहते हैं। आहाहा! जिसे चूसना चाहिए, वह चीज़ तो रह गयी, ऐसा कहते हैं। गन्ने में रस होता है न? अकेला रस। और पुण्य-पाप के भाव, वह तो छिलका है। और बाहर का... आदि हुई, उस फूल में माल क्या है, कहते हैं? उसमें कोई आत्मा की गन्ध भी नहीं और आत्मा का कोई गुण भी नहीं।

इसलिए ऐसा मुनि तो नग्नरूप करके नटश्रमण अर्थात् नाचनेवाले भाण्ड के स्वांग के समान है। आहाहा! बहुरूपिया भाण्ड जैसे नाचे, वैसा इसका नाच है, कहते हैं। हिलना और चलना सब। आहाहा! वह लड़का कहता था, ... सुनता था। ...लड़का। दाहोद का है दाहोद का। यह आत्मा का भान... नहीं? लड़का है वह दाहोद का है। मणिभाई! दाहोद का है न वह? वह कहता था, आज तो हिन्दी भाषा। यह तो आत्मा के धर्म के भान बिना कहे यह सब नग्नपना और... भाषा प्रयोग की है कुछ। आहाहा! सच्ची बात है, बापू! **नग्नरूप करके नटश्रमण अर्थात् नाचनेवाले भाण्ड के स्वांग के समान है।** आहाहा!

भावार्थ :- जिसके धर्म की वासना नहीं है... जिसे आत्मा के आनन्द की गन्ध नहीं। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! सहजानन्द प्रभु ऐसे स्वभाव की जिसे गन्ध नहीं, उसकी जिसे वासना आयी नहीं। आहाहा! **उसमें क्रोधादिक दोष ही रहते हैं।** उसमें तो विकार भाव ही रहे। स्वभाव की अरुचि के भाव खड़े हों। आहाहा! वहाँ स्वभाव रुचता नहीं, रुचा नहीं, गन्ध नहीं वहाँ स्वभाव से विरुद्ध भाव, रागादि भाव, उसे क्रोध कहते हैं। क्योंकि स्वभाव का प्रेम नहीं, उसे राग का प्रेम है और उसे स्वभाव के प्रति द्वेष है। आहाहा! जिसे शुभराग का प्रेम है, उसे भगवान अविकारी स्वभाव के प्रति उसे द्वेष है, उसे क्रोध है। आहाहा! ऐसी व्याख्या!

आनन्दघनजी कहते हैं न, 'द्वेष अरोचकभाव।' भगवान आनन्दस्वरूप जिसे रुचता नहीं, उसे आत्मा के प्रति तो द्वेष है। आहाहा! भले फिर साधु होकर घूमता हो नग्न होकर। गजब बातें हैं, बापू! धर्म की वासना नहीं, अर्थात् कि निर्दोष शान्ति की रुचि और अनुभव नहीं... आहाहा! वहाँ उसे राग का और पर का प्रेम है। उसे तो क्रोध ही है, आत्मा के प्रति उसे क्रोध है। आहाहा! आत्मा के प्रति उसे क्रोध है, अरुचि है। उसे सुहाया नहीं, रुचा नहीं और राग रुचा, वह आत्मा के प्रति अरुचि है। ऐसी बातें, मूलचन्दभाई! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें! लोग फिर सोनगढ़वालों को कहे न, यह सोनगढ़ का है बापू या आत्मा की बात है यह? आहाहा! भाई! तुझे लाभ स्थिर हो—कायम रहे, ऐसा लाभ न हो, वह धर्म कहाँ से आया? वह धर्म कैसा? समझ में आया? सत्य

भगवान आत्मा जिसकी दृष्टि में और अनुभव में आया नहीं, उसका सत्यपना किस प्रकार टिकेगा? उसे असत्पना रहेगा। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

यदि वह दिगम्बररूप धारण करे तो वह मुनि इक्षु के फूल के समान निर्गुण... है। गन्ने के फूल को फल नहीं, इसी प्रकार इसके दिगम्बर वेश में आत्मा का कुछ फल नहीं। **निष्फल है, ऐसे मुनि के मोक्षरूप फल नहीं लगते हैं। सम्यग्ज्ञानादिक गुण जिसमें नहीं है, वह नग्न होने पर भाण्ड जैसा स्वांग दिखता है।** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने भी... आहाहा!

मुमुक्षु : सत्य बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात तो यह है। यह कुछ उसके तिरस्कार के लिये नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है, बापू! आहाहा!

भाण्ड भी नाचे, तब शृंगारादिक करके नाचे... क्या कहते हैं? भाण्ड नाचे तो कुछ वस्त्र पहने, गहने पहनकर नाचे। यह नग्न होकर नाचे, तब **तब हास्य को पावे,...** भाण्ड जो हो बहुरूपिया वह तो अच्छे वस्त्र पहनकर नाचे। यह तो नग्न होकर नाचे। आहाहा! दृष्टान्त कैसा दिया है, देखा! भाण्ड हो वह तो शृंगार, वस्त्र पहनकर नाचे। **तो शोभा पावे, नग्न होकर नाचे, तब हास्य को पावे...** नग्नपना होकर अन्दर में शान्ति, धीरज वह तो प्रगटी नहीं। अन्दर की शान्ति और धीरज का पिण्ड प्रभु, 'धी' जिसकी बुद्धि को 'र' अर्थात् शान्ति में प्रेरी नहीं। ऐसे धीरजरहित प्राणी, बाहर में नग्नपने नाचे तो भांड की अपेक्षा भी हास्य को पाये हैं। आहाहा! ...वाला रहते थे यहाँ पहले। उनके बारोट आये थे। यह जगह है न सब? गधा-गधा नहीं यह? यहाँ रहते थे। बहुत वर्ष की बात। २०-२५ वर्ष की। वहाँ एक भांड आया था साथ में। उसके बारोट के साथ। उसकी स्त्री नाचती थी आड़ा रखकर। ... स्त्री के वस्त्र पहनकर नाचती थी। रीझावे... होवे ने बारोट? उसमें वह बारोट हो,... होता है। स्त्री नाचती थी वस्त्र पहनकर। २०-२५ वर्ष हुए। आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि भांड तो अच्छे वस्त्र पहनकर नाचे और तू नग्न होकर नाचता है तो हास्य ... है। तेरी सब चेष्टा कौतूहल में जाये। शान्ति और धीरज नहीं। ईर्या समिति

में पैर उठायेगा। आहाहा! वस्त्रवाले की तो बात की नहीं यहाँ। क्योंकि वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं है। आहाहा! वस्त्रवाला है, वह तो भावलिंगी समकिती नहीं, परन्तु द्रव्यलिंग भी नहीं। आहाहा! परन्तु जिसका द्रव्यलिंग नग्न है और जिसे भावलिंग प्रगट नहीं हुआ तो वह नटश्रमण है, कहते हैं। आहाहा! ऐसी निन्दा की होगी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ओर तो कहते हैं कि दोष नहीं कहना। नहीं आया था? आया था न? दूसरे का दोष कहने का स्वभाव। आया था ६९ गाथा में। दूसरे का दोष स्वभाव की बात नहीं यह। यह तो वस्तु के—चैतन्य के भान बिना भगवान आनन्द का नाथ जगा नहीं और उसके ऊपर नग्नपना ऐसा तेरा है, वह तो दोष का स्थान है। ... लड़का होशियार है, दाहोद का है। कल सवेरे सुना और फिर दोपहर में आया था। यह सब नागा-... यह भाषा ... है। ठिकाने बिना के। उसकी भाषा कुछ अलग थी।

मुमुक्षु : ठिकाने बिना के।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अर्थ तो ऐसा है। भाषा दूसरी थी, ऐसा। वह बोलता था। आहाहा! आत्मा है न भाई वह तो। अन्तर परमात्मा चैतन्य के अन्तरात्मा की जहाँ भेंट हुई नहीं... आहाहा! उसे यह बाह्य द्रव्यलिंग आदि में तो नट की भाँति नृत्य है खोटा। उसे ईर्यासमिति का चलना और... आहाहा! यह भावपाहुड़ है। भाव का प्रधानपना भेंट दिया है जिसने। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल दशा, उसकी जिसे भेंट प्रभु को दी है। भेंट चढ़ाकर मोक्ष लेना है। आहाहा! ऐसे भान बिना प्राणी अकेले नग्नपने से क्या है? देखो, यह कहेंगे।

★ ★ ★

गाथा - ७२

आगे इसी अर्थ के समर्थनरूप कहते हैं कि—द्रव्यलिंगी बोधि-समाधि जैसी जिनमार्ग में कही है, वैसी नहीं पाता है:—दो भाषा है दो। समाधि और बोधि दो है। आहाहा!

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले॥७२॥

आहाहा! **अर्थ :- जो मुनि राग अर्थात् अभ्यन्तर परद्रव्य से प्रीति,...** देखो! आया? '**रायसंगजुत्ता**' जिसे शुभराग के प्रति भी प्रेम है। आहाहा! **अभ्यन्तर परद्रव्य से प्रीति, वही हुआ संग अर्थात् परिग्रह उससे युक्त हैं।** आहाहा! वह शुभराग का प्रेम है, वह अन्तर परिग्रहसहित है। लो! यह व्याख्या। अभ्यन्तर परिग्रह मिथ्यात्व का। मरण का समय आवे न तब फिर घबराय। अब मैंने कुछ किया नहीं, जो करने का था वह... घबराहट का पार न हो फिर। आहाहा! पहले से जिसने किया नहीं, उसके मरण के समय क्या फल आयेगा? आहाहा!

कहते हैं, जिसे **अभ्यन्तर परद्रव्य से प्रीति,...** स्वद्रव्य चैतन्य का जिसे प्रेम नहीं, जिसे भगवान पूर्णानन्द के स्वरूप की प्रियता नहीं आयी। आहाहा! शुद्ध चैतन्य... आहाहा! जो '**रायसंगजुत्ता**' यह शब्द है। राग के प्रेमसहित है, ऐसा कहते हैं। चैतन्य वीतरागमूर्ति प्रभु, उस असंगतत्त्व का जिसे संग नहीं और राग का संग है। समझ में आया? दो पहलू हैं। एक पहलू वीतरागी स्वरूप का, दूसरा पहलू राग का। आहाहा! राग के संग में चढ़ा, उसे राग का प्रेम है, उसे प्रभु के प्रति अप्रेम है। आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं, हमारी भक्ति का जो राग है न, उसके प्रति यदि तुझे प्रेम है तो प्रभु के प्रति तुझे अन्दर में अप्रेम है। आहाहा! यह तो वीतराग की वाणी ऐसी होती है। '**रायसंगजुत्ता**' ओहोहो! जिसे शुभराग का विकल्प है, उसका भी जिसे परिचय है, उसके परिचय प्रेमसहित है... आहाहा! वह '**जिणभावणरहिय**', वह जिनभावना, **शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं...** क्या कहा यह? जिसे उस शुभराग का प्रेम है, उसे वह परिग्रह मिथ्यात्व का लगा है, उसे शुद्धस्वरूप की भावना नहीं। जिसका प्रेम है, उसकी उसे

भावना है। रागरहित भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप की भावनारहित है। अर्थात् ? कि जिसे विकल्प का, राग का प्रेम है तो उसकी उसे भावना है। जिसका जिसे प्रेम हो, उसे वह बढ़ाने की भावना होती है न ? संक्षिप्त थोड़े-थोड़े में बहुत कहा। अकेला माल। भगवान चैतन्यस्वरूप की दृष्टि, रुचि, प्रेम नहीं, उसे उसकी भावना अर्थात् उसमें एकाग्रता नहीं उसे।

वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं... वह द्रव्यनिर्ग्रन्थ है। बाह्य से वस्त्र-पात्र छोड़े हैं द्रव्य, परन्तु अन्तर में राग का प्रेम है तो भावलिंग नहीं। आहाहा! जिसे उस पंच महाव्रत के राग का भी प्रेम है, उसे वह जिनभावना वीतरागस्वभाव की भावना उसे नहीं। आहाहा! यह तो मार्ग भाई ... मार्ग है। आहाहा! बात ही ऐसी कठिन है। उसे ऐसा लगे कि यह तो सब निश्चय... निश्चय... निश्चय... निश्चय... आहाहा! निश्चय, वह सत्य है; व्यवहार तो सब उपचारिक बातें हैं और उस व्यवहार का फल तो संसार है। आहाहा!

बहुत ही ऊँची गाथा है, देखो। '**रायसंगजुत्ता**' जिसे शुभराग के प्रेमसहित है, उसे जिनभावना रहित है। उसे आत्मा की भावना अर्थात् सम्यग्दर्शन की भावनारहित है वह। आहाहा! जिसे राग के विकल्प का प्रेम है, उसे वीतरागी स्वभाव की रुचि का उसमें अभाव है। आहाहा! एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। जिसे राग का भी प्रेम और उसे आत्मा का प्रेम, दो नहीं रह सकते। आहाहा! कठिन काम! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली, कथन पद्धति अलौकिक वीतराग में आरूढ़ करने की है। दुनिया माने, न माने; जाने, न जाने।

जिनभावना—शुद्धस्वरूप की भावना। क्योंकि राग का प्रेम है, वह तो अशुद्ध का प्रेम है। उसे शुद्धस्वरूप की—वीतरागी आत्मा की भावना नहीं। राग की वृद्धि करो, शुभराग बढ़ाओ, शुभराग करो, जैसे बने वैसे भावना में पर की वृद्धि करो। वह तो राग की वृद्धि और राग की रुचि है। ऐसा कहते हैं, शुभभाव की वृद्धि करो, शुभभाव की वृद्धि करो। अर्थात् क्या ? आहाहा! प्रशस्त राग है न परन्तु वह ? प्रशस्त तो अशुभ की अपेक्षा से प्रशस्त कहा है। प्रशस्त की व्याख्या दे, तब तो वही दे न। पंचास्तिकाय में उसकी व्याख्या है न प्रशस्त राग की। देव-गुरु के प्रति प्रेम,... भाव, वह प्रशस्त राग है। उस राग का जिसे प्रेम है, उसे तो आत्मा की भावना नहीं। क्योंकि राग के प्रेमवाला

आत्मा की रुचि नहीं कर सकेगा। जिसे राग का पोषाण है, राग पोसाता है, उसे आत्मा नहीं पोसाता वीतरागभाव से। बहुत मार्ग बहुत सूक्ष्म, हों! पाटनीजी! आहाहा!

दो ही बात। '**जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा**' राग का संग। ओहोहो! भगवान चैतन्यस्वभाव के पक्ष में नहीं चढ़ा और राग का पक्ष छोड़ा नहीं, ऐसा कहते हैं। जिसने राग का पक्ष नहीं छोड़ा अर्थात् राग के संग में जो है। चाहे तो फिर शुभ हो। आहाहा! यहाँ तो बात दूसरी अशुभ की कहाँ है? वह शुद्धस्वरूप की भावना से रहित है। अहाहा! **वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तो भी निर्मल जिनशासन में जो समाधि...** ऐसे राग के प्रेमवाले समाधि को नहीं पा सके। **अर्थात् धर्म-शुक्लध्यान और बोधि... निर्मल जिनशासन में जो समाधि...** अर्थात् **धर्म-शुक्लध्यान और बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाते हैं।** आहाहा! बहुत बात! राग के पक्ष में पड़ गया, चढ़ा है, उसे आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं प्राप्त होता। और उसे धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान वह समाधि... समाधि... समाधि... समाधि को नहीं पाता। आहहा! ऐसा मार्ग ऐसा लगे लोगों को, हों! वे कहें उसे बाहर की बातें करना, ऐसी कितनी ही बात ... यह तो अध्यात्मी वह की वह बात अन्दर की (किया करते हैं)। आहाहा! वह कहता था एक फिरोजाबादवाला, नहीं? माणेकचन्द, गुजर गये। वह तो ऐसा कहता था कि अध्यात्मी जहाँ हो वहाँ बदल-बदलकर आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा। आहाहा! .... अर्थात् भिन्न-भिन्न बातें हमारे आवे प्रमेय की। प्रमेयकमलमार्तण्ड। ऐसा है न प्रमेयकमल अरे! बापू! परन्तु यह प्रमेय तेरा यह बड़ा प्रमेय पड़ा है, उसका ... दूसरे प्रमेय कहाँ थे? आहाहा! ऐसा कहते हैं। बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतराग.... परन्तु बात...

आत्मावलोकन में गाथा है यह तो दीपचन्दजी की। साधर्मी दीपचन्दजी हैं न, उनके आत्मावलोकन की गाथा है। मुनि तो मुहु मुहु वीतराग... वीतराग... वीतराग। राग से छूटने की, स्वभाव की स्थिर होने की वीतरागता की ही बात करते हैं। आहाहा! मुनि, व्यवहार से लाभ होता है और व्यवहार बताते हैं, वह अलग बात है। परन्तु व्यवहार बताते हैं, वह तो हेय के लिये बतलाते हैं। परन्तु यह तो व्यवहार करो। यह जैनदर्शन की पद्धति ही नहीं। मुनि का उपदेश यह ऐसा होता ही नहीं। मुनि तो उसे कहते हैं...

गाथा है उसमें—दीपचन्दजी में। आत्मावलोकन में गाथा है। मुहु... मुहु... बारम्बार मुहु अर्थात्। मुनि तो वीतरागभाव की ही पुष्टि करते हैं। वीतराग... वीतराग... वीतराग अर्थात् वह वीतराग, ऐसा नहीं। रागरहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की बातें करते हैं। कहो, मूलचन्दभाई! यह सब इकट्ठे होकर राग की बातें करे तो अच्छी लगे इसे। ऐसा करो, ऐसा करो, व्रत पालो, तपस्या करो, तपस्या करे, यात्रा करे। आहाहा! कहो, सुजानमलजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे भिन्न नहीं। आत्मा भिन्न है, भिन्न है—ऐसा विकल्प करना, वह राग है। आहाहा! अरे! आहाहा! पूरा पडखा—करवट बदल डालनी है। आता है न, मुनि रात्रि में एक करवट से सोते हैं। आता है न? पिछली रात्रि। छहढाला में आता है। मुनि पिछली रात्रि... क्या कहते हैं यह?

मुमुक्षु : भू मांहि पिछलि रयनि में कछु शयन एकासन करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकासन। एक करवट बस ऐसे। ऐसा हो तो ऐसे और ऐसा हो तो ऐसे। इसी प्रकार यहाँ धर्मात्मा का एक आसन है स्वभाव सन्मुख का। एक आसन से रहते हैं वे। आहाहा!

धर्म-शुक्लध्यान और बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग नहीं पाते हैं। लो!

भावार्थ :- द्रव्यलिंगी अभ्यन्तर का राग नहीं छोड़ता है, परमात्मा का ध्यान नहीं करता है,... यहाँ राग छोड़ता नहीं और उसका ध्यान होता नहीं। **तब कैसे मोक्षमार्ग पावे तथा कैसे समाधिमरण पावे।** कब वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान पावे और कब वह मोक्ष को पावे? समाधिमरण कब करे? उसे कुछ है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ६, मंगलवार, २९-०१-१९७४
गाथा - ७२ से ७६ प्रवचन-१०२

यह अष्टपाहुड़। भावपाहुड़। ७२ गाथा चली। भावार्थ बाकी है न। **द्रव्यलिंगी अभ्यन्तर का राग नहीं छोड़ता है,...** क्या कहते हैं? जैन दिगम्बर साधु हो, पंच महाव्रत धारण करे, नग्नदशा रहे, परन्तु वह अभ्यन्तर की राग की एकता छोड़ता नहीं। महाव्रतादि के परिणाम जो राग है, उसकी एकता छोड़ता नहीं। वह स्वभाव और राग, दोनों एक हैं, ऐसा मानता है। त्रिकाली शुद्ध आनन्दस्वभाव और राग दुःखरूप भाव, दोनों को एक मानता है। अर्थात् कि द्रव्यस्वभाव में आनन्द है, उस आनन्द की रुचि और दृष्टि करता नहीं। मात्र वह क्रियाकाण्ड का जो राग है, उसका उसे प्रेम है और उसमें उसकी एकताबुद्धि है। भले वह अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, नग्न रहता हो, परन्तु अभ्यन्तर में राग जो परलक्ष्यी विकार, उसे छोड़े नहीं, स्वलक्ष्य में आवे नहीं तो वह सब द्रव्यलिंगपना निरर्थक है। यह बात की संक्षेप में।

द्रव्यलिंगी अभ्यन्तर का राग नहीं छोड़ता है, इससे परमात्मा का ध्यान नहीं करता है,... आहाहा! वह राग की जो क्रिया है पंच महाव्रत की, अणुव्रत की, उस क्रिया का उसे ध्यान है। इससे राग की एकता न छोड़कर, राग से भिन्न भगवान आत्मा का वह ध्यान नहीं कर सकता। आहाहा! परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्य आनन्द, राग की एकताबुद्धि में राग से भिन्न भगवान आत्मा को वह अनुभव नहीं करता। व्यवहाररत्नत्रय का जो राग, उस राग में जिसकी रुचि पड़ी है, इसलिए राग से रहित भगवान आत्मा, राग से अत्यन्त अधिक—भिन्न, उसका उसे ध्यान ध्येय में आता नहीं। उसके ध्यान में वह ध्येय आता नहीं। समझ में आया?

तब कैसे मोक्षमार्ग पावे... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ध्रुव, उसका अन्तर में ध्यान अर्थात् उपादेय माना नहीं तो फिर उसे मोक्ष की दशा कैसे हो? मोक्षमार्ग ही पावे नहीं। आहाहा! चैतन्यघन भगवान का जिसे अन्तर में ध्यान का ध्येय नहीं, वह मुक्ति का मार्ग कैसे पावे? **कैसे समाधिमरण पावे।** जब मोक्षमार्ग ही न पावे, तो दर्शन-ज्ञान-

चारित्र की एकतारूप समाधिमरण कैसे हो ? समझ में आया ? बहुत संक्षिप्त। राग का विकल्प है—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भाव, उस राग में जहाँ बुद्धि पड़ी है, उसे राग की एकताबुद्धि है। राग से रहित शुद्ध चैतन्य परमात्मा के ध्यान में तो वह आता नहीं। उसे तो जिसने ध्येय बनाया नहीं, तो उसे मोक्षमार्ग कैसे हो ? मोक्षमार्ग तो द्रव्य के स्वभाव का अवलम्ब कर, उसका आश्रय करके, राग की एकता तोड़कर, स्वभाव की एकता करे, तब मोक्षमार्ग होता है। आहाहा! इससे जिसे मोक्षमार्ग प्राप्त न हो, उसे समाधिमरण तो कैसे होगा ? ऐसा कहते हैं।

देह छूटने के समय राग की तो एकता है। व्यवहार क्रियाकण्ड का जो राग है, उसमें जिसका प्रेम है, आहाहा! इसलिए उसे राग से रहित भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं होते, उसे मरते हुए शान्ति कैसे आवे ? शान्ति का नाथ सागर है, उसका तो प्रेम नहीं। उसका राग अशान्ति है, वह तो सब। आहाहा! बाहर की ओर का वह राग, पंच महाव्रत, खड़े-खड़े आहार इत्यादि ऐसी क्रिया है, उसका तो राग है। राग में जो रंजित हो गया है, उसे आत्मा का भान नहीं हो सकता, उसे आत्मा का रंग नहीं हो सकता। राग के रंग में पड़ा है, उसे आत्मा का रंग नहीं चढ़ता। आहाहा!

समाधिमरण तो, मोक्षमार्ग ही जहाँ नहीं, राग के बन्धन से छूटकर अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा है, वहाँ उसकी एकता में, दृष्टि में आया नहीं तो मोक्षमार्ग कहाँ से हो ? मोक्षमार्ग न हो तो समाधिमरण कैसे आवे ? आहाहा! मरण के समय अनेक प्रकार की शरीर की क्रिया, राग की क्रिया में एकताबुद्धि पड़ी है। शुभभाव हो, उसमें एकताबुद्धि है तो उसे आत्मा की शान्तिसहित निर्विकल्प आनन्दसहित देह छोड़ना, ऐसा मरण उसे हो नहीं सकता। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७३

७३। **आगे कहते हैं कि पहिले मिथ्यात्व आदिक दोष छोड़कर भाव से नग्न हो, पीछे द्रव्यमुनि बने, यह मार्ग है:—**

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए॥७३॥

अर्थ :- पहिले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर... मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि राग, उसके दोष छोड़कर स्वरूप का सम्यग्दर्शन और स्वरूप का आचरण प्रथम प्रगट करके। **मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर और भाव से अन्तरंग नग्न हो,...** अन्तरंग नग्न की व्याख्या यह नहीं कि भाव से पहले सातवाँ गुणस्थान आवे और फिर द्रव्यलिंग धारण करे, यह बात यहाँ नहीं। पाठ तो ऐसा है, **भाव से अन्तरंग नग्न...** परन्तु अन्तरंग नग्न यह। राग की एकता से भिन्न पड़कर स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप का आचरण, वह अन्तरंग नग्न है। राग के विकल्प के, फोतरूं क्या कहलाता है? छिलका, छिलका से जिसने चैतन्य को भिन्न किया है, वह अन्तर नग्न है। अन्तर नग्न का ऐसा अर्थ यहाँ नहीं कि सातवाँ गुणस्थान चारित्र का भावलिंग पहले आवे और फिर द्रव्यलिंग धारण करे। यह यहाँ कहने का आशय नहीं। ऐसा हो सकता ही नहीं। समझ में आया? द्रव्यलिंग में वस्त्रादि हो और सातवाँ गुणस्थान भावलिंग पहले आवे, ऐसा होता नहीं। आहाहा! यह तो मार्ग अलग है। उसे पहले भाव से नग्न होना। **पश्चात्...** ऐसा शब्द है न? **पीछे मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग...** आहाहा! इसका अर्थ यह। सम्यग्दर्शन भाव, जिनभाव, वह पहले उसे प्रगट करना। समझ में आया? कितने ही इसका अर्थ ऐसा भी करते हैं, कि देखो! पहले भावलिंग हो सातवाँ गुणस्थान, फिर उसे छठवें गुणस्थान में वस्त्रादि उतरे। ऐसा नहीं होता। समझ में आया? पाठ है न ऐसा? पहले भावलिंग हो, फिर द्रव्यलिंग हो। '**भावेण होइ णग्गो**' ऐसा है न? परन्तु यह '**मच्छत्ताई य दोस चइऊण**' ऐसा है यहाँ। मुनिपने के अस्थिरता के भाव छोड़कर स्थिर हो, ऐसा नहीं। मिथ्यात्वभाव, राग की एकता तोड़कर जिसने सम्यग्दर्शन, जिनभावना भगवान आत्मा का भावलिंग जिसने प्रगट किया है।

भाव से अन्तरंग नग्न हो,... आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के प्रेम में जो अतीन्द्रिय आनन्द की रुचि और उसमें आंशिक स्थिरता जो प्रगट की है, वह उसकी जिनभावनारूपी भावलिंग है। **एकरूप शुद्ध आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करे,...** ऐसा तो कहा कि शुद्ध ज्ञान, आचरण **पीछे मुनि द्रव्य...** परन्तु उस आचरण का अर्थ सम्यग्दर्शन के साथ जो स्वरूप का आचरण स्थिरता है, वह आचरण लेना। आहाहा! सातवें गुणस्थान के भावलिंग का आचरण पहला हो और फिर द्रव्यलिंग नग्न हो, ऐसी वस्तु नहीं है। समझ में आया? ऐसा कहीं आया था, नहीं? पहले सातवाँ आवे, फिर छठवें में द्रव्यलिंग। ...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... उसमें तो है। वर्णीजी में है। ... अध्यात्म पत्रावली है न उसमें। उसमें होना चाहिए। सातवाँ गुणस्थान पहले आवे, इसलिए वस्त्र-पात्र रहे हों बुद्धिपूर्वक, उसे सातवाँ गुणस्थान आता ही नहीं। वस्तु ऐसी है यह। इस गाथा की अटपटी बात है जरा। '**भावेण होइ णग्गो**' ऐसा। एकरूप तो वह भी है, परन्तु यहाँ तो ... कहा है न! भाव से नग्न हो। नग्न की व्याख्या? राग की एकता तोड़कर स्वरूप का अनुभव करे, उसे स्वरूप का आचरण उसकी भूमिका प्रमाण हो, वह भाव से नग्न कहलाता है। आहाहा! वह भावलिंग इतना। मुनिपने का भावलिंग आता है पहला, ऐसा नहीं। समझ में आया? सातवाँ गुणस्थान आवे और फिर छठवें गुणस्थान में वस्त्र-पात्र छोड़े और नग्न हो, यह क्रिया नहीं हो सकती। आहाहा! समझ में आया? आशय क्या है, वह जानना चाहिए न! पकड़े वहाँ (कि) सातवाँ गुणस्थान पहले आवे। परन्तु सातवाँ आवे ही नहीं। जिसे बुद्धिपूर्वक वस्त्र-पात्र है और नौ कोटि से त्याग नहीं, उसे सातवाँ आता ही नहीं।

कल कहा नहीं था मोक्षमार्गप्रकाशक का? कि नौ कोटि से पहले राग का त्याग, परिग्रह का त्याग चाहिए। काया से भी त्याग हो, फिर उसे भावलिंग आवे, सातवाँ गुणस्थान। मोक्षमार्गप्रकाशक में है इस ओर। बहुत सूक्ष्म बात। '**मिच्छत्ताई य दोस**' उसके योग्य है, वह दोष लेना। उसे '**चइऊणं पच्छा दव्वेण मुणी**' ऐसा शब्द है न? पहले और बाद में दो भाव शब्द हैं सही न? उसे '**पच्छा**' अर्थात् पहले वह समझना।

'**भावेण होइ णग्गो**' पहला तो मिथ्यात्व का दोष, अनन्तानुबन्धी का दोष, स्वरूपाचरण का अभाव, वह छोड़ दे और स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का आचरण, (वह प्रगट करे)। अरेरे! गजब बातें, भाई!

एकरूप शुद्धात्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करे,... वहाँ ऐसा डाले कि शुद्धात्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आचरण एकरूप। उस एकरूप का अर्थ इतना। अनन्तानुबन्धी आदि का अभाव है। अर्थात् स्वरूप में इतनी एकता का आचरण है। **पीछे मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग जिन-आज्ञा से...** फिर द्रव्यलिंग नग्न (धारण करे)। जिन आज्ञा तो यह है, नग्नपना धारण करना। पंच महाव्रतादि पहले विकल्प आवे, वह **द्रव्य से बाह्यलिंग जिन-आज्ञा से प्रकट करे,...** पाठ में है न '**जिणाणाए**'—जिन की यह आज्ञा है। जिसे भावलिंग सम्यग्दर्शनादि हुआ, वह फिर वस्त्रादि छोड़कर नग्न हो और फिर ध्यान करे, तब उसे सातवाँ गुणस्थान आता है। ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवें में हो, चौथे में हो। चौथे, पाँचवें गुणस्थान में हो और पंच महाव्रत अंगीकार करे। पंच महाव्रत अंगीकार करने के पश्चात् ... सातवाँ होने के बाद नहीं। सम्यग्दर्शन है, स्वरूपाचरण है, परन्तु स्वरूप की चारित्र की दशा नहीं। तो वह जब प्रथम द्रव्यलिंग धारण करे। पंच महाव्रत, नग्नपना, वह उसे आवे और फिर जब अन्दर ध्यान में जाये, तब उसे सातवाँ आवे। ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस अपेक्षा का द्रव्यलिंग। वह द्रव्यलिंग तब उसे कहा जाता है। पहले पंच महाव्रतादि हैं, वह व्यवहाराभास है। जब ध्यान में जाये, सप्तम गुणस्थान हो, तब उस बाहर की चीज़ को नग्नपने का व्यवहार आवे। ऐसा है। ऐसा मार्ग वीतराग का है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आ गया, परन्तु यहाँ उसमें यह डालते हैं न, वह चर्चा। ...द्रव्यलिंग आवे, फिर परम्परा से अन्दर ध्यान करे, उसे सातवाँ आवे। ऐसा इसका

अर्थ। वरना तो व्यवहार पंच महाव्रत धारण करना, नग्नपना, वह पहले आवे, ऐसा तो रहे नहीं। यह तो सातवाँ हो जाये और फिर यह हो। छठवें गुणस्थान में आया विकल्प में, तब वह क्रिया वस्त्र छोड़ने की होती है, ऐसा नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : ....द्रव्यलिंग धारण कर लिया ...

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथा गुणस्थान हो और द्रव्यलिंग धारण करे। वह फिर ध्यान में जाये तो सातवाँ आवे। न आवे तो अकेला द्रव्यलिंग रह जाये। ऐसा ही है। ऐसा शास्त्र में है। सम्यग्दृष्टि है, अनुभव है, स्वरूप की स्थिरता है, द्रव्यलिंग धारण पंच महाव्रतादि किये, परन्तु सातवाँ गुणस्थान अन्दर नहीं आया ध्यान का, तो वह द्रव्यलिंगी भी कहलाता है। क्रिया रही छठवें गुणस्थान की व्यवहार की, अन्दर उसे चौथा और पाँचवाँ। तो उसे भी द्रव्यलिंगी तत्त्वार्थ राजवार्तिक में कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसे गुणस्थान चौथा, पाँचवाँ है और क्रिया तो छठवें की है, इसलिए द्रव्यलिंग कहा। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में पाठ है न। यह बड़ी चर्चा हुई थी भाई के साथ—बंशीधरजी (के साथ)। ... गये थे रास्ते में। ऐसा कि अपना यह शास्त्र में पाठ है न। कहा, बराबर है, यह पाठ है वह। क्या है ? जिसे अन्दर में सम्यक् अनुभव दृष्टि स्वरूपाचरण हुआ है, उसे द्रव्यलिंग पहले नग्न हो। अनादि की बात है न यह तो ? अनादि का मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंग है, उसे भावलिंग आवे। अर्थात् कि नग्नपना है और अन्दर ध्यान में समकित पाकर भावलिंग आवे। परन्तु नग्नपना नहीं तो उसे भावलिंग अन्दर में सातवाँ (गुणस्थान) आवे, ऐसा नहीं होता। ऐसी वस्तु की स्थिति है।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंग हो तो उसे भावलिंग आवे ही, ऐसा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे ही, ऐसा किसने कहा ? आवे नहीं, ना किया न। सम्यग्दर्शन है, स्वरूपाचरण है, द्रव्यलिंग धारण करे। फिर ध्यान करे और सातवाँ आवे तो भावलिंग आवे। तो उसको द्रव्यलिंग व्यवहार से कहा जाता है। उसे ध्यान में सातवाँ न आवे, चौथे-पाँचवें रह जाये और क्रिया रह जाये छठवें की। आहाहा! ऐसी कठिन बातें भाई वीतराग मार्ग की। दोनों समतौल जैसा है, वैसा जानना चाहिए न! इसका अर्थ

ऐसा नहीं कि द्रव्यलिंग है, इसलिए उसे भावलिंग आता है। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : भावलिंग में भाव हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावलिंग में भाव तो सम्यग्दर्शन आदि वह पहला भावलिंग। फिर सातवें गुणस्थान का भाव तो द्रव्यलिंग ऐसा हो, फिर ध्यान में जाये, तब सातवाँ आवे। वह भावलिंग चारित्र का। कठिन बातें, भाई! यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है।

यह बात है न कि '**भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं**' बस, '**पच्छा दव्वेण मुणी।**' पश्चात् वह द्रव्यलिंग धारण करे। '**पयडदि लिंगं जिणाणाए**' ऐसा है न। जिन आज्ञा प्रमाण प्रगट द्रव्यलिंग धारण करे। पंच महाव्रत विकल्प, नग्नदशा उसे होती है। कहो, समझ में आया इसमें? बहुत अटपटी बात है यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले दीक्षा ली चौथे-पाँचवें में।

मुमुक्षु : चौथे-पाँचवें में न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, द्रव्यलिंग चौथे-पाँचवें में होता है। नग्नदशा। पंच महाव्रत चौथे-पाँचवें में है।

मुमुक्षु : किसी को चौथे में हो, किसी को पाँचवें।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को पाँचवें में हो और किसकी को मिथ्यात्व हो।

मुमुक्षु : कोई मिथ्यादृष्टि हो वह हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्नदशा धारण करे। फिर ध्यान में आवे और सातवाँ आ जाये। ऐसी बात है, भाई! न्याय का काँटा ऐसा सूक्ष्म है। द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये, परन्तु अन्दर स्वरूप की दृष्टि और आचरण नहीं किया तो वह द्रव्यलिंग उसका निमित्तरूप से भी नहीं कहलाया। परन्तु जब द्रव्यलिंग नग्न होता है अनादि का वह... ऐसा पाठ है तत्त्वार्थ राजवार्तिक में, मिथ्यादृष्टि। और वह द्रव्यलिंग बराबर पंच महाव्रत और नग्नपने की दशा में मिथ्यादृष्टि है। उसे जब स्वरूप की दृष्टि करके जब स्थिरता करता है, तब उसे एकदम सातवाँ आता है। सम्यग्दर्शनसहित एकदम सातवाँ आता है,

एकदम। परन्तु वह नग्नदशा हो उसे। इसलिए नग्नदशा हो, इसलिए आवे—ऐसा नहीं परन्तु नग्नदशा हो, उसे सातवाँ आवे अन्दर। वस्त्र-पात्रसहित हो, उसे ध्यान में सातवाँ आवे, ऐसा कभी नहीं होता। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! मार्ग तो ऐसा है न! समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रत्याख्यान द्रव्यलिंग में होत है या भावलिंग में?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्याख्यान तो बाहर पंच महाव्रतादि लेता है, सावद्ययोग के त्याग के।

मुमुक्षु : भावलिंग मुझे दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बाद में कहे न, भावलिंग दो अर्थात्? मुझे शुद्धपना दो। दे अर्थात् व्यवहार से तो ऐसा कहे न! शुद्धपना अन्दर प्रगट हो तो भावलिंग होता है।

मुमुक्षु : स्थिरता.... और भावलिंग है, ऐसा कैसे मालूम पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? मालूम पड़े नहीं, वह तो अभी ज्ञान न हो उसे खबर नहीं पड़े।

मुमुक्षु : दीक्षा ग्रहण करे, तब उसे भावलिंग है, ऐसा कैसे मालूम पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव समकिती हो इतना।

मुमुक्षु : भाव समकिती?

पूज्य गुरुदेवश्री : बस इतना। भावलिंग में समकिती हो। वह भावलिंग चारित्र का नहीं होता, परन्तु जब पंच महाव्रत को अंगीकार करे, तब माँगे गुरु के निकट ऐसा कि द्रव्यलिंग और भावलिंग मुझे दो। प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में है। दोनों मुझे दो, ऐसा कहे। फिर गुरु उसे पंच महाव्रत दे, तब ऐसा कहा जाये कि उन्होंने द्रव्य और भावलिंग दिया। परन्तु वह जब द्रव्यलिंग धारण करे और अन्दर में ध्यान करे और सातवाँ आवे तो भावलिंग और द्रव्यलिंग दो कहलाये। भारी सूक्ष्म बातें भाई! यह तो न्याय की ऐसी बात है। वीतराग का मार्ग ऐसा है। मध्यस्थ से समझे तो समझ में आये ऐसा है।

मुमुक्षु : पहले सब खोटे मुनि हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग ही होता है पहला। पहला द्रव्यलिंग वही आवे।

मुमुक्षु : उसमें वस्त्र निकल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वस्त्र निकल जाये तो द्रव्यलिंग रह जाये। भावलिंग न आवे। चारित्रलिंग, हों! सम्यग्दर्शन है। उसे सातवाँ न आवे। नौवें ग्रैवेयक जाये। सम्यग्दृष्टि हो अन्दर, पाँचवाँ गुणस्थान अन्दर हो और द्रव्यलिंग नग्नपने की दशा हो। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में पाठ है। बड़ी चर्चा है। अनादि का मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी भी सातवाँ पावे, अन्दर में ध्यान में जाये तो। ऐसी बातें हैं। यह तो बहुत अटपटा आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग धारण करे अन्दर, मुनि हो जाये। अनन्त बार हुआ न, नौवें ग्रैवेयक गया तब। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह क्या है?

मुमुक्षु : भगवान के समवसरण में द्रव्यलिंगी....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी होते हैं न। उसमें क्या है? उसमें आया नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मिथ्यादृष्टि सहित द्रव्यलिंग मुनिपना धारण किया बाहर की क्रिया का, परन्तु अन्तर सम्यग्दर्शन नहीं (तो) मूढ़ है। और किसी को सम्यग्दर्शन हो और द्रव्यलिंग धारण करे पहला, द्रव्यलिंग तो पहला आवे ही उसे। वह सीधे ऐसे कि भावलिंग आवे तो द्रव्यलिंग आवे, ऐसा नहीं। तथापि द्रव्यलिंग से भावलिंग आवे, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : पात्रता देखे बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्र तो उस प्रकार की श्रद्धा... है। बाहर में व्यवहार करता हो और बराबर श्रद्धान में स्वीकार करता हो। मिथ्यादृष्टि है न! आता है न! सम्यग्दृष्टि उपादानवाला गुरु हो और वह सामने मिथ्यादृष्टि हो तो हो। होती है न वह वस्तु। सूक्ष्मरूप से अन्दर मिथ्यात्व रह गया हो उसे और बाहर की सब क्रिया करे जैन दिगम्बर साधु जैसी, तथापि वह द्रव्यलिंगी 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक' वह। परन्तु पश्चात् तो किसी को सम्यग्दर्शन हुआ और उसे द्रव्यलिंग ऐसा रह गया तो भी

उसे सातवाँ गुणस्थान नहीं आता। इसलिए समकिती साधु की अपेक्षा से द्रव्यलिंगी कहलाता है। भाव (लिंग) तो सातवाँ आवे तब। उसमें सब अटपटी बातें हैं। वह तो आगे स्वयं स्पष्टीकरण करेंगे कि ऐसे उस भाव को कहा, इसलिए पहले पंच महाव्रत और नग्नपना न ग्रहण करना और फिर भाव आवे और पश्चात् आचरण करना, ऐसा नहीं है। व्यवहार का लोप हो जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : .... राग रहा है वहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है। राग है वहाँ। समझ में आया?

यहाँ तो आचरण से कुन्दकुन्दाचार्य के हृदय में इतना है कि प्रथम जिसे आत्मदर्शन और स्वरूपाचरण हुआ है, वह पश्चात् जैन का नग्नपना दिगम्बरपना जिन आज्ञा प्रमाण प्रगट करे। परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण ही नहीं, वह ऐसा ग्रहण करे, यह वीतराग की आज्ञा नहीं है। तथापि वह भी होता है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंग आचरण इतना करे (कि) नौवें ग्रैवेयक जाये, शुक्ललेश्या। उसके गुरु ने उसे दीक्षा दी हो। व्यवहार है न वह। परन्तु अन्दर में ध्यान में आत्मा का दर्शन नहीं किया, समकित नहीं हुआ। हो गया। नौवें ग्रैवेयक में जाये, वापस नीचे गिरे।

मुमुक्षु : नौवें ग्रैवेयक का कारण तो शुभभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभभाव है, वह तो पुण्य है शुक्ललेश्या। स्वर्ग में जाये। अभव्य भी जाता है न। द्रव्यलिंग धारण करके अभव्य नग्नपना धारण करके (नौवें ग्रैवेयक तक जाता है)। महाक्रियाकाण्ड का हजारो अपवास, मासखमण, संथारा दो-दो महीने के। मिथ्यादृष्टि है। स्वर्ग में नौवें ग्रैवेयक जाये अभव्य। आहाहा! यहाँ यह बात नहीं है। यहाँ बात को वजन देना है सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी के अभाव का। वह जहाँ नहीं और मुनिपना ले तो उसका सब चला जायेगा। बिना ठिकाने का द्रव्यलिंग धारण... ऐसा। पाठ यह है न, इसलिए लोग उलझन में आते हैं। '**भावेण होइ णग्गो**' भाव से ही मुनिपना—नग्न हो, ऐसा नहीं। '**मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं भावेण**' ऐसा लेना।

मुमुक्षु : नग्न होने के पश्चात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवें का ही आवे। हाँ, चौथे में हो और पाँचवें का आवे। सातवें का न आवे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार श्रद्धा...

मुमुक्षु : तीन कषाय का अभाव करके....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव पहले करे और पश्चात् द्रव्यलिंग धारण करे? किसने कहा यह? वह तो बात चलती है यह। नौ कोटि से त्याग होता है। मन, वचन और काया, करण, करावन, अनुमोदन से परिग्रह का पहले त्याग होता है। यह चौथे-पाँचवें में होता है। ऐसा मार्ग है, बापू! उसमें कोई फेरफार जरा भी हो, ऐसा नहीं है।

यहाँ कहा न? **एकरूप शुद्ध आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करे,...** इसका अर्थ मुनिपने के योग्य जो शुद्ध आत्मा का आचरण करे, ऐसा नहीं। परन्तु मुनिपना पहले स्वरूप की यह दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का आचरण चौथे-पाँचवें के प्रमाण में। यह करे **पीछे मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग...** धारण करे, ऐसा। समझ में आया इसमें? यह तो अटपटी बात हुई। यह बात ऐसी है। जरा भी न्याय फेरफार हो जाये तो पूरा अन्तर पड़ जाये। **बाह्यलिंग जिन-आज्ञा से प्रकट करे, यह मार्ग है।** देखा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, जँचे नहीं यह। देखो!

भावार्थ :- भाव शुद्ध हुए बिना पहिले ही दिगम्बररूप धारण कर ले... भाव शुद्ध का अर्थ यह—सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण। **भाव शुद्ध हुए बिना पहिले ही दिगम्बररूप धारण कर ले तो पीछे भाव बिगड़े, तब भ्रष्ट हो जाये और भ्रष्ट होकर भी मुनि कहलाता रहे तो मार्ग की हँसी करावे, इसलिए जिन आज्ञा यही है कि भाव शुद्ध करके बाह्य मुनिपना प्रगट करो।** सम्यग्दर्शन और अनुभव प्राप्त करके पश्चात् मुनिपने को अंगीकार करो, ऐसा कहते हैं। इसमें तो समझ में आये ऐसा है। इसमें कहीं कोई ऐसी बात नहीं।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन का भाव आवे, पश्चात् मुनिपना....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब ही मुनिपना ले सके। इसके बिना क्या मुनिपना ले? द्रव्यलिंग धारण अकेला करे, सम्यग्दर्शन का तो भान न हो। जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ क्या है? चारित्र क्या है? जिसमें स्थिर होना है, वह वस्तु क्या है? आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शुद्ध आनन्द का भान, वह जहाँ दृष्टि के विषय में आया नहीं, उसे तो स्थिर होना कहाँ से आवे? यह अभी गड़बड़ यह उठी है न बड़ी? सम्यग्दर्शन नहीं, नग्नपना धारण कर लो, पंच महाव्रत ले लो, जाओ। धीरे-धीरे चारित्र आयेगा। धूल भी नहीं आवे। सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ क्या आता था? प्रकाशित की है न यह २०० रुपये की पुस्तक। क्या कहलाता है उसका नाम? पुस्तक का नाम क्या है? भगवान महावीर। २०० रुपये की पुस्तक आयी है भेंट में। है अपने पास। उसमें लिखा है देवभूषण ने कि निश्चयचारित्र न पावे, तब तक व्यवहारचारित्र पालना। व्यवहारचारित्र से निश्चयचारित्र होगा। वह तो सम्यग्दर्शन बिना की बातें करते हैं। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! अभी पूरे प्रवाह के सामने पड़ना... क्या नया लाये कहते थे न तुम कि समाज ऐसा सिर पर... कल नहीं कहा था?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। यह परसों कहा था। मेल बिना। आहाहा!

मुमुक्षु : .... धारण कर ले, पश्चात् भाव बिगड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी के बिगड़ जायें। मिथ्यात्व तो है ही। अब उसे जब यह धारण किया तो व्यवस्थित द्रव्यलिंग भी व्यवस्थित नहीं रहे किसी के लिये। द्रव्यलिंग व्यवस्थित नहीं किसी को।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाव शुभभाव भी व्यवस्थित न रहे, ऐसा। वह व्यवस्थित न रह सके। किसी को रहे सही। मिथ्यादृष्टि है, नौवे ग्रैवेयक जाये। मिथ्यादृष्टि है और शुभभाव भी व्यवस्थित हो ही, नौवें ग्रैवेयक जाये उसे। परन्तु किसी को बिगड़ जाये, ऐसा कहना है। जो नौवें ग्रैवेयक में जाता है, ऐसा भाव... फिर किसी को बिगड़ जाये,

ऐसा यहाँ कहेंगे। अभी कहेंगे। ७४ में कहेंगे कि पापरूपी मलिनभाव हो जाये। वह किसी की बात है। जिसे स्वयं स्वच्छन्द हो गया, वस्तु की दृष्टि नहीं उसकी बात है। यह बाद में कहेंगे। वरना तो नौवे ग्रैवेयक में जाता है, उसका भाव तो शुभ बराबर है। आहाहा! भाव बहुत ऊँचा, शुक्ललेश्या। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे। सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए सम्यग्दर्शन नहीं और उसे शुभभाव बिगड़ जाये, ऐसा नहीं।

यहाँ तो उस शुद्धभाव का वजन देना है। उसके बिना लेंगे तो व्यवस्थित नहीं रहेगा। क्योंकि फिर अन्दर शान्ति तो है नहीं और राग की मन्दता के परिणाम में खड़ा हुआ है, उसमें व्यवस्थितता भाव की भी नहीं रह सकती, इतनी बात है। वरना शुभभाव तो रहता है मिथ्यात्व में। नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा शुभभाव रहा। वह बात यहाँ नहीं लेनी। यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं और अकेला द्रव्यलिंग धारण करेगा तो उस भाव का भी व्यवस्थितपना नहीं रहेगा, ऐसा। इतना जरा वजन देना है। यह अब गाथा में आयेगा। देखो! **पीछे भाव बिगड़े...** भाव बिगड़े अर्थात् वह शुभभाव। वह (शुद्धभाव) तो भाव है ही कहाँ?

मुमुक्षु : अशुभभाव तो है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है नहीं। उसका प्रश्न कहाँ है?

और भ्रष्ट होकर भी मुनि कहलाता रहे... भाव का ठिकाना न हो अन्दर शुभभाव का भी, और मुनि बाहर में कहलावे **तो मार्ग की हँसी करावे, इसलिए जिन आज्ञा, यही है कि भाव शुद्ध करके बाह्य मुनिपना प्रगट करो।** आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, स्वरूपाचरण प्रगट करके मुनिपना प्रगट करो। ऐसी आज्ञा तो यह है भगवान की।

★ ★ ★

गाथा - ७४

आगे कहते हैं कि शुद्धभाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, मलिनभाव संसार का कारण है:—उसे समकित न हो और शुभभाव हो, उसे बराबर रहे, उसकी बात यहाँ नहीं। परन्तु जिसे उस भाव का भान नहीं अन्दर और भाव बाहर (रहकर) अंगीकार किया मुनिपना, (और) किसी को भाव व्यवस्थित रहे नहीं तो मलिनभाव हो जाये तो पशु में जाये, यह बात सिद्ध करनी है। समझ में आया? देखो!

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो॥७४॥

देखो! सम्यग्दर्शन नहीं और शुक्ललेश्या शुभभाव होता है अच्छा। वह तो नौवें ग्रैवेयक में जाये, उसकी यहाँ बात नहीं लेना। परन्तु जिसके भाव का अन्दर ठिकाना नहीं शुद्ध का, उसे भाव का—शुभ का ठिकाना न रहे और पाप मलिन चित्त हो जाये, वह मरकर पशु में जायेगा, तिर्यंच होगा, ऐसा कहते हैं। वह जो समकित नहीं और शुभभाव तो नौवें ग्रैवेयक गया, वह तो अनन्त बार हुआ है। कैसा शुभभाव? कि ऐसा उत्कृष्ट भाव तो कोई मिथ्यादृष्टि के अतिरिक्त होता नहीं। मिथ्यादृष्टिवाले को। ... होता है, परन्तु मिथ्यादृष्टि का शुभ उपयोग उत्कृष्ट जो है, वह तो नौवें ग्रैवेयक गया, उस प्रकार का था। उसके शुभभाव को बिगाड़ नहीं था। परन्तु यहाँ यह बात नहीं लेना। यहाँ तो जिसे शुद्ध का ठिकाना नहीं और बाह्य लेकर बैठा और सहन न हो और फिर अनेक प्रकार के मलिन चित्त होंगे और फिर तिर्यंच में जायेगा, इतनी बात करनी है। समझ में आया? गजब भाई ऐसा मार्ग!

अर्थ :- भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है,... क्योंकि शुद्धभाव प्रगट किया है, उसे शुभभाव तो होते ही हैं, वीतराग न हो तब तक। इसलिए शुभभाव के कारण आगे भी स्वर्ग में जायेगा और फिर मोक्ष भी पायेगा। **और भावरहित श्रमण पापस्वरूप है,...** यह पापस्वरूप (अर्थात्) उसे विशेष कपट, मायावी हो जाये, ऐसे जीव की बात लेना। नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसे भाव की यहाँ बात नहीं लेना है। समझ में आया? कहो, सुजानमलजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो शुद्धभाव का ठिकाना और शुभभाव का ठिकाना न रहे, ऐसे जीव की बात लेनी है। शुद्धभाव नहीं और शुभभाव अच्छा हो, स्वर्ग में जाये, उसकी बात अभी लेनी नहीं यहाँ।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शनसहित का द्रव्यलिंग....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन नहीं, तथापि उसका शुभभाव अच्छा हो तो वह स्वर्ग में जाये, उसकी बात नहीं। परन्तु मिथ्यादृष्टि है, शुद्ध भावलिंग नहीं, उसके शुभभाव का ठिकाना न रहे, उसकी बात लेनी है। आहाहा! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' आहाहा!

भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, और भावरहित श्रमण पापस्वरूप है,... यह एक न्याय से जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, वह पापश्रमण ही है। परन्तु यहाँ दूसरे प्रकार का लेना है जरा पाप के साथ। **तिर्यंचगति का स्थान है...** देखा! ऐसा लेना है यहाँ। माया होगी, कपट होगा, कुटिलता होगी। ऐसी बात लेनी है। वस्तुस्थिति नहीं तो फिर ऐसा हो जाये, ऐसा। वह शुभभाव इतना अच्छा है, वह तो नौवे ग्रैवेयक जाये।

तिर्यंचगति का स्थान है तथा कर्ममल से मलिन चित्तवाला है। देखा! मलिन चित्त हो जाये, माया हो जाये, कपट हो, कुटिलता हो। क्योंकि मुनिपने का भाव तो है नहीं और बाहर में सहनशीलता ऐसी हो नहीं। आहाहा! तो उसे ऐसे भाव तिर्यंच में होने के, इतनी बात लेनी है। परन्तु ऐसा नहीं कि समकित नहीं, इसलिए उसका भाव मलिन ही पाप हो जाये और तिर्यंच में ही जाये, ऐसा नहीं। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया शुभभाव मिथ्यात्वसहित, शुक्ललेश्या। तिर्यंचगति में नहीं गया। परन्तु यहाँ तो उस भाव का वजन देना है। जिसे अन्तर में सहनशीलता और ज्ञाता-दृष्टा का भाव प्रगट नहीं हुआ, वह ऐसा मुनिपना अंगीकार करे और सहनशीलता उसकी व्यवहार की भी व्यवस्थित न रहे, वह तिर्यंच में जायेगा। आहाहा! भाई! ऐसा वीतराग का मार्ग है।

मुमुक्षु : बहुत प्रकार के....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत प्रकार के होते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं, समझ में नहीं आता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहला मुनिपना आवे, रहे। समकितसहित जीव हो, तथापि पहला द्रव्यलिंग धारण करे न या मुनिपना आने के पश्चात् द्रव्यलिंग धारण करे? इसकी कहाँ खबर है? बहुत बात हो गयी। यह बहुत मुनिपना आने के बाद द्रव्यलिंग धारण करे?

मुमुक्षु : योग्यता नहीं और मुनिपन....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या योग्यता नहीं समझे बिना? सम्यग्दर्शन की योगयता है, परन्तु चारित्र आयेगा, ऐसी भावना भी उसे विकल्प से होती है, वह पश्चात् मुनिपना धारण करे, भावलिंग न आवे। आहाहा!

मुमुक्षु : तीन प्रकार के....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत प्रकार के होते हैं। मिथ्यादृष्टि हो, समकिती हो, पाँचवेंवाला हो, बहुत होते हैं, बहुत प्रकार के होते हैं। यह तो शुभभाववाले को समकित बिना के भाव के भी ऐसे प्रकार होते हैं। किसी को समकित नहीं, तथापि शुभभाव बराबर रहे। और किसी को समकित नहीं और शुभभाव व्यवस्थित न रहे, उसकी यहाँ बात लेनी है। क्योंकि अन्दर सहनशीलता प्रगटी नहीं, तो बाहर में सहनशीलता न रहे व्यवहार की, ऐसे जीव की बात लेनी है। समझ में आया? चेतनजी! ऐसी बात है। .... वीतराग का मार्ग है, मुनि की जिस अपेक्षा से कहना है, वह अपेक्षा बतलानी चाहिए न!

कर्ममल से मलिन... पाठ है न! '**कम्ममलमलिणचित्तो**' इस मिथ्यात्व से तो मलिन चित्त है, परन्तु तदुपरान्त शुभभाव का ठिकाना नहीं, वह बात यहाँ लेनी है। इससे कहा न '**तिरियालयभायणो पावो**' वह पापी तो तिर्यंच के स्थान को पायेगा, ऐसा कहना है। समझ में आया? यह नौवें ग्रैवेयकवाला मिथ्यादृष्टि है, शुक्ललेश्या है, शुभभाव बराबर है और नौवें ग्रैवेयक चला जाता है। वह बात अलग है। परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, अन्तर में जागृत दशा सहनशीलता की जगी नहीं और बाहर ऐसे कष्ट

को उठाया है, पंच महाव्रत के भाव और ऐसे सब, उसमें उसके पाप परिणाम व्यवस्थित न रहे शुभ के भी, (तो) तिर्यंच में जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है न, देखो न, गाथा स्पष्ट पड़ी है।

भावार्थ :- भाव से शुद्ध है... शुद्ध शब्द से समकिती ज्ञानी। **वह तो स्वर्ग-मोक्ष का पात्र है और भाव से मलिन है, वह तिर्यंचगति में निवास करता है।** भाव से मलिन जो मिथ्यात्वसहित लो तो पंचम गति को प्राप्त हो, ऐसा नहीं। अशुभभाव की बात है। चारित्र के दोष के भाव की बात है। यहाँ अन्तर प्रगट हुआ नहीं और सहनशीलता नहीं और प्रतिकूलता के प्रसंग आवे तो उसका शुभभाव न रहे, उसे ऐसे भाव हों, (इसलिए) तिर्यंच में जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आचार्य का हृदय... शुद्धभाव प्रगट करने के लिये बात है। प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट कर। इसके बिना सब बातें तेरी थोथा है। भावपाहुड़ है सही न! यह जिनभावना का ही इसमें अधिक जोर है। बहुत जगह है जिनभावना... जिनभावना। जिनभावना शब्द से वीतरागीस्वरूप भगवान आत्मा का उसकी भावना अर्थात् श्रद्धा, जिनभावना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को वीतरागभाव होने की ही भावना होती है। सम्यग्दृष्टि को राग होने की भावना होती नहीं, तथापि राग आये बिना रहता नहीं। आहाहा! गजब धर्म भाई!

मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कहा था, राग अशुभ हो जाये, उसकी बात है। सम्यग्दर्शन तो है नहीं और शुभभाव का ठिकाना नहीं रहे। इसलिए उस शुद्ध के ऊपर जोर देने के लिये यह बात की है। शुभभाव व्यवस्थित रहे तो ... हो। उसे सहनशीलता ऐसी आ गयी हो छठवें गुणस्थान के योग्य, गुणस्थान हो नहीं, हो।... यहाँ तो कहते हैं कि जिसे अन्तर ज्ञाता-दृष्टा सहजपने का स्वभाव (कि) जिसमें सहन करना, ऐसा नहीं, जानने-देखने के स्वभाववाला आत्मा ऐसी जिसकी दृष्टि का विकास हुआ नहीं, उसे मुनिपने के ऐसे भाव में गड़बड़ करके माया होगी, कुटिलता होगी, मुनिपना मनवायेगा बाहर में, वे सब मरकर तिर्यंच होते हैं। छठवें गुणस्थानवाला द्रव्यलिंग धारण किया, परन्तु भाव न आया, तो वह समझता है कि मैं मुनि नहीं। परन्तु मुनिपने का व्यवहार चुस्त होता है। इसलिए दूसरे उसे मुनि माने व्यवहार से, माने। वह स्वयं जानता है कि यह व्यवहार है। निश्चय मार्ग नहीं। ऐसा अटपटा मार्ग!

मुमुक्षु : बाहर का व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में चुस्त हो। इसके बिना तो ... चुस्त व्यवहार का ठिकाना नहीं। '**तिरियालयभायणो**' देखो न! तिर्यंच के स्थान का भाजन हुआ, ऐसा कहते हैं। अब मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक में जाये, उसे यहाँ नहीं लेना। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ७५

आगे फिर भाव के फल का माहात्म्य कहते हैं:—

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विऊला।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ बोही सुभावेण॥७५॥

यहाँ '**सुभावेण**' का अर्थ मन्द कषाय किया है, देखो! '**सुभाव**' शब्द है न। समकितदृष्टि है, ज्ञानी है, उसे कषाय की मन्दता से चक्रवर्ती आदि के पद मिलते हैं, ऐसा कहा है।

अर्थ :- सुभाव अर्थात् भले भाव से, मन्दकषायरूप विशुद्धभाव से... निर्मलता तो है अन्दर अकषायभाव की, परन्तु उसके साथ शुभभाव भी ऐसा, मुनिपने का द्रव्यलिंग का शुभभाव होता है। उस **विशुद्धभाव से, चक्रवर्ती आदि राजाओं की विपुल अर्थात् बड़ी लक्ष्मी पाता है।** सम्यग्दृष्टि को शुभभाव से ऐसे पद मिलते हैं। **कैसी है—खचर (विद्याधर)...** खेचर है न .... **अमर (देव) और मनुज (मनुष्य) इनकी अंजुलिमाला...** हाथ जोड़े सब, खम्मा अन्नदाता। उसे शुद्धभाव तो है, परन्तु उसके साथ में शुभभाव है, उसे ऐसे पद मिलते हैं। विद्याधर आदि भी नमस्कार करते हैं।

अंजुलिमाला (हाथों की अंजुलि) की पंक्ति से संस्तुत (नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य) है और यह केवल लक्ष्मी ही नहीं पाता है,... देखो! **किन्तु बोधि (रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग) भी पाता है।** प्राप्त है न अन्दर से। उसे ऐसा राग मन्द है, उसे ... पदवी मिले और अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्राप्ति है, उसे मुक्ति मिले। दोनों भावना की है न। समझ में आया इसमें? इसमें गड़बड़ जरा भी आड़ी-टेढ़ी चले, ऐसी नहीं

भाई! आहाहा! सम्यग्दृष्टि न हो, इसलिए द्रव्यलिंग धारण करे ही, उसे शुभ-अशुभ ही होगा, ऐसा कुछ नहीं। परन्तु जिसे ठिकाना नहीं उसे शुभ हो, ऐसे जीव की बात लेनी है। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :- विशुद्ध भावों का यह माहात्म्य है। लो!

★ ★ ★

गाथा - ७६

आगे भावों के भेद करते हैं :—

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरउद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं॥७६॥

देखो, भाव के तीन प्रकार।

अर्थ :- जिनवरदेव ने भाव तीन प्रकार का कहा है—१. शुभ,... पुण्य। एक **२. अशुभ...** पाप **और ३. शुद्ध** धर्म **आर्त्त और रौद्र ये अशुभ ध्यान हैं...** यहाँ। आर्त और रौद्रध्यान, वह अशुभ। धर्मध्यान यहाँ शुभभाव में डाला है। इसलिए वे कहते हैं न, देखो! धर्मध्यान में शुभभाव, वह धर्मध्यान है। उसे तो वह आर्तध्यान-रौद्रध्यान से हटकर जरा शुभ में आया है, ऐसा व्यवहार धर्मध्यान है। निश्चय धर्मध्यान तो शुद्ध है। निश्चय धर्मध्यान तो शुद्ध है, परन्तु उसे आर्तध्यान, रौद्रध्यान से हटकर शुभ में आया है, इतनी अपेक्षा से उसे व्यवहार धर्मध्यान कहा है। सर्वविशुद्ध में आता है न, समयसार में आता है।

धर्मध्यान शुभ है। उसमें राग की मन्दता है, वह शुभभाव है और उसे वास्तविक जो शुभ लिया हो तो धर्मध्यान शुद्ध है, वह शुभ है। शुद्ध, वही स्वयं शुभ है। शुद्ध को शुभ कहा है, पुण्य-पाप (अधिकार) में। फूलचन्दजी ने इसका व्यवस्थित अर्थ नहीं किया, खानियाचर्चा में। उसमें कहा न, देखो! यह शुभ को मोक्षमार्ग कहा, तब कहते हैं कि शुभ को व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है, ऐसा नहीं। क्योंकि जो मोक्षमार्ग को कहा शुभ, वह तो जीव के परिणाममय है, ऐसा कहा है। भाई! जीव के परिणाममय कहा है।

शुद्ध को शुभ कहा है वहाँ। निश्चय शुद्ध है। पुण्य-पाप के अधिकार में शुभ मोक्षमार्ग है और अशुभ बन्धमार्ग है, ऐसा कहा है। वह शुद्ध, वह शुभ है, उसे वहाँ मोक्षमार्ग कहा है। यह पुण्य-पाप के भाव दोनों अशुद्ध हैं। क्यों ? कि वहाँ वापस ऐसा लिया है कि जो शुभ मोक्षमार्ग है, वह जीव के परिणाममय है। शुभभाव, वह जीव के परिणाम नहीं। शुद्ध है, वह जीव के परिणाम हैं। खानियाचर्चा में जरा फेरफार हो गया है अर्थ का।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध के अर्थ में है। लोगों को जो हो ऐसा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अलग। वह शुभभाव है। वह तो अबुद्धिपूर्वक शुभ, वह यहाँ नहीं। यहाँ तो शुद्ध को शुभ कहा है। शुद्ध, वह शुभ है और अशुद्ध, वह पुण्य-पाप सब अशुभ है। यह बात विशेष आयेगी...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १०, शनिवार, २४-१०-१९७०
गाथा - ७३ से ७७, प्रवचन-१२२

अष्टपाहुड़ में से।

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए॥७३॥

अर्थ :- पहिले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर... अनन्त काल से मिथ्यात्व महापाप है, वह इसने कभी जाना नहीं, माना नहीं, छोड़ा नहीं। अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य द्रव्य आनन्दस्वरूप है। उससे विरुद्ध शरीरादि मेरे, पुण्यादि के परिणाम मेरे और अल्पज्ञ अवस्था वर्तमान उतना, वह मैं—यह मिथ्यात्वभाव, पापभाव, प्रथम अधर्मभाव यह है। यह दोष छोड़कर, पहले जिसे जन्म-मरण के दु:ख से छूटना हो। चौरासी के अवतार में पामर मिथ्यात्व होकर चार गति में भटकता है। ऐसे प्राणी को कहते हैं, जिसे दु:ख से मुक्त होना हो, तो पहले मिथ्यात्वभाव को छोड़ना। पाठ में मिथ्यात्व आदि शब्द है। अर्थात् मिथ्यात्व सम्बन्धी अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग वह भी पहले छोड़ना।

और भाव से अन्तरंग नग्न हो,... अन्तर राग बिना, विकल्प जो पुण्य-पाप को लगनी ऐसा दु:खरूप आकुलता है। उससे भिन्न भगवान आत्मा अपना स्वरूप है। ऐसा नग्न हो। लगनी, विकल्प की लगनी जिसमें नहीं। **नग्न हो, एकरूप शुद्ध आत्मा का...** मैं तो एक शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव वस्तु हूँ, पदार्थ हूँ, मेरी सत्ता राग से और पर से अत्यन्त भिन्न है। मेरी मौजूदगी, मेरी अस्ति अकेला पवित्र शुद्धभाव, एकरूप स्वभाव, एकरूप शुद्धात्मा का स्वभाव, उसका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करे। पहले इसमें शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन द्वारा आचरण करे, सम्यग्ज्ञान द्वारा आचरण करे। **पीछे मुनि जिन आज्ञा से द्रव्य से बाह्यलिंग प्रकट करे,...** समझ में आया?

यह शब्द पड़ा है न **आचरण करे,...** उसमें से कोई ऐसा निकालता है कि पहले सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र अन्दर में प्रगट करो। फिर द्रव्यलिंग धारण करे। ऐसा

कहाँ है? चारित्र पहले आवे, वह दर्शनसहित आवे। स्वरूप आत्मा भगवान, शुद्ध आनन्द की प्रतीति, अनुभव, ज्ञान हो परन्तु स्वरूप का आचरण हो जाए चारित्र, तो फिर नग्नपना, विकल्प बारह प्रकार, बीस प्रकार का होता है अपने को, उसकी फिर कुछ आवश्यकता नहीं। परन्तु यहाँ समझाना है। इसलिए शैली ऐसी ली है। '**मिथ्यात्वादीन् च दोषान् त्यक्त्वा**' मिथ्या अभिप्राय, अव्रत, कषाय आदि के भाव अर्थात् कि मिथ्यात्व सम्बन्धी के साथ अव्रत कषायादि जो है, उसकी भूमिका की... समझ में आया इसमें? यह सब किसकी बात करे? किसकी है? कभी जाति को जानने को, देखने को निवृत्त हुआ नहीं। आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं न सोलहवें वर्ष में। सोलह वर्ष। सोलह वर्ष की उम्र में। सात वर्ष में जातिस्मरण हुआ था। श्रीमद् राजचन्द्र।

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या?
इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिए,
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिए।

सोलह वर्ष में कहते हैं, सोलह! शरीर के सोलह वर्ष, हों! आत्मा को वर्ष-बर्ष है नहीं। सुना है न चीनुभाई यह? सात वर्ष में उनको जातिस्मरण हुआ। पूर्व भव का ज्ञान। श्रीमद् राजचन्द्र को। सोलह वर्ष में मोक्षमाला पुस्तक बनायी। मोक्षमाला। १०८ पाठ बनाये। माला के १०८ मोती होते हैं न, मोती? णमो अरिहन्ताणं... णमो सिद्धाणं... ऐसे १०८ मोती होते हैं और क्या कहलाता है वह? पारा। ऐसे १०८ पाठ सोलहवें वर्ष में बनाये। उसमें एक पाठ यह डाला। लिखते-लिखते उसमें स्याही ढुल गयी कहा, यह क्या? इसलिए फिर यह बनाया।

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या? मैं कौन हूँ? आत्मा हूँ। कहाँ से हुआ? कहाँ से हो? अनादि है। वास्तविक स्वरूप क्या है? उसका वास्तविक-यथार्थ स्वरूप क्या है? शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के रागरहित उसकी वास्तविक चीज़ शुद्ध आनन्दकन्द है वह तो। ऐसे स्वभाव की अन्तर्दृष्टि करके अनुभव करना,

उसका नाम प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म है। समझ में आया? उसे यहाँ मिथ्यात्व का नाश होकर। मिथ्यात्व आदि शब्द है न? इसलिए अधिक कहते हैं। वीतराग आचरण चारित्र हो, ऐसा कहते हैं। यह कहना चाहते हैं परन्तु इसका अर्थ कुछ... वीतराग चारित्र हो और फिर द्रव्यलिंग आवे... ऐसा कितने ही कहते हैं। पण्डितों का एक मत है। पहले आवे सातवाँ गुणस्थान-चारित्र। पश्चात् विकल्प आवे तो वस्त्र छोड़े। ऐसा नहीं होता। समझ में आया? है न? कहाँ? उसमें है। लो, ऐसा कहाँ है, पण्डितजी को पूछा। पत्रावली में है न। 'वर्णीजी पत्रावली' में है।

मुमुक्षु : उसमें आता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्णीजी पत्रावली है न, उसमें यह गाथायें आयी है। पहले ऐसा कहा कि मुनिपना आवे अन्दर चारित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र वीतराग दशा (आवे), पश्चात् सातवें से नीचे उतरे, तब विकल्प आवे, तब वस्त्र छोड़े। द्रव्यलिंग धारण करे। पत्रावली में ऐसा आता है। ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ तो मिथ्यात्व आदि को सम्बन्धित जो कषायें हैं, उन्हें जिसने छोड़ा है। मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी कषाय, वह जिसने आत्मा के आनन्दस्वरूप का भान होकर (छोड़ा है)। अरे! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द का धाम स्वभाव सागर हूँ। राग का विकल्प वह मेरा नहीं, मुझमें नहीं, पलटती दशा वह मुझमें नहीं, अरे! पलटती अवस्था वर्तमान निर्मल वह भी मेरे त्रिकाल में नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म चीज़ कोई महँगी है। अरे! चौरासी के अवतार में एक जरा प्रतिकूलता आवे वहाँ चिल्लाहट मचाता है। ... हुआ। क्या कहलाता है वह? पिंडली चढ़े। कोलेरा। आहाहा! जवान-जवान लड़कों को कोलेरा चढ़े और पिंडली चढ़े।

मुमुक्षु : पैर के पिंडली चढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर के पिंडली। चिल्लाहट परन्तु... अरे रे! क्या कहते हैं कोलेरा? कोलेरा कहते हैं न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अपने हिन्दुस्तान में तो यह शब्द है। कोलेरा। कोलेरा। यह

हुआ नहीं? रास्ते में। 'मांडल' से आते थे साथ में। उनके लोग थे। कितने ही होंगे? सौ-दो सौ होंगे? रास्ता जंगल। अब माँ-बाप और कुटुम्ब सब साथ में। छह-छह कोस में पड़ाव डाले। वहाँ जंगल। खाने का साथ में रखे ... खाये। छह-छह कोस चले। उसमें दो लड़कों को कोलेरा हुआ जवान, रास्ते में। जंगल। दोनों जवान थे। कोलेरा हुआ। माँ-बाप कहे, भाई! हम क्या करें? हम यहाँ राज्य के नहीं। क्योंकि जंगल में कोई नहीं मिलता। यह कोई साथीदार साथ होवे तो छह-छह कोस में पड़ाव डाले और साथ में चावल या ऐसा हो तो खाये। थे या नहीं कोई? कौन था? तुम्हारे मूलचन्दभाई कोई साथ थे? साथ में थे?

मुमुक्षु : साथ में यात्रा...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि जंगल अकेला। ... बड़ी जोखिम है। सिर पर तकरार ... लड़ाई-लड़ाई। जापान की लड़ाई। बम पड़ते थे। वहाँ लोग भागे। दोनों युवक कोलेरा। माता-पिता कहे, भाई! हम यहाँ रहेंगे। यहाँ कोई साधन नहीं, खाने का-पीने का। एक-एक पानी का लोटा... चल निकले। वे रोवे। अरे! माँ! हम क्या करेंगे? एक के बाद एक मर गये होंगे। कोलेरा... जवान मनुष्य थे। बनिया के पुत्र। आहाहा! ऐसे मरण तो अनन्त बार हुए हैं। इसमें कहाँ विचार अपना इतिहास देखा है कहीं? समझ में आया? दुकान का धन्धा मांडा हो पचास वर्ष से तो उसका इतिहास खोजता है। पहले इतनी आमदनी थी, फिर इतनी थी, फिर इतनी थी। अब बढ़ गयी। धूल की बढ़ी नहीं अब। यह इतिहास खोजता है परन्तु यह अनन्त काल में कहाँ था? और कहाँ-कहाँ रहा हूँ? थोड़ी एक मनुष्यपने की सुविधा कुछ चमड़ी अच्छी, पैसा पाँच-दस लाख हुए और स्त्री-कुटुम्ब हुए, ऐसा हुआ। ओहोहो! अरे! मर गया। उस चीज़ में तू नहीं और तुझमें वह नहीं। आहाहा! अपनी चीज़ को...

यहाँ कहते हैं, एकरूप शुद्ध भगवान आत्मा मैं तो हूँ। राग का विकल्प दया, दान का उठे, वह भी मेरी चीज़ में नहीं। आगे कहेंगे। जरा आवे। समकिती को शुभभाव आवे अशुभ से छूटने को।

मुमुक्षु : आवे वह अलग विषय है और उसका मालिक हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : मालिक हो, स्वामी हो, उससे लाभ माने (तो मिथ्यादृष्टि है)। सम्यग्दृष्टि होने के पश्चात् अनुभव होकर फिर शुक्ल जो शुद्धभाव है, वह तो अत्यन्त आदरणीय है। और शुभभाव को अशुभ टालने के लिये समकिती को, हों! अज्ञानी को अशुभ टालने के लिये है ही नहीं। क्योंकि उसे तो मिथ्यात्व, वह महा अशुभ पड़ा है। समझ में आया? आहाहा! भाई! तेरे मरण के रुदन तेरी माँ ने किये, उसके नीर के समुद्र अनन्त भर जाए, भाई! ऐसे तेरे मरण हुए हैं। तू भूल गया है। जरा किंचित् अच्छी सुविधा हुई बाहर... हो गया।

कहते हैं कि अब तो यह मौका-अवसर आया है, भाई! मिथ्यात्व आदि का नाश कर पहले। समझ में आया? महापाप, महादोष, महा अधर्म वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! पर में सुख है, ऐसी बुद्धि। अपने आनन्द से किंचित् अधिकपना पर में भासित हो। ऐसे लाभ, उत्साह (भासित हो) उसका अर्थ कि वह मुझसे अधिक चीज़ है और मैं उससे हीन हूँ। आहाहा! समझ में आया? वह सूक्ष्म मिथ्यात्व है। ऐसे मिथ्यात्वभाव और उसका अज्ञान छोड़ और ज्ञान कर, श्रद्धा कर, आचरण कर। आचरण अर्थात् समकित। अपना जो आचरण उतना लेना। विशेष आचरण करने जाए तो चारित्र हो जाए पहले और फिर द्रव्यलिंग अट्ठाईस मूलगुण हो, ऐसा नहीं हो सकता। कथन तो अनेक प्रकार के आते हैं। उसका अर्थ समझना चाहिए न? लो! यहाँ तो यह कहते हैं।

शुद्ध आत्मा का श्रद्धान ज्ञान आचरण करे, पीछे मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग... धारण करे। समझ में आया? यह तो लिखने की शैली किस अपेक्षा से है, ऐसा जानना चाहिए न? पहला सम्यग्दर्शन, आत्मा का अनुभव, आनन्दमूर्ति आत्मा है। सच्चिदानन्द -स्वरूप मैं हूँ। मुझमें अतीन्द्रिय आनन्द की खान है। अकेला शान्ति का सागर हूँ। आहाहा! मेरी शान्ति कहीं बाहर से आवे, ऐसी नहीं है। पैसे से नहीं, स्त्री से नहीं, पुत्र से नहीं, इज्जत में नहीं, मकान में नहीं, बँगले में कहीं नहीं। भगवानजीभाई! यह तो देखा है न वहाँ दो लाख कम करके भी बेचना पड़ा। आहाहा! किसका मकान? किसका बेचाण? भाई! तेरी जाति को देख तो सही। आहाहा! अन्दर वस्तु आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु है। उज्ज्वल-निर्मल कहा न? एकरूप शुद्ध आत्मा। विकल्प की अनेकता

नहीं, शरीर की भिन्नता। उसका संयोग तेरी चीज़ में नहीं, भाई! तू तो आत्मा है।

उसे छोड़कर **पीछे मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग...** अर्थात् इसका अर्थ कि सम्यग्दर्शन और आत्मा का अनुभव करने के पश्चात् मुनिपना अंगीकार कर। ऐसा। समझ में आया? **मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग...** अट्ठाईस मूलगुण उसे प्रगट हो, तब उसे अट्ठाईस मूलगुण द्रव्यलिंगरूप से कहे जाते हैं। नग्नपना तो बाहर पर का। वह अट्ठाईस मूलगुण यह विकल्प आस्रव है। यह कहीं आत्मा के नहीं हैं। परन्तु भावस्वरूप का अनुभव होने के पश्चात् ऐसा एक अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प का द्रव्यलिंगपना आता है, उसे यहाँ द्रव्यलिंग प्रगट कर, ऐसा कहने में आया है। भारी बात, भाई! आहाहा!

पीछे मुनि जिन आज्ञा से द्रव्य से बाह्यलिंग प्रकट करे,... देखा! जिन आज्ञा प्रमाण अट्ठाईस मूलगुण उसे होते हैं। वीतराग परमात्मा की आज्ञा आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन-अनुभव होने के पश्चात् बाह्य लिंग में उसे अट्ठाईस मूलगुण होते हैं, पश्चात् स्वरूप में स्थिर हो, तब उसे आनन्द की चारित्रदशा प्रगट होती है। समझ में आया? **प्रकट करे, यह मार्ग है।** यह भगवान का मार्ग है। आहाहा! बालपन खेल में खोया, जवानी हुई स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देखकर रोया। तीनों में कुछ किया नहीं, मैं कौन हूँ? समझ में आया? यह पढ़ने में गया। ऐई! अतुलभाई! खेल में (या) तो पढ़ने में। दस-दस वर्ष, पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष तो पढ़ने में जाते हैं। आहाहा! पाप का पढ़ना। पाप का होगा या नहीं? आहाहा! अरे! तू तुझे नहीं पढ़ा। तुझे तेरी कीमत नहीं हुई। तूने कीमत दी पर को। एक बीड़ी ठीक से मिले, तम्बाकू हो तो आहा! नारायण मिल गये मानो! परन्तु क्या है?

एक अभी आया था। वह तम्बाकू होता है न तम्बाकू चूनावाला। ऐसे-ऐसे करता था। चूना गिरता है न? तम्बाकू, ऐसे थापण मारे। इसलिए क्या वह बारीक-बारीक उड़ जाए और फिर मुँह में यहाँ डाले। तम्बाकू, जिसमें कंथवा मर गये पड़े हों। कंथवा समझते हो? छोटे कीड़े। हमने नजरों से देखा है, हों! बहुत वर्ष की बात है। क्या कहलाता है? 'करमसद'। करमसद है न गुजरात में? वह वल्लभ पटेल का गाँव। एक बार मैं वहाँ गया था दुकान से माल लेने। बीड़ी। वरियाली की बीड़ी वहाँ होती है।

तम्बाकू होता है न? वरियाली। वरियाली के रस में से वे लोग बीड़ी बनाते हैं। लेने गये थे। यह तो ६६-६७ की बात होगी। संवत् १९६६-६७। रात्रि में रहे थे। पाटीदार का गाँव था। सवेरे हम जंगल निकले थे। साथ में होवे न बताने को। वहाँ बीच में खेत था तम्बाकू का। तम्बाकू का खेत। ऐसे बताते थे कि इस जगह है। अरे! कहा, इसमें तो कितने जीव हैं। वे मर जाए। तम्बाकू के पान होते हैं। तम्बाकू के पत्ते। उसमें कंथवा बैठे। उनकी (पत्तों की) तिखाश के कारण वहाँ मर जाए।

मुमुक्षु : ... पत्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : मर जाए। उसका चूरा करके यह छींकणी (बनाते हैं)। आहाहा! अब महिलाएँ भी सूँघना सीखी हैं। नहीं तो महिलाएँ नहीं सूँघती थीं। अब तो बीड़ी पीती हैं। आहाहा! अरे! भगवान! यह ...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ऐसे बाहर नजर पड़ने पर खबर तो पड़े न। आहाहा! अरे! भगवान! इसे नशा चढ़े उससे। तम्बाकू खाये, छींकणी सूँघे। पागल है। आहाहा! व्यसन अर्थात् कष्ट। वह तो सब कष्ट है। आहाहा!

भगवान आत्मा उस व्यसन रहित (वह तो) चैतन्य व्यसनी है। आहाहा! अरे! कभी करने का इसने किया नहीं। और नहीं करने का करके चौरासी के अवतार में भटका। बाहर की मिठास ऐसी अच्छी लगे। मकान, पाँच-पचास लाख की पूँजी, बँगला बड़ा हो, स्त्री-पुत्री रूपवान हो, एम.ए., एल.एल.बी. की डिग्री लगायी हो। ओहोहो! क्या है परन्तु? यह सब सोजा है। समायेगा तो दुःखी होगा। आहाहा! देखो न अपने रमाबहिन, नहीं? सोजा हुआ था। ब्रह्मचारी। सोजा समाया, उड़कर चला गया। बालब्रह्मचारी। रमा। 'तपसी' के भाई की... पहले उसने रास्ता ले लिया। यह तुम्हारी... सोजा चढ़ गया था। ... असाध्य हो गयी, तब खबर पड़ी। मैंने कहा, यह और क्या है? असाध्य। १९ से ३० वर्ष की उम्र। बालब्रह्मचारी। करशनभाई की पुत्री। चले गये। सोजा है यह सब बाहर के। साथ में इकट्ठे दुःखी-दुःखी... हाय... हाय... अरे रे! कोई हमारा नहीं? कौन तेरा था? सुन न। यहाँ तो शुद्ध भगवान आत्मा एक

इसका है। आहाहा! उसके सामने देख और उसका आदर कर। राग और पर और पर्याय का आदर छोड़ दे। उसके सामने देखना छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जिन आज्ञा से प्रकट करे, यह मार्ग है। वीतराग की आज्ञा प्रमाण पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करके, मिथ्यात्व का नाश करके पश्चात् द्रव्यलिंग और अट्ठाईस मूलगुण आदि आवे। समझ में आया?

भावार्थ - भाव शुद्ध हुए बिना... भाव शुद्ध हुए बिना। भाव शुद्ध हुए बिना, ऐसा कहा है। पुण्य-पाप के भाव हुए बिना, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य का गंज आनन्द का धाम है न। उसकी श्रद्धा-ज्ञान के **भाव शुद्ध हुए बिना पहिले ही दिगम्बररूप धारण कर ले...** पहले से नग्न-दिगम्बर हो जाए। कहो, शान्तिभाई! शान्तिभाई थोड़े भाग्यशाली, वे रह गये। ये साधु होनेवाले थे न। शान्तिभाई। लींबड़ी के गृहस्थ व्यक्ति। स्त्री है, पुत्र है, माता-पिता हैं। दिगम्बर साधु हो जानेवाले थे। ... रह गये यह सुनकर।

मुमुक्षु : कहते थे...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वेग आ गया, वैराग्य आ गया। स्त्री याद नहीं। कितने वर्ष पहले की बात है? चार-पाँच वर्ष? सात वर्ष? सात वर्ष हुए। स्त्री को कहा, आज्ञा क्यों दी तुमने इसे? क्या करेंगे? सामने देखे नहीं, बैठे नहीं। आज्ञा दे दी। लड़का है, माता-पिता है, सब है। गृहस्थ है। समझ में आया? हैरान बात। ... ... सम्यग्दर्शन की तो खबर नहीं। इसलिए इसका सार पर में चला जाता है। ... मायाचार हो, रागादि विशेष हो जाए, स्वरूप के शुद्ध चैतन्य भगवान की भावना तो है नहीं।

भ्रष्ट होकर भी मुनि कहलाता रहे... भ्रष्ट हो और फिर भी अपनी पदवी तो मनवाया करे। यह तो महामिथ्यात्व का सेवन है। आहाहा! समझ में आया? **भ्रष्ट होकर भी मुनि कहलाता रहे...** जो पद हो, उसकी दशा पास में हो नहीं। फिर **मुनि कहलाता रहे तो मार्ग की हँसी करावे,...** मार्ग का हास्य हो, मस्करी हो कि आहाहा! कहाँ मुनि उसे वैराग्य चाहिए, वह नहीं होता। और सम्यग्दर्शन बिना पुण्य-पाप से हटकर वैराग्य ही नहीं हो सकता।

वैराग्य तो भगवान उसे कहते हैं कि शुभ-अशुभ जो राग उठे न पुण्य-पाप के विकल्प—राग, उससे हटकर स्वभाव में आना, उसका नाम वैराग्य है। समझ में आया? यह स्त्री, पुत्र छोड़ दे। छूटे ही पड़े हैं, कहाँ घुस गये थे अन्दर में? वे तो बेचारे बाहर भटकते हैं। समझ में आया? इसमें तो पुण्य और पाप के भाव जो हैं शुभ-अशुभराग, भाव, उससे विरक्त होना, इसका नाम वैराग्य है। आहाहा!

सर्व भाव से उदासीन्य वृत्ति करी। आता है न श्रीमद् में?

उदासीन वृत्ति हो सर्व परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब,
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं।

श्रीमद् को लाखों का मोती का व्यापार था। मुम्बई में। परन्तु अन्तर में आत्मभान था। सम्यग्दर्शन हुआ था। समझ में आया? पश्चात् भावना भाते हैं कि अहो! हम मुनि कब होंगे? इस संसार का राग छूटकर हम मुनि कब होंगे? **उदासीन वृत्ति हो सर्व परभाव से,...** भाव शब्द से पुण्य-पाप के विकल्पादि सभी।

उदासीन वृत्ति हो सर्व परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब,
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं।
तन में किंचित् भी मूर्च्छा नहीं होय जब।

यह परपदार्थ की मूर्च्छा कैसी? मेरा भगवान तो पर से भिन्न है न। समझ में आया? उसके साधन की कसौटी में कब चढ़ूँगा और कब चारित्र लूँगा? ऐसी भावना गृहस्थाश्रम में समकिती भाता है।

कहते हैं, **भाव शुद्ध करके... इसलिए जिन आज्ञा यही है कि भाव शुद्ध करके बाह्यमुनिपना प्रगट करो।** सम्यग्दर्शन अनुभव करके पश्चात् मुनिपने की क्रिया प्रगट होती है, अट्ठाईस मूलगुण आदि बाह्य दिखते हैं, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ७४

आगे कहते हैं कि शुद्ध भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, मलिनभाव संसार का कारण है—आहाहा!

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो॥७४॥

अर्थ - भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है और भावरहित श्रमण... शुद्धभाव भगवान आत्मा, उसकी पवित्रता की परिणाम की दशा बिना पवित्र प्रभु आत्मा, उसकी पवित्रता के परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना **पापस्वरूप है,...** वह साधु हो परन्तु पापस्वरूप है, कहते हैं। बाह्य ... आहाहा! **तिर्यंचगति का स्थान है...** माया हो, कपट हो, अपना पद ऊँचा बताने के लिये व्यर्थ प्रयत्न करे। शास्त्र में से भी ऐसा किसी प्रकार से उपाय निकालता हो कि हम कुछ हैं। शास्त्र में से ऐसी शोध-खोज करे। समझ में आया? भगवान कहते हैं कि '**तिरियालय**' तिर्यंच का स्थान / भाजन होता है। तिर्यंचगति में जाता है। आहाहा! समझ में आया?

गृहस्थाश्रम में समकिती हो तो भी मरकर देह छूटकर स्वर्ग में जाए। समझ में आया? संसार में सम्यग्दृष्टि हो, आत्मा का भान हो, आसक्ति का थोड़ा राग बाकी हो, स्त्री-कुटुम्ब का निमित्तपना भी हो, परन्तु अन्तर में पर से अत्यन्त स्वामीपना छूट गया है। वह राग और पर का मैं मालिक नहीं। समझ में आया? मैं तो मेरे आनन्द और ज्ञानस्वरूप का मालिक-स्वामी हूँ। आहाहा! ऐसी मिठास के समक्ष गृहस्थाश्रम में रहा हुआ भी समकिती देह छूटे तो स्वर्ग में जाए। समझ में आया? ऐसा यह कहते हैं कि तिर्यंच में जाए। तिर्यक् गति। पाठ तो ऐसा है कि '**तिरियालय**' शब्द है। तिर्यंच का आलय। आलय अर्थात् स्थान। उसका भाजन मकान। तिर्यंच के मकान में जाए। आहाहा! माया, कपट, कुटिलता, अधिकता बतलाना, पद नहीं और पद का अभिमान सेवन करना, वे सब तिर्यंचगति के स्थानक हैं। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने भी कितनी करुणा से...

कैसा है श्रमण? **कर्ममल से मलिन चित्तवाला है।** चित्त में तो मलिनता, अशुद्धता

पड़ी है। पवित्रता तो प्रगट हुई नहीं। शुद्धता का भान नहीं। सम्यग्दर्शन नहीं। चित्त में मलिनता है। समझ में आया?

भावार्थ - भाव से शुद्ध है, वह तो स्वर्ग-मोक्ष का पात्र है... अर्थात् कि शुद्धता में अभी पूर्ण शुद्धता नहीं हो, तब तक धर्मी को भी ऐसा शुभराग रह जाता है। इसलिए उसके कारण स्वर्ग में जाता है। आहाहा! समझ में आया? **मोक्ष का पात्र है...** अपना भगवान आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्यदल, उसकी स्थिरता और रमणता जो है, वह मोक्ष का कारण है। **भाव से मलिन है, वह तिर्यंचगति में निवास करता है।** लो! **भाव से मलिन है, वह...** वह पशु गति में जाता है। माया से। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ७५

आगे फिर भाव के फल का माहात्म्य कहते हैं—

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ बोही सुभावेण॥७५॥

अर्थ - सुभाव अर्थात् भले भाव से मंदकषायरूप विशुद्धभाव से... समकिती जीव को राग की मन्दता भाव होता है, इसलिए उसे चक्रवर्ती आदि पद मिलते हैं, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी की बात है नहीं। अज्ञानी को मन्द भाव हो सकता ही नहीं। क्योंकि मिथ्यात्वभाव की तीव्रता है न वहाँ तो। और उसे चक्रवर्ती तीर्थंकरपद के भाव नहीं हो सकते। सम्यग्दृष्टि है, चारित्र नहीं ले सकता। आत्मा के स्वरूप का रस, आनन्दरस आया है। परन्तु आनन्द में लीनता की चारित्रदशा प्रगट नहीं हुई। आहाहा! तो उसे मन्द कषाय के परिणाम शुभभाव, हों शुभ! विशुद्ध अर्थात् शुभ। उससे चक्रवर्ती हो। छह खण्ड का स्वामी चक्रवती हो। शुभभाव के कारण, हों! धर्म की शुद्धता से तो मुक्ति होती है।

चक्रवर्ती आदि राजाओं की विपुल अर्थात् बड़ी लक्ष्मी पाता है। चक्रवर्ती आदि राजाओं की विपुल अर्थात् बड़ी लक्ष्मी पाता है। धर्मी को आत्मलक्ष्मी का बहुमान है,

इससे उसे राग बाकी रह जाए, इसमें बाहर की लक्ष्मी भी उसे प्राप्त होती है। अज्ञानी को न हो ऐसी लक्ष्मी ज्ञानी को प्राप्त होती है। पूर्व में ज्ञान के भान में की हुई बात है, हों! वर्तमान ज्ञानी तो सातवें नरक में भी हो, लक्ष्मी न हो, परन्तु उसके फलरूप से लक्ष्मी पाता है। **खचर (विद्याधर),...** ख-ख। ख अर्थात् आकाश। आकाश में चरनेवाले विद्याधर मनुष्य होता है। वैचाक पर्वत पर।

अमर (देव) और मनुज (मनुष्य)... अमर है न? देव को अमर कहा जाता है न? जिथरी को अमरगढ़ नाम दिया न अभी। मरने के... क्षय रोग... अमरगढ़ करो। आहाहा! हमारे पत्र आया है। कहा न एक भाई वहाँ बैंक का आदमी है कोई। बेचारा छोटी उम्र का। आता था, रविवार को यहाँ बहुत आता था। चालीस वर्ष की उम्र होगी। मुझे ३०-३५-३२ जैसी लगती थी। दोनों आँख छह महीने में गयी। कहाँ गये भाई? तुमने ही कहा नहीं? कल याद किया था तुमको। कल पत्र आया है उसका। महाराज! मुझे दर्शन करना है। आँख तो आनी होगी तो आयेगी परन्तु अब... आता था बेचारा रविवार को, हों! प्रतिदिन। बैंक में है। टीबी की दवा की होगी न कुछ तो दवा की गर्मी बहुत हुई तो गरम लगती है। टीबी में था। दोनों आँखें गयी। आहाहा! वह जड़ की अवस्था क्षण में पलटे। समझ में आया? यह इन्द्रियाँ एक-एक इन्द्रिय क्षण में पलट जाए। अतीन्द्रिय भगवान तो ध्रुव का ध्रुव ऐसा का ऐसा है। समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के भान में तो अतीन्द्रिय परिणति होती है। बाकी रह जाए राग जरा मन्द कषाय, तो कहते हैं, यह सब उसके हाथ जोड़े, ऐसा कहते हैं।

समकिती शुभभाव से चक्रवती आदि होता तो **(मनुष्य) इसकी अंजुलिमाला (हाथों की अंजुलि) की पंक्ति से संस्तुत (नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य) है...** ऐसे हाथ जोड़े। लाखों-करोड़ों मनुष्यों में। सम्यग्दृष्टि—आत्मा के भानवाला। कुछ पुण्य बाकी रह गया, उसमें चक्रवर्ती आदि हो तो करोड़ों-करोड़ों, अरबों मनुष्य ऐसे (हाथ जोड़े)। समझ में आया? आहाहा! है न, पाठ में है न? **'चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते बोधिः' 'मरमणुयकरंजलिमालाहिं'** ऐसा कहते हैं। हाथ की माला। करोड़ों मनुष्य (बोले), खम्मा अन्नदाता! अज्ञानी को ऐसा साधन नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं, पुण्य भी समकिती के ही ऊँचे होते हैं। आहाहा!

जिसे आत्मा का भान है, आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। यह देह तो मिट्टी-हड्डियाँ, चमड़ी है। यह तो राख हो जाएगी। राख है और राख होगी। भगवान आत्मा कहीं भस्म हो ऐसा नहीं है। वह तो आनन्द का धाम ध्रुव है। ऐसा जिसे भान (हुआ है), उसे जो शुभभाव में पुण्य बँध जाए, तो कहते हैं कि बड़े-बड़े राजा, विद्याधर, देव और मनुष्य अंजुलिमाला—ऐसे हाथ की माला। हाथबन्ध करे। समझ में आया? पद्मनन्दि में कुछेक आता है। हाथ जोड़े भगवान को, ऐसा आता है। स्तुति में आता है। नहीं? ऋषभदेव में आता है या दूसरे (में)? दोनों हाथ जोड़े, इसलिए स्वर्ग भी मिले और मोक्ष भी मिले। उसे दोनों मिले। ऐसा कुछ लिखा है। पद्मनन्दि (पंचविंशति) में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब। ... पहले-पहले। अभी कोई मिथ्यादृष्टि हो। पहले सम्यग्दर्शन बिना वह शलाकापुरुष बनता नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले सम्यग्दर्शन न हो तो वह पद मिलता ही नहीं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, ये सब सम्यग्दृष्टि के (पुण्य से पदवी मिलती है)। क्योंकि ऐसी बड़ी पदवी का पुण्य तो धर्मी को ही होता है। समझ में आया?

अनाज सैकड़ों पके तो उसके पास उसकी घास तो ऊँची पके। घास भी ऊँची होती है। राडा। राडा समझते हो? बाजरा के पकते हैं न? भाठा। (संवत्) १९७३ में देखा था मैंने। ७३, ७३। कितने वर्ष हुए? २६ और २७=५३ वर्ष हुए। दामनगर में चातुर्मास था। बहुत वर्षा। छह महीने वर्षा। वहाँ से उठे और 'आणोदरी' जाते थे 'आणोदर'। अपने हैं न वह ब्राह्मण? रसोईया है भाई। उण्डा उसका गाँव है। परन्तु रास्ते में देखो तो... ओहोहो! कितना ऊँचा भाठा और कितना डुण्डा। उण्डा, ७३ की बात है। ५३ वर्ष पहले की बात है। बहुत पाक था। वर्षा ऐसी आयी न। दो-दो सिर डूबे उतने डण्ठल बड़ा ऊँचा। बाजरे का, ज्वार का और दाना तो पके परन्तु डण्ठल ऐसे मोटे।

इसी प्रकार धर्मी को आत्मा का ज्ञान और आत्मा का अनुभव हो, उसमें से तो

दाना पके। मोक्ष के मोती। परन्तु अन्दर दया, दान के कोई विकल्प-शुभभाव रह जाए तो उससे उसे राग हो, वह पुण्य बँध जाए, उससे लक्ष्मी आदि बाहर की, अज्ञानी को न मिले, ऐसी उसे मिलती है। कहो, समझ में आया? यह तो स्वरूप बताते हैं, हों! प्रसन्न होने के लिये यहाँ बात नहीं है। कहो, ऐई! प्रसन्न होने की बात नहीं कि आहाहा! धूल भी प्रसन्न (करने जैसी नहीं)। जो पुण्य से प्रसन्न हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। पुण्यभाव हो, वह मेरा है, मुझे लाभ होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसकी यह बात है नहीं।

अंजुलिमाला (हाथों की अंजुलि) की पंक्ति से संस्तुत (नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य) है... लो! **और यह केवल लक्ष्मी ही नहीं पाता है, किन्तु बोधि (रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग) भी पाता है।** लो! सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, वह आगे बढ़कर चारित्र भी अंगीकार करे ही वह। समझ में आया? शुद्धभाव सम्यक् चैतन्य की दृष्टि और ज्ञान हुआ है, वह आगे बढ़कर चारित्र लेनेवाला ही है। स्वरूप की रमणता प्रगट करने का। समझ में आया? इसलिए कहा है न? 'दंसण भट्ठा न सिझंति'। समकित से भ्रष्ट है, उसकी मुक्ति नहीं है। चारित्र भ्रष्ट की मुक्ति है। 'चारित्र भट्ठा सिझंति'। क्योंकि ख्याल में है कि मुझे चारित्र नहीं। मुझे शुभ और अशुभभाव निर्बलता के कारण आते हैं। उसका ज्ञाता (रहता है)। आते हैं, होते है, ऐसा जानता है। समझ में आया? इससे उसका आदर है नहीं। इसलिए चारित्र कब लूँ। देखो!

श्रीमद् में आया है न? देखो न! गृहस्थाश्रम छोड़ नहीं सके। श्रीमद् को लाखों रुपये का मोती का व्यापार था। धन्धा बड़ा। उदास-उदास। व्यापार में उनकी अन्दर रुचि नहीं। जरा विकल्प हो, लाखों का मोती का व्यापार था। यह भावना की, देखो न! 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा? कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब?' देखो! बाह्य और अभ्यन्तर दोनों। है या नहीं इसमें?

कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब?
सर्व सम्बन्धों का बन्धन तीक्ष्ण छेदकर
सर्व सम्बन्धों का बन्धन सर्व छेदकर
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब।

यह व्यापार के धन्धे, यह राग, यह राग। आहाहा! समझ में आया? विचरूँगा महत्पुरुष—वीतराग परमात्मा और सन्तों की आज्ञा प्रमाण हम कब चारित्र अंगीकार करेंगे? ऐसी भावना तो धर्मी को होती है। इसलिए उसे बोधि लाभ मिलता है, ऐसा कहते हैं। शुद्धभाववाले सम्यग्दृष्टि को आगे चारित्र की प्राप्ति होती ही है। पुण्य के कारण से लक्ष्मी आदि मिलती है।

भावार्थ - विशुद्ध भावों का यह माहात्म्य है। लो! विशुद्धभाव सम्यग्दर्शन -सहित का पुण्य विकल्प भाव, इसके कारण... समझ में आया? उसमें आता है न? नियमसार में नहीं आता? हे आत्मा! तू परमात्मा की भक्ति करेगा तो तुझे सहज लक्ष्मी राज आदि मिलेंगे। एक श्लोक में आता है। भाई! कलश में आता है। पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि महासमर्थ। हे मुनि आत्मा! तुझे भगवान का मार्ग अन्दर बैठा और स्वरूप का साधन है तो बाहर की लक्ष्मी की इच्छा किसलिए करता है? स्वर्ग हो और रानी हो, वह धूल हो... यह तो सहज आकर मिलेगी वीतराग के मार्ग में। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी को नहीं मिलता, ऐसे पुण्य का फल ज्ञानी को बाहर दिखता है। है उसका ज्ञाता। आहाहा! मुझे मिला है पुण्य और मैं फल भोगता हूँ, यह धर्मी को नहीं होता। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७६

आगे भावों के भेद कहते हैं— भाव का विशेष स्वरूप बताते हैं। जो बताना है न इस भावपाहुड़ में। कहते हैं, यह शुद्धभाव कहना है। उसमें शुभभाव थोड़ा आवे अवश्य। परन्तु उसमें अशुभ का निषेध है और शुद्ध का आदर है। शुभ बीच में आता है। कथंचित् व्यवहार से उसे उपादेय कहा जाता है। लिखेंगे ७७ में।

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरउद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं॥७६॥

अर्थ - जिनवरदेव ने भाव तीन प्रकार का कहा है - वीतराग परमात्मा सर्वज्ञदेव,

सौ इन्द्र के पूजनीक परमात्मा समवसरण के मध्य में भगवान ने तीन प्रकार के भाव कहे। **१. शुभ,...** पुण्य परिणाम। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह शुभभाव पुण्य। **२. अशुभ...** हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, असत् आदि यह अशुभ। **३. शुद्ध।** इस पुण्य-पाप के राग से रहित आत्मा के आश्रय से प्रगट हुआ (भाव)। शुद्ध स्वरूप भगवान के अवलम्बन से प्रगटे, वह शुद्ध। परद्रव्य के अनुसार प्रगटे, वह अशुद्ध। उस अशुद्ध के दो प्रकार। शुभ और अशुभ। अभी तो पहले समझ का ठिकाना नहीं होता। उसे दृष्टि कब प्रगटे? कब वह धर्म करे और कब जन्म-मरण मिटे? आहाहा! बड़ी ... पड़ी है अनादि से संसार।

आर्त और रौद्र ये अशुभ ध्यान हैं... लो! **तथा धर्मध्यान शुभ है।** उसमें शुद्ध एकदम वह ध्यान आत्मा का है। अब कहते हैं, देखो यह।

★ ★ ★

गाथा - ७७

सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदि जिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह॥७७॥

अर्थ - शुद्ध है, वह अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है, इस प्रकार जिनवरदेव ने कहा है,... देखो! क्या कहते हैं? शुद्धभाव भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति, उसके भानवाला जो शुद्धभाव, वह तो अपने से, अपने में, अपने आश्रय से होता है। उसमें कुछ पर का आश्रय और विकल्प, निमित्त की आवश्यकता नहीं है। **शुद्ध है, वह अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है,...** अन्दर आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शुद्धभाव ही है। उसका भान होना, पहिचान होना, प्रतीति होना, वह शुद्धभाव है। वह तो अपना है, अपने में है। लो! वह कहीं परद्रव्य के निमित्त को अनुसरना नहीं है। परद्रव्य के अनुसार हो तो पुण्य और पाप हो, शुभ-अशुभभाव हो। शुद्धभाव तो अपना भगवान आत्मा अन्दर है, ज्ञान के प्रकाश का पूर चैतन्य का नूर अन्दर आत्मा। समझ में आया?

'**सुद्धं**' पाठ है न? '**सुद्धं सुद्धसहावं**' ऐसा है। '**अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।**'

ऐसा। शुद्ध वस्तु। पुण्य-पाप के विकल्प के, राग के भाव से रहित पवित्रता के परिणामवाला भाव। वह **अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है,...** वह तो शुद्ध स्वभाव अपने में अपने से है। **इस प्रकार जिनवरदेव ने कहा है,...** जिनवरदेव ने-भगवान ने-परमात्मा ने... अहो! सर्वज्ञ परमेश्वर, अनन्त सिद्ध, उन्हें वन्दन (करे)—स्वीकारे, उन्हें आदर करे। भगवान ऐसा कहते हैं, देखो! समझ में आया?

जिनवरदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव। जिनकी सभा में सिंह और बाघ, बकरे की भाँति बैठे हों। समझ में आया? बड़ी धर्मसभा हो। करोड़ों देव, मनुष्य, बाघ और सिंह, नाग। काले नाग बड़े, ५०-५० हाथ के लम्बे जंगल में से चले आवें। ... करते-करते भगवान के समवसरण में (आवे)। भगवानजीभाई! ऐसा काला नाग देखे वहाँ हाय... हाय... मर जाऊँगा। ऐसे नाग नरम होकर भगवान की सभा में आवे, हों! आहाहा!

यहाँ कहा था न? बहुत वर्ष पहले अपने ऑफिस में बाबूभाई, उनका बारह वर्ष का लड़का था। बाबूभाई अपने ऑफिस में है। दुकान यहाँ है न? दुकान थी। बहुत वर्ष हो गये। ज्येष्ठ शुक्ल चौथ थी। ज्येष्ठ शुक्ल चौथ। बहुत वर्ष हो गये। ... लड़का दुकान पर बैठा था। यहाँ गाँव में। पैर ऐसे लम्बे करके ऐसे-ऐसे पैर हिलाता था। उसमें एक बड़ा सर्प-नाग रहता था उनके मकान में। धूलवाला मकान सही न पोला, वहाँ नाग रहता था। वह निकला। वह (लड़का) पैर ऐसे-ऐसे हिलाता था। डस लिया साथ में बोला, मैं मर जाऊँगा, मैं नहीं जीयूँगा। नाग देखा न, ऐसा बड़ा नाग था। नाग तो डसकर वापस अन्दर चला गया। गाँव में गरुड़ रहता था... क्या कहलाता है? गारुडी बुलाया। यहाँ से डालकर ले गये वहाँ मर गया, रास्ते में मर गया। ... डसा न, वहाँ मैं अब नहीं जीयूँगा, मर जाऊँगा। यह तो बेचारा पामर जैसा है, हों! वे सब नाग। वे जंगली नाग... आहाहा! समवसरण परमात्मा की तीर्थंकर की धर्मसभा हो, वहाँ चले आते हैं, हों! सैकड़ों-हजारों सर्प चारों ओर से। सिंह और बाघ। उनके मध्य में भगवान की वाणी ऐसी निकलती है, कहते हैं। जिनवर ने ऐसा कहा है कि शुद्धभाव तुझमें तुझसे तुझमें है। कहो, समझ में आया?

जिनवरदेव ने कहा है, वह जानकर... अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है,... स्वयं ही भगवान शुद्ध है, उसकी दृष्टि करने से परिणाम में शुद्धता प्रगट होती है। समझ में आया? **वह जानकर इनमें जो कल्याणरूप हो, उसको अंगीकार करो।** कल्याणरूप तो शुद्धभाव है। ऐसा कहते हैं। पाठ में तो इतना लिया है। अर्थ में जरा समझायेंगे अभी थोड़ा। **कल्याण...** है न पाठ? **'जं सेयं तं समायरह।'** तुझे श्रेय लगे, उसे आदर अब। आहाहा!

भावार्थ - भगवान ने भाव तीन प्रकार के कहे हैं— लो! भगवान ने भाव तीन प्रकार के कहे। अर्थात् भगवान ने। परमात्मा जिनेन्द्रदेव समवसरण में चक्रवर्ती जहाँ बकरे की भाँति (बैठा हो)। जिसे छियानवें हजार पद्मिनी जैसी रानियाँ हों। प्रभु! आपकी चैतन्य वैभव ऋद्धि वह हमें नम्रीभूत करती है। यह हमारा वैभव तुच्छ है। वे भगवान कहते थे कि तीन प्रकार के भाव हैं। शुभ, अशुभ और शुद्ध।

अशुभ तो आर्त व रौद्र ध्यान हैं,... अत्यन्त पाप के परिणाम हैं। वे तो छोड़ने योग्य हैं। **वे तो अति मलिन हैं, त्याज्य ही हैं। धर्मध्यान शुभ है, इसलिए यह कथंचित् उपादेय है,...** सम्यग्दृष्टि को... अज्ञानी की यहाँ बात नहीं। सम्यग्दर्शन में शुद्धभाव है, उसमें रह नहीं सकता; इसलिए शुभभाव होता है। अशुभ टालने की अपेक्षा से कथंचित् उपादेय है। निश्चय से तो आदरणीय नहीं। व्यवहार है न? परन्तु व्यवहार से अशुभ से बचता है अथवा अशुभ कहने की भाषा है। अशुभ होता नहीं उस अवसर में। इसलिए इतना अशुभभाव घटता है, इस अपेक्षा से कथंचित् उपादेय कहा गया है, व्यवहारनय से, हों! निश्चय से तो आदरणीय है ही नहीं तीन काल में। आहाहा!

इससे मन्दकषायरूप विशुद्ध भाव की प्राप्ति है। राग की मन्दता। लो! अब इसे दुःख मानना। राग की मन्दता का भाव विशुद्ध, वह दुःख। परन्तु पाप के परिणाम की अपेक्षा मन्द दुःख है, मन्द आकुलता है। चारित्रमोह के पाप के परिणाम की अपेक्षा से, हों! मिथ्यात्व के परिणाम की अपेक्षा से तो उसकी कुछ गिनती नहीं। वह तो महापाप, मिथ्यात्व ही महापाप है। अशुद्ध तो वह है।

शुद्ध भाव है, वह सर्वथा उपादेय है,... वह तो अत्यन्त अंगीकार करके स्वरूप

में रमनेयोग्य, वह चीज़ है। **क्योंकि यह आत्मा का स्वरूप ही है।** वह तो आत्मा का स्वरूप है। शुभभाव कोई आत्मा का स्वरूप नहीं। परन्तु अशुभभाव न हो, तब ऐसा शुभभाव होता है। व्यवहार से उसे आदरणीय कहा है। **इस प्रकार हेय, उपादेय जानकर त्याग और ग्रहण करना चाहिए,...** शुद्ध स्वरूप उपादेय है, शुभ व्यवहार से उपादेय है। निश्चय से तो हेय है। अशुभ तो सर्वथा हेय है। **जो कल्याणकारी हो, वह अंगीकार करना - यह जिनदेव का उपदेश है।** तेरा कल्याण जिसमें हो, उसे अंगीकार कर। अकल्याण भाव को छोड़। ऐसा मनुष्यदेह मिला, (उसमें) करने का यह कर। ऐसा अन्त में कहा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ११, रविवार, २५-१०-१९७०
गाथा - ७८-७९, प्रवचन-१२३

गाथा - ७८

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की ७८वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जिनशासन का इस प्रकार माहात्म्य है—** जैनशासन अर्थात्? आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसकी वीतरागी दृष्टि, ज्ञान और रमणता होना, वह जैनशासन है। वह जैनशासन मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग अर्थात् अनन्त दुःख से मुक्त होने का और अनन्त आनन्द की प्राप्ति होने का यह एक उपाय है। यह जैनशासन अर्थात् वस्तु का स्वरूप। सच्चिदानन्द आत्मा जाननस्वरूप ज्ञान, उसकी अन्तर में रागादि से विकल्प से भिन्न पड़कर अधिकपने आत्मा को भिन्न अनुभव करना, इसका नाम दुःख से मुक्त होने का उपाय है। इस जैनशासन का माहात्म्य क्या है, वह कहते हैं।

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो॥७८॥

यह जीव जो है, वह जैनशासन में वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द था, उन्होंने जो मार्ग कहा, उस जिनशासन में तीन भुवन में वह मार्ग सार है। **ऐसी बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग...** जिनशासन का सार बोधि। बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। स्वभाव-अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव भगवान आत्मा का अन्तर विश्वास और अनुभव की प्रतीति, उसके सम्बन्धी का ज्ञान और उसमें लीनतारूप चारित्र, इस दर्शन-ज्ञान-चारित्र को बोधि कहने में आता है। यह जैनशासन में तीन भुवन में सार है।

बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग... उसे प्राप्त करता है। परन्तु कैसा होता हुआ प्राप्त करता है? आत्मा का दुःख से मुक्त होने का ऐसा मार्ग और परम आनन्द की प्राप्ति होने का मार्ग, जो रत्नत्रयरूप बोधि मोक्षमार्ग किस प्रकार प्राप्त करता है?

'प्रगलितमानकषायः' अर्थात् जिसका मान कषाय प्रकर्षता से गल गया है,... जिसे आनन्द के आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त कोई भी पुण्य-पाप का विकल्प, शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के फल में से जिसका अहंपना टल गया है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दधाम के अतिरिक्त—आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त कोई भी राग, दया, दान, व्रत, विकल्प उसका बन्धन पुण्य, उसका फल यह बाहर की चीज़े, कहीं भी आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त किसी छोटी में छोटी चीज़ में विशेषता / अधिकता भासित हो तो वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त कोई इस जगत में उससे अधिकपना, विशेषपना कोई चीज़ है ही नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे प्रकर्ष मान गल गया। आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप के भान में जिसे चाहे जिस प्रकार का पुण्य का शुभराग हो, उससे लेकर यह मैं हूँ, यह पुण्यभाव मैं हूँ, शरीर की सुन्दरता आदि की अधिकता देखकर उसे ऐसा हो जाए कि यह भी मुझे ठीक है, वह सब मिथ्यात्व का अभिमान है। समझ में आया? वह अभिमान जिसके अन्दर से, अपने आनन्दस्वभाव के भान और राग और पर से भिन्न / अधिक / पृथक् जानने से परसमय का अभिमान, अहंकार, गर्व जिसे गल गया है। समझ में आया? आहाहा! एक आत्मा आनन्दस्वरूप, उसके अतिरिक्त किसी चीज़ में उसे अधिकपना, मेरापना, अहंपना भासित नहीं होता। समझ में आया? उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

श्रोता : यह अहं.....

पूज्य गुरुदेवश्री : मान का अर्थ पर मैं, ऐसा। राग मैं, पुण्य मैं, व्यवहार मैं—यह सब अभिमान, वह मिथ्यात्व का अभिमान है। आहाहा! समझ में आया? मान शब्द से यह मैं—अहं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी मैं। यह मान-अभिमान है। अनन्तानुबन्धी का मान। आहाहा! समझ में आया? जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसका अहंपना—यह मैं, ऐसा छोड़कर, उसके अतिरिक्त के किसी भी पुण्य के विकल्प से, राग से लेकर किसी भी

चीज़ का अहं—यह मेरी है, ऐसा भासित हो, वह अनन्त संसार के कारण का मिथ्यात्व का मान है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि मोक्ष का मार्ग अर्थात् दुःख से मुक्त होने का उपाय। अनादि से अज्ञानी प्राणी दुःखी है। यह राग का विकल्प या शरीर, वाणी या पुण्य के फल के संयोगों की ठाठ-बाट जमी हो, उसमें कहीं भी मैं हूँ और उसके कारण मुझे ठीक पड़ता है, यह मिथ्यात्व सम्बन्धी का मान है। किरणभाई! सूक्ष्म बात तो है सब, परन्तु आये हो बराबर ठीक अब इसमें। यह सुने तो सही कि यह क्या कुछ कहते हैं। दुनिया की पढ़ाई से कहीं यह पढ़ाई अलग प्रकार की है। आहाहा!

भाई! तू कौन है और किससे तेरी चीज़ भरपूर है? तेरा स्वभाव तो आनन्द, ज्ञान, दर्शन, वीर्य से भरपूर है। हीन नहीं, विपरीत नहीं। ऐसा तेरा अन्दर स्वभाव, तेरा वस्तुस्वरूप है। उसे छोड़कर, भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ ऐसी ही जिसकी चीज़ और ऐसा ही उसका स्वरूप और उसके भाव में वह भरपूर है, उसे छोड़कर किसी भी विकल्प से लेकर परचीज़ की सुन्दरता, कोमलता, विशेषता, स्वभाव से दूसरी कोई चीज़ अधिकरूप भासित हो, उसका नाम यहाँ अहंकार, मान, अनन्त संसार का कारण उसे मान कहा जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

भगवान जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं। ऊपर कहा था न? 'जिन' का उपदेश है। '**जिणवरिंदेहिं**' '**जिणवरेहिं भणीयं**' ७७ में कहा था। यहाँ '**जिणसासणे**' जीव प्राप्त करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा में आनन्द और सुख है। इसके अतिरिक्त किसी भी चीज में कहीं भी पुण्यभाव में भी सुखपना, ठीकपना, अधिकपना, विशेषता अतिशयता लगे तो वह अनन्त संसार का मान है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं। **किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है... किसी परद्रव्य...** अर्थात् आत्मद्रव्य के अतिरिक्त भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द शुद्धध्रुव अखण्डानन्द आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य—दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम सब परद्रव्य हैं।

श्रोता : शरीर, मन, वाणी सब आ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन, वाणी तो स्थूल है। वह स्थूल धूल है। यह तो अन्दर में

पुण्य परिणाम—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा से लेकर सब परद्रव्य। आहाहा! भाई! तुझे तेरे द्रव्य के माहात्म्य की तुझे खबर नहीं है। अन्दर वह क्या चीज़ है, उसका माहात्म्य छोड़कर, जिसे परवस्तु, रागादि, पुण्यादि और उसके फलादि में माहात्म्य दिखता है, वह मूढ़ जीव परवस्तु को मैं हूँ—ऐसा मानकर गर्व में वह गल गया है। वह आत्मा की शान्ति को गला देता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? है? वजुभाई! पुस्तक है या नहीं? ठीक। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, किसकी स्त्री? किसका पुत्र? किसका राग? किसका शरीर? किसकी वाणी? किसका रंग? किसका रूप? आहाहा! यह सब जड़ के अथवा पर के। उस स्वद्रव्य को छोड़कर जिसका अभिमान-मान अर्थात् कि यह पर रागादि, दया, दान, व्रतादि से लेकर देव-शास्त्र-गुरु, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, सम्मेदशिखर और... क्या कहलाता है? सिद्धगिरि, पालीताणा, शत्रुंजय, कहीं भी मैं हूँ और इससे मुझे लाभ होगा, (यह मिथ्यात्व है।) आहाहा!

श्रोता : दादा थे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दादा कौन देता था? धूल। तेरे पास कहाँ नहीं, वह दादा तुझे दे? उसी प्रकार पुण्य माँगता है। 'शिवपद हमको देना रे महाराज' ऐसा माँगता है वहाँ। कुछ भान नहीं होता। शिवपद कहीं वहाँ रहता होगा? आता है न? मणिभाई! वहाँ भगवान के पास माँगता है। 'शिवपद हमको देना रे महाराज, शिवपद हमको देना' भगवान कहते हैं, परन्तु तेरा शिवपद मेरे पास है या तेरे पास है? आहाहा! आहाहा!

श्रोता : भगवान को सम्हालने नहीं दिया हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को सम्हालने दिया होगा? अपना शिवपद भगवान को दिया होगा? आहाहा! समझ में आया? एक पैसे से लेकर करोड़-अरबों और तीन लोक का बड़ा राज भी मुझे ठीक है, वह मेरा है, उससे मुझे हर्ष और सन्तोष होता है, ऐसा जिसने माना है, उसने आत्मा को गलाया है और गर्व में यह गिर गया है। भगवान आत्मा के अतिरिक्त किसी भी परद्रव्य में विकल्प से लेकर परचीज़ में मुझे ठीक है, मुझे मजा है, कुछ मुझे इसकी ओर से मेरा वीर्य उल्लसित होता है, मुझे इसमें मजा

पड़ता है, ऐसी जिसकी मान्यता है, जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप को गला डाला है, मार डाला है और वह गर्व में गिर गया है। आहाहा!

देखो न, आचार्य टीका में कितना कहते हैं! आहाहा! '**पयलियमाणकसाओ**' इतना शब्द रखा है। उसे गल गया है। आहाहा! जिसे पर में मान है, उसे आत्मा गल गया है। समझ में आया? जिसे पर में मान नहीं, उसे मान गल गया है, जल गया है। आत्मा मैं... आत्मा हूँ। मैं सत् अस्तित्व, मेरी सत्ता आनन्द और ज्ञानवाली है। मेरे ज्ञान और आनन्द के लिये किसी चीज़ की मुझे अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इस प्रकार जिसे आत्मा का स्वभाव—प्रभु आनन्द का सागर है, ज्ञान का समुद्र है, श्रद्धा से भरपूर है, शान्ति का स्वरूप ही आत्मा है। उसे छोड़कर जिसे पर में मान होता है, स्वभाव से कुछ भी दूसरी चीज अधिक भासित होती है, अधिक भासित हो - विशेष भासित हो, इसे अतिशयवाली लगे, कहते हैं कि अनन्तानुबन्धी मान है, हों! भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐ भीखाभाई! यह तो आत्मा की क्रीड़ा है। आहाहा!

भगवान! तुझमें कहाँ कमी है कि जिससे पर से तुझे कुछ सन्तोष हो। राग से, पुण्य से, उसके फल से, उसकी सामग्री के दिखाव प्रदर्शन से! आहाहा! भगवान! तुझे उसके कारण सन्तोष हो, तू ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो सब परद्रव्य ने प्रदर्शन किया है। आहाहा! उसे देखकर उसमें मैं हूँ अथवा वह मुझे कुछ लाभदायी है और मुझे उससे कुछ सन्तोष होता है, मुझे मुझसे उसमें कुछ अधिकपना भासित होता है, उसे राग से पर अपना अधिक / भिन्न स्वभाव है, उससे घात डाला है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर की दृष्टि के ऊपर सब बात है। बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में भगवान स्वयं भूल गया है और जिसकी दृष्टि के परिणाम में दूसरी चीज़; भगवान आत्मा के आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज़ में, कुछ भी उल्लसित वीर्य होकर ठीक (है, ऐसा लगता है), ऐसा जो उसे भगवान अनन्तानुबन्धी, अनन्त संसार के दुःख के पन्थ में पड़ा हुआ अनन्तानुबन्धी मानवाला है। नवनीतभाई! आहाहा! कहो, वजुभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग, भगवान! तेरा

है, परन्तु उसकी तुझे खबर नहीं है। एक बीड़ी ठीक से जहाँ आवे वहाँ... सिगरेट पीता हो। ऐसे पीता हो या ऐसे पीता हो कुछ खबर नहीं। हमने कभी पी नहीं है। हमने कभी सिगरेट क्या, बीड़ी भी नहीं पी है। तम्बाकू-बम्बाकू कभी सूंघी नहीं है। आहाहा! सवेरे उठे और दो-चार सिगरेट पीवे, तब तो इसे दस्त ठीक से आवे। अर..र..! तब यह पाखाने जाए। आहाहा! कितने व्यसनों की रुचि का प्रेम कहाँ अर्पित हो गया है, भाई! आहाहा!

यहाँ भगवान तो (कहते हैं) '**प्रगलितमानकषायः**' इसे बोधि प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य आत्मा के स्वभाव की साक्षात्कार की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता (कहते हैं)। जिसे पर का मान गल गया है, आत्मा के अतिरिक्त इन्द्र का राज भी जिसे सड़ा हुए तृण जैसा लगता है। यह शरीर तो धान का पिण्ड है। दो दिन धान न खावे वहाँ ऐसा और वैसा सूख जाता है। समझ में आया? आठ दिन ठीक से बुखार आया हो, जिसके साथ प्रियता करने जाता था, तब उसे देखो तो शरीर सूख गया हो, मुँह गिर गया हो, पेट पिचक गया हो, चमड़ी में फीकापन आ गया हो, आठ दिन पाँच-पाँच डिग्री ठीक से बुखार आया हो। डॉक्टर कहें कुछ लेना नहीं। एक उकाली लेना। हाय.. हाय.. आहाहा!

ऐसे में तो क्या है? परन्तु इन्द्र के इन्द्रासन, जिसे हजार-हजार वर्ष में तो आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। पन्द्रह-पन्द्रह दिन में तो जिसे ऊँच-नीची सांस की क्रिया होती है। श्वासोच्छ्वास एक पखवाड़े में लेते हैं, एक पखवाड़े में सांस ले। इतनी साता की अनुकूलता है, ऐसा कहना है। पन्द्रह दिन में तो एक सांस ऊँचा लेकर छोड़े इतना बस। हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न हो, हजार वर्ष में, एक सागरोपमवाले को। समझ में आया? उसमें भी कुछ ठीक है, वह अभिमान मिथ्यात्व और मान का है, भाई! तेरे आनन्दस्वभाव के सागर के समक्ष दुनिया में कोई चीज़ अधिक है नहीं। समझ में आया? चमड़ी जरा रूपवान, कोमल देखकर इसे गलगलिया हो जाता है। अरे! भगवान! तू कहाँ गया? तू कहाँ खो गया? समझ में आया? तेरी चीज़ अन्दर ज्ञान और आनन्द से भरपूर और ऐसे चमड़े का जरा ऊपर लेप (होता है)। यह तो लेप है। गन्ने का छिलका जरा निकाल डाले। वह तो मोटा होता है, हों! गन्ने के ऊपर छाल होती है, वह

मोटी होती है। शेरडी समझते हो? गन्ना। उसकी छाल होती है, वह बहुत मोटी होती है। यह तो बहुत पतली है। छह अंगुली निकालने लगे तो बहुत पतली निकले। फिर देखने जावे तो सूँघने को भी खड़ा न रहे, ऐसा है यह। आहाहा!

भगवान! तुझे यदि चीरे तो उसमें से आनन्द निकले, ऐसा तू है अर्थात् तू आत्मा के आनन्द सागर में एक बार डुबकी मार... वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछलता है, आहाहा! ऐसा आत्मा कहाँ गया? तूने क्या किया? कहते हैं। प्रगलित मान। आहाहा! मान जिसने गला डाला है। मुझमें दूसरी कोई चीज़ नहीं है और दूसरी किसी चीज़ के कारण मैं हूँ या उसके कारण मुझे ठीक पड़ता है, ऐसे जिसे मान गल गया। आहाहा! यह अनन्तानुबन्धी। भाई, चन्दुभाई! आहाहा!

श्रोता : मान की ऐसी व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्या ऐसी है। आहाहा!

किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है... आहाहा! **किसी परद्रव्य से...** भगवान आत्मा के अतिरिक्त, चिदानन्द आनन्द के अतिरिक्त कोई भी द्रव्य, उसके ऊपर **किसी परद्रव्य से अहंकाररूप...** यह मैं, ऐसा मान नहीं करता। परन्तु जिसे खबर भी नहीं कि मैं क्या करता हूँ? क्या होता है? और कहाँ जाऊँगा? और इसके भाव के फल कहाँ जाएँगे, इसकी भी खबर नहीं होती। समझ में आया? और **जिसका मान कषाय प्रकर्षता से गल गया है, किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है और जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी...** उसने ऐसा डाला '**मिच्छत्तमोह**' ऐसा साथ में डाल दिया। समझ में आया? दो ही लिया। मान गल गया है और मिथ्यात्व टल गया है। अनन्तानुबन्धी का मान और मिथ्यात्व - दो बातें ली हैं। आहाहा!

कहते हैं **कैसा भया सन्ता? कैसा होता हुआ? प्रगलित अर्थात् गल गया है, नष्ट हो गया है...** क्या? मिथ्यात्व का उदयरूप मोह। आनन्दस्वरूप के अनुभव में जिसे मिथ्या भ्रान्ति तो गलकर नाश हो गयी है। आहाहा! कहीं भ्रम नहीं होता कि यह मुझे अच्छा है, यह मुझे ठीक है, यह मुझे लाभदायी, यह मुझे सहायक है, यह मुझे मददगार है, मैं दूसरों को मददगार हूँ। ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... वीतराग का मार्ग ऐसा है। आहाहा! लोगों को सुनने को भी मिलता नहीं। इसे पूरे दिन धमाधम - यह करो... यह

करो... यह करो... अरे! भगवान! जो कुछ करने का है, वह रह जाता है। जन्म-मरण गलाने का मार्ग वह कुछ रह जाता है। बाटविया! ऐसा है यह, देखो!

यह मेरा देश, कहते हैं कि यह मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य में आया या नहीं वह? लो, रामजीभाई पहले इसमें थे। जवानी में सलाह दी थी कि चलो जेल। चलो। दो महीने नहीं? एक बार एक महीना और एक बार दो महीना। आहाहा! गजब दुनिया वह भी पागल है न? पागल के गाँव कहीं अलग होते हैं? पागल के गाँव अलग नहीं मिलते। हर गाँव में पागल (होते हैं)।

श्रोता : हर गाँव में पागल नहीं, हर घर में पागल। हर व्यक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हर व्यक्ति पागल, लो न! आहाहा! अरे! भगवान! तू कौन है, प्रभु! कहाँ है? कैसे है? इसकी तुझे खबर बिना जो तुझमें कभी है नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प आदि तुझमें है ही नहीं। वे तो कृत्रिम खड़े करके मेरा मानता है। समझ में आया? आहाहा! यह बाहर की मिठास, उसमें दो-पाँच करोड़ की पूँजी हो। लड़के-बड़के लम्बे पाँच-पाँच हाथ के अच्छे पके हों, रूपवान और समधी रिश्तेदार अच्छे मिले हों। आहाहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। अपने सबसे सुखी हैं। अपनी बादशाही है। मर गया है, सुन न अब! बादशाही कहाँ से आयी तेरी? समझ में आया? उसमें यह है। है? ७८ (गाथा)। शब्द का बहुत अर्थ नहीं परन्तु पाठ है न पाठ? उसमें नहीं। यह पाठ है।

कैसा भया सन्ता... कैसा है, वह दो प्रकार से कहा। पहले ऐसा कहा कैसा भया सन्ता कि प्रगलित मान प्रकर्ष करी गल्या। प्र अर्थात् विशेषकरि। विशेषकर जिसका मान गल गया है। और कैसा होता हुआ? **जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है...** ऐसा ले लिया। आहाहा! पर तरफ की सावधानी का मिथ्यात्वभाव गल गया है। भगवान आत्मा के स्वभाव-सन्मुख सावधान.. सावधान.. सावधान.. 'समयवर्ते सावधान' ऐसा नहीं कहते? यह विवाह करते हैं, तब कहते हैं या नहीं? समय अर्थात् आत्मा। आत्मा को समय कहते हैं न? समयसार। समयवर्ते सावधान। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु तू समय है न! उसमें वर्तना, वह सावधानपना, वह सम्यक् है। अन्य तो और स्त्री से विवाह करने जाए तो समयवर्ते सावधान (बोले)। वह तो

टाइम हुआ (तो कहते हैं), लाओ कन्या को। आठ बज गये। टाइम हो गया। फिर टाइम निकल जाएगा। माँस की हड्डियाँ हैं, उसके साथ विवाह। अरे! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने राग में लगन लगायी, पुण्य के परिणाम में लगन लगायी, उसने आत्मा की लगन छोड़ दी है। बेचरभाई! भगवानजीभाई! आहाहा! अरे! तू कौन, कहाँ और कहाँ तो मानकर बैठा है? उसकी भ्रमणा गयी है। कहीं भी मेरापन है, ऐसा मिथ्यात्वभाव जिसे गल गया है। वह जैनशास्त्र का सार, बोधि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करता है। '**बोहि लाभं**' नहीं आता? लोगस्स में आता है। '**आरोग बोहिलाभं समाहि, वरमुत्तम**' अर्थ की खबर नहीं पड़ती, ऐसे के ऐसे बाहर में पहाड़े बोलते रहते हैं। अरे! अवतार चला जाता है, भगवान! समय-समय चला जाता है, भाई! यह समय अब वापस नहीं आयेगा। मरण की स्थिति के सन्मुख दौड़ा जाता है। काल तो मरण के सन्मुख ऐसे का ऐसा दौड़ा जाता है। आहाहा! विश्रामरहित। तुझे करना हो तो यह है। लाख दुनिया चाहे जो हो, उसके पास (रही)।

छहढाला में आता है न? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' यह नवनीतभाई को पूरा कण्ठस्थ है। भाई को कण्ठस्थ है, इसलिए यह सब उन्हें ठीक से बैठ गया। पूरा कण्ठस्थ किया है। उसमें भी यह है। भाई! आता है न उसमें? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ि जगत द्वंद्व-फन्द निश्चय आतम उर आणो।' अरे भगवान! महाप्रभु विराजता है न, भाई! जहाँ उसके दरबार में जा न! यह राग और बाग के वेश्याओं जैसे भाव, व्यभिचारी भाव है, ऐसा भगवान ने कहा है। पुण्य का भाव (भी) व्यभिचारी भाव है। आहाहा! उस व्यभिचार के साथ तुझे प्रेम करना कैसे सूझता है?

मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है... क्या कहते हैं? मिथ्यात्व का मोह जिसका गल गया है। भ्रमणा भी नहीं होती। मैं भगवान हूँ। मेरा आनन्द और मेरी शान्ति से भरपूर मैं हूँ। मेरी शान्ति कहीं से मिले, ऐसी नहीं है। कहीं तीन लोक, तीन काल में मेरे अतिरिक्त कहीं शान्ति है नहीं। मुझमें शान्ति है, इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन में भासित हुआ है, उसका मिथ्यात्व गल गया है। **इसीलिए 'समचित्त' है,...** देखो, ऐसा कहा है न '**पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो**' अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम जिसे प्रगट हुए हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह मिथ्यात्व मोह जिसे गल गया है, **इसीलिए 'समचित्त' है, परद्रव्य में ममकाररूप मिथ्यात्व और इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष जिसके नहीं है,...** लो! परद्रव्य में मिथ्यात्व अर्थात् ममतारूप मिथ्यात्व, राग का विकल्प उठे, उसके प्रति अहंपना और वहाँ से इष्ट-अनिष्ट पदार्थ। यह इष्ट है और अनिष्ट है, ऐसा जो राग-द्वेष है, वह सब छूट गया है। जगत में कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। जगत की चीज़ें उनकी पर्यायरूप परिणम रही है। उसने कोई विष्टा अनिष्ट है, कस्तूरी इष्ट है, मित्र इष्ट है, दुश्मन अनिष्ट है—ऐसा कुछ है ही नहीं। सब ज्ञेय हैं। ज्ञान में जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। इष्ट कौन? अनिष्ट कौन? बाहर में इष्ट-अनिष्टपना है ही कहाँ? तेरा विकारभाव, वह अनिष्ट है; स्वभावभाव, वह इष्ट है। समझ में आया? जयन्तीभाई आये हैं न? यह तो कहा, भावनगर के आये हैं और यह रविवार का अधिकार है न, इसलिए।

श्रोता : कमाने के साधन बराबर होवें तो ठीक।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाने के यह साधन हैं। वे मर जाने के साधन हैं। चक्रवर्ती छह खण्ड का धनी, वह रोटी माँगे, रे मुझे देना, मुझे रोटी देना। अर..र..! एक रोटी देना। परन्तु तेरे घर में पकवान पकते हैं न? सवेरे नौ बजे दाने होकर तेरे घर में रोटियाँ होती हैं। चक्रवर्ती के घर में सवेरे बोबे, सवेरे बोवे... नौ बजे तैयार गेहूँ। देव है न? उसके... फिर देव हैं। एक हजार देव सेवा करते हैं। यह सब शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, भरत चक्रवर्ती। सवेरे उठे और बोवे। तुम्हारे पुराने गेहूँ ने। अमरेली से क्या कहलाता है वह? अमेरिका। पुरान आवे, साधारण... आवे, पतला आवे, अमुक आवे, ऐसा नहीं। वहाँ तो सवेरे उनके देव बोवे, घण्टे भर के लिये, नौ बजे गेहूँ की रोटी होकर तैयार। लाखों-करोड़ों रुपयों की भस्म उस रोटी में डाले। घी में भस्म तले। ऐसी औषधि होवे कि जिसमें पाँच सेर घी डाले और उसमें पचास-सौ दाने गेहूँ के डाले और उसमें भस्म डाले, सोना डाले, मोती डाले, वह पिघल जाए, गेहूँ पी जाए। उस गेहूँ की रोटी बनावे। वह गेहूँ खावे। आहाहा! धूल में भी नहीं, कहते हैं सुन न! क्या हो जाता है तुझे? समझ में आया? यह चक्रवर्ती जिसके घर में ऐसा, वह भीख माँगे, ऐ... मुझे देना यह। अरे! यह क्या है तुझे? तीन लोक का नाथ परमात्मा तू विराजमान है और भिखारी होकर कुछ मुझे मान दो, बड़ा कहो, मुझे कुछ गिनती में गिनो। मैं गिनती के

लोगों में कुछ थोड़े हों, उनमें मैं आ जाऊँ तो ठीक। अरे रे! गजब भाई यह तो! गाँव में कोई मन्त्री के लोग गिने जाएँ और उनमें मैं आ जाऊँ। परन्तु क्या है तुझे? आहाहा! भाई! वीतराग की आज्ञा में गिनती में आ जा, फिर पूरा हो गया। भगवान ने गिना कि इतने-इतने समकिती भक्त हैं। उनमें तू आया तो पूरा हो गया, जाओ। समझ में आया?

कहते हैं **इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष जिसके नहीं है,...** समकित की व्याख्या की है। एक तो मिथ्यात्व नहीं, मान गल गया है और ज्ञेय पदार्थ के ज्ञेय की अनुकूलता-प्रतिकूलता देखकर ज्ञानी को राग-द्वेष नहीं होता। समझ में आया? चीज़ के कारण नहीं होता। ज्ञानी को कोई कमजोरी के कारण होता है, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? परन्तु परवस्तु के कारण मुझे यह अनुकूल, इसलिए राग - यह मिथ्यात्वभाव का राग है। यह प्रतिकूलता, इसलिए दुश्मन है, इसलिए द्वेष। प्रतिकूलता का द्वेष मिथ्यात्व का द्वेष है। आहाहा! **राग-द्वेष जिसके नहीं है,...**

भावार्थ - मिथ्यात्वभाव और कषायभाव का स्वरूप अन्यमतों में यथार्थ नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त-जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा देवाधिदेव के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, उनमें ऐसा स्वरूप नहीं है। कहीं नहीं है, कहीं नहीं है, भाई! समझ में आया? **मिथ्यात्वभाव और कषायभाव का स्वरूप अन्यमतों में यथार्थ नहीं है। यह कथन इस वीतरागरूप जिनमत में ही है,...** आहाहा! ऐसी पद्धति की शैली वह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की मार्ग में ही होती है। समझ में आया? आहाहा!

जिन्होंने तीन काल, तीन लोक देखे और जिन्हें वीतरागभाव वर्तता है, उनकी वाणी में जो आया, ऐसा स्वरूप तीन काल में अन्यत्र नहीं हो सकता। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! सम्प्रदाय में पड़े हैं, उन्हें भी खबर नहीं है कि वीतराग क्या कहते हैं। आहाहा! देखा? एक तो मिथ्यात्वभाव का स्वरूप, कषायभाव का स्वरूप अन्यमत में कहीं यथार्थ है ही नहीं। सब नाम तो सब बहुत लें, भाई! नवनीतभाई! कबीर के भी शब्द बोले थे न सवेरे? कहीं वस्तु की यथार्थता है ही नहीं। यह भाषा ऊपर से लेकर ऐसा आत्मा और वैसा आत्मा, ऐसी सबने बात की है। समझ में आया?

इसलिए यह जीव मिथ्यात्व कषाय के अभावरूप मोक्षमार्ग तीन लोक में (भुवन में) सार... मिथ्यात्व और कषाय के अभावरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप **तीन लोक में (भुवन में) सार...** आता है न? छहढाला में आता है न पहले। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' यह छहढाला में आता है। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' **तीन लोक में (भुवन में) सार जिनमत के सेवन ही से पाता है,...** वीतरागमार्ग में कथित मार्ग से आत्मा प्राप्त होता है। समझ में आया? देखा? जिनमत का सेवन। वीतराग का मत अर्थात् अभिप्राय। वीतराग का अभिप्राय रागादि परद्रव्य से छूटकर तेरे स्वचैतन्य की दृष्टि का अनुभव कर, यह वीतरागता अभिप्राय है। समझ में आया?

जिनमत के सेवन ही से पाता है, अन्यत्र नहीं है। अन्यत्र ऐसा मार्ग मिले, ऐसा नहीं है। सुनने का ठिकाना नहीं होता, सुनानेवाले का ठिकाना नहीं होता कि क्या चीज़ है? वह दूसरे को कहाँ से समझावे और कहाँ से प्राप्त करे? बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! गजब गाथा, बहुत सरस गाथा आयी है, हों!

★ ★ ★

गाथा - ७९

आगे कहते हैं कि जिनशासन में ऐसा मुनि ही तीर्थंकर प्रकृति बाँधता है—लो, कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव, जैनशासन में कोई शुभभाव आवे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। दूसरे सम्यग्दर्शन के बिना, जैनशासन के बिना कहीं उसकी प्रकृति नहीं बाँधते। समझ में आया? इस प्रकार एक पुण्य की विशेषता बताते हैं। ऐसा पुण्य भी जैनशासन में होता है। मिथ्यादृष्टि—जिसकी विपरीत मान्यता है, उसमें तीर्थंकरगोत्र के परिणाम उसे हो ही नहीं सकते। सम्यग्दृष्टि आत्मज्ञानी को ऐसे परिणाम होते हैं।

श्रोता : अकेले मुनि ही बाँधते हैं? श्रावक नहीं बाँधते?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बाँधते ही हैं। यह तो मुनि की मुख्यता की बात है। समझ में आया? यह तो मुख्यता से बात है। चौथे गुणस्थान में बाँधते हैं। यह तो मुनि से शुरु करके सब बात की है। ये सब मुनि... द्रव्यलिंगी... समझ में आया?

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण॥७९॥

आहाहा! देखो! मोक्षमार्ग बताया; उसके साथ तीर्थंकरप्रकृति भी ऐसे जीव को होती है, ऐसा कहते हैं। दूसरे अज्ञानी को नहीं होती, फिर चाहे जैसी कषाय मन्द हो, नग्न हो, बाबा हो, मिथ्यादृष्टि नग्न दिगम्बर मुनि हो, उसे तीर्थंकरप्रकृति के परिणाम हो ही नहीं सकते।

सम्यग्दर्शन, वह जैनमत में कहा वह। सम्यग्दर्शन नाम तो बौद्ध में भी आता है। समझ में आया? बौद्ध में भी सम्यग्दर्शन, समाधि, बोधिलाभ, ऐसा बहुत आता है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग देव ने अखण्ड परिपूर्ण मार्ग अनादि से केवली देखते आये हैं। अनादि के केवली होते आये हैं, कहीं नये नहीं हैं। ऐसे सर्वज्ञ ने जो मार्ग देखा, जाना और कहा, उसके अतिरिक्त कहीं सम्यक् मार्ग नहीं हो सकता। इसके बिना तीर्थंकरपना भी अन्यत्र नहीं हो सकता। आया न?

जिसका चित्त इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है... अर्थात् यह भाव जब... समकिती को तीर्थंकरपने का शुभभाव है न! उस समय इन्द्रिय के विषय की आसक्ति नहीं है। अमुक समय समकिती को आसक्ति होती है परन्तु इस समय उसे नहीं है। वह इन्द्रिय के विषय से विरक्त हुआ है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो समकिती तो इन्द्रिय के विषय से विरक्त ही है, क्योंकि इन्द्रिय परद्रव्य है न! और राग परद्रव्य है, उससे विरक्त ही है, दृष्टि में तो उससे भिन्न ही है। आहाहा!

श्रोता : आहार भी विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ विषय है। बाहर विषय है, बहिर विषय है। आहाहा! वीतरागमार्ग!

कहते हैं, **इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है...** परसन्मुख के विषयवाला भाव, उससे भिन्न पड़ा है चित्त जाका... जिसका चित्त। यह तो श्रमण मुनि की मुख्यता से बात की है। **अर्थात् मुनि है, वह सोलहकारण भावना को भाकर...** सोलहकारण के ऐसे विकल्प उसे आ जाते हैं, उसे 'भाय' ऐसा कहने में आता है। **'तीर्थंकर' नाम प्रकृति**

को थोड़े ही समय में बाँध लेता है। आहाहा! थोड़े काल में सम्यग्दृष्टि तीर्थंकरप्रकृति बाँधकर, थोड़े काल में केवलज्ञान पाकर तीर्थंकरप्रकृति का फल समवसरण आदि आकर छूट जाएगा। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि तीन लोक की महाऋद्धिवाला तीर्थंकरपना। दूसरी ऋद्धि तो तेरी कहाँ रही, ऐसा कहते हैं। ऐसी जो ऋद्धि, जिसे उसकी रुचि नहीं। जिसे राग का भाव-आदर नहीं, उसे ऐसा राग होता है। समझ में आया?

जिसे इन्द्र के इन्द्रासन हिलें, भगवान जहाँ जन्मते हैं, इन्द्रासन डोलते। क्या है? ओहो! अवधिज्ञान से देखता है। भरतक्षेत्र में या महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर का जन्म हुआ। एक बार सिंहासन से नीचे उतर जाता है। सिंहासन समझते हो। सिंह-सिंह। चारों ओर सिंह हों, ऐसा उसका आसन होता है। हीरे के सिंह होते हैं। सिंहासन कहते हैं न? सिंहासन। कल भक्ति में आया था। खबर है? हरिआसन। भाई! कल भक्ति में आया था। हरिआसन। हरि अर्थात् सिंह। सिंह का आसन। बैठने के ऐसे आसन होते हैं कि जिसके चारों कौनों में हीरे के सिंह होते हैं। हीरा के ऐसे पाट होते हैं, पाट। उस पर इन्द्र विराजते हैं। इन्द्र, इन्द्राणी। कहते हैं कि वह भी तुच्छ है। जिसमें सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकरपना है, ऐसी जो ऋद्धि, उसे इन्द्र नमते हैं। कल आया था। करोड़ों मनुष्य अंजुली अर्थात् हाथ जोड़ते हैं। ऐसे पुण्यप्रकृति के परिणाम समकिती को होते हैं। समझ में आया? है यह राग। तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव है, वह राग है। परन्तु यहाँ यह कहना है कि भाव तो सम्यग्दृष्टि होवे, उसे ऐसा भाव होता है। जिसे राग का प्रेम है, रुचि है और पर का अहंकार है, उस मिथ्यादृष्टि को ऐसा भाव नहीं हो सकता। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सोलह बोल आते हैं न? सोलह बोल। सोलह बोल। सोलहकारण भावना। नीचे आते हैं। सोलह भावना। सम्यग्दर्शन के अनुभवसहित।

श्रोता : कौन सा भाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : रागभाव।

श्रोता : उसका अर्थ कल्याण...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; वह तो राग ऐसा आता है। वह राग यह सोलह भाव है, ऐसा राग आता है, बस। दुनिया का कल्याण होवे, ऐसा कहलाता है। कहलाता है कल्याण हो उसमें। मेरा पूर्ण हो उसका अर्थ ऐसा है, मेरा कल्याण पूर्ण हो, ऐसा विकल्प आता है। उस विकल्प में तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यह भाव का माहात्म्य है... देखो! यह सम्यग्दर्शन के अनुभव में ऐसा भाव होता है।

श्रोता : पुण्य का माहात्म्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य का माहात्म्य नहीं, सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। उसके माहात्म्य में ऐसा भाव होता है। अज्ञानी को यह भाव नहीं होता। जिसे सौ इन्द्रों के सिर नमते हैं। प्रभु! धन्य अवतार। समझ में आया? जिसने तीर्थंकर को गर्भ में रखा, उसकी माँ को इन्द्र आकर पहले नमस्कार करता है। उस समकिती को ऐसा भाव होता है, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? देखो, पाठ है न देखो! '**तित्थरनामकम्मं**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का स्पष्ट पाठ है।

यहाँ सिद्ध तो यह करना है कि जो तीर्थंकरगोत्र है, वह परिणाम सम्यग्दर्शन के बिना पूर्ण नहीं होते। चौथे में होते हैं, पाँचवें में होते हैं, छठवें में होते हैं, सातवें तक बँधते हैं। आठवें गुणस्थान से नहीं। परन्तु मिथ्यादृष्टि चाहे जैसा द्रव्यलिंगी मुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो और चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, तो भी उसे सम्यग्दर्शन नहीं; इसलिए उसे ऐसे परिणाम नहीं हो सकते। आहाहा! ऐसा करके सिद्ध यह करना है।

यह भाव का माहात्म्य है, विषयों से विरक्तभाव होकर... विषय की रुचि ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा के आनन्द के समक्ष दूसरे विषय में रुचि किसकी हो? धूल की? आहाहा! **सोलहकारण भावना भावे तो, अचिंत्य है महिमा जिसकी, ऐसी तीन लोक से पूज्य...** तीन लोक से पूज्य, '**तीर्थंकर**' **नाम प्रकृति को बाँधता है और उसको भोगकर...** भोग कर अर्थात् मिलती है। वास्तव में तो तीर्थंकर प्रकृति का फल तो तेरहवें

(गुणस्थान में) उदय में आता है।

श्रोता : तेरहवें गुणस्थान में...

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान होता है, तब तीर्थंकरप्रकृति का उदय आता है। क्या भोगना? समझ में आया? तीर्थंकर के परिणाम चौथे-पाँचवें, छठवें (गुणस्थान) में आवें परन्तु इस बाँधी हुई प्रकृति का फल तेरहवें (गुणस्थान) में आता है। केवलज्ञान होता है, तब प्रकृति का फल समवसरण आदि उदय में आता है। अब उन्हें कहाँ भोगना है? आहाहा! ऐई!

और उसको भोगकर मोक्ष को प्राप्त होता है। तीर्थंकरपना जिसे प्राप्त है, उसे अल्प काल में केवलज्ञान होकर मोक्ष में जाता है। यह तो यहाँ शुभभाव की विशेषता बतायी। बाकी वह उसे रोक देता है। परन्तु यहाँ कहते हैं ऐसा भाव जैनशासन में सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा होता है। इतनी बात है। समझ में आया?

दर्शनविशुद्धि,... लो, पहला बोल सम्यग्दर्शन की विशुद्धि। यह दर्शनविशुद्धि विकल्पवाली है। शुभराग साथ में है। सम्यग्दर्शन है, आत्मा का भान है। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, मेरे आनन्द के समक्ष सारी दुनिया, इन्द्र के इन्द्रासन, चक्रवर्ती के पद... उसमें नहीं आता है?

चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग,
काग वीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग॥

आहाहा! परन्तु उसे होवे और माने ऐसा, कहते हैं। अज्ञानी को ऐसा नहीं होता। आहाहा! काग वीट सम। कौवे की विष्टा खाने में भी काम नहीं आती। मनुष्य की विष्टा तो सूकर भी खाता है। कौवे की विष्टा है, वह खाद में भी नहीं डाली जाती। खातर समझते हो? खाद, उसे खेत में नहीं डालते। बिगाड़ डालती है। '**चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग,**' पुण्य का फल। तथापि '**काग वीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।**'

श्रोता : द्वेष नहीं किया जाता न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। द्वेष की बात नहीं। वह तो ज्ञेय है, ऐसा कहते हैं। वह तो ज्ञेय है, उसे कहीं उसकी महिमा नहीं है।

श्रोता : .....सम्यग्दर्शन की महिमा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात यह है। और सम्यग्दर्शन में ऐसे बन्ध के परिणाम आते हैं, इतना यहाँ बतलाना है। अच्छे हैं और ठीक हैं, ऐसा यहाँ कहना नहीं है। समझ में आया? परन्तु ऐसे जो परिणाम सर्वोत्कृष्ट पुण्य की प्रकृति, बियालीस प्रकृति, उसमें तीर्थंकरप्रकृति सर्वोत्कृष्ट है। यह सम्यग्दर्शन के आत्मा के भान की भूमिका में ऐसा भाव आ जाता है। ऐसी ऋद्धि होती है कि इन्द्रों को नहीं होती। इन्द्र भी उनके समक्ष पानी भरते हैं। खम्बा अन्नदाता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिनके मुकुट नम जाते हैं, जिनके चरणकमल में सौ-सौ इन्द्र आकर नमते हैं, बाघ और सिंह ऐसे नमते हैं।

श्रोता : थोड़े समय के लिये नारकियों को भी साता हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की साता, आत्मा की नहीं, बाहर की। समझ में आया? आत्मा की साता एक समय मिल जाए तो हो गया, जन्म-मरण मिट जाते हैं। बाहर की मिलती है। दर्शनविशुद्धि यह है विकल्पवाली, हों! समकित में एक विकल्प होता है, उसे यहाँ दर्शनविशुद्धि कही है, क्योंकि दर्शनविशुद्धि बँधने के पश्चात् समकिती बँधता नहीं है परन्तु उसमें विकल्प-भाव होता है कि मैं पूर्ण होऊँ, मेरा स्वरूप पूर्ण हो। बाहर से कहते हैं कि जगत का कल्याण होओ, हित होओ। सर्व जीव करूँ शासन रचि... आता है न? सर्व जीव करूँ शासन रचि, ऐसी भाव दया मन उल्लसी। यह विकल्प-राग है। सर्व जीव करूँ शासन... सब जीव, पूरी दुनिया धर्म प्राप्त करो। सब भगवान— सर्व जीव सिद्धपद को प्राप्त करो। आहाहा! इस सिद्धपद से पीछे क्यों फिरते हो? सिद्धपद। आहाहा! सामूहिक आमन्त्रण देते हैं। सब जीमण में आना। सबको कहते हैं कि आना-आना, मेरा लाभ लेने। समझ में आया? तुम्हारा लाभ लेने, ऐसा इसका अर्थ है।

(२) विनयसम्पन्नता,... दूसरा बोल। परन्तु यह सब दर्शन होवे तो विनय सम्पन्नता। नहीं तो इसके बिना कुछ नहीं। यह नीचे लिखेंगे। **इनमें (एक) सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न हो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं है...** समझ

में आया? **विनयसम्पन्न...** यह विकल्प है। देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान होता है। विनय... विनय... विनय... विनय... दासानुदास हूँ। सर्वज्ञ तीर्थंकर सन्तों का दासानुदास हूँ। समझ में आया? ऐसा भाव, सम्यग्दृष्टि को ऐसी भूमिका में ऐसा शुभभाव होता है, इतना बतलाना है। ऐसा भाव मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। नग्न मुनि नौवें ग्रैवेयक जाए, तो भी उसे यह भाव नहीं होता। उसका यह शुक्ललेश्या का (भाव) हो और नौवें ग्रैवेयक जाए। वापस नीचे पड़ता है। आहाहा!

(३) शीतव्रत के अणअतिचार... शीलव्रत अतिचाररहित पालन करता है। अतिचार न हो, ऐसा निर्दोष। ऐसा विकल्प होता है।

(४) अभीक्ष्णज्ञानोपयोग... बारम्बार ज्ञान का उपयोग अन्दर... तथापि वह ज्ञान उपयोग है, वह बन्ध का कारण नहीं है। बारम्बार ज्ञान के उपयोग का विकल्प आता है—राग, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। ऐसे समकिती के अतिरिक्त ऐसा अभिक्षीण ज्ञानोपयोग का भाव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। दूसरे भी कहते हैं। ओहो! क्या... सज्झाय! परन्तु दृष्टि की खबर बिना। समझ में आया? लो! चार बोल हुए। विशेष बोल कहेंगे। ऐसे भाव होवें तो तीर्थंकर गोत्र बँधती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल ९, शुक्रवार, ०१-०२-१९७४
गाथा - ७९, प्रवचन-१०४

७९वीं गाथा है। फिर से।

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण॥७९॥

अर्थ :- जिसका चित्त इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है... आत्मा शुद्ध आनन्दघन ऐसा अतीन्द्रिय आत्मा जिसे दृष्टि में, अनुभव में आया है, उसे पर विषय जो हैं, उनसे रुचि विरक्त है। आत्मा परमानन्दस्वरूप भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, ऐसा जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होकर प्रतीति सम्यग्दर्शन हुआ है, उसे पर विषय की ओर की विरक्तता है। ऐसे पूर्णानन्द का नाथ आत्मा का जिसे अन्तर भान हुआ, उसे परसन्मुख के विषयों से नास्ति है। सूक्ष्म बात है, छोटूभाई! आहाहा! मार्ग ऐसा है।

ऐसा श्रमण... मुख्य मुनिपने की बात की है। **सोलहकारण भावना को भाकर...** ऐसा कहते हैं कि जिसे यह आत्मा परम अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ऐसा जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन अनुभव होकर हुआ है, उसे तीर्थंकरगोत्र बाँधने के भाव होते हैं। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे यह भाव हो नहीं सकते, यह कहते हैं। **सोलहकारण भावना को भाकर...** 'भाकर' का अर्थ (यह कि) उसे शुभभाव ऐसा (होता है)। चैतन्यमूर्ति प्रभु भगवान के आनन्द के अनुभव के स्वाद में जिसे आत्मा का भान हुआ है, सम्यग्दर्शन, यह तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है अभी, हों! जिसे भवभ्रमण में से चौरासी के अवतार में से निकलने की दृष्टि हो गयी है, ऐसे अन्तर जीव को—अन्तरात्मा जीव को—ऐसा शुभभाव होता है कि जिससे तीर्थंकरगोत्र बाँधे। ऐसा कहना है। ऐसी ही भाषा लेते हैं न? '**भाऊण**'। इसका अर्थ यह कि वह भाव उसे आता है। आहाहा! वह तीर्थंकर नामप्रकृति कहो....

मुमुक्षु : करनेयोग्य नहीं। आता है परन्तु करनेयोग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है और विकल्प है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव राग है, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : .... तो मीठा लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को, बालक हो उसे विष्टा ठण्डी अच्छी लगे। बालक हो और दूध बहुत पिया हो, गर्मी का दिन हो (और) पतली दस्त हो। उसे ठण्डा बहुत अच्छा लगे। हाथ ऐसे करके चाटे ... उससे क्या? ऐई! आहाहा! वीतरागमार्ग, बापू! सूक्ष्म बात है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह तो अकेला राग है, शुभभाव है। वह धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा!

धर्म तो, भगवान आत्मा... सर्वज्ञ ने भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम (देखा और है) ऐसी जिसे अन्तर में दृष्टि राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता का भान जहाँ हुआ है... आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन हो गया। छोटूभाई! आहाहा! जिसे यह सम्यक्त्व का भान नहीं, आत्मा चिदानन्दमूर्ति प्रभु ध्रुव नित्यानन्द आत्मा की जिसे दृष्टि अनुभव की हुई नहीं, वे सब चाहे जो व्रत और तप और पूजा, भक्ति और यात्रा करे—वह सब बिना एक के शून्य हैं। कहो, मूलचन्दभाई! उन्होंने आत्मा क्या है वीतराग कहते हैं वह (आत्मा), उसे उन्होंने अन्तर से सुना ही नहीं।

अन्तरात्मा चिदानन्द भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का धाम त्रिकाल अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान आत्मा है। उसके सन्मुख होकर जो दृष्टि—सम्यग्दर्शन—निर्विकल्प प्रतीति, अनुभव हो, उस जीव को ऐसे भाव आते हैं, ऐसा है। तीर्थंकरगोत्र बाँधने के भाव ऐसे जीव को होते हैं। जिसे अभी दृष्टि का भान नहीं, वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वे धर्म हैं, धर्म का कारण है, ऐसा माननेवाले जो मिथ्यादृष्टि हैं, उन्हें यह तीर्थंकरगोत्र का भाव नहीं आता। समझ में आया? यह कोई पक्ष नहीं, यह तो वीतराग का मार्ग है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्त परमात्मा महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं। यह महावीर भगवान आदि तो सिद्धपद को प्राप्त हुए। वे अरिहन्त पद में विराजते हैं। उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में गये थे। वहाँ से आकर यह

शास्त्र रचे। उसमें यहाँ ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरगोत्र की भावना अच्छी है, ऊँची है, यह तो व्यवहार से बात है। समझ में आया? परन्तु यहाँ बतलाना है कि जो धर्मात्मा जिसे आत्मदर्शन हुआ है, गृहस्थाश्रम में हो परन्तु जिसे आत्मदर्शन, आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप का अनुभव हुआ है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, ऐसे जीव को ऐसा भाव होता है, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया? पाटनीजी! ऐसी सूक्ष्म बात है। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! वहाँ कोई तुम्हारे रुपया-बुपया काम नहीं आते, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। बाहर में दुनिया में कहलाये न करोड़पति, पाँच करोड़, दस करोड़, दस-दस लाख की, बीस-बीस लाख की आमदनी वर्ष की। पागल, गहल, पागल उसकी महिमा करे। समझ में आया? यहाँ तो परमात्मा अपनी आनन्द और ज्ञान की सम्पदा का धनी प्रभु उसका जिसे भान हुआ, वह प्रशंसायोग्य है और ऐसे जीव को ऐसा व्यवहार भाव होता है। आहाहा!

वह **तीर्थंकर नाम प्रकृति को थोड़े ही समय में...** पाठ है न? **'अचिरेण' बाँध लेता है।** सूक्ष्म है, भगवान! बात ऐसी है, प्रभु! अभी तो यह चलती नहीं। अभी तो बाहर में यह व्रत करो और अपवास करो और पूजा करो, भक्ति करो, यह धर्म। जो पुण्य और विकार है, उसे जगत के जीवों ने धर्म माना है। मूलचन्दभाई! यहाँ कहते हैं....

भावार्थ :- यह भाव का माहात्म्य है, (सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञानसहित...) सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव ने जो तत्त्वज्ञान कहा, वीतराग सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्वज्ञान, अज्ञानियों ने कही हुई बात, वह सच्ची नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जानने में आये हैं। ऐसे सर्वज्ञ वीतराग के मुख से निकले हुए तत्त्व, उनका जिसे ज्ञान है। ऐसे **(तत्त्वज्ञानसहित—स्वसन्मुखता-सहित...)** आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्दधाम की सन्मुखता और संयोगों तथा विकार दया, दान, परिणाम से विमुखता। यह भारी शर्तें बहुत कठिन! अरे, इसने कभी धर्म क्या है, यह अनन्त काल में किया नहीं। मुनि हुआ दिगम्बर सन्त, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत पालन किये, वह कहीं धर्म नहीं।

मुमुक्षु : महाव्रत पालन किये तो सही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पालन किये अर्थात् राग को पालन किया? वीतरागस्वभाव को छोड़ दिया दृष्टि में से। आहाहा! अरेरे! यह चौरासी के अवतार, जन्म-मरण करके भटक मरा है यह। कहीं सुखी नहीं। यह सब करोड़ोंपति कहलाये, वे बेचारे दु:खी हैं, हों! ऐई! छोटूभाई! सच्ची बात होगी? ऐई! भगवानजीभाई! यह भी करोड़पति है। आहाहा! धूल में भी नहीं, सुन न! तुझे भान नहीं है।

मुमुक्षु : पैसादार को....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसादार अर्थात् क्या? जड़वाला? पैसावाला अर्थात् जड़वाला ऐसा? आत्मा जड़वाला हो सकता है? आहाहा! पूर्व के किसी पुण्य के कारण से पुण्य जलने लगा और बाहर संयोग आये, वह कहीं बुद्धि है, इसलिए आते हैं—ऐसा कुछ है नहीं। बुद्धि के बारदान हों, उसके पास अरबों रुपये होते हैं। बारदान समझ में आया? कोथला। यह शान्तिलाल खुशाल गुजर गये न बेचारे, देखो न! अपने गोवा-गोवा। दो अरब चालीस करोड़। दो अरब चालीस करोड़ धूल में दु:खी थे बेचारे। एक क्षण में पन्द्रह मिनिट में गुजर गये ...फँस गये... खर्च करने को साथ में पैसे भी नहीं थे उसके पास। ऐसा सुना था। बीस लाख रुपये दो प्रतिशत के ब्याज से (लिये हुए)।

मुमुक्षु : धन्धे में रुके थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धे में परन्तु... नहीं थे न। मशीन बड़ी ढाई-ढाई करोड़ की मशीन और लाख-लाख की वह क्या कहलाती है? जहाज। ऐसे तीन सौ जहाज हैं। क्या कहलाता है? मैंगेनिज। ... लोहा लोहा ऐसा है। सब सुना है और सब खबर है। उसमें कुछ धूल नहीं। उसमें तीन सौ तो उसके पास। लाख-लाख रुपये के तीन सौ हैं। समुद्र में तीन करोड़ के। सब वहाँ रुक गये। उसके बहनोई कहते थे। आते हैं न अपने पोपटभाई। उसके बहनोई पोपटभाई हैं न लींबड़ी। परनारावाले। उनके सगे बहनोई। उनकी पुत्री है न यहाँ बालब्रह्मचारी। वे कहते थे कि जा आये हम मातम में। परन्तु पुण्य कम हो गया है। ऐसा कहते थे। धूल में भी नहीं, मूढ़ मानो। सुख है भगवान आत्मा में और वह सुख मानता है पैसे में और पुण्य-पाप के भाव में, उसे भगवान मिथ्यादर्शन पाखण्डी, अज्ञानी कहते हैं। छोटूभाई! यहाँ तो यह बात है, भगवान! आहाहा!

कहा था न एक बार? (संवत्) १९८१ के वर्ष। थे तुम? लींबड़ी में। कैसे डगली? कैसे? ईंट-ईंटवाले। भाईलाल का बाप। भाईलाल है न लींबड़ी, उसका पिता था मोहनलाल। ... सब जानते थे न, ६१ वर्ष तो यहाँ हुए। दीक्षा लिये ६१ (वर्ष) चलता है। सबको जानते हैं या नहीं? ८१ में पूछने आये एक बार। दरबार व्याख्यान में आये थे। ... दरबार है न दादभा थे न। वे व्याख्यान में आये थे। लालचन्द सेठ संघवी उपाश्रय में। फिर वहाँ हम बाहर गये तब आये। महाराज! इस समय ३५-४० हजार रुपये पाठशाला में दिये उन लोगों ने। इन पैसेवालों का धर्म में स्थान है या नहीं? ऐसा मुझे पूछा। लींबडी से अंकेवाळियुं है न दो कोस दूर। वह अंकेवाळिया गये थे हम। बाहर बैठे थे। मैं और .... दो थे। वहाँ वह घोड़ागाड़ी आयी और वहाँ बैठे। पैसेवाले का धर्म में स्थान है? मैंने कहा, बिल्कुल नहीं। पैसा धूल, उसका स्थान धर्म में क्या हो?

मुमुक्षु : उसका स्थान तो कहीं होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थान है पाप में। पाप के करनेवाले पापी, ऐसे पैसेवाले की महिमा करे। मूलचन्दभाई! यहाँ तो यह बात है, भगवान!

यहाँ तो आत्मा परमानन्दस्वरूप जिसमें अनन्त लक्ष्मी पड़ी है। आहाहा! उसके सन्मुख होकर जिसने अन्तर सम्पदा का स्वीकार किया नहीं, वे सब भिखारी, रंक, चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा! यह उसके विशेषण हैं। यहाँ परमात्मा यह कहते हैं। आहाहा! जिसे अन्तर भगवान... अरिहन्त भगवान को सर्वज्ञ (पना) केवल (ज्ञान) होता है, वह सर्वज्ञपना आवे कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? लटकता है? अन्तर सर्वज्ञस्वभाव स्वरूप में पड़ा है। तीन काल—तीन लोक को एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जाने, ऐसी जो सर्वज्ञशक्ति अन्तर में पड़ी है। भगवान आत्मा के अन्तर में पड़ी है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे? इसने कभी विचार भी किया नहीं। ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का अनुभव करके जिसने वर्तमान दशा में सर्वज्ञपर्याय प्रगट की, ऐसे सर्वज्ञ वीतराग ने जो तत्त्व कहे। है न? **(तत्त्वज्ञानसहित—स्वसन्मुखतासहित...)** पुण्य और पाप के भाव, वह तो मिट्टी, शरीर धूल है यह। मिट्टी जड़ है। जड़ होकर रहे हैं। कोई आत्मा का नहीं और आत्मा के होकर रहे नहीं। और अन्दर में जो दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वे विकार, पुण्य विकार होकर रहे हैं। और यह हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग,

वासना, कमाना, ऐसे जो भाव, वह तो पापवासना का भाव होकर रहा है। उससे भिन्न भगवान अन्दर है। आहाहा! जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता (भरी हुई है)। आहाहा!

जैसे छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है, तो उसे घोंटने से बाहर आती है। वह अन्दर में है, उस प्राप्त की प्राप्ति है। उसी प्रकार भगवान... यह छोटी पीपर होती है न? छोटी पीपर। चौंसठ पहर घूँटे, तब चौंसठ पहरी चरपराई बाहर आती है न? वह कहाँ से आयी? पत्थर से आयी? उसमें है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में शरीरप्रमाण प्रभु आत्मा होने पर भी उसके अन्दर में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अतीन्द्रिय आनन्द और पूर्ण वीतरागता भरी है अन्दर। आहाहा! उसके सन्मुख होकर और पुण्य, पाप और संयोगी चीज़ तथा एक समय की अवस्था से विमुख होकर, उस पूर्ण स्वभाव में सन्मुख होकर जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, उस जीव की बात है यहाँ।

वह **विषयों से विरक्तभाव होकर...** यह विषय का अर्थ साधारण नहीं, परन्तु परसन्मुख के झुकाव से विरक्त है, ऐसा भाई! आहाहा! पाटनीजी! क्या कहा यह? भगवान! तेरी जो अन्तर सम्पदा पूर्णानन्द का नाथ तू है, भाई! उसे जिसने विषय बनाया, उसे जिसने ध्यान में ध्येय बनाया... भारी कठिन बातें, भाई! उसे परसन्मुख के विषय से विमुख हो गया है वह। समझ में आया? ऐसी बातें! वे तो सेठिया कहे कि यह बातें तो बहुत ऊँची है। हमारे लिये कुछ है नहीं। तुम्हारे लिये यह है, सुन न!

मुमुक्षु : भेदज्ञान करने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे यह बात... बाहर का बहुत। शाहूजी शान्तिप्रसाद। चालीस करोड़। अपने यहाँ आनेवाले थे उद्घाटन में। उनके हाथ से उद्घाटन (था), फाल्गुन शुक्ल तेरस में। वे यह सुनकर ऐसा कहे, महाराज! यह तो बहुत ऊँची बात, हों! हमारे जैसे... परन्तु यह तुम्हारे (लिये) पहली बात यह है। हमारे अर्थात् और कौन? परन्तु वह बाहर का घुंटाया हो न कि यह करो, यह व्रत करो, यह तप करो, यह सामायिक करो, प्रौषध करो। धूल भी नहीं सामायिक प्रौषध। वह तो राग की क्रिया है। समझ में आया? आहाहा! 'अजर प्याला पीओ मतवाला, किन्ही अध्यात्मवासा, आनंदघन

चेतन व्है खेले देखे लोग तमाशा।' भगवान आत्मा। आहाहा! अपने स्वभाव की शुद्धता की पूर्णता के सन्मुख जिसकी दृष्टि हुई है, उस सम्यग्दृष्टि जीव का यह विषय है। चौथे गुणस्थान में, हों! अभी गृहस्थाश्रम में समकिती हो तो यह है। इसके बिना वह समकिती नहीं। उसे परसन्मुख के विषय की दशा दृष्टि में से छूट गयी है। समझ में आया? आहाहा!

विषयों से विरक्तभाव होकर सोलहकारण भावना भावे... यह तो 'भावे' यह शब्द लिया, परन्तु उसे यह भाव आवे। समकिती जीव को तीर्थंकरगोत्र बाँधने का विकल्प—राग होता है। मिथ्यादृष्टि जिसे अभी आत्मा की खबर नहीं, उसे समकित बिना ऐसा भाव उसको हो नहीं सकता। आहाहा! षोड्शभावना भावे। शब्द पाठ में है सही न। '**कारणाइं भाऊण**' अर्थात् वह आता है, ऐसा। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है शुभभाव, पुण्यभाव, रागभाव, अधर्मभाव। छोटूभाई! जिससे बन्ध पड़े, वह धर्म होगा? धर्म तो भगवान आत्मा आनन्द का नाथ, उसका अबन्धस्वभाव और अबन्धपरिणाम प्रगट करे, वह धर्म है। आहाहा! कहा था न तब। (संवत्) १९८५ के वर्ष, पौष महीना था। बोटाद। व्याख्यान चलता था। वहाँ तो सभा बड़ी चले न और हमारा तो मान बहुत था न सम्प्रदाय में। बहुत। पहले रायचन्द गाँधी और गृहस्थ सब (आवे)। व्याख्यान में बहुत लोग पन्द्रह सौ। वह भाव आया। पौष महीने की बात है ८५ की। १५ और २३ = ४७ हुए। कहा, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव धर्म नहीं। छोटूभाई! धर्म नहीं अर्थात् अधर्म है, वह शुभराग है। खलबलाहट। सभा तो माने। सभा में तो हमारा बहुमान था न! सभा में सब शान्ति से सुने। एक साधु था, उसने खलबलाहट कर डाला।

मुमुक्षु : दूसरे किसी की ताकत नहीं ऐसा कहने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सभा बीच में ८५ की बात है। दो बातें की थीं सभा में। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। धर्म से बन्ध होता नहीं न! जिस भाव से बन्ध हो वह धर्म नहीं। और पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं। सम्प्रदाय

में रहकर कहा था, हों! आहाहा! बड़ी सभा बोटाद में, तीन सौ घर तब। अब तो बढ़ गये हैं। गृहस्थ लोग बहुत। परन्तु मन्दिरमार्गी की अपेक्षा स्थानकवासी के... बहुत सभा बड़ी। यह तो ४५ वर्ष पहले की बात है। कहा, भाई! महाव्रत के भाव वे शुभ विकल्प और राग है, आस्रव है। बापु! वह धर्म नहीं। यह दो बातें की थीं। सभा तो सुने, बड़े गृहस्थ थे न। रायचन्द गाँधी। मुम्बई में है न वह हीरालाल, नहीं? कपड़े की दुकान है या लोहे की? हीरालाल चम्पकलाल और हीरालाल रायचन्द। लोहे का व्यापार है। आहाहा!

अरे! भगवान! भाई! तुझे तेरी जाति की खबर नहीं। तेरी जाति में तो अकेली वीतरागता भरी है। वीतराग भगवान होता है, वह कहाँ से होता है? वह वीतरागता कहीं बाहर से आती है? अरे! परन्तु उसकी खबर नहीं होती और धर्म करते हैं, ऐसा माने। अनादि से ठगा गया है, ऐसा का ऐसा। भव का अभाव करने की बातें इसने सुनी नहीं और इसे भव का अभाव हो जाये, (ऐसा माने)। वह मरकर जाये चार गति में भटकने। आहाहा!

कहते हैं, यह **अचिंत्य है महिमा जिसकी...** तीर्थंकरगोत्र है न? पुण्य प्रकृति है न? सब ब्यालीस प्रकृति में तीर्थंकर प्रकृति ऊँची है। आहाहा! जिनके जन्म के समय इन्द्र उपस्थित हों, वह पुण्यप्रकृति ऐसी ही होती है न। आहाहा! श्रेणिक राजा भगवान के समय में समकिती हुए, आत्मज्ञानी हुए और उन्होंने तीर्थंकरगोत्र बाँधा। वे अभी पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में नरक में हैं। परन्तु वहाँ से (निकलकर) तीर्थंकर होनेवाले हैं। आगामी चौबीसी के पहले तीर्थंकर। छोटूभाई! सुना है या नहीं? वह तो सम्प्रदाय में बात चलती है। वह तत्त्व की दृष्टि की बात नहीं। यह सम्यक् आत्म-अनुभव प्राप्त। आहाहा! फिर तीर्थंकरगोत्र बाँधा, परन्तु पहले नरक का आयुष्य बँध गया था, इसलिए नरक में... वहाँ गये। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है वहाँ। ढाई हजार वर्ष हुए। साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाकी हैं। वहाँ से निकलकर रानी के गर्भ में जन्म लेंगे। आहाहा! उन्हें कोई व्रत भी नहीं थे, तप भी नहीं था, चारित्र कुछ नहीं था वहाँ। वह सम्यग्दर्शन, क्षायिक समकितदर्शन। आहाहा! माता के गर्भ में....

इन्द्र आकर माता को नमस्कार करेगा। हे माता! रत्नकूखधारिणी! ऐसा रत्न तुमने तुम्हारे गर्भ में रखा। माता! पहला तो नमस्कार तुझे है। नरक में से आयेंगे, हों! आहाहा! नमो रत्नकूखधारिणी। ऐसे रत्न की माता! तुम तीर्थंकर की माता नहीं परन्तु हमारी माता हो। यह पुण्य प्रकृति। तीर्थंकरपना बाँधा हुआ है न, उसका यह अचिन्त्य माहात्म्य है। परन्तु वह सम्यग्दृष्टि को होता है, इसके अतिरिक्त होता नहीं। जिसे अभी सच्ची श्रद्धा किसे कहना? देव-गुरु-शास्त्र सच्चे किसे कहना?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य का फल है, धर्म का फल नहीं। यह पुण्य का फल। धर्म का फल तो अन्दर में आनन्द की शान्ति आवे वह (है)। आहाहा! अरेरे! इसने आत्मा की दया नहीं की। मेरा क्या होगा? मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा? चौरासी के अवतार की बड़ी पाट पड़ी है। आहाहा! इसे जब आत्मा की दया आती है, और सम्यक्त्व प्रगट करता है, तब दुनिया की दया इसे आते है कि दुनिया कैसे तिरे? ऐसा शुभराग तीर्थंकरपने के बन्ध का कारण होता है। आहाहा! यह कहते हैं।

अचिंत्य है महिमा जिसकी ऐसी तीन लोक से पूज्य तीर्थंकर नाम प्रकृति को बाँधता है और उसको भोगकर... वह तीर्थंकर प्रकृति... संयोग में इन्द्र जिसकी सेवा करेंगे। उस तीर्थंकर को स्वर्ग में से सब वस्त्र और ... आते हैं। ऐसे भाव को भोगकर मोक्ष को प्राप्त होता है। **भावना के नाम है,...** पहली **दर्शनविशुद्धि...** पहली मूल चीज़। आहाहा! लोगों ने तो समकित अर्थात्? यह देव-गुरु-शास्त्र को माना और नौ तत्त्व को माना (तो) हो गया समकित। धूल भी नहीं। सुन न अब! ऐसी मान्यता राग की तो अनन्त बार की है। समझ में आया? दर्शनविशुद्धि। जिसकी श्रद्धा में, भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसकी श्रद्धा में आया है और उसके साथ उसे शुभराग उत्पन्न हुआ, उसे यहाँ दर्शनविशुद्धि कहते हैं। अकेला समकित नहीं, परन्तु समकित के साथ शुभ विकल्प उठता है। उस भाव से वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। समझ में आया? आहाहा! यह पहला बोल है। यह ऐकड़ा है।

यह होवे तो **विनयसम्पन्नता...** दूसरा बोल होवे तो यह शुभभाव होता है।

समकिती को देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान, विनयादि होते हैं, वह शुभभाव है; धर्मभाव नहीं। इस विनयसम्पन्नता से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, परन्तु उसमें वह समकित पहले होवे तो। सम्यग्दर्शन का भान नहीं और विनय करे देव-गुरु-शास्त्र का (तो वह) पुण्य बाँधे, तीर्थंकरपना न बाँधे। आहाहा! अरे! अनादि काल से भटकाऊ जीव, चौरासी के अवतार में भटक-भटक कर अनन्त अवतार किये। उन्हें टालने की दृष्टि तो आत्मा स्वभाव में दे तब है। आहाहा! यह दर्शनविशुद्धि समकित में जिसे देव-गुरु-शास्त्र की विनयसम्पन्नता होवे, वह शुभराग है। उसे तीर्थंकरगोत्र बँधता है, परन्तु वह समकितसहित होवे तो। मात्र देव-गुरु-शास्त्र की विनय और भक्ति (होवे, उसे तो) अकेला पुण्य बँधता है साधारण पाप। (पापा)नुबन्धी साधारण। पाप का पुण्य। आहाहा!

३. शीलव्रतेष्वनतिचार,... आत्मा के शीलव्रत में निरतिचार व्रत पालन करे। परन्तु उस सम्यग्दर्शन की भूमिका में। जिसे अभी सम्यग्दर्शन नहीं और व्रतादि को निरतिचार पाले, (वह) पुण्य बाँधता है। धर्म नहीं होता, तीर्थंकरगोत्र नहीं बाँधता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आज्ञा की। भान उसका मूल तो नहीं। आहाहा! अभी तो इस बात में पूरी बात गोपन हो गयी है। खबर है न सम्प्रदाय में तो। २१ वर्ष और ४ महीने व्यतीत किये हैं न उसमें। छोटूभाई! आहाहा! यह बात ही नहीं। यह तो वह व्रत और यह और यह और यह। बस यह। समकित अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र को मानना, वह समकित। यह बात वीतराग नहीं कहते। पण्डितजी!

आत्मा के सम्यक् अनुभव की भूमिका में सम्यग्दर्शन हो, उसे ऐसी विनयसम्पन्नता हो और उसमें शीलव्रत निरतिचार (हो)। उसके शील ब्रह्मचर्य आदि निरतिचार हो, परन्तु है वह शुभभाव। ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालना, वह भी है शुभराग; धर्म नहीं। आहाहा! आजीवन का ब्रह्मचर्य, बालब्रह्मचारी हो तो भी भाव वह शुभ है; धर्म नहीं, पुण्य है। धर्म तो ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा, उस आत्मा में ब्रह्म अर्थात् आनन्द में चरे और रमे, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। ऐसे ब्रह्मचर्य के भानसहित जिसने शीलव्रत निरतिचार शुभराग से पालन किया हो, तीर्थंकरगोत्र बाँधे। आहाहा! समझ में आया?

४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग... अभी यही सब चलता है बहुत। बारम्बार शास्त्र पढ़े, पढ़े वह अभीक्ष्णज्ञानोपयोग। अभीक्ष्ण अर्थात् बारम्बार शास्त्र का अभ्यास। परन्तु वह सम्यग्दर्शनरहित अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग ही खोटा है। जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, जिसमें पुण्य और पाप के राग से रहित भगवान, ऐसी अनुभव की दृष्टि हुई है, वह जीव ज्ञान का, शास्त्र का बारम्बार अध्ययन करता हो तो वह शुभराग है।

मुमुक्षु : उसे शुभराग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभराग है।

मुमुक्षु : जिसे आत्मा का भान हुआ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भी बारम्बार शास्त्र का पठन, वह शुभराग है। यहाँ तो वस्तु की स्थिति का वर्णन है। आहाहा!

अभीक्ष्ण अर्थात् बारम्बार शास्त्र... शास्त्र... शास्त्र... शास्त्र... वाँचन, शास्त्र पूछना, शास्त्र परिचय, शास्त्र... परन्तु उस सम्यग्दर्शन की भूमिका प्रगट हुई हो, वह ज्ञान में बारम्बार व्यापार—उपयोग रखे तो वह शुभराग है, उस शुभराग से तीर्थंकरगोत्र बाँधे। अभी बहुतों को ऐसी उपमा देते हैं। फलाना साधु, क्षुल्लक अभीक्ष्ण उपयोगी है, अभीक्ष्ण उपयोगी है। आता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमको खबर नहीं? आहाहा! परन्तु मूल चीज़ बिना? आहाहा!

अभीक्ष्ण अर्थात् बारम्बार शास्त्र का अभ्यास। वह शुभभाव है। सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा होता है। वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। बाद में आगे कहेंगे।

(४) अर्हद्भक्ति.... परमात्मा त्रिलोकनाथ अरिहन्त भगवान की भक्ति। यह अरिहन्त की भक्ति।

मुमुक्षु : संवेग रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवेग रह गया। हाँ, हाँ। संवेग-संवेग। बाद में आयेगा, नीचे आयेगा।

५. संवेग... आहाहा! जिसे पूर्णानन्द का नाथ आत्मा पूर्ण स्वरूप प्रगट करे, मोक्ष का जिसे ध्येय होता है अन्दर। पूर्ण मोक्ष प्राप्त करने की जिसे वृत्ति होती है, वह संवेग है। है शुभराग। समझ में आया? वह संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था होते हैं। परन्तु समकिती को ऐसा संवेग होता है। उसके शुभभाव में तीर्थंकरगोत्र बाँधे। मात्र आत्मज्ञान रहित प्राणी को ऐसा संवेग हो, वह पुण्य बाँधे, धर्म नहीं होता, तथा वह तीर्थंकरगोत्र नहीं बाँधता। आहाहा! संवेग।

६. शक्तितस्त्याग... शक्ति प्रमाण राग का त्याग करे। बाह्य चीज़ का त्याग घटाने में में राग को घटाये। शक्ति प्रमाण, हठ से नहीं। शक्ति न हो और बाहर से सब त्याग करके बैठ जाये, वह तो मिथ्यादृष्टि है। जिसे अन्तर में शुद्ध प्रभु सर्वज्ञस्वभावी प्रभु का भान हुआ है, ऐसा समकिती जीव शक्ति प्रमाण राग को घटाये। हठ करके एकदम समकित हुआ, तो ले लो मुनिपना, (ऐसा नहीं होता)। बापू! मुनिपने की दशा कोई अलग चीज़ है। मुनिपना कैसा होता है, वह तूने सुना नहीं। आहाहा! यह सब दीक्षा लेते हैं न, वे तो सब मिथ्यादृष्टि जीव हैं। ऐई! छोटूभाई! फिर तुम्हारे जैसे गृहस्थी के घर से शोभायात्रा निकाले। यह मानो कि ओहोहो! धूल भी नहीं। उसे अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। आहाहा! अभी अरिहन्तदेव किसे कहना? गुरु निर्ग्रन्थ मुनि किसे कहना? और भगवान का सच्चा अहिंसा धर्म किसे कहना? उसकी जिसे अभी खबर नहीं, वे सब दीक्षा लेकर दख्या लेते हैं। वे दु:ख को ओढ़ते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा का भान हुआ है। मैं एक राग का कर्ता भी नहीं। राग जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह मेरा कर्तव्य नहीं। परन्तु परिणमन आता है। समझ में आया? उसकी शक्ति प्रमाण त्याग (करे)। ऐसे छोड़ दो, छोड़ दो फलाना, छोड़ दो फलाना। क्या छोड़े? छोड़ा हुआ ही है। कहाँ घुस गया है अन्दर में? राग की एकता टूटने के पश्चात् शक्ति प्रमाण राग की मन्दता का भाव करे। होड़ाहोड़ में दूसरे दीक्षा ले लेवे और यह ले और यह करे, (ऐसा) समकिती नहीं करता। समझ में आया? शक्तितस्त्याग।

७. शक्तितस्तप... अपनी शक्ति हो तत्प्रमाण तप करे। आठ-आठ अपवास, पन्द्रह-पन्द्रह अपवास करते हैं न, वह तो सब सम्यग्दर्शनरहित अपवास है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जो आत्मा का भान हो, वहाँ वह तप करने की शक्ति देखे, उस प्रमाण करे।

हठ से न कर डाले। लो, अठ्ठम, लो... लो फलाना, चतुर्विध आहार (त्यागरूप) अपवास। हठ से करे, वह समकितदृष्टि ही नहीं। समझ में आया? शक्तितस्तप। अपने बल की योग्यता देखकर तप अर्थात् राग घटाये। वास्तविक तप तो आत्मा के आनन्द स्वरूप में उग्ररूप से पुरुषार्थ करके अतीन्द्रिय आनन्द को ओपना। जैसे सोना को गेरूँ लगाकर सोना ओपता और शोभता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के उग्र पुरुषार्थ द्वारा जो शोभा प्रगट करे, उसे तप कहते हैं। बाकी सब लंघन है। आहाहा! वह जीव शक्ति प्रमाण राग को घटाये। उपवास करना हो (तो) हठ करके नहीं। आहाहा! अरे! उसका उपाय, बापू! अन्तर प्रभु विराजता है, स्वयं परमात्मा स्वरूप से ही है आत्मा। उसका जिसे अन्दर में साक्षात्कार हुआ है, अन्तरात्मा जगा है, भगवान आत्मा का साक्षात्कार किया है, आत्मज्ञान हुआ है, वह जीव शक्ति प्रमाण तप करे। हठ करके करे नहीं। वह भी एक शुभभाव है। आहाहा! पुण्य है। उससे समकिती तीर्थंकरगोत्र बाँधता है।

८. साधुसमाधि... सन्त धर्मात्मा आनन्दस्वरूप में लहर करनेवाले ऐसे जीवों को समाधि उपजाना, सहायक होना, वह शुभभाव है, पुण्य है। समझ में आया? साधुसमाधि। सन्त... सन्त भी कहना किसे? आहाहा! जिन्हें अन्तर में आनन्द की लहर उठी है, जिन्हें बाहर में नग्नदशा हो गयी है और जो जंगल में बसते हैं, उन्हें यहाँ साधु वीतरागदर्शन में कहा जाता है। समझ में आया? ऐसे साधु को समाधि उपजाना अर्थात्? सहायक होना। कोई रोग में, क्षुधा में, तृषा में ध्यान रखना, वह शुभभाव है, वह पुण्यभाव है। परन्तु उस समकिती को ऐसा भाव हो, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। अकेले सच्चे साधु हों और सेवा करे, परन्तु स्वयं मिथ्यादृष्टि है तो उसे इतना पुण्यभाव जरा होता है, धर्म-बर्म नहीं। वह तीर्थंकरगोत्र नहीं बाँधता। ऐसा गजब मार्ग, भाई! परन्तु शर्तें बहुत! आहाहा!

९. वैयावृत्त्यकरण... धर्मात्मा की वैयावृत्त्य करना समकिती जीव की, वह भी एक शुभभाव है। परन्तु वह शुभभाव तीर्थंकरगोत्र उसमें बाँधे कि जिसे समकित हो तो। समझ में आया? वैयावृत्त्य। वैयावृत्त्य... आता है। यह चर्चा हुई है। बोटाद के पास है न एक सेंथली। सेंथली गाँव है छोटा। (संवत्) १९८१ की बात है। संवत् १९८१

गढडा चातुर्मास में जाना था। मूलचन्दजी थे यहाँ बोटाद। हमारे सम्प्रदाय के गुरुभाई। उसे ... वहाँ गये थे। वहाँ आया एक भोलाभाई गोपाणी है। अहमदाबाद में रहता है। अपना है न मन्दिर खाडिया। उस मन्दिर के साथ में है। वह भोलाभाई आये थे। महाराज! वैयावृत्य से तो तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। ८१ की बात है। कहा, बापू! परन्तु तीर्थंकरगोत्र बाँधे न? बन्ध है न, उसकी प्रशंसा कैसी? वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे, उसे मोक्ष होगा। परन्तु कौन बाँधे? आहाहा! वे वहाँ आते थे। सुना। कुछ खबर नहीं होती। साधु को खबर नहीं होती, सुननेवाले को खबर नहीं होती। दस बोघा, दस बोघली, दस बोघा के बच्चा। गुरु कहे यह, वह कहे सच्चा। कुछ भान नहीं होता। कहाँ भान था? वह व्यापार में होशियार कहलाये। ऐई! छोटाभाई! आहाहा! **वैयावृत्त्यकरण,...** परन्तु वह वैयावृत्त्य सच्चा धर्मी जीव हो समकिती और स्वयं समकिती हो, वह ऐसे साधु की वैयावृत्त्य आदि करे तो वह शुभभाव है। उस शुभभाव में तीर्थंकरगोत्र बाँधे। गजब बात यह। वैयावृत्त्यकरण।

१०. अर्हद्भक्ति.... परमात्मा त्रिलोकनाथ की भक्ति, पूजा, मन्दिर, यात्रा, वह सब शुभभाव है। समकिती को होता अवश्य है, परन्तु वह हेयबुद्धि से आता है। अज्ञानी को तो, उन अर्हंत की भक्ति से धर्म है, ऐसा मानता है। समझ में आया? यहाँ तो अर्हंतभक्ति वह शुभभाव है, राग है, पुण्य है। वह भी ऐसा पुण्य किसे हो? सम्यग्दृष्टि को। आहाहा!

मुमुक्षु : हमको कहीं तो खड़े रखो आप?

पूज्य गुरुदेवश्री : खड़ा रखते हैं न।

मुमुक्षु : कहाँ रखते हो? संसार में।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहाँ है वहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो जैसी हो, वैसी होगी। आहाहा!

अर्हद्भक्ति... णमो अरिहंताणं ऐसी भक्ति किया करे। जपमाला, वह शुभभाव

है। परन्तु समकिती होवे तो वह इस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे। जिसे सम्यग्दर्शन का भान भी नहीं, वह यह अर्हंतभक्ति से अकेला पुण्य बाँधे मिथ्यात्वसहित। आहाहा!

११. आचार्यभक्ति....

मुमुक्षु : ....भक्ति की।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है न। अरिहन्त-सिद्ध आता है न। पवयणं।

मुमुक्षु : उसमें दर्शनशुद्धि पहली है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ दर्शनशुद्धि पहली है। उसमें २० बोल आते हैं। ज्ञातासूत्र में है। है न, सब पढ़ा हुआ है न। बत्तीस सूत्र एक-एक। अक्षर-अक्षर पढ़ा हुआ है। वहाँ तो यह व्याख्यान में पढ़ा हुआ है।

मुमुक्षु : उसमें तो २० बोल आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : २० बोल आते हैं। अरिहन्त भक्ति ... आता है। इसका अर्थ कि व्यवहारवाला... पहले ... यहाँ दर्शनशुद्धि... यहाँ पहली दर्शनविशुद्धि ली। यह दोनों के कथन में अन्तर है। श्वेताम्बर का कथन और वीतराग दिगम्बर का कथन (दोनों में) पूरा अन्तर है। मार्ग में अन्तर है, बापू!

यहाँ तो पहली सम्यग्दर्शन की... अब आगे कहेंगे कि सम्यग्दर्शन एक हो, तो वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे और वह न हो, ऐसे पन्द्रह बोल हों, ऐसा नहीं होता।

आचार्यभक्ति... आचार्य महामुनि अब अभी तो है कहाँ। अभी तो साधु भी नहीं कोई हिन्दुस्तान में। ऐसी बातें कठोर, बापू! वीतराग जो कहते हैं, ऐसे सम्यग्दर्शनसहित चारित्र वह तो नग्न मुनि को होता है। दिगम्बर हों, जंगल में बसे। मार्ग बहुत बदल गया, भाई! भगवान के विरह में... लक्ष्मी घटे, माँ-बाप मर जाये, फिर बाद में हो लड़कों में विवाद। इसी प्रकार यहाँ ज्ञान घटा... आहाहा! और कोई देव अरिहन्तदेव या कोई मुनि सन्त रहे नहीं। आहाहा! पीछे से यह सब भेद पड़े। आहाहा! ऐसा है, भाई! वीतराग का मार्ग तो सनातन अनादि दिगम्बर धर्म, वह सनातन जैनदर्शन है। उसके साधु तो जंगल में बसते हैं। आहाहा! ऐसे आचार्य होते हैं कि जिन्हें आत्मा का भान-अनुभव है,

तदुपरान्त ज्ञानाचार, दर्शनाचार आदि व्यवहार होता है। उनकी भक्ति समकिती करे तो उस शुभभाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे।

मुमुक्षु : तीर्थंकरगोत्र बँधे...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसकी योगयतावाला जीव लिया हो अनादि। ...वह जीव ही ऐसा हो, उसे ही ऐसा भाव आवे। अनादि से है वह। हठ करके आवे नहीं। वह द्रव्य ही ऐसा होता है अनादि का।

मुमुक्षु : .... न बँधे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, ऐसा भाव उसे ही होता है। उस जाति का द्रव्य हो उसे। जरा सूक्ष्म बात है। अनादि का और राग की मन्दता वह समकिती जीव को जिसने ... वह जीव अनादि की जाति ही ऐसी होती है। सूक्ष्म बात है। सभी समकिती तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा कुछ नहीं है।

मुमुक्षु : शुभभाव तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव होता है परन्तु तीर्थंकरगोत्र बाँधता नहीं।

मुमुक्षु : तीर्थंकरगोत्र बाँधने जैसा शुभभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभभाव वह भी समकिती को ही होता है। और वह जीव द्रव्य है वैसा, उसे ही होता है। जरा सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भक्ति करे तो शुभभाव हो और उसे धर्म माने तो मिथ्यात्व होता है।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि धर्म माने....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकरगोत्र धूल में भी बाँधे नहीं। तीतर बाँधे।

मुमुक्षु : स्वयं सम्यग्दृष्टि है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं सम्यग्दृष्टि और सामनेवाले की भक्ति मिथ्यादृष्टि हो, परन्तु सच्चा (लिंग) बराबर हो तो शुभभाव हो उसे। इतना है। यह तो सच्चे (मुनि)

समकिती की भक्ति करे, उसका शुभभाव है। मोक्षमार्ग में लिया है न। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, बराबर आचरण हो। समकिती सच्चा हो,... भक्ति करे, परन्तु वह भाव में विशेष ... यह तो (मुनि) सच्चे हों और सच्चा समकिती हो, उसके भाव की बात है। बहुत शर्तें। आहाहा!

यह पैसेवाले हों न करोड़पति बहुत। फिर दो-पाँच लाख यहाँ... दो-पाँच लाख दुकान में हों, भागीदार रखे। उसकी शर्त हो कि देख भाई! बारह आने का ब्याज। पहले की बात है, हों! अभी तो डेढ़ प्रतिशत हो गया है। बारह आने के ब्याज पाँच लाख और तू भागीदार। आधा भाग मेरा। पैसे देते हैं न पहले। करोड़पति हों तो कहीं अकेला सब व्यापार नहीं कर सके। पाँच लाख अच्छा व्यक्ति खोजकर दे। बारह आने का ब्याज और मुनाफा आठ आना मेरा, आठ आना तेरा। महीने-महीने में सम्हालने देखने आऊँगा। ... यह सब शर्तें होती हैं। इसी प्रकार यह शर्तें यहाँ है कि जिसे सम्यग्दर्शन का व्यापार प्रगट हुआ है और जो धर्मात्मा समकिती आदि है, उसकी भक्ति करे तो उसे शुभभाव हो, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधेगा। ऐसी शर्तें हैं। यहाँ तक आया। कहो, कितने बोल हुए? ११ हुए। विशेष आयेगा..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ३, रविवार, १०-०२-१९७४
गाथा - ७९, प्रवचन-१०५

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण॥७९॥

थोड़ी अटपटी भाषा है इसमें।

अर्थ :- जिसका चित्त इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है... जिसका चित्त पर विषय की रुचि से दशा बदल गयी है, जिसे आत्मा अन्तर विषय-ध्येय में आया है, जिसकी दृष्टि में आत्मा शुद्ध पूर्ण ध्रुव वह जिसका सम्यग्दर्शन में विषय बना है। और पर विषय चाहे तो तीर्थंकर हो... देखो! तीर्थंकरगोत्र कौन बाँधे, उसकी व्याख्या आयेगी। परन्तु प्रथम उसकी दृष्टि की दिशा द्रव्य के ऊपर होती है। उसे ऐसा विषय ... अर्थात् पर विषय जितने राग से लेकर भगवान, उनके प्रति ध्येय जिसका छूट गया है। अन्तर भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध के सन्मुख जिसकी दृष्टि हुई है, वह मुनि। **ऐसा श्रमण अर्थात् मुनि है...** यह कहीं सब मुनि तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा नहीं, तथा मुनि ही तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा नहीं। परन्तु यहाँ मुनि की प्रधानता से कथन है। भावपाहुड़ है न! शुद्धभाव, जिनभाव, शुद्ध उपयोग भाव, उसे यहाँ भावप्रधान कहते हैं। वह मुनि को होता है, इस अपेक्षा से यहाँ मुनि को लिया है। वरना तीर्थंकरगोत्र कहीं मुनि ही बाँधे और वे भी सब मुनि बाँधे, ऐसा नहीं होता। उस द्रव्य की वैसी ही कोई योग्यता होती है, उसे ही ऐसा विकल्प सहज स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि की भूमिका में उस जीव की उस अनादि की धारा में ऐसी उसकी योग्यता ही होती है। जिसकी योग्यता द्रव्य में नहीं और वह तीर्थंकरगोत्र का विकल्प करे और तीर्थंकर हो, ऐसा नहीं होता।

यह बड़ी चर्चा चली थी बहुत वर्ष पहले कि तीर्थंकरगोत्र चाहे जो बाँधे?—कि, नहीं। वह द्रव्य—वह आत्मा ही इस जाति का हो अनादि से कि उसे सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् इस प्रकार का विकल्प हो कि जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे। इस जाति की द्रव्य की योग्यता ही ऐसी होती है। सभी जीव तीर्थंकरपने के विकल्पवाले हों, ऐसा नहीं।

इसलिए कहते हैं श्रमण मुनि। यहाँ तो (मुनि की) प्रधानता की बात ली है न।

सोलहकारण भावना को भाकर... यह शब्द है, इसमें जरा विवाद है। बड़ी चर्चा चली थी इसमें। ... लिखा है, यह शब्द पड़ा है इसमें। तीर्थंकरगोत्र मोक्ष का कारण है, तीर्थंकरगोत्र। वह तीर्थंकरगोत्र का भाव है बन्ध का कारण, (है), वह आस्रव। परन्तु दूसरे मुनि को या साधारण समकिती को उस जाति का परिणाम नहीं होता, ऐसे इसके परिणाम होते हैं, ऐसा पृथक् पाड़कर उसे इस शुभभाव से तीर्थंकरपना बाँधता है। परन्तु धर्मी की बुद्धि, उस भाव में हेयबुद्धि होती है। तथापि '**भाऊण**' शब्द पड़ा है।

मुमुक्षु : ऐसी भावना भावे, ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहा है न। इससे भावना का अर्थ कि ऐसा भाव उसे होता है, होता है। उस जीव की वैसी योग्यता जिसे अन्तर्मुख दृष्टि हुई उसे। उसे भी, उसे भी उसकी योग्यता हो, उसे ऐसा विकल्प होता है। जिसे अन्तर्मुख दृष्टि हुई, उन सभी समकिती को तीर्थंकरगोत्र के परिणाम हों और बाँधे, ऐसा नहीं। समझ में आया? इसलिए व्यवहारनय से यह षोडशकारणभावना भावे, ऐसा कथन किया है। वरना है तो वह आस्रव। आस्रव की भावना ज्ञानी को होती नहीं। धर्मी की भावना तो आत्मा के स्वभावसन्मुख की भावना होती है। आहाहा! कैसे उग्ररूप से स्वभाव के सन्मुख हुआ जाये? ऐसी उसकी भावना होती है। परन्तु व्यवहारनय के कथन में जैसे पंच महाव्रत मुनि पालन करें, अट्ठाईस मूलगुण पालन करें, ऐसा आता है न? पालन करे, वह तो आस्रव है। आहाहा! परन्तु व्यवहारनय के कथन में ऐसा कथन आता है। आहाहा! '**भाऊण**' शब्द पड़ा है न! षोडशकारणभावना भाता है। षोडशकारणभावना तो आस्रव है।

मुमुक्षु : उसकी तो हम पूजा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पूजा करते हैं। वह तो सब व्यवहार के कथन हैं। आहाहा! और उस जीव की जाति ही ऐसी उसकी होती है। उसे ही ऐसा उस प्रकार का विकल्प आता है। दूसरे प्रकार के, विकल्प दूसरे प्रकार के बहुत हों समकिती को,

परन्तु ऐसा विकल्प तो उस द्रव्य की योग्यतावाले जीव को ही आता है। इतना पृथक् करने की भावना भाता है, ऐसा कहा गया है। **सोलहकारण भावना को भाकर...** ऐसा है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कहाँ गये श्रीचन्दजी? देखो, उसमें आता है, हों, भावना भाने का।

मुमुक्षु : दर्शनविशुद्धि भावना भाये, सोलह तीर्थंकर पद पाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है न। आती है भावना। दर्शनविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय, परमगुरु होय, जय जय नाथ (परम गुरु होय)। अपेक्षा के कथन हैं।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि भावप्रधान जिसे द्रव्यदृष्टि हुई है, उस जीव को ऐसा भाव होता है जो पुण्य में ऊँचे में ऊँचा पुण्य (तो) तीर्थंकरप्रकृति, उसे होता है बन्धन, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? **तीर्थंकर नाम प्रकृति को थोड़े ही समय में...** ऐसा शब्द है न वापस। '**अचिरेण**' अल्प काल में वह तीर्थंकरप्रकृति बाँधेगा। बड़ी चर्चा चली थी पहले। रामविजय... कि यह विकल्प है, वह सब समकिती को आवे? और वह विकल्प उस प्रकार का लाना चाहे तो आवे? कनुभाई! समझ में आया? वह नहीं आता। वह तो वह द्रव्य ही चैतन्य का अनादि का उस जाति का होता है कि जिसके होने में शुभ विकल्प की जाति ऐसी उसे उत्पन्न होने की ही होती है। धन्नालालजी! ऐसी बात है। समझ में आया? वह **तीर्थंकर प्रकृति को थोड़े ही समय में बाँध लेता है।** यहाँ तो यह गाथा इस प्रकार की है न।

भावार्थ :- यह भाव का माहात्म्य है, (सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञानसहित...) सम्यग्दर्शन बिना यह भाव होते नहीं। तीर्थंकरपने का जो विकल्प है, वह सम्यग्दर्शन बिना हो नहीं सकता। मिथ्यादृष्टि यह भावना करे और बाँधे, ऐसा उसे आता नहीं, आता ही नहीं उसे।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य नहीं, ऐसा हो। सम्यग्दर्शन कारण और राग कार्य, वह तो उसके स्वरूप में ही नहीं। वह तो अकार्यकारणशक्ति में आ गया। अकार्यकारण। आत्मा में ऐसा एक अकार्यकारण नाम का गुण है कि जो यह राग बन्धन तीर्थंकरपने का भाव, उसका कारण होता नहीं और उस राग के कारण से आत्मा की निर्मलता हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसी बातें गजब, भाई! कहो, समझ में आया? उस द्रव्य की जाति की चर्चा हो गयी थी बहुत वर्ष पहले। रामविजय और वे सब कहते थे न तीर्थंकरपना बाँधे, तीर्थंकरपना बाँधे। यह भाव करो, करो। परन्तु वह भाव वास्तव में तो समकिती को भी जो आनेवाले (की योग्यतावाला) द्रव्य हो, उसे ही आते हैं। जरा सूक्ष्म बात है। आहाहा! समझ में आया? उसके द्रव्य के पर्याय की विकृति की अवस्था के प्रवाह में इस जाति का जिसे भाव आनेवाला हो, उसकी बात है। उसकी द्रव्य की योग्यता में वैसा भाव न हो, समकिती होने पर भी ऐसा भाव न हो, न आ सके। सूक्ष्म बात है भाई जरा! आहाहा! वीतरागमार्ग है। यह तो न्याय की तुलना से इसे तौलना चाहिए। एक भी न्याय में फेरफार हो तो भी न चल सके। यहाँ भाषा भले ऐसी ली (कि) भावना भावे। इसका अर्थ कि उस जीव को ऐसा भाव आवे ही। आहाहा! समझ में आया?

वह **विषयों से विरक्तभाव... स्वसन्मुखतासहित...** जरा इतना स्पष्टीकरण कोष्ठक में किया। जिसे अन्तर में भगवान ध्रुवस्वरूप परमानन्द की मूर्ति द्रव्यस्वभाव जिसे सन्मुख हुआ है। आहाहा! जो निमित्त की, राग की और पर्यायबुद्धि से विमुख हुआ है। जिसे द्रव्यस्वभाव की सन्मुख बुद्धि हुई है। आहाहा! इतनी शर्त हैं इसमें। वह **विषयों से विरक्तभाव होकर सोलहकारण भावना भावे...** भाषा ऐसी है। **तो अचिंत्य है महिमा जिसकी, ऐसी तीन लोक से पूज्य तीर्थंकर नाम प्रकृति को बाँधता है...** वह पुण्य के उत्कृष्ट परिणाम इस प्रकार के समकिती को उस जाति के द्रव्यवाले को होते हैं। इतनी शर्तें हुई, यह भाषा से। धन्नालालजी! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : शुभभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव तो ठीक। ऐसा नहीं। इन्हें पकड़ में नहीं आता। सूक्ष्म बात है मूलचन्दभाई! यह तो सब ऐसा का ऐसा सुने और चले, ऐसा यह नहीं। शुभभाव

का अर्थ क्या? यह सम्यग्दृष्टि जीव को, जिसकी दृष्टि स्वसन्मुख हुई है, उसे भी ऐसा भाव, ऐसा द्रव्य ही उसकी योग्यतावाला हो, उसे ऐसा भाव होता है, ऐसा यहाँ कहना है।

मुमुक्षु : सबको नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको नहीं। शुभभाव, शुभभाव का क्या परन्तु शुभ? आहाहा! सब जीवों को ऐसा भाव आवे समकिती को, क्षायिक समकिती हो लो न, परन्तु क्षायिक समकिती हो, इसलिए सबको ऐसा भाव हो, (ऐसा नहीं है)। उस द्रव्य की योग्यता वैसी उसे न हो तो न आवे। आहाहा! समझ में आया? धवल में तो जो तीर्थंकर होनेवाला जीवद्रव्य, उसे तो अनादि मंगल गिना है, भाई!... क्या कहा? जो जीव तीर्थंकर होनेवाला है, उस जीव को अनादि मंगल गिनने में आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह कहते हैं न, कहा न। उस जीव की वैसी योग्यता ही होती है कि उसे अनादि मंगल गिनने में आया है। धवल के पहले भाग में (आता है)। समझ में आया? यह बात हो गयी थी पहले। बहुत बातें हो गयी हैं। यह तो ३९ वर्ष यहाँ हुए। कृष्ण तीज को ३९ पूरे होते हैं, चैत्र कृष्ण। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं कि जिसे भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु के सन्मुख जिसकी दृष्टि हुई, ऐसा मुनि। यहाँ मुनि की प्रधानता से कहना है। वरना समकिती भी बाँधता है, पाँचवाँवाला भी बाँधता है तीर्थंकरगोत्र। परन्तु मुनि की प्रधानता में भाव शुद्ध उपयोग की प्रधानता का कथन है। शुद्ध उपयोग मुनि को होता है। ऐसे मुनि को... ऐसा उसका द्रव्य ही होता है। सूक्ष्म बात है, हों! आहाहा! उस द्रव्य की पर्याय के क्रम में ऐसा ही उसका भाव आता है।

मुमुक्षु : वह तो सब जीवों की योग्यता अलग-अलग होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक जीव की पर्याय की योग्यता अलग-अलग होती है। पंच महाव्रत के परिणाम उसे हों, सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँधे, ऐसा भाव होता है, परन्तु तीर्थंकरपने के भाववाला जीव जाति ही उसकी अलग होती है। समझ में आया?

यह सब चर्चा पहले हो गयी है। जो वह बँधे, षोडशभावना करो, सोलह भावना करो, ऐसा नहीं होता। धन्नालालजी! उसे होता नहीं। यहाँ तो उत्कृष्ट स्वसन्मुखता है और उत्कृष्ट भाव ऐसा हो, ऐसा सिद्ध करने को यह भावना भावे, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

सोलहकारण भावना भावे तो अचिंत्य है महिमा जिसकी... ओहो! **ऐसी तीन लोक से पूज्य...** तीन लोक से पूज्य हो। तीन लोक से पूज्य, वह साधारण अज्ञानी तो पूजे नहीं उसे। परन्तु वे मुख्य पुरुष पूजें, उसमें सब आ गये। उनकी कोई गिनती नहीं। इन्द्र, सेठिया, बड़े-बड़े राजा विद्याधर वे पूजते हैं तो उसे बड़े असाधारण मानते हैं। कि भले साधारण उन्हें न माने, परन्तु यह मानते हैं उसमें वे आ गये। समझ में आया? आहाहा! **अचिंत्य है महिमा जिसकी...** भाषा है न! **तीन लोक से पूज्य...** आहाहा! महापुरुषों से पूज्य, इन्द्रों से पूज्य अर्थात् सबसे पूज्य, ऐसा कहने में आता है। ऐसा का ऐसा शब्दार्थ करने जाये कि तीन लोक से पूज्य सब अज्ञानी सब नहीं।

मुमुक्षु : वे तो बहुत गालियाँ दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गालियाँ देंगे अज्ञानी। और समन्तभद्रस्वामी तो ऐसा कहते हैं भगवान की स्तुति करते हुए। हे भगवान! अभव्य आपको नहीं पूजता। ऐसा पाठ है। अभव्य नहीं पूजता। क्योंकि जो राग की रुचिवाला जीव है, वह भगवान वीतराग की पूज्यता उसको नहीं आती। धन्नालालजी! आहाहा! है न श्लोक में है न। स्तुति में है। भगवान की स्तुति में है। अभव्य ग्रंथिसत्व—ऐसा शब्द है।। ग्रंथिसत्व। अर्थात् राग की एकताबुद्धिवाला अभव्य वह आपको नहीं पूजता। क्योंकि उसे वीतरागता का माहात्म्य राग की एकतावाले को नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? बापू! यह मार्ग तो सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग है। उसमें एक-एक न्याय में कहीं विरुद्धता होनी नहीं चाहिए। आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! आपको तो अभव्य अर्थात् राग की एकताबुद्धिवाला—जिसे राग का एकपना है, उसे राग के प्रति पूज्यपना है। उसे वीतराग सर्वज्ञदेव पूर्ण ज्ञानपर्याय और पूर्ण वीतरागता की पूज्यबुद्धि उसे कैसे आवे? आहाहा! जिसे अपना वीतरागस्वभाव,

उसकी जिसे पूज्यबुद्धि हुई है, चाहे तो यह भगवान के तीन लोक के नाथ, हों, उनकी पूज्यबुद्धि निश्चय से छूट गयी है अन्दर से। समझ में आया? वह जीव वीतराग को पूज्यरूप से स्वीकार कर सकेगा। दूसरा जीव वीतराग को पूज्यरूप से शब्दों से हो और बाहर से हो, वह कुछ वस्तु नहीं। अन्तर में, अन्तर में। ओहोहो! अन्तरंग जो परिणाम जीव के। अन्तरंग अर्थात् अंग जिसका, आत्मा का अंग जो निर्मल परिणाम, ऐसे वीतरागी परिणामवाला जीव वह प्रभु! आपको पूज्य मानेगा। क्योंकि रागरहित भाव की ही पूज्यता समझ में आ गयी है। समझ में आया? आहाहा!

वह रागरहित सर्वज्ञ वीतराग को वही पूज्यरूप से स्वीकार कर सकेगा। परन्तु जिसे... उसमें आयेगा आगे। है न भोग का। '**श्रद्धधाति**' आयेगा, उसके बाद आयेगा। ८४ में आयेगा। '**पुण्णं भोयणिमित्तं**' है न बन्ध की गाथा (२७५)? समयसार में। यह ८४ आयेगा।

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं॥२७५॥

यह गाथा बन्ध अधिकार की है। वह इसमें आचार्य ने डाली है। आहाहा! अज्ञानी... प्रश्न यह करेगा शुभभाव का। भोग के कारण से। अर्थात् ऐसे भोग की इच्छा हुई, ऐसा नहीं। भोग की इच्छा से हो, तब तो ऐसे परिणाम उसे होते नहीं। परन्तु आत्मा का अनुभव जो भोग आनन्द का है, ऐसे अनुभव के आनन्द की जिसे खबर नहीं, उसे राग की क्रिया में, राग के फल में भोग का अनुभव आयेगा, ऐसी उसके फल में बुद्धि है। भले यहाँ बुद्धि नहीं, परन्तु उसके फल में राग को जो भला जाने, उसे राग के फल में प्रिय बुद्धि हुए बिना रहेगी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

है न अपने यहाँ, 'जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है।' है न? अन्तिम-अन्तिम छोटा। जिसे पुण्य की रुचि, उसे जड़ की रुचि। उसे आत्मा की (रुचि) रहती नहीं। आत्मा के धर्म की रुचि नहीं रहती। आहाहा! उसे रागरहित चैतन्यस्वरूप जहाँ भाव में भासन हुआ नहीं, वह वीतरागभाव को कैसे पूज्य कर सकेगा? उसका बहुमान उसे कैसे आयेगा? आहाहा! अन्तर में जो राग से लिपट गया है, भगवान वीतराग मूर्ति

प्रभु ऐसे आत्मा को राग से लिप्त हो गया है, राग में एकाकार है, प्रभु! ऐसे तुझे—वीतराग को कैसे मानेगा वह? आहाहा! ऐसा वीतरागभाव, उसका उसे बहुमान भी कैसे आयेगा? जिसे यह वीतरागभाव स्वभाव का बहुमानपना आया नहीं, इससे उसे भोग की बुद्धि का राग में ही उसका प्रेम है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें तो अन्धी दौड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो समझने का समझनेवाले को समझना। व्यक्तिगत के लिये यहाँ कहाँ बात है? अन्दर जिसे राग का प्रेम है, ऐसे (जीवों को) वीतराग के प्रति प्रेम नहीं आता। जिसकी जाति का अंश जिसे समझ में नहीं आया अन्दर। आहाहा! ऐसा कहते हैं। जाति अचिंत्यस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसे स्वरूप का जिसे अन्तर में भावभासन का माहात्म्य आया नहीं, प्रभु! वह तुझे—पूर्ण वीतरागता को कैसे स्वीकार करेगा? उसका कैसे सत्कार करेगा? क्योंकि यहाँ सत्कार किया नहीं और राग के सत्कार में पड़ा है, राग के प्रेम में फँसता है, वेश्या में फँसा है, वह व्यभिचार में फँसा है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसी सूक्ष्म वस्तु है। वहाँ तुम्हारे सब स्थूल-स्थूल चले ठीक सा।

मुमुक्षु : यहाँ निवृत्त होकर आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त होकर आये हैं? वहाँ बहुत वर्ष रहे थे।

मुमुक्षु : बड़ी कम्पनी में बड़ा खाता हो, उसमें नौकरी करे, फिर बोटाद से यहाँ आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ऐसी है, बापू! आहाहा! इस दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त यह बात कहीं है नहीं। समझ में आया? दिगम्बर कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का यह स्वरूप ही है। वीतरागभाव से जिसकी शुरुआत होती है। और उसके कारण में यह व्यवहार रागादि कारण है ही नहीं। आहाहा! ऐसा जो जीव, कहते हैं, यह भोग निमित्त कहा न पुण्य के भोग... यह गाथा है २७५वीं, बन्ध अधिकार में।

मुमुक्षु : धर्म भोग वर्णन किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म अर्थात् पुण्य, शुभभाव। वहाँ कहाँ धर्म था? धर्म अर्थात्

अज्ञानी को शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का सब भाव उसे भोग निमित्त से है। उसमें उसके फल में उसे संयोग मिलेगा, उसमें आसक्ति में लीन हो जायेगा। क्योंकि जिसे रागरहित भगवान आत्मा का माहात्म्य जिसे अन्तर से जागृत नहीं हुआ। समझ में आया? आहाहा!

अचिंत्य है महिमा जिसकी... अब फिर यहाँ अचिंत्य महिमावाला परिणाम लिया। अचिंत्य महिमावाला तो भगवान है। आहाहा! पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, जिसकी अचिंत्य महिमा, विकल्प से जिसकी चिन्तवना हो नहीं सकती, ऐसी वह चीज़ है, ऐसी चीज़ की सन्मुख की दृष्टि जिसे हुई और उस जीव को ऐसी जाति के योगवाले प्रकृति के परिणाम आवें, उन परिणाम का फल उसे अचिंत्य प्रकृति बँधेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ऐसी तीन लोक से पूज्य तीर्थंकर नाम प्रकृति को...** ठीक! प्रकृति **बाँधता है...** शुभ पुण्य है उस जाति का। उस भूमिका में ऐसा भाव उसे आता है। उस जीव की जातिवाला हो उसे, हों! चन्दुभाई! वह सबको आवे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। क्षायिक समकिती हो, उसे न आवे और क्षयोपशम समकिती हो, उसे आवे। उस द्रव्य की वैसी परम्परा की जाति का क्रम ही ऐसा है। बहुत सूक्ष्म बातें हैं, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य की जाति में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ अन्तर है। यह तो बहुत चर्चा हो गयी है पहले। उस द्रव्य की वैसी ही योग्यता में राग की योग्यतावाला वह ... जीव ... उस जाति का राग, समकित हुआ है, उस जीव को ही आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! वीतरागमार्ग ऐसा है।

और उसको भोगकर मोक्ष को प्राप्त होता है। लो! तीर्थंकरप्रकृति को भोगता है और उस तीर्थंकरप्रकृति का उदय तो तेरहवें (गुणस्थान) में आता है। तो भोगना क्या वहाँ? तीर्थंकरप्रकृति का उदय जो है, वह तेरहवें में आता है। केवलज्ञान हो, तब उस प्रकृति का उदय आता है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उस जीव को जन्म से इन्द्र आकर सेवा करे आदि होता है। उस जाति की योग्यता से भोगता है, ऐसा कहा जाता है, ऐसा। तीर्थंकर का जीव है। इन्द्र लावे उसका भोजन, वस्त्र। वह तो यहाँ ऐसी जाति की

योग्यता है। अभी तीर्थंकर प्रकृति भले उदय नहीं आयी, परन्तु वह आनेवाली है, उसके पहले ही ऐसी उसकी योग्यता होती है। आहाहा! समझ में आया? इन्द्र, जहाँ वस्त्र हैं शाश्वत् सन्दूक में, वे वस्त्र लावे और पहने। यहाँ के सुई के किये हुए, सीले हुए नहीं उन्हें। मोहनभाई है या नहीं? नहीं आये। है, ठीक। यह कुदरत से सीले हुए वस्त्र पहनते हैं। ऐई! सीले हुए ही होते हैं हों! वे शाश्वत। हाँ, हाँ, वह कुदरती ऐसा है। शाश्वत है न, वह कहीं किसी ने घड़कर रखा नहीं। ऐसा ही होता है। उनके वस्त्र ही ऐसी जाति के शाश्वत् होते हैं। विशाल रत्न करंडिया होते हैं, उनके अन्दर किये हुए ही पड़े हों। इन्द्र लाकर पहनावे। इस जाति की योग्यतावाले जीव की बात ली है यहाँ। आहाहा!

ये सोलहकारण भावना के नाम हैं, १. दर्शनविशुद्धि... यह दर्शन की शुद्धि अर्थात् समकित की शुद्धि, ऐसा नहीं, परन्तु उसके साथ उस जाति का विकल्प हो कि जिससे तीर्थंकरप्रकृति बँधे, उसे यहाँ दर्शनविशुद्धि कहा जाता है। अकेले समकित से तीर्थंकर प्रकृति बँधे, ऐसा नहीं होता। परन्तु उसे बाँधनेवाला समकित सहित जीव होता है, उसे ऐसा विकल्प होता है, उसे दर्शनविशुद्धि में मिलाकर बात की है। समझ में आया? यह मुख्य कारण है।

२. विनयसम्पन्नता... इसके बाद दूसरा कारण। परन्तु यदि वह सम्यग्दर्शनसहित हो, उसकी विनयसम्पन्नता बन्ध का कारण होता है। वैसे तो अज्ञानी विनयसम्पन्नता में (आता है परन्तु) वह समकिती विनयसम्पन्नतावाला होता है। समकिती चौथे, पाँचवें, छठवें में विनयसम्पन्न धर्मात्मा होता है। परन्तु उसे यह बँधे, ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

३. शीतव्रतेष्वनतिचार... जिसके व्रतों में निरतिचार व्रत होते हैं, ब्रह्मचर्य आदि निरतिचार होते हैं। है तो वह एक विकल्प। परन्तु जो ऐसा सम्यग्दर्शन स्वसन्मुख की दृष्टि है, ऐसे जीववाले में ऐसी जिसकी योग्यता हो तीर्थंकरपने की, उसे ऐसा भाव होता है। अकेले सम्यग्दर्शन बिना या सम्यग्दर्शन हो, तथापि ऐसा भाव हो तो तीर्थंकर (प्रकृति) बाँधे, ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया? ऐसी सब शर्तें भारी। शीतव्रतेष्वन अर्थात् अतिचाररहित। वह सम्यग्दृष्टि जीव है, स्वसन्मुख की दृष्टि है, ऐसे जीव को

ऐसा भाव होता है। वह समकितसहित है दर्शनविशुद्धि, इसलिए उसे तीर्थंकर प्रकृति बँधती है। अकेले शील के निरतिचार व्रत पाले और तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसा है नहीं। आहाहा!

४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग,... अभी बहुत से ऐसा कहते हैं, बारम्बार ज्ञान का उपयोग रखे, ज्ञान का उपयोग रखे। ऐसा नहीं। जिसे सम्यक् चैतन्य की सत्ता जागृत हुई है, आहाहा! सम्यग्दर्शन में चैतन्य की जागृति जिसे जगी है, वह जीव यदि बारम्बार ज्ञान में उपयोग रखे तो वह विकल्प है, उसमें तीर्थंकरगोत्र बाँधने के योग्यवाला जीव (हो, वह) बाँधे। समझ में आया?

मुमुक्षु : जो बाँधने की योग्यतावाला हो, वह बाँधे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही बाँधे। दूसरे को क्या है? भले बारम्बार अभीक्ष्ण (उपयोग करे)। ऐसी बातें हैं यह। यह तो वीतराग की पेढ़ी है, बापू! वीतराग की पेढ़ी में कुछ भी आड़ी-टेढ़ी कल्पना करे और माने, वह उसमें नहीं चलता। आहाहा! तीन लोक का नाथ केवली, जिनके तलिया इन्द्र और गणधर चाटे। आहाहा! जिसकी रज सिर पर चढ़ाये। उनका यह मार्ग है। यह तो उस मार्ग की स्थिति तो जो स्थिति है, उसे समझे, उसे उस जाति की सच्ची कथनशैली आवे। आहाहा! समझ में आया? वरना अन्दर फेरफार आये बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग!

अभीक्ष्ण अर्थात् बारम्बार जानने का उपयोग जगा। आहाहा! कल तो कहा नहीं था? कि कर्म का ज्ञान करे, वह भी ज्ञान नहीं। कर्म अजीव है। पहले (कलश में) आया था न, कलश। वह कर्म एक परमाणु से लेकर स्कन्ध, अचेत महास्कन्ध हैं पूरे लोक में। पूरे लोक में स्कन्ध होते हैं और दूसरे सब स्कन्ध होते हैं। और कर्म की जाति, जिससे तीर्थंकरपना बँधे, ऐसे रजकण, उसका जिसे ज्ञान है, परन्तु उसका (सच्चा) ज्ञान तो जिसे यह हो, वह तो समकिती को होता है। और जिसे अकेला कर्म का ज्ञान है, आठ कर्म, यह प्रकृति और यह स्थिति और यह अनुभाग तथा यह प्रदेश, वह कोई कर्म का नाम भी ज्ञान नहीं और सुख नहीं और उस कर्म के जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। ...भाई! समझ में आया? जिसमें आत्मा सम्मिलित नहीं... आहाहा! जिसकी

ज्ञानदशा में चैतन्य आया नहीं, उसे यह कर्म के ज्ञान से ज्ञान तीन काल में होता नहीं। आहाहा! कर्म का बहुत जानपना हो तो उसे सच्चा ज्ञान हो, (ऐसा नहीं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे बोल में आता है। दस बोल समकित के। आज्ञा समकित और, नहीं दस बोल आते? आत्मानुशासन में दस बोल। करणानुयोग का बहुत स्वयं ने डाला है। नहीं? टोडरमलजी ने। करणानुयोग का ऐसा भाव हो तो उसे बीजरुचि कहना। नहीं आता? दस प्रकार में आता है। है? उसमें है मोक्षमार्ग (प्रकाशक) (नौवें अध्याय) में? 'परन्तु वह जिन आज्ञा प्रमाण है, इतना सिद्धान्त... आज्ञा मानना, वह तो कारणभूत है। इसलिए यहाँ आज्ञा से उत्पन्न हुआ कहा है, इसलिए प्रथम जिन आज्ञा मानने के पश्चात् जो तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ, वह आज्ञा समकित है। इसी प्रमाण निर्ग्रन्थ मार्ग के अवलोकन से जो तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ हो, वह मार्ग समकित है। तीर्थंकरादि पुरुषों के पुराणों के उपदेश से उत्पन्न हुए सम्यग्ज्ञान द्वारा अर्थात् आगमसमुद्र में प्रवीण पुरुषों के उपदेश आदि से प्राप्त हुई जो उपदेशदृष्टि, वह उपदेश सम्यक्त्व है। मुनिजनों के आचरण विधान को प्रतिपादन करते ऐसे आचार सूत्रों को सुनकर जो श्रद्धान करना होता है, उसे... अब बीज समकित। बीज जो गणित ज्ञान के कारण द्वारा दर्शनमोह के अनुपम उपशम के बल से दुष्कर है, जानने की गति जिसकी, ऐसे पदार्थ का समूह, उसकी हुई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धारूप परिणति जिसे—ऐसे करणानुयोग के ज्ञानी, उसे बीजदृष्टि होती है... परन्तु वह करणानुयोग का यह अभ्यास है इसलिए, ऐसा नहीं। आहाहा! बात यह है।

अन्तर में स्वभाव-सन्मुख हुआ है, उसे यह करणानुयोग का अभ्यास होवे तो उसे बीज समकित कहा जाता है। अकेला तो यहाँ इनकार किया। कर्म का अभ्यास करे, एक-एक प्रकृति की स्थिति, रस कितना? एक-एक गुणस्थान की उसकी प्रकृति का उदय कितना? सत्ता कितनी? बन्धन कितना? वह सब अभ्यास करे, परन्तु वह ज्ञान नहीं। जिसमें आत्मा सम्मिलित नहीं, उसे ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? यह बड़ी-बड़ी बातें करे न! गये थे न, दिल्ली में। आर्यिका है। दर्शन करने आयेंगे मन्दिर में। अकेली करणानुयोग की बातें करके बोलती थी। तिलोयपण्णत्ती में

ऐसा है न, फलाना ऐसा है और ढींकणा ऐसा है। बहुत वहाँ अभी जम्बूद्वीप करते हैं न दिल्ली में बहुत लाख का। ... वहाँ यह बोलते थे। सम्यग्दर्शन वह ... समकित है। इतनी बात की। क्या करे? वह सब माना हुआ है। पहले यह सब करते हैं, धर्म की प्रभावना करते हैं और यह करते हैं। आहाहा! दिल्ली में है न, सुना है न? जम्बूद्वीप बनाते हैं बड़ा। ज्ञानमन्दिर?

मुमुक्षु : नाम ज्ञानमती।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनका नाम ज्ञानमती। यह तो खबर है। वह तो बैठे थे। बैठे थे न। दो साधु। साधु बेचारे नरम थे, हों! ... सुनते थे। माता! सम्यग्दर्शन और उसका विषय बहुत सूक्ष्म है। दूसरा क्या कहें? ... बड़ी बात करणानुयोग की करे, ऐसा है और वेसा है और फलाना है। दूसरी एक आर्यिका है। अष्टपद के अर्थ किये हैं। क्या कहलाता है? अष्टसहस्त्री... किया है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ... इसलिए। अरे! उसमें क्या हुआ? वह वस्तु क्या है? उसकी महिमा लोग करे। आहाहा! ऐसे... होकर ऐसे अर्थ किये, अब उसमें क्या है? कर्म का सूक्ष्म में सूक्ष्म का अभ्यास हो परन्तु वह कहीं ज्ञान नहीं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! आहाहा!

जिसमें भगवान सम्मिलित नहीं, ऐसे ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हो और कर्म के शास्त्र और सब बाहर के... एक-एक परमाणु में ऐसा है और स्कन्ध ऐसे होते हैं और दो परमाणु इकट्ठे हों तो ऐसा होता है। दो गुण यहाँ और चार गुण वहाँ हो और इकट्ठा हो तो यह चार गुणवाला हो जाये। यह अभी तो उसके कारण से हो जाये, यह भी विरुद्ध मान्यता है। समझे न? पाठ ऐसा आवे। दो गुण चिकना हो और चार गुण (के साथ मिले तो) चार गुणवाला हो। देखा! उसके कारण से (हुआ), ऐसा नहीं है। सुन तो सही अब। अभी उसकी जो स्थिति है, उसकी भी यथार्थ की खबर नहीं और यथार्थ की उसे खबर हो तो वह भी ज्ञान नहीं। आहाहा! जिसमें ज्ञान भरा (है), ऐसा भगवान का जहाँ भान नहीं, वहाँ कहाँ ज्ञान उसमें था कर्म में और

कर्म के विकल्प के विचार में ? समझ में आया ? बहुत अटपटी बात अभी ऐसी हो पड़ी है न ! आहाहा !

क्या आया यहाँ ? **४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग,...** ऐसे करणानुयोग के और ऐसे सबमें बारम्बार उपयोग दे, इसलिए तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा नहीं है। जिसे अन्तर स्वसन्मुख दृष्टि हुई है—सम्यग्दर्शन, उस जीव को—उस जाति का जीव हो, उसे ऐसा विकल्प हो, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। आहाहा ! समझ में आया ? जिसके जन्म से चौदह ब्रह्माण्ड में साता हो। चौदह ब्रह्माण्ड में साता हो। नरक की... साता हो जाये। आहाहा ! वह अचिंत्य प्रकृति का ... है। जिसका जन्म हो, जो गर्भ में आवे, जिसकी दीक्षा हो, चौदह राजू लोक में जरा साता हो जाये। साता, हों ! आनन्द नहीं, आत्मा का आनन्द नहीं। वह आनन्द आवे तो... तीर्थंकर... सबको आनन्द आवे तो वह सब मोक्ष हो ही। विभाव में जरा शान्ति हो। साता में... पूरे लोक में आनन्द हो। आनन्द का अर्थ यह। अतीन्द्रिय आनन्द हो, (ऐसा नहीं)। वह अतीन्द्रिय आनन्द परलक्ष्य से कहीं से हो ? आहाहा !

जहाँ भगवान परमात्मा का जन्म हो।... ऐसी प्रकृति अलौकिक प्रकृति। जिसकी माता जन्म दे, इन्द्र आकर ऐसा कहे कि नमो रत्नकूखधारिणी जनेता ! ऐसे रत्न को गर्भ में रखा, माता ! तुझे पहला नमस्कार। वह प्रकृति का पुण्य की प्रकृति का ऐसा ही कोई प्रभाव है। आत्मा के प्रभाव की तो क्या बात करना ? समझ में आया ? आहाहा ! दो सीप का मोती जिसके गर्भ में तीर्थंकर का वास आया, वह (जीव) भी अल्पकाल में मोक्षगामी होता है। वह आया इसलिए नहीं। उस जीव की योग्यता ऐसी उसकी होती है। उनके माता और पिता दोनों अल्प भव में मोक्षगामी होते हैं। आहाहा ! माँ-पिता उनके कहीं भटकते हों, ऐसे जीव ने अनन्त अवतार किये। यह तो आत्मा के भानसहित स्वसन्मुखता के भानसहित अभीक्ष्ण बारम्बार शास्त्र के उपयोग का काम करता हो और उस प्रकार का वह जीव हो कि जिससे उसे तीर्थंकरगोत्र बँधे।

५. संवेग,... जिस आत्मा के मोक्ष का भाव का संवेग है। पूर्णानन्द कैसे प्राप्त करूँ, ऐसा जिसे अन्तर में वेग है। आहाहा ! है विकल्प, हों ! शुभराग। परन्तु उस प्रकार के जीव को—सन्मुख हुए जीव को और उस प्रकार की योग्यतावाले जीव को (ऐसा

भाव आता है)। सन्मुख हुए तो बहुत जीव होते हैं, परन्तु उस प्रकार का जीव हो, उसे ऐसा विकल्प आवे और तीर्थंकरगोत्र बँधे। आहाहा! समझ में आया? संवेग।

६. शक्तितस्त्याग,... शक्तितस्त्याग। सम्यग्दृष्टि जीव है और वह अपनी शक्ति प्रमाण राग का अभाव करता है। हठ करके त्याग करता नहीं। अज्ञानी तो एकदम अपनी शक्ति न हो तो एकदम महीने के अपवास, पन्द्रह दिन के अपवास, फलाना करे, रूखा आहार करे। यह पद्धति तो अज्ञान की है। आहाहा! जिसे आत्मा की सन्मुखता प्रगट हुई है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, वह भी जिसे उस प्रकार का भाव आनेवाला हो, उसे शक्तित्याग होता है। शक्ति प्रमाण राग का त्याग, ... त्याग। उसकी शक्ति की योग्यता हो, ऐसा उसे त्याग वर्तता है। उसे हठ से त्याग हो नहीं सकता। उसे तीर्थंकरगोत्र बँधता है, उस जीव की जातिवाला हो उसे। समझ में आया?

७. शक्तितस्तप,... शक्ति प्रमाण तप करे। त्याग भी शक्ति प्रमाण और तप भी शक्ति प्रमाण। हठ करके महीने-महीने के अपवास करे, सोलह अपवास कर डाले, ऐसा नहीं होता। आहाहा! देखो न, जब तीर्थंकर होते हैं, तब कोई मुनि होने के पहले कोई तप करे,... करे। ... और किसी की शक्ति में बहुत है, वह सब बहुत कर सके, उनकी शक्तिप्रमाण ही उनका त्याग होता है। आहाहा! आता है न, भाई! केवल (ज्ञान) होने के पहले...

मुमुक्षु : भगवान ने छह महीने के किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : छह महीने। महावीर भगवान ने छठ्ठ। ऋषभदेव भगवान ने बारह महीने। वर्षीतप है न, वह। फिर हुआ। उसका अर्थ कि उनकी शक्ति की योग्यता थी, उतना उन्हें त्याग ... है। समझ में आया? यह तो सहज वस्तु की क्रीड़ा है। आहाहा!

शुद्धभाव भगवान आत्मा की जिसने सहजस्वभाव की रमणता मांडी है, ऐसे जीव को ऐसा विकल्प होता है समकित सहित को, तो कहते हैं कि वह शक्ति प्रमाण त्याग, तप करे। देखादेखी, देखादेखी, हठ से, इसने किया, इसलिए मुझे करना, यह सामने पड़ जाये (प्रसिद्ध हो जाए), इसलिए मैं पीछे रह जाऊँगा, ऐसा समकिती को होता नहीं। समझ में आया? एक साधु की बात थी न अभी, नहीं थी? चेतनजी को

खबर है। वहाँ एक को दीक्षा देने जाने का था मुम्बई। इसलिए यहाँ फिर पहले दे दिया। नाम-बाम... वहाँ आया था। उस धुरन्धर को वहाँ देनेवाले थे न आचार्यपद? तब फिर एक दूसरा क्या नाम? हाँ, आये थे बेचारे, हों! उन्होंने आचार्यपद नहीं लिया था, आये थे। आकर यह देखा और आहार के समय... मुझे देखना है तुम्हारे। भले आओ, कहा देखो। ... अभी आचार्यपद दिया नहीं था, देनेवाले थे। परन्तु इतना बोला, हों! यहाँ तुम्हारे धर्म की वृद्धि होगी, ऐसा दिखता है। वरना श्वेताम्बर आचार्य होनेवाले थे। ...यह सब ऐसा दिखता है कि ... लगता है कि इसमें धर्म की वृद्धि होगी। ऐसा बोला था। वरना वह तो थोड़े समय बाद आचार्य होनेवाले थे।

मुमुक्षु : किस बात के आचार्य हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे अपना ... क्या करे? ऐसे तो यह ... नहीं? आचार्य शान्तिसागर। शान्तिसागर आये थे ९७ में यहाँ। हम किसी का अनादर करते नहीं। जानना चाहिए। ... उतरे थे। बाहर ... यहाँ एक नीम था। इतना बोले, तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते, दूसरो को साथ लेकर जाते हैं, ऐसा यहाँ दिखाव है। शान्तिसागर ऐसा बोले थे। एक नीम था बाहर। वह कट गया बाहर, दरवाजे के बाहर। परन्तु इतना बोले। नरम व्यक्ति।

मुमुक्षु : दरवाजा....

पूज्य गुरुदेवश्री : दरवाजा...

यहाँ तो कहना है कि वह तो उस जाति की सहज योग्यता ही उस जीव की होती है। समझ में आया? यह शक्ति प्रमाण त्याग... अपने इतना करते हैं, इसलिए उसे भाव... ऐसा भी नहीं। वह तो जो समकिती हो और जिसे उस जाति के भाव में तीर्थंकरपना बँधनेवाला हो, उस जाति की बात है यह। शक्ति प्रमाण तप तो दूसरे भी करे, परन्तु तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें, भाई!

८. साधुसमाधि,... सन्तों को समाधि उपजावे। समाधि अर्थात्? वैयावृत्य आदि। वह शुभभाव। वह भी समकिती को ही होते हैं। और वह भी उस जाति का हो, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधने की योग्यतावाले जीव को यह भाव होता है। वैसे तो साधुसमाधि का

भाव तो बहुतों को समकिती को होता है, तथापि वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा कुछ नहीं। समझ में आया? वैयावृत्य। वैयावृत्य करते हैं। समकिती जीव, साधु आदि की अपने योग्य जो हो वह वैयावृत्य करे। वह जीव हो, उसे विकल्प आवे। वह विकल्प है तो आस्रव। आहाहा! प्रवचनसार में आता है न भाई, नहीं? ...की वैयावृत्य करे। इससे कहीं वह भावना नहीं उसकी। परन्तु ऐसा ही प्रसंग हो तो उसे ऐसा विकल्प आता है। ऐसे विकल्प की जाति शुभराग की समकिती जीव को—उस जाति का द्रव्य हो, उसे ऐसे भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधताा है। कहो, समझ में आया?

१०. अर्हंद्भक्ति... अरिहन्त की भक्ति। अरिहन्त की भक्ति तो सभी समकिती करते हैं। साधु भी भक्ति करते हैं। परन्तु इस जाति का जीव जिसको हो, उसे सम्यग्दर्शन की भूमिका में इस जाति का विकल्प आता है। तीर्थंकर प्रकृति बँधती है। इतनी सब शर्तें हैं, इतनी बात है। अरिहन्त की भक्ति। वे कहते हैं कि करो अपने अरिहन्त की भक्ति, तीर्थंकरगोत्र बँधेगा। आहाहा! जिसे राग का उपादेय भाव छूट गया है और भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा का उपादेयभाव प्रगट हुआ है, उसे अधूरी दशा में—कमजोरी में ऐसा भाव होता है। वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है।

११. आचार्यभक्ति... यह आचार्य भी सच्चे आचार्य, हों! सन्त आचार्य, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले भावलिंगी सन्त, उनकी समकिती भक्ति करता है। वह भी उस प्रकार का जो भक्ति का भाव होता है, ऐसा तो सबको—समकिती को होता है। परन्तु इस द्रव्य को इस जाति का विकल्प हो, इसमें वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। परन्तु उसकी प्रधानताा में मुख्य सम्यग्दर्शन चाहिए। सम्यग्दर्शन बिना ऐसे पन्द्रह भाव हों, तो भी उसे कुछ लाभ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

१२. बहुश्रुतभक्ति... बहुत ज्ञान की भक्ति, बहुत शास्त्र पढ़ा हुआ हो। वह भी ऐसा एक विकल्प है। वह भी ऐसी जाति का जीव हो, उसे उस जाति का (विकल्प होता है)। बहुश्रुतभक्ति तो सब समकिती को होती है। छठवें गुणस्थानवाले हों, उन्हें होती है, श्रावक को भी होती है। परन्तु ऐसा जो जीव हो, उसे ऐसा भाव होवे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ५, सोमवार, ११-०२-१९७४
गाथा - ७९, ८०, प्रवचन-१०६

भावपाहुड़ चलता है, ७९ गाथा। मुख्यरूप से साधु की बात चलती है। साधु हो वह सम्यग्दर्शन अनुभव, जिसे आत्मा का अनुभव हुआ हो। आत्मा की अनुभूति— आनन्द का वेदन जिसे स्वाद में आया हो, उसे अनुभूति और उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शनसहित मुनि है, वे विषय से विरक्त होकर, विषय अर्थात् आत्मा के स्वविषय के अतिरिक्त परविषयों से विरक्त (होकर) दृष्टि की दिशा बदल डालते हैं। मुनि की दृष्टि द्रव्यस्वभाव के ऊपर होती है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि भी स्वभाव के ऊपर होती है। मुनि हैं, उन्हें विशेष आनन्द में प्रचुर वेदन आनन्द का होता है। उन्हें पर के विषय की ओर से छूटकर... विषय शब्द से? भगवान की वाणी और भगवान स्वयं भी विषय है आत्मा का, इन्द्रिय का वह विषय है। क्योंकि परवस्तु है न वह? भगवान की वाणी और भगवान और गुरु, वे परविषय हैं, इन्द्रिय का विषय है। उसकी जिसे दिशा और दशा बदल गयी है, परसन्मुख की दिशा छूट गयी है और स्वसन्मुख की दिशा में दशा शुद्ध आनन्द के वेदनसहित जिन्हें प्रगट हुई है, उन्हें साधु कहा जाता है। उस साधु को तीर्थंकरनामकर्म बँधता है, ऐसा पाठ है। षोडशकारण भावना में उसे यह भाव आता है और तीर्थंकरप्रकृति अल्पकाल में बाँधे। यहाँ तक आया है अपने।

१२. बहुश्रुतभक्ति,... यह सम्यग्दर्शनसहित हो, उसकी बात है। जहाँ सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द का अनुभव, अनुभूति, जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, उसके लिये यह सब क्रियायें मात्र पुण्य बाँधे। तीर्थंकरगोत्र न बाँधे, तथा उसे निर्जरा भी नहीं होती। समझ में आया? यहाँ तो बहुश्रुत अर्थात् उपाध्याय। लिया न अरिहन्त, आचार्य और उपाध्याय ऐसे तीन। अरिहन्त की भक्ति का भाव, वह शुभभाव, वह पुण्य है; वह धर्म नहीं। ऐसा भाव सम्यग्दृष्टि को, मुनि को आनेयोग्य हो, उसे आता है, उसकी बात चलती है।

१३. प्रवचनभक्ति... उसे वीतराग की वाणी के ऊपर बहुमान आता है। वह भी

है तो शुभभाव पुण्य। परन्तु सम्यग्दर्शनसहित जिसका आत्मा अन्तर में विकास सम्यग्दर्शन में प्राप्त हुआ है, उसे ऐसा एक भाव आवे तो वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। प्रवचन अर्थात् सिद्धान्त वीतराग की वाणी। पूर्वापर विरोधरहित अनेकान्त तत्त्व को बतलानेवाली ऐसी वाणी की भक्ति एक शुभभाव है, पुण्य है। वह ऐसे समकिती जीव को ऐसाा भाव आवे तो वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। वह बाँधने के योग्य जीव हो वह (बाँधे)।

१४. आवश्यकापरिहाणि... यह सम्यक् आत्मा के अनुभवसहित जिसे छह आवश्यक की क्रिया में हानि न हो, ऐसी जिसे छह आवश्यक सामायिक (हो)। यह शुभविकल्प की बात है। सामायिक हे, वह तो अन्तर सम्यग्दर्शनसहित वीतरागभाव का वेदन आवे, उसे सामायिक कहते हैं। ऐसा होने पर भी जिसे ऐसा एक सामायिक का विकल्प आवे कि 'सामायिक करूँ' शुभभाव, वह पुण्यभाव है। सम्यग्दर्शन की भूमिका में, चारित्र की भूमिका में यह एक शुभभाव आवे। वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा यहाँ कहना है। वह भाव बन्ध का कारण है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। क्योंकि धर्म से बन्धन नहीं होता। जिससे बन्धन हो, वह धर्म नहीं। आहाहा! यह आवश्यक की अपरिहाणी। सामायिक, चोविसंथो, तीर्थंकर की स्तुति... परन्तु वह सब सम्यग्दृष्टि जीव की बात है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे यह सब हो तो वह थोथा है, उसकी कुछ कीमत नहीं। कहो, समझ में आया?

चोविसंथो, वन्दन। तीर्थंकर में एक तीर्थंकर का या गुरु का वन्दन, वह भी शुभभाव है। परन्तु वह सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा के आनन्द के वेदन की भूमिका में पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण ऐसा एक भाव आता है। शास्त्र तो यह कहते हैं कि शुभ की रचना करे, वह वीर्य नपुंसक है। क्या कहा यह? वीर्य तो समकिती का उसे कहते हैं कि जो शुद्धता, पवित्रता, वीतरागता को रचे, उसे वीर्य कहा जाता है। जो भाव तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव, वह भी सम्यक् वीर्य नहीं। निहालभाई तो लिखते हैं न उसमें? वह तो कहा हुआ था न? कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसे भी नपुंसक मानते हैं। आता है? चेतनजी! इस न्याय से।

चैतन्य का वीर्य तो उसे कहते हैं कि जिसके अन्तर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,

सम्यक्चारित्र, आनन्द की पर्याय में रुचि वृद्धि करे, रचे। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! और सम्यग्दर्शन अनुभव आनन्द के वेदन बिना जो कुछ ऐसे भाव आवे, वह नहीं संवर का कारण, नहीं धर्म का कारण, नहीं तीर्थंकरगोत्र बाँधने का कारण। पण्डितजी! भारी सूक्ष्म ऐसा।

मुमुक्षु : सब निष्फल?

पूज्य गुरुदेवश्री : निष्फल नहीं, सफल है संसार में भटकने के लिये। आहाहा! यह कहा था। जो कोई महाभागा पुरुषार्थ से ऐसे दया, दान, व्रत, तप के भाव करते हैं, परन्तु है अबुधा—मिथ्यादृष्टि। सम्यग्दर्शन की खबर नहीं और सम्यग्दर्शन नहीं, परन्तु है महाभागा। जगत में पुण्यवन्त और लाखों लोगों में प्रसिद्धि को पावे। अबुधा महाभागा वीरा। वीर है। ऐसी राग की क्रिया, मन्द की क्रिया, तपस्यायें, अपवास, व्रत पालने में वीर है। परन्तु है समकितरहित। वीरा असमंत दंसीणो असुद्धं तेंसी... सफल... ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव में जितने दया, दान, व्रत, तप के भाव, वे अशुद्ध हैं और सफल हैं। जो संसार... फलता आता है, वह उसे संसार फलेगा। धन्नालालजी! धीरुभाई! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं यह, बापू! आहाहा! सफलं होई, ऐसा पाठ है। प्रवचनसार में है। आत्मदर्शन अनुभव निर्विकल्प सम्यग्दर्शन जहाँ नहीं, ऐसे जीव व्रत और तप की क्रियायें करे, वे सब अशुद्ध हैं, सफल हैं। उसे अनन्तकाल से गति जो मिलती आती है, वह गति उसमें मिलेगी। मोक्ष और धर्म नहीं होगा।

मुमुक्षु : कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनसार। कहाँ लिखा क्या? वह सब कहीं आधार दिये जाते हैं कुछ? प्रवचनसार है? यह प्रवचनसार है? यह नहीं। उसमें है। कौनसी गाथा होगी? गाथा का कुछ याद है? उसमें है कहीं। आहाहा! '**एसो त्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता। किरिया हि णत्थि अफला**' जो कुछ सम्यग्दर्शन के भान बिना, आत्मा के आनन्द के अनुभव बिना जो कुछ क्रिया है, वह नहीं अफला—फल बिना की नहीं है। उसे फल होगा गति में भटकने का। '**धम्मो जदि णिप्फलो**'। धर्म है, वह निष्फल है। जिसे आत्मा के आनन्द का वेदन, सम्यग्दर्शन और जिसे स्वरूप

की रमणता, ऐसा धर्म, उसे निष्फल है। उस धर्म का फल उसे चार गति नहीं। धर्म का फल निष्फल है। निष्फल अर्थात् यह। पाठ है। ११६ गाथा। यह वहाँ वीर्यधर्म है आठवाँ अध्ययन वीर्य सूयगडांग में श्वेताम्बर में। वह यह गाथा है। 'जो अबुधा महाभागा वीरा असमंत दंसीणो असुद्धं तेसिं...' यह गाथा। दूसरी गाथा उलटी है। 'जो बुधा महाभागा...' सम्यग्दृष्टि जीव हैं, आत्मा का साक्षात्कार अनुभव सम्यग्दर्शन में मति-श्रुतज्ञान से हुआ है। बुधा महाभागा पुण्यवन्त भी है कि जिससे दुनिया लाखों लोग माने। वीरा है—वीर है। पुरुषार्थ अन्तरस्वरूप का पुरुषार्थ करने में। और संमत दंसिणो है। सम्यग्दृष्टि है। ... उसकी सब क्रिया अफल है। उस क्रिया का फल संसार नहीं, ऐसा। वह यहाँ कहा न, धम्मो अफलो। धर्म अफल है, क्रिया सफल है। आहाहा! शान्तिभाई! यह सब सुना भी नहीं होगा, ऐसे के ऐसे बाहर के बड़े झंझट में।

मुमुक्षु : सेवा बहुत करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा बहुत करते हैं। धूल की सेवा नहीं।

मुमुक्षु : राग की भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की सेवा करे। पर की सेवा कौन कर सकता है? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि धर्मीजीव की सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, आनन्द की क्रिया, वह संसार में अफल, उसे उसका फल नहीं मिलता और अज्ञानी की जो क्रिया, दया, दान, व्रत, तप आदि के भाव, वे सफल हैं। उसे चार गति फलेगी। भटकने का मिलेगा।

मुमुक्षु : उसमें सेठाई तो मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठाई के—धूल के। आहाहा! भाई ने तो कहा न, पुण्य का ढ़ेर, विष्टा का ढ़ेर है। ऐसा कहा है या नहीं? ऐई! निहालचन्दभाई ने। बड़ा पुण्य है (वह) बड़ा विष्टा का ढ़ेर है। ऐसा है उसमें कहीं। किस पृष्ठ पर? ११६। ११६ मस्तिष्क में आ गया। ५६। ५६। 'अधिक पुण्य, वह विष्टा का बड़ा ढ़ेर है।' और वह आता है न उसमें। 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग, काग वीट सम मानत हैं सम्यग्दृष्टि लोक।'

मुमुक्षु : यहाँ तो वीतरागी लोक ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वीतरागी, वीतरागी। सम्यग्दृष्टि, वह वीतरागी है। वहाँ लिखा है इन्दौर। काँच के मन्दिर में बाहर इस ओर है।

सम्यग्दृष्टि, जिसे अन्तरदृष्टि अनुभव वीतरागता प्रगटी है, वह जीव चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र सरीखे भोग, चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र (सरीखे) भोग कागवीट (सम मानत है)। मनुष्य की विष्टा तो अभी खाद में काम आवे, कौवे की विष्टा खाद में भी काम नहीं आवे। 'कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोक।' सम्यग्दृष्टि तो इन्द्र की सम्पदा और चक्रवर्ती की सम्पदा, वह कौवे की विष्टा जैसा मानता है। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! यहाँ तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कुछ। पुण्य बाधूँगा और फिर स्वर्ग में जाऊँगा। फिर सेठाई मिलेगी। धूल में भी नहीं सब, सुन न उसमें। वह सब विष्टा के ढेर हैं। आहाहा!

यहाँ तो **१४. आवश्यकापरिहाणि,...** ऐसा आत्मा के दर्शनपूर्वक जिसे छह आवश्यक में हानि न हो, ऐसा उसे एक शुभविकल्प होता है, उससे समकिती तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। समकिती को यह भाव आवे, परन्तु वह हेयभाव से है। उपादेयभाव से, आदरणीयभाव से वह राग नहीं। क्योंकि वह तो राग है। पश्चात्?

१५. सन्मार्गप्रभावना... सम्यग्दृष्टि जीव सन्मार्ग-सम्यग्ज्ञान के मार्ग की प्रभावना करे। परन्तु सम्यग्दर्शनसहित हो, उसकी बात है।

मुमुक्षु : प्रभावना हो सकती है, ऐसा हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभविकल्प है। उसे शुभविकल्प होता है। सम्यग्ज्ञान का प्रचार कैसे हो, ऐसा उसे विकल्प होता है। शुभभाव। परन्तु है सम्यग्दृष्टि, इससे उसे हेयभाव है वह। और उसमें उस जीव की योग्यतावाला हो, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। सम्यग्दृष्टि जीव हो, उन सबको ऐसा भाव होता है, तथापि उससे तीर्थंकरगोत्र न बाँधे। वह जीव ही ऐसी जाति का होता है। यह कल कहा था। उसे यह तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है।

मुमुक्षु : ऐसा पात्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्र नहीं, उस द्रव्य की योग्यता। बहुत कठिन सब सूक्ष्म बात, मूलचन्दभाई! यह समझने के लिये बहुत तैयारी चाहिए। पात्र तो समकिती सब पात्र ही हैं। परन्तु उस द्रव्य की जाति ऐसी होती है। यह नहीं पकड़ में आता। तुमको अभी देरी है। कल बहुत कहा था। यह चैतन्यद्रव्य ही ऐसा होता है कि उसे जो कर्म के प्रवाह में ऐसा भाव तीर्थंकरगोत्र का भाव होता है। समझ में आया? वह सन्मार्ग प्रभावना। आत्मदर्शन अनुभव की समकित। स्वभाव के आनन्द का जिसे स्वाद आया हो, उसे समकिती कहते हैं। समझ में आया? यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह समकित नहीं। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव भगवान आत्मा, उसका जिसे अन्तर स्वाद आकर प्रतीति हुई हो, ऐसे जीव की शुभभाव की भावना उसे आती है (कि) ज्ञानप्रभावना हो। दुनिया में ज्ञान की वृद्धि हो, ऐसा भाव आवे। तो वह समकिती तीर्थंकरगोत्र बाँधे।

१६. प्रवचनवात्सल्य... साधर्मी के प्रति प्रेम। वह यहाँ लेना है। क्योंकि प्रवचनभक्ति तो पहले आ गयी है १४ में। यह प्रवचनवात्सल्य अर्थात् जिसे सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है, ऐसे साधर्मी के प्रति प्रेम, उसे प्रवचनवात्सल्य कहा जाता है। समझ में आया? यह सोलह बोल आते हैं। टीका में आते हैं। आठवाँ भाग न? धवल आठवाँ नहीं? उसमें आता है। प्रवचनवात्सल्य। वहाँ आया था। अपने पढ़ा हुआ है। पहले भाग में आता है? यह दूसरे आठवें में आता है। वह आता है। अपने यहाँ पढ़ा है।

मुमुक्षु : अपने वाँचन हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाँचन हो गया है। उसमें से इतना भाग पढ़ा था। उस समय कोई नहीं था। कोई नहीं था ऐसा है कुछ। रामजीभाई नहीं थे। सच्ची बात। वह पढ़ा था आठवाँ। छोटी पुस्तक है न, आठवाँ भाग। एक-एक शब्द का अर्थ है। इस प्रवचनवात्सल्य का अर्थ ही वहाँ यह किया है। वह तो उसमें भी ऐसा किया है। यह है न! चला आता है। कितना है यह? प्रवचनभक्ति कही न? कि जिनागम में अनुराग होना प्रवचनभक्ति और सहधर्मी भाईयों में स्नेह करना, प्रवचनवात्सल्य। यह है, आता है। अपने पढ़ा था। सहधर्मीभाई। सहधर्मी अर्थात् समकिती। जिसे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है,

ऐसे धर्मात्मा के प्रति प्रेम, उसे यहाँ प्रवचनवात्सल्य कहा गया है। है शुभराग; धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ तो व्यवहार की बात—भावना कही है न! भाव, भाव—ऐसा कहा है न। '**छद्दसवरकारणाइं भाऊण**' ऐसा शब्द है न? उसकी भावना भावे अर्थात् उसमें वह भाव आता है, ऐसा। यह तो आस्रव की भावना। आस्रव की भावना समकिती को होती नहीं। षोडशकारण भावना, वह तो आस्रव है। परन्तु ऐसा भाव आता है, इसलिए उसे भावना भाता है, ऐसा कहा जाता है।

यह प्रवचनवात्सल्य। अर्थात् कि सम्यग्ज्ञान के धारक साधर्मी के प्रति प्रेम, उसे प्रवचनवात्सल्य कहा जाता है। समझ में आया? इन सोलह का बहुत विस्तार किया है वहाँ आठवें में। एक हो, वहाँ चार-पाँच तो होते ही हैं वे। जिसे यह दर्शनविशुद्धि है, उसे विनयसम्पन्न आदि तो हो ही। ऐसे बोल लिये हैं उसमें।

मुमुक्षु : एक के साथ क्या-क्या...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक के साथ कितने-कितने बोल हों, यह लिया है। पढ़ा है अपने यहाँ। खबर है? खबर नहीं होगी। ऐसा कि अकेला बोल नहीं होता दर्शनविशुद्धि। ऐसा कहा जाता है कि दर्शनविशुद्धि अकेला हो तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। ऐसा इसमें आयेगा। पन्द्रह हों सम्यग्दर्शन बिना, तो वह कुछ नहीं होता। उसे पुण्य होगा, शुभभाव (होगा), धर्म नहीं। आहाहा! यह प्रवचनवात्सल्य।

इस प्रकार सोलह भावना है। इनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानिये। इन सोलह का। **इनमें सम्यग्दर्शन प्रधान है,...** इन सोलह बोल में भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। यदि सम्यग्दर्शन न हो तो यह पन्द्रह भी थोथा है। आहाहा! देखो! **सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न हो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं...** ऐसे शुभभाव तो हों। अज्ञानी को हों, ऐसा अमुक प्रकार का। समझ में आया? है न? विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तित्यागस्त्याग, शक्तितस्तप आदि। उसमें अज्ञानी को ऐसा शुभभाव हो, उसे कहीं धर्म नहीं होता, तथा वह तीर्थंकरगोत्र नहीं बाँधता। मिथ्यादृष्टि तीर्थंकरगोत्र बाँधता ही नहीं। सम्यग्दृष्टि ही

बाँधता है। उसे वह शुभभाव अपराध है। ऐई! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह समकिती जीव का वह शुभ उपयोग अपराध है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है, पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। अपराध है। आहाहा! अरेरे! लोगों को खबर नहीं। कहो, धीरूभाई! सूक्ष्म बात है यह। वहाँ कहीं बाहर के वे पैसे कमा जाना और... बात तो ऐसी है न, बापू! मार्ग यह है तीन काल—तीन लोक में। आहाहा! यह तो प्रवचनसार में कहा नहीं?

मुमुक्षु : सर्वत्र कहा है परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनसार। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। पुरुषार्थसिद्धि उपाय है न! देखो! कितने पृष्ठ पर आया? सामने आया देखो, २२०। २२० (गाथा)। '**रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।**' सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव, आत्मा की वीतराग की रमणता और वीतरागी आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान, वह तो निर्वाण का हेतु है। बन्ध का हेतु वह नहीं। '**आस्त्रवति यत्तु पुण्यं**' जिसके भाव से पुण्य आता है। वह '**शुभोपयोगोऽयमपराधः**' यह तो गाथा है। '**शुभोपयोगोऽयमपराधः**' वह अपराध शुभ उपयोग का है। आहाहा! लोगों को शुभराग की क्रिया का प्रेम इतना कि उन्हें उसमें से दृष्टि बदलना कठिन पड़ता है। सुनना कठिन पड़े। मूलचन्दभाई कल बहुत कहते थे वहाँ अन्दर। ऐसी विपरीतता घुस गयी है शुभभाव की कि निकलना कठिन पड़े। शुभ की रुचि, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! भारी कठिन काम।

इनमें सम्यग्दर्शन प्रधान है,... यह सब सोलह बोल में भी सम्यग्दर्शन हो तो वह पन्द्रह में तीर्थंकरगोत्र बाँधे। **यह न हो तो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं...** आत्मा के लाभ के लिये पन्द्रह भावना कुछ (कार्यकारी नहीं)। देखो न, विनयसम्पन्नता में भगवान का विनय करे, वह शुभभाव, उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं। आहाहा! शीलव्रतेष्नवतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, देखा! शाक्तिस्त्यागादि सब बोल लेना। आहाहा! **और यह हो तो पन्द्रह भावना का कार्य यही कर ले,...** यह सम्यग्दर्शन हो तो पन्द्रह बोल का काम यह सम्यग्दर्शन कर ले। उसके साथ कितने ही होते ही हैं। उसका स्पष्टीकरण धवल में है। है वह? पृष्ठ नहीं खबर होगी। बहुत विस्तार से यहाँ वाँचन हो गया है। तब रामजीभाई नहीं थे। यह निकाला था।

यह तो पन्द्रह भावना का कार्य यही कर ले,... एक आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन। आहाहा! राग के विकल्प से रहित ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा का अन्तर अनुभव और दृष्टि, वह एक सब काम करे, ऐसा कहते हैं। एके हजारा। एके उजला मनुष्य कहते हैं न। इतने बोल तो होते ही हैं साथ में। ऐसा लिखा है। षोडशकारणों से जीव तीर्थंकर नामगोत्र बाँधते हैं। लो, है। सब नाम हैं सोलह ही। फिर उसका विस्तार है।

इसका अर्थ कहते हैं कि दर्शन का अर्थ सम्यग्दर्शन, उसकी विशुद्धता का नाम दर्शनविशुद्धता, उस दर्शनविशुद्धता से जीव तीर्थंकरनाम गोत्रकर्म को बाँधते हैं। तीन मूढ़ता से रहित, आठ मल से व्यतिरिक्त जो सम्यग्दर्शन भाव होता है, उसे दर्शनविशुद्धता कहते हैं।

शंका :- केवल उसे दर्शनविशुद्धता से तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध कैसे संभव है ? क्योंकि ऐसा मानने से सब सम्यग्दृष्टियों के तीर्थंकर नामकर्म के बन्ध का प्रसंग आवेगा। बहुत अच्छी चर्चा चली है।

इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि शुद्धनय के अभिप्राय से तीन मूढ़ता, आठ मल से रहित होने पर दर्शनविशुद्धता नहीं होती। किन्तु पूर्वोक्त गुणों से अपने निजस्वरूप को प्राप्त कर... सम्यग्दर्शनादि साधुओं को... परित्याग साधुओं की समाधि धारणा, साधुओं की वैयावृत्ति, संवेग, अरिहन्त भक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचन-वात्सल्य, प्रवचनप्रभावना, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग युक्तता से प्रवर्तने का नाम विशुद्धता है। दर्शनविशुद्धि में, सम्यग्दर्शनसहित इतने बोलसहित हो, उसे दर्शनविशुद्धि कहते हैं। बहुत विस्तार है। बहुत विस्तार है पूरा। समझ में आया? अकेला बोल नहीं होता। एक-एक बोल के साथ इतने बोल होते ही हैं। भले सोलह न हों, परन्तु अमुक बोल तो साथ में होते ही हैं।

अथवा विनयसम्पन्नता से तीर्थंकर नामगोत्र बाँधते हैं। वह इस प्रकार से ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय के भेद से विनय के तीन प्रकार। उनमें बारम्बार ज्ञानोपयोग... बहुश्रुतभक्ति... यह सब इकट्ठा आ जाता है, ऐसा कहते हैं। **बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति का नाम ज्ञानविनय है।** यह ज्ञानविनय इकट्ठा आ गया उसमें। **आगम उपदेश सर्व पदार्थ के श्रद्धान के साथ तीन मूढ़ता से रहित होना, आठ मलों को**

छोड़ना, अरिहन्तभक्ति, श्रुतभक्ति, क्षण,... लब्धि, संवेग, सम्पन्नता उसे दर्शनविनय कहते हैं। ऐसे सब बोल हों उसके इकट्ठे, उसे दर्शनविनय कहते हैं। बहुत स्पष्टीकरण है। बहुत विस्तार है। तब व्याख्यान हो गया है। कोई अकेला ही सम्यग्दर्शन से बाँधे, यहाँ जो कहा है... समझ में आया? वह तो सम्यग्दर्शन का जोर देने को (बात है)। बाकी सम्यग्दर्शनसहित में फिर कितने ही बोल तो साथ में (होते ही हैं)। अरिहन्तभक्ति, श्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, ऐसा तो साथ में होता ही है। धन्नालालजी! क्या कहा समझ में आया?

मुमुक्षु : कोई-कोई बोल होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई-कोई बोल होता है। भले पन्द्रह न हों, परन्तु अमुक कहा न मैंने शीतव्रती, ...व्रतादि व्रती हो तो। समकिती हो तो दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय ऐसा भाव तो समकिती को तो होता ही है वह। समझ में आया? सब बहुत बातें हैं। **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! यह ७९ गाथा हुई, भाई!

यह तो मध्यस्थ से समझने जैसी बात है। कोई आग्रह रखकर पकड़ रखे तो वह अनन्त काल से समझा नहीं। और सम्यग्दर्शन बिना ऐसे भाव हो तो वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे नहीं और उसे धर्म भी हो नहीं। शुभभाव हो तो पुण्य बाँधे, गति फले चार गति। तो स्वर्गादि मिले, लो धूल के। अथवा धूल का सेठिया हो कदाचित्। पुण्य के भाव के यह धूल के सेठिया हो। उसमें धूल के सेठ हों, उसमें क्या हुआ? भटक मरे सब। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : यहाँ तो मजा भोगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मजा नहीं। कषाय के अंगारे हैं। सुलगता है। कषायअग्नि सुलगती है वहाँ तो। मजा कहाँ से आया? पैसे के ऊपर लक्ष्य जाये, कमाने का लक्ष्य जाये वह सब राग और कषाय के अंगारे हैं। आहाहा! बहुत पैसेवालों को बहुत ममता यदि हो तो बहुत दुःखी है। ममता हो तो, ऐसा कहा न। उसकी ममता के प्रमाण में दुःख है, पैसे के प्रमाण में नहीं। आहाहा! अरेरे! पैसे के ऊपर लक्ष्य जाये, पैसा कमाने का भाव, भले पाँच करोड़ आये, दस करोड़ आये, उसे भाव में तो उसकी ममता आयी।

वह पैसा तो पैसे के घर में रह गये। ममता तो अंगारा है। कषाय अग्नि सुलगती है वहाँ।

मुमुक्षु : तो मजा कैसे लगता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा, मूढ़ है वह। सन्निपातिया पागल है। सन्निपातिया समझते हो? सन्निपात समझते हो? हर्षसन्निपात होता है न। दाँत निकाले (खिलखिलाकर हँसे)। सुखी है? सन्निपात अर्थात् वात, पित्त और कफ का तीन का वक्र होना हो, तब उसे सन्निपात कहा जाता है। वह दाँत निकाले। सुखी है? ...! दाँत निकालता है न। आहाहा! इसी प्रकार अज्ञानी पैसा देखकर, स्त्री अच्छी देखकर प्रसन्न हो, वह सन्निपातिया है। आहाहा! ऐसा कहते हैं यहाँ। वह सन्निपातिया का हर्ष है। सन्निपात का सुख है उसे। आहाहा! कहो, मलूकचन्दभाई! लड़का आनेवाला है या नहीं आजकल अब? कल। उसके पास चार करोड़ पैसे (रुपये) हैं। इनके पास कहाँ थे इतने? कहता था कि मेरे बापूजी ने कहाँ पैसे का... क्या कहा? रस कब, स्वाद कब चखा है? ऐसा कहता था। धूल में भी पैसे का स्वाद नहीं। मूर्खाई का प्रदर्शन है।

मुमुक्षु : अहंकार का रस है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अरे! भगवान! जो पैसा मिले, वह तो पूर्व के पुण्य के कारण से (मिलते हैं)। उसका हर्ष करना, वह तो महामिथ्यात्वभाव है। यहाँ तो राग का पुण्यभाव है राग शुभभाव, उसकी रुचि और वे मेरे, वह भी मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! और जिसने वह लक्ष्मी आदि छोड़ी, इसलिए उसका प्रेम घट गया है, ऐसा भी नहीं है। जिसे अन्दर में पुण्यभाव, दया, दान, व्रत के परिणाम में प्रेम है, उसे सब ही संसार का प्रेम पड़ा है पूरा। उसे पूरी दुनिया का प्रेम है। आहाहा! समझ में आया? यह ७९ (गाथा) हुई, लो।

★ ★ ★

गाथा - ८०

आगे भाव की विशुद्धता निमित्त आचरण कहते हैं :— ८० (गाथा)।

बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणंकुसएण मुणिपवर॥८०॥

यहाँ भी भाव आया।

अर्थ :- हे मुनिप्रवर! मुनियों में श्रेष्ठ! तू बारह प्रकार के तप का आचरण कर... है यह सब विकल्प, हों! यह अनशन, उपवास आदि करना, वह सब विकल्प है। अन्दर में आनन्द में स्थिर होना, सम्यग्दर्शनसहित आनन्द में स्थिर होना, अतीन्द्रिय आनन्द को प्रगट करना, उसका नाम तपस्या है। वह तपस्या निर्जरा का कारण है। बाकी तो यह समझे बिना के अपवास-बपवास वह सब बन्ध का कारण है। उसका शुभविकल्प ऐसा होता है मुनि को, इससे कहा।

और तेरह प्रकार की क्रिया... यह शुभभाव है। पंच परमेष्ठी को वन्दन आयेगा अन्दर। पाँच परमेष्ठी को नमस्कार, वह राग की क्रिया है। वह पुण्य की—शुभराग की क्रिया है; धर्म की नहीं। आहाहा! परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव को वीतरागता जब तक हो नहीं, तब ऐसा भाव उसे आता है, ऐसा कहते हैं। और उस भाव को भावे, ऐसा भी यहाँ कहे। भाव शब्द है न। संस्कृत में क्रिया '**भाव तिविहेण**' ऐसा है न? '**भावयः**' व्यवहार के वचन तो ऐसे ही आवे न, भाई! ऐसा भाव होता है। आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन उपरान्त ऐसे भाव धर्मी को होते हैं, उन्हें यहाँ भाव, भाव, भाव—ऐसा कहा जाता है। भाव की भावना कर, ऐसा कहना है। '**भावयः**' है न? उसमें भी ऐसा था। १६ में भी ऐसा था, इसमें भी ऐसा है। **तेरह प्रकार की क्रिया मन-वचन-काया से भा...** ठीक! **और ज्ञानरूप अंकुश से मनरूप मतवाले हाथी को अपने वश में रख।** आहाहा! सम्यग्ज्ञान हुआ है, उस ज्ञान के अंकुश द्वारा मनरूपी मतवाला हाथी जहाँ दौड़ादौड़ संकल्प को किया करे। देखे तो ऐसे दौड़ादौड़ (करे), ऐसे मन को ज्ञानरूपी अंकुश द्वारा वश कर। **अपने वश में रख।** यह सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! उसकी ही बात चलती है न यह?

भावार्थ :- यह मनरूप हाथी बहुत मदोन्मत्त है, वह तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुश ही से वश में होता है,... लो! सम्यग्ज्ञानसहित केवल तपस्या का भाव हो तो उसे मन अशुभ में न जाये। मन अशुभ में न जाये, ऐसा। **इसलिए उपदेश है, अन्य प्रकार से वश में नहीं होता है।** बारह के नाम हैं। **१. अनशन, २. अवमौदर्य, ३. वृत्ति-परिसंख्यान, ४. रसपरित्याग, ५. विविक्तशय्यासन,...** यह समकिती की बात है, हों! अज्ञानी के जो अपवास और कायक्लेश, वह सब अकेला पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म का नहीं, तीर्थंकरगोत्र का नहीं उसे। आहाहा!

४. रसपरित्याग, ५. विविक्तशय्यासन, ६. कायक्लेश... अनशन करना। एक अपवास या महीने, दो महीने के। वह भी एक शुभभाव है। ऊनोदरी करना। समकिती की बात है, हों! सम्यक् बिना के जो ऐसा करे, वह तो मिथ्यादृष्टिसहित शुभभाव बाँधे, पुण्य बाँधे। ऊनोदरी। **वृत्तिपरिसंख्यान...** वृत्ति को संक्षेप / कम करे, घटाये। रस का त्याग करे, दूध, दही, खांड, शक्कर। परन्तु यह सम्यग्दर्शन के अनुभवसहित की बात है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं और रस का त्याग करे, इसलिए तपस्या है और धर्म है—ऐसा नहीं। वह सब लंघन है। आहाहा! कठिन मार्ग वीतराग का, बापू! आहाहा! खाण्डा की धार—तलवार की धार के ऊपर चलना, ऐसा मार्ग है वीतराग का। आहाहा! ज्ञान भगवान आत्मा, उसका जिसे अन्तरदृष्टि में भाव का भासन हो गया है, ऐसा जीव ऐसे रस का परित्याग करे तो उसका शुभविकल्प है। उसे पुण्यबन्ध होता है। आहाहा! समझ में आया?

५. विविक्तशय्यासन... जहाँ रहे वहाँ नपुंसक, स्त्री का संग न हो, ऐसे एकान्त स्थान में रहे, ऐसा भी एक शुभविकल्प होता है। सम्यग्दर्शन और आत्मा के ध्यानसहित। **६. कायक्लेश...** शरीर को अपवासादि कायक्लेश करे। **ये तो छह प्रकार के बाह्य तप हैं, और १. प्रायश्चित...** सम्यग्दर्शन के अनुभवसहित, कोई पाप लगा हो तो वह प्रायश्चित ले, ऐसा एक शुभभाव होता है। **२. विनय...** देव-गुरु-शास्त्र का विनय करना, वह शुभभाव है, धर्म नहीं। बाह्य परद्रव्य के प्रति बहुमान, वह शुभभाव है। आहाहा! मार्ग ऐसा है कि लोगों के कान में पड़ना मुश्किल पड़ जाये। ऐसा मार्ग! शास्त्र में तो ऐसा कहा। परन्तु यह कहा शास्त्र में। सम्यग्दर्शन के ध्येय को आत्मा को पकड़ा

है जिसने अन्तर में। आहाहा! ऐसी दृष्टिसहित देव-गुरु का विनय करे, वह शुभभाव आवे, उसे होता है। यहाँ तो कहते हैं भाव। ऐसा कहा है न? भाव कहा है न! '**भावय**' व्यवहार से कहा है। '**भावय**' संस्कृत में ऐसा है, देखो! '**क्रियाः भावय त्रिविधेन।**' मूल पाठ में '**भाव**' है। यहाँ '**भावय**' है।

३. वैयावृत्य,... सम्यग्दृष्टि जीव धर्मी जीव की वैयावृत्य करे, उसका नाम शुभराग है। समझ में आया? वैयावृत्य... ऐसा आता है उत्तराध्ययन। तीर्थंकर नामकर्म बँधे। यहाँ बड़ी चर्चा चली थी ८१ में। ८१, संवत् १९८१। कितने वर्ष हुए? ४९। सेंथली थी। सेंथली है एक गाँव। बोटाद के पास सेंथली। वहाँ गढडे चातुर्मास में आना था। वर्षा बहुत थी न। बोटाद छोड़ देना पड़ा। मूलचन्दजी वहाँ थे। इसलिए खस से सेंथली थे, वहाँ यह चर्चा उठाई। एक आया था भोलोभाई है गोपाणी। अहमदाबाद के हैं न! खाडिया में दुकान है। वह लाया था। वैयावृत्य से तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। उससे क्या है? कहा। वह तो राग है। तीर्थंकरगोत्र बाँधे न? अबन्ध नहीं न? धन्नालालजी! ४९ वर्ष पहले चर्चा बहुत चलती थी। लोगों को बारह भाव का व्रत, तप, उपवास और यह करना, बाह्य त्याग, वह धर्म अज्ञानी ने अनादि का मान लिया है।

मुमुक्षु : दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी मूढ़ देखता है। अन्तर के रागरहित चीज़ आत्मा प्रभु का जहाँ अनुभव और सम्यग्दर्शन का अनुभव नहीं, वह वहाँ सब थोथे थोथा है। वह साधु द्रव्यलिंगी... आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' मुनि के अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत (पालन करे)। महा इन्द्राणी ऊपर से डिगाने आवे तो डिगे नहीं, ऐसी तो जिसकी ब्रह्मचर्य की वृत्ति। परन्तु वह सब शुभभाव। मुनिव्रत पालन किया, पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु वह तो दुःखरूप है। 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? यह पंच महाव्रत का पालना, वह दुःखरूप है, आस्रव है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर सुख कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख आत्मा के आनन्द में एकाग्र होना, वह सुख है। आहाहा!

यह तो विकल्प है, पंच महाव्रत और दया, दान, व्रत और भक्ति का शुभभाव, वह तो दुःख है। ओहोहो! ऐ... कान्तिभाई! यह सब समझना पड़ेगा। आहाहा!

कहते हैं कि 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, वह सुख नहीं; वह तो दुःख है, वह तो आस्रव है, राग है। आहाहा! उस रागरहित क्रिया जो आत्मा के आनन्द की, शुद्ध चैतन्य का अनुभव और दृष्टि और रमणता, यह पाये बिना वह सब किया, वह निरर्थक गया। चार गति भटकने में है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **वैयावृत्य...** शुभभाव है, हों! **४. स्वाध्याय...** वह सम्यग्दृष्टि स्वाध्याय करे, वह भी एक शुभभाव है। स्वाध्याय को तप कहा है, वह तो शुभभाव की अपेक्षा से। आहाहा! स्वाध्याय करे शास्त्र की, वाँचन करे, वाँचे, विचारे विकल्प से, वह सब स्वाध्याय है, शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं।

५. व्युत्सर्ग... कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग करे न ऐसे। परन्तु उसमें वह विकल्प है कि ऐसा करता हूँ। वास्तविक कायोत्सर्ग तो अन्दर निर्विकार आत्मा की वीतरागी परिणति प्रगट होना, उसका नाम कायोत्सर्ग है। परन्तु वह तो सम्यग्दर्शन बिना वह हो सकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? स्वाध्याय।

६. ध्यान... लो ध्यान। वह ध्यान भी शुभविकल्प है। सम्यग्दर्शनरहित ध्यान कैसा? और सम्यग्दृष्टि को भी जब ध्यान का विकल्प उठता है, वह शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर के घोलन में, विचार में रहे, वह शुभभाव है। ऐसी बात है। वीतराग परमेश्वर....

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के गीत बहुत गाते हो आप।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन ही मूल वस्तु है। इसके बिना सब थोथा है। इसके महाव्रत पालन करे और बारह व्रत पालन करे, सब थोथा है भटकने की। आहाहा! यह तो पहले बात करते आते हैं यहाँ। सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसे शुभभाव होते हैं, उसे तीर्थंकरगोत्र बँधता है। अज्ञानी को ऐसे सम्यग्दर्शनसहितवाले भाव होते नहीं। अकेला शुभभाव होता है। पापानुबन्धी पुण्य बाँधता है।

ध्यान करे। सम्यग्दर्शन है और फिर ध्यान का विकल्प उठे कि ऐसे ध्यान करूँ। उसके विचार के विकल्प में घुला करे, वह भी एक शुभभाव है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन नहीं, उसे तो ध्यान हो सकता ही नहीं। शुद्धध्यानसहित का शुभभाव। उसकी यहाँ बात करते हैं। उसे अकेला शुभविकल्प रहता है। दूसरे विकल्प न हों, इसलिए उसे लगता है कि मैं कुछ ध्यान करता हूँ। जिस ध्यान में आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं आता, उसे ध्यान कहते हैं ही नहीं। समझ में आया? यह अभ्यन्तर तप।

इनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानना चाहिए। तेरह क्रिया इस प्रकार हैं—पंच परमेष्ठी को नमस्कार... यह शुभभाव, राग। राग की क्रिया है वह। ऐसी समकिती को आती है। शुभविकल्प हो, इतनी बात है। **पंच परमेष्ठी को नमस्कार...** ओहोहो! णमो सिद्धाणं, णमो अरिहंताणं। कहते हैं कि यह सब विकल्प है। अरेरे! कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा है। पण्डितजी! यह तो वीरों का काम है, बापू! आहाहा! ऐ... सुजानमलजी!

मुमुक्षु : तोड़-मरोड़कर सब आत्मा में उतारते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के बिना वस्तु क्या? यह सब क्रिया के थोथा, वह तो शुभभाव है अकेला।

मुमुक्षु : आपको तो आनन्द की धारा छूटी और हमको आनन्द का ... स्वाद नहीं आया, क्या करें इसमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लक्ष्य में तो बात ले न कि मार्ग तो यह है। इसके ज्ञान में, इसके लक्ष्य में दौर में बात ले (कि) मार्ग यह है। रागरहित विकल्परहित स्वरूप में दृष्टि करना और उसका अनुभव करना, वह समकित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यही करनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करने का है, बापू!

छह आवश्यक क्रिया,... सामायिक, चोविसंथो आता है न? वह शुभभाव है, विकल्प है, उसकी यह बात है। सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसी छह आवश्यक की क्रिया का भाव होता है। सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। है

शुभराग वह विकल्प। छह आवश्यक। **निषिधिकाक्रिया...** लेते हैं नीचे स्पष्टीकरण। **जिनमन्दिरादि में प्रवेश करते ही गृहस्थ या व्यन्तरादि देव कोई उपस्थित है—ऐसा मानकर आज्ञार्थ निःसही शब्द तीन बार बोलने में आता है,...** वास्तव में तो बाहर का निषेध करता हूँ, ऐसा। बाहर से मन्दिर में प्रवेश करते हुए निःसही ऐसा (बोले)। **अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर रहना निःसही है।** ऐसा है। बाकी यह लोगों में सब आता है न, श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी मन्दिर में प्रवेश करे तो निःसही अर्थात् कि व्यापार-धन्धे आदि के भाव का निषेध करता हूँ। तीन बार बोले। खबर है। निःसही... निःसही... निःसही। उसमें तो वास्तव में मिथ्यादर्शन का निषेध, मिथ्याज्ञान का, मिथ्याचारित्र का निषेध, ऐसा है। वह भी एक शुभविकल्प की क्रिया वापस, हों! आहाहा! है न?

निषिधिकाक्रिया और आसिकाक्रिया। धर्मस्थान से बाहर निकले समय विनयसह विदाय की आज्ञा माँगने के अर्थ में आसिका शब्द बोले... मन्दिर में प्रवेश करके फिर बाहर निकले तब आसिका अब मैं... वह भी एक शुभविकल्प है। **अथवा पापक्रिया से मन-मोडना आसिका है।** आसिका है न। पाप से मन को वापस मोड़ना, पुण्य में लाना, वह भी एक आसिका। वह एक शुभराग की क्रिया है। ऐसी समकिती जीव को ऐसी क्रिया आती है। वीतरागता न हो, तब तक ऐसा शुभभाव होता है, उसे 'भावे' ऐसा यहाँ व्यवहारनय से कहा जाता है। **इस प्रकार भाव शुद्ध होने के कारण कहे।** लो! शुभ। और अन्दर शुद्धता की दृष्टि तो है और उसमें शुभभाव का ऐसा भाव होता है, उसमें अशुभभाव घटता है, इतना शुद्धभाव बढ़ता है अन्दर। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि जीव को, आत्मा के अनुभवी को अशुभकाल का भाव घटता है शुभ में, इतनी शुद्धि की वृद्धि होती है। वह दृष्टि द्रव्य के ऊपर है, इस अपेक्षा से बात है। **भाव शुद्ध होने के (निमित्त) कारण है।** लो! समझ में आया? यह ८० गाथा हुई। अब ८१ (गाथा) लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ६, मंगलवार, १२-०२-१९७४
गाथा - ८१, ८२, प्रवचन-१०७

यह भावपाहुड़, ८१ गाथा है। ८० हो गयी।

★ ★ ★

गाथा - ८१

आगे द्रव्य-भावरूप सामान्यरूप से जिनलिंग का स्वरूप कहते हैं:—

पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।
भावं भावियपुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं॥८१॥

मुनिपने की मुख्यता से यह व्याख्या है। जिनलिंग कैसा होता है जैनशासन में? द्रव्यलिंग और भावलिंग कैसा होता है, उसकी बात है।

अर्थ :- निर्मल शुद्ध जिनलिंग इस प्रकार है—निर्मल और शुद्ध जिनलिंग अर्थात् निर्मल की व्याख्या। मलरहित कैसा है? शुद्ध **जिनलिंग इस प्रकार है—जहाँ पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग है,...** उसे वस्त्र नहीं होते। जैनलिंग जिसे कहते हैं, उसे वस्त्र नहीं होते।

मुमुक्षु : तब प्लास्टिक नहीं था। आज प्लास्टिक...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्लास्टिक-प्लास्टिक वस्त्र का बाप हो गया है वह तो बड़ा।

मुमुक्षु : क्योंकि इसमें पाँच प्रकार के लिखे हैं उसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा अर्थ में। यह पाँच तो नाम दिये हैं, परन्तु वस्त्रमात्र नहीं। कोई चीज़ नहीं। तिल के तुषमात्र का छिलका जितना भी वस्त्र मुनिमार्ग में नहीं हो सकता। वीतराग का मार्ग यह है। तुलसी है, उसकी माँ ने दीक्षा ली है। वह ... उसे यह क्या कहलाता है? प्लास्टिक का क्या कहलाता है वह? चप्पल। चप्पल-चप्पल की आज्ञा दी। यह ... तुलसी।

मुमुक्षु : महिलाओं को तो चला न वस्त्र। उसमें क्या बाधा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधुपना ही नहीं। स्त्री को साधुपना हो सकता ही नहीं। जैनमार्ग, यह तो वीतरागमार्ग है। यह कोई सम्प्रदाय नहीं। यहाँ तो मुनि हो, उसे वस्त्र के पाँच प्रकार आदि सब वस्त्र का त्याग ही होता है। ऐसी उसे पहले श्रद्धा कराते हैं। समझ में आया?

और **भूमि पर शयन है,...** वे भूमि पर सोते हैं। बड़े पलंग पर नहीं सोते, खाट में। क्या कहलाता है वह? पाटी।

मुमुक्षु : ....वाली सोफा में सोवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोफा में सोवे। आहाहा! यह तो सब बिगड़ गया है, बापू! वीतराग का मार्ग दूसरा है। साधु नग्न हो और फिर सोफा में सोवे सर्दी के लिये। ... कहते थे, अपने को कुछ खबर नहीं। मार्ग नहीं, बापू! असत् का मार्ग है। जिनलिंग तो वस्त्ररहित और भूमिशयन (हो)। आहाहा!

और **दो प्रकार का संयम है,...** छह काय की हिंसा का त्याग और भाव में मन से त्याग। **भिक्षा भोजन है,...** जिसे भिक्षा के लिये भोजन हो। जहाँ जाये, वहाँ निर्दोष आहार ४२-४७-९६ दोषरहित, ३२ अन्तरायरहित, १४ मलरहित, उसकी बात है, बापू! ऐसा जिसे भोजन हो। अब कहते हैं कि वह तो बाह्य की बात की। अभ्यन्तर क्या होता है उसे?

'**भावं भावियपुव्वं**' आहाहा! जिसने भाव को भाया है पहले। अर्थात्? जिसने आत्मा को रागरहित, पुण्य के विकल्परहित, शुद्ध चैतन्य की दृष्टिसहित की भावना अनुभव की जिसने की है पहले। आहाहा! समझ में आया? ऐसा बाह्य लिंग होने पर भी अन्तरंग लिंग उसका ऐसा होता है। जिसने पहले... '**भावं भावियपुव्वं**' शब्द पड़ा है। आहाहा! जिसने बाह्य के ऐसे लिंग धारण किये हैं। परन्तु उसे ऐसा भाव सम्यग्दर्शन, जिन सम्यग्दर्शन, जिन सम्यक्, वीतरागी सम्यग्दर्शन, उसने पहले भावना भाकर अनुभव किया है। आहाहा! ऐसा का ऐसा व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा मानकर साधु हो, वह जिनलिंग भी नहीं, भाव और द्रव्य दोनों नहीं। मार्ग यह है।

मुमुक्षु : निश्चय का उपचार करे तो क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार, किसका उपचार करते हैं? वस्तु बिना? पहले मुख्य हो और मुख्य का अभाव फिर हो, उसमें उपचार होता है। जहाँ मुख्य वस्तु ही नहीं, वहाँ उपचार किसका करना? मार्ग ऐसा है, भगवान! उसे सम्यग्दर्शन... ऐई! चेतनजी! क्या तुम्हारे द्रव्य? द्रव्यसमकित आरोपित करते हैं न? सब श्वेताम्बर मार्ग, वह जैनदर्शन नहीं है। आज माने, कल माने, चाहे जब माने। ऐई! धीरूभाई! अब तो धीरूभाई इस ओर आ गये हैं न! अब कहाँ वहाँ... लिखा है नीचे श्वेताम्बर। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और श्वेताम्बर स्थानकवासी, वह जैनदर्शन ही नहीं। वे जैनदर्शन में आते ही नहीं, अन्यदर्शन में है। ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा! उसकी श्रद्धा में पहली बात ऐसी पक्की आनी चाहिए। जो निर्ग्रन्थ गुरु, निर्ग्रन्थ और धर्म निर्ग्रन्थ। राग की एकता रहित धर्म, उसे धर्म कहते हैं।

आचार्य भगवान कहते हैं कि ऐसा संयम होता है, वस्त्र का त्याग हो परन्तु उसे '**भावं भावियपुव्वं जिणलिंगं**' जिसने वीतरागी लिंग की पूर्व में भावना भाकर सिद्ध किया है। आहाहा! भगवान आत्मा पुण्य का विकल्प जो दया, दान, अरे! गुण-गुणी के भेद का विकल्प, उससे भी भिन्न जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया है। यह धर्म की पहली शुरुआत है। समझ में आया? '**भावं भावियपुव्वं**' वीतरागी भाव को '**भावियपुव्वं**' पहली भावना से सिद्ध किया है, ऐसा। आहाहा! जिसने भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा, उसे सम्यग्दर्शन की भावना द्वारा उसने पहला अनुभव सिद्ध किया है। समझ में आया? आहाहा! आये हैं तुम्हारे अब। देखे हैं न। पहले कहा था उसे। ... समझ में आया?

'**भावं भावियपुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं**' आत्मा आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय प्रभु, जिसने विकल्प के भाव को तोड़कर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट किया है... आहाहा! तब उसे बाह्यलिंग-द्रव्यलिंग साधुपना कहा जाता है। जिसे यह सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, (उसे द्रव्यलिंग नहीं कहा जाता)। '**भावं भावियपुव्वं' भावितपूर्व अर्थात् पहिले शुद्ध आत्मा का स्वरूप परद्रव्य से भिन्न...** आहाहा! शरीर से तो भिन्न, वाणी से भिन्न, कर्म से भिन्न, परन्तु विकल्प जो उठता है पुण्य-पाप के अन्तर्जल्प, उनसे

भिन्न। ऐसे **परद्रव्य से भिन्न...** आत्मा का—भगवान का स्वरूप जिसे **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी हुआ,...** पहले यह भाव प्रगट किया है पहला। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रमयी हुआ। **उसे बारम्बार भावना से अनुभव किया... 'भावं भावियपुव्वं'** ऐसी वीतराग परिणति के भाव को पूर्व में बारम्बार भाया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पहला सम्यग्दर्शन जिनसम्यग्दर्शन, जिनभावना। वीतरागी मूर्ति प्रभु आत्मा की जिसे सम्यग्दर्शन की भावना प्रगट हुई है, तदुपरान्त जिसे ज्ञान और चारित्र की भावना प्रगट हुई है। मुनि की उत्कृष्ट बात है। **'भावं भावियपुव्वं'** आहाहा! पहले ही जिसने आत्मा को राग से, शरीर से, मन से भिन्न करके जिसने आत्मा का भाव **'भाविय'** पूर्व में ऐसे भाव को जिसने बहुत बार भाया है। है न बारम्बार? आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु को वीतराग भावना की भावना से बारम्बार भाया है जिसने। कल्पना और विकल्प से भाया है, ऐसा नहीं। आहाहा! मार्ग बापू! जन्म-जरा-मरण से रहित होने का कहेंगे ८२ (गाथा) में।

जिनधर्म तो भावि भव मंथनं। आहाहा! भावि—भविष्य के भव का मंथन करनेवाला जैनधर्म है। भविष्य के भव जिसे हों नहीं, ऐसा जैनधर्म है। आहाहा! अभी इसे सत्य सुनने को भी मिलता नहीं, अरे! वह कब करे विचार? कब करे भिन्न और कब करे स्थिरता? ऐसा जो आत्मा जिसने पहला ही बाह्यलिंग जिनलिंग है संयम आदि, परन्तु उसके पहले उसने आत्मा का जो मुख्य कर्तव्य है, वह उसने किया है। विकल्प से, राग से भिन्न करके भगवान आत्मा का स्वरूप जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से बारम्बार भावना से (किया है), उसने वीतरागभाव को प्रगट किया है, ऐसा कहते हैं।

'भावं भावियपुव्वं' भाव शब्द से यहाँ भावपाहुड़ है न! वीतरागी परिणति को यहाँ भाव कहा जाता है। भारी कठिन लगे लोगों को। कायर के कलेजे... हमारे कहते थे न कान्तिभाई। कान्तिभाई! कलेजा काँप उठे ऐसा है। बाहर में वस्त्र (रखे और कहे कि) हम साधु हैं। धूल भी नहीं, सुन न! वस्त्र लेकर बैठे हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि साधु हैं।

मुमुक्षु : साधु तो हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, साधु हैं, मिथ्यात्व को साधते हैं। मिथ्यात्व को साधते हैं। ऐसा मार्ग, भाई! कठोर मार्ग है।

मुमुक्षु : पंचम काल में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल हो या चौथा काल हो। पंचम काल में हलुआ... चौथे काल में आटा, घी और गुड़ का होता होगा हलुआ। पाँचवें काल में कहीं मिट्टी का होता होगा? पेशाब का होता होगा हलुआ। हलुआ हलुआ।

मुमुक्षु : हल्के गेहूँ हो तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हल्के गेहूँ, परन्तु गेहूँ चाहिए न! यह आता है वह कासा गेहूँ नहीं आते? छासिया गेहूँ आते थे। कुम्हला गये जैसे आते हैं। खबर है न। सब देखा है। दुकान में यह धन्धा था न अनाज का। आहाहा! परन्तु अनाज चाहिए न? या कंकड़? आहाहा! पंचम काल में हो या चौथे काल में हो, धर्म का मार्ग तो एक है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' आहाहा!

आचार्य महाराज क्या शब्द प्रयोग करते हैं? '**भावं भावियपुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं**' आहाहा! जिसने प्रथम से ही विकल्प से रहित भगवान आत्मा को भाकर अनुभव में सिद्ध किया है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी!

मुमुक्षु : शुद्ध जिनलिंग की बात आती है, तो अशुद्ध जिनलिंग की भी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्ध जिनलिंग अर्थात्? वह जिनलिंग ही नहीं। आहाहा! वस्त्रसहितपना, वह तो जिनलिंग ही नहीं, द्रव्यलिंग भी नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! बहुत फेरफार हो गया है। अभी तो सब खिंचड़ा—समन्वय करने (के लिए करते हैं)। लोग समन्वय करना चाहते हैं।

मुमुक्षु : किसके साथ करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके साथ यह समन्वय करना। बापू! किसी के साथ विरोध नहीं करना। किसी के प्रति द्वेष नहीं। वह भी आत्मा है। समझ में आया? किसी के प्रति द्वेषबुद्धि, वैरबुद्धि किसी के प्रति न हो। परन्तु वस्तु का स्वरूप है, ऐसी दृष्टि तो उसे होनी चाहिए न! समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य... आहाहा! जब यह लिखते होंगे। '**भावं भावियपुव्वं**' आहाहा! जिसने संयम लेने से पहले अन्तर में सम्यग्दर्शन की भावना से जिसने भाव को प्रगट किया है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन की भावनारहित

बाह्यलिंग, वह हो सकता ही नहीं। आहाहा!

प्रथम जन्म-मरणरहित की दशा (प्रगट किये बिना) चौरासी के अवतार करके मर जाता है। वे सब दु:खी प्राणी हैं, हों! यह पैसेवाले तो महादु:खी, बड़े दु:खी। अग्नि, कषाय की अग्नि में सुलग रहे हैं। राग के संकल्प और विकल्प की अग्नि से जल गये हैं। ...भाई! आहाहा! चैतन्यरत्न जिसे हाथ में आया नहीं, वे सब भिखारी चार गति में भटकनेवाले रंक हैं।

यह परमात्मा की बात देखो तो आहाहा! कहते हैं, भाई! यह संयम बाहर... बाहर... और संयम करे, भूमिशयन (करे), वह सब ठीक, परन्तु उसमें यह आत्मा जिसने पहले प्राप्त किया है। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वरूप... है न? शुद्ध आत्मा का स्वरूप, शुद्ध भगवान आत्मा का स्वरूप। आहाहा! परद्रव्य से भिन्न। यह विकल्प है, वह वास्तव में तो परद्रव्य है। आहाहा! अन्तर में मैं आत्मा हूँ, शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ—ऐसा जो विकल्प, वह भी एक परद्रव्य है। आहाहा! जिसने पहले आत्मा के स्वरूप को अनुभव में लिया है, ऐसा कहते हैं। तो उसका बाह्यलिंग और द्रव्यलिंग यथार्थ कहा जाता है। आहाहा! नग्न मुनि की बात है यह, हों! वस्त्रवाले को तो बाह्यलिंग और द्रव्यलिंग सब झूठा। ऐई!

मुमुक्षु : इससे कुछ सरल कहो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल ही यह है। सरल न हो तो राख लेनी है शेली? शेली में राख होती है। बाबूभाई! ...यहाँ रहते थे। अभी वहाँ रहते हैं। कहाँ? धनबाद। खाने-पीने की व्यवस्था थी। स्त्री मर गयी थी। पैसा बहुत। किराया... वहाँ वीशी में अच्छी व्यवस्था खाना मिलता वहाँ रहते। वह कहते थे एक बार, नहीं? वीशीवाले को अधिक दें (तो) अच्छा जिमावे। ऐसा कहते थे।

मुमुक्षु : यह वहाँ समयसार पढ़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार अपने आप पढ़े, उसे क्या? ऐई! आहाहा!

यही वस्तु का मार्ग है। सरल कहो या पहला कहो या महँगा कहो या सरल कहो। मार्ग की पद्धति होगी, वह मार्ग होगा या दूसरा मार्ग होगा? जाना हो पूर्व में और

दौड़े पश्चिम में। सरल है वह? भावनगर पड़ा १९ मील और यहाँ आंबला रहा ३ मील। इसलिए सस्ता होगा, ऐसा है? जाना भावनगर और चले आंबला की ओर। यह आंबला है न। क्या कहलाता है? आंबला तीन मील है। आहाहा! इसी प्रकार भावनगर चैतन्य आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं ऐसा नगर के ऊपर मेल का मेल का शल्य नहीं। ऐसा भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन निर्मल को जिसने प्रथम भाकर हाथ में ले लिया है, दृष्टि में और ज्ञान में जिसने ले लिया है। आहाहा! यह धर्म का प्रथम कर्तव्य है। इससे पहले जो हो, वह सब वह थोथेथोथा है। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, वह सब थोथा है। आहाहा! वह तो राग है। यह भगवान रागरहित जिसने आत्मा के स्वरूप को परद्रव्य से भिन्न किया है। आहाहा! और वह भिन्न है। जैसा वह पर से भिन्न है, वैसा परद्रव्य से भिन्न जिसे अन्तर में भासन हो गया है। आहाहा! ज्ञान की दशा में यह मार्ग है। उसे फिर सस्ता, सस्ता अर्थात् क्या होगा? उसे वह कोई दूसरी पद्धति से राग की क्रिया करे, ऐसा करे (तो) प्राप्त हो, ऐसा होगा? सस्ता होगा? वह तो सब जहर का प्याला है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्राथमिक शिष्य को क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राथमिक शिष्य को यह करना, ऐसा कहते हैं यह। यह प्राथमिक शिष्य की बात चलती है। '**भावं भावियपुव्वं**' मुनि होने से पहले इसे यह करना। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पूर्व में कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्व में कहा था न। '**भावं भावियपुव्वं**' तो पूर्व में पहले यह करना। पहले का तो चलता है यह। ऐई! देवानुप्रिया! यह 'प्रश्न नारद' है, ऐसा नाम दिया है। प्रश्न, नारद जैसा यह प्रश्न करे। नारद नहीं, वह नाटक में आता है न?

मुमुक्षु : क्या आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नारद का आता है। बड़ी वह हो। खबर हो न! हमने तो देखा हो न नाटक। 'ब्रह्मा सुत मैं नारद कहाऊं, जहाँ हो संप वहाँ कुसंप कराऊँ।' परन्तु यह आता है। यह तो हमने सब देखा है। पुस्तक पढ़ी है। नाटक भी देखे हैं। नाट में

आता था। वड़ोदरा में बड़े नाटक देखे हैं। वड़ोदरा-वड़ोदरा। भावनगर के थियेटर का देखा है, वड़ोदरा के बड़े थियेटर में नाटक देखा है। क्योंकि हम माल लेने जाये न, फुरसत हो तो नाटक देखने जायें। वह यह पहले आवे। चोटी हो, हाथ में वीणा, कछोटा ऐसे ब्रह्मचारी। 'ब्रह्मा सुत मैं नारद कहाऊँ, जहाँ हो संप वहाँ कुसंप कराऊँ।' ऐसे प्रश्न की कौतुहलता करनेवाला है। समझ में आया? ऐई! देवानुप्रिया! यह तो हमारे पुराने परिचित हैं। आहाहा!

अरे! भगवान! आहाहा! '**पुव्वं**' पहला यह है। सम्यग्दर्शन, वह प्रथम कर्तव्य है। और वह तो परद्रव्य से भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करे, तब हो ऐसा है। उसकी श्रद्धा और ज्ञान के लक्ष्य में, दौर में तो ले कि बात तो यह है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! चौरासी के अवतार (में) भटककर मर गया है। आहाहा! एक बार जंगल में जाते थे बोटाद, उसमें एक बड़ा नेवला। नोळिया समझते हो? नेवला। उसमें एक गिरगिट निकला। वहाँ मैं अकेला जाता था। गिरगिट को मुख में लेकर टुकड़े करके खा गया। कांचिडो समझते हो? क्या कहते हैं? वह कांचिडो लाल होता है और ऐसा होता है। वह जाता था ऐसे बेचारा? वहाँ नेवला निकला, बराबर मैं ऐसे निकला अकेला। (नेवला ने) उसे पकड़ा और फिर टुकड़े किये। आहाहा! कहा, देखो तो यह संसार। ऐसे अनन्त बार अवतार हुए हैं, हों! उसके नहीं परन्तु सबके। आहाहा! उस मिथ्यात्व के फल में यह संसार है। जब तक इसे राग की एकता की बुद्धि मिथ्यात्व (है), तब तक ऐसे जन्म-मरण के मूल पड़े हैं अन्दर। समझ में आया? आहाहा! पकड़कर एकदम मुख से ऐसे टुकड़े किये। आहाहा! ... बोटाद। ऐसे मरण तो प्रभु! अनन्त बार मिथ्यात्व के कारण से किये हैं।

यह द्रव्यलिंगी साधु हो तो भी राग से भिन्न चैतन्य की दृष्टि के भान बिना ऐसे द्रव्यलिंगी ने चौरासी के अवतार खाली नहीं किये। एक-एक अवतार में अनन्त बार जन्मा है। यह पहले आ गया है इसमें। तूने द्रव्यलिंग इतने धारण किये कि जिसके कारण एक-एक अवतार में अनन्त अवतार किये। आदिरहित काल। कहाँ था अनादि से? आहाहा! यह चौरासी के अवतार में दुःखी... दुःखी... दुःखी।

यहाँ कहते हैं कि, अरे, भाई! प्रथम करना का हो तो इसे आत्मा से, राग से प्रभु

को भिन्न करके सम्यग्दर्शन करना, यह इसका प्रथम कर्तव्य है। पश्चात् इसे संयम और चारित्र की बात बाद में। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो वहाँ तक अधिक लिया, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पर्याय प्रगट की है और उसे बारम्बार भावना में, अनुभव में ली है। आहाहा! जिसने आत्मा की सेवा करके बारम्बार शान्ति को प्रगट किया है। ऐसा भावलिंगी जिनलिंग धरनेवाला, उसे ऐसा द्रव्यलिंग बाह्य होता है। समझ में आया? ऐसा भावलिंग हो, उसे वस्त्र का लिंग रहे बाहर, ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता। उसकी पहले प्रतीति, पहिचान तो कर। आहाहा! अरे! मुनि मार्ग अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा!

कहते हैं कि **शुद्ध आत्मा का स्वरूप...** देखा! पहले कहा न? क्या है अन्दर? पहले है वह। तो पहले से वह लिया पहला। **'भावियपुव्वं' पहिले...** भावित का अर्थ अब हुआ। शुद्ध आत्मा का स्वरूप भगवान आत्मा राग के विकल्प से रहित तो शरीर, कर्म, पैसे से तो कहीं भिन्न चीज़ है, ऐसी चीज़ को जिसने भाव में बारम्बार भायी है। आहाहा! ऐसी जिसने तैयारी आत्मा की शुद्धस्वरूप के सन्मुख की की है, कहते हैं। उसे द्रव्यलिंग सच्चा होता है। आहाहा! अकेला द्रव्यलिंग, नग्नपना धारण करे, भूमि (शयन) करे, वस्त्र छोड़े, वह कुछ वस्तु नहीं।

भरत चक्रवर्ती छह खण्ड के राज्य में पड़े दिखायी दें। छियानवें हजार तो जिनके घर में स्त्रियाँ। एक (मुख्य) स्त्री की हजार देव तो सेवा करें। स्त्री-रत्न। सोलह हजार देव जिनकी तैनात में। दो हजार देव तो एक-एक ऐसे खड़े हों आसपास, शरीर के रक्षक। उन्हें भी अन्तर में दृष्टि में जहाँ आत्मा लिया, सब पर है, कोई चीज़ मेरी नहीं है। आहाहा! मेरी चीज़ में राग नहीं, मेरी चीज को शरीर और लक्ष्मी का सम्बन्ध नहीं। आहाहा! आता है न? भरत घर में वैरागी, नहीं आता? घर में वैरागी। घर में दिखाई दे, परन्तु घररहित हैं वे। मैं जहाँ हूँ, वहाँ राग नहीं, राग है वहाँ मैं नहीं। स्त्रियाँ हैं वहाँ मैं नहीं, मैं हूँ वहाँ स्त्रियाँ नहीं। आहाहा! ऐसी जिसने प्रथम धर्म की शुरुआत की दृष्टि प्रगट की है। आहाहा!

आता है नहीं... बात? एक दिन बाहर निकले। एक सोनी था, वह बात करता था कि यह भरत इतने में रहे और कहे कि हम ज्ञानी हैं, धर्मी हैं। छियानवें-छियानवें

हजार स्त्रियाँ। उसको छियानवें हजार नळिया भी न हो घर में। छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ छोटे गाँव। अड़तालीस हजार पाटण, बहत्तर हजार नगर। उनका साहिबा रात्रि में घूमने निकला। तब सोनी कहता है कि यह भरत कहते हैं कि हम धर्मी हैं और पूरे दिन तो यह स्त्रियाँ और पुत्र और उनमें स्थित हैं। (भरत ने) दिन में उसे बुलाया। कहे, सोनी महाजन! आओ आओ। इस गाँव को ... शृंगार किया है। ... चौक में। शृंगार किया है। यह तेल का लेकर—तेल-तेल भरा हुआ एक कटोरा था। कलश नहीं। कलश हो तब तो... परन्तु चौड़ा कटोरा। उसमें तेल भरकर दिया। यदि इसमें से एक बूँद नीचे पड़ेगी तो तलवारवाला सिपाही-पुलिस खड़ा है, वह सिर काट डालेगा। गया हाथ में लेकर ऐसे। पूरे गाँव में घूमा। (भरत ने पूछा) कैसा लगा? कैसा है गाँव में? कहे, मुझे कुछ खबर नहीं। मेरी नजर तो यह तेल की बूँद न गिरे वहाँ थी। वरना वह सिर पर तलवार लेकर खड़ा हुआ, उघाड़ी तलवार।

अरे! सोनी! हम बाहर में इस प्रकार से पड़े (हैं)। बापू! तुझे खबर नहीं। नारियल में जैसे गोला, नारियल का गोला जैसे पृथक् रहे। भले काचली में दिखाई दे। उसी प्रकार इस संसार के चक्रवर्ती के राज्य में हम भिन्नरूप से हैं, भाई! आहाहा! उस भिन्नपने का तुझे यह भान नहीं हुआ? कि अरे! यह एक तेल की बूँद जैसे... आहाहा! बापू! हमारी दृष्टि धर्म-आत्मा के ऊपर है। उस राग से भिन्न में हम रहे हैं। आहाहा! समझ में आया? बाहरवालों को गले उतरना (कठिन) पड़े न! आहाहा!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी हुआ,... ऐसी भाषा है न? भगवान आत्मा, परद्रव्य से भिन्न पड़कर जिसे सम्यग्दर्शनमय आत्मा हो गया। अन्दर ज्ञानमय आत्मा पर्याय में, हों! और स्वरूप की रमणता में दृष्टिमयी आत्मा है। ऐसा तो जिसने पूर्व में ऐसे भाव को भाया है। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं? देवानुप्रिया! किसमें है यह? परन्तु पहले कुछ दूसरा करना, ऐसा नहीं यहाँ। आहाहा! **उसे बारम्बार भावना से...** देखा! उस भाव को '**भाविय**'—ऐसे भाव को बारम्बार भाया है। आहाहा! जिसने वीतरागभाव से आत्मा को भाकर तैयार किया हुआ है, कहते हैं।

इस प्रकार जिसमें भाव है,... देखा! **बारम्बार भावना से अनुभव किया इस प्रकार जिसमें भाव है,...** ऐसा। आहाहा! रागरहित वीतरागी पर्याय द्वारा जिसने आत्मा

को भाया है। ज्ञान की पर्याय में जिसे पूरा द्रव्य वेदन में आया है चैतन्य का। आहाहा! प्रतीति में पूरा आत्मा वेदन में आ गया है, आ गया है। स्थिरता में—रमणता में जम गया है अन्दर। ऐसा जो भाया हुआ पूर्व का भाव, ऐसे भाववाला वह जीव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा निर्मल अर्थात् बाह्यमलरहित शुद्ध अर्थात् अन्तर्मलरहित जिनलिंग है। आहाहा! इसका नाम भाव जिनलिंग। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प के लिंग से रहित... आहाहा! ऐसा जिन का वीतरागी चिह्न। शुद्ध भगवान परमानन्द की मूर्ति का दर्शन, उसका ज्ञान और उसकी रमणतारूपी जिनलिंग जिसने प्रगट किया है। ऐसा निर्मल अन्तर्मलरहित जिनलिंग है। राग के विकल्प के मैलरहित जिसका अन्तर में जिनलिंग प्रगट हुआ है, कहते हैं। आहाहा! यह कहीं बात है! आहाहा! गजब बात है, बापू! प्रभु! तेरी प्रभुता तो सम्हाल। आहाहा! तूने पामरता और राग को तो बहुत सम्हाला। आहाहा! भाई! तेरी प्रभुता अनन्त आनन्द, ज्ञान और शान्ति से भरी हुई है। ऐसी प्रभुता को सम्हाल... सम्हाल... सावधान हो। वहाँ तेरा सुख और शान्ति वहाँ है। बाकी कहीं धूल में भी सुख और शान्ति नहीं है। आहाहा!

यह देव कषाय के अंगारों में सुलग रहे हैं। पंचास्तिकाय में लिया है। पुण्य किया हो कुछ और स्वर्ग में जाये, वह कषाय के अंगारों में सुलग उठे हैं। ज्वाला सुलगी है (कषाय की), ऐसा कहते हैं। बाहर में ऐसा दिखाई दे कि ओहोहो! मणिरत्न के महल, इन्द्राणी। ओहोहो! बापू! वीतरागी शान्तरस को भूलकर उस कषाय की अग्नि में सुलगे हैं, सिंकते हैं। आहाहा! समझ में आया? मिर्च होती है न मिर्च। मरचा समझते हो? मिर्ची।... उसमें कीड़े हों। कीड़े-कीड़े। वह मिर्ची के चूरे को घर बनाकर अन्दर रहते हैं। देखा है न, यह तो सब देखा है। कीड़े। मिर्ची के चूरे को घर बनावे और उसमें रहे। आहाहा! अरे! यह तो ठीक! परन्तु एक बार खस में कुम्हार था, उसके आव में चूहा देखा। कुम्हार का आव क्या कहलाता है? निंभाडो नहीं समझते? यह नळिया और ईंटें करे। आव। उसमें चूहा देखा। अग्नि में चूहा होता है। अग्नि का चूहा, अग्नि का चूहा। अग्नि की उष्णता गर्म-गर्म होती है। शास्त्र में पाठ है। यह कहते हैं कि यह चूहा क्या यह? आहाहा! फिर तो हमने... अग्नि का चूहा होता है, ऐसा सिद्धान्त कहता

है। वह चूहा बाहर निकले तो मर जाये। वह अग्नि में ही जीता है। अग्नि के चूहे कैसे? यह तो बहुत वर्ष की बात है। खस, खस। हमारे जीवणलालजी थे न, उन्होंने कोई शास्त्र पढ़ा हुआ। सूयगडांग में आता है यह। उन्होंने कहा, भाई! अग्नि के चूहे होते हैं, अग्नि के चूहे होते हैं। आहाहा! उसी प्रकार अग्नि में सिंके हुए जीव अग्नि में मजा मानते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! ऐसा जहाँ बाह्यमल और अन्तर्मलरहित... बाह्य में वस्त्रादि नहीं, अन्तर में रागादि नहीं। आहाहा! वह चैतन्य का चमत्कार जिसने प्रगट किया है। वह चमत्कार, हों! उसके भावलिंग को निर्मल और द्रव्यलिंग को निर्मल कहा जाता है। भावार्थ। बहुत अच्छी गाथा है यह। बाद की भी बहुत अच्छी आयेगी। बाद की भी बहुत अच्छी आयेगी। ८२ और ८३ सब बहुत अच्छी आयेगी। आहाहा!

ओहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने जैनशासन को टिकाकर रखा है। कल तो कहा, जैनशासन में... आयी न कल पुस्तक? लक्षणावली की पुस्तक आयी है। दूसरा भाग। उसमें ऐसे देखते हुए जैनशासन का शब्द देखा। उस जैनशासन की... उसमें उन्होंने गाथा हरिवंशपुराण की पहली गाथा रखी है। जैनशासन किसे कहना? ... भाई ने निकाली थी वह गाथा। अपने तो यहाँ जैनशासन (समयसार) १५वीं गाथा में (कहा) कि जिसने ध्रुव को अवलम्बकर जिसने शुद्ध उपयोग निर्मल वीतरागी दशा प्रगट की है, उसे जैनशासन कहते हैं। वहाँ ऐसा लिया। सुद्धं ध्रुव उत्पाद-व्ययवाला। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक का विषय। ध्रुव है, वह द्रव्यार्थिक का और पर्याय जो शुद्ध है, वह पर्यायार्थिक का विषय। ऐसा जिसने ध्रुव को सिद्ध करके पर्याय में प्रगट दशा की है, उसे जैनशासन कहते हैं। वह हरिवंशपुराण में पहली गाथा है। ... परन्तु हमारे जैनशासन ... जैनशासन लिया। लक्षणावली है... श्वेताम्बर और दिगम्बर के कितने ही ... उनके सब शब्दों की लक्षणावली है। दो बड़ी पुस्तकें हैं। एक तो आ गयी थी, एक कल आयी। दूसरा भाग आया।

यहाँ तो माल-माल है, बापू! बाकी सब साधारण-साधारण। जैनशासन... कहा है न, देखो! ... जैनशासन। हरिवंशपुराण पहला भाग पहली गाथा। ... वह निकाली थी कल। हरिवंशपुराण। द्रव्य-व्यय-उत्पाद लक्षण द्रव्य साधन जैनं द्रव्यादि ... सादि-अनादि शासनं। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय बाद में लिया है। द्रव्यार्थिकनय ध्रुव,

द्रव्यार्थिकनय से जो वीतराग पर्याय प्रगट हुई वह, हों! ध्रुव को... १५ गाथा में आया न? **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।'** जो आत्मा को बद्धस्पृष्टरहित मुक्त देखता है दृष्टि में, उसकी पर्याय की जो निर्मल वीतरागीदशा, वह पर्यायनय का विषय, ध्रुव द्रव्यार्थिकनय का विषय और उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित, वह जैनशासन है। उसे जैनशासन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ...लालजी! यह तो लक्षण... जैन लक्षणावली। जैन पारमार्थिक शब्दकोश। पहला भाग आया था, यह दूसरा है। यह श्लोक हरिवंशपुराण में पहला श्लोक है।

जो उत्पाद, व्यय और ध्रुवमय लक्षण से युक्त द्रव्य... जैनशासन में ही यह होता है। ***जो उत्पाद, व्यय, ध्रुवमय लक्षण से युक्त द्रव्य का साधक होकर...*** द्रव्य का साधक होकर। वस्तु जो नित्य ध्रुव है, उसका साधन होकर। ***'द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से...'*** पर्यायनय की अपेक्षा से सादि वीतरागता हुई, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अनादि पड़ी है। अनादि है। ***'यह प्रमाणसिद्ध मत जैनशासन कहलाता है।'*** यह तो कल आया था। लो, यह जैनशासन। आहाहा! द्रव्यार्थिकनय से जिसने ध्रुव को दृष्टि में लिया है, पर्यायनय से जिसे वीतरागता प्रगट हुई है। आहाहा! वह उत्पाद, व्यय और ध्रुव, वह जैनशासन में ऐसा होता है। समझ में आया?

हमारे बहुत वर्ष पहले दामोदर सेठ थे, वे कहें, यह तो ब्राह्मण के घर की बात है, ऐसा कहे। अरेरे! श्वेताम्बर में ऐसी स्पष्टता है ही नहीं, इसलिए बेचारे गड़बड़ करे। उन्होंने शास्त्र ही कल्पित बनाये हुए हैं। (गृहीत) मिथ्यादृष्टि होने के बाद उन्होंने यह ४५, ८४ और ३२ सूत्र बनाये हैं। बहुत कठोर लगे, भाई! जिन्हें (वे) सर्वज्ञ के शास्त्र कहें, उन्हें मिथ्यादृष्टि के कहना, (यह कठोर लगे)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है न। ग्रन्थों के उसमें कथन दशवैकालिक... आचार्य ने कहा, ... किया, ऐसा पाठ है सब।

मुमुक्षु : यहाँ वळा में बनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ वळा में किये-बनाये। हमारे उमराला से—जन्म-गाँव से

सात मील दूर। अरे! भगवान! भारी कठिन काम। दो हजार वर्ष पहले यह सब... नये बनाये, उनकी रचना को तो पन्द्रह सौ वर्ष हुए। वहाँ से चले आये। शास्त्र को पन्द्रह सौ वर्ष हुए। भगवान के पश्चात् हजार वर्ष में वह ... वळा में वह मन्दिर है। ... मन्दिर है यहाँ। अभी नया हुआ। उन्होंने यह नये शास्त्र रचे, एकत्रित होकर। ऐसा मार्ग, बापू!

यहाँ तो जैनशासन (अर्थात्) जिसने अन्तर ध्रुवस्वरूप की दृष्टि करके पर्याय में जिसने वीतरागता, शुद्ध उपयोग प्रगट किया है, वह पर्यायनय का विषय, वह शासन। परन्तु द्रव्यार्थिकनय के विषय के आश्रय से प्रगट किया है। आहाहा! कहो, इसमें इतना सब आया। '**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**' '**सत् द्रव्य लक्षणं।**' ऐसी बात है। तत्त्वार्थसूत्र। आहाहा! भाई ने कहा न, समन्तभद्राचार्य ने... भाई! भगवान की स्तुति करते हुए (कहा कि) हे नाथ! आप सर्वज्ञ हो। क्यों? कि एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य। समय एक और उत्पाद-व्यय(ध्रौव्य) तीन को आपने पकड़ लिया। यह सर्वज्ञ का लक्षण है। समन्तभद्राचार्य की स्तुति है। एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग। 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं। और एक समय में अनन्त द्रव्य की उत्पाद-पर्याय, उस समय की व्यय और उस समय में ध्रौव्य। समय एक और पकड़े तीन को। यह आप सर्वज्ञ की (निशानी है)। आहाहा! समझ में आया? वह यह सर्वज्ञ जिनशासन। ... दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त जैनशासन अन्यत्र है नहीं। यह ठीक लगे, न ठीक लगे, मार्ग तो यह है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य का यह पुकार है। आहाहा!

भावार्थ :- यहाँ लिंग द्रव्य-भाव से दो प्रकार का है। द्रव्य तो बाह्य त्याग अपेक्षा है जिसमें पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग है, वे पाँच प्रकार ऐसे हैं—१. अण्डज अर्थात् रेशम से बना, २. बोंडुज अर्थात् कपास से बना, ३. रोमज अर्थात् ऊन से बना, ४. वल्कलज अर्थात् वृक्ष की छाल से बना, ५. चर्मज अर्थात् मृग आदिक के चर्म से बना, इस प्रकार पाँच प्रकार कहे। इस प्रकार नहीं जानना कि इनके सिवाय और वस्त्र ग्राह्य हैं—ये तो उपलक्षणमात्र कहे हैं,... समयसार (कलश की टीका) अध्यात्म तरंगिणी में आता है न? यह खानियाचर्चा में... उसकी टीका की है न सामनेवालों ने। बस, समयसार एक ही है? उसका व्यवहार। भाई! यह तो ... बात की। फूलचन्दजी ने जवाब दिया है खानियाचर्चा में। समयसार। बापू! समयसार है, उसमें सब आ गया।

चारों ही अनुयोग का सार, वीतरागता। शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता हैं। शास्त्र का तात्पर्य बारह अंग का (तात्पर्य) तो वीतरागता है। पंचास्तिकाय में नहीं कहा? कि वीतरागता का सार उसमें आ जाता है। पर की उपेक्षा और स्व की अपेक्षा, इसका नाम वीतरागता। विकल्प और पर्याय और द्रव्य की संयोग की उपेक्षा और त्रिकाली भगवान की अपेक्षा, इसका नाम वीतराग तात्पर्य है। आहाहा! यह बात वीतरागमार्ग में ही होती है, अन्यत्र नहीं हो सकती। समझ में आया? ओहोहो! कितनी अपेक्षा रखी है, देखो न!

बारह अंग में चार अनुयोग का सार तो तात्पर्य वीतरागता है। क्या कहते हैं यह? इसका अर्थ? कि पर से उपेक्षा करके स्व की अपेक्षा जहाँ दृष्टि में ली, ऐसा जो वीतरागपना पर्याय में प्रगट हुआ, वह जैनशासन है। आहाहा! अरे! ऐसा चैतन्यचमत्कारी भगवान का मार्ग, प्रभु! तुझे सुनने को मिलता नहीं, बेचारा भटक मरे। कोई शरण नहीं। क्षण में भवान्तर होकर कहीं उपजे। आहाहा! बापू! भावी भव के नाश करने का मार्ग हो तो... अभी आयेगा इसमें, यह एक जैनधर्म के अतिरिक्त दूसरा है नहीं। समझ में आया? उपलक्षण कहते हैं। **इसलिए सब ही वस्त्रमात्र का त्याग जानना।**

भूमि पर सोना, बैठना, इसमें काष्ठ... लकड़ी की पाट आदि होती है। **तृण...** होता है। उसमें ... जाना ऐसा। **इन्द्रिय और मन को वश में करना, छह काय के जीवों की रक्षा करना**—रक्षा अर्थात् न मारना इतना। छह काय की रक्षा करना, वह तो व्यवहार की भाषा है। रक्षा कौन करे? भाषा तो छह काय जीव को न मारना, इसका अर्थ यह। **इस प्रकार दो प्रकार का संयम है। भिक्षा-भोजन करना जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना का दोष न लगे—छियालिस दोष टले,...** देखा! **बत्तीस अन्तराय टले, ऐसी विधि के अनुसार आहार करे।** आहाहा! **इस प्रकार तो बाह्यलिंग है...** यह सब बाह्यलिंग है। **और पहिले कहा हो वह भावलिंग है।** पहले कहा वह। ... वीतरागता प्रगट की है, वह भावलिंग।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। **इस प्रकार दो प्रकार का शुद्ध जिनलिंग कहा है,...** देखा! दो प्रकार के शुद्ध जिनलिंग हैं। वस्त्रादि का त्याग, ... भिक्षाभोजन और नौ-नौ कोटि से ... त्याग जिसके आहार में कृत, कारित, अनुमोदन से रहित, ऐसा बाह्य भाव, अन्दर में वीतरागभाव। **अन्य प्रकार श्वेताम्बरादिक कहते हैं, वह जिनलिंग नहीं है।**

सेठ! शान्तिभाई! सत्य है। श्वेताम्बरादि अर्थात् श्वेताम्बर, स्थानकवासी, अन्यमति, बाबा सब जो कहते हैं, वह जिनलिंग नहीं। अन्य में भी नग्न होते हैं न? नग्न हों, राख चोपड़े। यह तो कहा था न, बोटाद में एक बार था। बाबा थे। नग्न खड़ा था, दूसरा बाबा था... (संवत्) १९८० की बात है। ५० वर्ष पहले की। वह नग्न था, परन्तु कुछ भान नहीं होता। नग्न होकर... नंगा होकर... परमहंस।

मनुष्य कहें समकिती को, परमहंस कहें मुनि को। जिसने राग से भिन्न करके, हंस की चोंच में... जैसे दूध और पानी इकट्ठे हों और चोंच डालने से दूध का पोपड़ूं वळी जाये, उसी प्रकार जिसने भेदज्ञान द्वारा राग से जीव को भिन्न किया है, उसे हंस कहते हैं और परमहंस तो जिसने राग की अस्थिरता से भिन्न करके स्थिर किया है जिसने... आहाहा! उसे परमहंस कहते हैं। वह मुनि होता है।

अन्य प्रकार श्वेताम्बरादिक कहते हैं, वह जिनलिंग नहीं है। वह द्रव्यलिंग भी जिन नहीं और भावलिंग तो उसे है नहीं। आहाहा! भारी कठिन, भाई!

★ ★ ★

गाथा - ८२

आगे जिनधर्म की महिमा कहते हैं :—

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं॥८२॥

आहाहा! जिनधर्म तो भावि भवमंथनं (अर्थात्) भविष्य के भव का अभाव करे, उसे जैनधर्म कहते हैं। आहाहा! जिसमें भव की प्राप्ति नहीं। आहाहा! आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा जिसने भव का मंथन कर डाला है, भव का नाश कर डाला है। आहाहा! और इस जैनधर्म में ही भावि भव का मंथन होता है। दूसरे में तो अनन्त-अनन्त भव बढ़े, ऐसी भावना और श्रद्धा-ज्ञान होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने भावि भवमंथन अर्थात् तोड़ डाले हैं, उसे जैनधर्म कहते हैं। आहाहा! जिसने भगवान आत्मा को दृष्टि में लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया है, उसे भावि भव हो सकते नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह जैनधर्म में ही होता है, अन्यत्र होता नहीं। यह विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ७, बुधवार, १३-०२-१९७४
गाथा - ८२, ८३, प्रवचन-१०८

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ८२ गाथा। **आगे जिनधर्म की महिमा करते हैं:—** जैनधर्म का स्वरूप और उसका फल क्या? यह बात करते हैं।

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं॥८२॥

अर्थ :- जैसे रत्नों में प्रवर (श्रेष्ठ) उत्तम वज्र (हीरा) है... रत्न में बहुत प्रकार रत्न के होते हैं। कितने प्रकार आते हैं? हीरा के व्यापारी को... ८४। आते हैं। ... उतरे थे न वहाँ। ८४ हीरा के नाम थे। उदयपुर-उदयपुर। पहले उतरे थे न। कौन वह सेठ? वहाँ हीरा के नाम थे ८४। पहले-पहले गये थे न जब उदयपुर तब। उन सब हीरा में वज्र का हीरा वह उत्तम कहलाता है। ... **और जैसे तरुगण (बड़े वृक्ष) में उत्तम गोसीर (बावन चन्दन) है,...** चन्दन-चन्दन। सूखड़। बावन चन्दन का वृक्ष, वह सब वृक्षों उत्तम है। यह तो दृष्टान्त कहा।

वैसे ही धर्मों में उत्तम भाविभवमंथन... जैनधर्म ऐसा है कि जिसे भव का अभाव हो। भव का नाश हो, वह जैनधर्म। आहाहा! जिसमें भावि अर्थात् भविष्य के भव का नाश, भव का अभाव (हो), ऐसा जैनधर्म है। **(आगामी संसार का मंथन करनेवाला)...** अर्थात् नाश करनेवाला। **जिनधर्म है, इससे मोक्ष होता है।** इससे मोक्ष होता है।

भावार्थ :- धर्म ऐसा सामान्य नाम तो लोक में प्रसिद्ध है... धर्म-धर्म तो सब कहते हैं न। 'धर्म धर्म कोई सब कहे, धर्म का न जाने मर्म, धर्म जिनेश्वर चरण ग्रह्या, फिर कोई न बाँधे कर्म।' **धर्म ऐसा सामान्य नाम तो लोक में प्रसिद्ध है और लोक अनेक प्रकार से क्रियाकाण्डादिक को धर्म जानकर...** शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण ऐसे शुभभाव जो क्रियाकाण्ड हैं, उन्हें अज्ञानी धर्म मानता है।

मुमुक्षु : शास्त्र सुनना वह क्रियाकाण्ड में आता है या नहीं आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने का भाव वह क्रियाकाण्ड में—राग में जाता है। बात तो ऐसी है, भाई! यही कहते हैं जैनधर्म... रागरहित आत्मा का स्वभाव वीतरागस्वरूप है, उसका आश्रय करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र करना। यह करना। सुनकर करने का तो यह है या नहीं? आहाहा! गाथा बहुत ऊँची है।

जैनधर्म भव का नाश करनेवाला है। इसका अर्थ कि वीतरागस्वरूपी भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति ऐसी वीतरागदशा, वह जैनधर्म है। वह भव का नाश करनेवाला है। क्रियाकाण्ड आदि जो बात है अन्यमत में या जैन के वाड़ा में; दया पालो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ और पंच कल्याणक करो, वह सब शुभभाव क्रियाकाण्ड है। पण्डितजी! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : खम्बे तो बाँधना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ बाँधना अन्दर। कहाँ बाँधे खम्बे से? राग में बाँधना खम्बे से? चिदानन्द हीरा आनन्द का नाथ प्रभु ज्ञानभाव से भरपूर प्रभु के स्तम्भ से बाँध न! छोड़ न। आता है न पाठ। ... के स्तम्भ से बाँध। आता है देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : .... व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है, वह संसार का कारण है। शुभभाव, वह संसार का कारण है। शुभभाव स्वयं संसार है। आहाहा! वह रागभाव है, वह जहर है, आत्मा के अमृत को लूटनेवाला है। ऐसी बात है। यह जैनधर्म... जैनधर्म अर्थात्? वीतरागभाव, शुद्ध उपयोग। जैनशासन अर्थात् शुद्ध उपयोग। पुण्य और पुण्य के परिणाम का क्रियाकाण्ड, वह तो संसार का कारण है, जैनधर्म तो संसार के नाश का कारण है। आहाहा! आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसका आश्रय करके जो दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वीतरागभाव हो, वह जैनधर्म है। समझ में आया? यह मन्दिर बनाना, पंचकल्याणक करना, ऐसा शुभभाव, वह जैनधर्म नहीं—ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई! समझ में आया? कहो, धन्नालालजी! होता है शुभभाव, परन्तु वह शुभभाव तो संसार है। आहाहा! जिसका आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु वीतराग की मूर्ति आत्मा है। अकषायरस से भरपूर—शान्त, शान्त वीतरागी शान्त रस से भरपूर ऐसा जो वस्तु का स्वभाव, उसका आश्रय

करके जो शुद्ध उपयोग प्रगट हो, वह जैनधर्म है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग अर्थात्? वीतरागी परिणति। वीतराग धर्म है न जैनधर्म? कठिन बात है, बापू! जगत को। व्यवहार से इतने... है न, उसमें से उसे निकलना (कठिन पड़ता है)। समझ में आया?

धर्म यह **लोक अनेक प्रकार से क्रियाकाण्डादिक को धर्म जानकर सेवन करता है,...** देखो! जैन के सम्प्रदाय में रहकर भी यह दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा ऐसे भाव को—क्रियाकाण्ड को धर्म मानते हैं अज्ञानी। शान्तिभाई! ... है। आहाहा! पर की सेवा करना, भगवान की सेवा करना।

मुमुक्षु : पर भगवान की?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर भगवान की। वह सब शुभभाव है, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा!

लोक अनेक प्रकार के... अनेक प्रकार है न? कोई व्रत की क्रिया, कोई प्रत्याख्यान की, अपवास की क्रिया, या भगवान की भक्ति की क्रिया में धर्म मानते हैं। यह ८३ में तो (बहुत स्पष्ट) ही आयेगा, इसका अनुसन्धान है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...साधु कहलाये। बहुत क्रियाकाण्ड करे। बात सच्ची। आहाहा! निर्दोष आहार लेना, भक्ति करना, व्रत पालना, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचय और भगवान की भक्ति, ऐसे भाव हैं, वह तो शुभभाव है। उस क्रियाकाण्ड में लोग धर्म मानते हैं। वह जैनधर्म नहीं। भारी कठिन बात।

मुमुक्षु : परम्परा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा वह बन्ध का कारण। राग है, वह बन्ध का कारण। राग है, वह वीतरागता का कारण होगा? राग तो द्रव्य, बारह... अनुप्रेक्षा में कहा है। अनर्थ का कारण है। परम्परा से अनर्थ का कारण है। बारह भावना कुन्दकुन्दाचार्य की

है, उसमें (कहा है)। कठोर बात है, बापू! जैनधर्म कोई बाह्य क्रियाकाण्ड, वह कोई जैनधर्म नहीं। आवे बीच में शुभभाव, परन्तु वह बन्ध का कारण है। इसका स्पष्टीकरण करेंगे।

लोक अनेक प्रकार से कियाकाण्डादिक को... क्रियाकाण्ड अर्थात् ज्ञानकाण्ड को छोड़कर। आहाहा! उस राग की क्रिया में **धर्म जानकर सेवन करता है, परन्तु परीक्षा करने पर मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला जिनधर्म ही है,...** जिनधर्म अर्थात् वीतरागी परिणति। आहाहा! रागरहित चैतन्य की श्रद्धा, चैतन्य का ज्ञान और चैतन्य की रमणता, वह जैनधर्म। वह जैनधर्म मोक्ष का कारण है। कहो, समझ में आया? **परीक्षा करने पर मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला जिनधर्म ही है,...** वीतरागी भाव, वही मोक्ष का कारण है। जैनधर्म, वह वीतरागी भाव है। जैनधर्म, वह शुद्ध उपयोग है। जैनशासन, वह शुद्ध उपयोग है। शुभ और अशुभरागरहित शुद्ध उपयोग, वह जैनधर्म है। इसमें अर्थकार ने बहुत गड़बड़ की है। अभी ऐसा कि गृहस्थ को शुद्ध उपयोग होता नहीं। गृहस्थ को शुद्ध उपयोग होता नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, शुद्ध उपयोग बिना जैनधर्म ही नहीं होता। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि का जो व्यापार (होता है), वह सब शुद्ध उपयोग है। आहाहा! समझ में आया? कहो, मूलचन्दभाई! यह सब क्या क्रियाकाण्ड में?

मुमुक्षु : निश्चय की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय की अर्थात् सच्ची। व्यवहार की अर्थात् उपचारिक। उपचार-उपचार। क्या कहते हैं? ज्ञानी लोक आगे कहेंगे। अन्यमति और जैन में रहे हुए भी लोग, ८३ में कहेंगे। लौकिकजन और अन्यमति, ऐसा। जैन में जन्मे नाम धरानेवाले लौकिक जैन। दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा वह धर्म है, ऐसा कहनेवाले जैन के लौकिकजन हैं। आहाहा! समझ में आया?

जिनधर्म ही है, अन्य सब संसार के कारण हैं। आहाहा! एक जैनधर्म ही दिगम्बर धर्म, वह जैनधर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें तो नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिगम्बर धर्म का अर्थ ही यह जैनधर्म है। जिसे राग की वृत्ति रहित आत्मा का स्वभाव, दिग अर्थात् आकाश—अम्बर जिसका, विकल्प की वृत्ति, उससे रहित आत्मा का स्वभाव, उसका ज्ञान, श्रद्धा और रमणता, वह जैनधर्म है। समझ में आया? यह फिर स्पष्टीकरण करेंगे। निश्चय ऐसा भान हो, वहाँ आगे शुभभाव हो, उसे व्यवहार धर्म कहा जाता है। व्यवहार का अर्थ कि वह धर्म नहीं, परन्तु उसे धर्म उपचार से कहते हैं। ८३ में आयेगा।

परीक्षा करने पर मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला जिनधर्म ही है,... वीतरागभाव, परमेश्वर ने वीतरागभाव ही वर्णन किया है। आहाहा! शुभभाव, वह पुण्य और अशुभभाव, वह पाप, वह जैनधर्म नहीं। गजब बातें! वह रागरहित चैतन्यस्वभाव जिनस्वरूप। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' वस्तु का स्वभाव—'वत्थु सहावो धम्मो' है न? वस्तु का स्वभाव वीतरागस्वभाव है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह भी परलक्ष्यी छोड़कर, स्वसन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह जैनधर्म है। आहाहा! अरे! जैनधर्म को नोंच डाला है। ...माना है। आहाहा!

गुड़ का गोदड़ा हो न। रवा हो न गुड़ का रवा। वह गर्मी के समय में जरा रजाईयाँ पड़ी हों मोटी, पिघले फिर गुड़ का स्वाद घुस जाये अन्दर। गुड़ का रस रजाई में (घुस जाये)। उसे धूप में रखे तो कुत्ते आकर गुड़ को खाने के लिये गद्दी को नोंच डालते हैं। यह पाठ है... दुःख शैय्या और सुख शैय्या। सुख शैय्या, वह आत्मा के आनन्द में रहना, वीतरागभाव में वह सुखरूपी शैय्या है और राग की क्रिया में रहना, वह दुःखरूपी शैय्या है। गजब भाई!

अन्य सब संसार के कारण हैं। देखो! आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने वीतरागता प्रगट करके सर्वज्ञपना प्रगट किया, ऐसी ही वीतरागता आंशिक जिसे अन्तर में प्रगट हो, उसे जैनधर्म कहते हैं। एक जैनधर्म ही मोक्ष का कारण है, बाकी सब संसार के कारण हैं। जैन में रहे हुए, (तथापि) छठवें गुणस्थान में प्रमादभाव आवे—पाँच महाव्रत पालने का, उसे भी जगपंथ, ऐसा कहा है समयसार (नाटक) में (कहा है)। वह संसार में सम्मिलित है। छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के विकल्प

उठते हैं, वह भी संसार की ओर गया है। आहाहा! उसे जगपंथ कहते हैं समयसार नाटक में। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी अन्दर के स्पर्श को स्पर्शाती है। आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, हो राग आर्तध्यान, रौद्रध्यान आदि परन्तु वह सब वस्तु संसार है। शुभराग, वह भी एक आर्तध्यान है। आर्त अर्थात् चैतन्य के शुद्ध प्राण जिसमें पिलते हैं। जैसे तिल घानी में पिलते हैं, उसी प्रकार भगवान आत्मा का आनन्द और वीतरागी स्वभाव, वह शुभराग में पिलता है। जैसे तिल घानी में पिलें, वैसे पिलता है। आहाहा!

भगवान आत्मा अकषायस्वरूप जिसका है त्रिकाल। अकषायस्वरूप कहो या वीतरागस्वरूप कहो, जिनस्वरूप कहो। उसके आश्रय से दृष्टि, ज्ञान और रमणता प्रगट हो, वह जैनधर्म है। वह जैनधर्म संसार के नाश का कारण है। इसके अतिरिक्त अकेली क्रियाकाण्ड आदि सब संसार का कारण है। देवानुप्रिया! क्या अब यह पहले क्या करना?

मुमुक्षु : उसका स्वीकार करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कर रहा है अनादि से। आहाहा! व्यवहार अर्थात् संसारी। नहीं कहा था? वह तो .... कहा था।

क्रियाकाण्डादिक संसार ही में रखते हैं,... आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा भाव, वह संसार में रखता है। वह **क्रियाकाण्डादिक संसार ही में... संसार ही में रखते हैं,...** वह शुभभाव की क्रिया है। राग की क्रिया, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत को पालना, वह राग की क्रिया है, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा! वीतराग तो ऐसा कहते हैं कि हमारा विनय करना, वह भी जैनधर्म नहीं। ऐसी बात वह बात। वह शुभभाव है। वीतराग... वीतराग... वीतराग... मुख के सामने ग्रास किसे न सुहावे? वे कहे कि भक्ति करना तो वैंकुंठ में जाऊँगा तो तुमको लड्डू मिलेंगे। वहाँ भी शरीर और वहाँ भी लड्डू और वापस भूख और... आहाहा! साधु को आहार-पानी दो, लड्डू खिलाओ वैंकुंठ में तुमको लड्डू मिलेंगे। ऐसे मूर्ख के गाँव है न सब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... के लिये तो पाप है। उसका प्रश्न ही कहाँ है? यह तो राग

की मन्दता के भाव, वीतरागीस्वभाव के आश्रय बिना अकेला रागभाव है, वह संसार है और उसे संसार में रखेगा। यह नहीं कहा? संसार में दाखिल करे, उसे सुशील कैसे कहें? समयसार। कुशील है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव अभी कोई नहीं करे तो स्वच्छन्दी होगा। ऐसा नहीं, भाई! वह स्वच्छन्दी नहीं। उसे भाव आयेगा तो उसे हेयबुद्धि से, उसे दु:खरूप मानेगा। आहाहा! गजब मार्ग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभुत्वशक्ति की विपरीतता से मारा गया। कर्म की प्रभुत्वशक्ति से मारा गया, इसका अर्थ विकार के परिणाम जो कर्म, उनकी प्रभुता से मैं मारा गया। ऐसा कहते हैं। कर्म, वह प्रभु नहीं। विकार की प्रभुता को माना, विकारभाव में प्रभुता को स्वीकार किया, उससे मैं घाता गया अनादि से। मेरी वीतरागता की प्रभुता का मैंने स्वीकार नहीं किया। आहाहा! ऐसा मार्ग, बापू! दुनिया से अलग जाति है। आहाहा!

क्रियाकाण्डादिक संसार ही में रखते हैं,... क्रियाकाण्ड अर्थात् उसमें तपस्या करना, अपवास करना, महीने-महीने के अपवास, वह शुभभाव की क्रिया, वह **संसार ही में रखते हैं,...** आहाहा! तब यह कहे कि शुभभाव करते-करते शुद्ध होगा। आहाहा! संसार का भाव सेवते-सेवते धर्मभाव होगा। अरे! भाई! नौवें ग्रैवेयक में गया, (ऐसे) मिथ्यादृष्टि को शुभ उपयोग उसके जैसा दूसरे को होता नहीं। ऐसे शुभ उपयोग में भी धर्म नहीं। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो।' पंच महाव्रत पालन किये, ऐसा तो द्रव्यलिंग भी अभी नहीं। आहाहा! उसके शुभ उपयोग में नौवें ग्रैवेयक शुक्ललेश्यावाली लेश्या। वह शुक्ललेश्या, वह संसार है। शुक्ललेश्या की क्रिया संसार में रखती है। आहाहा! जिसमें भव का प्रवेश मिले, वह भाव धर्म कैसे कहलाये? बाबूलालजी! ऐसा गजब मार्ग, भाई!

कदाचित् संसार के भोगों की प्राप्ति कराते हैं... संसार के भोग अर्थात् जहर का अनुभव। आहाहा! देव का अनुभव, यह सेठिया अरबोंपति, करोड़ोंपति, उसे राग का अनुभव, भोग का अनुभव, जहर का अनुभव है वह। आहाहा! साढ़े तीन करोड़ का बँगला है। मैसूर में देखने गये थे, नहीं? राजा का था साढ़े तीन करोड़ का। सरकार ने

ले लिया। खाली पड़ा है। मैसूर मैसूर। देखा है? .... रहते। एकदम खाली साढ़े तीन करोड़ का। बँगला-हजीरा। रहनेवाला राग के अंगारों में सिंकता था। आत्मशान्ति का सागर प्रभु की ओर के झुकाव के परिणाम बिना जितने परलक्ष्यी परिणाम (होते हैं, वे) सब दुःखरूप हैं। वह कदाचित् भोगों की प्राप्ति करावे। भोग मिले, उसका भोग मिले। उसे भोग मिले, उसके भोग मिले। कांतिभाई! आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य। दिगम्बर धर्म वाणी बहुत स्पर्श करनेवाली। आहाहा! उस वाणी के अर्थों को समझे नहीं और ... व्यवहार चाहिए, व्यवहार साधन है... साधन है... साधन है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि व्यवहार संसार का कारण, वह साधन? कठिन बात है, भाई! पूरा जन्म-मरण का अन्त लाना, चौरासी के अवतार का नाश करना, वह बात कोई साधारण होगी? वह उपशमरस से भरपूर प्रभु अर्थात् कि वीतरागस्वरूपी, उसका उपयोग करना, उस ओर का शुद्ध उपयोग, वह शुद्ध उपयोगी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह वीतरागभाव, वह जैनधर्म। कान्तिभाई! ऐसा सब है। वहाँ गप्प बहुत मारे होंगे। भाषण करे सामने आगे होकर। २२ संस्था के मजदूर थे। जहाँ-तहाँ मान मिले तो कहे चलो, करो। उसमें हमारी ... तुम्हारे में ... मान दे। इन्हें गौशाला में था न सब बड़ा? अब तो नहीं जाते होंगे। शरीर जीर्ण हो गया। क्या करे?

मुमुक्षु : उसमें—स्याद्वाद में इसका क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद का अर्थ क्या? स्याद्वाद का अर्थ क्या? कि शुद्ध उपयोग से धर्म होता है और राग से नहीं होता, इसका नाम स्याद्वाद। शुभ उपयोग से नहीं होता और शुद्ध उपयोग से होता है, इसका नाम अनेकान्त, उसका कथन—वाणी का नाम स्याद्वाद। आहाहा! उसे स्याद्वाद अर्थात् ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। शुभभाव से धर्म होता है और शुद्ध से भी धर्म होता है, इसका नाम स्याद्वाद (नहीं है)। यह तो फुदड़ीवाद है। यह प्रश्न नारद है। कहो, समझ में आया?

तो भी फिर भोगों में लीन होता है,... वह शुभभाव में भोग मिले और भोग में लीन हो जायेगा वह तो। आहाहा! **तब एकेन्द्रियादि पर्याय पाता है...** आहाहा! शुभभाव के फल में भोग मिले यह विषय आदि के और उन्हें भोगकर एकेन्द्रिय की पर्याय प्राप्त

होगी। निगोद में जायेगा। क्या कहते हैं? शुभभाव, उससे संसार की अनुकूलता के भोग मिलें और उन भोग में लीन हो जानेवाला है। क्योंकि शुभभाव को अपना मानकर किया है। उसके फल में लीन हो जानेवाला है वह। और उसमें लीन हुए, मरकर एकेन्द्रिय में ही जानेवाले हैं। एकेन्द्रियादि शब्द है न? कोई दो इन्द्रिय में जाये, कोई पंचेन्द्रिय नरक में जाये। अरेरे! कोई ढेढगरोळी... यह क्या कहलाता है तुम्हारे? छिपकली। वहाँ उसके कूख में अवतरे, छिपकली के कूख में। भोग के भोगी मरकर वहाँ जाये। इसलिए शुभभाव अच्छा है, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुण्य और शुभ-अशुभभाव में जो अन्तर करे, घोर हिडंति संसार। यह प्रवचनसार (गाथा ७७) में है। आहाहा!

मुमुक्षु : नहीं मानता....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। नहीं मानता, पुण्य-पाप में विशेषता मानता है। पुण्य वह ठीक है। वह मरकर जायेगा चार गति में। आहाहा! घोर संसार। भारी कठिन धर्म लोगों को।

धर्मी को भी अशुभ से बचने के लिए ऐसा भाव हो, परन्तु वह संसार है। आहाहा! उसे भी भोग का कारण है वह। स्वर्ग और यह सेठाई के कारणभाव हैं वे। वह स्वर्ग और सेठाई को भोगकर अज्ञानी (चार गति में भटकेगा)। ज्ञानी को वह आवे, परन्तु उसमें उसे लीनता नहीं रहती। क्योंकि हेयबुद्धि से शुभभाव किया है, हुआ है, उसके फल में उसे हेयबुद्धि रहेगी। उसे भोग में उपादेयबुद्धि होगी नहीं। आहाहा! वह तो अनुकूल सामग्री (मिले वहाँ) आहाहा! एक राजा को कहा एक..., कि अरे! राजा! ऐसे पाप करते हो तो नरक में जाओगे। बहुत पाप करते हो। इस हाथ से करूँगा और इस हाथ से भोगूँगा। मर जायेगा। मरकर गया नीचे। नरक में गया होगा। चिल्लाहट मचाता होगा अभी। समझ में आया? यहाँ तो हो जाये जरा पैसा दो, पाँच, दस करोड़। पुत्र... दुकान चलती हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे क्या? जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसे ऐसे विचार आवे। जिसे कल्याण नहीं करना, उसे ऐसे खोटे विचार, झूठे (विचार) आवें।

लो! आहाहा! जिसे आत्मा का उद्धार करना हो, उसे ऐसे भाव आवे कि रागादि भोग का कारण दु:खरूप है। मेरा आत्मस्वभाव, वह सुखरूप और आनन्द का कारण है। आहाहा!

एकेन्द्रियादि पर्याय पाता है तथा नरक को पाता है। ऐसे भोगे, महाभोग को भोगकर नरक में जाये। आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। सात सौ वर्ष का चक्रवर्तीपना, उसके फल में ३३ सागर रवरव नरक का नारकी (हुआ)। सात सौ वर्ष के जो श्वास हों, उसके एक श्वास में अमुक पल्योपम नरक में दु:ख है। यह धनजीभाई को (खबर है)। कितना धनजीभाई! कितना कहा?

मुमुक्षु : ५६९७५ पल्योपम।

पूज्य गुरुदेवश्री : ५६९७५ पल्योपम एक श्वास में। आहाहा! चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, छियानवें हजार स्त्रियाँ, सात सौ वर्ष रहा। मरकर सातवें रवरव नरक में गया। एक श्वास इतना ले, उसका इतना... ५६ हजार क्या कहा वह? ५६९७५ पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्यात अरब वर्ष जाते हैं। दृष्टान्त देते हैं न यह। ... आहाहा! भावना ने घर घाला इसका। पाप बाहर का भले कम करे, परन्तु भावना में तीव्रता मिथ्याभ्रान्ति और राग-द्वेष का रगड़ना। आहाहा! भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति का अनादर करके और राग के आदर में फँसकर एकाकार हो गया। आहाहा! वह मरते समय हीरा के पलंग में सोता था। हीरा का ढोलिया। ढोलिया समझे? पलंग-पलंग। वह अन्तिम घड़ी में मरकर अभी सातवें रवरव अपरिठाणे है अभी। अभी तो थोड़े वर्ष गये हैं। पल्य के असंख्यवें भाग में भी वर्ष नहीं गये अभी। आहाहा! अरे! इसने दीर्घ विचार कहाँ किया है? यह इतने सुख में इतना दु:ख और आत्मा के आनन्द की शान्ति में रहनेवाला, थोड़ी प्रतिकूलता आवे तो वह जाने, सहन करे तो उसके फल में उसे मोक्ष। एक श्वासोश्वास की शान्ति, उसका अनन्त काल का सुख। आहाहा!

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि और उसका ज्ञान, उसके फल में... आहाहा! एक पाँच-पच्चीस वर्ष रहे, उसके फल में—उसके एक-एक श्वास के फल में—अनन्त आनन्द का सुख मोक्ष का प्राप्त हो। बात ऐसी है कि संसार में क्यों भटकता है मिथ्यात्व से, उसकी इसे खबर नहीं। मुनिव्रत लिया, पंच महाव्रत पालन किये, वह

तो सब दु:खरूप भाव हैं। भोग का कारण कहेंगे, अभी ८४ में कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सत्य कथन सन्त दिगम्बर ही कर सकते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समाज की जिन्हें पड़ी नहीं। समाज समतौल रहेगी या नहीं? यह बात मानने पर हमको वे लोग किस प्रकार से रहेंगे? ऐसी जिन्हें दरकार नहीं। आहाहा! अरे! श्रद्धा तो कर, भाई! भगवान आत्मा, वह राग के परिणाम से रहित है और वीतरागभावसहित है, ऐसी दृष्टि कर न! उस दृष्टि में शुद्धभाव है, उसके फल में अनन्त मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया? यह तो दुनिया की देखादेखी। उसने ऐसी क्रिया की, मैं ऐसा करूँ, मैं यह करूँ। जहर का क्या कहलाता है वह? होड-होड। वह कहे मैं रुपयाभार जहर पीयूँ। वह कहे कि मैं दो रुपयाभार पीयूँ। होड। होड-होड। बाजी लगाये।

मुमुक्षु : हरिफाई करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : हरिफाई की शुभभाव की। वह कहे, यह इतने उपवास करे तो मैं इतने करूँ। रिकार्ड तोड़ूँ, फलाना करूँ। क्या है परन्तु अब? आहाहा! अरेरे! उसे आत्मधर्म क्या चीज़ है? जैनधर्म अर्थात् क्या चीज़ है? आहाहा! कहा न, रत्न में हीरा, वृक्ष में चन्दन, उसी प्रकार धर्म में जैनधर्म, वह ऊँची चीज़ है। जैनधर्म कोई पक्ष और वाड़ा नहीं। वह आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसकी दृष्टि-ज्ञान करना, इसका नाम जैनधर्म है। आहाहा!

तथा नरक को पाता है। ऐसे अन्य धर्म नाममात्र हैं... ऐसे वीतरागी धर्म के अतिरिक्त बाकी नाममात्र सब धर्म कथन कहना। कहनेमात्र हैं बस। धर्म है नहीं। आहाहा! **इसलिए उत्तम जिनधर्म ही जानना।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ८३

आगे शिष्य पूछता है कि जिनधर्म को उत्तम कहा, तो धर्म का क्या स्वरूप है ? बहुत जैनधर्म आप उत्तम... उत्तम... उत्तम... कहा तो उसका स्वरूप क्या है ? **उसका स्वरूप कहते हैं कि धर्म इस प्रकार है :—** आहाहा!

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥८३॥

आहाहा! '**धम्मो**'

अर्थ :- जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है कि... भाषा देखो! है न ? '**जिणेहिं सासणे भणियं**'। जैनशासन में परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग, पूर्ण वीतराग और पूर्ण सर्वज्ञ प्राप्त परमात्मा ने जैनशासन में धर्म यह कहा है। आहाहा! **कि पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य ही है...** अहिंसा और सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य पालना, अपरिग्रहरूप से रहना, वे सब भाव तो पुण्य हैं। आहाहा! महाव्रत के भाव, वह पुण्य है। 'ही' है न! **पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य ही है...** अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालना शुभभाव, वह पुण्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ग्रहण करे, क्या ? ऐसा कि शुद्ध उपयोग ग्रहण करते हैं। मुनि तो शुद्ध उपयोग ग्रहण करते हैं। नहीं देखा ? देखा नहीं ? मोक्षमार्गप्रकाशक। साधु की व्याख्या। आहाहा!

देखो! अरिहन्त का स्वरूप। गृहस्थपना छोड़कर, मुनिधर्म अंगीकार करके, निज स्वभाव साधन में चार घातिकर्म का नाश करते हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु। जो विरागी बनकर समस्त परिग्रह छोड़कर 'शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म' अंगीकार करके। आहाहा! ... 'शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके।' यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक। सादी भाषा है। पंच महाव्रत ग्रहण करके, ऐसा नहीं लिया। व्यवहारनय के शास्त्र में ऐसा कि भक्ति और स्तुति ... आहाहा! शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म। आहाहा! उसे तो अभी कहे, नहीं। शुद्ध उपयोग तो अभी होता नहीं। हो गया, तो धर्म नहीं होता। आहाहा!

आचार्य, उपाध्याय, साधु का स्वरूप वर्णन किया है। टोडरमलजी ने गृहस्थ संसार में रहकर... वे कहते हैं कि मुनिपना अर्थात् क्या? साधु और आचार्य अर्थात् क्या? शुद्ध उपयोग, वह मुनिधर्म अंगीकार करके। अंतर में तो उस शुद्ध उपयोग द्वारा स्वयं अपने को अनुभव करते हैं। आहाहा! यह शुद्धभाव, शुद्ध उपयोग से आत्मा को अनुभव किया और उसने शुद्ध उपयोग को ग्रहण करके, उस द्वारा अपने को अनुभव करते हैं। परद्रव्य में अहंबुद्धि नहीं धरते। आहाहा! अपने ज्ञानादि स्वभाव को ही अपना मानते हैं। परभाव में ममत्व नहीं करते। रागादि आवे उन्हें... ऐसा तो आचार्य, उपाध्याय और साधुपना। यह तो पंचम काल की बात है। पंचम काल के गृहस्थ यह (वर्णन करते हैं)। पाठ में है न प्रवचनसार में। आचार्य, उपाध्याय, साधु ने परम शुद्ध उपयोग ग्रहण किया है। प्रवचनसार में पहली पाँच गाथायें। आहाहा! परम शुद्ध उपयोग। आहाहा! टीकाकार हजार वर्ष पहले हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले। यह तो ऐसा कहते हैं कि शुद्ध उपयोगरूप, परम शुद्ध उपयोगरूप मुनिपना अंगीकार करके। आहाहा! जयधवल में तो ऐसा कहते हैं। वह आता है न वींछिया में दो हजार के वर्ष में। मुनि चौथे अन्तिम संथारा करे, अरे! मैं तो शुद्ध उपयोग करना, यह मैंने तो प्रतिज्ञा ली है। यह पंच महाव्रत के विकल्प आये, वह तो मेरा प्रत्याख्यान टूटा है। ऐई! देवानुप्रिया! आहाहा! जयधवल। दिगम्बर सन्तों की वाणी तो सिंहनाद हुआ, ऐसा कहते हैं। सिंह की गर्जना है। आहाहा! अरेरे! मैंने शुद्ध उपयोग को अंगीकार किया। आहार लेना, यह उपदेश का भाव आया... यह मेरा... ग्रहण किया। आजीवन... मुनिपना अंगीकार किया। प्रत्याख्यान करते हैं। ...वाणी। आहाहा!

... मैंने तो शुद्ध उपयोग को ग्रहण किया। आहाहा! और अब मैं फिर से प्रत्याख्यान करता हूँ। ...गजब बात है न! आहाहा! इन दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह बात सुनने को मिले, ऐसी नहीं। आहाहा! यह तो सिंह की गर्जनायें हैं। दहाड़ मारकर सिंह है यह तो। ओहो! आतम राम... श्रीमद् में आता है न 'अहो अहो श्री सद्गुरु।' 'अहो अहो श्री आतमराम।' वीतराग मूर्ति प्रभु ओहोहो! उसके शुद्धभाव को मैंने तो अंगीकार किया है। अरे! बीच में यह क्या आया? वे कहें, पंच महाव्रत पाले तो लाभ होता है। यह कहे पंच महाव्रत... देवीलालजी! यह वाणी, बापू! यह वीतरागी सन्तों के

बिना यह वाणी कहीं मिले नहीं। समझ में आया? आहाहा! ...उपदेश का विवाद उठा। जयधवल की व्याख्या है। ... दो हजार। (संवत्) १९९९ के वर्ष का चातुर्मास राजकोट में करने के बाद इस ओर आये... ओहोहो! कहते हैं कि शुद्ध उपयोग, इसके अतिरिक्त पूजा आदि व्रत सहित तो पुण्य है। वह जैनधर्म नहीं। आहाहा! मन्दिर बनाना, परमागम मन्दिर बनाना—ऐसा जो भाव शुभ, वह पुण्य है। मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : ज्ञानी को....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह अलग बात है। आता है, परन्तु उसे हेयबुद्धि से जानता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि क्या, सन्त गणधर जानते हैं। गणधर को शुभभाव आता है। जानते हैं कि हेय है। वह उपादेय नहीं।

मुमुक्षु : वह त्रिकाल नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह त्रिकाल नहीं, आदर नहीं। आहाहा!

जैनधर्म की व्याख्या चलती है। कहते हैं कि यह तो पुण्य है—व्रत और यह तो पुण्य है, यह जैनधर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टिवाले की अपेक्षा से बात है। यहाँ तो अभी मिथ्यात्व से बचा नहीं, वहाँ पाप से कहाँ से बचता था? मिथ्यात्व में ही अभी शुभ पुण्य है, वह धर्म है (—ऐसा मानता है), वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! ... निश्चय का वीतरागभाव, वह धर्म है, ऐसा जहाँ प्रगट हुआ है, उसे जो शुभभाव हो, उसे व्यवहाररूप धर्म कहा जाता है। मिथ्यादृष्टि का शुभभाव तो अकेला एकान्त मिथ्यात्व का ही कारण है। क्योंकि उसे वह धर्म मानता है और उससे कल्याण होगा, ऐसा मानता है। आहाहा! अजर प्याला है भाई यह तो। इसे झेलना... यह सोने के पात्र में सिंहनी का दूध रहे। लोहे के पात्र में डाले तो लोहा एकदम फट जाये। सिंहनी का दूध तो वह स्वर्ण का पात्र ही झेलता है।

उसी प्रकार वीतराग वाणी, उसे श्रद्धावन्त सम्यग्दृष्टि ही झेलता है। आहाहा! मार्ग तो यह है। तीन काल-तीन लोक में जो आत्मा की दशा चैतन्य के आनन्द के कन्द के आश्रय से वीतरागी पर्याय होती है, वह एक ही धर्म है। बाकी 'एक होय तीन काल में परमारथ का का पंथ।' दूसरा कोई मार्ग नहीं। आहाहा!

मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम वह धर्म है। मिथ्यात्व और चारित्र के दोषरहित जो आत्मा के परिणाम, वह धर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्षोभ अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षोभ अर्थात् चारित्रदोष, मोह अर्थात् मिथ्यात्वदोष। चारित्र रागादि... है, वह चारित्रदोष है। उससे रहित आत्मा के परिणाम, वह जैनधर्म है। आहाहा!

पाठ है न! '**मोहक्खोहविहीणो परिणामो**'। परिणाम, वह धर्म है। परिणाम पर्याय है न! आहाहा! जैनधर्म, जैनशासन तो पर्याय है। पूरी पर्याय। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणामरहित पर्याय, वह जैनधर्म है। आहाहा! यह तो सभायें भरे और फिर ऐई... गप्प मारे। वीतराग ने ऐसा कहा है, वीतराग ने यह व्यवहार कहा है, व्यवहार से साधन है, राग वह साधन है। और पहले धीरे-धीरे करते वीतरागता आवे न, कहीं एकदम वीतरागता आ जाये? राग करते-करते वीतरागता आवे। यह मारे गप्प और यह ऐसा मारे ठीक सा। सभा ऐसा कि आहाहा! गजब आया! पूँछ बहुत जलावे न, इसलिए भैंस भड़के। इसी प्रकार यह सब... और लोग प्रसन्न हो जाये। कहे, आहाहा! गजब... है। वह तो आत्मा... आत्मा... आत्मा... इसकी विशेष बात है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ९, शुक्रवार, १५-०२-१९७४
गाथा - ८३, ८४, प्रवचन-१०९

यह अष्टपाहुड़, भावपाहुड़-८३ गाथा। **भावार्थ :- लौकिक जन तथा अन्यमती कई कहते हैं कि पूजा आदिक शुभ क्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है,...** पूजा, व्रतादि धर्म है, ऐसा कितने ही अज्ञानी जैन में रहे हुए और अन्य में रहे हुए कहते हैं। यह बात झूठी है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य के समय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब होंगे। अनादि से चलता है। आहाहा! जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि पूजा, व्रत, तप, वह सब शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं।

शुभ क्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है, परन्तु ऐसा नहीं है। जिनमत में जिनभगवान ने इस प्रकार कहा है कि—पूजादिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य है,... ओहो! बारह व्रत, पंच महाव्रत, भगवान की पूजा, वह तो सब पुण्यभाव है, ऐसा जिनेश्वरदेव ने कहा है। **इसमें पूजा और आदि शब्द से भक्ति...** भगवान की भक्ति, भगवान की पूजा, भगवान का नामस्मरण, वह सब भाव पुण्य है। **वन्दना...** देव-गुरु-शास्त्र की वन्दना। आहाहा! वह सब पुण्यभाव है, धर्म नहीं। **वैयावृत्य...** सन्तों की, धर्मात्मा की वैयावृत्य करना, वह भी एक शुभभाव पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! अभी तो जगत में यह सब चला है (कि) पूजा, भक्ति, वन्दन और वैयावृत्य, वह सब धर्म है। जिनेश्वरदेव उसे पुण्य कहते हैं; धर्म नहीं।

वह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है... ऐसा कहते हैं। परद्रव्य जो देव, गुरु और शास्त्र परवस्तु है, उनके लिए वन्दन, भक्ति, वैयावृत्य आदि है। इसके परद्रव्य के आश्रय से किया जाये, वह भाव धर्म नहीं। देव-गुरु और शास्त्र, वे परद्रव्य हैं। उनकी भक्ति, उनका वन्दन, उनकी वैयावृत्य, उनकी पूजा, वह सब भाव शुभ है; धर्म नहीं।

मुमुक्षु : शुभ है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ अर्थात् पुण्य है। वह पुण्य है अर्थात् धर्म नहीं। आहाहा! यह तो अनन्त बार ऐसे पुण्य किये, परन्तु उससे कहीं धर्म नहीं होता।

यह स्पष्टीकरण किया **देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है...** वन्दना, वैयावृत्य, भक्ति, पूजा। **उपवास आदिक व्रत हैं, वह शुभक्रिया है,...** उपवास करे, वह तप है, शुभभाव है। तप अर्थात् धर्म नहीं। आहाहा! **वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है...** आहाहा! वह तो एक रागभाव है, पुण्यभाव है। वह आत्मा के कल्याण का कारण नहीं। आहाहा! **उससे पुण्यकर्म होता है, इसलिए इनको पुण्य कहते हैं। इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है।** आहाहा! भगवान की भक्ति, पूजा, वन्दन, वैयावृत्य और व्रत, उनका फल तो स्वर्ग में भोग मिले या धूल का सेठिया हो, ऐसा (फल) मिले। उसमें कहीं आत्मा नहीं मिलता। आहाहा!

मुमुक्षु : अनादि से मानते हों तो खोटा हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से मानते हैं, वह मूढ़ता है, ऐसा कहते हैं। व्रत करना और तप करना, भक्ति और पूजा हो, परन्तु हो, वह पुण्य। संवर और निर्जरा कल्याण का कारण, भव के अभाव का कारण वह नहीं। आहाहा! जिसमें भव मिले, वह कल्याण का कारण नहीं होता। सूक्ष्म बात है, भाई! जिनेश्वरदेव केवली परमात्मा ने धर्म कहा, वह सूक्ष्म है। अपूर्व है, सूक्ष्म है। ऊपर आ गया था न। '**भाविभवमहणं**' धर्म तो उसे कहते हैं कि जिसमें भविष्य के भव का नाश हो। भविष्य में भव मिले, वह धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसके पश्चात् यह बात ली है न? ८२ के बाद। '**भाविभवमहणं।**'

मुमुक्षु : भव का नाश हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका नाश, भव का नाश करे, उसका नाम धर्म। भव को उपार्जित करे, उसका नाम धर्म नहीं। आहाहा! भवभ्रमण उत्पन्न हो, वह सब भाव पुण्य और शुभ है। भव का अभाव हो, ऐसे भाव को धर्म कहते हैं। आहाहा!

इसका फल स्वर्गादिक... अर्थात् कि पुण्य बाँधे, उससे स्वर्ग मिले, कुछ बाकी रहे हों तो यह सेठिया हो धूल का—पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़ धूल के धनी

हों। भगवानजीभाई! नहीं आये सेठ? बुखार आता है? आये नहीं। ओहोहो! धर्म किसे कहते हैं? **मोह के क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम को धर्म समझिये।** आहाहा! मिथ्याश्रद्धा से रहित सम्यग्दर्शन और पुण्यपरिणाम से रहित स्थिरता, वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया? वह **मोह के क्षोभ से...** मोह और क्षोभ दोनों। **आत्मा के परिणाम...** वीतरागी परिणाम। मिथ्याश्रद्धा से रहित सम्यग्दर्शन के परिणाम और राग से रहित स्थिरता शान्ति के परिणाम। वह धर्म है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! अभी तक यह सब क्या किया? व्रत और अपवास, नियम, भक्ति और पूजा, वह सब पुण्य है, धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहाहा! और यह लोक में लोकसेवा करते हैं। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : राग की सेवा तो करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की सेवा करता है यह तो। कहो, गाँव-चतुर हो, वह गाँव की सेवा करे। भव बाँधे। भव में भटके, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : होशियार हो तो बड़ा कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा अर्थात् क्या? आहाहा! नयी खाट गूँथे न, तब पहले कुत्ते को बैठाये ऊपर। खबर है? (नारियल के छिलके की) डोरी-डोरी। नई खाट बनावे न तो पहले उसमें कुत्ते को बैठावे। क्योंकि स्वयं पहले बैठे तो अर्थी कहलाये। मर जाये। इसलिए पहले कुत्ते को बैठावे। बीच में डाले वापस रोटी। कौने के बाहर रखे तो कुत्ता खड़ा-खड़ा खाये। मध्य में डाले रोटी। हमने तो देखा है न, सब देखा है हमारे गाँव में। रोटी मध्य में डाले और कुत्ता ऊपर चढ़कर खाये, फिर खाट प्रयोग में आवे। तो बड़ा होगा वह? कहो, इसी प्रकार इस दुनिया में बड़ा माने, वह खाट में बैठा कुत्ता रोटी खाये वैसे हैं वे। ...भाई! नहीं? अपने गाँव में यह होता है। नई खाट बुने न, न सोवे, पहले मनुष्य न सोवे। कुत्ते को रोटी डालकर....

मुमुक्षु : रस्सी का होवे तो, निवाड़ का होवे तो दिक्कत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निवाड़ की बात है न। निवाड़ का हो और वह निवाड़। अर्थी में डोरी बाँधे न। कुछ वह बाँधते हैं? क्या कहलाता है? पाटी। अर्थी में कुछ

पाटी नहीं बाँधे अर्थी में। डोरी बाँधे। इसलिए यह डोरी का हो। आहाहा! इसलिए कुत्ता बड़ा हो गया घर में? सबसे पहले उसे सुलावे और खिलावे, इसलिए बड़ा हो गया? आहाहा!

कहते हैं... भगवान त्रिलोकनाथ, तीर्थंकरदेव परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि जो **मोह के क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम को...** आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से हुए भाव। जो पूजा, भक्ति, व्रत, तप तो पर के आश्रय से हुए भाव हैं। उनकी दिशा पर के ऊपर दशा है। आहाहा! परन्तु आत्मा परम आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन ध्रुव का आश्रय लेकर जो वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी शान्ति अर्थात् स्थिरता, उस मोह-क्षोभरहित परिणाम को भगवान ने धर्म कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आत्मा की यह शक्ति क्यों नहीं? आत्मा की शक्ति सबमें है। पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु है। आहाहा! वह वीतरागस्वभाव से भरपूर तत्त्व है। वही यह आत्मा कर सकता है। आहाहा!

मिथ्यात्व तो अतत्त्वार्थश्रद्धान है,... उससे रहित कहना है न? पुण्य के भाव, वह धर्म है, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! यह पूजा, व्रत, भक्ति, वैयावृत्य, वन्दन वह धर्म है, ऐसा मानना वह मिथ्यात्व है। **क्रोध-मान-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा ये छह द्वेषप्रकृति है...** क्षोभ से रहित कहना है न। **क्रोध-मान-अरति...** क्रोध, मान, वे द्वेष में जाते हैं। **अरति-शोक-भय-जुगुप्सा...** वे द्वेष में जाते हैं। **और माया, लोभ...** वे राग में जाते हैं। **हास्य, रति ये चार तथा पुरुष, स्त्री, नपुंसक ये तीन विकार, ऐसी सात प्रकृति रागरूप है।** आहाहा! लोभ में चाहे तो वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का लोभ अर्थात् राग, वह सब विकार में जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जन्म-मरणरहित होने का उपाय तो अलौकिक होना चाहिए न! वह बड़ा कहलाये... गिरधरभाई! लो, यह कार्यकर्ता वहाँ वढ़वाण में बड़े कहलाये।

मुमुक्षु : वह तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अच्छा हुआ, नहीं रास आया। वरना फँस जाते। आहाहा!

मुमुक्षु : तब नहीं छूटे तो आज छूट गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब ऐसे सब प्रसंग आये, देखो न यह सब। त्यागपत्र देना पड़ता है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि पुण्य और पाप के भाव जो विकार, उसे धर्म मानना, शरीर की क्रिया मुझसे होती है, पर का काम मुझसे होता है, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्व से रहित ऐसा जो आत्मा का सम्यग्दर्शनभाव, वह धर्म है। आहाहा! सम्यक् अर्थात् आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्दघन की सच्ची निर्विकल्प प्रतीति अन्दर होना, वह सम्यग्दर्शन, वह धर्म है। यह कहा था न (संवत्) २०१० के वर्ष में यह। वीरचन्द वोरा बोटाद में। देव-गुरु-शास्त्र, देव-गुरु तो सब शुद्ध हैं। वे शुद्ध पर कहलाये? लो! २०१० के वर्ष में। हरजीवनभाई थे व्याख्यान में। म्युनिसिपालिटी में थे। बोटाद नहीं? व्याख्यान चलता था न! तब हरजीवनभाई ने एक प्रश्न किया कि, महाराज! यह पैसे बिना कुछ चले? ऐसा प्रश्न किया। २०१० के वर्ष की बात है। बीस वर्ष हुए। पैसा-पैसा, पैसे के बिना चले? कहा, पैसे का अभाव है, तब ही आत्मा निभता है। आत्मा, आत्मारूप से है और पैसेरूप से नहीं। २०१० के वर्ष की बात है। म्युनिसिपालिटी में व्याख्यान चलता था न तब। एकाध बार तो आये होंगे तुम। एकाध बार आये होंगे। बहुत तो आवे नहीं।

मुमुक्षु : आपका....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं... इस बात का यहाँ क्या काम है?

यहाँ तो कहते हैं, भाई! पैसा हो तो सब्जी मिले, ऐसा लोग कहते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु पैसा हो तो ही मकान बँधाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मकान पैसा हो तो बँधाये।

मुमुक्षु : यह तो देखी हुई बात है। प्रतिदिन बिल चुकाना पड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु लड़के के पास पैसा नहीं और मकान तो होता है। उसका लड़का हो दो वर्ष का, आठ वर्ष का, दस वर्ष का। लो, उसके पास पैसा है? तो मकान तो होता है। वह तो मकान का होना तो पर के कारण, जड़ के कारण है। वह क्या

आत्मा के कारण है ? आत्मा मकान बना सकता है ? आहाहा ! और आत्मा उस मकान में रह सकता है ? आत्मा तो अपने में रहा हुआ है। आहाहा ! जड़ में कहाँ रहता है वह ? आहाहा ! यहाँ तो यह पुण्य परिणाम में भी आत्मा रहे, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा ! भगवान आत्मा तो पुण्य और पाप के परिणामरहित चीज़ है, उसकी जो अन्तर सम्यग्दर्शन दशा करना और ऐसे राग-द्वेष के परिणाम से रहित (दशा होना, वह धर्म है)।

इनके निमित्त से आत्मा का ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकारसहित,... देखो ! अतत्त्वश्रद्धान और यह राग और द्वेष। इनके कारण से **आत्मा का ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकारसहित...** होता है। **क्षोभरूप...** होता है। आहाहा ! यह पूजा, भक्ति, व्रत, तप का भाव, वह क्षोभरूप भाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! वृत्ति का उत्थान होता है, अन्दर शान्ति में से वृत्ति का उत्थान होता है, व्रत, तप और पूजा, भक्ति। आहाहा ! उसने आत्मा और आत्मा का धर्म क्या, इस बात में दरकार की ही नहीं उसने। ऐसे के ऐसे जिन्दगी बाहर में (पूरी करे)। कहाँ बाहर के पैसे कमाये, लड़के बड़े हों, विवाह करे, बड़े किये और अब हम व्यवस्थित में आये हैं। धूल भी व्यवस्थित नहीं। मर गया है, सुन न ! आहाहा ! जीवन को मार डाला है। आहाहा ! चैतन्य का जीवन आनन्द और ज्ञान से होना चाहिए, उसके बदले ऐसे राग-द्वेष से जीवन जिया, वह तो अपनी शान्ति के जीवन का खून किया है। समझ में आया ? आहाहा ! बाहर की महत्ता और उसकी दुनिया में अधिकाई दिखाई दे, इसलिए मैंने कुछ किया है। मूढ़ है।

भगवान आत्मा ऐसे विकारी परिणाम से रहित और स्वरूप के आनन्द से सहित ऐसी जो अन्तर में दृष्टि और स्थिरता होना, उसका नाम धर्म है। समझ में आया ? यह चलाचल परिणाम है। आहाहा ! अस्थिर है, ऐसा कहते हैं। शुभ-अशुभ परिणाम क्षोभ। आहाहा ! अशुभ और शुभ दोनों परिणाम चलाचल—अस्थिर है, क्षोभ है। भगवान आत्मा शान्त आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा ! ऐसे आत्मा के दर्शन जिसने किये नहीं और यह पुण्य और पाप की क्रिया मेरी, मेरा धर्म—ऐसा माना है, वे सब मोहवाले और पुण्य परिणाम करते हैं, वे सब क्षोभवाले हैं। आहाहा ! भारी कठोर बातें लगे। अरे ! जन्म-मरण से रहित होना, बापू ! वह कुछ बात ! चौरासी के अवतार में भटककर मर गया है। आहाहा ! यहाँ पाँच, दो-पाँच करोड़ का सेठिया गिना जाता हो, वह मरकर

नरक में जाये। आहाहा! नरक में जाकर पोढ़े। आहाहा! उसकी पीड़ा की क्या बातें! वे सब जन्म-मरण के विकार के दुःख, उनसे रहित होने का मार्ग तो अलौकिक है।

कहते हैं कि वह मिथ्याश्रद्धा और ऐसे विकारी परिणाम से **ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकारसहित,...** होता है। भगवान आत्मा का तो देखने का, जानने का स्वभाव है। उसमें ऐसे परिणाम हैं, वे तो उसे विकारसहित करते हैं। आहाहा! यह जाननेवाला-देखनेवाला भगवान है। ऐसे स्वभाव में ऐसी विपरीत मान्यता और राग-द्वेष का क्षोभ, राग-द्वेष दोनों क्षोभ हैं... आहाहा! उसे विकारसहित कर डालते हैं। आहाहा! शक्कर में जहर मिलाते हैं, कहते हैं। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, उसमें पुण्य और पाप के भाव करके मिथ्याश्रद्धा करके उसे जहरमय कर डालते हैं। आहाहा! दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं, भाई!

क्षोभरूप, चलाचल, व्याकुल होता है, इसलिए इन विकारों से रहित हो... देखो! **विकारों से रहित हो...** तत्त्वश्रद्धान से विपरीत श्रद्धान, उससे रहित हो और क्षोभ परिणाम से रहित हो, **तब शुद्धदर्शनज्ञानरूप निश्चय हो...** आहाहा! तब मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द हूँ, ऐसे शुद्ध दर्शन और शुद्ध ज्ञानरूप **निश्चय हो, वह आत्मा का धर्म है।** आहाहा! आत्मा तत्त्वार्थश्रद्धान से रहित और राग-द्वेष के क्षोभ परिणामरहित, ऐसा जो आत्मा का शुद्धस्वरूप, ऐसे शुद्ध दर्शन-ज्ञान का निश्चय, उसका नाम धर्म। आहाहा! क्या है? आत्मा ज्ञान और दर्शनस्वरूप है। उसका ज्ञान-दर्शनस्वरूप का ज्ञान-दर्शनरूप से रहना, उसका नाम धर्म है। उस ज्ञान-दर्शन में विपरीत श्रद्धा और क्षोभ का होना, वह अधर्म है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें पर का त्याग-ग्रहण है ही नहीं।

मुमुक्षु : यह बताते हैं कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का अभाव है उसमें। (ऐसा) उसका स्वभाव ही है। परवस्तु का त्याग करना और परवस्तु को ग्रहण करना, वह वस्तु के स्वरूप में ही नहीं। आहाहा! पर का क्या त्याग करे? त्याग ही है, अभाव ही है। आहाहा!

इसलिए इन विकारों से रहित हो... विकार शब्द से मिथ्याश्रद्धा विकार, उससे रहित हो और राग-द्वेष के क्षोभ परिणाम से रहित हो **शुद्धदर्शनज्ञानरूप...** शुद्ध दर्शन और शुद्ध ज्ञान, ज्ञाता-दृष्टा—ऐसा अन्तर के अनुभव में निर्णय हो, वह धर्म है। आहाहा! कितनों ने तो यह सुना न हो। ऐई! शान्तिभाई! सब कहीं न कहीं गप्पें मारे हों। ऐई! हम ऐसी सेवा करते हैं, हम संस्था में ध्यान रखते हैं, इतनी-इतनी संस्था में हमारा अधिकार है। ऐई! लखुभाई! आहाहा! बाहर में अधिकार है न तेरा? अन्तर में नहीं न? आहाहा!

मुमुक्षु : सुनानेवाले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पात्रता न हो तो सुनानेवाले भी नहीं मिलते। आहाहा! पात्र हो तो भगवान साक्षात् विराजते हैं, वहाँ क्यों न जाये? त्रिलोकनाथ विराजते हैं महाविदेह में। आहाहा! हाजराहजूर... हाजराहजूर केवली परमात्मा है। हमारे कुंवरजीभाई लिखते थे। वह हैदरशाह है न यहाँ? बहियों में लिखे हैदरशाह हाजराहजूर। दुकान में वहाँ लिखा हुआ। खुशालभाई कहे, अपने ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु : दिवाली में नयी बही लिखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बही में पहला नामा लिखे। हैदरशाह है न यहाँ? पालीताना में नहीं? उस ओर भैरव का मन्दिर है और ऐसे हैदरशाह का। उसके माननेवाले सब थे कुंवरजीभाई और फावाभाई। तब तो रोटियाँ भी व्यवस्थित नहीं थीं, मानते थे उनके पिता और वे सब। अभी तो पैसे हो गये, लो! हैदरशाह को मानते थे, वह अब तो छोड़ दिया। यहाँ का हुआ न। पैसे हो गये, देखो अभी उसे। सूरतवाले को पच्चीस लाख। उसके बाप-दादा को कभी हुए नहीं हों पच्चीस हजार रुपये।

मुमुक्षु : ....चमत्कारी लगे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो दुनिया में बाहर में कहे न कि ओहोहो! पच्चीस लाख! परन्तु धूल में भी नहीं वहाँ अब। पच्चीस लाख क्या, तेरे पचास लाख हों तो यह कंकड़ है जगत के। आहाहा!

कहते हैं, यह पैसावाला, रागवाला, पुत्रवाला, स्त्रीवाला, इज्जतवाला, यह सब वाला लगे हैं इसे। भगवान उनसे रहित चीज़ है। आहाहा! जिसमें राग भी नहीं, पुण्य

भी नहीं, पाप भी नहीं, भ्रमणा नहीं, ऐसी जो भ्रमणारहित और अस्थिरतारहित ऐसी आत्मा की श्रद्धा और शान्ति का नाम भगवान धर्म कहते हैं। आहाहा! दुनिया माने, न माने, सत् को संख्या की आवश्यकता नहीं है। सत् को सत् के स्वभाव की आवश्यकता है।

शुद्धदर्शनज्ञानरूप निश्चय हो... आहाहा! यह पुण्य और पाप, मिथ्याश्रद्धारहित शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय आत्मा, उसका निर्णय हो, वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया? **इस धर्म से आत्मा के आगामी कर्म का आस्त्रव रुककर...** शुद्ध ज्ञान और दर्शन मेरा रूप है। मैं पुण्य और पाप के विकल्प और शरीर, कर्म से रहित हूँ। ऐसा जो भगवान आत्मा का ज्ञान-दर्शन का अन्तर निर्णय, वह आगामी कर्म के आस्त्रव को रोकता है। भविष्य में बन्ध हो, ऐसे आस्त्रव को वह उत्पन्न नहीं होने देता। आहाहा! **और पहले बँधे हुए कर्मों की निर्जरा होती है।** भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र दर्शन-ज्ञानमय ऐसा जो निश्चय का अनुभव, उससे नये कर्म नहीं आते और पुराने कर्म टल जाते हैं। आहाहा! कहो, इसका नाम धर्म है। इसका नाम जैनधर्म। **सम्पूर्ण निर्जरा हो जाये तब मोक्ष होता है...** शुद्ध दर्शन-ज्ञान के निश्चय की स्थिरता में पूर्ण स्थिरता होने पर समस्त कर्मों का अभाव होने से मोक्ष होता है। आहाहा! यह धर्म।

अब उस जीव को **एकदेश मोह के क्षोभ की हानि होती है...** सम्यग्दृष्टि जीव को ज्ञान, दर्शन और आनन्द मेरा रूप, ऐसा जो अनुभव का निर्णय, उसकी भूमिका वह धर्म की है। उसे जब शुभभाव होता है, उसे शुभभाव होता है, इससे **मोह के क्षोभ की हानि होती है इसलिए शुभपरिणाम को भी उपचार से धर्म कहते हैं...** ऐसे जीव को शुद्ध ज्ञानदर्शनघन प्रभु के परिणाम जो वीतरागी हुए, वह धर्म। उस जीव को शुभभाव होता है, उसमें तीव्र क्षोभता का अभाव है, इसलिए शुभभाव को उपचार से धर्म कहा जाता है। वास्तव में वह धर्म है नहीं। अज्ञानी को तो शुभभाव में उपचार से भी धर्म नहीं कहा जाता। समझ में आया? ऐसी बातें! आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार भटक-भटककर... आहाहा! यह देह छोड़े तब तड़पड़ाहट करे। एकमेक किया है न, राग और शरीर वह मैं। परन्तु मैं अशरीरी और अरागी ऐसा जिसने अन्तर में निर्णय और अनुभव तो किया नहीं। आहाहा! वह शरीर छूटने के अवसर पर... आहाहा! हालक-विलक, हालक-विलक (होता है)। धर्म की तो खबर नहीं।

एक व्यक्ति पूछता था कि महाराज! अभी के धर्मी तड़पड़ाहट मारकर मरते हैं, वह समाधिमरण? ऐसा पूछता था। अभी के त्यागी। अभी के त्यागी को दृष्टि की खबर नहीं और मरे तब तड़पड़ाहट करे। वह पूछता था दिगम्बर श्रावक। कहा, बापू! क्या कहें? आहाहा! अभी तो दृष्टि की खबर नहीं, वह तड़पड़ाहट ही करे। वह तो मिथ्यात्वसहित के असमाधिमरण हैं। असमाधि। भले क्षुल्लक हो या साधु हो। आहाहा! जिसे राग और शरीर से भिन्न भगवान अरागी और अशरीरी की श्रद्धा की, ज्ञान की खबर नहीं, वह तो यह मरते हुए तड़पड़ाहट ही करे। वह मरण समाधि कहाँ है? वह तो असमाधि है। आहाहा! कितने ही तो आठ-आठ दिन तक असाध्य हों। लो! फिर देह छूटे।

और जो केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर सन्तुष्ट है... ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्ध आत्मा पवित्र के भान में जो धर्मदशा हुई, उसे जो यह शुभ परिणाम है, उसे उपचार से धर्म कहा जाता है। परन्तु **जो केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर सन्तुष्ट है...** यह पुण्य और पूजा, भक्ति, व्रत और तप, वह धर्म है। **उनको धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** उसे धर्म की प्राप्ति है नहीं। आहाहा! और यह शुभ करते हैं, शुभ करते-करते निश्चय होगा, उस मिथ्यादृष्टि को धर्म की प्राप्ति नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं आते अभी? ठीक नहीं होगा। नहीं आते हों। क्यों नहीं आते? जिस मण्डप में विवाह किया था, उस मण्डप में उनका पति मर गया था। ... पन्द्रह दिन में। मण्डप हो न मण्डप, उसका विवाह किया। उसमें बोटाद गये। बोटाद में विवाह कराया था कामदार में। (संवत्) १९६६ के लगभग की बात है ६६-६६। १९६६, वहाँ जाकर प्लेग हुआ। यहाँ लाये। वह जो मण्डप था, वहाँ मुर्दा निकाला। मर गये। आहाहा! ऐसे मरण तो अनन्त बार किये हैं अनादि भव में। भूल गया। परन्तु जरा कुछ बाहर मिले, शरीर ठीक मिले, कुछ ऐसा मिले वहाँ भूल गया। हो गया जाओ। आहाहा!

कहते हैं कि तू भगवान को भूला है। त्रिलोकनाथ चैतन्यमूर्ति भगवान का तो तूने आश्रय और उसे तो मान दिया नहीं और तूने पुण्य और पाप के फल को और पुण्य-पाप

को मान दिया। मर गया है चौरासी के अवतार में हैरान-हैरान होकर। समझ में आया? अकेला शुभभाव—पूजा, भक्ति, तप और व्रत करके सन्तोष माने (कि) इतना तो हमने किया। यह अशुभभाव टालकर शुभभाव किया। परन्तु अशुभभाव तो वास्तविक अशुभभाव तो मिथ्यात्वभाव है। उस शुभभाव से धर्म होगा, यही अशुभभाव है पहला। आहाहा! वह तो मिथ्यात्व है। उसकी तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : शास्त्र के पाठी....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शास्त्र के पाठी उस मठ में रहे और शास्त्र के पाठी भी मूर्ख है। नहीं आया? आया है कहीं? कहाँ? योगसार-योगसार। योगसार (में आया है)। शास्त्रपाठी क्या करे? शास्त्र का पठन। पत्थर की शिला के ऊपर शास्त्र उत्कीर्ण करे, वे पानी में डाले तो तिरती नहीं होगी? शास्त्र लिखे हैं उसमें समयसार। संगमरमर की शिला के ऊपर समयसार उत्कीर्ण करे। पानी में छोड़े तो तिरेगी या नहीं? (नहीं तिरेगी)। उसी प्रकार शास्त्र का पठन पढ़ा, परन्तु आत्मा कौन है, उसे जाना नहीं, वह बोझावाला चार गति में भटकनेवाला, पानी में डूबनेवाला है। भवजल में डूबनेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, लो ठीक! यह नारद आये। काललब्धि का अर्थ क्या? स्वयं पुरुषार्थ किया नहीं, इसलिए काललब्धि पकी नहीं। ऐसा है वहाँ। काललब्धि का ज्ञान किसे होता है? काललब्धि का ज्ञान यह काललब्धि पकी या नहीं पकी, इसका ज्ञान किसे होता है? यह स्वभावसन्मुख हो, उसे काललब्धि का ज्ञान होता है। ऐई! आहाहा! नारद है न, नारद है यह। प्रश्न नारद ठहराया है, वह बराबर ठहराया है या नहीं? काललब्धि यह कहलाती है। पर्याय में धर्म की प्राप्ति हो, उसे काललब्धि कहा जाता है। उसे धर्म का ज्ञान होने पर उसे काललब्धि का ज्ञान सच्चा होता है। यह सब बातें करनी है इसे? यह तो आता है न, 'भवस्थिति आदि नाम ले, छेदो नहीं आत्मार्थ।' उसमें आता है या नहीं? उसके पहले क्या आया? भवस्थिति आदि। उसके पहले।

मुमुक्षु : करो सत्य पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसके पहले क्या? इसके पहले दो पद।

मुमुक्षु : जो इच्छो....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह, यह।

जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ,
भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहि आत्मार्थ।

देवानुप्रिया! हमारे भवस्थिति है और हमारे यह काल (पका नहीं, ऐसा करके) पुरुषार्थ को छेदो नहीं। 'जो इच्छो परमार्थ...' पुरुषार्थ से प्राप्त हो, ऐसी इच्छा हो, 'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ।' देखो, श्रीमद् गृहस्थ में थे, तथापि (ऐसा कहते हैं), भगवान आत्मा की ओर का पुरुषार्थ कर। भवस्थिति और काललब्धि का नाम लेकर पुरुषार्थ को छेद नहीं करो। समझ में आया? आहाहा!

केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर सन्तुष्ट हैं... अथवा उससे होगा। अपने शुभ किया है और व्रत और तप, उससे होगा। वह सब मूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव **उनको धर्म की प्राप्ति नहीं है, यह जिनमत का उपदेश है।** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर का यह उपदेश है। समझ में आया? इन्द्र और गणधरों के बीच भगवान की दिव्यध्वनि में यह आया है।

★ ★ ★

गाथा - ८४

आगे कहते हैं कि जो पुण्य ही को धर्म जानकर श्रद्धान करता है, उसके केवल भोग का निमित्त है, कर्मक्षय का निमित्त नहीं है:— इसका अर्थ उन्होंने उल्टा किया है उसमें। जो कोई मोक्ष के लिये पुण्य को मानता है, मोक्ष के लिये श्रद्धा करता है, वह बराबर है ऐसा। ऐसा लिखा है। ... उसमें। आहाहा! अरेरे! अर्थ में भी उसका अन्तर। यहाँ दूसरा कहना है, और वे लिखते हैं दूसरा।

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं॥८४॥

अर्थ :- जो पुरुष पुण्य को धर्म जानकर... देखा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा

आदि का भाव, उसे अज्ञानी धर्म मानते हैं। आहाहा! **श्रद्धान करते हैं...** उस पुण्यभाव में धर्म है, ऐसा मानते हैं, श्रद्धा करते हैं। आहाहा! ऐसा अर्थ किया है, देखो! उसमें है न। कितना? ८४ गाथा है न, देखो! **मोक्षार्थी-मोक्ष का अभिलाषी जीव पुण्य की श्रद्धा करता है, पुण्य की प्रतीति करता है, पुण्य की रुचि करता है और पुण्य को स्पर्श करता है, परन्तु पुण्य भोग का निमित्त है, कर्म क्षय का निमित्त नहीं।** विशेषार्थ। **मोक्षार्थी जीव पुण्य को मोक्ष का कारण मानकर...** मोक्षार्थी जीव। देखा! ऐसे के ऐसे उल्टे (अर्थ करे)। मोक्षार्थी कहाँ है यहाँ? यहाँ तो पुण्य का अर्थी है।

जो पुरुष पुण्य को धर्म जानकर... दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, पूजा, भक्ति, दान को धर्म मानता है, (वह) मूढ़ है। **पुण्य को धर्म जानकर श्रद्धान करते हैं, प्रतीति करते हैं,...** उस शुभभाव से धर्म होगा और शुभभाव से ही हमारे आगे लाभ होगा। **रुचि करते हैं...** उस पुण्य में धर्म की रुचि करते हैं और पुण्य को **स्पर्श करते हैं...** धर्म मानकर। **उनके पुण्य भोग का निमित्त है।** उसका पुण्य तो संयोगी चीज़ मिलेगी, आत्मा नहीं मिलेगी उसमें से। आहाहा! उसे पुण्य तो भोग का (निमित्त होगा)। यह गाथा है समयसार की २७५। २७५ गाथा। यही शब्द है। बन्ध अधिकार की (गाथा है)। **पुण्य भोग का निमित्त है। इससे स्वर्गादिक भोग पाता है...** उस पुण्य से उसे स्वर्ग और वह सेठाई मिले कुछ धूल की, परन्तु उसे कर्म का क्षय नहीं होता। आहाहा! उसे भटकने के भव मिलेंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात्? वह होता है इतना। परन्तु शुभ है, वह बन्ध का कारण है। यह तो बात की न, उसमें नहीं आयी? ऊपर क्या आया? वह आ गयी। एक सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित धर्मधारा है और उसमें शुभभाव है, वह कर्मधारा है। उस कर्मधारा से मुक्त नहीं होता, तब तक मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दृष्टि भी। कर्मधारा है, परन्तु वह कहीं धर्म है? आहाहा! शुभभाव तो आवे। मुनि को होता है पंच महाव्रत आदि का शुभभाव। वह कर्मधारा है, वह तो रागधारा है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह कहीं बड़ी भूल नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बड़ी भूल नहीं? अनन्त संसार के कारण की भूल है।

यह हमारे (संवत्) १९७२ में एक प्रश्न हुआ था। केवली देखे, तब पुरुषार्थ होगाक, अपने अभी नहीं कर सकते। ऐसा बड़ा प्रश्न हुआ था ७२ के वर्ष में। फिर कहा कि भाई! यह तुम्हारी बात खोटी है, यह बात हमको बैठती नहीं। भगवान जिसके ज्ञान में बैठे, उसे भव रहे, यह बात हमको बैठती नहीं। गुरुभाई थे। ७२ के वर्ष, फाल्गुन का महीना। फाल्गुन महीना था। यह फाल्गुन आता है न। ५७ वर्ष हुए। ५८। फिर कहा, जिसे भगवान केवलज्ञान की श्रद्धा हुई, उसे भव रहे, यह हमको मान्य नहीं। फिर उठकर पूरा सम्प्रदाय छोड़ दिया। गुरु थे बेचारे नरम। इतना कहा कि यह भूल अवरोधक नहीं, यह उन्होंने कहा। ऐई! हीराजी महाराज थे। लखुभाई ने देखे थे या नहीं? हीराजी महाराज नहीं देखे होंगे। ७४ में गुजर गये। ७४ में गुजर गये। बेचारे नरम व्यक्ति थे।

आत्मा का पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञपद है, जिसे यह बात बैठे, उसे यह शंका—प्रश्न होता नहीं कि भगवान ने अनन्त भव देखे होंगे। प्रश्न ही नहीं कहा यह। ऐई! धन्नालालजी! इसलिए फिर छोड़कर चलते थे। यह सम्प्रदाय नहीं चाहिए, कहा। यह वाणी नहीं, गुरु नहीं, सम्प्रदाय नहीं, बात नहीं। वहाँ से उठकर... चले गये। ७२ की बात है। फाल्गुन शुक्ल १३-१४ की बात है। यह हीराजी महाराज इतना बोले। नरम थे। कानजी! उतावल होती है। यह भूल अवरोधक नहीं, छोटी भूल है। ऐई! मैंने कहा, यह छोटी भूल नहीं, बड़ी भूल है। नौवे ग्रैवेयक गया अनन्त बार, वह ऐसी भूल से ही गया है। वे लोग तो उस मूर्ति को न माने न, इसलिए ऐसा कि मूर्ति माने तो बड़ी भूल कहलाये, ऐसा। हीराजी महाराज बेचारे ऐसा कहें। स्थानकवासी थे न! नहीं, मैंने कहा, यह बड़ी भूल है।

जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर श्रद्धा में बैठे, जगत में केवली परमात्मा सर्वज्ञ हैं, ऐसी अस्ति जिन्हें बैठी... आहाहा! उसे भव रहे, यह बात हमको मान्यता में आती नहीं। ऐ... धन्नालालजी! ५८ वर्ष हुए, ५८। (संवत्) १९७२ का फाल्गुन(महीना)। यह छोटी भूल नहीं। हीराजी महाराज बेचारे बहुत तपस्या करे। कषाय मन्द। पहले उन्होंने मेरी बात तो स्वीकार की। वे कहे कि सच्ची बात कहते हैं। परन्तु वापस ज्ञान नहीं न दूसरा। इसलिए दूसरे दिन (कहे), मूलचन्दजी! यह तुम कहते हो, ऐसा हो तो पाँच समवाय सिद्ध हो जाये। भगवान केवली ने भव्य-अभव्य देखे हैं। भव नहीं। अरे! ऐसा नहीं,

कहा। ऐई! यह ७२ की बात है। बेचारे भद्रिक थे। बहुत वैरागी थे, कषाय मन्द। हजारों लोगों में बैठे व्याख्यान में डोलावे सभा को। सब वैराग्य की ऐसी बात, यह तत्त्व की खबर नहीं। ऐई! देवानुप्रिया! यह छोटी भूल नहीं। एक छोटा संपौला वह छोटा मनुष्य नहीं। मार डालेगा वह छोटा संपौला। इसी प्रकार छोटा राजकुमार, वह छोटा मनुष्य नहीं। उसका हुकम चलेगा। ऐसा शास्त्र में चला है। राजा छोटा, वह छोटा नहीं। सर्प का कण होता है न छोटा? छोटा नहीं। मार डालेगा। काल को तोड़ डालेगा। इसी प्रकार मिथ्याश्रद्धा, पुण्य परिणाम, वह धर्म है, (यह) मिथ्याश्रद्धा तुझे मार डालेगी। चौरासी के अवतार में भटका मारेगी। धन्नालालजी! आहाहा! छोटी बात नहीं। ऐसे तीन बोल हैं। छोटा सिंह का बच्चा, उसे छोटा न मान, राजा का छोटा कुँवर, छोटा न मान, सर्प का छोटा बच्चा, छोटा न मान। इसी प्रकार मिथ्यात्व की श्रद्धा छोटी न मान। मोटी महाभूल है।

यहाँ कहा न, **वह पुण्य कर्म के क्षय का निमित्त नहीं होता है,...** उसे कर्म का क्षय जरा भी नहीं होता, मिथ्यात्व का क्षय नहीं होता। आहाहा! शुभभाव को धर्म माननेवाले को जरा भी कर्म का क्षय नहीं होता, मिथ्यात्व का अंश भी नहीं टलता। आहाहा! कठिन काम, भाई! ऐसा मनुष्यभव, उसमें वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा धर्म, उसे समझना... हो गया। यह समझे तो निहाल हो गया वह तो। इसके बिना सब धूलधाणी और वा-पाणी है। आहाहा! **यह प्रगट जानना चाहिए।**

भावार्थ :- शुभक्रियारूप पुण्य को धर्म जानकर इसका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करता है, उसके पुण्यकर्म का बन्ध होता है,... भगवान अबन्धस्वरूपी प्रभु, उसे ऐसे शुभभाव से धर्म माननेवाले को पुण्य का बन्ध पड़ता है। आहाहा! ... ऐसा कि पुण्य तो बँधता है न! परन्तु बन्धन है न। आहाहा! पुण्य-पाप के बन्धन में अन्तर न मान।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप बन्ध में अन्तर न मान।

पूज्य गुरुदेवश्री : न मान। समयसार। यह क्या है यह? समयसार। आहाहा! समयसार है न। पुण्य-पाप अधिकार। कितनी गाथा है?

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं पि मोक्खहेदुं अजाणंता॥१५४॥

उनमें अन्तर नहीं, देखा! देखो, आता है। ***जिनके अत्यन्त स्थूल संक्लेश***

परिणामरूप कर्म निवृत्त हुए हैं और अत्यन्त स्थूल विशुद्धपरिणामरूप कर्म प्रवर्त रहे हैं, ऐसे वे, कर्म के अनुभव के गुरुत्व-लघुत्व की प्राप्तिमात्र से ही सन्तुष्ट चित्त होते हुए भी, स्वयं स्थूल लक्ष्यवाले होने से (संक्लेशपरिणाम को छोड़ते हुए भी) समस्त कर्मकाण्ड को मूल से नहीं उखाड़ते। इस प्रकार वे, स्वयं अपने अज्ञान से केवल अशुभकर्म को ही बन्ध का कारण मानकर, व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभकर्मों को बन्ध का कारण होने पर भी, उन्हें बन्ध का कारण न जानते हुए मोक्ष के कारणरूप में अंगीकार करते हैं... यह बात खोटी है, ऐसा। अन्यत्र आता है। दो का बन्ध है न बन्ध? दो का बन्ध होता है, उसमें यह फलाना बन्ध होता है, ऐसा न मान। कौनसी गाथा वह? अध्यवसान। बन्ध अधिकार। उस बन्ध अधिकार में। पुण्य का बन्ध और पाप के बन्ध में अन्तर न मान। वह एक ही जाति है। अध्यवसाय का आता है न, जीवन-मरण का। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कुशील... यह तो बन्ध के अधिकार में ऐसा लिया है कि पुण्यबन्ध और पापबन्ध में अन्तर न मान। पुण्यबन्ध भी अज्ञान का कारण है और पापबन्ध भी अज्ञान का कारण है, ऐसा कहते हैं।

और उससे कर्म का क्षयरूप संवर, निर्जरा, मोक्ष नहीं होता है। उस पुण्यभाव को धर्म माननेवाले को संवर, निर्जरा और मोक्ष नहीं होता। आहाहा! इतना स्पष्ट कथन (होने) पर भी उस शुभ को साधन मानकर यह माने और यह माने।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... देखो न ऐसा है। ऐसा यहाँ अर्थ है और यहाँ यह है। क्या हो?

आगे कहते हैं कि जो आत्मा का स्वभावरूप धर्म है, वह ही मोक्ष का कारण है, ऐसा लिया है :— भगवान ज्ञान, दर्शन और आनन्दस्वरूप, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के निर्मल परिणाम वीतरागी हों, वह धर्म है। आहाहा! बाकी यह शुभभाव आदि धर्म नहीं। लो, विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण १०, रविवार, १६-०२-१९७४
गाथा - ८५ से ८७, प्रवचन-११०

यह अष्टपाहुड़ है। भावपाहुड़, ८५वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जो आत्मा का स्वभावरूप धर्म है...** आत्मा का (स्वभावरूप धर्म), **यही मोक्ष का कारण है...** भवभ्रमण के अभाव का कारण यह है।

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदू धम्मो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥८५॥

जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने... **अर्थ :- यदि आत्मा रागादिक समस्त दोषों से रहित होकर...** विकल्प जो है पुण्य और पाप आदि के, ऐसे विकल्प से-राग से रहित होकर **आत्मा ही में रत हो जाये...** आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप में रत-लीन हो। विकल्प से रहित और आत्मा में लीनता। **तो ऐसे धर्म को जिनेश्वरदेव ने...** उस धर्म को भगवान ने **संसारसमुद्र से तिरने का कारण कहा है।** आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव में विकल्प की वृत्तियाँ उठती हैं, उनसे रहित दृष्टि में होकर और आनन्दस्वरूप भगवान में जो लीन हो, स्वयं भगवान है। आहाहा! उसे भगवान ने संसार समुद्र से तिरने का धर्म कहा है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त और परमसत्य यह है।

भावार्थ :- जो पहिले कहा था... ८३ गाथा में **कि मोह के क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम है, सो धर्म है, सो ऐसा धर्म ही संसार से पार कर...** मोह अर्थात् मिथ्यात्व और क्षोभ अर्थात् राग के पुण्य आदि के भाव से रहित होकर अन्तर में शुद्ध चैतन्य आनन्दघन के स्वभाव में एकाग्र हो, वह धर्म है। आहाहा! वह धर्म संसार तिरने का उपाय है। कहो, यह तो निश्चय की एक बात की। व्यवहार बीच में आवे, वह तिरने का उपाय है, ऐसा नहीं। उससे तो रहित होना, ऐसा कहा। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप आदि का भाव, वह तो राग है। यह पहले कह गये ८३ में। पूजा, व्रतादि तो राग है, पुण्य है। उनसे रहित भगवान आत्मा... बहुत काम कठिन। कभी

दरकार की नहीं न! चैतन्य ज्ञायकस्वभाव अनाकुल आनन्द जिसका स्वरूप है, उसमें रागादि के भाव और आकुलता से भिन्न पड़कर, बाह्य लक्ष्य से हुए भावों से भिन्न पड़कर, अन्तर चैतन्यघन आनन्दस्वरूप प्रभु में जो भिन्न हो, वे परिणाम आत्मा के और वह आत्मधर्म है। आहाहा! यह भगवान ने कहा है। जिनेन्द्रदेव वीतराग परमेश्वर ने समवसरण में इन्द्रों और गणधरों के समक्ष ऐसा कहा था।

★ ★ ★

गाथा - ८६

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए कहते हैं कि जो आत्मा के लिये इष्ट नहीं करता है... जिसे भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध चिद्घन (है, उसकी) जिसे प्रीति और रुचि नहीं और जिसे पुण्य परिणाम दया, दान, व्रतादि का, उनका जिसे प्रेम है, वह **समस्त पुण्य का आचरण करता है, तो भी सिद्धि को नहीं पाता है:—** यह कहते हैं। ओहोहो! भावपाहुड़ में...

अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करोदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो॥८६॥

आहाहा! **अर्थ :- अथवा जो पुरुष आत्मा का इष्ट नहीं करता है,...** आहाहा! आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी ध्रुव चैतन्यप्रभु की तो प्रीति, रुचि **इष्ट नहीं करता है, उसका स्वरूप नहीं जानता है,...** पाठ में यह है। '**अह पुण अप्पा णिच्छदि**' भगवान पूर्णानन्द प्रभु की तो जिसे भावना ही नहीं, जिसे इच्छा नहीं, जिसे स्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता नहीं। आहाहा! वह '**पुण्णाइं करोदि णिरवसेसाइं**' चाहे जितना पुण्य का आचरण करो। पाठ है न? **उसका स्वरूप नहीं जानता है, अंगीकार नहीं करता है...** स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप, आनन्दस्वरूप, अनाकुलस्वरूप प्रभु का, उसे जो इष्ट अर्थात् रुचि में नहीं करता, उसकी दृष्टि नहीं करता और अकेला पुण्य करे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह चार गति में भटकनेवाला है। आहाहा! लो, यह कोई कहे कि समयसार में... यह तो अष्टपाहुड़ में है। कहो, पाटनीजी! तो समयसार नहीं पढ़ना परन्तु यह पढ़ना या नहीं?

मुमुक्षु : बारम्बार पढ़ते रहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अष्टपाहुड़ है। समयसार की ना करे तो इसको पढ़ना या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : उसे खबर कहाँ है कि इसमें क्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं।

मुमुक्षु : लोग समयसार बहुत पढ़ते हैं न। उसके ऊपर दृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहे।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द, शान्तस्वभाव, जिसका अकषायस्वभाव, जिसका वीतरागस्वभाव ऐसा जो आत्मा, उसकी जिसे रुचि और इष्टता नहीं और अकेला दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि करे... पाप की तो बात यहाँ की नहीं। आहाहा! **सब प्रकार के...** पाठ है न। **'णिरवसेसाइं'** निरअवशेष। बाकी रखे बिना सब प्रकार के पुण्य। आहाहा! भगवान की भक्ति करे, देव-गुरु को माने, पाँच महाव्रत पालन करे, अहिंसा, सत्य, अचौर्य पालन करे, वह सब पुण्य है। आहाहा! सब प्रकार के पुण्य करे। **सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है, तो भी सिद्धि (मोक्ष) को नहीं पाता है...** उसे धर्म नहीं होता और मुक्ति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप, चिद्रूप—ज्ञानरूप, जिसका आनन्दरूप, ऐसे आत्मस्वभाव की रुचि इष्टता, प्रियता करते नहीं और अकेले पुण्य की क्रियायें करते हैं, पुण्य के निरवशेष—सब प्रकार के पुण्य। अन्न पुण्य, पाण पुण्य आता है न। आहारदान देना और... बहुत प्रकार के। वे अनेक प्रकार के पुण्य करे, उनसे उसे मुक्ति नहीं मिलती। संसार में चार गति में भटकेगा। आहाहा! ऐसा मार्ग भगवान आत्मा का।

मुमुक्षु : ज्ञाननय और क्रियानय....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...क्रिया किसे कहना? यह स्वरूप की स्थिरता, वह क्रिया। पुण्य, वह क्रिया है? वह तो जहर है।

मुमुक्षु : ज्ञाननय और क्रियानय....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान की क्रिया यह। यह तो चलता है। उपादान-निमित्त में नहीं सुना? उपादान-निमित्त के आठ दोहे। क्या वह? ४७ दोहे और फिर ८ आते हैं। यह ज्ञानस्वरूप भगवान और ज्ञान में स्थिरता, वह ज्ञान की क्रिया। उसमें लिखा है। अपने सज्झाय हो गयी। राग की, पुण्य की क्रिया, वह कहीं क्रिया नहीं। वह तो अधर्म है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। 'दोई शिवमग धार।'

(संवत्) १९९० के वर्ष में चोटीला थे चोटीला। तब तो सम्प्रदाय में थे। ९०-९०। तब वहाँ लींबड़ी संघाड़ा के गुलाबचन्दजी साधु थे। ५५ वर्ष की दीक्षा। रतनचन्दजी शतावधानी हो गये हैं। शान्तिभाई पहिचानते हैं या नहीं? रतनचन्दजी के गुरु थे। वे ९० में मिले। वहाँ चोटीला उपाश्रय में उतरे। हम इकट्ठे थे। बहुत प्रसन्न हुए। हम इकट्ठे नहीं उतरते थे। हम तो सम्प्रदाय में भी किसी साधु को हम साधु मानते नहीं थे। परन्तु उनके साथ उतरे तो बहुत प्रसन्न हुए। फिर एक बात एकान्त में निकली कि यह ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष कहा है न! ऐई! देवानुप्रिया! मैंने कहा, ज्ञानक्रियाभ्याम् अर्थात् क्या? यह शास्त्र का ज्ञान और राग की, पुण्य की दया वह? ९० के वर्ष की बात है। चोटीला उपाश्रय के अन्दर। एकान्त में बात, हों! वह कहीं बाहर प्रसिद्ध कर नहीं सके। सम्प्रदाय में रहना। जाना कहाँ उन्हें? यहाँ तो सम्प्रदाय छोड़ना था।

कहा, भाई! इस प्रकार से है। आत्मज्ञान। शास्त्र का ज्ञान अकेला नहीं। चैतन्य स्वरूप भगवान आत्मा, आत्मज्ञान, आत्मा का ज्ञान और उसमें स्थिरता, वीतराग परिणति, वह स्थिरता, वह क्रिया, यह ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष है। बात तो सच्ची लगती है, (वे) कहें। ऐसा अर्थ क्यों नहीं करते? ५५ वर्ष की दीक्षा, वृद्ध थे। तब ७५ वर्ष के (थे), फिर २० वर्ष जिये। ९५ वर्ष की बड़ी उम्र में देह छोड़ा। उनके शिष्य शतावधानी थे रतनचन्दजी। सौ अवधान करते थे। मार्ग तो यह है, कहा। (वे कहें), ऐसा अर्थ क्यों नहीं करते? न करते हों तो क्या करना? यह जानपना शास्त्र का और महाव्रत की क्रिया पालना, वह मोक्ष है। दोनों खोटी बातें हैं। फिर कहा था, हों! हाँ किया। सच्ची बात है।

ऐसी क्यों लोग (बात नहीं करते) ? लोग न करे, उसका अर्थ क्या ? मार्ग तो यह है। दो बातें हुई थीं। दूसरी एक मूर्ति की हुई। मूर्ति शास्त्र में है। स्थानकवासी में प्रतिमा है। बात सच्ची। है, परन्तु हमारी जिन्दगी शंका में गयी, शिष्य पढ़ेंगे तो उसमें मूर्ति देखेंगे तो हमको गुरुरूप से नहीं स्वीकार करेंगे। ऐसा कहा लो बेचारे ने।

मुमुक्षु : ....पढ़ेंगे तो हमको गुरुरूप से नहीं स्वीकारेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं स्वीकारे। आहाहा! ओहो! क्या हो ? अरे! लुटेरे जगे। भरी दोपहरी जगत को लुटते हैं, बाहर का धर्म मनवाकर। आहाहा!

'प्रभु का मार्ग तो है शूरों का, यह कायर का नहीं काम', बापू! आहाहा! यह चैतन्य भगवान ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे स्वभाव से भरपूर प्रभु है। उस स्वभाव की श्रद्धा और स्वभाव की इष्टता और स्वभाव में लीनता, वह मोक्ष का मार्ग है। अरे! जन्म-जरा-मरण के अवतार, चौरासी के अवतार में तू भूल गया है। दुःखी होकर उसके दुःख देखनेवाले को आँसू आये, रुदन आया, ऐसे दुःख भोगे हैं, भाई! वह भूल गया, खबर नहीं उसे।

ऐसे दुःख जीवित सूअर को... आहाहा! नारणभाई कहते थे। एक के यहाँ गये थे पारसी के घर में। सूअर के पैर में सरिया बाँधकर, लोहे के सरिया पैर में (बाँधकर) अग्नि की भट्टी में डाल दिया। सूअर-सूअर। थोड़ा तो थका हुआ कहलाये सूअर। वह बहुत थक गया, यह खबर। उसे भट्टी में डालकर सेंके। शक्करकन्द सेंके शक्करकन्द। शक्करकन्द नहीं आते ? क्या कहते हैं ? शक्करकन्द भट्टी में सेंके न ? शिवरात्रि में बहुत खाते हैं वे लोग। वैसे सेंके। आहाहा! बापू! तेरे दुःख के वे दिन अनन्त गये, भाई! तुझे खबर नहीं। किसकी तुझे बाहर में प्रसन्नता आती है ? प्रसन्नता तो प्रभु चैतन्य का नाथ आनन्द का सागर, उसमें प्रसन्नता चाहिए, ऐसा कहते हैं। तेरा होश और खुशहाली तो आत्मा के आनन्द में चाहिए। आहाहा! उसकी खुशहाली और आत्मा के शान्ति की प्रसन्नता छोड़कर, यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और देव-गुरु-शास्त्र को माना... आहाहा! अरे, प्रभु! वह तो पुण्य की क्रिया। प्रभु! उससे कोई जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं। लखुभाई! ऐसी सूक्ष्म बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....हो वहाँ शान्ति मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने की मिलती है शान्ति। राग जहर है, वहाँ शान्ति कहाँ से आयी? मिले।

मुमुक्षु : राग में शान्ति मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में शान्ति होती होगी? मन्द कषाय है। यह तो चलता है न, महाव्रत के भाव, अहो! भगवान की भक्ति का भाव, अरे! देव-गुरु-शास्त्र के विनय का भाव। आहाहा! भाव, वह धर्मी को भी होता है, परन्तु होता है, वह दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? शान्ति तो भगवान चैतन्यस्वरूप में भरी है। ऐसा अकषाय-स्वभाव, ऐसे अकषायस्वभाव की जिसे शान्ति की प्रीति नहीं, उसका जिसे प्रेम नहीं, उसकी जिसे सन्मुखता नहीं, उसकी जिसे इष्टता नहीं। आहाहा! और जिसने यह पुण्य की क्रिया में इष्टता मानी है, वह धर्म नहीं। आहाहा! यह पंच महाव्रत पालता हो साधु होकर त्यागी होकर, परन्तु वह पंच महाव्रत वह राग और पुण्य है, वह धर्म नहीं। आहाहा! ऐसी बातें कान में पड़ना मुश्किल है, भाई! आहाहा! यह तो तेरे उद्धार की बातें हैं नाथ! आहाहा! उद्धार जन्म-मरण से हो, वह तो आत्मा के स्वभाव से हो, ऐसा है।

कहते हैं कि जिसे परमात्मा अपना स्वभाव, परमस्वरूप, परमपारिणामिक आनन्द का धाम भगवान, ऐसे परमभाव का तो जिसने प्रेम किया नहीं, परमभाव स्वभाव ऐसा भगवान, उसके सन्मुख तो कभी हुआ नहीं, उसे इष्ट किया नहीं, जो इष्ट वस्तु है, उसे इष्ट किया नहीं। आहाहा! वह पुण्य सब प्रकार के करे। पाठ यह है न? '**पुण्णइं करोदि णिरवसेसाइं**'। आहाहा! सर्व प्रकार के—समिति, गुप्ति, व्यवहार, महाव्रत, भगवान का स्मरण। ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... ऐसे अनन्त बार ऐसे जप करे। आहाहा! वह पुण्य है, उससे धर्म नहीं। जन्म-मरणरहित नहीं होगा। समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान को भूला और भगवान से विरुद्ध भाव पुण्य का प्रेम किया इसने, इसने व्यभिचार को प्रेम किया। शुभभाव को परमात्मा व्यभिचार कहते हैं। क्या है? सुजानमलजी!

मुमुक्षु : .... क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं, इसलिए नहीं होता। इसे पुण्य की रुचि है। यदि इसे पुण्य का प्रेम न हो तो परमात्मा का प्रेम हुए बिना रहे नहीं। गहरे-गहरे इसे बाहर चला (बहिर्लक्षी) जो इसका शुभभाव, उसकी मिठास है। उस मिठास के कारण अन्तर की मिठास आती नहीं। कहो, लादूलालजी! आहाहा!

प्रभु! तू तो आनन्द का सागर है, नाथ! आहाहा! ऐसे आनन्द का स्वभाव निजस्वरूप का तो प्रेम किया नहीं, उसकी दृष्टि की नहीं, उसे इष्टरूप से स्वीकार किया नहीं, इष्टदेव वह है। आहाहा! तेरा इष्टदेव आत्मस्वभाव, वह तेरा इष्टदेव है। आहाहा! उसका जिसने प्रेम किया नहीं, उसके सन्मुख देखकर उसका सत्कार, स्वीकार किया नहीं, वह चाहे जितने पुण्य अनेक प्रकार के करो। आहाहा! देश के लिये देह छोड़ दे। क्या कहलाते हैं वे सब? शहीद-शहीद। आहाहा! धर्म के लिये भी शरीर छोड़े पुण्य के परिणाम से या होम करे शरीर को क्रियाकाण्ड में। क्लेश कर-करके पाँच महाव्रत और... आहाहा! उससे संसाररहित नहीं होगा। स्वयं संसार है न, पुण्यभाव संसार है। आहाहा! भाई! तेरे उभरने का अवसर मनुष्यभव में है। उसमें यदि यह नहीं किया तो कहीं अवसर आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

देखो न, पाठ कैसा लिया है! '**अह पुण अप्पा णिच्छदि**' अब ऐसा कहते हैं कि जो आत्मा को... आत्मा किसे कहना? यह पुण्य के-पाप के भावरहित जिसका चैतन्य आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप—ऐसा जिसका स्वभाव है, ऐसे स्वभाव को तो रुचता नहीं और निरविशेष सब प्रकार के पुण्य को करे, जितने प्रकार के पुण्य कहलाते हों, वे सब करे। **तो भी सिद्धि (मोक्ष) को नहीं पाता है...** आहाहा! यह लोगों को कठिन पड़ता है। बाहर के त्यागी को और पण्डितों (को) बाहर की वृत्तिवालों को यह नहीं... यह नहीं। एकान्त ऐसा नहीं होता। यह पुण्य शुभभाव करते-करते भी कल्याण होगा धीरे-धीरे। सेठ को पुस्तक दो, ऐई! ... क्या है? नहीं? ८६ गाथा है। ८६ है न। ८ और ६। ओहोहो! गजब बात आयी है, भाई! तेरा चैतन्यचमत्कार भगवान जिसमें पुण्य और पाप की गन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु यह है, भाई! दूसरा क्या है?

चैतन्यचमत्कार भगवान आत्मा जिसकी दृष्टि करने से शान्ति और आनन्द प्राप्त हो। चैतन्य का, ज्ञान का झपकारा (चमक) पर्याय में आवे। आहाहा! ऐसे चैतन्यस्वभाव, भगवान आत्मा महिमावन्त प्रभु का जिसे प्रेम नहीं और पुण्य के परिणाम व्यभिचारी हैं, (उनका उसे प्रेम है)। आहाहा! क्योंकि कर्म के संयोग से उत्पन्न होते वे सब दया, दान, व्रत, परिणाम हैं। आहाहा! जिसे व्यभिचार का प्रेम है, उसे संसार नहीं मिटता। उसे यह चौरासी लाख का भटकना (नहीं मिटता)। ओहोहो! भले वह अरबोंपति, करोड़ोंपति दिखता हो, यह सब बड़े पचास-पचास लाख के बँगले में सोने की सांकल में झूले में झूलते हों वे सब, जैसे यह धार में छिद्र हों और नेवला पड़ा हो, ऐसे ये नेवला हैं। आहाहा! ये बेचारे दु:खी हैं। पाटनीजी! बात में बहुत अन्तर, परन्तु अब... आहाहा! यह (शरीर में रोग से होनेवाला) घाल-घाल नहीं?

एक बार वहाँ जाते थे। जैतपुर थे न। भाई आये थे पूनमचन्दजी। ... में तब आये थे भाई। पूनमचन्द गोदीका गये थे भगवान की प्रतिमा देखने। बहुत अच्छी है। २०वीं तारीख को आयेंगे। बहुत सुन्दर प्रतिमा हुई है। यह ... है न, भाई! नाम भूल गये। नौतमभाई। १८वीं चढ़ेंगे, ऐसा कहा। आज तो १६वीं है। देखने गये होंगे प्रतिमा। प्रतिमा भगवान महावीर की बहुत सुन्दर प्रतिमा। आहाहा! सुन्दर चैतन्य प्रतिमा है यह। श्रीमद् ने कहा है, तू चैतन्य प्रतिमा हो, चैतन्य प्रतिमा हो। धन्नालालजी! श्रीमद् (ने कहा)। पीछे में क्या कहलाता है वह? हाथनोंध, हाथनोंध। हाथनोंध में कहा है। भगवान! तू एक बार चैतन्य प्रतिमा हो न! आहाहा! राग का प्रेम छोड़कर ज्ञाता-दृष्टा की प्रतिमा है, उसमें स्थिर हो न अन्दर। आहाहा! इस संसार से तिरने का उपाय तो यह है। है न? आया था न उसमें? संसार तारण हेतु। संसार को तिरने का उपाय तो प्रभु यह है। कठिन पड़े, कठोर पड़े, परन्तु मार्ग तो यह लेने पर ही छुटकारा है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे प्रकार से मनायेंगे, बापू! अवतार व्यर्थ चला जायेगा। ऐसे साधु और ऐसे उपदेशक मिले इसे, (कहे कि) ऐसा होगा? अकेले कहीं आत्मस्वभाव से धर्म होगा और कल्याण होगा? बीच में पुण्य करते-करते पुण्य करते हुए भी होगा। ऐसे

इसको कुगुरु मिलेंगे, इसका संसार बढ़ जायेगा। लाभ नहीं होगा। यह मानेगा कि यह हमको सरल पड़ता है। सरल-सरल अर्थात् सेली अर्थात् राख है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव में धर्म मनावे, वह राख है राख। शान्ति को राख कर डालता है। आहाहा! ऐसी बात वीतराग (कहते हैं)।

मुमुक्षु : हुंडावसर्पिणी काल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुंडावसर्पिणी काल है अर्थात्? हलुवा में किसी ने आटा के बदले गारा डाला? क्या कहा? आटा के बदले गारा-गारा। गारा समझते हो? आटा के बदले गारा डाला? यह शीरा—हलुवा। घी के बदले पेशाब डाला? और शक्कर के बदले क्या डाला इसने? आहाहा! बापू! शीरा तो—हलुवा तो जिस प्रकार से होता हो, उस (प्रकार से) होगा। उसे दूसरे प्रकार से करने जाये तो हलुवा होगा नहीं। मूलचन्दभाई! ऐसा है यहाँ तो बापू! आहाहा! प्रभु! तेरा मार्ग अलौकिक है, भाई! आहाहा! ओहोहो! क्या परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य करुणा से जगत को तिरने के उपाय की बात करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो माननेवाले मानो। मानो वह बात यहाँ है। न माने वह बातें...

ऐसा मार्ग भगवान! तुझे कान में पड़ा और तुझे श्रवण में आया और महिमा न आवे, कैसे बने भाई? आहाहा! 'श्रुत परिचित अनुभूता।' यह सुना नहीं था और सुना और... आहाहा! यह पुण्य की क्रिया से भगवान भिन्न है। जिसे पुण्य के परिणाम की गन्ध स्पर्शती नहीं—छूती नहीं। ऐसा चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ, उसकी प्रीति कर, रुचि कर, इष्ट कर। इसके बिना पुण्य की क्रिया से लाख-करोड़ पुण्य कर, कहीं संसार नहीं मिटेगा, भव नहीं घटेगा। यह नरक और निगोद के भव में जाना, बापू! आहाहा!

यहाँ का राजा हो, वह मरकर नरक में जाये। आहाहा! वह उसकी अग्नि की पीड़ा चिल्लाहट मचाये... चिल्लाहट मचाये। अरेरे! लाखों बिच्छू, ठाकरिया बिच्छू। बिच्छू में ठाकरिया तो ऊँचा होता है, देखा है हमने। हमारे जंगल में बहुत बार दिशा को

जायें तो ठाकरिया बिच्छू देखे हैं। ऐसा बड़ा लम्बा काला। मारो डिब्बा हो न ऐसा। बाहर दिशा को जायें न। ... पहले जाते थे तब। तब अकेले थे न। ऐसा देखा तो सड़क के ऊपर जाता था। ओहोहो! यह क्या, कहा यह? लोग कहे, यह ठाकरिया बिच्छू कहलाता है। इतना लम्बा काला-काला। ठाकरिया बिच्छू अर्थात्? बिच्छू का ठाकुर, बिच्छू का राजा। परन्तु काटे तो मार डाले। गढडा में एक लड़के को काटा था। छोटी उम्र का बेचारा। दो-पाँच, छह घण्टे में समाप्त हो गया। ऐसे करोड़ों बिच्छू डसे वहाँ नरक में, हों! (इतना दुःख है)। आहाहा! भाई! तेरे दुःख तूने भोगे, भगवान ने जाने और तूने भोगे। यह आत्मा का प्रेम और रुचि किये बिना...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बनावे, देव बनावे। देव आवे न, वे बनावे ऐसे। आहाहा! करोड़ों ऐसे। आहाहा! मूर्च्छा खाकर पड़ा। ऐसे-ऐसे सागरोपम (काल व्यतीत किया)। एक सागर में दस क्रोड़ाक्रोडी पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य वर्ष जाते हैं। आहाहा! भाई! तूने आत्मा को नहीं रुचाया। आत्मा के अतिरिक्त विकारी परिणाम को रुचाया। वह पुण्य परिणाम की रुचिवाला जीव आगे जाकर पाप करेगा, कसाईखाना मांडेगा। आहाहा! समझ में आया? वस्तु की स्थिति ऐसी है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य करुणा से जगत को कहते हैं, प्रभु! तेरी करुणा कर, तेरी दया पाल तेरी। आहाहा! तू शुद्ध चैतन्यघन आनन्द है, नाथ! उसकी दया पाल अर्थात्? ऐसा है ऐसा अनुभव (कर), मान। आहाहा! तब उसे जीवता माना। ऐसे जीवन को जीवता न माने और राग की क्रिया द्वारा मेरा कल्याण (होगा ऐसा) माने, उसने जीव को मार डाला है। आहाहा! यह तो जगत से अलग प्रकार है, भाई!

सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है, तो भी सिद्धि (मोक्ष) को नहीं पाता है, किन्तु वह पुरुष संसार ही में भ्रमण करता है। आहाहा! वह पुण्य से कहीं स्वर्गादि सेठाई धूल आदि की हो कुछ, वह मरकर वापस नीचे नरक में जायेगा। आहाहा! परमात्मप्रकाश में तो कहा है कि इन पंचमकाल के पुण्यवन्त प्राणियों को पुण्य के कारण वैभव मिले, उस वैभव का इसे अभिमान हो। आहाहा! हम पैसेवाले हैं, इसको

क्या आता है ? सौ रुपये भी कमाना नहीं आता। यहाँ तो पाँच-पाँच लाख महीने कमाते हैं, वर्ष में कमायें, ऐसी हमारी बुद्धि है, ऐसी हमारी विचिक्षणता है। जाओगे मरकर नीचे, कहते हैं, भाई! पुण्याई... वैभव और वैभव के मद में मति भ्रष्ट हो जायेगी। ऐसा पाठ है, परमात्मप्रकाश (में)। मति भ्रष्ट होकर मरकर नीचे जाओगे, भाई! इस पुण्य के फल के प्रेम में पड़े हैं, वे प्रभु का प्रेम जिन्होंने छोड़ा। आहाहा! **संसार ही में भ्रमण करता है।**

भावार्थ :- आत्मिक धर्म धारण किये बिना... भगवान आत्मा शुद्धचैतन्यघन की दृष्टि, उसकी प्रियता, उसकी रुचि किये बिना **सब प्रकार के पुण्य का आचरण करे...** अर्थ में ठिकाना नहीं, ऐसा अर्थ करते हैं। परम्परा से मोक्ष होगा, ढींकणा ऐसा होगा, फलाना ऐसा होगा। अरे! भगवान! लोगों को अन्दर रुचता नहीं। अन्दर पुण्य के परिणाम का प्रेम छोड़ना, गले पड़ा गले। आहाहा! पुण्यभाव के प्रेमी को आत्मा के प्रति द्वेष है। 'द्वेष अरोचक भाव।' आनन्दघनजी कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञाता आनन्दस्वरूप प्रभु की जिसे रुचि नहीं और रुचता नहीं, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! 'द्वेष अरोचक भाव।' भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द जिसे रुचता नहीं और जिसे पुण्य के परिणाम रुचते हैं, उसे आत्मा के प्रति अरुचि—द्वेष है। पुण्य में प्रेम है और स्वभाव में द्वेष है। आहाहा! कहो, धीरुभाई! ऐसी बात है।

यहाँ तो नजरों से देखा है न तुमने तो अभी। आहाहा! पुकार करती चली आयी बेचारी। दस मिनिट, पन्द्रह मिनिट। जाओ बापू, इस शरीर को और हमारे सम्बन्ध क्या है ? आत्मा अमर है। छोटी लड़की कहे, माँ! नहीं जाने दूँगी। आहाहा! क्योंकि एकदम दबाव आया। ... खून पकड़ा गया। मैं जाती हूँ, ऐसा कहा। उनके घर से—धीरुभाई के घर से। लखुभाई! धीरुभाई के घर से अभी गुजर गयी बाई। ४६ वर्ष की उम्र। उनकी ५०। एकदम दबाव पड़ा। परमागम के महोत्सव की जय हो। ऐसा बोल गयी अन्त में। क्योंकि यहाँ आ गये थे बेचारी, पन्द्रह दिन रह गयी थी।

मुमुक्षु : यहाँ आने की तैयारी की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयारी की थी। धीरूभाई कहे कि पाँच तोला सोना दो उसमें। वह कहे कि नहीं, दस तोला दो। अब ऐसा हुआ। उस उत्साह था कि यहाँ आना।

परमागम में उत्साह। वह भी क्या हो? देह की स्थिति पूरी हो वहाँ उसे कौन रोके? इन्द्र भी चले जाते हैं। आहाहा! चौरासी हजार देव चारों ओर उसकी सेवा करते हैं। हथियारबन्द हों, इन्द्र को। चौरासी-चौरासी हजार देव। ऐसे चौरासी, ऐसे चौरासी, ऐसे चौरासी। देह पूरा हो वहाँ चौरासी हजार खड़े रहें। जीव निकल जाये और शरीर के परमाणु कपूर की गोली की भाँति बिखर जाये। यहाँ की तरह नहीं कि यहाँ ... रहे और जलाये। उसके परमाणु बिखर जायें एकदम। ओहो! इन्द्र चले गये। आहाहा! देह की स्थिति पूरी हो, वहाँ (कौन रोके)? संयोगी चीज़ है। संयोग तो अमुक काल तक रहे। वह छूट ही जाये। संयोग वियोग लेकर ही आते हैं। आहाहा!

तत्त्वार्थसार में तो एक पाठ है अनित्यभावना के अधिकार में। माता पुत्र को जन्म देती है। उसके सामने ऐसी नजर (करके) हाथ में लेने जाती है, उसके पहले अनित्यता ने उसे गोद में ले लिया है। उसकी माँ, जहाँ लड़का है या लड़की, ऐसी नजर करके हाथ फिराने जाती है। प्रभु कहते हैं कि उसे अनित्यभावना अनित्य की गोद में अनित्य ने उसे ले लिया है। किस क्षण में देह छूटेगी, इसका निर्णय नहीं। आहाहा! माता के गोद में लेने से पहले अनित्य ने उसे गोद में ले लिया है। आहाहा! नित्य ऐसा नाथ परमात्मा, उसकी नजर जिसने की नहीं। नित्यधाम प्रभु। आहाहा!

पुण्य का आचरण करे तो भी मोक्ष नहीं होता है, संसार ही में रहता है। आहाहा! **कदाचित् स्वर्गादिक भोग पावे...** लो! पुण्य के कारण स्वर्ग का सुख मिले, यह पैसे का सुख मिले, यह धूल के सेठिया हो। सेठ! यह तुम सब धूल के सेठ कहलाते हो। इनके दो भाई बेचारे गुजर गये छोटी उम्र में। दो भाई रहे। क्या करे परन्तु वहाँ? आहाहा! करोड़ों रुपये। क्या वहाँ डाले कुछ? गिरवी रखा जाये ऐसा है? घरेणे अर्थात् गिरवी। आहाहा! कहते हैं कि पुण्य के कारण कोई स्वर्ग और सेठाई (मिले)। स्वर्गादि है न? स्वर्गादि शब्द है न? पुण्य के कारण कोई स्वर्ग मिले या कोई सेठ हो, वह दो, पाँच, दस करोड़ धूल के। **तो वहाँ भोगों में आसक्त होकर रहे,...** उसमें—भोग में लीन रहेगा। आत्मा की लीनता की तो खबर नहीं। आहाहा!

वहाँ से चय एकेन्द्रियादिक होकर... लो! आहाहा! यह दूसरे देवलोक का देव मरकर एकेन्द्रिय हो। हरितकाय में जाये, पृथ्वी में जाये। वह क्या कहलाता है पानी हो

ऊँचा ? सुगन्धित पानी हो न जरा, उसमें उपजे। देव मरकर वहाँ जाये। आहाहा! अरबोंपति सेठिया मरकर उस हरितकाय में जाये। आहाहा! कहते हैं कि यह पुण्य के फल तो ऐसे हैं, वापस भोगकर मरकर जायेगा नीचे। आहाहा! **एकेन्द्रियादिक...** एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि। **संसार ही में भ्रमण करता है।** आहाहा! थोड़ा परन्तु इसे सच्चा आना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत करके जानना, ऐसा नहीं लिखते मण्डप के समय ? इसी प्रकार यहाँ प्रभु कहते हैं, थोड़ा कहा बहुत करके जान, बापू! आहाहा! यह ८६ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ८७

आगे इस कारण से... इस कारण से। अर्थात् ? कि जिसे पुण्य का प्रेम और रुचि है और आत्मा की दृष्टि नहीं, ऐसे पुण्य के कारण से भोग मिलकर चार गति में भटकेगा। **इस कारण से आत्मा ही का श्रद्धान करो,...** आहाहा! **प्रयत्नपूर्वक जानो...** भगवान आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चैतन्यमूर्ति भगवान की श्रद्धा करो, भाई! आहाहा! उसे जानो। **मोक्ष प्राप्त करो...** उससे मोक्ष होगा। **ऐसा उपदेश करते हैं:—**ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने अमृत की धारा छोड़ी है (प्रवाहित की है)। आहाहा! प्रभु! तेरी सम्पदा तुझमें पूरी पड़ी है, नाथ! तेरी सम्पदा की क्या बातें! सर्वज्ञ भी उसे वाणी में पूरी न कह सके। ऐसी वह सम्पदा अन्तर अणीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस, अणीन्द्रिय अतीन्द्रिय आनन्द। शान्तरस अर्थात् चारित्र। ऐसे स्वभाव से भरपूर प्रभु तू छलाछल है। आहाहा! अरे! ऐसे आत्मा को जिसने चाहा नहीं और पुण्य किया, मरकर चार गति में इस कारण से भटके। अब तो पुण्य की प्रीति छोड़ और आत्मा की प्रीति कर, ऐसा कहते हैं।

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण॥८७॥

आहाहा! **अर्थ :- पहिले कहा था कि आत्मा का धर्म तो मोक्ष है, उसी कारण से कहते हैं कि —हे भव्य जीवों!** आहाहा! **तुम आत्मा को प्रयत्नपूर्वक सब**

प्रकार के उद्यम करके यथार्थ जानो,... देखो, विशेषण दिये। तुम भगवान आत्मा। यह पुण्य के परिणामरहित आत्मचीज़ अन्दर पड़ी है, प्रभु! आहाहा! **तुम आत्मा को प्रयत्नपूर्वक...** वापस ऐसा। पुरुषार्थ से जान। आहाहा! जैसे पुण्य में पुरुषार्थ किया था, वह मुफ्त चार गति में भटकने का पुरुषार्थ था। यह प्रयत्न कर अन्दर जाने का। आहाहा! **आत्मा को प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार के उद्यम करके...** प्रयत्नपूर्वक और **सब प्रकार के उद्यम करके...** जितनी ताकत वीर्य की है, उतना अन्तर में जोड़ दे, कहते हैं। आहाहा! भगवान अन्तर्मुख में परमात्मा विराजता है, उसे अन्तर्मुख में दृष्टि अन्तर्मुख कर। आहाहा!

प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार के उद्यम करके... प्रयत्न कर। तब कोई कहे कि परन्तु यह क्रमबद्ध मानते हो, उसमें और यह कहाँ आया? यह उसमें आता है। जिसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाये, उसके क्रम में ऐसा पुरुषार्थ आता है। आहाहा! जो क्रमबद्ध का निर्णय करे, उसका निर्णय द्रव्य की ओर ढले, तब उसने क्रमबद्ध का निर्णय किया कहलाये। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें तो दूसरे को ऐसा लगे, हों! यह तो अकेला एकान्त... एकान्त... एकान्त... आत्मा... आत्मा... आत्मा।

दस महीने दस दिन रहे थे (संवत्) १९९५ में राजकोट में। एक कोई कहता था कि यह तो दस महीने और दस दिन आत्मा-आत्मा कूटा है। तब एक व्यक्ति और बेचारा वह वकील था न, कहे, महाराज यहाँ दस महीने और दस दिन रहे, यह दस लाईन में कोई (सार) लिखे तो उसे दस रुपये दूँगा। एक वकील था। ऐसा कहता था। अनेक प्रकार के जीव हैं।

आत्मा न हो तो यह दूसरी वस्तु है, ऐसा निर्णय कौन करे? आत्मा न हो तो यह शरीर है, वाणी है, यह निर्णय कौन करे? जड़ की अस्ति की जड़ को तो खबर नहीं। उसकी अस्ति तो आत्मा स्वयं जाने कि यह जड़ है और मैं चैतन्य हूँ। आहाहा! बहुत सरस गाथायें हैं, हों! ओहोहो! भावपाहुड़—शुद्ध उपयोग भाव। पुण्यभाव, वह अशुद्ध उपयोग है। यह तो भाव अर्थात् चैतन्यस्वभाव शुद्ध परिणति, वीतरागी भाव, शुद्ध उपयोग, वह भावपाहुड़। वह शुद्ध उपयोग स्वभाव के आश्रय से होता है। आहाहा! इसमें वह वार्ता और ... न हो तो (रस न आवे)। यह वार्ता नहीं प्रभु तेरी? आहाहा!

आत्मा को प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार के उद्यम करके... जितना जोर वीर्य का है, उस वीर्य को अन्तर में झुका। आहाहा! बाकी सब बातें चाहे जो हो। यह कर, कहते हैं, भाई! इसमें ऐसा नहीं कहा कि पुण्य कर और फिर ऐसा कर। वह बीच में आवे, वह अलग बात है, परन्तु करनेयोग्य है और लाभदायक है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कहो, शुभभाव धर्मी जीव को भी होता है। परन्तु वह होता है, वह दुःखरूप, हेयबुद्धि से होता है, आदरणीयबुद्धि से होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'**एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।**' आहाहा! मन, वचन और काया के तीन योगों को छोड़कर अन्दर (सब) प्रकार से ... आहाहा! प्रयत्न से। देखा! **मन-वचन-काय से ऐसे करो जिससे मोक्ष पावो।** अर्थात् मन, वचन, काया की ओर का झुकाव छोड़कर इस ओर का झुकाव कर। समझ में आया? मन से भी आत्मा की ओर झुक। वाणी में भी ऐसा कहते हैं कि आत्मा की ओर झुकना है, वह वस्तु है। काया द्वारा काया का लक्ष्य छोड़कर आत्मा की ओर झुक। आहाहा!

सब प्रकार के उद्यम करके यथार्थ जानो,... जैसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यघन, ऐसा ही जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पूर्ण स्वरूप ध्रुव चैतन्य। आहाहा! भाई ने कहा था। एक शब्द डाला था निहालभाई ने। ध्रुव के ध्यान का ध्येय। ध्रुव को ध्यान में ध्येय कर। ऐई! चेतनजी! यह शब्द है। कहीं है अवश्य। मस्तिष्क में आ गया। चैतन्य भगवान पूर्ण ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... नित्य, उसे ध्यान में ध्येय बना। यह तेरा प्रयत्न। आहाहा! उसकी हाँ तो कर कि करनेयोग्य तो यह है, बाकी सब थोथा है। आहाहा! योगफल निकलेगा चार गति में भटकने का। आहाहा! बाहर की कीर्ति-वीर्ति फिर वहाँ कुछ गिरवी नहीं रखी जाती। भाई! अब मरकर जाते हैं हम, यह सब हमारी कीर्ति बड़ा लम्बा पूंछड़ा था। रखो गिरवी। हमारे (गुजराती में) घरेणे कहते हैं, तुम्हारे गिरवी कहते हैं। गिरवी। कौन रखे उसे गिरवी? आहाहा!

श्रद्धान करो, प्रतीति करो, आचरण करो। यह तीन बोल लिये। देखो '**तिविहेण**' में से तीन निकाले और तीन मन-वचन-काया के। ऐसा निकाला। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान का सागर प्रभु, आनन्द का समुद्र आत्मा। आहाहा! जिसमें इस पुण्य के

परिणाम की गन्ध नहीं, ऐसी चीज़ की प्रयत्न से श्रद्धा कर। कर्म मार्ग दे तो मैं प्रयत्न करूँ, ऐसा नहीं। तू प्रयत्न कर, कर्म अपने आप छूट जायेंगे। आहाहा! **श्रद्धान करो, प्रतीति करो, आचरण करो।** तीन डाले। आहाहा! **मन-वचन-काया से ऐसे करो...** आहाहा!

भावार्थ :- जिसको जानने और श्रद्धान करने से मोक्ष हो, उसी को जानना... आहाहा! उस आत्मा को जानने से मोक्ष होता है, उस पुण्य को जानने से और पर को जानने से मोक्ष नहीं होता। आहाहा! ऐसा भी पंचम काल में ऐसे? तो यह किसे कहते हैं? पंचम काल के साधु हैं, वे पंचम काल के प्राणी को तो कहते हैं कि यह करो, ऐसा कहते हैं। तो किया जा सकता है, ऐसा कहते हैं या नहीं? आहाहा! पंचम काल ऐसा अवरोधक हो? कुछ अवरोधक नहीं, सुन न अब! काल उसके घर में रहा। उतर न अन्दर में। आहाहा!

जिसको जानने और श्रद्धान करने से मोक्ष हो, उसकी को जानना... जिसको जानने और श्रद्धान करने से मोक्ष हो... तो आत्मा को जानने से मोक्ष होता है। पुण्य को जानने से, दूसरे को जानने से होता है? आत्मा का **श्रद्धान करना मोक्ष प्राप्ति कराता है, इसलिए आत्मा को जानने का कार्य सब प्रकार के उद्यमपूर्वक करना चाहिए, इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है,...** परन्तु प्रभु! अभी तो मोक्ष नहीं और इतनी सब किसलिए मांडी है आपने? अरे! सुन न अब। राग से स्वरूप को भिन्न मान, वह तेरा मोक्ष है। **इसलिए भव्य जीवों को यही उपदेश है।** लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ११, रविवार, १७-०२-१९७४
गाथा - ८८ से ९०, प्रवचन-१११

गाथा - ८८

(८७ गाथा) भावपाहुड़ की हुई। ८८। **आगे कहते हैं कि बाह्य हिंसादिक क्रिया के बिना ही...** बाह्य हिंसादि न हो, परन्तु अन्दर अशुद्ध भाव हो, मलिन भाव बाह्य की क्रिया बिना **तन्दुल मत्स्यतुल्य जीव भी...** चावल जितना। तन्दुल अर्थात् चावल। उतना **मत्स्यतुल्य जीव भी सातवें नरक को गया, तब अन्य बड़े जीवों की क्या कथा ?**

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धोभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं॥८८॥

अर्थ :- हे भव्य जीव! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत के जीव को सम्बोधन करके कहते हैं **तू देख, शालिसिक्थ (तन्दुल नाम का मत्स्य)...** तन्दुल अर्थात् चावल का—चोखा का भी बहुत असंख्यवाँ भाग। उसे तन्दुल भले कहा, परन्तु बहुत सूक्ष्म अंगुल का असंख्य भाग। ऐसा वह मत्स्य होता है। **वह भी अशुद्धभावस्वरूप होता हुआ...** मलिन भाव की भावना करते हुए, बाहर की हिंसादि की क्रिया न होने पर भी **महानरक (सातवें नरक) में गया,...** सातवें नरक में गया। **इसलिए तुझे उपदेश देते हैं कि अपनी आत्मा को जानने के लिये... 'अप्पाणं भावह'** ऐसा है न? भगवान आत्मा शुद्ध-बुद्ध एकस्वरूपी प्रभु है, उसकी श्रद्धा और उसकी भावना, उसमें एकाग्र होने की भावना कर। क्या कहा? शुद्ध बुद्ध। शुद्ध अर्थात् पवित्र प्रभु आत्मा, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड प्रभु। वह एकस्वरूपी प्रभु है। शुद्ध बुद्ध एक स्वभावी ऐसे आत्मा की दृष्टि कर और उसकी एकाग्रता की भावना कर। यह जीव को उद्धार करने का रास्ता है। चौरासी के अवतार में से निकलने का यह एक रास्ता और एक उपाय यह है। आहाहा!

अपनी आत्मा को... है न? **'इय णाउं अप्पाणं'** आत्मा को जान। **'भावह जिणभावणं णिच्चं'** जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। जिनभावना अर्थात् वीतरागी

आत्मस्वभाव की एकाग्रता, वह जिनभावना। आत्मा का स्वभाव शुद्ध बुद्ध अर्थात् वीतरागस्वरूप है, निर्मल पवित्र स्वरूप की सत्ता, अस्ति है। वह ज्ञानस्वरूपी प्रभु एकरूप है। ऐसे स्वभाव की दृष्टि करके एकाग्रता की भावना कर। संसार से छूटने का यह एक ही उपाय है। चौरासी के परिभ्रमण में से निकलने का एक रास्ता यह है।

निरन्तर जिनभावना कर। ऐसा है न? '**णिच्चं**' भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान की एकाग्रता, उसकी दृष्टि करके अन्दर एकाग्रता होना, उसका नाम जिनभावना—वीतराग भावना—शुद्ध चैतन्य की एकाग्रता की भावना, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? वह **निरन्तर जिनभावना कर।** आहाहा! वस्तु के स्वभाव को निरन्तर दृष्टि में रखकर (भावना कर)। आहाहा! चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ प्रभु, ऐसा तेरा स्वरूप ही है। उस स्वरूप को दृष्टि में लेकर उसमें एकाग्र हो। उसे निरन्तर जिनभावना अर्थात् द्रव्यस्वभाव को निरन्तर दृष्टि में रख, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु आत्मा चैतन्यस्वभाव, शुद्धस्वभाव, ज्ञानस्वभाव। शुद्ध बुद्ध लिया है न! बहुत जगह यही लिया है। शुद्ध बुद्ध एकस्वरूपी प्रभु है। वह पवित्रता का पिण्ड प्रभु है, इसे कैसे बैठे? इसने अनादि अपवित्रता की सेवना की है। पूरा प्रभु पवित्रता का उज्ज्वल आनन्दकन्द है वह। उसकी एकरूप दशा है। वस्तु का तो एकरूप स्वरूप है, उसकी दृष्टि निरन्तर रख कि जिससे तुझे संसार का उद्धार होकर मुक्ति हो।

मुमुक्षु : प्रभु! यह मुनि के लिए है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती अर्थात् मुनि। जिसे धर्म करना हो, उसके लिये है। जिसे धर्म करना हो, उसके लिये है।

मुमुक्षु : निरन्तर?

पूज्य गुरुदेवश्री : निरन्तर। द्रव्यस्वभाव निरन्तर दृष्टि में रख, ऐसा कहते हैं। समकिती को निरन्तर वह दृष्टि में होता है। आहाहा!

नित्य शब्द है न? '**णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं**' भगवान आत्मा का अस्तित्व अत्यन्त पवित्र और ज्ञानमूर्ति वह तो है। उसमें शरीर, वाणी, मन, कर्म नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प, राग भी उस स्वरूप में नहीं। तथा वह अपूर्ण नहीं।

आहाहा! एकरूप शुद्धघन आनन्दकन्द है। ऐसे आत्मा को जानकर जिनभावना नित्य कर। उसमें ऐसा शब्द पड़ा है। ऐसे भगवान आत्मा को दृष्टि में लेकर, नित्य उसके द्रव्यस्वभाव को लक्ष्य में रखकर एकाग्र हो। आहाहा! पहले तो समझना कठिन पड़े उसे, कभी बात सुनी नहीं। आहाहा!

'**णाउं अप्पाणं भावह**' आत्मा को जानकर। ऐसा कहा न? आत्मा है कैसा? आहाहा! वह आनन्द और शुद्ध बुद्ध घन है। आहाहा! इसने कभी अनन्त काल में लक्ष्य में लिया नहीं। इसने अनन्त काल में पूर्णानन्द का नाथ प्रभु का स्वीकार किया नहीं और राग, पुण्य, निमित्त और अल्पज्ञता का स्वीकार करके भ्रमणा में चार गति में भ्रम रहा है। दृष्टान्त यहाँ दिया मच्छ का।

भावार्थ :- अशुद्धभाव के माहात्म्य से तन्दुल मत्स्य जैसा अल्प जीव भी... छोटा, चावल के दाने से भी छोटा ऐसा मत्स्य होता है। **सातवें नरक को गया, तो अन्य बड़े जीव क्यों न नरक जावें?** अशुद्ध भाव से। **इसलिए भावशुद्ध करने का उपदेश है। भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** देखा! मैं आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा जानने से रागादि को जानने का उसमें प्रगट होता है। स्व-पर जाननेवाला ऐसा स्वभाव है। किसी का करना या किसी से लेना, वह उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! यह तो स्वरूप को जानने से **दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** अपना आनन्द और ज्ञानस्वरूप का जिसे भान होता है, उसे दूसरे रागादि दूसरी चीज़ क्या है, उसका ज्ञान उसे सच्चा होता है।

अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है... जिनदेव की आज्ञा यह कि पूर्णानन्द का नाथ प्रभु तू है, उसमें दृष्टि कर। यह वीतराग की आज्ञा है। सर्वज्ञ परमेश्वर की आज्ञा, उनका हुकम, पूर्ण शुद्ध चैतन्य दल की श्रद्धा कर, उसमें रहे, वह जिनाज्ञा है। आहाहा! **आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है...** जिनदेव का अर्थ? जिनदेव अर्थात् आत्मस्वभाव की भावना वीतरागभाव। आहाहा! आत्मा वीतरागस्वरूप है, त्रिकाल उसका स्वरूप ही वीतरागी अकषायस्वरूप है। 'जिन सो ही है आत्मा।' जिनदेव का अर्थ यह स्वयं जिनदेव है। आहाहा! कैसे बैठे? जरा साधारण बात में जिसे मिठास लग जाये। कुछ अनुकूलता में

अधिकता स्वयं से भासित हो, उसे आत्मा ऐसा चैतन्यघन है, यह कैसे बैठे ? भाई ! तेरा उद्धार करना हो तो मार्ग यह है। राग और पर से भिन्न चैतन्यघन भगवान वस्तु सत्तास्वरूप विराजमान, उसकी एकाग्रता की भावना कर, यह जिनाज्ञा है। **इसलिए जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर करना योग्य है।**

तन्दुल मत्स्य की कथा ऐसे है—काकन्दीपुरी का राजा सूरसेन था... सूरसेन राजा था। **वह माँसभक्षी...** था वह स्वयं। **अत्यन्त लोलुपी, निरन्तर माँस भक्षण का अभिप्राय रखता था। उसके पितृप्रिय नाम का रसोईदार था।** रसोईया। **वह अनेक जीवों का माँस निरन्तर भक्षण कराता था।** दूसरे को कराता था। रसोई बनायी माँस की दूसरे को माँस खिलाता था। **उसको सर्प डस गया...** उसे सर्प डस गया। **सो मरकर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हो गया।** हजार योजन का मत्स्य हुआ। चार हजार कोस लम्बा। **राजा सूरसेन भी मरकर वहाँ ही उसी महामत्स्य के कान में तन्दुल मत्स्य हो गया।** राजा भी मरकर उसके कान में छोटा मत्स्य हुआ। कान का मैल खाये न! आहाहा!

वहाँ महामत्स्य के मुख में अनेक जीव आवें, बाहर निकल जावें, तब तन्दुल मत्स्य उनको देखकर विचार करे कि यह महामत्स्य अभागा है... जिसके मुख में... बड़ा हजार योजन का मत्स्य, चार हजार कोस का लम्बा। उसके प्रणाम में चौड़ा और उसके प्रमाण में जाडा हो न ? बड़ा मुख ऐसे फाड़े तो मत्स्य आवे मुख में। मुख ऐसा का ऐसा रहे और मत्स्य आवे और फिर निकल जाये। वह तन्दुल मत्स्य विचार करता है कि यह अभागा है। मुख में मछलियाँ आवे और मत्स्य को न खाये और निकाल डाले, अभागा है। यह भावना उसकी। आहाहा!

मुँह में आये हुए जीवों को खाता नहीं है। यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता तो इस समुद्र के सब जीवों को खा जाता। आहाहा! एक मनुष्य था न, वह कहता था। रामजीभाई पहिचानते हैं। वह कहता कि यदि मुझे सरहुकम इस हिन्दुस्तान का मिले तो धर्म के स्थान सब पहले निकाल दूँ। वह तो गुजर गया। साकरचन्द का पुत्र था। रामजीभाई के मित्र हैं। ऐसे तो... दामाद बड़े करोड़पति। मणिभाई करोड़पति। आठ-दस करोड़। वह ऐसा था... यहाँ आया था हमारे पास। ऐसी उसकी भावना कि यदि मुझे

सर यह हिन्दुस्तान का राजा बनावे। वाईसरोय, वह कहता था। पहला हुकम यह करूँ कि जितने धर्म के स्थान हैं, उन सबको उड़ाकर निकाल डालूँ। अरर्र! बनिया था अपना, स्थानकवासी था। परन्तु उसका बाप यहाँ का माननेवाला। यहाँ का माननेवाला साकरचन्द। यहाँ माननेवाला। वह गुजर गया बेचारा। क्या नाम था? भूल गये। लड़के का। रमेश, रमेश-रमेश। आहाहा! उसकी बहू थी नट थी। नटी-नटी। वह तो फिर नट में चली गयी। फिर विवाह किया यहाँ बड़ा करोड़ोंपति, दस करोड़, यहाँ अहमदाबाद में। मणिभाई जेसंग की पुत्री से विवाह किया। परन्तु उसकी भावना ऐसी। कर सके नहीं भले क्रिया, परन्तु भाव ऐसा। आहाहा! इसी प्रकार यह व्यापारी कितने ही ऐसे होते हैं न कि यदि मेरे हाथ में व्यापार आवे तो सब यह... ले लेना। होते हैं न बड़े? क्या कहलाये? मुम्बई। एक साथ, एक हाथ से व्यापार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। क्या कहा भाई?

मुमुक्षु : ठेला।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठेला-ठेला। मेरे हाथ में यदि यह ... आवे तो उसका भाव ऐसा करके रखूँ। आहाहा!

वह मत्स्य ऐसी भावना से **खाये बिना ही सातवें नरक में गया...** आहाहा! **और महामत्स्य तो खानेवाला था, सो वह तो नरक में जाये ही जाये।** मत्स्य जो बड़ा था, वह तो जाये, परन्तु यह गया साथ में। **इसलिए अशुद्धभावसहित बाह्य पाप करना तो नरक का कारण है ही, परन्तु बाह्य हिंसादिक पाप के किये बिना केवल अशुद्धभाव भी उसी के समान है, इसलिए भावों में अशुभ ध्यान छोड़कर शुभ ध्यान करना योग्य है।**

यहाँ ऐसा ही जानना कि पहिले राज पाया था... राज पाया था वह सूरसेन। पुण्य के कारण बड़ा राजा (हुआ)। आहाहा! **पुण्य किया था उसका फल था, पीछे कुभाव हुए तब नरक गया,...** आहाहा! पुण्य के भाव को रुचिपूर्वक किया था, उसके फल में राजा हुआ। उसके फल में फिर वहाँ से नरक में गया। आहाहा! है? **इसलिए आत्मज्ञान के बिना केवल पुण्य ही मोक्ष का साधन नहीं है।** लो! जिसे आत्मज्ञान—शुद्ध चैतन्यप्रभु

वीतरागमूर्ति परमात्मा स्वयं है, उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसका पुण्य मोक्ष का कारण— साधन नहीं। वह चाहे जैसी क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करे, परन्तु आत्मज्ञान बिना उसका कल्याण नहीं होता। पुण्य के फल में राजा हो या सेठिया हो धूल का धनी। वह मरकर फिर अभिमान में मरकर जाये नीचे। क्योंकि आत्मा राग से, पुण्य से रहित चैतन्य आनन्द का नाथ, उसकी अधिकाई, महत्ता भासित हुई नहीं और पुण्य के परिणाम की उसे महत्ता भासित हुई है, इसलिए वह पुण्य से राजादि हो, परन्तु वापस मरकर नरक में उसकी भाँति जाये। आहाहा!

ब्रह्मदत्त सातवें नरक में (गया)। सात सौ वर्ष यहाँ (चक्रवर्ती पद में रहा)। सातवें नरक में ३३ सागर के रवरव नरक अपरिठाणे नरक में अभी है। आहाहा! यहाँ भले देव चौदह हजार सेवा करते थे। देवियों, उसे बड़ी रानी (पट्टरानी)। अभी मरकर नरक में है। उसकी पीड़ा एक क्षण की वेदी, देखी जाये नहीं, ऐसी वह वेदता है। ऐसा ... तत्त्व की खबर नहीं उसे कि यह क्या करके अनादि काल से (भटकता हूँ)। मेरा भगवान आत्मा पूर्ण समृद्धि ऋद्धि से भरपूर प्रभु है। उसका तो ज्ञान और उसकी महत्ता और उसकी अधिकाई का स्वीकार किया नहीं और यह पुण्य के भाव का अधिकपने स्वीकार करके, उसके फलरूप से राजा आदि हो, परन्तु वह तो नरक में जायेगा। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ८९

आगे कहते हैं कि भावरहित के बाह्य परिग्रह का त्यागादिक सब निष्प्रयोजन है :— जिसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन और शुद्ध चैतन्यघन की सम्यग्दर्शनरूपी भावना प्रगट हुई नहीं... आहाहा! उसका यह सब बाह्य त्याग, नग्नपना, क्रियाकाण्ड सब निरर्थक है। आहाहा!

बारिसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं॥८९॥

अर्थ :- जो पुरुष भाव रहित हैं,... भाव का अर्थ? **शुद्ध आत्मा की भावना से**

रहित हैं... ऐसा। शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप हूँ—ऐसी जिसे श्रद्धा और उसका ज्ञान नहीं, ऐसे प्राणी ऐसे नग्न मुनि हों, जंगल में बसे। यह कहते हैं, देखो! **बाह्य आचरण से सन्तुष्ट हैं,...** यह बाह्य की क्रिया, पुण्य की क्रिया, आचरण की क्रिया में सन्तुष्ट है। भावपाहुड़ है न? **उनके बाह्य परिग्रह का त्याग...** करे, नग्न मुनि हो, वस्त्र का धागा न रखे। **गिरि (पर्वत) दरी (पर्वत की गुफा)...** में रहे। **सरित् (नदी के पास)...** पड़ा रहे। नदी के किनारे। आहाहा! सर्दी के दिन हों और नदी में पानी दोनों किनारे चला जाता हो। कौन सी वह नदी कहलाती नहीं? गुवाहटी। गुवाहटी में वह नदी कौन सी कहलाती है? ब्रह्मपुत्रा ब्रह्मपुत्रा। गत वर्ष गये थे न वहाँ? नदी के किनारे ही दिशा को जाते थे। देखने... दिशा को जाने का रास्ता न मिले। अकेला पानी हरा... हरा... हरा... नदी एक मील ऐसे चौड़ी। चौड़ी, हों! पानी... पानी। कहते हैं कि ऐसे नदी के किनारे ठण्डी हवा में साधु किनारे बैठे। परन्तु जिसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन का भान नहीं, वह सब निरर्थक है। समझ में आया? ब्रह्मपुत्रा। उसमें गये थे न, प्लेन में।

कन्दर (पर्वत के जल से चीरा हुआ स्थान)... पर्वत में पानी पड़ने पर खड्डे पड़ें, अन्दर जाये एकान्त जंगल में। उसमें क्या हुआ? पक्षी भी वहाँ रहते हैं और नेवला भी वहाँ रहते हैं। जिसे आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्यघन का जिसे ज्ञान और सम्यग्दर्शन नहीं, सब यह निरर्थक है उसे, कहते हैं। यह तो बाह्य त्याग और बाह्य क्रिया करे वहाँ आहाहा! स्वयं त्याग कर सकता नहीं न, इसलिए दूसरे त्याग करे, इसलिए इसे महिमा लगती है। भगवान त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में यह आवाज आयी, उसे सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। परमात्मा तो ऐसा कहते हैं, भाई! जिसे, परमात्मस्वरूप अपना जिसे ज्ञान में भासित नहीं हुआ, श्रद्धा में लिया नहीं, आचरण में उसका आचरण किया नहीं... आहाहा! ऐसे जीव के बाह्य आचरण (निरर्थक है)।

इत्यादि स्थानों में आवास (रहना)... आवास है न, आवास? '**गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो**' जंगल में रहते हैं। आहाहा! उसका रहना निरर्थक है। आहाहा! घर छोड़कर, स्त्री छोड़कर, परिवार छोड़कर, दुकान छोड़कर, राज्य छोड़ा... आहाहा! परन्तु जिसने राग की एकता छोड़ी नहीं और राग से भिन्न भगवान को जिसने देखा और जाना नहीं... आहाहा! ऐसे जीव के यह त्याग सब निरर्थक है। उसके फल में उसे संसार है, कहते

हैं। आहाहा! **ध्यान करना,...** देखा! वह ध्यान करे अन्दर में। मन की एकाग्रता और शुभभाव विकल्प घटाकर। परन्तु आत्मज्ञान विकल्परहित चीज़ है। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी एकाग्रता तो हुई नहीं और यह सब एकाग्रता की क्रिया ध्यान, **आसन द्वारा मन को रोकना,...** आसन लगावे ऐसे। मन को रोके अशुभ में जाने से। **अध्ययन (पढ़ना),...** अध्ययन करे, शास्त्र अध्ययन करे। आहाहा! शास्त्र पढ़े। वह तो एक शुभविकल्प है। परन्तु आत्मज्ञान बिना वह सब शास्त्र का पढ़ना भी निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! आत्मदर्शन-आत्मा को देखना, आत्मा को जानना, ऐसे अन्तर के भान और ज्ञान बिना ऐसे शास्त्र (का) पढ़ना, जंगल में रहना, पंच महाव्रत की क्रिया पाले, नदी के किनारे ठण्डी हवा झेले, चमड़ी में तो तड़ पड़े— यह सब निरर्थक है।

मुमुक्षु : बहुत किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत किया पाप। पुण्य भी पाप है। सुना है या नहीं? 'अनुभवीजन तो पुण्य को भी पाप कहते हैं।' 'पाप को पाप तो सब कहे,...' परन्तु ऐसी पुण्य की क्रिया भी पाप है, आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध है। आहाहा! यह बहुत किया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... कौन बोला? कुछ बात आती है। दशवैकालिक में आती है। वह तो सब मुखाग्र था न। दशवैकालिक पूरा। ६०० गाथा। छह हजार श्लोक थे कण्ठस्थ। छह हजार। इसके अतिरिक्त शास्त्र तो कितने ही कण्ठस्थ थे। ...देह यह शरीर ऐसा लिया है वहाँ। देह को दुःख क्या है? आहाहा!

ऐसे कष्ट सहन करे शुभभाव से, ऐसा कहते हैं, तथापि जिसे चैतन्य का आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मा का अनुभव नहीं, उस शुद्ध-बुद्ध का जिसे स्वीकार नहीं, भगवान आत्मा पवित्र और ज्ञान का पिण्ड एकरूप प्रभु विराजता है, उसका जिसे स्वीकार नहीं, सत्कार नहीं, आश्रय नहीं, आदर नहीं, उन सबका यह सब करना निरर्थक जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्व साधना झूठी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! सर्व साधना झूठी। आहाहा! यह पढ़ना।

भावार्थ :- बाह्य क्रिया का फल आत्मज्ञानसहित हो तो सफल हो,... तब तो उसे पुण्यादि मिले, पवित्रता का भान हुआ हो उसे। परन्तु जहाँ पवित्रता भगवान आत्मा की पवित्रता का भास भी नहीं, उसके आँगन में आया नहीं अन्दर के चैतन्य के स्वभाव में और बाहर की प्रवृत्ति की क्रिया में पूरे दिन चौबीस घण्टे रुके, वह निरर्थक है। उसे भव का अभाव नहीं होगा। और भव मिले, वह तो चारों ही गति के दुःख के कारण हैं। स्वर्ग में वे देव कषाय के अंगारों से सुलग रहे हैं। समझ में आया? यह पुण्य के फल में स्वर्ग में गये, पंचास्तिकाय कहता है कि अंगारों में सुलगता है वहाँ। कषायरूपी अग्नि ज्वाला में संकल्प-विकल्प से जल रहे हैं। यह सेठिया हों सब करोड़पति और अरबोंपति, वे संकल्प-विकल्प की ज्वाल से सुलग रहे हैं, जल रहे हैं।

मुमुक्षु : उसमें तो बहुत मजा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ मजा धूल का था? आहाहा! विष्टा चाटकर मजा माने, ऐसा मजा है वह। सेठ! आहाहा! ऐसी अनुकूलता सब अभी कहाँ है? देखो न, वह बड़ा दो अरबपति मर गया क्षण में। आहाहा! उसके बहनोई कहे, पुण्य कम है। ऐसा कहते थे। ऐसा कहते थे। पैसा दिखे नहीं। पैसा सब फँस गया माल में और मशीन में और लग गया। दो अरब चालीस करोड़। ऐसा सुना है, दस लाख रुपये लिये हैं दो प्रतिशत के ब्याज से उन्होंने। फिर मर गया वह। आहाहा! क्योंकि पैसे रोकड़ प्रयोग करने में नहीं मिलते, मशीन में फँस गये। आहाहा! यह दुनिया की चैन। परन्तु सब अनुकूलता हो तो भी कषाय-अग्नि में जलते हैं वहाँ। वह कषाय है। आहाहा! अशुभ राग। आहाहा! 'आग दाह दहे सदा, तातैं समामृत सेईये' यह शुभ और अशुभराग तो आग है। अशुभराग तो तीव्र अग्नि है, परन्तु शुभराग, वह अग्नि है—दुःख है। आहाहा!

आज दोपहर में आयेगा अब। दृष्टि की बात की है न। फिर ज्ञानप्रधान कथन करेंगे। एक ओर देखे तो धर्मी को शान्ति दिखती है, एक ओर देखे तो साधक है, इसलिए राग दिखता है, अग्नि दिखती है, राग का दुःख दिखता है। साधक जीव को, हों! आहाहा! एक ओर देखें तो कषाय दिखती है, एक ओर इस ओर देखो तो मोक्ष की पर्याय (नहीं), परन्तु अन्दर निर्मल दिखता है। आहाहा! सम्यग्ज्ञानी को—जिसे आत्मज्ञान

हुआ है, आत्मभान हुआ है, आत्मा का आनन्द, उसका स्वाद आया है, उसे भी जितना राग बाकी है, शुभ-अशुभ दोनों,... आहाहा! वह आग है। 'आग दाह दहे सदा, तातैं समामृत सेईये' समामृत। राग से रहित मेरा नाथ प्रभु अमृत और शुद्धघन पड़ा है, उसकी सेवना कर। आहाहा! दिशा को पलटा, तेरी दशा पलट जायेगी। पर के ऊपर जो दृष्टि है, उसे स्व के ऊपर डाल। तेरी दिशा पलटने से दशा पलट जायेगी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने भी करुणा करके कितना स्पष्ट किया है। सूरज जैसा स्पष्ट किया है। भगवान! तेरे आनन्द के नाथ को पहिचाने बिना, यह सम्यग्दर्शन बिना अर्थात् आत्मा के ज्ञान बिना जो कुछ करे, वह सब तेरा निरर्थक जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य क्रिया का फल आत्मज्ञानसहित हो तो सफल हो,... अर्थात् कि आत्मज्ञान हो और शुभ हो, तब तो स्वर्गादि में जाये और वहाँ वह आसक्ति नहीं करे। आत्मज्ञान—भानसहित है, इसलिए पुण्य के फलरूप से राजा चक्रवर्ती, तीर्थंकर होगा। समझ में आया? परन्तु उसमें वह आसक्ति नहीं पायेगा। आहाहा! **अन्यथा सब निरर्थक है।** आहाहा! इसलिए कहते हैं कि आत्मज्ञान और निश्चय स्वभाव का भान हो, तब तो राग की मन्दता का भाव, उसे व्यवहाररूप से सफल कहा जाता है, ऐसा। परन्तु जिसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन की खबर नहीं, अकेले क्रियाकाण्ड में लवलीन और रच रहे हैं, वे सब निरर्थक (जानेवाले हैं), उन्हें आत्मा का कुछ फल है नहीं। आहाहा! **पुण्य का फल हो तो भी संसार का ही कारण है,...** आहाहा! कोई ऐसे व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान और दया किये हों, तो उस पुण्य के फलरूप से स्वर्गादि मिले, वह तो संसार का कारण है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न कि जो पुण्य परिणाम संसार में दाखिल करे, उसे भला कैसे जानना? आहाहा! अज्ञानी ऐसे व्रत, तप के परिणाम को भला जानकर करता है कि जो संसार में प्रवेश कराते हैं। भवभ्रमण (का) उसने विचार किया नहीं न। चौरासी के भवभ्रमण में भटककर मर गया वह। उस पुण्य के फल में भी भवभ्रमण है। आहाहा! उसके जन्म के दुःख, रोग के दुःख, कषाय के दुःख, मरण के दुःख, वियोग के दुःख, अनुकूलता के वियोग के दुःख में जल रहा है वह। आत्मज्ञान बिना कहीं

शान्ति और सुख है नहीं। पुण्य के फल हों तो संसार का कारण है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान, दर्शन बिना अकेले पुण्य का फल तो संसार परिभ्रमण है, मोक्षफल नहीं। वह पुण्य की क्रिया व्यवहार और दया, दान, व्रत, भक्ति का फल मोक्ष नहीं। तब वे कहें, परम्परा से मोक्ष जायेगा। परम्परा किसे? जिसे आत्मज्ञान-दर्शन हुए हैं, जिसे यह पुण्यभाव हेयरूप से ज्ञात होता है, उसे उस पुण्य का भाव छोड़कर स्थिर होगा, तब परम्परा से मुक्ति कहने में आती है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९०

आगे उपदेश करते हैं कि भावशुद्धि के लिये इन्द्रियादिक को वश करो,... आहाहा! **भावशुद्धि के बिना बाह्यभेष का आडम्बर मत करो :—** आहाहा!

भंजसु इन्दियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु॥९०॥

आहाहा! अरे! जनरंजन। दुनिया प्रसन्न होगी (तेरा) त्याग देखकर। तेरे व्रत और बाह्य ब्रह्मचर्य, कायक्लेश और अपवास करके जनरंजन—लोग प्रसन्न होंगे। इससे तुझे क्या हुआ? आहाहा!

अर्थ :- हे मुने! तू इन्द्रियों की सेना है, उसका भंजन कर,... अर्थात् कि अणीन्द्रिय भगवान आत्मा की ओर का झुकाव कर, ऐसा कहते हैं। नास्ति से बात की है। पाँचों ही इन्द्रिय के ओर के झुकाव को छोड़ दे। आहाहा! क्योंकि पाँचों ही इन्द्रियों के ओर के भाव तो आतापरूप हैं। आहाहा! भले वह वाणी श्रवण करे, तो भी शुभभाव है, वह आतापरूप है, उसकी ओर का झुकाव छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पाँचों ही इन्द्रियाँ—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श अनुकूल या प्रतिकूल, वीतराग की वाणी और वीतराग भी वास्तव में तो इन्द्रिय का विषय है। वह अतीन्द्रिय का विषय नहीं। उस इन्द्रिय की ओर के विषय के झुकाव को वश कर—छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इन्द्रियों की सेना है, उसका भंजन कर,... इन्द्रिय की सेना सब विकल्प। आहाहा! इन्द्रिय की ओर के झुकाव में विकल्प के जाल उठें, उन्हें वश कर। आहाहा! अणीन्द्रिय भगवान आत्मा में अन्दर जा। तुझे वहाँ आनन्द प्राप्त होगा। यहाँ इन्द्रियों की ओर जाने से तो तुझे आताप प्राप्त होगा। समझ में आया? वह तो यह इन्द्रियाँ मात्र ऐसे आधीन (करे), ऐसा नहीं। भावेन्द्रिय का खण्ड-खण्ड विषय देखने से जो विषय लक्ष्य में आवे, उसे यहाँ इन्द्रिय के विषय का आताप भाव कहते हैं। आहाहा! इन्द्रियाँ तीन प्रकार की कही हैं न, (समयसार) ३१ वीं गाथा में। द्रव्येन्द्रिय पाँच, भावेन्द्रिय— खण्ड-खण्ड ज्ञान, एक-एक विषय को जाने वह और उसका विषय जो है, वह भी इन्द्रिय। यह गजब बातें हैं न! वीतराग स्वयं और वीतराग की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है। क्योंकि इन्द्रिय उसकी ओर झुकती है, तब उसे वह लक्ष्य में यह देव है और यह वाणी है, (इससे) उसे शुभराग होता है। आहाहा! समझ में आया?

यह इन्द्रिय का विषय है पर, उसे छोड़ दे, कहते हैं। वश करने का अर्थ यह। उसे इस ओर बना दे। आहाहा! पाँच इन्द्रियों की ओर के झुकाव में... ओहोहो! निहालभाई ने जब लिखा न, तब खलबलाहट हो गयी कि जैसे स्त्री विषय है, वैसे वीतराग की वाणी और वीतराग भी इन्द्रिय का विषय है। परपदार्थ है न। कहो, धन्नालालजी! आहाहा! परसन्मुख के झुकाव में वहाँ राग ही उत्पन्न होता है। फिर स्त्री, कुटुम्ब हो या देव, गुरु और शास्त्र हो। मार्ग ऐसा है। इसने सुना कब है? आहाहा! प्रभु आत्मा तो अणीन्द्रिय है। वह तो मन और विकल्प का विषय नहीं। आहाहा! इन्द्रिय के विषय को भंजन कर, इसका अर्थ पाँचों ही इन्द्रिय की ओर के झुकाव के भाव को बदल डाल। आहाहा! ऐसे स्थूल रीति से इन्द्रिय को वश कर और ब्रह्मचर्य पाल, वह यहाँ बात नहीं है। आहाहा! यह शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह भी इन्द्रिय का विषय है, वह शुभभाव है। वस्तु ऐसी है। जगत के अन्दर तत्त्व की बात स्वसन्मुख की शैली में क्या होती है, परसन्मुख में क्या होती है, उसका इसे ख्याल नहीं। आहाहा!

हे मुने! तू इन्द्रियों की सेना... इन्द्रियों की सेना, पाँचों इन्द्रियों की। आहाहा! श्रवण करना, देखना, सूँघना, रस चखना, स्पर्श—यह सब सेना, (उसका) **भंजन कर,...** आहाहा! अर्थात् उसकी ओर के झुकाव को छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। भगवान

आत्मा आनन्द का नाथ अणीन्द्रिय, वहाँ झुकाव कर न, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? **विषयों में मत रम,...** वह परसन्मुख के विषय में प्रसन्न न हो। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है न! यह इन्द्रिय के विषय की ओर प्रसन्न न हो। वह राग है। राग में प्रसन्न न हो। भगवान आत्मा रागरहित शुद्ध चैतन्यघन है, वहाँ आ। आहाहा!

मनरूप बन्दर को प्रयत्नपूर्वक बड़ा उद्यम करके भंजन कर,... 'मणमक्कडं पयत्तेण' ऐसा है न? मनरूपी बन्दर। मांकडुं—बन्दर। संकल्प-विकल्प किया ही करता है। मन में जुड़ान होने से तो संकल्प-विकल्प होंगे। इन्द्रियों की ओर से हट जा और मन की ओर से हट जा, ऐसा कहते हैं। मन की ओर की दिशा में जाने से भी संकल्प और विकल्प आताप ... उत्पन्न होगा। उस मनरूपी बन्दर को **प्रयत्नपूर्वक बड़ा उद्यम करके...** लो! प्र—यत्न है न? प्र—यत्न—विशेष यत्न से—अन्तर्मुख यत्न से उसे वश कर। आहाहा! **'पयत्तेण'** है न? प्र—प्रकृष्ट। महापुरुषार्थ का यत्न। अन्तर में महापुरुषार्थ के यत्न द्वारा मन की ओर के झुकाव को वश कर, ऐसा कहते हैं।

मनरूपी माकडुं—बन्दर है। वह बन्दर चपल होता है। ऐसे बैठा हो तो ऐसे... ऐसे किया करे। यह बन्दर देखे हैं न बन्दर? काले मुख के, लाल मुख के होते हैं न बन्दर? बहुत प्रकार के (होते हैं)। जंगल में निकलें, (तो) सब बहुत देखे हों न। गुजरात में बहुत है। वहाँ भी देखे। फतेहपुर में है न बन्दर। चिमनभाई के मकान में ऊपर बन्दर ऐसे पड़ें। चीं... चीं... चीं ऐसा किया करे। चद्दर के ऊपर एकदम-एकदम पड़ें। आहाहा! ऐसा कि बन्दर चपल हो और उसमें भी उसे जब मदिरा पिलायी हो, उसमें उसे भूत लगा हो जब... आहाहा! ऐसे मन का चपलपना और उसे इन्द्रिय की मिठास लगे और उसमें मिथ्यात्वभाव उसे रुचि में हो। आहाहा! देखो, उसकी चपलता विकार की। ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व मिथ्यात्व का प्रेम। मिथ्यात्व का भूत है। आहाहा! पुण्य में प्रेम है न, वह मिथ्यात्व का भूत है। आहाहा! इससे उसे विकल्प और संकल्प बन्दर जैसे हुआ करे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमको नहीं, आत्मा को कहते हैं। तुमको नहीं। तुम यदि आत्मा न हो तो तुमको नहीं। तुम यदि रागवाले हो और शरीरवाले हो तो उसे नहीं। जो

राग और शरीरवाला भगवान आत्मा है, उसे कहते हैं। ऐसा कहे कि यह तो मुनि को है, ऐसा कहकर इतना ... निकाल डाले। हमारे तो लहर वहाँ खाना, पीना। मिले न यह वीशी में रोटला मिले रोटी। अकेला ऐई! स्त्री मर गयी फिर पूरा। बहुत बार आता है वह। बहुत बार करता है न वह? क्या? बहुत बार करता है या एक बार करता है वह? बहुत बार बात आती है यह। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मनरूपी बन्दर को **प्रयत्नपूर्वक बड़ा उद्यम करके भंजन कर,...** आहाहा! **वशीभूत कर और बाह्यव्रत का वेश लोक को रंजन करनेवाला मत धारण करे।** नग्नपना और ऐसी क्रिया महीने-महीने के अपवास, वह वेश लोगों को रंजन करने का न कर, न कर, छोड़ दे, छोड़ दे। आहाहा! वह जनरंजन है। आहाहा! क्या महाराज ने रस का त्याग किया! पानी और चावल दो लेते हैं, फलाना करते हैं, वह सब वेश के भेश, वह आत्मा के भान बिना के जनरंजन हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दुनिया प्रसन्न हो कि यह महाराज नग्न मुनि यह सर्दी में कितना सहन, उनाला में—गर्मी में उघाड़े पैर चलना, चातुर्मास में वृक्ष के नीचे (बैठे)। अभी तो वृक्ष-वृक्ष (के नीचे) कहाँ रहते हैं? अभी तो मकान में रहते हैं।

मुमुक्षु : मकान में तो ठीक, बड़े मकान।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अरे! भाई! मार्ग अलग, भाई!

मुमुक्षु : वह चौथे काल में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चौथे काल में होता है, सेठ कहते हैं। पाँचवें काल के साधु पाँचवें काल के लिए कहते हैं या किसके लिये कहते हैं यह? ऐसा कि चौथे काल में ऐसा होता है। अभी तो सब गड़बड़ चलती है सब, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : श्रावक गड़बड़िया हो तो फिर साधु भी गड़बड़िया हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक गड़बड़िया हो तो श्रावक को क्या है? सम्यग्दृष्टि हो और दूसरा हो? उसे तो ... हो सकता ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो आत्मदर्शन बिना, आत्मा के स्वरूप की शुद्धता के स्वीकार और सत्कार बिना, स्वसन्मुख की दृष्टि बिना परसन्मुख की जितनी क्रियायें, वे सब लोकरंजन के

लिए है, कहते हैं। ऐसा न कर, ऐसा कहते हैं, देखो न, '**वयवेस तं कुणसु**'। भाई! ऐसा न कर। आहाहा! दुनिया प्रसन्न होगी (कि) क्या महाराज त्यागी! आहाहा! परन्तु वहाँ तेरे आत्मा को लाभ नहीं होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : .... उपदेश ऐसा हो, उसमें समन्वय कैसे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके साथ समन्वय करे? किसी के साथ समन्वय नहीं होता। मार्ग तो यह एक ही है। वीतराग जैनदर्शन का तत्त्व ही यह है। यह दूसरे धर्म के साथ मेल—समन्वय हो, वह कभी हो नहीं सकता। यह बात सूक्ष्म है, बापू! दुःख हो दूसरे लोगों को। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्त ने यह मार्ग कहा, वह मार्ग आत्मज्ञान के आत्मदर्शनसहित के मार्ग को मार्ग कहते हैं। वह आत्मज्ञान और आत्मदर्शन न हो और अकेले व्रत और क्रियाकाण्ड करे, वे सब संसार में भटकने के लिय है।

मुमुक्षु : इसमें मुनि के लिए कहाँ....?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की कहाँ बात है यह तो? पूरे सब जीवों के लिए बात है न! मुनि की कहाँ, यह तो बचाव करने के लिए कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुनि की मुख्यता से बात की। मुख्य बड़े पुत्र की बात करे न, उसमें दूसरे पुत्र समाहित हो जाते हैं। इसका अर्थ है न। '**भंजसु**' कहा न? '**भंजसु**' तब किसी को कहते हैं न, ऐसा। किसी को कहते हैं न! इसीलिए तो इसमें से सम्बोधन निकाला। '**भंजसु**' ऐसा। '**बाहिरवयवेस तं कुणसु मा**' ऐसा। जनरंजन के लिये तेरी यह क्रिया व्रत की और तप की, भक्ति और बड़े मन्दिर बनावे और उसमें, आहाहा! पाँच, दस-दस लाख के मन्दिर बनाये, उन्होंने ऐसा किया। क्या किया तूने? अब सुन न! यह सब लोकरंजन की क्रिया है, आत्मदर्शन और ज्ञान न हो तो भटकने का है, कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

बाह्यव्रत का भेष लोक को रंजन करनेवाला मत धारण कर। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य।

भावार्थ :- बाह्य मुनि का भेष लोक का रंजन करनेवाला है,... आत्मा उसमें प्रसन्न हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! पूरे दिन शास्त्र पढ़े, ऐसा मुँह बन्द करे और आँख ऐसे करे, परन्तु उस चीज़ की तो दृष्टि की खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : चारों पहलुओं का ज्ञान तो करना पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहलू नहीं, यह आत्मा का ज्ञान करे तो दूसरे पहलुओं का ज्ञान उसे सच्चा होता है। स्व न आवे तो दूसरे पहलुओं का ज्ञान, उसे सच्चा होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

यहाँ तो भव का अभाव करने की बात है। यह भव का अभाव तो आत्मदर्शन और आत्मज्ञान बिना तीन काल में नहीं होता। चाहे जितनी व्रत की क्रिया (करके) मरकर सूख जाए। (निर्जरा) अधिकार में कहते हैं, क्लेश करो तो करो, महाव्रत के— पंच महाव्रत के भार का क्लेश करो तो करो, परन्तु उसमें जन्म-मरणरहित नहीं हुआ जाता। आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसे स्वभाव की सन्मुख की दृष्टि बिना, वह तेरे व्रत और सब लोकरंजन के लिये है। आहाहा!

इसलिए यह उपदेश है, लोकरंजन से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है,... लोग तो मानेंगे लाखों-करोड़ों जन कि ओहोहो! मूढ़ जीव बाह्य त्याग को देखकर लोग प्रसन्न होंगे। **इसलिए इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिये बाह्य यत्न करे तो श्रेष्ठ है।** लोकरंजन में सिद्धि नहीं है। **इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिये बाह्य यत्न करे तो श्रेष्ठ है। इन्द्रिय और मन को वश में किये बिना केवल लोकरंजनमात्र भेष धारण करने से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है।** आहाहा! आत्मा अन्दर से आनन्द और शान्ति से जगा नहीं, जिसे आनन्द का स्वाद आया नहीं, ऐसे के व्रत और तप सब निरर्थक और लोकरंजन के लिये हैं। वह प्रसन्न होगा, तू वहाँ प्रसन्न नहीं होगा।

मुमुक्षु : तू तो बिगड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिगड़ गया अन्दर से। आहाहा! लो, यह ९० गाथा हुई। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण १२, सोमवार, १८-०२-१९७४
गाथा - ९१-९२, प्रवचन-११२

अष्टपाहुड़। भावपाहुड़ है। ९१वीं गाथा है।

★ ★ ★

गाथा - ९१

णवणोकसायवग्गं मिच्चत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइयपवयणगुरुणं करोहि भत्तिं जिणाणाए॥९१॥

अर्थ :- हे मुने! मुनि को लक्ष्य कर बात है। उसमें सब जीव आ जाते हैं। **तू नव...** नो कषाय। **हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद—ये नो कषायवर्ग तथा मिथ्यात्व इनको भावशुद्धि द्वारा छोड़...** आत्मा के आनन्द की दृष्टि करके, आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसकी दृष्टि करके विषय की वासना के प्रकार को छोड़। और भगवान आत्मा परिपूर्ण शुद्ध आनन्द की दृष्टि करके मिथ्यात्व को छोड़। मिथ्यात्व के प्रकार हैं न वे। अज्ञान मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, एकान्त मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व। सब देव-गुरु सच्चे हैं, सब धर्म सच्चे हैं, ऐसा जो भाव, वह विनय मिथ्यात्व है। संशय मिथ्यात्व (अर्थात्) यह सत्य होगा या यह सत्य होगा? ऐसा जो संशय... है न। श्वेताम्बर आदि है न। संशय मिथ्यात्व में डाले हैं। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा जो प्रभु आत्मा, ऐसी बात दूसरे में है नहीं। ऐसा मिथ्यात्वभाव... सूक्ष्म बात तो है। अज्ञान ... जानना अज्ञान... ऐसा जो मिथ्यात्व। भगवान आहार लेते होंगे या नहीं? यह संशय। मुनि निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा होती है या श्वेताम्बरदशा होती है? ऐसा संशय, वह मिथ्यात्व है। महामिथ्यात्व जैसा पाप जगत में (नहीं है)। सम्यग्दर्शन जैसा महा कीमती नहीं, मिथ्यात्व जैसा पाप नहीं। पुण्य को

मिथ्यात्व में कहा है न? विपरीत मिथ्यात्व। हिंसा आदि में धर्म मानना, ऐसे मिथ्यात्व को छोड़। अर्थात् निमित्त संयोगी चीज़ से मुझे लाभ होगा, अन्तर में राग का, पुण्य का, दया, दान, भक्ति का भाव होता है, उससे मुझे लाभ होगा—ऐसा मिथ्यात्वभाव... आहाहा! वह चौरासी लाख अवतार की जड़ मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व की गाँठ '**चयसु**' ऐसा कहा है न? '**चयसु**'—छोड़। आहाहा! भगवान आत्मा सत्यार्थ परमानन्द की मूर्ति का आश्रय लेकर मिथ्यात्व का नाश कर।

यह भावपाहुड़ है न! शुद्ध-विशुद्ध भाव, पुण्य-पाप के भाव से रहित विशुद्ध निर्मल भाव, वीतरागी परिणति का भाव, उस भाव द्वारा मिथ्यात्व और विषय-वासना का भाव छोड़ दे। तुझे सुखी होना हो और परिभ्रमण चौरासी के अवतार से छूटना हो तो यह उपाय है। है? **मिथ्यात्व, इनको भावशुद्धि द्वारा...** भावशुद्धि का अर्थ—यह पूर्ण आनन्द और ज्ञायकभाव जो आत्मा है, उसकी शुद्ध दृष्टि करके, उसकी शुद्ध दृष्टि होना, निर्विकल्प दृष्टि होना, (ऐसी) **भावशुद्धि द्वारा छोड़...** पूर्ण शुद्ध ज्ञायक चैतन्यस्वभाव ध्रुवभाव, जिसमें अनन्त शक्तियाँ विराजमान हैं। ऐसा अनन्त शक्ति का रूप, ऐसा एक स्वरूप। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा का आश्रय ले तो तुझे भावशुद्धि होगी। आहाहा! समझ में आया?

और जिनाज्ञा से... ऐसी सम्यग्दर्शन की शुद्धि से मिथ्यात्व का भाव छोड़, विषयवासना का छोड़। आहाहा! **और जिनआज्ञा से चैत्य,...** प्रतिमा। जिनप्रतिमा वीतरागी प्रतिमा। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु : चैत्य लिखा है, प्रतिमा नहीं लिखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चैत्य का अर्थ ही प्रतिमा होता है।

मुमुक्षु : चैत्य तो ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ ज्ञान नहीं है। प्रवचन में है दूसरा बोल। प्रवचन दूसरा बोल है। देखो! '**चेइयपवयणगुरुणं**' तीन बोल हैं। यहाँ चैत्य का अर्थ तो प्रतिमा है—वीतराग मुद्रा। जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन हुआ, स्वभाव का आश्रय लेकर पूर्णानन्द का नाथ जिसकी दृष्टि में और ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय हुआ, उसको व्यवहार कैसा होता है, वह बात करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार शुभभाव आता है। धर्मीजीव को अपना शुद्ध चैतन्य द्रव्य का आश्रय होने पर भी जब वीतरागता (पूर्ण) न हो, तब ऐसा शुभभाव जिनप्रतिमा का दर्शन, भक्ति, ऐसा भाव आता है। है पुण्य, परन्तु यहाँ निश्चय और व्यवहार कैसा है, वह दो बताया है। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यदल सर्वस्व चैतन्यस्वरूप जिसका है। सर्वस्व, सर्वस्व चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप, वीतरागस्वरूप, अनाकुल आनन्दस्वरूप उसका स्वाद ले। वह स्वादिष्ट वस्तु है। धन्नालालजी! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द स्वादिष्ट वस्तु है। जैसे आम चूसते हैं न! रस चूसते हैं। भगवान का आनन्दरस है। अतीन्द्रिय आनन्दरस आत्मा में है। आहाहा! उसे भावशुद्धि कहते हैं। उस आनन्द के रस का अनुभव करना, वह भावशुद्धि है। और ऐसी भावशुद्धि द्वारा जब तक वीतरागता पूर्ण न हो तो जिनमूर्ति वीतरागमूर्ति, जिसमें कोई वस्त्र नहीं, दागीना—क्या कहते हैं? जेवर जेवर नहीं ऐसी। 'जिनप्रतिमा जिनसारखी।' बनारसीदास लिखते हैं। 'जिनप्रतिमा जिनसारखी।' वीतरागमुद्रा, जिसमें कोई पानी के अभिषेक के अतिरिक्त दूसरी चीज़ नहीं। मार्ग ऐसा है, भगवान! व्यवहार में भी ऐसा है, ऐसा कहते हैं। निश्चय में तो चैतन्यप्रतिमा भगवान वह अनुभव में लिया। आहाहा! वहाँ से तो धर्म की शुरुआत होती है। परन्तु उसको व्यवहार कैसा आता है? कि जिनप्रतिमा वीतरागमूर्ति की उसको भक्ति होती है। अन्तर भक्ति स्वरूप आनन्द की भक्ति, वह निश्चय भक्ति है। आहाहा! सेठ!

चैतन्यघन प्रभु पूर्णानन्द सत्यार्थ की मूर्ति, उसकी भक्ति अर्थात् एकाग्रता, वह सम्यग्दर्शन। वह निश्चयभक्ति है। ऐसा ... हो, जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक ऐसी चैतन्य प्रतिमा की जैसी प्रतिमा—मुद्रा, वह वन्दन करनेयोग्य है। उसकी भक्ति करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ये कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर (सन्त) महाविदेह में परमात्मा सर्वज्ञ के पास गये थे। आत्मा का भान तो था, स्वरूप की रमणता भी थी। वहाँ गये, विशेष निर्मलता ज्ञान की हुई, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान आत्मा में... यहाँ तो मिथ्यात्व का नाश हुआ, उसकी बात है न, भाई! आहाहा! जिसको मिथ्यात्व का नाश हुआ...

वह कहा न, पहले हमारे बहुत चर्चा हुई थी। (संवत्) १९८३ के वर्ष में। ४७ वर्ष हुए। ४० और ७। एक सेठ था, वह बड़ा गृहस्थ था। साठ वर्ष पहले दस लाख रुपये थे। उसकी ऐसी श्रद्धा थी और ऐसा कहता था कि प्रतिमा की पूजा तो मिथ्यादृष्टि हो, तब होती है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् वह होती नहीं। तो उसको कहा कि सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् श्रुतज्ञान होता है तो उसमें नय पड़ते हैं, उसको निक्षेप होता है। यह तो ८३ की बात है। संवत् १९८३। ... विपरीत आग्रह बहुत था विपरीत आग्रह बहुत था।। ऐसा कहते थे कि प्रतिमा की पूजा तो मिथ्यादृष्टि हो तब होती है। सम्यग्दृष्टि (होने के बाद) प्रतिमा की भक्ति नहीं। मैंने तो कहा, उस समय कहा। ४७ वर्ष हुए, ५० में ३ कम। भैया! शान्ति से समझो। जब आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है, तब साथ में श्रुतज्ञान होता है। वह श्रुतज्ञान प्रमाण है और उस प्रमाण का भेद है, वह नय है। श्रुतज्ञान प्रमाण, वह अवयवी है और नयभेद उसका अवयव है। यह ज्ञान का भेद नय है तो ज्ञेय का भेद निक्षेप है। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव ज्ञेय का भेद है, यह (नय) ज्ञान का भेद है। तो जिसको श्रुतज्ञान प्रगट हुआ, उसका व्यवहारनय जो उसमें है, उसका विषय निक्षेप उसको होता है। समझ में आया? पक्षपात से बात छोड़ दो। पाटनीजी! मार्ग ऐसा है। वस्तु की स्थिति ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान ही नहीं। ... मेरे सामने न बोले। बोले नहीं परन्तु अन्दर में माने। ... कोर्ट में भी ऐसा था। कोर्ट में। ... यहाँ का माननेवाला। स्थानकवासी। ... उसने संघ में बहुत पैसे दिये थे। पाँच-पाँच हजार, दस हजार। उसकी चर्चा हुई थी कोर्ट में। बहुत हुई थी। जब तक स्थानकवासी सम्प्रदाय में हो, तब तक उसका हक है, स्थानकवासी में से निकल गये तो उसका पैसे का... नहीं। यहाँ का माननेवाला हुआ न? तो उसका हक नहीं। तो उसकी कोर्ट में ... वहाँ उसने ऐसा कहा कि जो प्रतिमा चली है जैन में वह यक्ष की है, तीर्थंकर की नहीं। ऐसी चर्चा चली थी। जगत को अपना पक्ष (छूटता नहीं)।

यहाँ कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले हुए। भगवान के पास गये थे और सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र था, भावलिंगी सन्त थे। पंच परमेष्ठी में

शामिल थे। आहाहा! वह कहते हैं कि मिथ्यात्व का जब नाश होता है... उसमें भी आया है न समयसार नाटक में? 'आगम ... जिसे कान में पड़े।' यह आता है समयसार नाटक में। यह आता है, नहीं? 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' ... पड़ा है? (चौदह गुणस्थान अधिकार, पद-२, ३)।

'जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी, जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी' अन्तर में सुदृष्टि जगी (अर्थात् कि) यह मिथ्यात्व का नाश (हुआ)। 'विनसी मिथ्यात मोहनिद्रा की ममारखी।'

सैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयो,
गरबकौ त्यागी षट-दरवकौ पारखी।

छह द्रव्य भगवान ने कहे, उनकी परीक्षा की। 'आगमके अच्छर परे हैं जाके श्रवनमें' भगवान की वाणी जिसके कान में पड़ी है 'हिरदै-भंडारमैं समानी वानी आरखी।' वीतरग की वाणी वहाँ समझ में आयी है।

कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोही जिनप्रतिमा प्रवांनै जिनसारखी॥ ३॥

यह है। दूसरी बात नहीं है।

जाके मुख दरससौं भगतके नैननिकौं,
थिरताकी बानी बढ़ै चंचलता विनसी।
मुद्रा देखि केवलीकी मुद्रा याद आवै जहां,
जाके आगै इन्द्र की विभूति दीसै तिनसी।

भगवान की प्रतिमा देखने से इन्द्र की विभूति भी तिनका-छिलका जैसा दिखे।

जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं,
सोई सुद्धमति होई हुती जु मलिनसी,
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी छबि सुविद्यमान जिनसी॥२॥

वीतरागी मूर्ति साक्षात् भगवान जैसी कहने में आती है। व्यवहार है न। निश्चय... समझ में आया? यह बनारसीदास। चौदह गुणस्थान (अधिकार) बनारसीदास। पृष्ठ ३६५। बनारसीदास। यह तो बहुत वर्ष का है न। ... का अभ्यास है। ७८। कितने हुए? ५२। ५२ वर्ष से समयसार नाटक का अभ्यास है। कितनों की तो जिन्दगी नहीं होगी ५२ वर्ष की।

यहाँ कहते हैं कि '**चेइय**' सम्यग्दृष्टि जीव जिसको अपने आत्मा की भक्ति हुई है, अपना आत्मा आनन्दमय चैतन्यघन... आहाहा! उसकी जिसको भक्ति कहो या सम्यग्दर्शन कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? चैत्य की प्रतिमा भगवान की आज्ञा से... देखो पाठ है न! 'जिनआज्ञा चैत्य' ऐसा शब्द पड़ा है। है न, पाठ है न। '**चेइयपवयणगुरुणं करोहि भत्तिं जिणाणाए**' '**जिणाणाए**' वीतराग की आज्ञा प्रमाण। पाटनीजी! लोगों को आग्रह होता है न। अन्दर से फिर उसको... यह (बात) बैठती नहीं। यह तो जिनआज्ञा से, जिनआज्ञा से वीतराग... जिनाज्ञा का अर्थ कि जैसी प्रतिमा वीतराग की है, भगवान वीतराग, वैसी जो प्रतिमा। उसका प्रतिबिम्ब ऐसा होता है। भगवान वीतराग हैं और यहाँ सिर पर कपड़ा हो, तिलक-टपका हो और यह हो, वह मूर्ति जिन की नहीं। इसलिए यह कहा। '**चेइय**' जिन प्रतिमा। 'जिन प्रतिमा जन दोष निकंदै। ४।' यह उसमें ही आता है। आहाहा! भाव है न? शुभभाव है। वह अशुभभाव छोड़कर कहीं शुभभाव समकिती को भी, मुनि को भी आता है। है हेयरूप से, परन्तु आता है। अभी कोई कहता है न कि उपादेय है। व्यवहार से उपादेय है, निश्चय से तो उपादेय है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अटपटी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अटपटी नहीं, सीधी बात है। आता है या नहीं? जब तक वीतराग न हो, तब तक चैतन्य की भक्ति जिसको जगी, उसको चैतन्य परमात्मा जो हुए, उनकी प्रतिमा का प्रेम आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। दो हजार वर्ष पहले के यह शब्द हैं। दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे और यह लिखा है। है अन्दर...

जिनआज्ञा से चैत्य,... प्रतिमा। जिनआज्ञा क्यों लिया? कि प्रतिमा के ऊपर वस्त्र, गहने, तिलक-टपका, वह भगवान को नहीं होता। समझ में आया? केसर और चन्दन भगवान के ऊपर नहीं होता, ऐसा कहते हैं। गहने तो नहीं परन्तु... जैसे वीतराग त्रिलोकनाथ हैं, ऐसा प्रतिबिम्ब होता है। मार्ग तो ऐसा है, भगवान! कम, अधिक, विपरीत करे तो उसको मिथ्यात्व लगेगा। मिथ्यात्व की भ्रान्ति बड़ा पाप है। **चैत्य,...** यहाँ तो कहा न? '**चेइयपवयणगुरुणं करोहि भत्तिं जिणाणाए**' ऐसा शब्द है न, भाई! '**जिणाणाए**' वीतराग की आज्ञा है, उस प्रकार जिनआज्ञा से चैत्य प्रतिमा।

प्रवचन,... जिन आज्ञा से प्रवचन, वीतराग ने कहा हुआ हो, वह प्रवचन। कल्पित अज्ञानी ने बनाया, वह प्रवचन नहीं, ऐसा कहते हैं। श्वेताम्बर ने तो शास्त्र कल्पित बनाये हैं। ३२, ४५, ८४ भगवान की वाणी नहीं। यह यहाँ कहते हैं। **प्रवचन...** भगवान के वचन। प्र—प्रकृष्ट वचन। दिव्यध्वनि द्वारा परमात्मा त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि द्वारा जो वाणी आई, उसको आगम कहते हैं। आगम का अर्थ, वह लक्षणावली है न, भाई! उसमें पढ़ता था। लक्षणावली बनायी न। बालचन्दजी ने। ... उसमें किसे कहना? एक में ऐसा आया, सर्वज्ञ की वाणी को आगम (कहना)। दूसरे में एक आचार्य की परम्परा से आवे, उसे आगम कहना। यह तो भगवान सर्वज्ञ परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई वाणी। यह कहा था न अपने नियमसार में। आगम उसे कहते हैं। उसका अर्थ करे तब ... वह दूसरी बात है। सम्यग्ज्ञान को... उसके सम्यग्ज्ञान प्रवचन द्वारा आत्मा आनन्द का पेय-पेय पीना। निर्विकल्प आनन्द पीना वह... समझ में आया? ... यहाँ तो यह '**गणहरदेवेहिं गंथियं**' है न? '**तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं**' परन्तु ऐसा भी कहते हैं, हमारा तो गणधर का गूँथा हुआ है।

यहाँ तो कहते हैं। कहेंगे अभी। अतुल शब्द प्रयोग करेंगे न! तुलना बिना की चीज़, उसके साथ माप, वीतराग वाणी के साथ दूसरी चीज़ की तुलना नहीं की जा सकती। ऐसी वीतराग दिव्यध्वनि द्वारा सन्तों ने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, षट्खण्डागम आदि रचे। तो वह सर्वज्ञ अनुसार उनकी वाणी है। बारह अंग की वाणी जो है, वही सब आगम में रची है। आगम है न—धवल, जयधवल, महाधवल। ऐसे समयसार, प्रवचनसार, नियमसार है। वे भी ऐसा कहते हैं कि हमारा तीर्थंकर का कहा

हुआ है, वे हमारे आर्षवाक्य हैं। यहाँ प्रवचन—भगवान की वाणी। आहाहा! लो! अपने परमागम उत्कीर्ण हुए न, वह भगवान की वाणी है। आहाहा! समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड़। पाँच-पाँच। उनमें चार लाख अक्षर हिन्दुस्तान में पहले मशीन से उत्कीर्ण हुई बात पहली-पहली हुई। मशीन आयी न पहले? इटाली से। इटाली से मशीन... हिन्दुस्तान में मशीन ही पहले ली। आया है न वह अक्षर... बहिन थे तुम्हारे घर में। बहिन भी खड़ी थीं। ... ऐसा कि हम तो लाखों-करोड़ का सोना... परन्तु एकधारा अक्षर। कहा, यह तो मशीन से हुए हैं। मशीन है न यहाँ। पड़ी है।

यह प्रवचन भगवान की वाणी। आहाहा! उसकी भक्ति जिन आज्ञा से करना। जिन आज्ञा वीतराग की आज्ञा है कि प्रवचन... यह तो अपने समयसार में भी आया न दूसरी गाथा में, दूसरे कलश में। जिनवाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी पूज्य है। जिनवाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी वह पूज्य है। व्यवहार, हों! निश्चय से तो आत्मा पूज्य है। दूसरा कलश है न समयसार में। अमृतचन्द्राचार्य (कृत)। '**परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा**' यह वाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कही।

पाँचवीं गाथा में तो यह लिखा। पाँचवीं (गाथा) समयसार। **परमगुरु-सर्वज्ञदेव और अपरगुरु—गणधरादिक से लेकर गुरु पर्यन्त...** वह सब आत्मा में लीन थे। उससे हमको यह मिला है। वह संस्कृत में है। समझ में आया? सर्वज्ञ से लेकर... लो! निर्मल विज्ञानघन जो आत्मा, उसमें अन्तर्मग्न-अन्तर्निमग्न। **परमगुरु-सर्वज्ञदेव...** संस्कृत है, संस्कृत है। **और अपरगुरु—गणधरादि से लेकर (हमारे) गुरुपर्यन्त...** कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु भी निर्मल विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न थे। जैसे सर्वज्ञ थे, वहाँ से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त निर्मल आत्मा में मग्न थे। **उनके प्रसादरूप से दिया गया...** हमारे ऊपर कृपा करके हमको सुनाया। संस्कृत है। '**निर्मलविज्ञानघनान्तर्निमग्नपरापरगुरुप्रसादीकृत**' संस्कृत है। पाँचवीं गाथा है। निर्मल विज्ञानघन। भगवान सर्वज्ञ जैसे निर्मल विज्ञानघन में मस्त हैं, वैसे हमारे गुरु पर्यन्त ... हम कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा!

भगवान के पास गये थे। वे स्वयं कहते थे। उनकी वाणी में अमृतचन्द्राचार्य की वाणी है कि हमारे गुरु सर्वज्ञ के (पास से) आये। वे प्रभु विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न थे,

वैसे हमारे गुरु भी अन्तर्निमग्न ही थे। पंच महाव्रत और विकल्प की बात नहीं। धन्नालालजी! वे नग्न थे, वह नहीं। आहाहा! वे तो अन्तर्निमग्न। आहाहा! निर्मल विज्ञानघन (में) अन्तर्निमग्न थे। जैसे सर्वज्ञ परमात्मा से धारावाही हमारे गुरु पर्यन्त अन्तर्निमग्न थे, हमारे पर कृपा करके हमको (उपदेश) दिया। हमारे पर अनुग्रह किया। भाई! आहाहा! वह प्रवचन, वह प्रवचन। सर्वज्ञ की वाणी जो है वह, यहाँ मशीन में उत्कीर्ण। पाँच-पाँच (पद) है न? परमभाव पाँचवाँ। पाँच परमेष्ठी। अलौकिक बात है। आहाहा! उस प्रवचन की भक्ति।

सम्यग्दृष्टि जीव धर्मात्मा जिसको अपना आत्मा का अनुभव हुआ, वह आत्मा प्रवचन की भक्ति यथार्थ में उसका व्यवहार सच्चा है। आहाहा! जिसको सम्यग्दर्शन नहीं, अपना भान नहीं, वह पर की भक्ति तो व्यवहाराभास है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परन्तु जिसको यथार्थ दृष्टि हुई है, वह सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व का नाश कर अपने स्वभाव का अनुभव किया, वह प्रवचन और चैतन्य की भक्ति करते हैं, उसका व्यवहार है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! लो, यह तो व्यवहार भी आया। होता है, आता है।

मुमुक्षु : साथ-साथ होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही है। अशुभ से बचने को—अशुभ वंचनार्थ—ऐसा पाठ है संस्कृत में पंचास्तिकाय। अशुभ वंचनार्थ, ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। आहाहा! परन्तु सम्यग्दृष्टि उसको समझे कि वह हेय है। निश्चय में तो वह हेय है। व्यवहार से, अशुभ छुड़ाने को उपादेय व्यवहार से कहने में आया है। आहाहा! '**जिणाणाए**' कहा है न, देखो न! वीतराग की आज्ञा से चैतन्य प्रतिमा की भक्ति, वीतराग की आज्ञा से प्रवचन की भक्ति। गाथा बहुत अच्छी आयी है। और वीतराग की आज्ञा से गुरु की भक्ति। आहाहा! सन्त भावलिंगी सन्त गुरु निर्ग्रन्थ। जिसको वस्त्र का एक धागा भी नहीं और अन्तर में राग का कण भी जिसको अपना नहीं। ऐसे अन्तर में आत्मा के आनन्द में निमग्न। ऐसे सन्त, ऐसे गुरु निर्ग्रन्थ। जिनको ग्रन्थ बाहर में भी नहीं और अभ्यन्तर में नहीं। आहाहा! बाह्य में वस्त्र का तिलतुष—तिल के तुषमात्र भी वस्त्र रखे और मुनिपना माने, तो आचार्य कहते हैं कि निगोदं गच्छई। निगोद में जायेगा। और जब आत्मा का भान अन्तर अनुभव हुआ, भगवान आत्मा। मिथ्यात्व के नाश की बात

करनी है न? अनाकुल... आहाहा! कितनी बात है! सन्त नहीं और उसे गुरु माने, वह जिनआज्ञा नहीं। समझ में आया? ओहो! तीन बोल की बात आयी। चैत्य, प्रवचन और गुरु। आहाहा! देव की प्रतिमा, शास्त्र प्रवचन, निर्ग्रन्थ गुरु। 'देव-शास्त्र-गुरु तीन' आता है या नहीं? देव-शास्त्र-गुरु।

मुमुक्षु : 'जासो पूजो परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन।'

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-शास्त्र-गुरु तीन। पहले देव-गुरु नहीं। देव-शास्त्र-गुरु। बीच में लिया है न। '**चेइयपवयणगुरुणं**' जिनप्रतिमा देव की और भगवान की वाणी— शास्त्र और भगवान ने कहा ऐसे सन्त निर्ग्रन्थ। जिसकी बाह्य मुद्रा निर्ग्रन्थ, जिसको अन्तर बाह्य विकल्परूप से अट्ठाईस मूलगुण आदि हो, उससे रहित जो अन्तर में निर्विकल्प आनन्दसहित जिसका भावलिंग प्रगट हुआ है, वीतराग का मजा—आनन्द की लहर जिनको उठी है अन्दर में। आहाहा! ... वस्त्र रहे, ऐसा बनता नहीं।

ऐसे '**जिणाणाए गुरुणं करोहि भत्तिं**' कर भक्ति, ऐसा कहा है न? करे, वह शुभभाव है न। व्यवहार से कहते हैं न। व्यवहार है न। '**करोहि**' शब्द है न भाई उसमें। वैसे तो ऐसी बात है कि शुभभाव करनेयोग्य है, वह दृष्टि तो मिथ्यात्व है। शुभभाव कर्तव्य है, करनेयोग्य है, वह तो आत्मा में है नहीं। आत्मा में शुभ का अकर्ता स्वभाव आत्मा का है। भगवान आत्मा में तो शुभ के कर्तृत्व से रहित अकर्ता स्वभाव भगवान आत्मा का है। परन्तु वह तो दृष्टि की स्वभाव की अपेक्षा से कहने में आया। परन्तु साथ में जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह ज्ञान जानता है कि मुझमें शुभ की परिणति है, उतना मैं कर्ता हूँ। ओहोहो! एक ओर कर्ता नहीं, कर्तृत्वदृष्टि नहीं, परन्तु परिणमन राग का है प्रवचन, भक्ति आदि का, ऐसा ज्ञान जानता है। और उस शुभभाव का आधार मैं आत्मा हूँ। ज्ञान जानता है, दृष्टि में नहीं। समझ में आया?

दृष्टि—स्वभाव की दृष्टि में तो राग का स्वभाव में अभाव है, परन्तु जो दृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ... वह आयेगा समयसार में। वह ज्ञान सम्यक् ऐसा जानता है कि मेरी पर्याय में चैत्य, प्रवचन, गुरु की भक्ति का भाव शुभ है और उस शुभ का आधार मैं हूँ। आहाहा! कर्ता है न? ४७ नय प्रवचनसार में। राग का कर्ता मैं हूँ, ऐसा मानता है।

कर्तृत्व के योग्य है, ऐसा नहीं। परन्तु परिणमन है, उस अपेक्षा से कर्तृत्व मेरा है, ऐसा मानता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! समझ में आया? '**करोहि**' शब्द आया न। एक ओर तो कहे कि शुभभाव कर्म के निमित्त से उत्पन्न होनेवाला विकार, उससे उपरम—निवृत्त हुआ, ऐसा आत्मा का स्वभाव है। अकर्ता स्वभाव है। राग व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा से होता है। द्रव्यानुयोग के शास्त्र से नहीं होता। क्या है? द्रव्यानुयोग के शास्त्र से भी नहीं होता, द्रव्यानुयोग का ज्ञान किया पर्याय में, उससे नहीं होता। त्रिकाल सत्यस्वरूप भगवान आत्मा के आश्रय से होता है। यह आता है रत्नकरण्ड श्रावकाचार में प्रथमानुयोग (के स्वरूप में) उसमें आता है। बोहिसमाधि, बोधि... भाव कथानुयोग में आता है रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। वह तो निमित्त की बात है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् ... तो उसमें सिद्धान्त ऐसा लेते हैं। सूक्ष्म बात, भाई!

यहाँ तो भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमारी वाणी सुनकर उसमें जो उसको ज्ञान उसके कारण से हुआ, वह ज्ञान की पर्याय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमारी वाणी सुनकर, वह तो निमित्त है, परन्तु तेरी पर्याय में तेरी योग्यता से जो उपादान में जो ज्ञान हुआ निमित्त के लक्ष्य से, वह परलक्ष्यी ज्ञान है। उससे भी तुझे समकित नहीं होता। आहाहा! वह लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाल सत्यार्थ भगवान चिदानन्द ध्रुव... ११वीं गाथा (समयसार)। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**''**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' सत् सत्यार्थ परम सत्य प्रभु ध्रुव सत्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! पर्याय के लक्ष्य से नहीं, राग के लक्ष्य से नहीं, निमित्त के लक्ष्य से नहीं। आहाहा! वस्तु तो ऐसी है। जिसमें अनन्त पर्याय पड़ी है निर्मल। चैतन्य सामान्य में ज्ञान की, आनन्द आदि की निर्मल व्यक्ति जो पर्याय है, वह सब अन्दर में पड़ी है। ऐसा समुदाय स्वरूप भगवान, सत्यार्थ परमात्मा परमपारिणामिकस्वभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, अचलभाव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! धन्नालालजी! ऐ... देवानुप्रिया! क्या है अब?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से नहीं होता पर से, आत्मा से होता है। वह आत्मा कैसा? त्रिकाल आनन्दकन्द ध्रुव ज्ञायकभाव, उसके आश्रय से होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार की बात चलती है। ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ है अपने आश्रय से, वह तो बात चली मिथ्यात्व के नाश से, अब उसका व्यवहार कैसा है, यह बताते हैं। सच्ची चैत्य प्रतिमा भगवान की वीतराग मूर्ति की वह भक्ति करते हैं। '**जिणाणाए**' वह जिन की आज्ञा है। व्यवहार से जिन की आज्ञा है वह। आहाहा! प्रवचन।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले आ गया न सब, पहले आ गया है। '**भंजसु इन्द्रियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण**' आ गया। यहाँ तो विस्तार नौ कषाय का है इसलिए। ९० में आ गया है। इन्द्रिय को वश कर, मन के बन्दर को प्रयत्न से छोड़ दे, स्वभाव-सन्मुख ले। यह पहली गाथा आ गयी। यह तो नौ नोकषाय की वासना विषय की, पुरुषवेद की, स्त्रीवेद की आदि, हास्य, रति की वासना, वह मिथ्यात्व का नाश करके उसकी वासना भी छोड़ दे। क्यों? कि जब मिथ्यात्व का नाश होता है तो आत्मा के आनन्द की रुचि-दृष्टि होती है, उसको विषय की वासना में आनन्द है, वह बुद्धि उड़ जाती है। समझ में आया? जिसको अपना आत्मा आनन्दस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन, आनन्दमूर्ति की प्रतीति हुई, उसकी दृष्टि में शुभभाव में सुख है, पाप में सुख है, इन्द्रिय के विषय में सुख है, वह बुद्धि उड़ जाती है। परन्तु उड़ जाने के बाद भी उसकी वासना को छोड़ दे अस्थिरता की, यह बात चलती है। समझ में आया? सुखबुद्धि का तो—मिथ्यात्व का नाश होने से पर में सुखबुद्धि का तो नाश हो गया समकिती को। सम्यग्दृष्टि को पर में कहीं सुख भासित नहीं होता। भगवान की भक्ति के परिणाम में भी सुख भासित नहीं होता। आहाहा! गजब बात है। भक्ति का भाव है तो दुःख। राग है न! परन्तु व्यवहार आता है, ऐसी बात यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में

आया ? मार्ग यह है, भाई ! लोगों को सत्यवस्तु क्या है, कैसे प्राप्त हो, वह मिलती नहीं। सुनने को मिलती नहीं। प्राप्त तो करे कहाँ से ? प्राप्त कहाँ से करे ?

वाह ! यह गाथा तो गजब आ गयी ! '**करोहि भत्तिं जिणाणाए**' है ? जिन आज्ञा से चैत्य, जिन आज्ञा से प्रवचन, जिन आज्ञा से गुरु की भक्ति कर। है तो शुभभाव। परद्रव्य की ओर के झुकाव का भाव शुभ है। परन्तु व्यवहारनय से शुभभाव आता है, (उसे) 'कर' ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! ऐसी बात है, भाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ होने का तो कहाँ, यह तो समझने की बात है। यह तो अशुभ टालने के लिये कि अशुभ न हो, इसलिए होता है। कहीं अशुभ होने से इसे शुभ होता है, ऐसा तो है नहीं। यह भाषा की शैली अलग है, भाई ! अशुभ था और उसे टालना है और शुभ है, ऐसा है नहीं। परन्तु कथनशैली ऐसी आवे। अशुभ वंचनार्थ। शुभभाव में अशुभ की उत्पत्ति नहीं, इसलिए अशुभ वंचनार्थ शुभभाव कहने में आता है। है पुण्यबंध का कारण। सम्यग्दृष्टि को भी कर्मधारा (है)। आहाहा ! वह कर्मधारा है, रागधारा है। प्रवचन, चैत्य और गुरु की भक्ति रागधारा है। आहाहा ! बहुत कठिन। जैनदर्शन को समझना अलौकिक बात है। वह समझे तो निहाल हो जाये, सारा संसार उड़ गया। उदयभाव मुझमें नहीं। फिर भी उदय आता है व्यवहार है। पहले निश्चय तो ऐसा हुआ मिथ्यात्व के नाश में (कि) जितना उदयभाव है, वह मुझमें नहीं। मैं तो पारिणामिकभाव (स्वरूप हूँ), क्षयोपशमभाव भी मुझमें नहीं है। आहाहा ! क्षयोपशमभाव होता है, स्व के आश्रय से क्षयोपशम होता है, परन्तु स्व में क्षयोपशमभाव नहीं अन्दर में। आहाहा ! ऐसी बात !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावरहित तो होता ही नहीं कभी, भाव तो होता ही है। त्रिकाली भाव के आश्रय से क्षयोपशमभाव होता है, परन्तु त्रिकाल में क्षयोपशमभाव नहीं है। और क्षयोपशम के आश्रय से धर्म होता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! यह तो दो बातें इकट्ठी आ गयी न, इसलिए बात कही। एक ओर कहे कि मिथ्यात्व का... भ्रान्ति को

छोड़, भगवान को पकड़ ले। आहाहा! भावशुद्धि, ऐसा कहा है न? भावशुद्धि। भावपाहुड़ है न! भावशुद्धि का अर्थ शुद्ध उपयोग। वीतरागी परिणति, यह भावशुद्धि। इस भावशुद्धि से विकार का नाश होकर विषय-वासना का ... छोड़कर यह भाव प्रगट होता है व्यवहार में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति।

मुमुक्षु : भावशुद्धि मनशुद्धि का विकास करने के लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनशुद्धि, यही शुभभाव है। यह भावशुद्धि शुभ से रहित चीज़ है।

★ ★ ★

गाथा - ९२

आगे फिर कहते हैं:— देखो! अब प्रवचन की व्याख्या करते हैं।

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं॥९२॥

यह श्रुतज्ञान। आहाहा! भावश्रुतज्ञान। यह '**तित्थयरभासियत्थं**' अर्थ इसका अर्थ द्रव्यश्रुत। तीर्थंकर ने भासित किया। **श्रुतज्ञान को तीर्थंकर भगवान ने कहा...** है न? तीर्थंकर भगवान को केवलज्ञान कहा नहीं, श्रुतज्ञान कहा है। भाई! धवल में आता है। भगवान ने केवलज्ञान कहा नहीं। श्रुतज्ञान कहा है। श्रुतज्ञान में सब आता है। श्रुतज्ञान का अर्थ? गणधरदेव ने रचा। द्रव्यश्रुत रचा, इसलिए वीतराग की वाणी को भावश्रुत कहनेवाली कहा जाता है। क्या कहा, समझ में आया? गणधरदेव ने श्रुत की रचना की, श्रुत की रचना की तो भगवान की वाणी को भावश्रुत अर्थ कहने में आया है, भावश्रुत अर्थ किया, ऐसा कहने में आया है। भावश्रुत। यहाँ तो दूसरी बात लेनी है अपने कि भगवान की वाणी में केवलज्ञान आया है तो सुननेवालों को केवलज्ञान हो। परन्तु गणधर ने सूत्र रचा, उसमें उसको सूत्र भावश्रुत का अर्थ आया भगवान की वाणी में। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... भावश्रुत का अर्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावश्रुत का अर्थ। सर्वज्ञ की वाणी में भावश्रुत का अर्थ आया। वह गणधर ने द्रव्यश्रुत रचा। तो द्रव्यश्रुत की रचना में भावश्रुत निमित्त हुआ। और केवलज्ञान आया और भावश्रुत रचा, ऐसा नहीं। जरा सूक्ष्म बात है। यह धवल में बहुत है।

कहते हैं, **श्रुतज्ञान को तीर्थंकर भगवान ने कहा और गणधर देवों ने गूँथा अर्थात् शास्त्ररूप रचना की...** आगम। उसको यहाँ प्रवचन और आगम कहते हैं। लोगों ने कल्पना से शास्त्र बनाया और नाम भगवान का दिया, वह शास्त्र नहीं। शान्तिभाई! श्वेताम्बर ने शास्त्र बनाया, वह भगवान ने कहा, वह शास्त्र की रचना नहीं। कल्पना से होती है, यह कहते हैं। आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग है न? ग्यारह अंग है, वह भगवान की वाणी की रचना नहीं, गणधर की रचना नहीं। वह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो सत्य का सत्य कैसा है, वह ... आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसका एक खोटा, उसका सब खोटा। आहाहा! जिसका एक न्याय झूठा, उसका सब झूठा। भगवान की वाणी में तो सब परमार्थभूत यथार्थ बात है। आहाहा! उसमें से यह षट्खण्डागम की रचना की है। समयसारादि की उसमें से रचना हुई है। ज्ञानप्रवाद में से... आहाहा! अरे! भगवान!

शास्त्ररूप रचना की, उसकी सम्यक् प्रकार भाव शुद्ध कर निरन्तर भावना कर। आहाहा! उसे—भावश्रुतज्ञान को जानकर बारम्बार उसकी भावना कर। आहाहा! **कैसा है वह श्रुतज्ञान? अतुल है,...** ओहोहो! भावश्रुतज्ञान की महिमा ... उसके साथ दूसरे शास्त्र की तुलना हो नहीं सकती। **इसके बराबर अन्य मत का कहा हुआ श्रुतज्ञान नहीं है।** दूसरे ने शास्त्र रचे, भगवान की वाणी के साथ, भावज्ञान के साथ, उसका कोई मैल है नहीं, मैल है नहीं जरा भी, ऐसा कहते हैं। थोड़ा सत्य है या नहीं? विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण १३, मंगलवार, १९-०२-१९७४
गाथा - ९३-९४, प्रवचन-११३

ज्ञानस्वरूप ज्ञानमय है। ऐसा उसका भावज्ञान प्रगट करके क्या करना विशेष, वह कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ९३

पीऊण णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा॥९३॥

अर्थ :- पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध करने पर... अर्थात् शुभ-अशुभभाव जो बन्ध का कारण है, उससे रहित अपनी चीज़ का ज्ञान करने से जो भाव शुद्ध उत्पन्न होता है, उसको यहाँ भावश्रुतज्ञान कहने में आता है। आहाहा! **पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध करने पर ज्ञानरूप जल को पीकर...** आत्मा आनन्द और ज्ञानजल से भरा है, उसका ज्ञान करके। राग का और पर का ज्ञान करना, वह यहाँ नहीं (कहा)। वह चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, उस ज्ञानस्वभाव का ज्ञान करके, त्रिकाली ज्ञानस्वभाव में लीन होकर ज्ञान करना, ऐसा। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान और पर का ज्ञान, वह नहीं। ज्ञान अपना त्रिकाल स्वभावभाव, उसका ज्ञान करके, स्वज्ञानसन्मुख होकर अपनी ज्ञान-भावश्रुतज्ञान की पर्याय प्रगट करके। '**पीऊण**' शब्द है। प्राप्त करके और पीत्वा दोनों अर्थ होते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर स्वरूप ज्ञानजल से भरा प्रभु, उसका ज्ञान। अपना निज शुद्ध चैतन्यस्वभाव, उसका ज्ञान। उसका नाम भावशुद्धि है। भावपाहुड़ है न! सूक्ष्म बात है, भाई!

पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध करने पर ज्ञानरूप जल को पीकर... दोनों अर्थ हुए। भाव शुद्ध को प्राप्त करके ज्ञानरूप जल को पीता है। '**पीऊण**' का अर्थ दोनों किये।

पीत्वा और प्राप्त करके। सूक्ष्म बात, भाई! चैतन्यस्वरूप ज्ञान की गाँठडी है—ज्ञान की गठरी। उसके सन्मुख होकर ज्ञान की भाव शुद्धपर्याय प्रगट करना, उसका नाम भावप्रधान कहने में आता है। और वह प्राप्त करके **ज्ञानरूप जल को पीकर...** आनन्दरूपी जल को पीकर। आहाहा! यह धर्म। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बोल है। भावप्रधान ग्रन्थ है न, भावपाहुड़ है न!

मुमुक्षु : प्रकरण ही भाव का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावपाहुड़ का अर्थ वह (है) यहाँ। अपना निजस्वभाव जो शुद्धघन, 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम।' शुद्ध पवित्र और बुद्ध—ज्ञान का पिण्ड और शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन। असंख्य प्रदेशी चैतन्यघन। आहाहा! 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति।' चैतन्य स्वयं प्रकाश का सूर्य ज्योति है। और सुखधाम, वह आनन्द का धाम है। 'दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।' गुजराती में है। ऐसी चीज़ को प्राप्त कर अन्तर में लीनता करके भावज्ञान को पी। आहाहा! निर्विकल्प चैतन्य के ज्ञान को पीना कर, तेरी तृषा छूट जायेगी। अनादि की विषय की इच्छा—अभिलाषा (नष्ट हो जायेगी)। वह शब्द है न? **ज्ञानरूप जल को पीकर सिद्ध होते हैं।** इतनी पहली साधारण भाषा की। अपना चैतन्यस्वभाव शुद्ध पवित्र को प्राप्त करके और उसको पीकर के। आहाहा! चैतन्यजल से भरा भगवान आत्मा, उसमें कोई राग—दया, दान, व्रत ऐसे विकल्प उसमें है नहीं। ऐसी चीज़ की अन्तर्मुख होकर सर्वज्ञ ने कहा ऐसा भावश्रुतज्ञान अन्तर में से प्रगट करके चैतन्य का आनन्दजल पी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो, यह पेय। ज्ञानजल का पीना कर। आहाहा!

कैसे हैं सिद्ध? निर्मथ्य अर्थात् मथा न जावे ऐसे तृषादाह... उससे रहित सिद्ध हैं। मथा न जाये, वह तो एक विशेष कहा। बाकी वास्तव में तो निर्मथ्य। निर्-विशेषरूप से तृषा को मंथन करके, नाश करके। ज्ञानजल को पीकर। सूक्ष्म बात है न, भगवान! आहाहा! पहली श्रद्धा में तो (निश्चय) करे कि मेरी चीज़ जो आनन्द और ज्ञान है, उसमें एकाग्र होना, वही ज्ञान का पीना है, ज्ञान को पीते हैं। राग को अनुभवते हैं अनादि से, वह छोड़कर निर्मथ्य—निरविशेषरूप से विषय की अभिलाषा का मंथन कर—नाश कर। आहाहा! क्या कहा?

चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव शुद्ध, उसको पीकर—प्राप्त करके, अन्तर्मुख होकर स्वभाव को प्राप्त करके और शान्ति का जल पी करके विषय की अभिलाषा को निर्मथ्य, निर् अर्थात् निरविशेष, मंथन अर्थात् नाश कर। आहाहा! बाहर का विषय, विषय शब्द से पाँचों इन्द्रियों का विषय। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श उस ओर का झुकाव, वह तृषा है, वह तृषा है। है न तृष्णा? तृषा अर्थात् तृष्णा मूल तो लेना है। उसको छेद कर। परन्तु छेद कैसे हो? अपनी चीज़ सन्मुख में सम्यग्ज्ञान का पीना करके विषय अभिलाषा का नाश होता है। दूसरे प्रकार से कोई अभिलाषा का नाश होता नहीं। सूक्ष्म बात आयी। आहाहा!

तृषादाह... तृषा—विषय अभिलाष, दाह—शरीर का आताप। विषय की तृष्णा होती है न तो एक कामज्वर होता है। कामज्वर का अर्थ शरीर में आताप होता है। समझ में आया? कामज्वर की दस दशा वर्णन की है शास्त्र में। तो बुखार, काम की तीव्र अभिलाषावाले को शरीर में भी बुखार—आताप हो जाता है। समझ में आया? तो शरीर में कामज्वर से आताप उत्पन्न होना और वह तृष्णा और शोष। शरीर का रस शोषित हो जाता है। आत्मा के आनन्दरस का भान नहीं, वहाँ शरीर का रस शोषित हो जाता है। उसका निःशेष मंथन कर—नाश कर। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात आई। मूल बात है न! दया, दान, व्रत, भक्ति, आदि के परिणाम से पुण्य बँधता है, वह कोई धर्म नहीं है। उससे धर्म नहीं होता, उससे तृष्णा, दाह और आताप होता है, (उसका) नाश नहीं होता। शरीर का शोषन, ... अभाव नहीं होता। आहाहा! गजब बात, भाई! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, चैतन्यजल से पूरा भरा पड़ा है, उसमें जरा एकाग्र होकर शान्तिरूपी जल को पी। आहाहा! और उससे तेरी तृषा, दाह और शोष तीनों निःशेष मंथन अर्थात् नाश हो जायेंगे। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो (बात) चलती है न। अन्दर ज्ञानस्वरूप भरा है, उसमें लीन होना। जो राग और पुण्य के भाव में लीन है, वह तो संसार है। शुभभाव या अशुभभाव, वह दोनों संसार है। उसमें एकाग्र होना, वह तो तृषा है, दाह है। आत्मा के आनन्द का उसमें शोष होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए जानना पहले, ऐसा कहते हैं न! पहले जान लेना। मेरा आनन्द मेरे पास है, मेरा आनन्द तो मुझमें त्रिकाल भरा ही है। 'स्वयं ज्योति सुखधाम।' आहाहा! मैं स्वयं चैतन्यज्योति हूँ, और मुझमें आनन्द का धाम, आनन्द का स्थान मैं हूँ। आनन्द का... क्या कहलाता है? आनन्द का अंकुर फूटता है, वह मेरी चीज़ में से फूटता है। मैं तो आनन्द का अंकुर का उत्पन्न करने का धाम हूँ। राग और द्वेष और दु:ख को उत्पन्न करने का धाम मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे कहा न पहले? तीर्थंकर ने जो श्रुतज्ञानरूपी अर्थ से कहा, वही गणधर ने द्रव्यश्रुत में रचना की, उसमें से अभ्यास करके—अन्तर अभ्यास करके। आहाहा! शुभ और अशुभ विकल्प से रहित चैतन्य जो आनन्दकन्द प्रभु है, उस ओर के झुकाव से भावश्रुतज्ञान की निर्मल पर्याय हुई, उसको पी, तेरी तृषा नाश हो जायेगी। आहाहा! दूसरे किसी उपाय से नाश होती नहीं। भारी सूक्ष्म, इसलिए लोगों को ऐसा लगे न! मूल चीज़ को स्पर्शे बिना, मूल चीज़ जो आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा, उसको स्पर्शे बिना ज्ञानजल प्राप्त नहीं होता। बाह्य शास्त्र का ज्ञान करना, वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! वह तो विकल्पात्मक ज्ञान है, वह तो दु:खरूप है। आहाहा!

शास्त्रज्ञान... वह कहा न। बारह अंग का ज्ञान भी विकल्परूप है। उसमें राग की वृत्ति उत्पन्न होती है। भगवान आत्मा उससे रहित चैतन्य आनन्दस्वभाव में से एक अंश भी पवित्रता का निकालकर पीना, उससे तेरी तृष्णा, दाह और शोष नाश हो जायेगा। उसके सिवा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! यह ज्ञानक्रिया कहते हैं। ज्ञानस्वरूप में एकाग्रता होना, वह ज्ञानक्रिया है। व्यवहार की क्रिया जो दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि है, वह तो शुभराग है, वह तो विभाविक क्रिया बन्ध का कारण है। आहाहा!

अन्तर में निर्मल सम्यग्ज्ञानरूपी जल को पीकर... आहाहा! निर्विकल्प रस पीजिये, यह आता है आनन्दघनजी में। 'आशा औरनकी क्या कीजे।' यह तृषा है न आशा। 'आशा औरनकी क्या कीजे, ज्ञानसुधारस पीजे। आशा औरनकी क्या कीजे? निविकल्परस पीजे, आशा औरनकी क्या कीजे?' आहाहा! यह कहते हैं। ज्ञानसलिल—

चैतन्य पानी। सलिल है न? ज्ञानरूपी जल में एकाग्र होकर तृष्णा, दाह और शोष का सर्वथा प्रकार से निर्मथ्य—नि:विशेषरूप से मथ्य—मंथन कर, नाश कर। वह अशक्य है, वह तो एक जरा शब्द बताना। मथा न जाये। अनन्त काल से उसकी तृष्णा का राग मंथन न कर सका, उस अपेक्षा से मथा न जाये, ऐसा कहा है। बाकी स्वभाव की अन्तर दृष्टि में से ज्ञान का पीना हुआ (तो) निर्मथ्य—सर्वथा प्रकार से तृष्णा का नाश होता है। दाह, आताप शरीर का नाश (होता है)। शरीर ही मिले नहीं न! यहाँ तो सिद्ध की बात है न! शरीर का आताप नाश, शरीर का शोषण जो होता है, रस होता है उसमें। रोग ऐसा होता है कि नहीं बहुत ज्वर, कामज्वर बहुत होता है न, शरीर में शोष हो जाता है। शरीर सूखा हो जाता है। कामज्वर की पीड़ा बहुत होती है। अन्त में कामज्वर का मरण भी कहा है अर्थात् उसमें मरण हो जाता है। विषय की तृष्णा की इतनी उत्कटता (होती है कि) मरण हो जाये।

वह यहाँ कहते हैं कि मरण का नाश करने का भाव चैतन्य जल को पीकर। ओहोहो! निर्विकल्प ज्ञान प्राप्त कर, वह विकल्प की तृष्णा जो आदि है, (उसका) नाश कर। इस प्रकार सिद्ध होता है। ऐसा नाश कर परमात्मा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह क्रियाकाण्ड से कुछ होता नहीं, ऐसा कहते हैं। व्रत, तप, दया, दान, भक्ति, पूजा का भाव वह तो क्रिया, राग की क्रिया है, वह कोई धार्मिक क्रिया नहीं। आहाहा! धार्मिक क्रिया तो अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु, चैतन्य ज्ञान में एकाग्रता होना और शुद्धपर्याय प्रगट करना, शुद्ध उपयोग प्रगट करना... आहाहा! उससे तेरा दाह, तृषा और शोषण सबका नाश होगा और नाश होकर तू सिद्ध होगा। परमात्मा होने की यह कला और यह रीति है। समझ में आया? कठिन बात जगत को। समझ में आया?

पंचकल्याणक बाहर का करते हैं न? वह तो एक शुभभाव है। अन्तर में आत्मा में गर्भ पड़ा है आनन्दकन्द नाथ, उस गर्भ का कल्याण करना—अन्दर में से प्रगट करना, वह गर्भकल्याणक है। समझ में आया? और आनन्द को विशेष उत्पन्न करना, वह जन्मकल्याणक है। और उसमें विशेष उग्रता से लीन होना, वह दीक्षाकल्याणक है। आहाहा! यह पंचकल्याणक है। कहो, मूलचन्दभाई! यह तो बाहर की बात है, शुभभाव हो। और वह बनता हो तो बने, वह कोई बना सके, कोई कर सके यह बाहर की क्रिया,

परमागम मन्दिर बना सके, ऐसा कुछ है नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है, उस समय में बननी है तो बनती है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी कृपा से हुई महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब समझने की चीज़ है। आहाहा! कहो, पाटनीजी! हाँ, शुभभाव हो कि यह बने तो ठीक, इतना। परन्तु शुभभाव से वह बनता है, ऐसा नहीं। और वह शुभभाव वास्तव में तो बन्ध का कारण है। वह तो कल आया था न? कल आया था। '**चेइयपवयणगुरुणं**' ९१ गाथा। वह भाव होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान आत्मा की दशा प्रगट करके भी ऐसा चैत्य, प्रतिमा की भक्ति आती है शुभभाव। और प्रवचन। चैत्य, प्रवचन और गुरु तीन आये हैं। अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता प्रगट होने पर भी धर्मात्मा को ऐसा चैत्य के प्रति भक्ति—प्रतिमा के प्रति, प्रवचन के प्रति भक्ति, सन्त गुरु के प्रति भक्ति—ऐसा भाव आता है। परन्तु वह भाव है पुण्य। समझ में आया? धर्मी, जिसकी दृष्टि सम्यक् हुई, उसका वह व्यवहार सफल कहने में आता है। सफल अर्थात् उसको व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

परमागम का मन्दिर... वह भी आत्मा है। वही यहाँ चलता है। यह चलता है न! अन्तर आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप भगवान, सलिल—ज्ञानसलिल को अन्तर में भावश्रुत का पीना, उसका नाम परमागम मन्दिर का कल्याणक है। वह तो चलता है। बाबूभाई! मार्ग तो यह है, भगवान! वह बीच में होता है। वह तो बात ९१ में की। आता है, होता है, परन्तु उसकी मर्यादा पुण्य जितनी है। पवित्रता भगवान आत्मा चैतन्य जल से भरा, आहाहा! उसमें से परम आगम अर्थात् भावश्रुतज्ञान निकालना, मार्ग यह है। आचार्य भी यही कहते हैं न, देखो! ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की कथनी, पद्धति अलौकिक पद्धति है!

कहते हैं कि तेरा भावज्ञानरूपी जल। आहाहा! भावश्रुत। द्रव्यश्रुत का भाव नहीं, विकल्प भी नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्य भगवान ज्ञानबिम्ब, जिनबिम्ब चैतन्य प्रभु का भावश्रुत ज्ञान करना, वह परम आगम कहने में आता है। और वह चैत्य, चैत्य अर्थात् आत्मा ज्ञायकस्वरूप, उसकी ज्ञान की पर्याय प्रगट करना, उसे चैतन्यप्रतिमा कहने में

आता है। वह निश्चय चैत्य कहने में आता है, व्यवहार चैत्य होता है और प्रवचन की तो बात चलती है। और गुरु। गुरु निर्ग्रन्थ हैं, वह व्यवहार है। तेरा आत्मा ही रागरहित जो निर्ग्रन्थ—ग्रन्थ का नाश करके निर्ग्रन्थपना प्रगट करे, वह आत्मा ही गुरु है। समझ में आया? अपने तीनों की भक्ति हो, ज्ञान की, चैत्य की और गुरु की, तो उसको व्यवहार का भाव ऐसा होता है।

मुमुक्षु : शब्द, अर्थ और ज्ञान तीन आगम गाया....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके अर्थ का यहाँ काम नहीं। वह तो आगम शब्द को कहना द्रव्य आगम, अर्थ को कहना, भाव-भाव। शब्द, अर्थ और?

मुमुक्षु : ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान, वह यह। अर्थ अर्थात् पदार्थ परवस्तु। शब्द अर्थात् वाणी। वह तो तीन व्यवहार से दो कहा। निश्चय से तो अपना ज्ञानस्वरूप, यह ज्ञान है। आहाहा! बात तो ऐसी है। बात यह कि अपना ज्ञान से परिपूर्ण भरा है, उसका माहात्म्य नहीं आता। प्रगट पर्याय में अल्पज्ञता है। क्षयोपशम की अल्पज्ञता प्रगट है और अप्रगट पूरी चीज में तो परिपूर्ण केवलज्ञानघन पड़ा है। उसका जब तक माहात्म्य न आवे और उस ओर का झुकाव न हो, तब तक उसको ऐसा भावश्रुतज्ञान है ही नहीं। प्रवचन है नहीं, चैत्य है नहीं, गुरु भी अपना नहीं हुआ वह। आहाहा!

इष्टोपदेश में तो यह कहा है कि तेरा गुरु तू है। इष्टोपदेश। इष्ट-उपदेश। प्रिय उपदेश इसको कहते हैं। देखो! इष्टोपदेश है न, पूज्यपादस्वामी (रचित)। तो इष्टोपदेश क्यों कहा? कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने से होती है। निमित्त धर्मास्तिकायवत् निमित्त हो, उससे कुछ उसमें होता है, ऐसा नहीं है। इस उपदेश को इष्टोपदेश कहते हैं। जिसको निमित्त से अन्दर में होता है, वह इष्टोपदेश वीतरागता का नहीं है। कहो, धन्नालालजी! हुकमचन्दजी ने तो कहा था कि ऐसी-ऐसी गाथा लेना। ग्रन्थ बनाते हैं न वह। इष्ट-उपदेश। ओहोहो! उसमें भी यह कहा, तेरी समझण का देनेवाला तू है। राग से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसी अन्तर्दृष्टि करनेवाला तू है तो तू ही तेरा गुरु है। वह इष्टोपदेश है। समझ में आया? आहाहा! ओहोहो! दिगम्बर मुनियों ने तो गजब काम किया है! कोई भी हो। अन्तर तत्त्व मथकर बाहर लाये हैं।

भगवान पूर्णानन्द प्रभु का सम्यग्ज्ञान अन्तर्मुख होकर, ज्ञान त्रिकाली को स्पर्श करके त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को स्पर्श करके जो ज्ञान होता है, उसको भावश्रुतज्ञान कहते हैं। आहाहा! इस भावश्रुत से, यहाँ तो भावश्रुतज्ञान द्वारा ही तृषा, दाह और शोषण का नाश होता है और सिद्ध होते हैं। इस ज्ञान की अन्तर की क्रिया द्वारा ही सिद्ध होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बीच में व्यवहार हो, आता है। वह तो कह गये ९१ में। परन्तु सिद्ध होते हैं इससे। समझ में आया?

अरे! भाई! चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करते-करते दुःखी हो रहा है। एक-एक जन्म, जन्म दुःखं, जरा दुःखं, रोगाय मरणानीय, अहो दुःखो संसारो... जंतुणो' जन्म के दुःख, मरण के दुःख, रोग के दुःख, आकुलता का दुःख, कषाय के परिणाम शुभ-अशुभ दोनों भाव दुःख है। आहाहा! चाहे तो व्रत का भाव हो या अव्रत का, दोनों भाव दुःख है। आहाहा! अहो! दुःखो संसारो। यह १९वें अध्ययन में आता है। यह बात सम्प्रदाय में कहते थे। मृगापुत्र। उत्तराध्ययन है न! वैराग्य की बात तो उसमें कुछ होती है, परन्तु तत्त्व की बात नहीं है। अहो! दुःखो संसारो। आचार्य कहते हैं, अहो! दुःखो संसारो। ... वहाँ जीव कष्ट को भोगता है। चाहे तो स्वर्ग का भव हो, या सेठ का भव हो, वह राग के अंगारों में जलता है। उसको खबर नहीं कि राग से क्या होता है। राग की अग्नि से जलते हैं वे। ओहोहो! आचार्य महाराज ने तो वहाँ तक कहा पंचास्तिकाय में, कि शुभभाव से स्वर्ग में जाते हैं तो वहाँ भी अंगारों से, अग्नि से जलते हैं, वह सुखी नहीं है। आहाहा! सुख तो भगवान आत्मा में है। शुभभाव से सुख कहाँ से आया? शुभभाव ही दुःख है।

यहाँ कहते हैं कि **'सिद्ध होते हैं।' ज्ञानरूप जल पीने का यह फल है।** लो। ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान से पीना, ज्ञान की रमणता का फल सिद्ध है। कोई बीच में क्रिया आती है, उसका फल सिद्ध है, ऐसा है नहीं। **सिद्ध शिवालय अर्थात् मुक्तिरूप महल में रहनेवाले हैं,...** अब वह सिद्ध कैसे हुए? कहाँ रहते हैं? शिवालय। अपना निरुपद्रव स्थान—दशा, उसमें सिद्ध रहते हैं। कल्याणमय दशा जो उत्पन्न हुई, उसमें सिद्ध रहते हैं। आहाहा! **मुक्तिरूप महल में रहनेवाले हैं,...** मुक्ति ऊपर नहीं, हों! अन्तर में जो रागरहित पूर्ण मुक्तदशा प्रगट हुई, ऐसे मुक्तिरूपी महल में सिद्ध परमात्मा

विराजमान रहते हैं। आहाहा! यह धूल के महल में रहते हैं न, पाँच लाख, दस लाख का मकान। उनका चालीस लाख का मकान था गोवा में। अभी मर गया न शान्तिलाल खुशाल। चालीस लाख का एक मकान। दस-दस लाख के दो थे। मरे तब (कहा), मुझे दर्द होता है। दस मिनिट। बुलाओ डॉक्टर को। सेठ! डॉक्टर आने से पहले उड़ गया। उसके दो अरब चालीस करोड़ रुपये पड़े रहे। धूल में भी नहीं है।

मुमुक्षु : वह तो गिनती थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गिनती उसकी कहाँ थी? वह तो जगत की चीज़ जगत के कंकड़ थे। ओहोहो! तेरी चीज़ में ज्ञानजल पीने से तेरी सिद्धालय प्राप्ति तुझे होती है, कहते हैं। आहाहा! आनन्दरूपी महल में विराजमान आत्मा रहता है, उसे शिवालय कहने में आता है। ऐसा शिवालय नहीं कहते शिव के मन्दिर को? शिवालय कहते हैं न? वह नहीं। सिद्धशिवालय—अपनी पूर्ण आनन्ददशा की प्राप्ति, वह सिद्धरूप शिवालय है। आहाहा!

मुक्तिरूप महल में रहनेवाले हैं, लोक के शिखर पर जिनका वास है। वह व्यवहार। लोक के शिखर के ऊपर, यह व्यवहार। है तो अपनी पर्याय में वहाँ। **इसलिए कैसे हैं? तीन भुवन के चूड़ामणि हैं,...** आहाहा! तीन लोक के सिरधार। आहाहा! सिर-सिर। सिरताज नहीं कहते? सिरताज। सिर के ऊपर ताज, वह सारी दुनिया पर ताज। आहाहा! मुकुट। ताज अर्थात् मुकुट। सिरताज—सिर का मुकुट। आहाहा! देखो न! पाठ है न! पाठ है, देखो! '**तिहुवणचूडामणी सिद्धा**' आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। तीन भुवन के चूड़ामणि ऊपर सिरताज। आहाहा! यों भी नहीं कहते कि हमारे पिताजी हमारे सिरताज थे, वे चले गये। हमारे सिर पर सिरताज थे। यह सिरताज सिद्धालय है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

तीन भुवन में ऐसा सुख नहीं है,... कैसा मुकुटमणि कहा? कि तीन भुवन में जो सिद्ध को सुख है, ऐसा सुख (कहीं) है नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द से तृप्त-तृप्त, पूर्ण आनन्द से तृप्त भगवान परमात्मा, ज्ञानजल के साधन से वह प्राप्त होता है और वहाँ परमानन्द का अनुभव करते हैं। आहाहा! **ऐसे परमानन्द अविनाशी सुख को वे भोगते हैं।** ऐसे परमानन्द अविनाशी आनन्द को भोगते हैं। लो! एक बार कहा था न? एक बार

(संवत्) १९९२ के वर्ष में आया था, वह सी.जी.शाह है बढ़वाण के। महाराज! यह सिद्ध भगवान क्या करते हैं? सी.जी. शाह नहीं थे? ... क्या कहा?

मुमुक्षु : ....जाने न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने। वह आये ९२ में। फिर प्रश्न किया कि महाराज! सिद्ध भगवान का आप बहुत (कहते हो तो) सिद्ध भगवान करते क्या हैं? किसी का कुछ करे? नहीं। हम भी एक पाँच, दस, पच्चीस लोगों का करते हैं और वे किसी का न करे, वे सिद्ध हमारे किस काम के? आहाहा! यह सब जैन के सामने (रहनेवाले)। वहाँ है न एक उसे मकान, मकान है। देखा है न मकान, गाँव में निकले थे। तीन मंजिल का मकान। आहाहा! गुजर गये बेचारे। ऐसा था। भान न हो कुछ। सिद्ध भगवान क्या करे? सिद्ध भगवान अनन्त आनन्द का अनुभव करे। कोई दूसरे का करे या नहीं? हराम करे (तो)। हम एक कितने ही लोगों का करते हैं और वे करे नहीं? वे सिद्ध भगवान किस काम के? क्या है अब सुन न! आहाहा! किसी का कुछ करे तो वह बड़ा कहलाये। ऐसा। तो बड़ा कहने में आता है।

मुमुक्षु : खोटा कहलाये खोटा।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा है। पर का कौन करे? आहाहा!

वह **परमानन्द अविनाशी सुख को वे भोगते हैं। इस प्रकार वे तीन भुवन के मुकुटमणि हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- शुद्ध भाव करके ज्ञानरूप जल पीने पर... शुद्धभाव अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अपना पवित्र भगवान आत्मा का ज्ञान करके **जल पीने पर तृषादाह शोष मिट जाता है, इसलिए ऐसे कहा है कि परमानन्दरूप सिद्ध होते हैं।** लो! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९४

आगे भावशुद्धि के लिये फिर उपदेश करते हैं :—

दस दस दो सुपरीसह सहहि मुणी सयलकाल काएण।
सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमोत्तूण॥९४॥

मुनि की मुख्यत: लक्ष्यकर बात करते हैं न? उसको शुद्ध उपयोग रमणता है तो उसको—मुनि को लक्ष्य करके बात करते हैं। गर्भित में सब आ जाते हैं।

अर्थ :- हे मुने! तू दस दस दो अर्थात् बाईस जो सुपरीषह... है न। **'दस दस दो सुपरीसह' 'दो सुपरीसह'** ऐसा शब्द है। **'दस दस दो सुपरीसह' अतिशयकर सहने योग्य को सहन कर...** आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र में आया है न? मार्ग अचलं निर्जरार्थं परिषूढव्या परिषह। मार्ग अचलन-अचलन। अर्थ करके बोले। मार्ग से अचलन निर्जरार्थं परिषूढव्या परिषह। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ है, उससे च्युत न होना, उससे नाश न होना और निर्जरार्थं। अशुद्धता का नाश कारण से सहन करना, उसका नाम परीषह कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अपना आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न हुए हैं, उस मार्ग से च्युत न हुआ, नाश न होना, उससे हीनपना न लाना और निर्जरार्थं। और अशुद्धि का नाश कारण से परिषहो कायेण सहन करना, ऐसा शब्द लिया है। शब्द पाठ में लिया है न? कायेणं। आहाहा!

सहनेयोग्य को सूत्रेण अर्थात् जैसे जिनवचन में कहे हैं उसी रीति से... ऐसा वापस। वह जिनवचन में कहा। अन्तर में आनन्दस्वरूप की दृष्टि, आनन्दस्वरूप का ज्ञान और आनन्दस्वरूप की लीनता, उसमें रहने को परीषह सहन करना, ऐसी सूत्र की आज्ञा है। प्रतिकूल संयोग आये, उपसर्ग और परीषह दो प्रकार का होता है। उपसर्ग मनुष्यकृत, देवकृत, पशुकृत, अचेतनकृत। उपसर्ग चार प्रकार के हैं। और परीषह (अर्थात्) कर्म के उदय से प्रतिकूल संयोग आदि, अनुकूल आदि मिलना। अनुकूल मिले, वह भी एक परीषह है, स्त्री आदि का (संयोग)। अपने स्वभाव-सन्मुख रहकर जितनी प्राप्ति मार्ग की हुई, उससे न हटकर, अशुद्धि के नाश के लिए आनेवाले परीषह को सहन करना। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञाता-दृष्टा रहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहना, वही सहन करना है। दूसरा क्या? आहाहा! जानन-देखन में, आनन्द में रहना, वह परीषह सहन किया—ऐसा कहने में आता है। यह बात है। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म। दुनिया से निराला मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... महावीर भगवान ने बहुत घोर परीषह सहन किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनन्द में रहना, वह सहन किया। परीषह कहा नहीं? आत्मा आनन्द में रहा, ज्ञान और आनन्द में रहा, वह घोर परीषह सहन किया। कोई कष्ट हुआ ऐसा नहीं। कष्ट हो, तब तो दुःख हुआ, वह तो आर्तध्यान हुआ। आहाहा!

जिनवचन में कहे हैं... ऐसा पाठ है न। **'सुत्तेण अप्पमत्तो'** सूत्र में कहे हुए। भगवान की वाणी में कहा कि तेरे स्वभाव में रहो, आनन्द में रहो और परीषह आवे, उसको जानने-देखने में रहो। आहाहा! समझ में आया? कुछ तो परीषह की ऐसी व्याख्या करते हैं, कि पहले प्रतिकूलता आयी, अनुकूलता, उसका राग तो हुआ, पीछे उसको नाश करना। ऐसी परीषह की व्याख्या है ही नहीं। यहाँ तो वह प्रतिकूल या अनुकूल संयोग आये, उस ओर दृष्टि या विकल्प न करके स्वभाव में लीन रहना, वह परीषहजय कहने में आता है। समझ में आया? यह चर्चा हुई थी एक पण्डित के साथ। परीषह किसे कहना? कि पहले विकल्प उठे, फिर उसका नाश करे, वह नहीं। फिर दूसरे समय में विकल्प अज्ञानी को भी रहता नहीं। समझ में आया? अनुकूल और प्रतिकूलता का राग तो उत्पन्न हुआ, वह परीषह। उसको जीतना-नाश करना। ऐसा है ही नहीं। वह उत्पन्न ही नहीं होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! एक-एक बात समझने की चीज़ ऐसी है।

भगवान आत्मा अपने ज्ञानानन्दस्वभाव में रमण करके, प्रतिकूल या अनुकूल, स्त्री आदि अनुकूल और दुश्मन आदि का प्रतिकूल या उपसर्ग कोई मनुष्य, तिर्यंच आदि का उसमें, आत्मा के आनन्द में रहना, झूलना, आनन्द के झूले में झूलना, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में जिसको झूलना, रमना, वह परीषह को सहन किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जो मान्यता मानी है, उसको बदलनी पड़ेगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बदलनी पड़ेगी। भगवान! बात तो ऐसी है। आहाहा! आचार्य तो भगवान कहकर सम्बोधते हैं (समयसार) ७२ गाथा में। ७२ गाथा है न समयसार की? भगवान आत्मा। आहाहा! पुण्य और पाप का भाव, भगवान! अशुचि है न। तुम तो प्रभु शुचि पवित्रता के पिण्ड हो न! दोनों का भेदज्ञान करके अशुचि का नाश करना और अन्तर पवित्रता को प्रगट करना, उसका नाम धर्म और उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! बाहर का लोगों को इतना कठिन पड़ गया। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना केवल व्रत और तप लेकर बैठे, वह अज्ञानपने में अज्ञान है। अज्ञानतप और अज्ञानव्रत। बालव्रत, बालतप, ऐसा कहा न? समयसार में कहा है। जिसको आत्मदर्शन नहीं है, मैं चिदानन्द आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु, आनन्द का स्वाद जिसको आया नहीं। वह व्रत और तप करते हैं तो कहते हैं कि यह तो बालतप और बालव्रत है। आहाहा! जगत को कठिन लगे। मार्ग तो ऐसा है प्रभु का। तेरा मार्ग ऐसा है। तेरापंथ कहते हैं न? तेरापंथ अर्थात् तेरा पंथ।

उसी रीति से निःप्रमादी होकर... सूत्र में जैसे कहा कि प्रतिकूल या अनुकूल संयोगों में भगवान! तुम आनन्द में रहो, शान्ति में रहो, विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प में रहो, ऐसी सूत्र की आज्ञा है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म पड़े सत्य। इसलिए कहते हैं न, यह तो निश्चय की बात है। परन्तु निश्चय अर्थात् सच्ची और व्यवहार की बातें सब उपचारिक बातें हैं। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! कठिन लगे। बहुत लोग में भाई कुछ आसान तो करो। ऐई! नारद! यह प्रश्न-नारद है।

मुमुक्षु : नारद कहकर आपने बुलाया तो हाँ तो कहा, ना नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जानकर ना कहा न। आहाहा! कोई सरल है? ऐसा कहते हैं। इसके अतिरिक्त सरल भी उल्टा, वह सरल कहलाये? उल्टे को सरल कहना? सुलटी दशा को ही सरल कहने में आता है। सहज स्वभाव भगवान आत्मा स्वाभाविक वस्तु, आहाहा! परमपारिणामिक प्रभु आत्मा की दृष्टि, ज्ञान कर रहना, वही वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : वोट लेने में आवे तो हम हार जायेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी का मत वह कोई मत है ? उसका वोट लिया जाता है ? आहाहा! ओहोहो! उसने नरक में, निगोद में दु:ख सहन किये। भगवान! वह भूल गया। उस दु:ख के नाश का उपाय तो यह एक है। भगवान ने कहा सिद्धान्त, उसमें से कहा भावश्रुत, ऐसा प्रगट करके आनन्द में रहना, वही दु:ख का नाश करने का उपाय है। आहाहा! बाकी सब बात कुछ भी करे। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' आता नहीं छहढाला में ? 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' आहाहा! आत्मा की क्या कहें ? वह तो आनन्द और ज्ञान का स्वरूप ही आत्मा है। सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् आनन्द का धाम आत्मा। आहाहा! उसको ध्याओ, उसमें एकाग्र होओ। आहाहा! यह सारे उपदेश का 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' सत्य को हृदय में लो। समझ में आया ?

नि:प्रमादी होकर संयम का घात दूर करके और अपनी काय से सदाकाल निरन्तर सहन कर। भाषा जरा निमित्त से ली है। काया से सहन करना अर्थात् काया में अस्थिरता होना नहीं। आहाहा! '**काएण**' है न शब्द ? मूल में है। '**काएण**' है न! '**सयलकाल काएण**' अपनी आनन्दरूपी काया से क्षमा करना और बाह्य काया से निमित्त से सहन करना, ऐसा कहने में आया है। निश्चय काया तो अपना आनन्द। आहाहा! यह काया तो जड़ है, मिट्टी है। समझ में आया ?

भावार्थ :- जैसे संयम न बिगड़े और प्रमाद का निवारण हो, वैसे निरन्तर मुनि क्षुधा, तृषा आदिक बाईस परीषह सहन करे। ओहोहो! सहन करने का अर्थ ज्ञाता-दृष्टारूप से जाने। आहाहा! भगवान ऋषभदेव को... छह महीने की तो प्रतिज्ञा थी और छह महीने बाद आहार लेने गये, तो नहीं मिला। शान्ति। भगवानरूप से ऋषभदेव भगवान। दीक्षा ली तो भरतकुमार नहीं खबर है ? भगवान हैं। दीक्षित में हैं। उनको आहार मिलता होगा या नहीं मिलता होगा ? सब भूल गये ? देवता भूल गये ? जिनकी दीक्षा महोत्सव में देवता आये थे न लाखों-करोड़ों। भगवान को छह महीने तक आहार नहीं मिला। किसी ने देखा नहीं ? वह तो नहीं मिलने की चीज़ थी, संयोग नहीं

आनेवाला था। आहाहा! स्वरूप की आनन्द की तृप्ति में तृप्त रहते थे। स्वरूप की प्रतीति में शान्ति की, आनन्द की तृप्ति में तृप्त रहते थे। और बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता थी तो वहाँ दुःख हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

इनको सहन करने का प्रयोजन सूत्र में ऐसा कहा है कि इनके सहन करने से कर्म की निर्जरा होती है... वह शब्द आया न! मार्ग अच्यवन निर्जरा **और संयम के मार्ग से छूटना नहीं होता है, परिणाम दृढ़ रहते हैं।** शुद्ध परिणाम आत्मा में दृढ़ रहते हैं। इस कारण से उसको....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण १४, बुधवार, २०-०२-१९७४
गाथा - ९५-९६, प्रवचन-११४

यह अष्टपाहुड़ है। अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ आता है। ९५ गाथा।

★ ★ ★

गाथा - ९५

आगे कहते हैं कि जो परीषह सहने में दृढ़ होता है तो उपसर्ग आने पर भी दृढ़ रहता है, च्युत नहीं होता, उसका दृष्टान्त कहते हैं –

जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदएण।
तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो।।९५।।

मुख्य मुनि की बात करते हैं न? मुनि किसको कहते हैं? प्रथम आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन जिसको हुआ हो। सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में आनन्द की लीनता प्रगट हो, उसे साधु कहते हैं। गृहस्थाश्रम में समकिती को स्वरूप में शुद्धउपयोग की लीनता विशेष नहीं होती। परन्तु सम्यग्दर्शन, आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, उसका प्रथम सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। समझ में आया? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। समझ में आया? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद की दृष्टि से समकिती को पर पदार्थ में से और पुण्य-पापभाव में से सुखबुद्धि उड़ जाती है। जब तक सम्यग्दर्शन हो तो पर में सुखबुद्धि उसको होती है। शरीर में, वाणी में, पुण्य में, पापभाव में ठीक है, ऐसा भाव जो है, वह मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्वभाव का नाश कर चैतन्य शुद्ध आनन्द का नाथ उसका अवलम्बन लेकर मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यग्दर्शन शुद्धउपयोग की दशा में सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। चतुर्थ गुणस्थान। आहाहा!

उसके बाद उसकी आनन्द में लीनता रहती है, अतीन्द्रिय आनन्द में जिसको प्रचुर स्वसंवेदन (प्रगट हुआ है), चौथे गुणस्थान में आनन्द का वेदन अल्प है। सम्यग्दृष्टि को

अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन अल्प है। पंचम गुणस्थान में जब यथार्थ सम्यग्दर्शनसहित श्रावक होता है तो उसको आनन्द विशेष होता है। जो सर्वार्थसिद्धि का देव है, उसको आनन्द नहीं, ऐसा पंचम गुणस्थान में आनन्द की झलक विशेष होती है। उसको पंचम गुणस्थानवन्त श्रावक कहने में आता है। आहाहा! बाकी इसके अतिरिक्त व्रत और नियम हो, वह सब थोथा है।

यहाँ तो मुनि की बात करते हैं। मुनि को भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, उसकी अन्तर में जमावट मुनि को तो बहुत हो गयी है। समयसार में पाँचवीं गाथा में कहते हैं, प्रचुर स्वसंवेदन। आहाहा! मार्ग तो देखो, भाई! मुनि को तो प्रचुर, स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे मुनि को कहते हैं, **जैसे पाषाण जल में बहुत काल तक रहने पर भी...** पत्थर पानी में बहुत काल रहने पर भी **भेद को प्राप्त नहीं होता है,... 'ण भिज्जइ'** है न? वास्तव में तो वह पत्थर पानी में रहने पर भी भीगता नहीं और भेद को भी प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

वैसे ही साधु... अहो! जिसने स्वरूप आनन्द का साधन बहुत किया है... आहाहा! ऐसा साधु **उपसर्ग परीषहों से नहीं भिदता है।** मनुष्यकृत प्रतिकूलता का उपसर्ग, देवकृत प्रतिकूला का उपसर्ग, तिर्यंचकृत और अचेतनकृत। कोई दीवार गिर जाए, पेड़ गिर जाए, उसमें वह आनन्द में रहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह परीषह से यह उपसर्ग कहा। परीषह अर्थात् कर्म के उदय से क्षुधा बहुत लगी हो, तृषा बहुत लगी हो, उसमें भी, और रोग की तीव्र वेदना शरीर में असाता के कारण हो तो भी मुनि तो आनन्द में रहते हैं। उसमें आनन्द का भंग होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **'ण भिज्जइ'** अपने अतीन्द्रिय आनन्द की लीनता में उसको भेद नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! सम्यग्दर्शन ही पहले तो अलौकिक है, चारित्र की तो बात ही क्या कहना! ओहोहो! धन्य अवतार! जिसने स्वरूप में अन्तर चरना, आनन्द में रमना और जिसने दुःख का नाश किया है और अतीन्द्रिय आनन्द की लहर में रमते हैं, उसको उपसर्ग परीषह से आनन्द में भेद, छेद नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ – पाषाण ऐसा कठोर होता है कि यदि वह जल में बहुत समय तक रहे तो भी उसमें जल प्रवेश नहीं करता है,... आहाहा! **वैसे ही साधु के परिणाम...** ओहो! वीतरागी परिणाम जहाँ प्रगट हुआ है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी वीतरागी परिणाम है। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में (हुआ है), वह भी वीतरागी परिणाम है। समझ में आया? तो यहाँ छठवें गुणस्थान में तो वीतरागी परिणाम बहुत प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी दशा में **साधु के परिणाम भी ऐसे दृढ़ होते हैं...** आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से उग्रपने का परिणाम जिसको वीतरागभाव हुआ... आहाहा! चैतन्यद्रव्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसका आश्रय लेकर तो सम्यग्दर्शन हुआ है और उसका विशेष उग्र आश्रय लेकर चारित्र हुआ है। आहाहा! चारित्र कोई पंच महाव्रत का परिणाम या देह (से) नग्नपना वह चारित्र नहीं है। समझ में आया?

भावपाहुड़ है न! सम्यग्दर्शनरूपी जिनभावना और वीतरागपरिणामरूपी चारित्र की भावना, उसको यहाँ भावपाहुड़ कहते हैं। आहाहा! **उपसर्ग परीषह आने पर भी संयम के परिणाम से च्युत नहीं होता है...** ओहोहो! **और पहिले कहा जो संयम का घात जैसे न हो, वैसे परीषह सहे।** ९४ में आया था न? **'सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमोत्तूण।'** वह बात है। भगवान ने जैसी अन्तर में रहने की आज्ञा की है, ऐसे अप्रमत्त होकर। आहाहा! मुनि अन्तर में आनन्द में अप्रमत्त होकर **'संजमघादं पमोत्तूण।'** संयम का घात छोड़ देते हैं। आहाहा! स्वरूप भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु, उसका अनुभव होकर जिसको वीतरागी परिणाम प्रगट हुआ, वह संयम का घात होने नहीं देता। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म बहुत।

यदि कदाचित् संयम का घात होता जाने तो जैसे घात न हो वैसे करे। ऐसी प्रतिकूलता में सहनशक्ति की अल्पता देखे तो अन्तर आत्मा का उग्र आश्रय ले। आहाहा! समझ में आया? अन्तर भगवान आनन्द का अवलम्बन लेकर (संयम का) घात होने न दे। आहाहा! देखो! मुनिपना! ये साधुपद। जिसको गणधर भी नमस्कार करे। चौदह पूर्व की रचना करते हैं, तब साधु सन्त आनन्द की लहर में अनुभव करनेवाला, उसको भी गणधर 'णमो लोए सव्व साहूणं...' ओहो! सर्व लोक में जिस आनन्द की लहर में मुनिराज विराजते हैं, कहते हैं मेरा नमस्कार, गणधर कहते हैं।

आहाहा! चौदह पूर्व और चार ज्ञान जिसको अन्तर्मुहूर्त में प्रगट होता है, ऐसे गणधर भी साधु को नमस्कार करते हैं। वह साधुपद कैसा होगा! समझ में आया? अकेला नग्नपना और पंच महाव्रत का परिणाम,... वह पंच महाव्रत का परिणाम भी उग्र है। समझ में आया? उसका भी जिसे ठिकाना नहीं, उसको चारित्र और सम्यग्दर्शन तो होता नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९६

आगे परीषह आने पर भाव शुद्ध रहे ऐसा उपाय कहते हैं – आहाहा!

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि।
भावरहिएण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं।।९६।।

अर्थ – हे मुने! मुनि को उदेशकर बात है, सम्यग्दर्शन सहित आनन्द की लहर में विराजमान सन्त हैं। आहाहा! **हे मुने! तू अनुप्रेक्षा अर्थात् अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा हैं,...** आहाहा! तू विचार की अनुप्रेक्षा की भावना में रहे। **अर्थात् अन्य पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावना...** है तो वह विकल्प। महाव्रत स्वयं विकल्प और राग है। और उसमें भी उसकी भावना करना, वह भी विकल्प है। परन्तु उस विचार में रुकने से, तेरी स्वरूप ओर की दृष्टि में से नहीं खिसकने से तुझे परीषह और उपसर्ग से दुःख नहीं होगा। समझ में आया? आहाहा! **उनकी भावना कर, भावरहित जो बाह्यलिंग...** जिसको सम्यग्दर्शन की भावना और अनुभव की भावना नहीं है, उसके **बाह्यलिंग है, उससे क्या कर्त्तव्य है?** बाह्य वेश पंच महाव्रत, नग्नपना या बारह व्रत का या क्षुल्लकपना के वेश धारण करने से क्या है? अन्तर में भगवान आत्मा आनन्दस्वरूपी भावना और अनुप्रेक्षा आदि की भावना नहीं है, वहाँ बाह्य वेश से क्या कर्तव्य है? यह कहा न? **'बाहिरलिंगेण कायव्वं।'** आहाहा! **अर्थात् कुछ भी कर्त्तव्य नहीं।** बाह्य लिंग अकेला धारण करे, नग्नपना, बारह व्रतादि का या पंच महाव्रत परन्तु अन्तर्दृष्टि आनन्दस्वरूप ज्योति सुखधाम, स्वयं ज्योति सुखधाम, आनन्द का धाम प्रभु चैतन्यज्योति के अनुभव में आया नहीं, सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, उसे बाह्य वेश का कर्तव्य क्या करे? समझ में

आया? कुन्दकुन्दाचार्य भावपाहुड़ में ऐसे प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभराग...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शुभराग अन्तर्दृष्टि सहित है। अशुभ नहीं आने देने की अपेक्षा से बात है। है तो शुभभाव, कहा न, पंच महाव्रत का भाव ही शुभ है; धर्म नहीं। परन्तु उसमें रहने से अशुभभाव नहीं होता। इतना बचने के कारण यहाँ बात कही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय, व्यवहार दोनों का उपदेश है। पहले कहा न? सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव हुआ, वह भी चैत्यप्रतिमा की भक्ति करते हैं, भगवान की प्रतिमा की भक्ति करते हैं। भगवान की भक्ति तो शुभराग है।

मुमुक्षु : बहुत से सम्यग्दृष्टि भगवान की भक्ति नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे, ऐसा होता है क्या? आये बिना रहे नहीं। भले थोड़े काल में (आये) परन्तु आये भक्ति।

मुमुक्षु : पूरी जिन्दगी में न आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी जिन्दगी में न आये, ऐसा बने नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ अन्दर आती है। भावभक्ति अन्दर करते हैं। प्रतिमा भले बाहर नहीं हो। अन्तर भगवान की भक्ति है। भगवान की प्रतिमा जैसी मछली होती है। स्वयंभूरमण समुद्र में। उसको देखकर... उसके ख्याल में रहता है। मछली का आकार प्रतिमा जैसा होता है। शास्त्र में ऐसा पाठ है। शास्त्र में तो बहुत भरा है न। वह प्रतिमा देखकर अन्दर में जातिस्मरण हो जाता है। समझे? ऐसे देखने से... ओहो! मैं चैतन्यप्रतिमा हूँ। मेरी चीज़ आनन्दकन्द ध्रुव आनन्द मैं हूँ, ऐसी दृष्टि तिर्यंच को भी स्वयंभूरमण समुद्र में हो जाती है। और वह प्रतिमा भले साक्षात् न हो, परन्तु अन्तर में भगवान की प्रतिमा पर भक्ति का भाव आता है। बारहव्रत में साधु का संयोग कहाँ है वहाँ? है? तो उसको

बारह व्रत नहीं है ? पंचम गुणस्थानवाला श्रावक तिर्यंच असंख्य है। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य पंचम गुणस्थानवाले सच्चे श्रावक हैं। आत्म-अनुभवसहित, बारह व्रतवाला। बाहर में संविभाग तो है नहीं। भाव में है। समझ में आया ? ओहो! धन्य मुनिराज सन्त! आनन्द में झूलनेवाला, उसे आहार देने का विकल्प (आता है)। वस्तु नहीं हो, भाव आता है। समझ में आया ? धन्नालालजी!

मुमुक्षु : आप अकेले कुन्दकुन्दाचार्य को मानते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको मानते हैं। आचार्य दिगम्बर सब है। जो सन्त है, पूज्यपादस्वामी, अमृतचन्द्राचार्य सब दिगम्बर भावलिंगी सन्त हैं, सबको हम मानते हैं। जितने दिगम्बर भावलिंगी सन्त हैं, (उन) सबको हम तो मानते हैं। ऐसा कि पंचम गुणस्थान और बारह व्रत है न ? शास्त्र में कहा है, उसे मानते हो न, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अरे! भाई! स्वयंभूरमण समुद्र में हजार योजन का मगरमच्छ, हजार योजन (अर्थात्) चार हजार कोस लम्बा और अन्दर पंचम गुणस्थान, आत्मा का अनुभव (सहित)। पूर्व संस्कार, कोई जातिस्मरण, कोई नये संस्कार से भी प्राप्त करते हैं। आत्मा है न! जहाँ-तहाँ प्रभु विराजता है अन्दर। पूर्णानन्द का नाथ आत्मदल, शान्तदल, वीतरागदल... आहाहा! उसमें अन्तर्दृष्टि लगाकर, निर्विकल्प अनुभव आनन्द का स्वाद तिर्यंच को भी स्वयंभूरमण समुद्र में आता है! आहाहा! भाई! मार्ग यह है। और बारह व्रत का विकल्प है तो मुनि की उपस्थिति न हो, परन्तु उसको भावना है न! वैसे प्रतिमा की उपस्थिति न हो, भावना में है। समझ में आया ? अवधिज्ञान हो। कितने ही तिर्यंच समकिती को तो अवधिज्ञान भी होता है। पंचम गुणस्थान। अवधिज्ञान से जहाँ-तहाँ प्रतिमा देखने में आये, वहाँ वन्दन कर लेते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों की... परन्तु यहाँ तो चैत्य की बात चलती है न। पहले तीन बोल आये न ? चैत्यभक्ति। ९१ में आया। सम्यग्दृष्टि आत्मा का अनुभवी, आनन्द का वेदन करनेवाला ऐसा समकिती चौथे, पाँचवें में हो, अरे! छठवें मुनि हों, उसे

चैत्य—प्रतिमा की भक्ति का विकल्प आता है। समझते हैं कि यह शुभ है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आये ही। नहीं आये, ऐसा नहीं हो सकता। अन्तर्मुहूर्त में कोई केवल (ज्ञान) प्राप्त कर ले और नहीं आये, वह दूसरी बात है। लम्बा काल रहे, उसे भाव आये बिना रहे नहीं। अन्तर्मुहूर्त में एकदम सम्यग्दर्शन, एकदम चारित्र और एकदम केवलज्ञान हो जाए। समाप्त हो जाए। आहाहा! अन्तर की दृष्टि, अन्तर आनन्द में आकर... अरे! बाह्य लिंग द्रव्यलिंग हो, ऐसा भी शास्त्र में चला है। नग्न लिंग हो, हो मिथ्यादृष्टि, परन्तु अन्तर की दृष्टि (हुई), जहाँ गुरु मिला और वाणी सुनी और उसके अन्तर स्मरण में चलता है तो बाह्यलिंग हो और अन्तर में सम्यग्दर्शन होकर मुनिपना हो जाता है, भावलिंग हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : द्रव्यलिंग तो होता ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग होता है। द्रव्यलिंग हो तो उसको सच्चा भावलिंग होता है। द्रव्यलिंग नग्न न हो और भावलिंग-सप्तम आ जाए, ऐसा नहीं है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में यह आया है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यलिंग में है, बाह्य नग्नपना आदि में है, अन्तर्दृष्टि में जहाँ गया तो सम्यग्दर्शनसहित साधुपद प्रगट हो जाता है। समझ में आया? वस्त्रसहित हो, उसको मुनिपना नहीं आता। परन्तु वस्त्ररहित हो तो उससे मुनिपना आता है, ऐसा भी नहीं। परन्तु वस्त्ररहित हो उसको आत्मदर्शन में आकर मुनिपना प्राप्त हो जाता है। स्व का आश्रय उग्रपने ले तो। ऐसी बात है, भैया! समझ में आया?

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी में नहीं आते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु पंच परमेष्ठी में नहीं आये तो किसमें आये?

मुमुक्षु : आपने भाव का कहा न...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव आया तो वह पंच परमेष्ठी में नहीं आ गया? श्रावक पंच परमेष्ठी में नहीं आता। क्षुल्लक हो तो पंच परमेष्ठी में नहीं आता। भावलिंग जहाँ अन्दर में प्रगट हुआ, द्रव्यलिंग नग्न तो है ही, अन्तर भगवान का अवलम्बन लेकर प्रचुर

स्वसंवेदन हुआ (तो) गणधर भी नमस्कार करे। बापू! यह तो अन्तर का मार्ग है। बाह्य वेश से, बाह्य क्रिया से कोई मार्ग प्राप्त होता है, ऐसा नहीं।

कहते हैं, आया न? चैत्य, प्रवचन की भक्ति। सर्वज्ञ की वाणी, उसकी भक्ति समकिती को आती है। है शुभभाव, है, है आस्रव परन्तु वीतराग भूमिका जब (तब) प्रगट न हो, तब ऐसा भाव आये बिना रहे नहीं। अन्तर दृष्टि में निषेध है, दृष्टि उसका आदर नहीं करती। आहाहा! परन्तु पर्याय में ऐसा व्यवहारभाव आये बिना रहे नहीं। वह जान कि उसका आधार मेरा आत्मा है। मेरे आत्मा के आधार से शुभभाव उत्पन्न हुआ। वह शुभभाव कोई कर्म से उत्पन्न हुआ है, प्रतिमा को देखकर हुआ है, ऐसा नहीं। समझ में आया? भाई! यह तो प्रमाण ऐसा है, 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे, आत्मार्थीजन सही।'

प्रवचन और गुरु। गुरु सन्त की भक्ति। ओहो! सम्यग्दर्शन अनुभव होने पर भी, पंचम गुणस्थान में आनन्द का अनुभव होने पर भी, छठे गुणस्थान में मुनि को आनन्द का अनुभव होने पर भी, गुरु की भक्ति का भाव आये बिना रहे नहीं। समझ में आया? वह व्यवहार है। स्व के आश्रय से जितनी निर्मलता प्रगट हुई है, वह निश्चय है। व्यवहार व्यवहार के स्थान में होता है, परन्तु व्यवहार से निश्चय प्राप्त हो, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? न्याय में अन्तर है। कहा न? **'जइ जिणमयं पवज्जह'** गाथा आती है न? **'जइ जिणमयं पवज्जह'** बारहवीं गाथा के भावार्थ के बाद श्लोक। यदि जैनमत को अंगीकार करना चाहते हो तो व्यवहार-निश्चय **'मुयद्त'** व्यवहार या निश्चय किसी को छोड़ना नहीं। उसका अर्थ कि व्यवहार है, ऐसा मानना; निश्चय है और आदरणीय है, ऐसा मानना।

मुमुक्षु : व्यवहार को आदरणीय नहीं मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आदरणीय नहीं मानना, परन्तु है (ऐसा) मानना। है, ऐसा मानना। उसके अर्थ में अन्तर करते हैं न। देखो, उसमें आया। **'जइ जिणमयं पवज्जह'** बारहवीं गाथा। दो नय है। दो नय का विषय है। ऐसे मत छोड़ो। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि व्यवहार है तो व्यवहार धर्म है। आदरणीय है, ऐसा नहीं। दो नय की कथनी

जैनशासन में अनादि से चली आती है। परन्तु उसका अर्थ व्यवहारनय का विषय मुनि को होता है। है, ऐसा मानना। आदरणीय है और उसका आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया? बहुत गड़बड़ है, भाई! तत्त्व की वस्तु की खबर बिना कुछ न कुछ खींचे, कुछ न कुछ खींचने की दृष्टि उल्टी पड़े। आहाहा! कहा न? वहाँ तो यहां तक आया ... देखो! वहाँ तो ऐसा आया। **'चेइयपवयणगुरुणं करेहिं भत्तिं जिणाणाए',** देखो! वहाँ तो ऐसा आया। ९१ (गाथा)। **'जिणाणाए'** भक्ति करनी। वीतराग कहते हैं ऐसे साधु हैं, ऐसा प्रवचन है, ऐसी प्रतिमा है। समझ में आया? आहाहा!

जिनप्रतिमा जिनसारखी, आता है या नहीं? बनारसीदास। है, भगवान की भक्ति आती है न। एकावतारी इन्द्र, शकेन्द्र है और उसकी रानी है, वह एक भवतारी है। एक भव करके मोक्ष जानेवाला है। तो भी अष्टाह्निका में नन्दीश्वरद्वीप में घुँघरुं बाँधकर भक्ति करते हैं। वह क्रिया तो क्रिया से होती है, परन्तु अन्दर भाव शुभ होता है, इतनी बात है। समझ में आया? जिसको, पति-पत्नी को एक भव में मुक्ति है। इन्द्र और इन्द्राणी पहले स्वर्ग में दोनों एकावतारी है। दोनों मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाले हैं। दोनों... जब अष्टाह्निका आती है न? कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ में आती है। आठ-आठ दिन नन्दीश्वरद्वीप में भगवान की रत्नमय प्रतिमा बावन जिनालय (हैं)। भाव शुभ होता है। समझ में आया? और जब भगवान का जन्म होता है और राजा होता है न? पिताजी के घर इन्द्र आते हैं न? है न? जन्म हुआ तब तो अभी चौथे गुणस्थान में हैं। तीर्थंकर जन्में, तब तो चौथे गुणस्थान में हैं। तो भी इन्द्र आकर भक्ति करते हैं। भाव ऐसा आता है, परन्तु है बन्ध का कारण, ऐसा ज्ञानी जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान का जन्म हुआ, वे तो तीन ज्ञानवाले हैं, समकिती हैं, पंचम गुणस्थान नहीं है। शकेन्द्र समकिती-क्षायिक समकिती है। जब माता जन्म देती है (तब कहते हैं), माता! रत्नकूखधारिणी! ऐसे तीर्थंकर जैसे रत्न को कूख में धारनेवाली माता! पहला नमस्कार तुम्हें करते हैं। माता भी समकिती है न! नमो रत्नकूखधारिणी। अहो! चैतन्य तीर्थंकर जैसे रत्न को माता! सवा नौ महीने रखकर जन्म दिया, जनेता! तुम उसकी माता नहीं हो, तुम हमारी माता, जगत की माता हो। नमस्कार करते हैं। देखो! चौथे

गुणस्थान में है। भगवान भी चौथे गुणस्थान में है। चौथा गुणस्थानवाला चौथे गुणस्थानवाले को नमस्कार करते हैं। नेमचन्दभाई! भाई! जहाँ-जहाँ जितना है, उतना समझना चाहिए। खींचातानी करे वह मार्ग नहीं चलता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, ओहो! अकेले बाह्यलिंग से तुझे क्या लाभ है? भगवान आत्मा का आनन्द का आश्रय नहीं और उसका अनुभव नहीं और उसकी शान्ति का वेदन नहीं तो अकेला बाह्यलिंग तुझे क्या लाभ करेगा? उससे क्या कर्तव्य है? ओहोहो!

भावार्थ – कष्ट आने पर बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करना योग्य है। इनके नाम ये हैं – अनित्य,... मुनि अनित्य भावना भावे। ओहो! शरीर को माता जन्म देती है तो माता को अभी ख्याल नहीं आये कि ये कौन है, पुत्र है या कन्या? उसके पहले तो अनित्यता ने उसे गोद में ले लिया है। माता गोद में ले, इससे पहले शरीर को अनित्य भावना आ गयी—अनित्य ने गोद में ले लिया है। तत्त्वार्थसार में है। ऐसी भावना मुनि भावे। समझ में आया? ओहो!

अनित्य... अनित्य... अनित्य। किस क्षण में शरीर का नाश न हो? सुन्दर शरीर दिखे, क्षण में भाण्ड... भाण्ड... भाण्ड समझे? बरतन। जैसा मिट्टी का भाण्ड रे, क्षण में लागे यह खोखरु। ऐसी स्वाध्याय आती है। चार स्वाध्याय है। स्वाध्याय। समझे? सज्झायमाला चार आती है। एक-एक में २००-३००-४०० सज्झाय आती है। ऐसी चार आती है। यहाँ है। हमने तो दुकान पर मँगवायी थी। चारों सज्झायमाला हमने बहुत देखी है। दुकान पर, हों! (संवत) १९७० में दीक्षा ली उससे पहले। १९७० में दीक्षा ली। स्थानकवासी की ली न। उस चार सज्झायमाला में यह आया था। क्षण में लागे रे खोखरुं। यह शरीर। जैसा मिट्टी का भण्ड रे। मिट्टी का भण्ड समझे? बरतन। मिट्टी का बरतन। क्षण में लागे रे खोखरुं। बरतन को पत्थर से मारे तो दरार पड़ जाती है, फट। तड़ कहते हैं? दरार पड़ जाए। ऐसा शरीर क्षण में खोखला हो जाए। आहाहा! ऐसी अनित्य भावना भाते हैं। है विकल्प, परन्तु अन्दर अशुभ से बचने को है न। प्रतिकूलता के परीषह में दुःख न हो, इसलिए भाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बात आयेगी। सभी बोल वही आयेंगे। ख्याल है।

अन्तर्दृष्टि स्वभाव-सन्मुख होकर भी ऐसा उसका विकल्प आता है, वह भाव यहाँ प्रधान चलता है। पाटनीजी! ओहोहो!

अनित्य। **अशरण**। अशरण भावना भावे। ओहो! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के शरण के अतिरिक्त कोई शरण नहीं है। शरीर में रोग हो, पीड़ा हो, उस समय शरण कौन है? शरण चैतन्यप्रभु शरण है। जहाँ नजर करने से आनन्द आये, वह शरण है। बाकी सब अशरण है। माता, पिता, इन्द्र, देव कोई शरण नहीं है। आहाहा! शरीर में रोग आये। आहाहा! वह आयेगा।

संसार भावना। उदयभाव जितना संसार। चार गति दु:खरूप है। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि के देव का भव करना, वह भी दु:खरूप है। समझ में आया? ऐसी भावना करना। आहाहा! पाण्डव, पाँच पाण्डव, शत्रुंजय यहाँ है न? ऊपर है। ध्यान में थे, मस्त थे। लोहे को अग्निमय करके आभूषण पहनाये। पाँचों मुनि हैं, सन्त हैं, भावलिंगी हैं। तीन तो आत्मा की भावना में लीन होकर केवल (ज्ञान) प्राप्तकर शत्रुंजय (से) मोक्ष चले गये। भगवान ऊपर विराजते हैं। जिस क्षेत्र से मुक्ति हुई, उस क्षेत्र में ऊपर विराजते हैं। आहा! यात्रा का कारण वह है, दूसरा कुछ नहीं। जहाँ-जहाँ से मुक्ति में पधारे, उस-उस स्थान पर जाकर (उनका स्मरण करते हैं कि) भगवान ऊपर विराजते हैं। उनका स्मरण करने की बात है। समझ में आया? आहाहा! शत्रुंजय से जहाँ-से मुक्ति पधारे उसी क्षेत्र में ऊपर विराजते हैं। सादि-अनन्त। उसमें दो मुनि को विकल्प आ गया। यह भावना कहते हैं ऐसा साधर्मी के प्रति विकल्प आया। बड़े मुनि धर्मराजा, भीम और अर्जुन। ओहो! बड़े भाई हैं, साधर्मी, हैं सहोदर। एक (पेट) से उत्पन्न हुए हम साधर्मी हैं। विकल्प आया कि कैसा होगा? सर्वार्थसिद्धि का बन्ध हो गया। केवलज्ञान दूर हो गया। विकल्प राग है न। ऐसी संसार भावना का विचार करे। ऐसे शुभभाव से भी जहाँ स्वर्ग मिले। तैतीस सागर तक केवलज्ञान नहीं होगा। वहाँ से मनुष्यभव पाकर कुछ काल तक केवलज्ञान नहीं होगा। अहो! ऐसा उदयभाव। उदयभाव ही संसार है। समझ में आया? और मूल तो मिथ्यात्व है, वह संसार है। समझ में

आया? पुण्य में धर्म मानना, पाप में मजा मानना... आहाहा! अपनी पूर्णता का अनादर करना, ऐसा मिथ्यात्व है, वह संसार है। ऐसी विचारणा करना। वह तो समकिती है, उसकी यहाँ बात नहीं है।

मुमुक्षु : तुष-माष भिन्न क्या होती है, बता दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुष-माष भिन्न से चलेगा नहीं, विपरीतता बहुत हो तो दूसरा बहुत (समझना होगा)। कितनी विपरीतता अन्दर घुस गयी है। साता आदि के। तुष-माष भिन्न में नहीं था, वह तो आनन्द में लीन थे, भावलिंगी सन्त थे। उनको विशेष ज्ञान नहीं था परन्तु आत्मा के आनन्द का अनुभव था। शब्द बहुत याद नहीं रहते थे। परन्तु भाव में तो भाव भावश्रुतज्ञान परिणमन हो गया है। आहाहा! शब्द उनको विशेष ख्याल नहीं था। तुष-माष ऐसा देखा। बहिन! क्या करती हो? एक स्त्री ने पूछा कि क्या करती हो? तुष-माष। छिलके को उड़द से भिन्न करती हूँ। छिलके को उड़द से भिन्न करती हूँ। ओहो! रागादि छिलका है, मेरी चीज़ आनन्दकुन्द अन्दर है। उसमें से केवल (ज्ञान) हो गया। समझ में आया? परन्तु जिसे बहुत विपरीतता घुस गयी हो, उसे इतने संक्षेप से नहीं चलता। समझ में आया?

वह बात हमारे (संवत्) १९८० के वर्ष में चली। १९८० के वर्ष। पचास वर्ष हुए। हम व्याख्यान करते थे। हजारों लोग आते थे। हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी। सम्प्रदाय में तो हमारा नाम बहुत था। हमको तो प्रभुरूप से मानते थे। १०००-१५०० लाग। पचास वर्ष पहले संक्षेप रुचि की व्याख्या चलती थी। दस रुचि है न? संक्षेप रुचि की व्याख्या चलती थी। श्वेताम्बर का उत्तराध्ययन का २८वाँ अध्ययन है। वह पूरा कण्ठस्थ था, वह तो पूरा कण्ठस्थ था, ६००० श्लोक कण्ठस्थ थे। वह चलता था। मैंने ऐसा कहा, संक्षेप रुचि का अर्थ ऐसा नहीं है कि विपरीत दृष्टि बहुत हो और थोड़ा ज्ञान हो और संक्षेप रुचि है, ऐसी यह बात नहीं है। ऐ... देवानुप्रिया! १९८० के वर्ष। और उत्तराध्ययन के उस श्लोक में ऐसा है। '**अणमिग्गहियकुदिट्ठी**' ऐसा पाठ है। '**अणमिग्गहियकुदिट्ठी**' और '**अणमिग्गहिओ य सेसेसु**' एक पद में ऐसे दो बोल हैं। हम तो प्रत्येक पद का अर्थ करते थे न। उस समय भी, पचास वर्ष पहले। तो हमारे जो गुरुभाई थे, उनका ऐसा आग्रह था कि हमारी सम्प्रदाय है, उसकी दृष्टि है, वह सत्य है,

बस! दूसरा विशेष भले न हो। उसका नाम संक्षेप रुचि। स्थानकवासी का धर्म है, उसको विशेष ज्ञान न हो परन्तु उस धर्मवाला है, वह संक्षेप रुचि समकिती है। ऐसी बात पचास वर्ष पहले चली। कहा, वह सब झूठ बात है। सम्प्रदाय की दृष्टि है, वह सच्ची दृष्टि है ही नहीं। **'अणमिग्गहिओ य सेसेसु'** शेष जो विपरीत मार्ग है, उसको ग्रहण किया न हो और ज्ञान अल्प हो तो सम्यग्दर्शन है, उसकी यहाँ बात है। ऐ.. देवानुप्रिया! आपके जैसा ही प्रश्न उस दिन था।

यह तो पचास वर्ष पहले की बात है। हमारे गुरुभाई थे, उनको यह बात रुचि नहीं, सुहाया नहीं। हम तो व्याख्यान करते थे, ऐसा ही करते थे। कोई सम्प्रदाय की विपरीत दृष्टि है और संक्षेप ज्ञान है और संक्षेप रुचि हो जाए, ऐसा है नहीं। हमारे गुरुभाई थे, उसे सहन नहीं हुआ, बाहर बैठे थे। भाग गये, बाहर जंगल में दिशा के लिये चले गये। दिशा समझे? दस्त। आकर बोले, तेरी बात सुनकर मुझे तो ऐसा लगा इसलिए मैं तो भाग गया। नहीं तो उस समय तकरार (हो जाती)। मैंने कहा, रहने दो, तकरार करके क्या काम है? मार्ग यह है। ...धन्नालालजी! ये नारद कहते हैं, उसके भाँति।

विशेष ज्ञान न हो, तुष-माष जितना हो, उसको हो जाता है। परन्तु विपरीत दृष्टि का एक अंश नहीं है, उसके पास। और जितने ३६३ पाखण्ड हैं, उसकी अंश भी रुचि नहीं, सब छूट गया है। उसको थोड़ा ज्ञान हो और आत्मा का अनुभव हो तो संक्षेप रुचि समकित कहने में आता है। धन्नालालजी! आहाहा! यह तो...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह शर्त पहली है। बहुत चर्चा हुई थी। ५० वर्ष पहले बहुत चर्चा (हुई थी)। बाद में एकान्त में बुलाया, एकान्त में चार-पाँच बैठे, १९८० के वर्ष। देखो! तब तक यह बात आप खुली नहीं करोगे तो हम तो आपकी दृष्टि मिथ्या मानते हैं। परन्तु यदि बाहर में खुल्ली करोगे (तो) हम सम्प्रदाय छोड़ देंगे। हम यहाँ नहीं रह सकेंगे। इसलिए गुप्त रखो। खुल्ली बात है, यहाँ गुप्त (रखने की) बात नहीं है। फिर दब गये। पश्चात् शान्ति, छह महीने। बाद में चैत्र शुक्ल-तेरस को तूफान खड़ा किया, मुँहपत्ती ले लो। ले लो। हमारी मुँहपत्ती है ही नहीं। १९८० चैत्र शुक्ल-तेरस। १९८० की चैत्र शुक्ल-तेरस की यह बात है। वह बात १९८० की कार्तिक शुक्ल-पूनम

की है। चैत्र शुक्ल-तेरस को मुँहपत्ती छोड़ दी। १९९१ में यहाँ। वह भी तेरस थी। मार्ग... बापू! अन्तर में बैठे, उसके सिवा किसी का बैठे नहीं। दुनिया की कोई असर हमें नहीं लगती कि सम्प्रदाय में हमें बड़ा माने, वह (बात) नहीं। मार्ग तो ऐसा है। पण्डितजी! पण्डितजी... नरम इन्सान है न। आहाहा!

भगवान आत्मा... संक्षेप रुचि। थोड़ा ज्ञान हो, परन्तु विपरीत ज्ञान का अंश नहीं हो। विपरीत मार्ग जितने पाखण्ड जगत में हैं, उस सम्प्रदाय की विपरीत दृष्टि आंशिक भी न हो। ऐसी दृष्टिरहित जिसको थोड़े ज्ञान में आत्मा का अनुभव हुआ हो तो संक्षेप रुचि समकित कहने में आता है। यह तो ५० साल पहले की बात है। यहाँ तो जो है, सो है। यहाँ तो सम्प्रदाय में हम हैं, इसलिए हम उससे बँध गये हैं, ऐसा है नहीं। हम तो जो सत्य है, वह स्वीकार करते हैं। पण्डितजी! ये कहते हैं, थोड़ा ज्ञान हो और ऐसा सब ज्ञान नहीं हो तो? ये ऐसा कहते हैं। दूसरी विपरीत मान्यता अन्दर बहुत घुस गयी हो उल्टी। ऐ... देवानुप्रिया! आहाहा! देवानुप्रिया समझते हो? मनुष्यभव देव को प्रिय है। ऐसा श्वेताम्बर में बहुत चलता है। देवानुप्रिया, ऐसा बोले। हे देवानुप्रिया! तुम्हारा मनुष्यभव तो देव को भी प्रिय है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, संसारभावना। उदयभाव मात्र दुःखरूप है, ऐसी संसार भावना ज्ञानी भाते हैं। स्वर्ग का भव मिले तो भगवान के पास जा सके, ऐसा है नहीं। भव ही संसार है। उदयभाव की विचारणा करते हैं, वह नहीं। ओहो! मैं तो परमपारिणामिक स्वभावमय चैतन्यबिम्ब हूँ। ऐसे उदयभाव का संसार का विचार करके स्वभाव सन्मुख हो जाए और विकार का त्याग कर दे। उसका नाम संसारभावना है।

एकत्वभावना। मैं अकेला हूँ। मेरे साथ किसी का सम्बन्ध है नहीं। मैं अकेला हूँ। **'एगो मे सासदो अप्पा'** नियमसार में (१०२ गाथा में) आता है। **'णाणदंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा'** नियमसार में आता है। **'एगो मे सासदो अप्पा'** मैं अकेला शाश्वत चिदानन्द ध्रुव आत्मा हूँ। **'एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो'** मेरा स्वरूप का लक्षण तो जानना-देखना, वह मेरा लक्षण है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग, वह कोई मेरा लक्षण और मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! **'णाणदंसणलक्खणो सेसा मे बाहिरा भावा'** शरीर, वाणी, कर्म,

देव, गुरु, शास्त्र और पुण्य-पाप भाव, सब बहिर भाव है, मेरे नहीं। आहाहा! धर्मात्मा परीषह और उपसर्ग के काल में ऐसी भावना का विचार करे। समझ में आया?

अन्यत्वभावना। रागादि सब मेरे से अन्य है। यह एकत्व है, यह अन्य है। राग अन्य है, शरीर अन्य है, स्त्री, कुटुम्ब, देव-गुरु-शास्त्र भी मेरे से तो अन्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है। आ गया न। इसमें आ गया। नियमसार में है और उसमें भी है। **'एगो मे सासदो अप्पा'** ५९ गाथा। **'णाणदंसणलक्खणो सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।'** यह गाथा नियमसार में भी है (१०२ गाथा) और यहाँ भी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की है। शाश्वत् रहनेवाली चीज़ तो मैं एक ही हूँ। अरे! केवलज्ञान आदि पर्याय भी नाशवान है। आहाहा! केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है, वह नाशवान है। दूसरे समय वह केवलज्ञान की पर्याय रहती नहीं। आहाहा! यह ३८ गाथा में आया है, नियमसार ३८ गाथा। केवलज्ञान आदि पर्याय सब नाशवान है। मैं अविनाशी त्रिकाली आनन्द हूँ। ओहो! ऐसी एकत्वभावना भावे।

अन्यत्व। मेरे से सब अन्य हैं। देव-गुरु और शास्त्र भी अन्य हैं और उनकी भक्ति उत्पन्न होती है, वह भाव भी मेरे से तो अन्य है। समझ में आया? अन्यत्व।

अशुचि। यह शरीर अशुचि है। माँस, हड्डी और चमड़ा है। अरे! वह तो अशुचि है, परन्तु पुण्य-पाप का भाव भी अशुचि है। ७२ गाथा, समयसार की ७२ गाथा। शुभभाव अशुचि है, मैल है। आहाहा! भगवान आत्मा शुचि है। वहाँ ऐसा लिया है। भगवान कहकर ही सम्बोधन किया है। भगवान! तेरा स्वरूप तो पवित्र है न, नाथ! शुभभाव तो अशुचि / मैल है। आहाहा! ऐसी भावना करने से उपसर्ग और परीषह का दुःख अथवा प्रतिकूलता का ख्याल छूट जाता है। समझ में आया? अशुचि।

आस्रव। पुण्य और पाप दोनों आस्रव हैं, वह अशुचि है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी अशुचि है। ऐसा मार्ग है, भगवान! भाव आता है, वह तो कहा। परन्तु है तो अशुचि। जिससे बन्ध हो, वह शुचि कहाँ से हो? तीर्थंकरगोत्र का तो बन्ध पड़ता है, उस भाव से। जिस भाव से बन्ध पड़े, उसमें शुचि कहाँ से आयी? धर्म

से बन्ध पड़ता है ? तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भी धर्म नहीं; वह तो अधर्म है। समझ में आया ? कहा था न पहले ?

(संवत्) १९८५ के वर्ष। ४५ वर्ष हुए। वह भी बोटाद सम्प्रदाय में हजारों लोग सभा में। १९८५ की बात है, पौष मास। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव धर्म नहीं। वह आस्रवभाव है। शान्तभाव से कहें तो वह अधर्मभाव है। ऐसा कहा। १९८५, बोटाद। ४५ वर्ष हुए। बड़ी सभा थी, बड़े सेठ गृहस्थ लोग (थे)। बहुत पैसेवाले हैं वहाँ। खलबली! सभा में खलबली नहीं, सभा तो सुने। साधु बैठे थे। (वह) वोसरे... वोसरे... (बोलने लगे)। यह श्रद्धा हमें (स्वीकार नहीं)। भगवान! शान्ति से सुनो तो सही।

ऐसी विचारणा पुण्य-पाप का भाव भी आस्रव है, ऐसी विचारणा करना वह परीषह उपसर्ग के समय शान्ति को लाना और शुभभाव में रहे तो अशुभभाव होता नहीं। ऐसी भावना कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण १५, गुरुवार, २१-०२-१९७४
गाथा - ९६-९७, प्रवचन-११५

यह अष्टपाहुड़ है, भावपाहुड़ चलता है। ९६ गाथा। बारह भावना का अधिकार है। पहले तो क्या कहते हैं? पहले तो आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप ध्रुव है, ऐसा अनुभव में पहले सम्यग्दर्शन होता है। उसके बाद क्या बात है, वह इसमें आयेगा। पहले बात आ गयी है। पहले में पहली चीज़ (यह है)। आत्मा पर से भिन्न, शरीर, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप का विकल्प जो है, उससे भी भिन्न और एक समय की पर्याय से भी भिन्न है। ऐसी ध्रुव चीज़ परमानन्द का सामान्यस्वभाव जो एकरूप, उसका आश्रय करके निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रथम होता है। उसमें जितने अनन्त गुण है, उन सब गुण का अंश सम्यग्दर्शन होने पर सब गुण का अंश प्रगट होता है। समझ में आया? सर्व गुणांश, वह समकित, ऐसा श्रीमद् का शब्द है। अपने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में (भी आता है)।

सम्यक्, अनन्त गुण जो आत्मा वस्तु की अपेक्षा एक है, परन्तु शक्तियाँ—गुण-स्वभाव-भाव सत् का पूर्ण सत्त्व ऐसी सत्त्व (स्वरूप) उसमें अनन्त शक्ति है। एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य है। ऐसा अनन्त गुणरूपी आत्मा का सामर्थ्य जो स्वभाव, उसकी ध्रुवता नित्यता **'भूदत्थमस्सिदो खलु।'** ग्यारहवीं गाथा। भूतार्थ सत्यार्थ एक समय में त्रिकाल वस्तु की दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। इस सम्यग्दर्शन में अपना आनन्दस्वभाव है, उसका स्वाद आता है और उस सम्यग्दर्शन में जो वीर्य नाम का गुण है, वह शुद्धता की पर्याय की रचना करता है, ऐसा प्रतीति में आता है। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव की रचना करे, वह वीर्य नहीं।

अपने स्वरूप में एक वीर्य नाम का गुण है। वह अपनी जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबकी शुद्धपने पवित्रपने आनन्दपने स्वच्छतापने स्वतन्त्रता के अखण्ड प्रताप से शोभित, ऐसी अनन्त पर्याय की निर्मलता की वीर्य रचना करे, ऐसा प्रतीति में पहले आता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! पहले सम्यग्दर्शन चीज़ ही ऐसी है। उसे प्राप्त किये बिना जो कोई व्रतादि या नियमादि है, वह तो विकल्प है, वह तो बन्ध का कारण है। भगवान

आत्मा अबन्धस्वरूपी है, पहले बात आ गयी है। जिनभावना। जिनभावना का अर्थ ही यह है कि वीतरागी पर्याय से अपने त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि-रुचि करना और उसमें एकाग्र होना, उसका नाम जिनभावना कहो, सम्यग्दर्शन कहो, वीतरागी पर्याय कहो या मोक्षमार्ग स्वभाव के आश्रय से एकाग्र होता है तो उसको मोक्षमार्ग कहो, वह होने के बाद की यहाँ बात है। क्या कहते हैं?

बारह भावना भाते हैं। मुख्य मुनि की बात है, (उनके) उद्देश्य से बात करते हैं। मुनि को आत्मदर्शन, आत्मा का अनुभव उपरान्त मुनि को तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष बहुत आनन्द की प्राप्ति का अनुभव है। समझ में आया? स्वसंवेदन प्रचुर। वह पाँचवीं गाथा में है। समयसार। प्रचुर स्वसंवेदन। साधुपना कोई नग्नपना या महाव्रत का विकल्प, वह कोई साधुपना नहीं। अन्तर आत्मा का प्रचुर विशेष स्व—अपना सं—प्रत्यक्ष आनन्द का प्रचुर वेदन आना, उसका नाम मुनिपना है। इस मुनिपने में ऐसी भावना भाना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तक अपने आया है—आस्रवभावना, **आस्रवभावना**। सम्यग्दृष्टि जीव आस्रवभाव का विचार करते हैं तो ऐसा करते हैं कि जो शुभ और अशुभ दोनों भाव अशुचि और मैल है और शुभ-अशुभ दोनों भाव जड़ हैं। उसमें ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान, ज्ञान की पर्याय अशुद्ध भाव में आस्रव में आती नहीं। आहाहा! चाहे तो व्रत का विकल्प हो या अव्रत का विकल्प हो, भगवान की भक्ति का विकल्प हो, सब आस्रव है और वह जड़ है। ७२ गाथा में आया है। समयसार ७२ (गाथा) में आया है। आहाहा! ऐसी आस्रवभावना का विचार करे और वह पुण्य और पाप का भाव दुःखरूप है। वह तीसरा बोल है। अशुचि है, जड़ है, दुःखरूप है। भगवान आत्मा शुचि-पवित्र है, चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा है और आनन्दस्वरूप है। आहाहा! ऐसी आस्रव की विचारणा करना, उसका नाम आस्रवभावना है। है तो शुभ विकल्प। समझ में आया?

मुमुक्षु : ... संवर कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर कहा है, परन्तु यहाँ तो अभी नव की विचारणा है न। समझ में आया? अनुप्रेक्षा को तो वहाँ संवर कहा है। यहाँ पच्चीस महाव्रत की भावना और इस भावना को साथ में लेकर बात कही है। समझ में आया?

जैसे दशलक्षण धर्म है, वह तो अपनी पवित्र दशा है, उसका नाम दशलक्षण है। परन्तु दशलक्षण धर्म में भी शुभ विकल्प उठते हैं, उसको भी दशलक्षण धर्म का आरोप (करते हैं)। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है। समझ में आया? विकल्प उठता है न दशलक्षण धर्म की विचारणा में? वह आगे आयेगा। धर्मभावना आती हैं न, उसमें आयेगा।

यहाँ तो मात्र आस्रव की विचारणा (करते हैं)। बापू! यह तो अपूर्व बात, है भगवान! अनन्त काल में उसने कभी आत्मा की प्राप्ति की नहीं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धार दिगम्बर सन्त होकर... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ... पंच महाव्रत का परिणाम, व्यवहार समिति, गुप्ति का भाव दुःखरूप है। क्योंकि ऐसे पंच महाव्रत आदि मुनिव्रत लिया परन्तु आत्मसुख नहीं पाया। उसका अर्थ कि दुःख पाया। धन्नालालजी! बात ऐसी है, भगवान! आत्मज्ञान बिन लेश सुख (न पायो)। आस्रवभाव, पंच महाव्रतादि भाव सब दुःखरूप है। आहाहा! और वह दुःख का कारण है, वह आत्मा की शान्ति का कारण आस्रवभाव शुभभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी विचारणा सम्यग्दृष्टि जीव (करते हैं)। आहाहा! अपने स्वभाव सन्मुख अनुभव हुआ है और अनुभव में सम्यग्दर्शन में आनन्द आया है। इस आनन्द की भूमिका में ऐसा विचार करते हैं। समझ में आया? वीतराग मार्ग है, भगवान! अपूर्व सूक्ष्म बात है। यह कोई बाहर से मिल जाए ऐसी चीज़ नहीं। कहते हैं कि आस्रवभाव की विचारणा इस प्रकार करे।

संवरभावना। राग के विकल्प से भिन्न होकर अपनी चीज़ में लीनता करना, वही संवर है। ऐसी संवरभावना का विचार समकिती करे। वैसे तो बारह भावना को संवर में डाला है। कहा न? तत्त्वार्थसूत्र में। उस बारह भावना में जो विकल्प उठता है, उसमें स्वभाव का आश्रय और लक्ष्य करके ऐसी भावना में शुभभाव आता है। धन्नालालजी! ऐसी बात है। संवरभावना। आहाहा! राग पुण्य-पाप के विकल्प से मेरी चीज़ भिन्न है, उसमें लीनता का होना, शुद्धता की उत्पत्ति होना, शुद्धभाव और शुद्ध उपयोग उत्पन्न होना वह संवर है। आहाहा! तत्त्व की वास्तविकता भी जिसकी व्यवहार श्रद्धा में भी नहीं है, उसको वास्तविक अनुभवदृष्टि तो होती नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं?

संवरभावना। और **निर्जराभावना।** सम्यग्दृष्टि चैतन्य का अनुभव होने पर भी

और अपने स्वभाव के सन्मुख होने पर भी उसको निर्जरा की विचारणा आती है। निर्जरा तीन प्रकार की है। एक, अपने शुद्ध उपयोग में आना, वह शुद्ध उपयोग ही निर्जरा है। समझ में आया? शुभ-अशुभ से रहित अपने चैतन्य का उपयोग शुद्ध आचरण में आना, उस शुद्ध उपयोग को भी निर्जरा कहा है और अशुद्ध उपयोग का नाश हो, वह निर्जरा है। और उसका निमित्त पाकर कर्म की निर्जरा हो, वह सद्भूतव्यवहारनय से कर्म की निर्जरा कहने में आती है। समझ में आया? जब चैतन्यस्वभाव भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ जिसने अन्तर में दृष्टि में आलम्बन में—आश्रय में लिया है, वह ऐसी भावना करते हैं कि ओहो! मेरी चीज़ में शुद्ध उपयोग से लीन होना, वह निर्जरा है। वह अस्ति से कहा।

अशुद्ध परिणाम का, शुभाशुभभाव दोनों अशुद्ध है, उसका नाश होना, वह भी निर्जरा है। और ऐसा शुद्धभाव का निमित्त होने से कर्म में जो निर्जरा स्वतन्त्र उसके कारण से जो कर्म की पर्याय है, उसमें से कुछेक अकर्म पर्याय हो जाए। समझ में आया? वह कर्म के कारण से (होता है)। ऐसी विचारणा सम्यग्दृष्टि अपनी अनुभूति की पर्याय में सावधान है... आहाहा! समझ में आया? तो ऐसी विचारणा करते हैं।

मुमुक्षु : निर्जरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी है, यह तो बहुत बार आ गया है। प्रवचनसार में है, पंचास्तिकाय में है। पंचास्तिकाय में है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो स्पष्टीकरण करना पड़ा। कर्म की निर्जरा, वह तो जड़ की निर्जरा है, उसके साथ आत्मा का क्या सम्बन्ध? अपना चैतन्य शुद्धस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है, आत्मा वीतरागस्वभावी वीतरागस्वरूपी आत्मा है। आहाहा! उसके अन्दर शुद्ध उपयोग से लीनता करना। कितने ही कहते हैं शुद्ध उपयोग तो अभी है नहीं। आहाहा! तब तो धर्म है नहीं, समकित है नहीं, कुछ नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ प्रतिशत झूठी। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा...

बापू! प्रभु! पूर्ण सम्पदा आनन्द की सम्पदा से तो तेरा नाथ भरा पड़ा है। आहाहा! उसमें शुद्ध उपयोग को लगाना... आहाहा! सम्यग्दर्शन तो है, उसकी बात है। समझ में आया? इसके उपरान्त अन्तर में ध्रुव चैतन्य की दृष्टि है, उस ध्रुव में उपयोग लगाना। आहाहा! जगत तो ऐसे ही अनन्त काल से चला जा रहा है। इस चीज़ को समझा नहीं कभी। आहाहा! मुनिव्रत ले लिया, श्रावक के बारह व्रत भी अनन्त बार लिये, वह तो सब आस्रव है, उसमें धर्म कहाँ? धरमचन्दभाई! आहाहा!

कहते हैं, निर्जराभावना। तीन प्रकार की निर्जरा कही। शुद्ध उपयोग वह शुद्धनिश्चय से निर्जरा। अशुद्ध उपयोग का नाश वह अशुद्धनिश्चय से निर्जरा और कर्म की निर्जरा वह असद्भूतव्यवहारनय से निर्जरा। समझ में आया? वस्तु ऐसी है, भगवान! यहाँ तो आत्मा को भगवान कहकर ही बुलाते हैं। भगवान पूर्णानन्द का नाथ है। भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मीवान तुम तो हो। राग और पुण्यवाले तुम नहीं हो। वह तो आस्रव है। आत्मा आस्रववाला है? आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी मुनि ऐसी भावना करता होगा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान में विकल्प से करे, परन्तु वस्तु का भान नहीं है। बारह अंग पढ़ा है तो उसको विचारणा तो आती है, परन्तु वह विकल्प की विचारणा है। यह तो निर्विकल्प दृष्टिपूर्वक विकल्प आता है, उसकी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी ... होता नहीं। प्रतिक्षण बन्धन होता है। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : अन्तिम ग्रैवेयक गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम ग्रैवेयक गया, उसमें क्या हुआ? मक्खी यहाँ-से उड़कर लकड़ी में गयी तो क्या ऊपर गयी? मनुष्य में ऊँची हो गया, मक्खी है, वह उड़कर ऊपर जाती है तो मनुष्य से ऊँची हो गयी? ऐसे शुभभाव से ऐसी शुक्ललेश्या होती है। अभव्य को भी होती है, भव्य को भी होती है। शुक्ललेश्या से नौवीं ग्रैवेयक जाओ, वह शुक्ललेया बन्ध का कारण है। भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप- **'अबद्धपुट्ठं'** ऐसा पर के बन्धन से रहित, ऐसी अन्दर में अबद्धस्वरूप चैतन्य, अस्ति से कहें तो

मुक्तस्वरूप भगवान है। अबद्धस्वरूप तो पर की नास्ति की अपेक्षा से कहा। मुक्तस्वरूप भगवान का स्पर्श न हो और भगवान आत्मा का अन्दर में वेदन न हो, तब तक तो वह मिथ्यादृष्टि है। मार्ग तो परमात्मा का ऐसा है, प्रभु! कहो, समझ में आया? क्या कहा? ऊपर नौवीं ग्रैवेयक गया तो क्या निर्जरा हो गयी? अकामनिर्जरा है। अशुभ का कुछ अभाव हुआ। परन्तु अशुभ जो मिथ्यात्व है, उसका तो अभाव हुआ नहीं। मूल अशुभ तो मिथ्यात्व है। ऐसा अभाव किये बिना अकेली अकामनिर्जरा उसको कुछ लाभदायक नहीं। नौवीं ग्रैवेयक गया। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछे पटक्यो।' वह सज्झाय में आता है। मिथ्यादृष्टि को राग की रुचि है, अपने द्रव्य की रुचि तो हुई नहीं। अपना भगवान आनन्दस्वभाव का तो प्रेम आया नहीं और शुभभाव का प्रेम गया नहीं। आहाहा! उसको तो आत्मा प्रति द्वेष है। जिसको शुभराग का प्रेम है, उसको आत्मस्वभाव के प्रति द्वेष है। आहाहा!

आनन्दघनजी कहते हैं। श्वेताम्बर। 'द्वेष अरोचक भाव।' संभवनाथ की स्तुति की है। तीसरे संभवनाथ भगवान। संभवदेव... लही प्रभु सेव न... सेवन कारण प्रथम भूमिका, उभय अद्वेष अखेद...' ऐसा लिया है। अद्वेष की व्याख्या ऐसी की है। आत्मा के प्रति प्रेम होना और राग प्रति का प्रेम छूट जाना वह अद्वेष भाव है। परन्तु राग के प्रति प्रेम रहना और स्वभाव के प्रति रुचि और प्रेम नहीं रहना, वह द्वेष है। आहाहा! परमात्मा के मार्ग में स्पष्ट है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीन काल-तीन लोक देखकर, वाणी तो वाणी के कारण उत्पन्न हुई। वाणी में स्व-पर यथार्थ कहने की ताकत है। वाणी में भी स्व-पर की कथा करने की ताकत है। वाणी भगवान की ऐसी आयी... आहाहा! निमित्त से कहने में आता है, वाणी तो वाणी की है। आहाहा! निर्जरा। जिसमें पवित्रता की परिणति प्रगट न हो, वह निर्जरा कहाँ-से आयी? वह भावना (हुई)।

लोकभावना। चौदह राजूलोक सर्वज्ञ ने कहा, ऐसी विचारणा है तो विकल्प, परन्तु अन्दर में दृष्टिपूर्वक अन्तर विचारधारा चलती है तो उस अपेक्षा से जितनी अन्दर में स्थिरता है, उस अपेक्षा से संवर कहा और विकल्प की अपेक्षा से उसको आस्रव कहा। आहा!

बोधिदुर्लभ। अहो! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीनों मिलकर बोधि कहने

में आता है। बोधिदुर्लभ है। जगत का पदार्थ मिलना वह तो सुलभ है। समझ में आया? पैसा मिलना, लक्ष्मी मिलना, इज्जत मिलना, स्त्री, कुटुम्ब अनुकूल मिलना, स्वर्ग मिलना, वह तो सुलभ है। आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और लीनता होना, वह दुर्लभ है। समझ में आया? कुछ व्रत पालना और लेना, वह कोई दुर्लभ चीज़ नहीं। वह तो अनन्त काल से उसने शुभभाव लिया है, वह तो सुलभ है। समझ में आया? भगवान आत्मा... पर्याय में ऐसी विचारणा होती है। आहाहा! बोधिदुर्लभभावना। अहो! भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसमें लीनता—निर्विकल्पदशा, तीनों की एकता दुर्लभ है। समझ में आया? कोई पुण्य पाना और पुण्य की लक्ष्मी दो, पाँच करोड़-धूल मिलना वह कोई दुर्लभ नहीं, सुलभ है। दूसरी दृष्टि से कहें तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान पाना सुलभ है। क्योंकि अपने आत्मा के आश्रय से स्वतन्त्र उत्पन्न होता है और पैसे आदि मिलना, वह दुर्लभ है। क्यों? -कि पूर्व का पुण्य हो तो मिलता है; पुरुषार्थ से मिलता नहीं। ... है न? क्या कहते हैं? तत्त्वज्ञान तरंगिणी में है। तत्त्वज्ञान तरंगिणी है न? शुभचन्द्राचार्य की बनायी हुई, उसमें है। दो बात कही। अपनी चीज़ है परन्तु उस चीज़ की दृष्टि और ज्ञान और शान्ति प्राप्त करना तो दुर्लभ है। क्योंकि अनन्त काल में हुआ नहीं और ये लक्ष्मी आदि, आबरू आदि, शरीर सुन्दर, स्त्री अनुकूल मिलना तो सुलभ है। फिर गुलाँट मारकर बात करते हैं, लक्ष्मी और शरीर की सुन्दरता और अनुकूलता मिलना दुर्लभ है। क्योंकि पुरुषार्थ आधीन नहीं, वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिलता है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान सुलभ है। क्योंकि कोई पर का आश्रय उसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? तत्त्वज्ञान तरंगिणी में दो बोल लिये हैं। वह तो अनेक प्रकार से विचित्र बात (कही है)। वस्तु की स्थिति मर्यादा है, वह कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो बोधिदुर्लभभावना की बात है। ओहो! दुर्लभ्य। दुर्लभ है न? दुर्लभ्य। महा पुरुषार्थ से प्राप्त होता है।

मुमुक्षु : ...जरूरत नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें पुण्य की जरूरत जरा भी नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे तो लाभ होता ही नहीं। सुनने से धर्म होता है, ऐसा है

नहीं। अनन्त बार भगवान की वाणी समवसरण में सुनी। केवली आगल रही गयो कोरो।' यह हमारी गुजराती भाषा है। सज्झायमाला है न? चार है। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला है। एक सज्झायमाला में सज्झाय होती है। समझे न? 'सहजानन्दी रे आतमा... सहजानन्दी रे आतमा... केम सूतो तुं निश्चिंत रे, मोह तणा रे रणिया भमे।' अरे! तू क्यों निश्चिंत सूतो? प्रभु सर पर मोह का, राग और द्वेष का देणा है। देणा समझते हो? देणा को क्या कहते हैं? कर्ज। 'मोह तणा रणिया भमे।' 'जाग... जाग मतिवन्त रे... लूंटे जगतना जंत रे...' जगत के जन-स्त्री (कहती है), फिर हमसे क्यों विवाह किया? वह सब लूटनेवाले इकट्ठे हुए हैं। क्या कहा? वह नियमसार में आता है न? ठगों की टोली तुझे मिली है। पण्डितजी! स्त्री, पुत्र, माँ-बाप सब ठगों की टोली है। नियमसार में आया है।

मुझे तो दूसरा कहना है। ऐसी सज्झाय है वैसी बहुत है। वैसी २००-३०० सज्झाय हैं। ऐसे-ऐसे चार पुस्तक है। हम तो दुकान पर थे, तब सब पढ़ा था। संवत् १९६५-६६ का वर्ष। हमारे तो निवृत्ति थी। पिताजी की दुकान थी। सब सज्झाय देखी है। उसमें यह एक आया था कि 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फेर पीछो पटक्यो' और 'केवली आगण रही गयो कोरो।' ये दो शब्द आये थे। वीरचन्दभाई! आहाहा! केवली आगण रही गयो कोरो।' समझते हो? कि केवली की सभा में गया परन्तु कोरा रहा, तूने आत्मा की दृष्टि की नहीं। आहाहा! सेठ! सुना, भगवान के पास सुना।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह प्रकार की सभा, बारह कोस चौदह योजन में सब शान्ति से सुनते हैं। पशु भी अपनी भाषा में समझ जाते हैं। समवसरण में ऐसा सुना। परन्तु अन्तर चीज़ जो भगवान कहते थे कि राग और पर्याय जितना आत्मा नहीं; वह तो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द है। उस ओर की दृष्टि नहीं की। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : संस्कार देनारो नजदीक आवे तो थाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ करे तो संस्कार देनेवाला नजदीक आये पुरुषार्थ किये बिना आता है? अपने स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करे तो उसके संसार का किनारा आ गया। समझ में आया? आहाहा! कहा न? परित संसार हो गया। आत्मा के स्वरूप की अनुभव दृष्टि हुई... समझे? परित संसार हो गया। संसार अल्प रहा। शास्त्र में—धवल

में आता है। समझ में आया? परित-अपरित संसार की व्याख्या चलती है न। धवल में बहुत बात है। सम्यग्दर्शन पाने से संसार परित हो गया। क्योंकि मिथ्यात्व का नाश हुआ, वह मिथ्यात्व ही अपरित संसार था। अनन्त संसार का कारण जो मिथ्यात्व था, उसको जिसने भगवान आत्मा के अवलम्बन से नाश किया, उसका अपरित संसार-अनन्त संसार का नाश हुआ। अल्प रहा। एक, दो भव, पाँच भव (रहे)। आहाहा! पुरुषार्थ हुए बिना मिल जाए, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : अंजन चोर....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कुछ हुआ नहीं, उसे हुआ नहीं। बहुत पुरुषार्थ किया, तब अन्तर निर्विकल्प दृष्टि (हुई), तब उसे समकित हुआ है। अंजन चोर में तो मात्र व्यवहार समकित का एक अंश नि:शंक गिनकर व्यवहार गिना और व्यवहार का निश्चय में आरोप करके कहा। बाकी अंजन चोर में समकित नहीं था। ऐई! नि:शंक का एक अंश व्यवहार का गिनकर उसे व्यवहार समकित कहा और व्यवहार का आरोप करके भविष्य में निश्चय पानेवाला ही है, इसलिए उसे निश्चय में गिना। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठी वस्तु है। मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्टीकरण किया है कि अंजन चोर को ... मोक्षमार्गप्रकाशक में है। वहाँ तो उसे व्यवहार समकित भी नहीं था। व्यवहार समकित में तो नि:शंक आदि की बात है और ये तो एक ही ... था। परन्तु वह भविष्य में निश्चय सम्यक् अनुभव आत्मा के आश्रय से पानेवाला जीव है तो उसमें व्यवहार के अंश का-व्यवहार का आरोप किया और व्यवहार में निश्चय का आरोप किया। ऐसे कथन किया। समझ में आया? आहाहा! बोधिदुर्लभभावना (हुई)।

धर्मभावना। धर्मी धर्म की विचारणा करते हैं। वीतरागी स्वरूप मेरा धर्म है। निर्मल शुद्ध निर्लोभता, अकिंचनता इत्यादि मेरी दशा-वीतरागी दशा धर्म है। आहाहा! ऐसी धर्म की विचारणा करते हैं। सम्यग्दृष्टि सहित की बात है। सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ ... की भावना होती नहीं। **और पच्चीस भावनाओं का भाना...** पाँच महाव्रत की पच्चीस भावना है तो विकल्प। क्योंकि महाव्रत स्वयं विकल्प, आस्रव है। परन्तु उसके

अतिचार टालने को ऐसी विचारणा करते हैं। स्वभाव की दृष्टि-आश्रय, लक्ष्य रखकर। ऐसी बात है। इतनी शर्त है। इस शर्त के बिना बात नहीं। ऐसी बात है, भगवान! क्या कहे? पच्चीस भावना। है तो पच्चीस भावना विकल्प, राग, परन्तु उस विचारणा में रुकने से अशुभ नहीं होता है, परन्तु शुद्ध का तो लक्ष्य है। तो उसकी भावना भाना, (ऐसा) व्यवहार से कहने में आया है।

इनका बारम्बार चिन्तन करने से कष्ट में परिणाम बिगड़ते नहीं हैं,... बस, यह बात है। प्रतिकूल परीषह और उपसर्ग हो तो ऐसी विचारणा रहने से कष्ट अर्थात् दुःखदायक परिणाम उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? ९६ (गाथा पूरी हुई)। अब ९७। देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव! भावपाहुड़ में १६५ गाथा है। भावपाहुड़ की १६५ गाथा हैं।

★ ★ ★

गाथा - ९७

आगे फिर भाव शुद्ध रखने को ज्ञान का अभ्यास करते हैं - यह ज्ञान के अभ्यास की बात है।

सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं।।९७।।

आता है न। व्यवहार बीच में होता है न। निर्विकल्पदशा शुद्ध उपयोग नहीं हो, निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प उपयोग में सम्यग्दर्शन हुआ। समझ में आया? परन्तु बाद में विकल्प उत्पन्न होता है या नहीं? वीतरागदशा नहीं है, तब तक राग तो उत्पन्न होता है। तो अशुभराग टालने को ऐसे शुभराग की भावना करना, ऐसा कहने में आया। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन हो या निश्चय मुनिपना हो, परन्तु व्यवहार आता है या नहीं? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय (का भाव आता है)।

समन्तभद्राचार्य तो ऐसा कहते हैं, चौबीस (तीर्थंकर) की स्तुति है न? भगवान की चौबीस स्तुति की है न? समन्तभद्राचार्य (कहते हैं), प्रभु! मुझे तो आपकी भक्ति का व्यसन हो गया है। उसमें आता है। भाई! चौबीस (स्तुति में)। मुझे तो प्रभु! यह

व्यसन हो गया है। त्रिलोकनाथ चैतन्य भगवान वीतरागमूर्ति की भक्ति का विचार मुझे बहुत आता है, व्यसन हो गया है। है तो दृष्टि निर्मल सम्यक्। समझ में आया? हे जिनेन्द्रदेव! परमात्मा पूर्णानन्द पुरुष प्रभु, मेरी दृष्टि द्रव्य पर तो है ही। मैं सम्यग्दृष्टि हूँ, परन्तु मुझे आपकी भक्ति के विकल्प का व्यसन हो गया है। आहाहा! वह विकल्प आता है। अशुभ से बचने को (आता है)। समझ में आया? अशुभ वंचनार्थं, ऐसा पाठ है। पंचास्तिकाय। धन्नालालजी!

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तहां समझवुं तेह,
त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थी जन अेह।

व्यवहार के स्थान में व्यवहार आता है। धर्मी जानता है कि यह शुभराग है। निश्चय से हेय है, परन्तु व्यवहार से अशुभ से बचने को सम्यग्दृष्टि को भी, मुनि को भी आता है। परन्तु जानते हैं कि वह आस्रव है। आहाहा! वीतरागमार्ग कहीं नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा, उसमें जो दिगम्बर सन्तों ने मार्ग कहा, न भूतो न भविष्यति, कहीं और जगह नहीं है। समझ में आया? ऐसी चीज़ की सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी में सब स्पष्ट कर दिया है। अमरचन्दभाई! आहाहा! उसमें भी कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, महाविदेह में। आहाहा!

श्वेताम्बर में एक बात आती है, भाई! भगवान जब पधारे न? जब राजा को बात करे न? महाराज पधारो, भगवान पधारे हैं। तुझे आजीवन धन्धा नहीं करना है। भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ। यह तो प्रतिमा है। आहाहा! ऐसा पाठ आता है। सब देखा है न। श्वेताम्बर शास्त्र करोड़ों (श्लोक) देखे हैं। ऐसा पाठ आता है। ऐसी भाषा में सुना नहीं? कि भगवान जब पधारते हैं, या कोई सन्त, गणधर आदि या मुनि महाराज (कहते हैं), साहेब! कल यहाँ भगवान पधारनेवाले हैं। तो जो यह (बात) राजा को सुनाते हैं तो सुनानेवाले को वहाँ स्थान देकर (कहते हैं), तुझे आजीवन व्यापार करना नहीं है। इतनी उसे जमीन और पैसा देते हैं। अरे! त्रिलोक के नाथ का हमको स्मरण करवाया। तुझे कमाना नहीं पड़ेगा, जाओ! लाखों, करोड़ों रुपये देते हैं। ऐई! भक्ति का भाव है, भक्ति का भाव आता है। जानते हैं कि है शुभराग, परन्तु आये बिना रहे नहीं। आये, नहीं आये; तो अशुभराग हो जाए। इस कारण से भगवान की भक्ति का कारण है। अमृतचन्द्राचार्य

कहते हैं, अशुभ वंचनार्थं। आता है। आहाहा! अयोग्य स्थान में भाव नहीं जाए, इसलिए भी आता है। दो आया है, दो भाव आये हैं। आहाहा! परन्तु उसकी मर्यादा जाननी चाहिए। उसकी मर्यादा पुण्य जितनी है। उसकी मर्यादा धर्म समझ ले (तो विपरीतता हो जाती है)।

भगवान! यहाँ तो जितना जितना स्वभाव है, उतना उसको मानना। उससे अधिक, विपरीत मानना, वह तो विपरीत दृष्टि है। आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यभव मिला, उसमें ऐसी दृष्टि होकर ऐसी भावना करना, ऐसी बात यहाँ चलती है। आहाहा! जन्म-मरण के अन्त की बात है, प्रभु!

अर्थ - हे मुने! मुनि के उद्देश्य से मुख्य बात है न। **तू सब परिग्रहादिक से विरक्त हो गया है,...** मुनि को तो कपड़े का टुकड़ा भी नहीं होता। अन्तर में जिसको तीन कषाय का अभाव हुआ, उसको कपड़ा लेने का विकल्प ही नहीं होता। और कपड़ा लेने का विकल्प हो, वहाँ मुनिपना होता नहीं। वस्तुस्थिति ऐसी है। यह कोई सम्प्रदाय की चीज़ नहीं। समझ में आया? वह कहते हैं, देखो! **सब परिग्रहादिक से विरक्त हो गया है,...** आहाहा! तुझे स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो है नहीं, परन्तु वस्त्र, पात्र भी नहीं। आहाहा! क्योंकि परिग्रह है।

मुनि को... कुन्दकुन्दाचार्य ने तो कहा, तिलतुष मात्र भी परिग्रह रखे और हम साधु है, ऐसा माने तो निगोद गच्छई। समझ में आया? क्या ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा कहा है? नहीं। इसमें नव तत्त्वों की भूल हो गयी। जिसने वस्त्र रखकर मुनिपना माना, उसको नवों तत्त्वों की भूल है, एक तत्त्व की नहीं। क्योंकि मुनिपना जहाँ छठवें गुणस्थान में हैं, वहाँ तो आत्मा का उग्र आश्रय है और उग्र आश्रय है तो वहाँ संवर दशा भी उग्र उत्पन्न हुई है। उस उग्र संवर में आस्रव का विकल्प होता है तो मात्र आहार-पानी लेना या विनय करना या सुनना, इतना विकल्प होता है। अट्ठाईस मूलगुण आदि के विकल्प होते हैं। इतना जिसने नहीं जाना, उसे वस्त्र लेना ऐसा विकल्प तीव्र आस्रव है। और तीव्र आस्रव है तो संवर नहीं है। तो संवर में भूल, आत्मा के आश्रय में भूल, आस्रव में भूल, अजीव संयोग में (भूल)। जब मुनिपना हुआ, तीन कषाय का अभाव (हुआ) तो वस्त्र-पात्र अजीव के संयोग का अभाव होता है। अजीव का ज्ञान

भी उसका सच्चा नहीं है। ऐसे ही शब्द कह दिया है कि वस्त्र रखे तो निगोद में जाएगा? वह कारणसर है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य नौं तत्त्वों की भूल उसमें कहते हैं। समझ में आया? जहाँ वस्त्र लेने का भाव है, वहाँ मुनिपने की संवर दशा है ही नहीं। और संवर मान ले तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसी बात है। आहाहा! बहुत कठिन। पहले श्रद्धा में भी सच्चापना नहीं आया तो उसको मुनिपना कहाँ से आयेगा?

कहते हैं, **'सर्वं विरतः अपि',** ऐसा शब्द है न? पहला बोल। प्रभु! मुनि तुझे तो सर्व परिग्रह से विरक्त भाव हो गया है। आहाहा! जिसके लिये आहार करके लेना, वह भी विकल्प उठ गया है। उसके लिये आहार बनाया हो और ले, वह भी भ्रष्ट है। समझ में आया? **सब परिग्रहादिक...** परिग्रह आदि है न? उस सम्बन्धी ममता और उस सम्बन्धित संयोगीभाव, सब छूट गया है। आहाहा! **महाव्रत सहित है...** है न? **'सर्वं विरतः अपि भावय'।** महाव्रत सहित है। तुझे महाव्रत का विकल्प है। आहाहा! सम्यग्दर्शन अनुभव सहित, अनुभूति आत्मा की हुई है। इसके उपरान्त उसको ममता का त्याग बहुत हो गया है और उसको महाव्रत के परिणाम का भाव आता है। उस भूमिका में महाव्रत का भाव है आस्रव। वह आये बिना रहे नहीं। उसका भाव छूट जाए तो सप्तम गुणस्थान हो जाए। आहाहा! इतना प्रमाद है। कहते हैं, महाव्रत का भाव आया **तो भी भाव विशुद्धि के लिए...** फिर भी भाव के स्वभाव की शुद्धि के लक्ष्य से अशुभभाव टालने को शुभभाव में ऐसी विचारणा तुझे आती है।

नव पदार्थ,... नव पदार्थ की विचारणा। जीव जो है, वह तो शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द है, ऐसी विचारणा (करते हैं)। दृष्टि तो हुई है, चारित्र है, महाव्रत है तो ऐसी विचारणा (होती है)। परमात्मा बन्ध-मोक्ष रहित आत्मा... ओहो! जीव उसे कहते हैं... कल कहा था न? ३२० गाथा। ३२० गाथा की टीका जयसेनाचार्य ने की है। वहाँ परमात्मप्रकाश में गाथा ली है। जीव कैसा है? और जिनवर ने जीव किसको कहा? जिनवर भणेई जीव। जीव (वह है) जिसमें बन्ध और मोक्ष नहीं। बन्ध-मोक्ष तो पर्याय है। यह तो जीव अखण्डानन्द ज्ञायक। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! ...भाई, नेमचन्दभाई! ऐसी बात है। इसीलिए लोगों को ऐसा लगता है न कि यह सोनगढ़ की बात है। सोनगढ़ की है या भगवान है? ऐसा कहकर सोनगढ़ का एकान्त है, एकान्त

है—ऐसा (लोग) कहते हैं। भगवान! क्या करे? सम्यक् एकान्त तो यह है, भगवान! आहाहा!

कहते हैं, जीव उसको कहें, जीव न उपज्जई, जीव न मरई। अर्थात् पर्याय का उत्पाद हो, वह जीव नहीं, व्ययवाला जीव नहीं। वह तो व्यवहार जीव है। मोक्ष की पर्याय का उत्पन्न होना और बन्धपर्याय का नाश होना, वह तो व्यवहारजीव है। निश्चयजीव में तो बन्ध-मोक्ष की पर्याय है ही नहीं। यह जीव है। और जीव जो है, नव तत्त्व में जो मूल जीव ज्ञायकभाव, वह तो मोक्ष की पर्याय नहीं है, परन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय करनेवाला वह नहीं है। मोक्ष की पर्याय करनेवाला तो जीव नहीं, परन्तु मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उसका करनेवाला जीव नहीं। यह तो मोक्षमार्ग पर्याय है, जीव तो ध्रुव त्रिकाल लेना है। निश्चयजीव लेना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रोगी जीव को यदि बुखार आया हो तो उसे चिरायता ही दिया जाता है, उसे खीर नहीं पिलाते। करियाता समझते हों? उसे वह दिया जाता है। उसके बिना उसका बुखार उतरता नहीं। यहाँ तो कहते हैं, आत्मा रोगी नहीं। राग का रोग अपने में है नहीं। भगवान चिदानन्द आत्मा ध्रुव, जो मोक्ष का करनेवाला नहीं है तो राग का करनेवाला कहाँ से आया? आहाहा! ३२० गाथा पर व्याख्यान हो गया है। ३२० गाथा का व्याख्यान बहुत बार हो गया है। यहाँ ३९ वर्ष हुए। चालीस में एक कम। इस फाल्गुन कृष्णा-३ को ३९ वर्ष पूरे होंगे। यहाँ सोनगढ़ में ३९ वर्ष (हुए)। यह १७वीं बार व्याख्यान में समयसार चलता है। १७। १७ अर्थात् एक और सात। सत्रह।

यहाँ कहते हैं, अहो! जीव पदार्थ इसको कहते हैं, ऐसी विचारणा सम्यग्दृष्टि करते हैं। विशेष आयेगा..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन शुक्ल १, शनिवार, २३-०२-१९७४
गाथा - ९७, प्रवचन-११६

यह अष्टपाहुड़, उसमें भावपाहुड़ चलता है। उसमें ९७ गाथा चलती है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं, अभी तो प्रतिष्ठा होगी। ये तो अभी नाम लिखा है। भगवान महावीर परमात्मा, वे तो पूर्णानन्द की प्राप्ति करके मुक्त हुए हैं। परन्तु उनकी स्थापना निक्षेप है, वह भी व्यवहार से वन्दनीक है। पहले कहा था, बहुत वर्ष पहले विचार आया था न? हमारे सम्प्रदाय में तो मूर्ति का विरोध था न। कहा था, सम्यग्दर्शन होने के बाद ही मूर्तिपूजन होता है। पहले कब होता है? सम्यग्दर्शन (पहले) ही मूर्तिपूजक होता है। सम्यग्दर्शन के बाद नहीं, ऐसा कहते थे। सुनो! यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९८३ के वर्ष। ४७ वर्ष हुए। ५० में तीन कम। तो यह चर्चा चली कि भगवान की प्रतिमा का पूजन तो जब तक मिथ्यादृष्टि हो, तब तक कर सकते हैं। सम्यग्दर्शन होने के बाद उसको पूजा, भक्ति आदि स्थापना की नहीं करे। ऐसा चलता था। तो ऐसा कहा, जब तक सम्यग्दर्शन नहीं हो, तब तक श्रुतज्ञान नहीं होता। अपना चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, ऐसी अन्तर्दृष्टि अनुभव हो, तब तो उसको भावश्रुतज्ञान होता है। और भावश्रुतज्ञान प्रमाणज्ञान है। उसका नय है, वह अवयव है। श्रुतज्ञान का नय, निश्चय-व्यवहार दो अवयव है। तो जब सम्यग्दृष्टि होता है, बाद में निक्षेप उसे पूजनीक गिनने में आता है। सम्यग्दर्शन बिना उसको श्रुतज्ञान नहीं। नय नहीं तो नय का निक्षेप भी उसको होता नहीं। समझ में आया? नय जब अपने में... शुद्ध चैतन्य वस्तु पवित्रधाम... उसमें लिखा है न? बनारसीदास ने। बनारसीदास में चौदह गुणस्थान पहले वह आता है न? कितने वर्ष हुए? ५२। उसको कहते हैं—जिनप्रतिमा का माहात्म्य। बनारसीदास कहते हैं। **'जाके मुख दरससौं भगत के नैननिकौं'** भगत के—सम्यग्दृष्टि को।

सम्यग्दर्शन में अपना स्वरूप पूर्णानन्द है, ऐसा अनुभव हुआ तो उसके साथ

श्रुतज्ञान हुआ। भावश्रुतज्ञान में भावश्रुतज्ञान है, वह अवयवी प्रमाण है और निश्चय और व्यवहारनय है, वह प्रमाण का—अवयवी का अवयव है। यह तो अन्तर की बात आयी थी, उस समय। समझ में आया? तो समकित दृष्टि को नय होते हैं। नय विषयी है, नय विषयी है और निक्षेप विषय है। तो नय, ज्ञान का भेद है और निक्षेप, ज्ञेय का भेद है। समझ में आया? वास्तव में तो सम्यग्दर्शन होने के बाद ही नय होता है और नय में निक्षेप उसको लागू पड़ता है। अज्ञानी को मिथ्यादृष्टि को निक्षेप और नय है नहीं। समझ में आया? ये तो (संवत्) १९८३ की बात है। ३० + १७। ५० में तीन कम। वस्तु ऐसी है। कोई गड़बड़ करे, ऐसा नहीं चलता। यह तो जैनदर्शन है। नय में जब भान हुआ तो निक्षेप ज्ञेय का भेद है तो नय का विषय हो जाता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ही स्थापना निक्षेप व्यवहार से पूजनीक होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रभु! कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है, क्या करना? आहाहा! भगवान आत्मा अपनी चीज़ में पूर्ण शुद्धता और आनन्द पड़ा है, उसके सन्मुख होकर, उसके सन्मुख होकर और संयोगी चीज़ और राग और पर्याय से विमुख होकर... समझ में आया? सम्यग्दर्शन प्राप्त होने की यह रीति है। समझ में आया? तो ये सम्यग्दर्शन में ही सम्यक् श्रुतज्ञान होता है तो वहाँ निक्षेप पूजनीक है। यह उसका मांगलिक है। (चौदह गुणस्थान अधिकार, पद-२)।

जाके मुख दरससौं भगत के नैननिकौं
थिरता की बानी बढै चंचलता विनसी।

आहाहा! प्रतिमा ऐसी देखी न। बहुत वीतराग मूर्ति है। अभी तो नाम निक्षेप है। ये खुल्ला रखा न।

'मुद्रा देखि केवली की मुद्रा याद आवै जहां' ऐसी मुद्रा देखने से अपनी पर्याय में केवली की मुद्रा याद आवे। हैं! आहाहा! वीतरागी बिम्ब सर्वज्ञ परमात्मा केवली का प्रतिबिम्ब है। समकिती को देखने में आती है तो केवली याद आते हैं। ओहो! ऐसे स्थिरबिम्ब जिसको विकल्प नहीं। शान्त... शान्त। यहाँ कहते हैं न?

कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी

सोहै जिनकी छबी सुविद्यमान जिनसी।

साक्षात् तीर्थंकरदेव विद्यमान जैसे हैं, ऐसी भगवान की प्रतिमा तीर्थंकर समान विद्यमान है। भक्तिवन्त को तो प्रतिमा जिनसारखी... आता है न? आया न? जिनसी। इसमें पीछे भी आता है। **'कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी।'** सम्यग्दृष्टि की अल्प भवस्थिति है। अल्पकाल में केवलज्ञान पाने की उसकी तैयारी हो गयी है। आहाहा! दूज उगी है, उसकी पूनम होगी ही। उसको वैसे सम्यग्दर्शन बीज जहाँ प्रगट हुआ... आहाहा! केवलज्ञान होगा ही। कहते हैं,

कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी।

निश्चय आत्मा की प्रतिमा, जिनप्रतिमा निश्चय से तो अपने स्वरूप है। आहाहा! अकषायरस बिम्ब वीतरागबिम्ब प्रभु, वही वीतराग प्रतिमा तो यह है। परन्तु वीतराग प्रतिमा का जिसको अनुभव और प्रतीति हुई, उसको शुभ विकल्प में जिनप्रतिमा जिन सारखी आये बिना रहे नहीं। समझ में आया? यह कहा न? यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष में हम कहते थे। सम्प्रदाय में (कहते थे)। सम्प्रदाय से हमें कोई सम्बन्ध नहीं था, हमको तो सत्य से सम्बन्ध है। और कोई भी यदि थोड़ा-सा विपरीत कहे और हमारे पर आक्षेप करेगा, उसी क्षण सम्प्रदाय छोड़ देंगे। आहा! सम्प्रदाय में आये हैं; इसलिए बन्धन में आ गये ऐसा है नहीं। सम्प्रदाय के अनेक प्रकार हो, वह हमें मान्य नहीं है। वही कहा है, देखो न!

'जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी' आहाहा! पहले यह डाला है भाई ने। **'जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी।'** आहा! **'विनसी मिथ्यात मोहनिद्रा की ममारखी।'** जिसे भ्रमणा का नाश हुआ है। राग मेरा है, पर्याय जितना मैं हूँ, ऐसे मिथ्यात्व का तो नाश हुआ है। **'सैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयौ'** जैनशासन की शैली फैली। निश्चयनय, व्यवहारनय का विषय, वह जैनशासन की शैली है। समझ में आया? और समन्तभद्राचार्य तो स्तुति में तो वहाँ तक कहते हैं, कहा था न? चौबीस स्तुति। समन्तभद्राचार्य ने चौबीस स्तुति की। उसमें तो ऐसा कहा है, प्रभु! मुझे आपकी भक्ति का व्यसन हो गया है। क्योंकि बारम्बार मेरा विकल्प आपके बहुमान में आता ही

है। अशुभराग नहीं, शुभराग में भी तेरी भक्ति का मुझे बारम्बार विकल्प आता है। मुझे व्यसन हो गया है, ऐसा चौबीस स्तुति में लिखा है। समझ में आया?

सैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयौ
गरवकौ त्यागी षट-दरवकौ पारखी।

भेदज्ञान है। यह प्रतिमा! आहाहा! यह वीतरागमुद्रा, ऐसे लक्ष्य करके वीतरागभाव याद आता है, केवली याद आते हैं। समझ में आया? सिद्ध का भी प्रश्न हुआ था। पहले जब हम (संवत्) २०१३ के वर्ष में मुम्बई गये न? पहली सम्मेदशिखर की यात्रा थी। एक स्थानकवासी ने प्रश्न किया, महाराज! यह प्रतिमा और यह यात्रा क्या है? भाई! यात्रा का अर्थ ऐसा है कि जहाँ से भगवान, मुनि, सन्त मोक्ष जिस क्षेत्र से पधारे हैं, उस क्षेत्र में ऊपर भगवान विराजमान हैं। आया न?

'गरवकौ त्यागी षट-दरवकौ पारखी...' धर्मी को तो रागादि का अहंकार जिसको छूट गया है। पुण्यभाव है। परन्तु गर्व छूट गया है कि पुण्यभाव मेरा है। स्वामित्व छूट गया है, धनीपता छूट गया है। भगवान की भक्ति का भाव (आता है), परन्तु गर्व छूट गया है। आहाहा! समझ में आया? तो वह जिनप्रतिमा यथार्थ रीति मान सकता है। और परमात्मा जिसने मोक्ष लिया है, वह सिद्ध की बात है। जिस क्षेत्र से सिद्ध हुए उस क्षेत्र में ऊपर विराजते हैं। शत्रुंजय। तीन सन्त मोक्ष पधारे। उस स्थान में ऊपर मोक्ष में है। समश्रेणी में जाते हैं न। सीधी श्रेणी-समश्रेणी। धर्मराजा, भीम और अर्जुन तीन तो देह छोड़कर मुक्ति में पधारे। वहाँ शत्रुंजय में ही ऊपर सादि-अनन्त काल (विराजते हैं)। वहाँ जाकर स्मरण करना, वह यात्रा है। यहाँ भी प्रतिमा को देखकर भगवान का स्मरण करना, सर्वज्ञ का स्मरण करना। आहाहा! समझ में आया?

'आगमकै अच्छर परे हैं जाके श्रवनमैं' वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि जिसके कान में पड़ी है। सन्तों की बात चलती है। **'हिरदै-भंडारमैं समानी वानी आरखी'** जिसके हृदय में वीतराग की वाणी आरसी के समान घुस गयी है। आहाहा! **'कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी, सोई जिन प्रतिमा प्रवानै जिन सारखी।'** बनारसीदास कहते हैं। यहाँ (पद-२ में) यह आया। **'जाके आगे इन्द्र की विभूति दीसै तिनसी।'** आहाहा! भगवान की मुद्रा देखते हैं तो वीतराग केवलज्ञान याद

आते हैं। जिसकी मुद्रा देखकर **'केवली की मुद्रा याद आवै जहां, जाके आगै इन्द्र की विभूति दीसै तिनसी।'** इन्द्र की विभूति भी वहाँ एक छिलके समान दिखे, ऐसी भगवान की प्रतिमा का दर्शन करनेवाले को ऐसा भाव होता है। आहाहा! समझ में आया? यह मुद्रा बहुत अच्छी है। ओहोहो! शान्त! कितनी है? पाँच फीट? सवा पाँच फीट, सवा पाँच फीट। मानो साक्षात् भगवान विराजते हों! कहा न? जिनप्रतिमा जिन सारखी। आहाहा!

धर्मी का प्रेम यदि झुकता है तो भगवान की प्रतिमा के दर्शन में झुकता है। वह भाव आता ही है। है शुभ। वही बात चलती है अपने। परन्तु शुद्ध की दृष्टि में पाप से बचने को ऐसा शुभभाव आये बिना रहे नहीं। छठे गुणस्थान तक मुनि को भी ऐसा भक्ति का भाव आता है। वह द्रव्यपूजा नहीं करते। परन्तु भावपूजा का भाव तो उनको भी आता है। उसकी मर्यादा इतनी है। वह यहाँ कहते हैं।

'जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं' 'जाकौ जस जपत...' उसका जस वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव अरहन्त परमात्मा, ऐसा जस जपत **'प्रकास जगै हिरदेमैं'** ज्ञान की ज्योति-प्रकाश अपने में प्रगट होती है। यह कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जैनदर्शन को समझना... जैनदर्शन अर्थात् वस्तु का स्वभाव अलौकिक है। और दिगम्बर दर्शन, वही जैनदर्शन है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा पुकार करते हैं। आहाहा! **'सोई सुद्धमति होई हुती जु मलिनसी।'** कहते हैं, वीतराग मुद्रा सर्वज्ञ की प्रतिमा ऐसी, जैसे सर्वज्ञ थे... आतमज्ञान कहते हैं न? आत्मज्ञान जिसको हुआ, आत्मधर्म, आत्मा जिसको पूर्ण प्रगट हुआ, ऐसी प्रतिमा की भक्ति का बहुमान आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ आत्मधर्म की बात तो चलती है। नरसिंह महेता ऐसा कहते हैं न, 'जहां लगी आत्मतत्त्व चिहन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' भगवान आत्मा क्या चीज़ है, उसका ज्ञान और अनुभव बिना जो कोई साधन आदि करते हैं, पूजा, भक्ति, व्रत, तप आदि, वह सब निरर्थक है। बात सूक्ष्म है, भगवान! आत्मधर्म की यहाँ तो बात चलती है। आत्मज्ञान की बात चलती है।

जिसको यहाँ आत्मज्ञान और धर्म का भान हुआ, उसको प्रतिमा में, जिसको पूर्ण सर्वज्ञता प्रगट हुई, दूज उगी तो पूनम होती ही है, दूज उगी और पूनम नहीं हो ऐसा होता

नहीं। वैसे आत्मज्ञान हो और बाद में सर्वज्ञपद नहीं आये, ऐसा होता ही नहीं है। तो केवलज्ञान पाने की चीज़ जिसको हुई, उसको प्रतिमा वन्दनीक है। आहाहा! दूसरी प्रकार, सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी जो है, जो ये परमागम में है, वह सर्वज्ञ की वाणी उत्कीर्ण की है। वह दूसरी गाथा में आया है। त्रिलोकनाथ आत्मा जहाँ वीतराग सर्वज्ञ दशा अन्दर प्रगट करते हैं, आत्मज्ञान उपरान्त जो पूर्ण केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, उसके मुख से इच्छा बिना वाणी निकलती है, वह वाणी यह है। तो सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी भी, प्रतिमा जैसे पूज्य है, वैसे वह भी पूज्य है। आहाहा! बात तो भाई, कहाँ से कहाँ आ गयी है। सूक्ष्म बात है। आहाहा!

कहते हैं, **'सोई सुद्धमति होई...'** भगवान की प्रतिमा देखकर शान्त... शान्त... शान्त... अविकारी मुद्रा, निर्दोष आनन्दकन्द की मुद्रा जहाँ देखे, मति में मलिनता हो, वह टाल सके, ऐसी मति हो जाती है। समझ में आया? धन्नालालजी! **'सोई जिनकी छवि सुविद्यमान जिनसी।'** ये बनारसीदास महा अध्यात्म कवि! अभी भाई को पुस्तक दिया था न? कौन से कवि? दुल्ला कवि। फाग को अभी दिया था। ... पुस्तक दिया तो वह बहुत खुश हो गये। अभी आये थे न। दो दिन पहले आये थे। दुला फाग। आपने मुझे पुस्तक दिया... (उसको) कहा, वह महा परम अध्यात्म कवि है। (तो कहा), हाँ, ऐसा है। मैंने लिखा है कि... दिल्ली का बड़ा वो... बड़ा मकान—मन्दिर बनाया है। बिरला, बिरला। भूल गये। अभी आये थे न। पुस्तक तो पहले दिया था। पढ़कर उसे लगा, ओहो! बापू! ये तो लौकिक चीज़ अन्तर के घर की है, यह कोई बाहर की चीज़ नहीं, उस चीज़ को मैंने उसको लिखा। कहा था न? अध्यात्म रामायण उसने लिखी है, उसे मैंने बिरला को लिख दी है। अध्यात्म रामायण आत्मा में विराती है। ऐसा उसमें लिखा है। बनारसीदास में श्लोक है न? इसमें है? इसमें नहीं होगा। उसमें बनारसी विलास में है। अभी आया था। ... गरासदार है, घर में गरास है। यहाँ अभी आया था और पुस्तक दिया था तो बहुत खुशी हुई। भाई! प्रभु! यहाँ तो आत्मा की यह बात है। यहाँ कोई सम्प्रदाय या बाहर की चीज़ है नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसी प्रतिमा जिनप्रतिमा जब हो तो धर्मीजीव को (उसे) देखने से उसको आह्लाद और शुभभाव निर्मल होता है। समझ में आया? लो, इतनी बात तो भगवान

की प्रतिमा (की) आयी न, (इसलिए भी)। रामजीभाई न कहा।

अब, अपने यहाँ चलता है। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त वनवासी थे। वन में रहते थे। दो हजार वर्ष पहले हुए। आत्मज्ञान और आत्मदर्शन में मस्त थे। अन्तर आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा का... आहाहा! मुनि तो उसको कहे, अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी मस्ती (जमी है), इस मस्ती में यह शास्त्र लिख दिया है। कहते हैं कि धर्मी जीव पहले जब धर्म प्रगट होता है तो आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु ज्ञान की मूर्ति आत्मा है, देह से तो भिन्न है, यह तो मिट्टी है। कर्म जो अन्दर पुण्य-पाप का बन्धन है, वह भी भिन्न जड़ चीज़ है। नारियल होता है न? नारियल। नारियल नहीं? श्रीफल। श्रीफल में ऊपर का छिलका है, वह भिन्न चीज़ है, अन्दर काचली है, वह भिन्न चीज़ है और काचली ओर का लाल छिलका खोपरापाक करते हैं तो निकाल देते हैं न, वह लाल छिलका भिन्न है और अन्दर में खोपरा सफेद मीठा है, वह श्रीफल भिन्न है। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा में... यह शरीर तो ऊपर का छिलका है। समझ में आया? जैसे वह छाल है न? छाल। छाल कहते हैं न, हिन्दी में क्या कहते हैं? छिलका। यहाँ हमारे छाला कहते हैं। बाई पीसे न? फिर आटा बाहर निकालती है। यहाँ तो छाल कहते हैं, छोटी उम्र में सुना है। यह शरीर छिलका है, अन्दर कर्म रजकण सूक्ष्म पुण्य-पाप के पड़े हैं, वह काचली है। काचली को क्या कहते हैं? वह काचली है। और अन्दर में पुण्य और पाप का जो विकल्प उठता है, वह लाल रंग का छिलका है। भगवान आत्मा उससे अन्दर भिन्न है। आहाहा! श्रीफल कहते हैं न उसको? श्रीफल। आहाहा! भाई! तेरी चीज़ (ऐसी है)।

श्री-स्वरूप की लक्ष्मीरूपी अन्दर फल पड़ा है। आहाहा! अरे! उसने कभी विचार किया नहीं। अनन्त काल हुआ, अनन्त काल हुआ। चौरासी में भटकते-भटकते मर गया। चैतन्यमूर्ति मेरी चीज़ अन्दर... आहाहा! मैं आनन्द... मीठा कहते हैं न? खोपरा को मीठा कहते हैं न? तो मीठा अर्थात् यहाँ आनन्द है और सफेद में शुद्ध है। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दमूर्ति है। आहाहा! अरे! भाई! शब्द सुनने मिले नहीं, वह कब विचार करे और कब जन्म-मरण का नाश करे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, ऐसा सन्त कुन्दकुन्दाचार्य ने ग्रहण किया और अनुभव किया। मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ। मेरे में जो पुण्य-पाप दिखते हैं, वह छिलका है। वह लाल छिलका जैसे खोपरा की होती है (ऐसे हैं)। बाई जब खोपरापाक करती है तो खमणी में से निकाल देती है। छिलका निकाल देती है, काचली निकालती है, परन्तु वह (लाल) छिलका भी निकाल देती है तो सफेद खोपरापाक होता है। ऐसे भगवान आत्मा... यह तो दृष्टान्त दिया।

सिद्धान्त—यह शरीर छिलका मिट्टी धूल है, उससे मैं भिन्न हूँ। आहाहा! अन्दर कर्म का रजकण जो पुण्य का पड़ा हो तो यह लक्ष्मी आदि मिले। पाप के पड़े हो तो लक्ष्मी आदि टले, नाश हो जाए। ऐसे रजकण अन्दर है, वह काचली समान जड़ है। वह मैं नहीं। और पुण्य और पाप, खोपरा का जो लाल छिलका है, (वैसे हैं)। भगवान सूक्ष्म बात है, प्रभु! उसने अनन्त काल में अपनी चीज़ की पहचान की नहीं और सब पर की पंचायती की। 'घर का छोकरा घंटी चाटे और पड़ोसी को आटो।' वैसे अपनी चीज़ क्या है, उसकी खबर नहीं और दुनिया की पंचायती की। कहते हैं,... हमारे यहाँ कहते हैं, घर का छोकरा चक्की चाटे। आप में भी कुछ होगा। आपकी हिन्दी भाषा होगी। हमारी तो यहाँ गुजराती भाषा है न। क्या हिन्दी है, ब्राह्मण को आटा दे और घर में कुछ नहीं। वैसे परमात्मा त्रिलोकनाथ सन्त और मुनि कहते हैं कि तेरी चीज़ की तूने पहचान की नहीं, उसका प्रयत्न किया नहीं, उसकी सावधानी कभी की नहीं। दुनिया की पंचायती की और दुनिया में होशियार और पण्डित हो गया।

यहाँ वह कहते हैं, जिसे ऐसे आत्मा का भान हुआ, वह ऐसा विचार करता है। यहाँ नव पदार्थ आये न? भाई! नव पदार्थ की विचारणा करते हैं। आहाहा! है? ९७ गाथा है। देखो! दूसरी पंक्ति। नव पदार्थ। अपने शुद्ध परिणाम होने के कारण नव पदार्थ की विचारणा करते हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! कहते हैं, नव पदार्थ में जीव आत्मा पहला है। नौ में जीव पहला है। जीव पदार्थ का विचार धर्मीजीव ऐसे करता है कि मैं शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द हूँ। आहाहा! सच्चिदानन्द चीज़ वह मैं हूँ। सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो कहीं से आयी हुई बात यहाँ सोनगढ़ में पड़े हैं। दरबार! दरबार की जमीन में यहाँ आ गये। कहाँ से कहाँ थे। ओहो! वह देह की चीज़ भिन्न है। आहाहा!

देखो न! देह तो एक क्षण में गिर जाता है न। गृहस्थ अभी आये थे न? शान्तिलाल खुशाल, गोवावाले। दो अरब चालीस करोड़ रुपये उसके पास है। अभी। दो अरब। अर्थात् दो सौ चालीस करोड़। भाई! ये आपकी भाषा (भूल जाते हैं)। २४० करोड़। शान्तिलाल खुशाल है। उसकी बहन की लड़की यहाँ है, ब्रह्मचारी है। पचास (ब्रह्मचारी बहनों में) उसकी बहन की लड़की ब्रह्मचारी है और दूसरी लड़की अभी ब्रह्मचारी होनेवाली है। इस (महोत्सव के) तेरस के दिन। भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा है न। ग्यारह लड़कियाँ नयी बालब्रह्मचारी होनेवाली है। ५१ लड़कियाँ बालब्रह्मचारी है। बालब्रह्मचारी। और ये चिन्तनभाई की लड़की भी बालब्रह्मचारी है। ५१ तो है, ग्यारह नयी होगी। उसमें उसकी बहन की लड़की है। उसके पिता आये हैं। पोपटभाई है। ये रहे पोपटभाई, लो। शान्तिलाल के बहनोई है। शान्तिलाल खुशाल के सगे बहनोई। उसके पास दो अरब चालीस करोड़। धूल में भी कुछ काम नहीं आये और अभी मर गया। उसकी स्त्री को... क्या कहते हैं? हेमरेज हो गया था, हेमरेज। मुम्बई लाये, गोवा से। रात को डेढ़ बजे उठे, मुझे दर्द होता है, मुझे थोड़ा दर्द होता है। ऐसा कहा, डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आये, उसके पहले तो (चल बसे)। देह की स्थिति पूरी होने के काल में डॉक्टर तो क्या, इन्द्र उतरे तो भी फेरफार नहीं कर सके। तेरे दो अरब और चालीस करोड़ ... हैं। दस मिनिट में समाप्त। आये तब तक तो देह में कुछ नहीं। आहाहा! देह की स्थिति छूटने के काल में देह छूटेगा ही। वह कहाँ उसकी चीज़ है। समझ में आया? जो छूट जाए वह उसकी चीज़ नहीं और छूटे नहीं वह उसकी चीज़ है। वह तो आनन्द और ज्ञान स्वभाव की चीज़ है जो कभी छूटती नहीं। यह शरीर तो छूट जाता है। समझ में आया? क्षण में समाप्त हो गया। समाप्त! फिर गोवा ले गये। इज्जत बड़ी है न। चालीस लाख का तो मकान है। दस-दस लाख के दो मकान। चालीस लाख का मकान। धूल में मकान क्या करे? वह तो जड़ मिट्टी धूल है। वहाँ ले गये फिर फूल इत्यादि डाले होंगे। इस जीववस्तु को जाने बिना ऐसी चीज़ अनन्त बार मिली तो आत्मा को कुछ लाभ हुआ नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि मैं तो चैतन्य आनन्द का नाथ हूँ। मेरे में ये पुण्य और पाप के विकल्प उठते हैं, वह भी मैं नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व है, विकारतत्त्व है, बन्धतत्त्व है,

संयोगीभाव है। आहाहा! ऐसे धर्मी अपने आत्मतत्त्व का विचार ऐसे करता है। आहाहा! मैं जो आत्मा ध्रुव हूँ। ओहोहो! मैं जो चीज़, पर्याय—वर्तमान दशा ऐसा निर्णय करती है, मैं तो नित्य अविनाशी आत्मा हूँ। मैं कभी उत्पन्न हुआ नहीं, मेरा कभी नाश होता नहीं। ऐसा मैं अविनाशी आत्मतत्त्व हूँ। 'आतमराम अविनाशी आव्यो अेकलो, आतमराम अविनाशी आव्यो अेकलो' अकेला आया, बाहर में कोई साथ में नहीं था। 'अनन्त दर्शन ज्ञान तारूँ रूप जो' आहाहा! भाई! तेरा रूप तो अन्दर बेहद ज्ञान है और दर्शन, आनन्द तेरा रूप है। 'अन्य भाव तुझे स्पर्शे नहीं।' पुण्य, पाप और शरीर मेरी चीज़ को छूते नहीं, ऐसी मेरी चीज़ है। ऐसा धर्मीजीव अपने आत्मा की ऐसी भावना करते हैं। आहाहा! 'ज्ञायक भडवीर गणाय जो' वह तो ज्ञायकतत्त्व भडवीर है। आहाहा! परन्तु बैठे कैसे पामर को? एक बीड़ी के बिना चले नहीं। दो बीड़ी पीये तब तो... क्या कहते हैं? सिगरेट। तब तो उसे पाखाने में जंगल (दस्त) उतरे। उसे ऐसा कहे कि तेरा आत्मा आनन्द का नाथ है। कहाँ तू अटक गया है? तुझे तेरी खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि धर्मीजीव अपने आत्मा का ऐसा विचार करते हैं। आहाहा! मेरे धाम में तो आनन्द पड़ा है न। मैं तो स्वयं ज्योति सुखधाम। मैं तो स्वयं चैतन्यज्योति। चैतन्यप्रकाश की मूर्ति मैं हूँ और मेरे में तो आनन्द का धाम, आनन्द का स्थान मैं हूँ। आनन्द की उत्पत्ति हो तो ऐसा मैं हूँ। पर में कोई आनन्द-फानन्द है नहीं। पैसे में है नहीं, स्त्री में है नहीं, आबरू में है नहीं, धूल में कुछ है नहीं। आनन्द तो सच्चिदानन्द प्रभु मेरा आनन्द मेरे पास है। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी है, फिर भी मृग को उस कस्तूरी की कीमत है नहीं। थोड़ी गुजराती आ जाती है। नाभि में कस्तूरी होने पर भी मृग को कीमत है नहीं। वैसे भगवान आत्मा के अन्दर आनन्द और शान्ति पड़ी हैं, परन्तु पामर को उसकी कीमत होती नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मतत्त्व का विचार पहले करते हैं।

दूसरी अजीव। शरीर आदि अजीव है, मिट्टी है, पैसा धूल है—ऐसा धर्मी विचार करते हैं। आहाहा! सेठ! ये सब करोड़पति बैठे हैं। चार करोड़ है इसके पास। चार भाई के पास चार करोड़। धूल में धूल, हों!

मुमुक्षु : आप तो अभी न कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, लोग कहते हैं न। उनके मकान में ही ठहरे थे न पिछले वर्ष। कलकत्ता उनके मकान में ठहरे थे। रतनभाई ... छोटे भाई। अपने वच्छराजजी। केशुभाई है न? अपने वच्छराजजी ने मकान बनाया न? गोगीदेवी। वच्छराजजी थे न, उनके पुत्र हैं। वच्छराज सेठ। दरबार तो जानते हैं। वच्छराज सेठ तो यहाँ रहते थे। मकान बनाया न? उनके पुत्र हैं, बड़े पुत्र। यहाँ तो कहते हैं कि करोड़ हो या अरब हो, धर्मी विचार करते हैं कि वह तो अजीव होकर रहा है। मेरी चीज़ होकर रही नहीं। आहाहा! समझ में आया? सेठ! ...दो भाई तो छोटे मर गये बेचारे, हाँ! वच्छराज सेठ के चार पुत्र। ये बड़े हैं। उनसे दो छोटे मर गये। छोटी उम्र में मर गये। करोड़ों रुपये थे। उसमें धूल क्या करे? आहाहा!

यहाँ धर्मी ऐसा विचार करते हैं, लक्ष्मी अजीव होकर रही है, शरीर भी जड़ होकर रहा है और पुण्य-पाप का भाव जो अन्दर है, वह मलिनभाव होकर रहा है, मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यह धर्मी की विचारधारा की बात करते हैं। है तो यह विकल्प की बात, हों! परन्तु अन्दर शुद्ध चैतन्य की दृष्टिपूर्वक अशुभ से बचने को ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। पुण्य-पाप का विचार करते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो, वह पुण्य है। उससे संयोग मिलता है। उससे आत्मा को लाभ नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? नरसिंह महेता ने कहा न? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' तेरी पूजा, भक्ति, व्रत, तप, दान और दया सब शून्य है। दरबार! वह बात यहाँ चलती है, लो! आत्मधर्म की बात। आहाहा! तेरी आत्मा की चीज़ में आनन्द पड़ा है, ऐसा अनुभव होने के बाद उसका पुण्य-पाप का भाव बन्धन का कारण है, ऐसा धर्मी विचार करते हैं। आता है, आता है, परन्तु है बन्धन। और ये पुण्य और पाप का भाव दोनों भावबन्ध है।

जैसे स्फटिकमणि में, स्फटिकमणि में फूल लाल-पीले हो तो लाल-पीली झांई वहाँ दिखती है। वह लाल-पीली झांई स्फटिकमणि की नहीं। अपनी चीज़ नहीं है वह। वैसे भगवान आत्मा चैतन्य स्फटिकमणि जैसा, ऐसा भान हुआ है, वह विचार करते हैं कि मेरे में जो पुण्य और पापभाव है, वह कर्म की झलक विकार है। आहाहा! समझ में आया? 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों जीव स्वभाव रे... श्री वीरे धर्म प्रकाशियो,

श्री जिन जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे...' पुण्य और पाप के विकल्प से रहित मेरी चीज़ है, ऐसा भगवान ने उसको धर्म कहा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! अपूर्व बात है।

स्वर्ग में भी अनन्त बार गया, राजा भी अनन्त बार हुआ। अरबोंपति। महीने की अरबों की कमाई। ऐसा राजा अनन्त बार हुआ है। अनादि का है। आहाहा! आत्मा कोई नया हुआ है? अनादि से है। ऐसी सम्पदा भी अनन्त बार मिली थी। उसमें क्या हुआ? भटकने का भाव ममता हुई और भटककर मर गया। मैं तो मेरी चीज़ में जो पुण्य-पाप का भाव दिखता है, वह मलिनता का भाव है, ऐसा विचारते हैं। आहाहा! मैं तो निर्मलानन्द चैतन्य स्फटिक हूँ।

एक बार कहा था न? भाई! स्फटिक रत्न देखा था। वहाँ जामनगर। जामनगर में छह लाख का सोलेरियम है न? क्या कहते हैं? सोलेरियम है छह लाख का। वह तो उस समय की बात है। (संवत्) १९९०। जब हम यहाँ १९९१ में आये न? १९९१ में फाल्गुन कृष्ण तृतिया के दिन यहाँ आये हैं। इस फाल्गुन कृष्ण में ३९ वर्ष पूरे होंगे। उस मास में हम वहाँ थे। जामनगर में बड़े डॉक्टर हैं न? प्राणजीवन डॉक्टर। २५०० का पगार। उस दिन! मासिक २५००। उस दिन! कितने? ३९ वर्ष हुए। ४० वर्ष पहले। उसके पास स्फटिक था। १००वीं गाथा सुनने आये थे। बड़े आये थे, बड़े पण्डित आये थे, बड़े दीवान वहाँ आये थे। महेरबानजी पारसी दीवान थे। एक पारसी दीवान था, बहुत नीतिवान आदमी। उसका १०००-१२०० रुपये का वेतन था। दरबार ने २०० रुपया वेतन बढ़ा दिया। दरबार के पास महेरबानजी पारसी गये (और कहा), किसने बढ़ाया? २०० रुपया ज्यादा वेतन में किसने चढ़ाया? मेरा वेतन तो १००० रुपया है। २०० किसने चढ़ाया? दरबार ने कहा, मैंने चढ़ाया। क्यों? क्या करने को? कभी राजा का काम आये तो ढीला छोड़ दूँ ऐसी बात है? मैं वह नहीं करूँगा। निकाल दो २०० रुपया। बहुत नीतिवान आदमी। वह वहाँ सुनने आया था। १००वीं गाथा चलती थी, भाई! और डॉक्टर (आते थे)। डॉक्टर ने कहा, महाराज! मेरा सोलेरियम देखने पधारिये। आपको (दृष्टान्त देने में) लागू पड़े ऐसा है। सवा लाख का सोलेरियम। अभी तो एक करोड़ का होवे। उसके पास इतना बड़ा स्फटिक रत्न था। बताया, यह स्फटिक।

वह स्फटिक की जैसी निर्मलता है, वैसे भगवान आत्मा निर्मलानन्द पुण्य-पाप के मैल से रहित है। पुण्य-पाप तो मेरे में मैल है। ऐसा धर्मी विचार करते हैं। आहाहा! और उसका फल मिलता है, वह अजीव है। पुण्य से लक्ष्मी मिले, स्त्री अनुकूल मिले, लड़का अनुकूल हो। यह सब पुण्य का फल जड़ पर है। मेरे में उसका कोई सम्बन्ध है नहीं। ऐसे धर्मी अपने पुण्य-पाप के फल का भी विचार करता है।

ऐसे नव तत्त्व। संवर का विचार करते हैं। मुझे धर्म कैसे होता है? पुण्य-पाप के राग से भिन्न मेरी चीज़ की मैं दृष्टि करता हूँ और उसमें लीन होता हूँ, उतना मुझे धर्म है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! अपूर्व! पूर्व में अनन्त काल में कभी नहीं किया है। अनन्त काल में किया, वही किया। बारम्बार करता है, वह दशा तो संसार में भटकने की है। मैं आत्मा। आहाहा! अपने भेदज्ञान का (विषय ही) चलेगा, जब बहुत लोग आयेंगे, (तब) संवर अधिकार चलेगा। यहाँ कहते हैं, नव तत्त्व में संवर है। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध। वह आ गया।

अब संवर। आत्मा में पुण्य और पाप के विकल्प का रुक जाना। जैसे जहाज में छिद्र में पानी आना रुक जाए। जहाज में छिद्र हो जाता है न? पानी आना रुक जाए। वैसे भगवान आत्मा में पुण्य-पाप का आस्रव, विकल्प राग रुक जाए और आत्मा में शुद्धता प्रगट हो, उसका नाम संवर और धर्म कहते हैं। ऐसे समकित दृष्टि नव तत्त्व में ऐसा विचार करते हैं। निर्जरा का विचार करते हैं। आहाहा! मेरी चीज़ में शुद्ध उपयोग मैं लगाता हूँ। शुभ-अशुभ से रहित जो पवित्र शुद्ध उपयोग है, वही निर्जरा है। वही शुद्धि की वृद्धि है। समझ में आया? संवर है, वह शुद्धि है और बाद में निर्जरा होती है, वह शुद्धि की वृद्धि है। और जब मोक्ष होता है तो शुद्धि की पूर्णता होती है। आहाहा! शुद्धि, शुद्धि की वृद्धि और शुद्धि की पूर्णता, वह संवर, निर्जरा और मोक्ष। ये तीन तत्त्व हैं। अरे रे! कभी अपनी चीज़ में क्या है और पर क्या है, इसका कभी विचार किया नहीं। आहाहा! वह विचार कर, कहते हैं।

मोक्ष। आत्मा में पूर्ण शुद्धता पड़ी है, वह पूर्ण शुद्धता प्रगट हो जाए, पूर्ण आनन्द प्रगट हो जाए, पूर्ण ज्ञान प्रगट हो जाए, उसका नाम मोक्ष। मोक्ष कोई दूसरी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ,
समझाव्यो संक्षेपमां सकल मार्ग निर्ग्रंथ।

श्रीमद् राजचन्द्र, जिन्हें जातिस्मरण बहुत भव का था। छोटी उम्र में पूर्वभव का ज्ञान (हुआ था)। समझ में आता है? श्रीमद् राजचन्द्र ववाणिया के थे, चल बसे। जिन्होंने गाँधीजी को समझाया था। विलायत से आने के बाद। विलायत से आकर दो घण्टे गाँधीजी से बात की। इनकी २२ वर्ष की छोटी उम्र। जैसी बात कही, ... ओहोहो! उनको ख्रिस्ती का असर था। गाँधीजी को ख्रिस्ती धर्म का अरस हो गया था। उसमें ये मिले। दो घण्टे बात की, ऐसा था, ऐसा-वैसा। दो घण्टे बात की। ओहोहो! हिन्दुस्तान में भी ऐसे आत्मा पड़े हैं! ख्रिस्ती धर्म... आत्मा का धर्म हिन्दुस्तान में ही है। वहाँ विलायत में गोरी चमड़ी और बड़े बँगले, धूल में वहाँ कुछ नहीं है। श्रीमद् स्वयं कहते हैं। समझ में आता है? आहाहा!

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम
बीजुं कहीये केटलुं कर विचार तो पाम।

३३ वर्ष में देह छूट गया। ३३ वर्ष, हों! बहुत छोटी उम्र में। आहाहा! उन्होंने यह कहा, इस आत्मा में मोक्ष होता है, वह क्या चीज़ है? 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता।' आत्मा की शुद्ध पूर्ण दशा सोलह कला से खिल जाए, चन्द्रमा जैसे सोलह कला से पूर्णिमा के दिन खिलता है; वैसे भगवान आत्मा अपनी अन्तर शक्ति में से विकास करके पूर्ण शुद्धदशा प्रगट हो जाए, उसका नाम मोक्ष। अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता प्राप्त हो, उसका नाम भगवान मोक्ष कहते हैं। इस मोक्षतत्त्व का विचार धर्मीजीव इस प्रकार करता है। आहाहा! ये नव पदार्थ हुए।

सप्त तत्त्व,... सप्त तत्त्व में पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध में डाल देते हैं। तो नव का सप्त होता है। और **चौदह जीवसमास, चौदह गुणस्थान,...** वह थोड़ी सूक्ष्म बात है। ... उतनी बात है। थोड़ी सूक्ष्म है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जीव होते हैं न? उसके पर्याप्त और अपर्याप्त चौदह भेद है। उसका विचार करे। और चौदह गुणस्थान का विचार करे। आहा! जैसे सीढ़ी होती है न? सीढ़ी। ऊपर जाने को। वैसे चौदह सीढ़ी है। धर्म की अधर्म की दशा के चौदह भेद है। उस चौदह भेद का

सम्यग्दृष्टि विचार करते हैं।

पहले मिथ्यात्व में तो ऐसा है, अज्ञानी पुण्य और पाप को अपना मानता है और मिथ्यात्वभाव का सेवन करता है। आहाहा! मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि। शरीर मेरा, पुण्य मेरा, लक्ष्मी मेरी, पुत्र-पुत्री मेरे, ये सब मान्यता मिथ्या भ्रम है। आहाहा! तेरा हो, वह तेरे से भिन्न क्यों रहे? और भिन्न रहे, वह तेरी चीज़ कहाँ से हो गयी? क्षण में चले जाते हैं। देखो न! अभी तो देखो न... क्षण में चल बसे, लो! पुत्र सब पड़े रहे। धीरुभाई के पिताजी। धीरुभाई की पत्नी अभी एक महीने पहले चल बसी। दस मिनिट में। किसी ने कुछ दिया नहीं और किसी को दिया नहीं। यहाँ पन्द्रह दिन रह गयी थी। कुछ नहीं था। एकदम उठी। साढ़े दस? कितने बजे? ढाई बजे। अभी एक महीने पहले। धीरुभाई, कल उनकी माताजी चल बसी न। मुम्बई में बंगड़ी का कारखाना है। (स्त्री बोली), मुझे दुःखता है। बाहर आये। मकान के बाहर। यहाँ परमागम के महोत्सव में आने का बहुत भाव, बहुत भाव था। वह बोली, परमागम की जय! मैं नहीं आ सकती, मैं नहीं आ सकूँगी। आहाहा!

आज एक महीना हुआ। २४-२५ दिन पहले। यहाँ पन्द्रह दिन रह गयी थीं। जब सोना का पहले था न? तब उनकी ओर से सोना दिया है। उनकी ओर से दस हजार का सोना दिया था। वह महिला उस समय वहाँ खड़ी थी। मरते समय यहाँ आने का भाव बहुत था (तो बोली), परमागम के महोत्सव की जय! मैं आ नहीं सकूँगी। आहाहा! धीरुभाई के... हार्ट का दर्द कहते हैं न? क्या कहते हैं? हार्ट। हृदय में रक्त सूख गया। सांस नहीं ले सके। ... आहाहा! गुरुदेव की जय! ऐसा बोली। उसके वहाँ मन्दिर है। मलाड मन्दिर के अधिष्ठाता है। बाई दर्शन करने बाहर निकली। दस मिनिट में समाप्त। छोटी लड़की ने कहा, माँ, नहीं जाना है। जाती हूँ, ऐसा कहा। जाती हूँ। यह बन्द हो गया। छोटी लड़की ने कहा, माँ, नहीं जाने दूँगी। ऐसा बोली। आत्मा अमर है। बस, इतना बोली। देह छूट गया। २४-२५ दिन हुए। सुना था न। आत्मा अमर है। आत्मा मरता-फरता नहीं। आहाहा! आत्मा का जन्म होता नहीं और आत्मा मरे नहीं। अविनाशी आत्मा चिदानन्द प्रभु हूँ। आहाहा! ऐसी पीड़ा में भी उतना याद आना। बहुत पीड़ा होती है, ऐसा कहते हैं। ये हार्ट की। रक्त सूख जाता है और सांस अन्दर से चलता नहीं।

मुमुक्षु : ... अभी अनुभव हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा! हो गया आपको? दामोदरभाई का मकान है न? दामोदरभाई का मकान। नदी के किनारे। यहाँ रहते न? अमृतलाल रहते थे। ... तीन मंजिल का मकान था, वहाँ रहते थे। पत्नी मर गयी। भाई अकेला था, उसे ऐसा है। अभी तो वहाँ रहते हैं। झरिया में। खाने-पीने की अनुकूलता रहे, इसलिए वहाँ रहते हैं। बहुत बार कहा है। ऐसा ही है। अकेले रहे। घर का मकान, घर का किराया बहुत पैसे आते हैं। अब अकेले हैं। अच्छी वीशी खाना-पीना और मौज करनी रही। सोनगढ़ छोड़ दिया। समझ में आया?

धर्मी तो ऐसा विचार करते हैं, क्षणभंगुर चीज़ नाश हो जाएगी। वह मेरी चीज़ है नहीं। मिथ्यात्व में तो ऐसा भाव नहीं आता। मिथ्यादृष्टि को तो मेरा है, मेरा है, मेरा है, (ऐसा लगता है)। आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती छह खण्ड का राजा और सोलह हजार देव तो उसकी सेवा करते थे। और एक स्त्री की हजार देव सेवा करते हैं। मरते समय प्रेम में... प्रेम में मिथ्यादृष्टि मूढ़... आहाहा! कुरुमति, कुरुमति ऐसा बोलते-बोलते सातवीं नरक (में चला गया)। अभी सातवीं नरक में है। नीचे सात नरक हैं। सात पाताल हैं। उसमें सातवीं नरक में सर्वोत्कृष्ट पीड़ा और सर्वोत्कृष्ट बड़ी स्थिति। तैतीस सागर की स्थिति। आहाहा! बापू! ऐसे भव उसने अनन्त किये। वह मिथ्यात्व के कारण किये हैं। विपरीत मान्यता। मिथ्यात्व जैसा पाप नहीं और मिथ्यात्व जैसा कोई अधर्म नहीं। ऐसा समकिती जीव विचार करते हैं। ऐसे दूसरा गुणस्थान सूक्ष्म है, तीसरा सूक्ष्म है। चौथा गुणस्थान समकित का है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप, उसका अनुभव होना, उसकी दृष्टि करना, वह चौथा गुणस्थान है। वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। बाद में पंचम गुणस्थान में थोड़ी शुद्धता की वृद्धि होती है। मुनि होता है तो शान्ति की वृद्धि होती है, आनन्द में बहुत रहते हैं, वह मुनिपना है। छठवाँ गुणस्थान। सातवें में अप्रमत्तदशा रहती है। वैसे आठवें से लेकर बारह, तेरह। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है और चौदहवें में अन्तिम स्थिति होकर सिद्ध होता है। ऐसा चौदह गुणस्थान का विचार करते हैं, अपने में वह शुभ विकल्प है। अशुभ से बचने को शुद्ध की दृष्टि रखने से ऐसा भाव आता है। उसको पुण्य और अशुभ से बचने का भाव कहने में आता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ३, शुक्रवार, २४-०५-१९७४
मोक्षपाहुड़ का संक्षेप, भावपाहुड़, गाथा - १०६, ९८-९९, प्रवचन-१५५

छठवाँ पैराग्राफ संक्षेप में नीचे। फिर से। इस संसार की उत्पत्ति कैसे है ? कि **जीवों के ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का अनादिबन्धरूप पर्याय है,...** जड़। **इस बन्ध के उदय के निमित्त से जीव राग-द्वेष-मोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमता है,...** कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में अनादि से मिथ्या अर्थात् विपरीत श्रद्धा और राग-द्वेष के परिणामरूप से परिणमता है। **इन विभावपरिणति के निमित्त से...** मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष के भाव की परिणति के निमित्त से **नवीन कर्मबन्ध होता है,...** नया कर्मबन्धन होता है। **इस प्रकार इनके सन्तान परम्परा से...** इस प्रकार से सन्तान परम्परा—अनादि प्रवाहरूप से। **जीव के चतुर्गतिरूप संसार की प्रवृत्ति होती है,...** इन चार गतियों में अनादि से नरक में-नारकी में, तिर्यंच में, मनुष्य में, देव—चार गति है परिभ्रमण की। आहाहा!

तब कोई काल ऐसा आवे... ऐसा। **जब मुक्त होना निकट हो...** मुक्त होने की जिसकी दशा निकट है। **तब सर्वज्ञ के उपदेश का निमित्त पाकर...** लो! सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ है, ऐसे परमात्मा का उपदेश पाकर। अज्ञानी का उपदेश नहीं। जिन्होंने तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा का उपदेश पाकर। भले गुरु से मिले परन्तु वह उनका उपदेश है। सर्वज्ञ परमात्मा ने सर्वज्ञस्वभाव से जो तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा उपदेश आया। उस उपदेश का निमित्त पाकर **अपने स्वरूप को...** अपने स्वरूप को जाने। **कर्मबन्ध के स्वरूप को,...** जाने। कर्मबन्धन है एक निमित्त, उसे भी जाने।

अपनी भीतरी विभाव के स्वरूप को जाने... अपना स्वरूप आत्मा का क्या है, उसे जाने, कर्म का स्वरूप बन्ध का क्या है, वह जाने और बन्ध के सम्बन्ध में विभाव होता है, उसे जाने। **इनका भेदज्ञान हो,...** जब इन तीनों का भेदज्ञान—अपने स्वरूप का आनन्द, ज्ञानस्वरूप; विभाव का दुःखरूप स्वरूप और कर्म का अजीव स्वरूप, ऐसा

जाने। **इनका भेदज्ञान हो, तब परद्रव्य को संसार का निमित्त जानकर...** परद्रव्य जितने हैं, उन्हें तो संसार का निमित्त जाने। आहाहा! क्योंकि स्व भगवान आत्मा स्वद्रव्य का आश्रय ले, तब ही उसका कल्याण होता है। इसलिए परद्रव्य का जितना लक्ष्य हो, वह सब राग और संसार का ही कारण है। आहाहा!

परद्रव्य को संसार का निमित्त (कारण) जानकर इससे विरक्त हो... परवस्तु को संसार के दु:ख का, विकार का निमित्तकारण जानकर उससे विरक्त हो। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़े। परद्रव्य का आश्रय, लक्ष्य छोड़े। क्योंकि परद्रव्य संसार का निमित्तकारण है। इसलिए जिसे मोक्ष का मार्ग प्रगट करना है, वह परद्रव्य के निमित्त का लक्ष्य छोड़े। **अपने स्वरूप के अनुभव का साधन करे...** अपना स्वभाव चैतन्य शुद्ध आनन्द, ज्ञान, उसके स्वरूप का साधन करे, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! **तब इसके बाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापों का त्यागरूप निर्ग्रन्थ पद,...** हो जाये, लो! मुनि हो और बाह्य निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा, उसे बाह्य साधन... अन्तर साधन तो करे, कहते हैं, परन्तु उसे बाह्य साधन में हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना के त्यागरूप निर्ग्रन्थपद-दिगम्बरपद-दिगम्बर दशा साधन होती है।

सब परिग्रह की त्यागरूप... उसे वस्त्र का धागा भी नहीं रहता, वस्त्र का कण भी न रहे, ऐसी मुनिदशा धारण करे, तब **निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारण करे,...** यह अन्तर और बाह्य का साधन बताते हैं। **पाँच महाव्रत, पाँच समितिरूप, तीन गुप्तिरूप प्रवर्ते, तब सब जीवों पर दया करनेवाला साधु कहलाता है।** सब जीवों की, छह काय के जीवों पर जिसे दयाभाव है।

इनमें तीन पद होते हैं—जो आप साधु होकर अन्य को साधुपद की... साधु होकर अन्य को साधुपद की शिक्षा-दीक्षा दे, वह आचार्य कहलाता है... आत्मा के स्वरूप के साधन के पद की शिक्षा और दीक्षा दे, ऐसा कहते हैं, देखा! अन्तरस्वरूप भगवान आत्मा का साधन स्वरूप में साधु को जो हो, उसका ज्ञान और उसकी दीक्षा दे। आहाहा! यह आचार्य। वह **आचार्य कहलाता है...** लो, यहाँ तो दूसरा उपदेश दे, ऐसा नहीं। साधुपद की शिक्षा-दीक्षा दे। आहाहा! वीतरागभाव आचार्य ने स्वयं प्रगट किया

है स्वद्रव्य के आश्रय से। ऐसे वीतरागभाव की शिक्षा और दीक्षा दे। उपदेश भी वीतरागभाव का दे और दीक्षा भी वीतरागभाव की दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह आचार्य कहलाता है।

साधु होकर जिनसूत्र को पढ़े-पढ़ावे... अब उपाध्याय की बात है। **वह उपाध्याय कहलाता है, जो अपने स्वरूप के साधन में रहे, वह साधु कहलाता है,...** आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा के साधन में रहे, उसे साधु कहते हैं। कहो, नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम में रहे, तो साधु—ऐसा नहीं कहा। हो दशा ऐसी भले, परन्तु स्वयं भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप में रहे, उसे साधे, स्वरूप आनन्द शुद्ध पूर्ण वीतरागस्वरूप आत्मा का पर्याय में साधन करे, उसे यहाँ साधु कहा जाता है। आहाहा! **जो साधु होकर अपने स्वरूप के साधन के ध्यान के बल से...** इस प्रकार साधु होकर... अब तीन पद उपरान्त। **अपने स्वरूप के साधन के ध्यान के बल से...** देखा! चैतन्यस्वभाव बलरूप, स्वरूपरूप के साधन के बल से। **स्वरूप के साधन के ध्यान के बल से...** अपना स्वरूप जो शुद्ध आनन्द, उसके ध्यान के बल द्वारा **चार घातियाकर्मों का नाशकर...** कैसी भाषा प्रयोग की है, देखो न! व्यवहाररत्नत्रय करके चार घातिकर्म नाश करे, ऐसा नहीं कहा। बाह्य साधन कहा था पहले पाँच महाव्रतादि। होते हैं, बस इतना। आहाहा! परन्तु मोक्ष का साधन तो अन्तर आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु का साधन अन्तर में करे, उस साधन से चार घातिकर्म का नाश होता है। **केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को प्राप्त हो...** लो! **वह अरहन्त कहलाता है,...** उसे अर्हंत भगवान—णमो अरहंताणं, णमो अरिहंताणं तब उसे कहा जाता है। आहाहा! ऐसा पहले पाँच नवकार में पहला पद है न? वह इस प्रकार से शुद्ध चैतन्यस्वरूप के साधन द्वारा चार घातिकर्म का नाश करके केवलज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ऐसे चार पूर्ण प्रगट करे, उसे अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

तब तीर्थंकर तथा सामान्यकेवली—जिन इन्द्रादिक से पूज्य होता है,... उसमें तीर्थंकर और सामान्य केवली, वे भी **जिन इन्द्रादिक से पूज्य होता है, इनकी वाणी खिरती है...** भाषा देखो! उनकी वाणी खिरती है, ऐसा शब्द प्रयोग किया है, भाई! वे वाणी बोलते हैं, ऐसा नहीं कहा। भाषा कैसी तोल-तोल कर प्रयोग करते हैं न! भगवान

सर्वज्ञ परमात्मा तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हो, तब वह शरीरमात्र रहे, उसमें से वाणी खिरे, ऐसा कहा, देखा! ध्वनि उठे वाणी की आवाज। आहाहा! **वाणी खिरती है...** आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी ने बहुत भरा है। **वाणी खिरती है...** भगवान के मुख से वाणी... अरे मुख से नहीं, वे तो अरिहन्त हों, तब वाणी खिरती है। आहाहा! **जिससे सब जीवों का उपकार होता है,...** वह वाणी सुनकर जगत के प्राणी अपने आत्मा का साधन करते हैं तो उपकार कहा जाता है। आहाहा!

अहिंसा धर्म का उपदेश होता है,... वाणी में अहिंसा धर्म का उपदेश (होता है)। राग की उत्पत्ति होना, वह हिंसा। आहाहा! वस्तु के स्वरूप में वीतरागता भरी है तो वीतरागता की उत्पत्ति हो, वह अहिंसा—ऐसा भगवान ने उपदेश किया। यह अहिंसा। आहाहा! **सब जीवों की रक्षा कराते हैं,...** अर्थात् किसी प्राणी को मारना नहीं, इसका नाम रक्षा। **यथार्थ पदार्थों का स्वरूप बताकर...** जैसा आत्मा का, जड़ का, धर्म का और अधर्म का जैसा स्वरूप है, वैसा बताकर **मोक्षमार्ग दिखाते हैं, इस प्रकार अरहन्त पद होता है...** यह अरिहन्त पद की व्याख्या की। **और जो चार अघातिया कर्मों का भी नाशकर सब कर्मों से रहित हो जाते हैं, वह सिद्ध कहलाते हैं।** परमात्मा शरीररहित हो जाये। शरीरसहित परमात्मा को अरिहन्त कहते हैं, शरीररहित परमात्मा को सिद्ध कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार ये पाँच पद हैं, ये अन्य सब जीवों से महान हैं... ये पाँच पद सब जीवों में महान हैं। **इसलिए पंच परमेष्ठी कहलाते हैं, इनके नाम तथा स्वरूप के दर्शन, स्मरण, ध्यान, पूजन, नमस्कार से अन्य जीवों के शुभपरिणाम होते हैं...** देखो! इन पंच परमेष्ठी के नाम से, इनके स्वरूप का दर्शन, उनका स्मरण, उनका ध्यान, उनका पूजन, उनको नमस्कार, उससे दूसरे जीव को शुभभाव होता है; धर्म होता है—ऐसा नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? **इसलिए पाप का नाश होता है...** शुभ परिणाम होते हैं न! मांगलिक कहना है न! **वर्तमान विघ्न का विलय होता है, आगामी पुण्य का बन्ध होता है,...** लो, तीन बातें हुई। इन पंच परमेष्ठी के स्मरण ध्यान से शुभभाव हो, उससे पाप का नाश होता है, मिथ्यात्व के पाप का तो नाश है ही, जो समकिती है उसे, दूसरे

अशुभभाव का भी उसे, कर्म के अशुभभाव होते हैं, वे घट जाते हैं। **वर्तमान विघ्न का विलय होता है,...**

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी का .... का विचार तो शुभभाव हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव। **शुभपरिणाम होते हैं, इसलिए पाप का नाश होता है,...** कहाँ आया?

मुमुक्षु : पहले पृष्ठ पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ आया?

मुमुक्षु : २९५।

पूज्य गुरुदेवश्री : २६५ न? २९५, वह तो मंगलरूप साधारण कहा था। वह व्यवहारसुख। वह अलग। वह तो मन की व्याख्या की है। वह तो है। वह सुख लाता है, वह तो स्वयं प्रगट करे तो। उससे तो शुभभाव होता है। परद्रव्य के लक्ष्य से तो शुभभाव होता है। वह है मांगलिक, परन्तु स्वयं भाव करे तो। आहाहा! सविकल्प दशावन्त को शुभभाव में पंच परमेष्ठी निमित्त हैं। सविकल्पदशा... कल रात्रि में कही थी। ...बात नहीं की थी? उसमें आत्मावलोकन में। रात्रि में कहा था। तू देख। सम्यग्दृष्टि को कहते हैं। **यह स्व अनुभवदशा स्वसमयरूप स्वसुख है।** आत्मा का अनुभव, वह स्वअनुभव, वह सुखरूप है, शान्त विश्राम है, स्थिररूप है (-स्व के आश्रय से)। पर के आश्रय से अर्थात् विकल्प, वह दुःखरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! **कोई कल्याण है।** वह स्व अनुभव दशा कोई कल्याण का कारण है। कोई कल्याण है, ऐसा लिखा है। **चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है, मोक्ष का राह है।** उल्टा सविकल्पदशा। अब विकल्प आया। पंच परमेष्ठी का ध्यान, लक्षण वह भी सविकल्प है। **यद्यपि उपयोग निर्मल है।** अर्थात् कि जानने-देखने के परिणाम शुद्ध हैं। जानने-देखने के ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम शुद्ध हैं न?

मुमुक्षु : चारित्र का दोष।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र का दोष बस वह। जानने-देखने के परिणाम शुद्ध हैं।

तथापि चारित्र परिणाम परालम्ब अशुद्ध चंचलरूप होते... देखा! कितनी बात! चारित्र के परिणाम परालम्बन। पर आलम्बन देखो यह पाँच परमेष्ठी। शुभभाव है वह। आहाहा! ऐसी बात है। **अशुद्ध चंचलरूप होते सन्ते।** अशुद्ध और चंचल... **इससे सविकल्पदशा दुःख है।** आहाहा! वस्तु ऐसी है, इसकी खबर भी नहीं कुछ। आहाहा! सविकल्पदशा दुःखरूप है। **तृष्णा तृप्त करी चंचल है,...** तृष्णा में तृप्त करके चंचल है वह दशा राग। आहाहा! **पुण्य-पापरूप कहलाते हैं।** सविकल्प में शुभभाव और अशुभ दोनों कलाप हैं, मैल हैं। आहाहा! **उद्वेगता है, असन्तोषरूप है, ऐसे-ऐसे विलापरूप है।** आहाहा! यह आत्मावलोकन में बहुत अच्छी स्पष्टता की है स्वयं दीपचन्दजी (ने)।

चारित्रपरिणाम। **ऐसे-ऐसे विलापरूप है, वह चारित्रपरिणाम।** वह ज्ञान-दर्शन के परिणाम शुद्ध हैं। क्योंकि ज्ञान, दर्शन है, उसका कार्य तो करता है न जानने-देखने का, सविकल्पदशा के काल में भी। परन्तु सविकल्प चारित्र के परिणाम जो हैं, वे मलिन हैं। वहाँ उद्वेग है, असन्तोष है, दुःख है। ओहो! और वापस कहते हैं, **सो ही दोनों की अवस्था आप विषे देख।** दोनों अवस्था तेरी पर्याय में तू देख। आहाहा! लिखा है न कितना सरस! वस्तु की स्थिति ही यह है। **इससे भला यह है...** इससे भला तो यह है कि **कि जो तू स्व अनुभवरूप रहने का उद्यम रखा कर।** आहाहा! सविकल्पदशा उद्वेग-असन्तोष है। आहाहा!

यहाँ तो पंच परमेष्ठी का भाव, उस लक्ष्य से शुभभाव इतना कहा। वह सुख आत्मा का सुख नहीं। उसे तो मांगलिक स्वयं करे तो सुख हो। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह तो कह गये न (कि) परद्रव्य संसार का निमित्तकारण है। फिर प्रश्न कहाँ रहा? आगे तो कहा है कहीं। तू प्राप्त कर, ऐसा कहते हैं। कहीं है? कहाँ है? बहुत वर्णन किया। कहीं आया अवश्य था। तू तेरे आत्मा के साथ मिलान कर इन दो भाव को, ऐसा कहते हैं। आत्मा के साथ निर्मल दशा और सविकल्पदशा इस प्रकार से है या नहीं तुझे? ऐसा है। यह कहीं है अवश्य, आया था, ख्याल नहीं। चला गया होगा। ... आत्मावलोकन। वह कहीं है। तेरे आत्मा को प्राप्त कर, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अपने व्याख्यान में आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया। आ गया इतना। परन्तु यह तो प्राप्त कर, ऐसा लिखा है। आया न यह? परालम्बी है, चारित्रपरिणाम हो वहाँ परस्वाद आवे। सविकल्परूप भी हो जाते हैं। **और कुछ काल पश्चात् उस सविकल्पभाव से रहित होकर पुनः परिणाम अनुभवरूप हो जाते हैं। पुनः अन्तर्मुहूर्त पश्चात् परिणाम सविकल्परूप भी धारण करे, पुनः कुछ काल पश्चात् परिणाम सविकल्परूप छोड़कर अनुभवरूप होते हैं। जघन्य ज्ञानी के सम्यक्त्वाचरण धाराप्रवाही परिणामरूप प्रवर्तित होते हैं...** समकित का आचरण तो धाराप्रवाही है। **चारित्राचरण अनुभव धाराप्रवाही नहीं होता।** कितना स्पष्ट! **जघन्य ज्ञानी के अनुभव कदाचित् होता है, उसका एक विवरण।** इसकी बात बाद में ली है। आया, देखो। आवे तब न! (अथ अनुभव विवरण)। १६६ है, १६६ पृष्ठ।

तू देख, इस परिणति वर्णन द्वारा परिणामों का सविकल्प-निर्विकल्प स्व-अनुभव होना दिखलाया तो तू भी अपनी परिणति इस कथन अनुसार है कि नहीं? मैंने कहा, यह प्राप्त किया है। **तो तू भी अपनी परिणति इस कथन अनुसार है कि नहीं? (तुलना करके देख)।** यह कोष्ठक में लिखा है, कोष्ठक में डाला। **और यदि तू सम्यग्दृष्टि है और तूने अपनी परिणति इसी के अनुसार होती देखी है, तो हम एक बात और कहते हैं।** तो हम दूसरा कहते हैं। निर्विकल्प-सविकल्प की दशा में क्या होता है यह। सविकल्प में दुःख है, यह कहा बाद में। उसके बाद कहा। आहाहा! बात तो जैसी हो, वैसी जानना चाहिए न! आहाहा! स्व का आश्रय लेकर जितनी निर्विकल्पता हुई है, उतनी तो सुखरूप है। विश्रान्त है, शान्ति है, सन्तोष है, तृप्ति है। और जितना सविकल्पभाव है, उतना अतृप्तभाव है, चंचल है, दुःखरूप है, अविश्राम है, असन्तोष है। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! यह तो कहे, तेरा प्राप्त कर अब तेरे आत्मा को। हम जो कहते हैं, उसके साथ तेरी दशा को प्राप्त कर न! आहाहा!

विघ्न का विलय होता है, आगामी पुण्य का बन्ध होता है... है? यह **नमस्कार से अन्य जीवों के शुभपरिणाम होते हैं...** शुद्ध नहीं, सुख नहीं। **इसलिए पाप का नाश होता है,...** वह अघाति कम होते हैं। **वर्तमान विघ्न का विलय होता है, आगामी पुण्य का बन्ध होता है,...** भविष्य का तो वह शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

इसलिए स्वर्गादिक शुभगति पाता है। लो! स्वर्ग अथवा सेठाई। यह पैसेवाले धूल के धनी कहलाये न! करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़, धूल करोड़ न! ऐई! प्रवीणभाई! वह शुभभाव से ऐसे धूल के धनी होते हैं सब, ऐसा कहते हैं। पुण्यबन्ध हो, स्वर्ग में जाये, थोड़ा बाकी रहा हो तो फिर सेठाई में आवे। करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ मिले उसे। परन्तु वह सब पुण्य से धूल मिले उसे। आत्मा न मिले। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न दोनों कि जितना निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता है, उतना उसे सुख का कारण और मोक्ष का कारण तथा जितनी सविकल्पदशा है, वह स्वर्ग और पुण्यबन्ध का कारण है। कहो, समझ में आया इसमें? कल दोपहर में तुम्हें स्मरण किया था। ऐई! पराग! तेरे पिता को कहा था, कहाँ गये? गये हैं दोनों। यह दोनों व्यक्ति गये थे न। भावनगर गये होंगे। कहा, भावनगर तो यहाँ है। ऐसा कहा था कल। आहाहा!

अकेला ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव, जिसका भाव का नगर। सिर पर कोई कर नहीं, कर्ज नहीं, ऐसी चीज़ पड़ी है स्वयं। आहाहा! उसका आचरण करना, वह मोक्ष का कारण है। और परद्रव्य का जितना लक्ष्य जाये, चाहे तो पंच परमेष्ठी का जाये। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का लक्ष्य जाये, तब तो पापभाव है, परन्तु यहाँ तो पंच परमेष्ठी का लक्ष्य जाये तो वह पुण्यभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! लोगों को ऐसा कठोर लगता है। यह शुभभाव में कुछ नहीं? निचलेवाले को शुभभाव में लाभ का कारण है। आहाहा! भाई! शुभभाव लाभ का कारण है ही नहीं किसी काल में किसी को। होवे, वह अलग बात है। आवे अवश्य, परन्तु है तो वह दुःखरूप सविकल्पदशा।

मुमुक्षु : .... लाभ कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लाभ कहलाये?

मुमुक्षु : उसके ऊपर से देव-गुरु-शास्त्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं वहाँ। वह सब बात ही खोटी है। ऐसा कि शुभभाव से स्वर्ग का सुख तो मिले। धूल में भी नहीं। दुःख है वहाँ, अंगारों से सिंकता

है। आहाहा! और वहाँ से बाहर निकले और वाणी मिले कदाचित् पुण्य के कारण, परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो राग होगा, दुःख का फल है, ऐसा नहीं कहा? ऐई! कहाँ कहा? ७४ (गाथा, समयसार)। दुःखरूप और दुःख का फल। शुभभाव दुःख का फल। शुभभाव से संयोग मिले। उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा, दुःख होगा। आहाहा! गजब बात है! क्योंकि वह पंच परमेष्ठी मिले और उनकी वाणी मिले, उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो शुभभाव होगा तो दुःख होगा। आहाहा! यह तो वीतराग ऐसा कहे। रागी और राग के प्रेमी ऐसा नहीं कह सकते। आहाहा! उसमें आया था जैनप्रकाश में, ऐसा कि अभी अमृत... नाम दिया न। पढ़ा न तुमने? आगम और मूर्ति है। ऐई! देवानुप्रिया! भविजन का आधार। आहाहा! आगम और मूर्ति। स्थानकवासी का जैनप्रकाश है।

मुमुक्षु : मूर्ति स्थानकवासी में आयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह डाली। वह कहे भविजन को आधार। यहाँ तो कहते हैं, वह आगम और मूर्ति, वह शुभभाव का निमित्त है।

मुमुक्षु : दुःख का निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का निमित्त। आहाहा! उसे स्थानकवासी का जो लेख, उसे कहाँ खबर है? उसमें वेदान्त के लेख डाले। कितनी बार डालते थे पहले। आहाहा! जैनप्रकाश। यह है जीवन है, वह पक्का है, उस जाति का। जैनरूप से जीवणलाल तुम्हारा, बढ़वाण। क्यों वह उपनगर कहलाये जीवणलाल का? तुम्हारे बढ़वाण में रहे, वह क्या कहलाये वह? मोतियाळ-मोतियाळ। मोतियाळ में रहते हैं न। रहते हैं, खबर है। वह पक्का स्थानकवासी उसकी लाईन प्रमाण। यह तो कुछ ठिकाना ही नहीं होता। आगम और निश्चय का अभी ... आधार है।

यहाँ तो कहते हैं कि मूर्ति और आगम। ७० गाथा कहा न? १७०। पंचास्तिकाय। आगम की श्रद्धा, नौ तत्त्व पदार्थ की श्रद्धा और तीर्थंकर कहे, मेरी श्रद्धा जब तक रहेगी, तब तक मोक्ष नहीं होगा। क्योंकि विकल्प-राग है। आहाहा! होता है, अलग बात है। इससे कहीं मूर्ति न हो और शुभभाव न हो, ऐसा नहीं है। होता तो अवश्य है। जब तक

वीतराग नहीं, इसलिए वह भाव आये बिना रहता नहीं, परन्तु उसका फल तो स्वयं वर्तमान दु:ख और फिर दु:ख का कारण है। ऐसी बात है। आहाहा! अरे! ऐसी वस्तु की स्थिति है वहाँ...

दु:ख का कारण है तो भगवान का स्मरण करना? नवकार गिनना? किसलिए करना? और ऐसा कहे। भाई! वह तो अशुभ से बचने को आये बिना रहता नहीं। वह अशुभ से बचने को कहना, वह भी व्यवहार है। उस काल में वह भाव आये बिना रहता नहीं। ऐसी बात है। उसका—राग का चारित्रदोष की विपरीतता का स्वकाल होता है, तब शुभभाव आता है, होता है। आहाहा! परन्तु उसकी मर्यादा तो पुण्यबन्ध जितनी है। क्षायिक समकिती को भी पंच परमेष्ठी का स्मरण, भक्ति, पूजा होते हैं। परन्तु उसके फलरूप से तो पुण्यबन्ध है। बात तो ऐसी है। वह वस्तु कहीं बदले, ऐसा नहीं।

इनकी आज्ञानुसार प्रवर्तन से... देखा! **इसलिए स्वर्गादिक शुभगति पाता है।** वह शुभगति। **इनकी आज्ञानुसार प्रवर्तन से...** अब इनकी आज्ञा ही यह है। उसकी **परम्परा से संसार से निवृत्ति भी होती है,...** आज्ञा प्रमाण प्रवर्ते तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह उनकी—भगवान की आज्ञा है। तो परम्परा संसार निवृत्ति होती है। क्रम से उसे संसार का अभाव हो जाता है। पूर्ण हो तो अभाव हो जाये। अधूरा रहे, वहाँ तक संसारभाव है। आहाहा! **इसलिए ये पाँच परमेष्ठी सब जीवों के उपकारी परमगुरु हैं,...** आहाहा! **सब संसारी जीवों से पूज्य हैं।** संसारी प्राणी से पूज्य है। **इनके सिवाय अन्य संसारी जीव राग-द्वेष-मोहादि विकारों से मलिन हैं,...** पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त जो दूसरे नाम धरावे देव आदि, वे तो राग-द्वेष-मोह से विकार से मलिन हैं। पूज्य नहीं। **इनके महानपना, गुरुपना, पूज्यपना नहीं है, आप ही कर्मों के वश मलिन हैं, तब अन्य का पाप इनको कैसे कटे?** लो!

इस प्रकार जिनमत में इन पंच परमेष्ठी का महानपना प्रसिद्ध है और न्याय के बल से भी ऐसा ही सिद्ध होता है,... न्याय से भी यह सिद्ध होता है। पंच परमेष्ठी जो आत्मा की दशायें पूर्ण प्राप्त और साधकरूप से प्राप्त, वही जगत में उत्कृष्ट, महान और पूज्य है। राग, द्वेष और मोहवाले जीव कहीं पूज्य नहीं है। भले देव नाम धरावे। आहाहा! **इस प्रकार जिनमत में इन पंच परमेष्ठी का महानपना प्रसिद्ध है और न्याय के**

बल से भी ऐसा ही सिद्ध होता है, क्योंकि जो संसार के भ्रमण से रहित हों, वे ही अन्य के संसार का भ्रमण मिटाने को (निमित्त) कारण होते हैं। तब वे कारण होते हैं। **जैसे जिसके पास धनादि वस्तु हो, वही अन्य को धनादिक दे और आप दरिद्री हो, तब अन्य की दरिद्रता कैसे मेटे, इस प्रकार जानना।** ऐसे जो राग, द्वेष और मोहवाले हैं, वे दूसरे को राग, द्वेष और मोह टालने में निमित्त किस प्रकार हों ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिनको संसार के दुःख (विघ्न) मेटने हों और संसारभ्रमण के दुःखरूप जन्म-मरण से रहित होना हो वे अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी का नाम मन्त्र जपो, इनके स्वरूप का दर्शन, स्मरण, ध्यान करो, इससे शुभ परिणाम होकर... लो! यहाँ भी वापस शुभपरिणाम लाये। आवे तो सही न वह ? **पाप का नाश होता है, सब विघ्न टलते हैं, परम्परा से संसार का भ्रमण मिटता है,...** सम्यग्दर्शनसहित है न, उसकी बात है परम्परा। अज्ञानी को परम्परा कहाँ थी ? आहाहा! जिसे वास्तविक पंच परमेष्ठी का स्वरूप आत्मा में जिसे बैठा है, ऐसे जीवों के लिये यह स्मरण है, वह शुभभाव है, ऐसा कहते हैं। **कर्मों का नाश होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है, ऐसा जिनमत का उपदेश है। अतः भव्य जीवों के अंगीकार करने योग्य है।** सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव का यह उपदेश है। वह भव्य जीवों को अंगीकार करनेयोग्य है।

यहाँ कोई कहे—अन्यमत में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिक इष्टदेव मानते हैं, उनके भी विघ्न टलते देखे जाते हैं तथा उनके मत में राजादि बड़े-बड़े पुरुष देखे जाते हैं, इनके भी वे इष्ट विघ्नादिक को मेटनेवाले हैं, ऐसे ही तुम्हारे भी कहते हो, ऐसा क्यों कहते हो कि यह पंच परमेष्ठी ही प्रधान हैं, अन्य नहीं हैं ? उसको कहते हैं, हे भाई! जीवों के दुःख तो संसारभ्रमण का है... देखा! संयोग का दुःख नहीं, दुःख संसार में भ्रमण का। आहाहा! चार गति में भटकना, वह दुःख है। आहाहा! **और संसारभ्रमण के कारण राग-द्वेष-मोहादिक परिणाम हैं...** वह संसार परिभ्रमण का कारण, संसार परिभ्रमण, वह दुःखरूप है, चार गति का परिभ्रमण और उस परिभ्रमण का कारण राग-द्वेष-मोहादिक हैं।

तथा रागादिक वर्तमान में आकुलतामयी दुःखस्वरूप हैं,... राग, द्वेष और मिथ्यात्व तो वर्तमान में आकुलतामयी दुःखरूप है। **इसलिए ये ब्रह्मादिक इष्टदेव कहे,**

वे तो रागादिक तथा काम-क्रोधादिक युक्त हैं, अज्ञानतप के फल से कई जीव सब लोक में चमत्कारसहित राजादिक बड़ा पद पाते हैं, उनको लोग बड़ा मानकर ब्रह्मादिक भगवान कहने लग जाते हैं और कहते हैं कि यह परमेश्वर ब्रह्मा का अवतार है, तो ऐसे मानने से तो कुछ मोक्षमार्गी तथा मोक्षरूप होता नहीं है, संसारी ही रहता है। आहाहा! जिसे राग, द्वेष और मोह है, उसके फल में तो संसार है, ऐसा कहते हैं। तो उसे भजने से संसार मिले, भटकना मिले। आहाहा!

ऐसे ही अन्यदेव सब पदवाले जानने,... बड़े-बड़े पदवाले हो न देव। **आप ही रागादिक से दुःखरूप हैं, जन्म-मरण सहित हैं, वे पर का-संसार का दुःख कैसे मेटेंगे? उनके मत में विघ्न का टलना और राजादिक बड़े पुरुष होते कहे जाते हैं, वहाँ तो उन जीवों के पहिले कुछ शुभकर्म बँधे थे, उनका फल है।** पूर्व में शुभ बाँधा हो तो राजा हो। उसमें क्या है? **कुछ अज्ञानतप किया है, उनका फल है, यह तो पुण्य-पापरूप संसार की चेष्टा है, इसमें कुछ बड़ाई नहीं है, बड़ाई तो यह है जिसमें संसार का भ्रमण मिटे...** यहाँ तो बात यह है। चार गति का भटकना मिटे, वह तो पंच परमेष्ठी के निमित्त से होता है। जिसे संसार परिभ्रमण मिट गया है, उसे संसार परिभ्रमण (के अभाव) में निमित्त कहा जाता है।

तो यह तो वीतरागविज्ञान भावों से ही मिटेगा,... लो! वे राग, द्वेष और मोह, वह संसार परिभ्रमण का कारण और परिभ्रमणरहित होने का वीतरागविज्ञान कारण। वीतरागविज्ञान कारण। आहाहा! यह वीतरागविज्ञान डालते हैं न बहुत। जयपुर, हुकमचन्दजी। वीतरागविज्ञान, शिवकारण, शिवरूप वीतरागविज्ञानता। नहीं? छहढाला में आता है न। पहली लाईन आती है न! वीतरागविज्ञानता। क्या कहलाती है वह पुस्तक आवे उसे? पाठमाला। वीतरागविज्ञान पाठमाला देखी है तुमने? तुमने देखी है? नहीं? क्या किया तब? वीतरागविज्ञान पाठमाला आ गयी है। पाठशाला में पुस्तक आयी है। वीतरागविज्ञान पाठमाला। बड़ी परीक्षा दी जाती है वहाँ। पाँच-पाँच हजार लड़के, दस-दस हजार लड़के उस ओर। हुकमचन्दजी पण्डित है न! पन्द्रह-पन्द्रह हजार लड़के परीक्षा देते हैं, उस ओर। पाठशालायें बहुत अधिक हैं। **वीतरागविज्ञान भावयुक्त पंच परमेष्ठी हैं...** लो! पंच परमेष्ठी वीतरागविज्ञान भावरूप हैं। वे (अन्य) राग-द्वेष-

मोहरूप हैं। आहाहा! **ये ही संसारभ्रमण का दुःख मिटाने में कारण हैं।**

वर्तमान में कुछ पूर्व शुभकर्म के उदय से पुण्य का चमत्कार देखकर तथा पाप का दुःख देखकर भ्रम में नहीं पड़ना,... पुण्य का चमत्कार देखकर और पाप का दुःख देखकर भ्रम नहीं करना। अपना पूर्व का कोई पाप का उदय हो तो प्रतिकूल संयोग हो और दूसरे को पुण्य का उदय बाहर अनुकूल हो, बड़े चमत्कार दिखाई दें, करोड़ों, अरबों रुपये आवे। उसमें क्या हुआ? आहाहा! दूसरे का पुण्य देखकर ऐसा नहीं मानना कि वह भी कुछ है और अपनी प्रतिकूलता है, ऐसा नहीं मानना कि हम तो कुछ धर्मी नहीं लगते। यह पाप के उदय हमको और वे लोग बड़े राजा-महाराजा। वह तो पूर्व के पुण्य-पाप के फल, उसको देखना नहीं। वर्तमान आत्मा शुद्ध, राग-द्वेष-मोहरहित है, उसके परिणाम को देखना, उसे जानना और वह करना। यह नहीं देखना कि उसको पुण्य का उदय और बड़े राजा करोड़ोंपति। लो! माँस खाते हों, मदिरा पीते हों, मछलियाँ खाते हों, लो! करोड़ों रुपये पैदा करे, उसमें क्या है? पूर्व के पुण्य के कारण (मिले)। उसे कहीं चमत्कार नहीं मानना। विशेषता नहीं माननी उसके कारण। आहाहा! हम धर्मी और हमारे इस शरीर में रोग। स्त्री, पुत्र कोई नहीं, मर जाये न अकेला रहकर। यह विघ्न। यह क्या? वह तो पूर्व के पाप के कारण से होता है। उसमें वर्तमान में तुझे धर्म में क्या बाधा है? और उसको पुण्य के कारण से यह हो, इसलिए वहाँ कहाँ धर्म हो गया? ऐसा कहते हैं।

पाप-पुण्य दोनों संसार हैं। पुण्य की सामग्री देखकर भ्रमणा नहीं होना। पाप की प्रतिकूलता देखकर भ्रमणा में नहीं पड़ना। यह क्या? अरे! यह तो हो उसमें क्या है परन्तु? आहाहा! क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा लो! बड़ा राजा क्षायिक समकित। तीर्थंकरगोत्र बाँधा। लड़का आकर मार डालने आया, लो। उन्हें कैद में डाला था, उन्हें छोड़ने के लिये आया। और स्वयं मर गये सिर पछाड़कर। वह तो चारित्र का—राग का भाव था तो काम हुआ वहाँ। क्षायिक समकित को बाधा नहीं। आहाहा! राग का भाग होता है उतना द्वेष आया और देह दूट गयी। उस राग ने राग का और कषाय ने कषाय का काम किया। समकित ने समकित का काम किया। वह समकित और ज्ञान हुआ है,

वह कुछ किये बिना रहा नहीं। उस काल में भी जानना, देखना और श्रद्धा करने का कार्य तो निरन्तर है। आहाहा!

संसार से छूटकर मोक्ष हो, ऐसा उपाय करना। पुण्य-पाप को बाँधकर, पुण्य के फल को देखकर चमत्कार नहीं मानना। पाप के फल को देखकर दीनता नहीं करना। आहाहा! **वर्तमान का भी विघ्न जैसा पंच परमेष्ठी के नाम, मन्त्र, ध्यान, दर्शन, स्मरण से मिटेगा, वैसा अन्य के नामादिक से तो नहीं मिटेगा, क्योंकि ये पंच परमेष्ठी ही शान्तिरूप हैं, केवल शुभ परिणामों ही के कारण हैं।** आहाहा! बदल-बदलकर भी बात वहाँ (लाते हैं)। शुभ परिणाम में वे निमित्तकारण हैं। अज्ञानी राग-द्वेष-मोहवाले वे शुभ परिणाम में कारण नहीं। उस जाति का कोई साधारण शुभ हो, यह कहेंगे।

★ ★ ★

गाथा - ९८

णवबिहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण।
मेहुणसण्णासत्तो भमिओ सि भवण्णवे भीमे॥९८॥

अर्थ :- हे जीव! भावपाहुड़ की बात है। **तू पहिले दस प्रकार का अब्रह्म है, उसको छोड़कर...** आहाहा! विषय की वासना दस प्रकार से, उसे छोड़। **नव प्रकार का ब्रह्मचर्य है, उसको प्रगट कर, भावों में प्रत्यक्ष कर।** आहाहा! भावशुद्धि का कारण है। **यह उपदेश इसलिए दिया है कि तू मैथुनसंज्ञा जो कामसेवन की अभिलाषा उसमें आसक्त होकर अशुद्ध भावों से इस भीम (भयानक) संसाररूपी समुद्र में भ्रमण करता रहा।** आहाहा! यह विषय की वासना, भोग की वासना से चौरासी लाख में अनादि काल से भटक रहा है। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि वह वासना छोड़ और ब्रह्मचर्य की भावना कर। वह भावशुद्धि का कारण है, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- यह प्राणी मैथुनसंज्ञा में आसक्त होकर गृहस्थपना आदिक अनेक उपायों से स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावों से अशुभ कार्यों में प्रवर्तता है,... लो! **अशुद्धभावों से अशुभ कार्यों में प्रवर्तता है,...** ऐसा। संसार में... **उससे इस भयानक संसारसमुद्र में**

भ्रमण करता है। आहाहा! विषय वासना, स्त्री आदि का सेवन, उसमें तीव्र विकारभाव, दु:खरूप भाव सेवन कर चार गति में भ्रमण करता है। आहाहा! **अब्रह्म को छोड़कर नव प्रकार के ब्रह्मचर्य को अंगीकार करो।** दस प्रकार अब्रह्म। **१. पहिले तो स्त्री का चिन्तन होना,...** स्त्री का चिन्तवन करना, वह भी अब्रह्म है। आहाहा! **२. पीछे देखने की चिन्ता होना, ३. पीछे नि:श्वास डालना,...** ऐसे श्वास वह करे, आहाहा! **४. पीछे ज्वर होना,...** विषयवासना की तीव्रता से ज्वर-बुखार आवे। शरीर में उष्णता आवे। आहाहा! **५. पीछे दाह होना,...** शरीर जले। **६. पीछे काम की रुचि होना,...** विषय की रुचि। **७. पीछे मूर्छा होना,...** फिर विषय में मूर्च्छित हो जाये। **८. पीछे उन्माद होना,...** वह पागल हो जाये पागल। आहाहा! **९. पीछे जीने का सन्देह होना,...** जीने का सन्देह हो जाये। हाय.. हाय...उसमें तो मर जाऊँगा। और **१०. पीछे मरण होना, ऐसे दस प्रकार का अब्रह्म है।** आहाहा! यह भावपाहुड़ है न! अच्छे भाव करने के लिये, ऐसे (बुरे) भाव छोड़। आहाहा!

नव प्रकार का ब्रह्मचर्य इस प्रकार है—नव कारणों से ब्रह्मचर्य बिगड़ता है, उसके नाम ये हैं—१. स्त्री को सेवन करने की अभिलाषा, २. स्त्री के अंग का स्पर्शन, ३. पुष्ट रस का सेवन,... पुष्ट रस। दूधपाक और मैसूर और उसका सेवन करे तो वहाँ ब्रह्मचर्य बिगड़ता है। गरिष्ठ आहार होता है न! यह भस्म खाते हैं। नहीं? किसकी यह लोहे की, ताँबे की भस्म खाते हैं न। विषय उत्तेजित हो फिर उसमें। **४. स्त्री के संसक्त वस्तु शय्या आदिक का सेवन,...** स्त्री जिस स्थान में रही हो अथवा शैय्या आदि-पलंग आदि का सेवन, वह भी अब्रह्म का भाव है। ब्रह्मचर्य बिगाड़ने का भाव है।

५. स्त्री के मुख, नेत्र आदिक को देखना, ६. स्त्री का सत्कार-पुरस्कार करना,... बहुमान करना। उसका शरीरादि सुन्दर देखकर बहुमान करना, वह सब ब्रह्मचर्य बिगाड़ने के लक्षण हैं। आहाहा! **७. पहिले किये हुए स्त्रीसेवन को याद करना,...** पूर्व में स्त्री का सेवन किया हो, उसे याद करना। वह वर्तमान बिगड़ाने का कारण है। आहाहा! **८. आगामी स्त्रीसेवन की अभिलाषा करना, ९. मनवांछित इष्ट विषयों का सेवन करना...** मन को इच्छित इष्ट विषय—रूप, गन्ध, रस, स्पर्श बहुत ऊँचे-ऊँचे सेवन करना। **ऐसे नव प्रकार है। इनका त्याग करना, सो नव भेदरूप ब्रह्मचर्य है अथवा**

मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से ब्रह्मचर्य का पालन करना, ऐसे भी नव प्रकार हैं। ऐसे करना, सो भी भाव शुद्ध होने का उपाय है। लो! भाव शुद्ध होने का यह कारण है। साधारण बात थी और रख दी थी यह सब। तब सब लोग अधिक थे न। अब तो ठण्डा है। यहाँ बाधा नहीं। यह सब चलता है।

★ ★ ★

गाथा - ९९

आगे कहते हैं कि जो भावसहित मुनि है, सो आराधना के चतुष्क को पाता है, भाव बिना वह भी संसार में भ्रमण करता है :—

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे॥९९॥

अर्थ :- हे मुनिवर! जो भावसहित है... शुद्ध भाव। **सो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना के चतुष्क को पाता है,...** जिसका भाव शुद्ध है, वह आत्मा के शुद्ध सम्यग्दर्शन, आत्मा का ज्ञान, आत्मा का चारित्र और आत्मा का तप, यह चार आराधना, उन्हें पाता है, लो! **वह मुनियों में प्रधान है और जो भावरहित मुनि है, सो बहुत काल तक दीर्घसंसार में भ्रमण करता है।** जिसे शुद्धभाव का भान नहीं, मात्र क्रियाकाण्ड में है, वह तो चार गति में भटकता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ५, बुधवार, ०४-११-१९७०
गाथा - ९८ से १०१, प्रवचन-१३१

यह अष्टपाहुड़, इसमें भावपाहुड़। ९८वीं गाथा। **'णवविहबंभं'** प्रगट कर, ऐसा है न पहला शब्द? ब्रह्मचर्य अर्थात् मूल बात यह है कि आत्मा ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप है। उस आनन्दस्वरूप के अनुभव में आत्मा का आनन्द है, वैसा स्वाद आने पर उसे अब्रह्म—विषय की वासना की रुचि घट जाती है। समझ में आया? विषय-वासना में सुखबुद्धि जो है, वह मिथ्यात्वभाव है। ब्रह्मचर्य—ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय आनन्दरस के स्वभाववाला तत्त्व है। उसकी रुचि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और उसमें स्थिर होना, इसका नाम ब्रह्मचर्य का शुद्धभाव का परिणमन। समझ में आया? यहाँ मुनि को लक्ष्य कर मुख्य बात है।

पहला ब्रह्मचर्य पालने में सम्यग्दर्शन अनुभव तो होना चाहिए। इसके बिना पर में से इसकी रुचि हटेगी नहीं। विषय-वासना, अरे! पुण्य के परिणाम शुभभाव, उसमें भी जिसकी रुचि और प्रेम है, उसे ब्रह्मानन्द ऐसा आत्मा, उसका उसे प्रेम अन्तर रुचि में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ – कहते हैं कि **यह प्राणी मैथुनसंज्ञा में आसक्त होकर...** अपना आनन्दस्वभाव, उसका इसे भान नहीं होता। अतीन्द्रिय आनन्द ब्रह्मानन्दस्वरूप आत्मा है। उसकी रुचि, उसके प्रेम बिना विषय-वासना—मैथुनसंज्ञा में आसक्ति होकर उसमें राग में अर्पित हो गया। **गृहस्थपना आदिक अनेक उपायों से...** पश्चात् आरम्भ परिग्रह स्त्री के लिये व्यापार-धन्धा आदि अनेक प्रकार से करके, **उपायों से स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावों से...** स्त्री सेवन आदि पाँचों इन्द्रिय के भोग की भावना, अशुद्धभाव से **अशुभ कार्यों में प्रवर्तता है, उससे इस भयानक संसारसमुद्र में भ्रमण करता है;...** भयानक—भय का आनक—समुद्र। अकेला भय। चौरासी के अवतार। जहाँ कहीं सख नहीं, ऐसे चौरासी के अवतार में आत्मा के आनन्द के ब्रह्मचर्य के प्रेम बिना इस प्रकार पर में आसक्त होकर चौरासी के अवतार में भटकता है। **उससे इस भयानक संसारसमुद्र**

में भ्रमण करता है; इसलिए यह उपदेश है... इसलिए यह उपदेश है कि **दस प्रकार के अब्रह्म को छोड़कर नव प्रकार के ब्रह्मचर्य को अंगीकार करो।** दसविध अब्रह्म तो विषय में प्रेम है, उसमें—विषय में मुख्य वस्तु स्त्री है, ऐसा कहते हैं।

पहिले तो स्त्री का चिन्तन होना,... अपने आत्मा के आनन्द का स्वरूप है, उसका भान नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का भान होवे, तब तो अतीन्द्रिय आनन्द की चिन्तवना होती है। समझ में आया? उसकी खबर नहीं; इसलिए भाव बिना सम्यग्दर्शन के ब्रह्मचर्य आत्मा के आनन्द की रुचि और भाव बिना अकेले स्त्री का चिन्तवन करे। **२. पीछे देखने की चिंता होना,...** आत्मा का चिन्तवन, आनन्दस्वरूप का भान होवे तब तो उसका चिन्तवन करके अनुभव में आने की भावना हो। इस परपदार्थ के लक्ष्य का चिन्तवन और उसे देखने का मन हो। भगवान आनन्दमूर्ति है, उसे देखने का वह प्रयत्न नहीं करता, इसलिए उसे बाहर के स्त्री आदि, जो विषय में मुख्य चीज़ है, उसे देखने का मन करता है।

३. पीछे निश्वास डालना,... जब तक न मिले, तब तक हा... ऐसा करे, हाह डाले, श्वास डाले। समझ में आया? **४. पीछे ज्वर होना,...** पश्चात् ज्वर—जिसे कामज्वर कहा जाता है, (वह उपजे)। काम की वासना की अन्दर में आताप लगे, शरीर में ज्वर उत्पन्न हो। भगवान आत्मा के आनन्द के भानवाला तो आनन्द में रमते हुए उसे शान्ति आवे। इसे बुखार आवे। ज्वर-कामज्वर जिसे कहते हैं। वैद में भी यह अधिकार है। समझ में आया? हों! कामज्वर। बुखार-आताप शरीर में (लगे)। आहाहा! यहाँ आत्मा के भानसहित की बात है, हों! ब्रह्मचर्य पालने की बात। भान नहीं वहाँ इस प्रमाण करता है, उसे छोड़ ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

७. पीछे मूर्च्छा होना,... ५. पीछे दाह होना,... ज्वर के पश्चात दाह। शरीर में दाह होती है। **६. पीछे काम की रुचि होना,...** विषय-वासना सेवन का मन होता है। **७. पीछे मूर्च्छा होना,...** विषय में मूर्च्छित हो जाता है। **८. पीछे उन्माद होना,...** पागल भी हो जाता है, पागल हो जाता है। कामज्वर से पागल हो जाता है। हमने तो बहुत देखे हैं न। समझ में आया? नाम नहीं दिये जाते। उतरते हैं न। पागल हो जाए, पागल। विषय में पर की वासना की मूर्च्छा में पागल-गहल हो जाए। धर्मी आत्मा के

आनन्द में उन्मत्त हो जाए। उसमें झुक जाए, ढल जाए। ऊन अर्थात् ढल जाए। यह इसमें अकेला गहल-पागल हो जाए। आहाहा! **९. पीछे जीने का संदेह होना,...** अरे! मैं जिऊँगा या नहीं? पूरे शरीर में दाह इत्यादि होकर जीने की आशा उड़ जाए। **१०. पीछे मरण होना,...** मर जाए। आहाहा! आत्मा आनन्दमूर्ति की श्रद्धा और ज्ञान के भान बिना ऐसे भावों में भटककर चार गति में भटका है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि के आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है। पश्चात् उसे जरा वासना आवे परन्तु उसका उसे प्रेम और रुचि नहीं है। आसक्ति है परन्तु रुचि नहीं है। वह भी आसक्ति छोड़ने के लिये मुनि को उपदेश करते हैं। आहाहा! चौरासी के अवतार में भ्रमण करके डोल रहा है। उसने आत्मा में आनन्द है, उस ओर की नजर नहीं की, प्रयत्न नहीं किया, सन्मुख देखने को सावधान नहीं हुआ। यह सब बाहर में भटकने की सावधानी है, कहते हैं। यह दस प्रकार तो अब्रह्म के कहे।

अब नवविध ब्रह्मचर्य। **नव कारणों से ब्रह्मचर्य बिगड़ता है,... स्त्री को सेवन करने की अभिलाषा,...** भगवान आनन्द के प्रेम की अभिलाषा चाहिए, उसके बदले स्त्रीसेवन, माँस, हड्डियाँ, चमड़ी के सेवन की अभिलाषा (करता है)। उसे यह लगे। समझ में आया? तपसी को कहाँ सुने? तपसी की आवाज कौन सुने वहाँ? कहते हैं, पाँच इन्द्रिय के विषयों में स्त्री का विषय मुख्य है। इसलिए उसके विषय की अभिलाषा होने पर उसे आनन्द की अभिलाषा टल जाती है। भगवान आनन्दस्वरूप हूँ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर हूँ। जिसके एक क्षण के आनन्द में अतीन्द्रिय आनन्द में, समकितदर्शन में—सम्यग्दर्शन में आनन्द की लहर का अनुभव आवे, उसके समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए कचरे जैसा लगता है। सड़ा हुआ कचरा। ऐसा भगवान आनन्द का सागर है। अकेले आनन्द से भरपूर महापर्वत है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसकी कुछ खबर नहीं होती। यह हड्डियाँ, माँस देखे। देखनेवाला कौन है, उसे नहीं देखता। इसे देखे, यह है, यह है और यह है और यह है। परन्तु देखनेवाला कौन है? देखनेवाले में क्या है? जो चीज़ दिखती है, वह क्या? उसमें क्या है, यह तो खबर नहीं, जड़ है और मिट्टी है यह सब। देखनेवाला भगवान आत्मा है। वह तो चैतन्यबिम्ब आनन्द का नाथ है। आहाहा! आनन्द से ही वह रक्षित है।

ऐसे आनन्द के भान बिना, कहते हैं, **स्त्री को सेवन करने की अभिलाषा, २. स्त्री के अंग का स्पर्शन,...** करने का भाव। आहा! **३. पुष्ट रस का सेवन,...** ऊँची-ऊँची चीज़ें। बादामपाक और मूसलीपाक और सालमपाक ऊँचे आते हैं न? ऊँची-ऊँची चीज़ें बहुत आती हैं। समझ में आया? उसका रस पुष्टि करके विषय की वृद्धि करने का भाव। समझ में आया? **३. पुष्ट रस का सेवन, ४. स्त्री से संसक्त वस्तु शय्या आदिक का सेवन,...** जो स्त्री जिस मकान में रहती हो अथवा जिसके कपड़े आदि हों, उन्हें देखने का मन होता है, उन्हें स्पर्श करने का मन होता है, वह सब आत्मा के आनन्द को स्पर्श करने का भाव नहीं और यह स्पर्श करने का भाव। आहाहा!

५. स्त्री के मुख, नेत्र आदि को देखना, ६. स्त्री का सत्कार पुरस्कार करना,... उसका आदर करना, बहुमान देना। शरीर की सुन्दरता का बहुमान देना, शरीर के अवयवों की आकृति के अवयवों को देखकर बहुमान देना, ऐसी मीठी नजर से देखना, यह उसका सत्कार है। समझ में आया? भगवान आनन्दस्वभाव का सत्कार चाहिए, उसके बदले इस सत्कार में ढल गया। इसके कारण चार गति में परिभ्रमण करता है। समकिती हो, फिर ऐसा हो परन्तु वह तो उसका प्रेम नहीं, उसे रुचि नहीं। उसका उसे रस नहीं। इसलिए सम्यग्दर्शन, वही मुख्य तो ब्रह्मचर्य है और मिथ्यात्व, वही पहला अब्रह्म है। समझ में आया? **७. पहिले किये हुए स्त्रीसेवन को याद करना,...** अहो! एक स्त्री थी, वह चली गयी। फिर बारम्बार उसका विचार आया करे। वापस पागल हो जाए। या उसकी छवियाँ करके, फोटो करके भी देखा करे कि आहा! थी न यह वस्तु। धूल था अब, सुन न! इस विषय की सेवना को बारम्बार स्मृति में लावे, वह महापाप है, कहते हैं। समझ में आया?

८. आगामी स्त्रीसेवन की अभिलाषा करना,... भविष्य में भी अभिलाषा करना। **९. मनोवांछित इष्ट विषयों का सेवन करना...** मन, इच्छा प्रमाण खाने-पीने की लहर करे अन्दर से। यह सब ब्रह्मचर्य को तोड़ने के उपाय हैं। तोड़ने के उपाय हैं। **ऐसे नव प्रकार हैं। इनका त्याग करना...** इन्हें छोड़ दे। आत्मा के आनन्द की रुचि करे, उसकी अभिलाषा करे, उसका सत्कार करे, इत्यादि उसे चाहे। समझ में आया? उसे स्पर्श करे, उसे याद करे। अपना भगवान स्वभाव, उसे याद करे या नहीं? याद करे

कौन? जिसे पहले ज्ञान में भान हुआ हो, वह याद करे न? वह वस्तु ही याद आयी नहीं, उसे याद करे किस प्रकार?

इनका त्याग करना सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य है अथवा मन-वचन-काय,... मन, वाणी और काया, **कृत-कारित-अनुमोदना से ब्रह्मचर्य का पालन करना ऐसे भी नव प्रकार हैं।** लो! **ऐसे करना सो भी भाव शुद्ध होने का उपाय है।** यह भाव शुद्ध। शुभ-अशुभ, अशुद्ध। शुभ-अशुभभाव, वह अशुद्ध, वह बन्ध का कारण। यह शुद्ध होने का कारण। आत्मा आनन्दस्वरूप, शुद्ध आनन्द शान्ति, ऐसी अन्तर्दृष्टि के विश्वास में भगवान आने पर उसे पर का रस उड़ जाता है। और इसलिए उसके भाव में शुद्धि—शुभाशुभ परिणाम रहित शुद्धि होती है। यहाँ शुद्धता, वही मोक्ष का मार्ग है। शुभ-अशुभ परिणाम, वह तो बन्ध का मार्ग है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ९९

आगे कहते हैं कि जो भावसहित मुनि... देखो! अब समकित। भाव अर्थात् समकित। आत्मा पूर्णानन्द निर्विकल्प अभेद आनन्दकन्द है, ऐसा अन्तर अनुभव में सम्यग्दर्शन प्रगट होना, उसे यहाँ भाव कहा जाता है। समझ में आया? उस **भावसहित मुनि है, सो आराधना के चतुष्क को पाता है,...** वह अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि आराधना को पा सके। सम्यग्दृष्टि मुनि होवे तो। कहो, प्रकाशदासजी! लो, यह सम्यग्दर्शन की बात यहाँ चलती है। आहाहा! मन, वचन और काया से पार हूँ। शुभ-अशुभराग से भी भिन्न / पृथक् चीज़ हैं, मुझमें शान्ति और आनन्द से अभिन्न हूँ, ऐसी अन्तर अनुभव की सम्यग्दर्शन अनुभूति, आगे कहेंगे। भावार्थ में कहेंगे, भावार्थ में यह लेंगे। समझ में आया? **निश्चय सम्यक्त्व का शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान है,...** है भावार्थ? उसमें है। उसमें है। ९९ का भावार्थ है, इस पुरानी प्रति में। समझ में आया?

निश्चय समकित, आत्मसमकित वह क्या? कि **शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान...** समझ में आया? अर्थात् क्या? यह निश्चय समकित अर्थात् क्या? ऐसा कहते हैं। शुद्ध आत्मा का... शुद्ध आत्मा। पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति के परिणाम,

वे सब अशुद्ध हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना भी अशुद्ध है। उससे भिन्न शुद्ध आत्मा। ऐसे शुद्धात्मा की अनुभूति—उसका अनुभव, उसका नाम श्रद्धान, उसका नाम समकित, उसका नाम भाव। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि **भावसहित मुनि है,...** ऐसे भावसहित साधु हों, वे **आराधना के चतुष्क को पाता है,...** अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द और शान्ति को पाते हैं। आहाहा! **भाव बिना वह भी संसार में भ्रमण करता है।** ऐसे सम्यग्दर्शन, आत्मा की शुद्ध की अनुभूति की श्रद्धा, उसके भान बिना साधु नग्न मुनि, अट्ठाईस मूलगुण पाले तो भी वह चार गति में भटकता है। समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं, देखा! ९९ गाथा है। ९९ का धक्का लगता है न। ९९ के धक्के का सुना है या नहीं बलुभाई! ९९ का धक्का। बनिये के पास बहुत पैसे थे। फिर उस वाणंद के पास थोड़े। कुछ ऐसा जाति का लो न, नाम खबर न हो। थोड़े थे, फिर ऐसे करते-करते किसी ने उसे ९९ रुपये की थैली उसके घर में छोड़ दी। ९९ देखे। तब अधिक करने का भाव हुआ अब। सौ पूरे करना। फिर अब धक्का लगा। कुछ नहीं था, वहाँ तक कुछ नहीं। ऐसे ९९ आत्मा के भान की दशा बिना के यह चार गति में धक्का खाने के और आत्मा के भानवाले वे सिद्धपद की प्राप्ति को पानेवाले हैं। आहाहा!

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे।।९९।।

पश्चात् कहा मुनिवर, भाई! यह तो भावरहित हो तो भी मुनिवर। ऐसा। मुनिवर क्यों कहा? कि सम्यग्दर्शन नहीं, परन्तु उसकी क्रिया महीने-महीने के अपवास, दो-दो महीने के अपवास, रूखा आहार (करे), ऐसी चमड़ी सूख जाए ऐसी क्रिया (पालन करे)। मुनिवर। हे मुनिवर द्रव्यलिंगी! ऐसा कहते हैं। आत्मा का भान सम्यग्दर्शन बिना निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि... आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनुभव बिना **'मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे'**

अर्थ - हे मुनिवर! देखो! **जो भावसहित है, सो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना के चतुष्क को पाता है,...** सम्यग्दर्शनसहित होवे तो उसका फल दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आराधना उसे मिलता है। परन्तु सम्यग्दर्शन ही मुख्य नहीं और

ऊपर की क्रियाकाण्ड सब पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण की है, वे सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! समझ में आया? **भावसहित है, सो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना के चतुष्क को पाता है,...** सम्यग्दृष्टि आराधक होता है। मिथ्यादृष्टि आराधक होगा? **वह मुनियों में प्रधान है...** लो! मुनिवर कहा न?

जो भावरहित (समकितरहित है) मुनि है, सो बहुत काल तक दीर्घ संसार में भ्रमण करता है। आहाहा! जितना सिद्धकाल में रहता है अनन्त काल ऐसा इस संसार में अनन्त काल निगोद में रहता है, ऐसा कहते हैं। देखो! व्याख्या। भाव की व्याख्या। लोग कहते हैं कि यह शुभभाव है न? शुभभाव, हमारा भाव तो शुभ है न? अच्छे है न? परन्तु यह शुभभाव अच्छा ही नहीं, सुन न! हमने भाव बिना यह संसार छोड़ा होगा? भाव बिना स्त्री-पुत्र और धन्धा छोड़ा होगा? परन्तु भाव कौन सा? सुन न! यह तो राग की मन्दता का कोई शुभभाव हो मिथ्यात्वसहित। दृष्टि तो वहाँ राग पर, पर्याय पर पड़ी है। समझ में आया? इस भाव को भाव कहते नहीं। यह भटकने का भाव है। आहाहा!

भावार्थ - निश्चय सम्यक्त्व का शुद्ध आत्मा का... निश्चय समकित का श्रद्धान। क्या? **शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान...** ऐसा जिसमें पंच महाव्रत का विकल्प हो तो भी जिसका कर्ता आत्मा नहीं। देह की क्रिया का वह साक्षी और दृष्टा है, उसका वह कर्ता नहीं। ऐसी जो सम्यग्दर्शनरूपी अनुभूति, उसकी श्रद्धा अनुभूति में। निश्चय समकित। देखो! यह (अज्ञानी) निश्चय समकित की इनकार करते हैं। अभी वह कुछ होता नहीं। व्यवहार होता है... व्यवहार होता है... व्यवहार होता है। आहाहा! व्यवहार समकित, वह समकित ही नहीं है। वह तो राग है। व्यवहार समकित यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा। निश्चय तो पहले आवे? पहला व्यवहार आवे, पश्चात् निश्चय आवे। नहीं आवे? ऐई! जयन्तीभाई! व्यवहार कहना किसे अब? व्यवहार राग की मन्दता तो अनन्त बार की है। अनन्त बार की है। निगोद में भी भाव शुभ तो अनन्त बार हुआ है। निगोद में! एकेन्द्रिय, आलू, शक्करकन्द में भी शुभभाव अनन्त बार हुआ है। वहाँ शुभ है? है। क्या नहीं? हाँ करते हैं, उसमें और इनकार करे, यह कहाँ से आया? यह निगोद आलू, शक्करकन्द, मूला, गाजर की एक कणी में अनन्त जीव हैं। असंख्य

शरीर और अनन्त जीव। उस एक-एक जीव को भी शुभभाव अनन्त बार हो गया है। नित्यनिगोद में भी। आहाहा!

मुमुक्षु : निगोद में हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अनन्त बार। शुभभाव है न? आत्मा है तो, क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ, क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ। ऐसा अनन्त बार नित्यनिगोद में भी शुभभाव अनन्त बार हुआ। यह शुभ कहाँ नयी चीज़ है? आहाहा!

मुमुक्षु : राग की मन्दता होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की मन्दता होती है न वहाँ। उतना अंश घटता है। भले मिथ्यादृष्टि हो, भले अभव्य हो। अभव्य को भी निगोद में शुभभाव सदा घड़ीक में शुभ, घड़ीक में अशुभ, घड़ीक में शुभ, घड़ीक में अशुभ - ऐसा अनन्त बार हो गया है। यह कुछ कोई वस्तु नहीं है, शुभ कुछ नयी चीज़ नहीं है। यहाँ जरा जहाँ पंच महाव्रत और दया-दान को जहाँ करे, वहाँ आहाहा! अपने हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। बापू! धर्म की चीज़ बहुत अलग है। समझ में आया?

यहाँ तो निश्चय समकित। निश्चय अर्थात् सच्चा, सत्य। समकित अर्थात् यथार्थ श्रद्धान। किसकी? कि **शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान...** अकेला आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित, अकेला आत्मा वीतरागी स्वभाव से भरपूर आनन्द का नाथ, उसके सन्मुख होकर अन्तर में निर्णय होकर, अनुभूति में निर्णय होकर समकित हो, उसे श्रद्धान कहते हैं। आहाहा! इस श्रद्धा बिना **सो भाव है, ऐसे भावसहित हो...** ऐसा भाव हो। **सो भाव है,...** उसे यहाँ भाव कहा है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे भावसहित हो, उसके चार आराधना होती है,...** पाठ है न पाठ? देखो! **'भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च' उसका फल अरहन्त-सिद्धपद है...** लो! सम्यग्दर्शन, निश्चय शुद्ध आत्मा की अनुभूति का श्रद्धान, वह अरिहन्तपद पावे। क्योंकि आराधना तो उसे मिलती है। आत्मा का सेवन मिले। उससे **अरहन्त सिद्ध पद है...** उसका फल तो अरिहन्त और सिद्ध होता है। लो!

ऐसे भाव से रहित हो... शुद्ध आत्मा की अनुभूति की श्रद्धा, ऐसे भावरहित हो और चाहे तो चाहे जैसे शुभ-अशुभभावसहित हो, **उसके आराधना नहीं होती है,...**

उसे आत्मा का सेवन नहीं है। **उसका फल संसार का भ्रमण है।** चार गति में भटकना है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु मैं शुद्ध हूँ, उसे उसका परिचय नहीं, सुनने को मिले नहीं। अन्दर वह कौन है यह अन्दर? शुद्ध आत्मा पवित्रता का पिण्ड प्रभु अन्दर। अकेले पवित्र अनन्त गुणों का सागर, उसकी अनुभूति हुई, उसका अनुभव हो, उसमें श्रद्धान हो, उसे समकित सच्चा कहा जाता है। यह तो समझ में आये ऐसा है। भाषा सादी है। भाव भले ऊँचे हों। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे भाव से रहित हो... और बाहर नग्नमुनि दिगम्बर हो, अट्ठाईस मूलगुण विकल्प भी जिसे हो, परन्तु उसका फल चार गति में भटकने का है। समझ में आया? आहाहा! भले पहला कोई देव आदि हो, परन्तु पश्चात् ढोर में, निगोद में जाएगा। परन्तु वहाँ चार गति है। यहाँ अरिहन्त-सिद्ध है, वहाँ चार गति है। ऐसी दो बातें करते हैं। समझ में आया? शुद्ध आत्मा परिपूर्ण परमात्मस्वभाव, ध्रुव नित्य आनन्दनाथ का अनुभव, उसका ज्ञान। अनुभूति अर्थात् अनुभव में उसका ज्ञान हो। उसके भानसहित की प्रतीति को सच्चा सम्यग्दर्शन, धर्म का पहला अवयव अथवा धर्म का पहला भाग मोक्ष का, उसे समकित कहते हैं। बाकी दुनिया माने कि नव तत्त्व की श्रद्धा, देव-गुरु की श्रद्धा, वे सब समकित नहीं है, वह तो राग है। समझ में आया? पहले इसके श्रद्धा-ज्ञान में यह बात निश्चित तो करे। मार्ग यह है। इसके अतिरिक्त सब थोथे थोथा है।

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, मुनिवर। **'भावरहिदो य मुणिवर भमइ'** मुनि—बड़ा महामुनि, ऐसा। नौवें ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' छहढाला में आता है। 'पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पाया।' छहढाला में आता है। पढ़ा है? ऐसा! बलुभाई कहते हैं, पढ़ा है। समझ में आया? 'मुनिव्रत धार...' बाह्य क्रियाकाण्ड के मुनिव्रत पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' तब इसका अर्थ क्या हुआ? नौवे ग्रैवेयक में गया, पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, वह सुख नहीं; दुःख था। ऐसा था या नहीं? ... हुआ? पंच महाव्रत दुःख। ऐई! प्रकाशदासजी! क्या हुआ? पंच महाव्रत के परिणाम दुःख, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, वह दुःख? आहाहा! आया है या नहीं? डॉक्टर! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार

ग्रैवेयक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम कुछ न कुछ-कुछ न कुछ-कुछ न कुछ तो सुख होगा न? धूल भी नहीं है। वह तो राग है, वह तो दुःख है। आहाहा! यहाँ पंच महाव्रत के परिणाम अकेला धर्म हो गया। अरे रे! यहाँ वह दुःख है। बहुत अन्तर। जगत को और वीतराग के मार्ग को बहुत अन्तर है। लोग कहीं का कहीं मानकर बेचारे भटकते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **भाव से रहित...** ऐसा समकित शुद्ध आत्मा का अनुभव। आनन्द का नाथ भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का भान-अनुभव होकर सम्यक्त्व, जिसमें आनन्द का स्वाद आवे, ऐसी भान की प्रतीति को यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन बिना **उसके आराधना नहीं होती है,...** उसे आराधना नहीं है। राग को आराधे, उसमें आत्मा का आराधन कहाँ रहा वहाँ? सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ तो राग का आराधन है, मिथ्यात्व का आराधन है। **उसका फल संसार का भ्रमण है।** लो! उसका फल चार गति में भटकना है। यह चार गति में दुःख है, यह जँचता नहीं लोगों को। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, '**भावरहिदो**' जिसे सम्यग्दर्शन, आत्मा का अन्तर पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव से रहित और निश्चय आत्मस्वभाव का भान, उसमें जो सम्यग्दर्शन जो अनन्त काल में कभी हुआ नहीं, ऐसे सम्यग्दर्शन बिना नौवें ग्रैवेयक में जैन दिगम्बर साधु भी गया, उसमें भटकने का फल मिला, परन्तु आत्मा का फल नहीं मिला। समझ में आया? वह यहाँ आचार्य कहते हैं। ९९ गाथा। भावपाहुड़। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, आत्मा निर्मलानन्द प्रभु, शुद्ध चैतन्य के अनुभव का समकित जिसे नहीं और द्रव्यलिंग धारण करे, द्रव्यश्रावकपना धारण करे, उसके फल में संसारभ्रमण है। आहाहा! कहो, प्रकाशदासजी! कल कहते थे न? कि ऐसी श्रद्धा माने, फिर प्रतिमा लें तो? यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया? प्रतिमा कैसी? कहते हैं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा अन्तर में अनुभव, शुभ और अशुभभाव रहित श्रद्धा में शुद्धता प्रगट हुए बिना जो कुछ दूसरा करे, उसके फल में संसार है, चार गति में रुलने का है धूलधाणी (है)। कहो, समझ में आया? यह सेठिया-बेठिया दस-पचास लाखवाले मिले, वे सब

दुखिया हैं, ऐसा कहते हैं। बलुभाई! बलुभाई को पचास लाख का कारखाना है, कल ऐसा कोई कहता था। वह कल नाम खबर है न। अपने गये थे वह है।

मुमक्षु : वही इन्हें रोक देता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोके। इनका दवा का कारखाना पचास लाख का। मुम्बई में। क्या कहलाता है वह क्षेत्र? कांदीवली। ऐसे करोड़ और पचास लाख और दो करोड़ देखे वहाँ तो आहाहा! पागल हो जाए पागल। कहते हैं कि अब ऐसा तो अनन्त बार तुझे मिला है। कारण? कि पाप के भाव हैं, उससे प्रतिकूलता का संयोग मिले और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम पुण्य के हैं, उससे अनुकूल संयोग मिले। बाह्य चीज़ मिले। उसमें आत्मा मिले नहीं। आहाहा! कहो, हसुभाई! समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा इन शुभ और अशुभपरिणाम में जितना आवे, उतना उसे अनुकूल -प्रतिकूल संयोग आवे। परन्तु वह तो संयोग अर्थात् परचीज़। और परचीज़ में मूर्छित... आहाहा! यह पैसा मेरा, शरीर मेरा, इज्जत मेरी—मूढ़ हो गया। जड़ को अपना माने, वह तो जड़-मूढ़ है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अमृत का सागर निर्विकल्प वस्तु, उसकी श्रद्धा और भान बिना, पुण्य के भाव किये और उसके फल में धूल मिली कुछ पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़। अंक करो। अंक गिनना है, वहाँ कहाँ घुस गये हैं पास में? ऐई! आहाहा!

कहते हैं कि जिस चीज़ में तू नहीं, जो चीज़ तुझमें नहीं, उस चीज़ को मेरी मानना, वह मिथ्यात्व का मूल है। आहाहा! कहो, ...लालजी! यह चीज़ है। वीतराग परमात्मा की तो यह चीज़ है। आहाहा! एक रजकण जो है परमाणु, वह तो अजीव है। ऐसे अनन्त रजकण का दल यह शरीर है। अनन्त रजकण का पिण्ड यह पैसा है। वह तो अजीव है। वह अजीव मेरा, वह अजीव का स्वामी होता है, मिथ्यादृष्टि मूढ़ चार गति में भटकने के भाव को सेवन करता है। ऐ... धर्मचन्दजी! कहो, समझ में आया? यहाँ वजन कितना देते हैं, देखो न! भाव। कैसा भाव? शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान, जिसमें पुण्य का भाव भी मेरा माने तो वह मिथ्या चार गति में भटकने का बीज है। समझ में आया? क्योंकि पुण्यभाव भी आत्मतत्त्व से भिन्न आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व, वह जीवतत्त्व की चीज़ नहीं है। ऐसी मान्यता वह मिथ्यात्व और चार गति में भ्रमण करने

के वे सब भाव हैं। आहाहा! भारी कठिन काम। दुनिया को यह सब बाहर का स्वाद लेना और अन्दर से कुछ धर्म करना है। आहाहा! दोनों नहीं बनते। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं। जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप का भान सम्यग्दर्शन है, उसे बाहर के पुण्य-पाप के परिणाम का भी रस और प्रेम उड़ गया है। और जिसे पुण्य-पाप के फल में रस है, उसे भगवान आत्मा के रस से विरुद्ध मिथ्यात्वभाव है। ऐई! भारी कठिन बात है यह। वीतराग का ऐसा धर्म होगा? वीतराग का धर्म तो वीतरागभाव से होता है। रागभाव से धर्म होगा? समझ में आया?

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में उपस्थिति थी यहाँ भरत में। भगवान के पास महाविदेह में गये थे। वहाँ से आकर यह (शास्त्र बनाया कि) भगवान ऐसा कहते हैं। और वे ऐसा कहते हैं कि यह तो श्रुतकेवलियों ने कहा, वैसा कहा है। उसमें सीमन्धर भगवान ने कहा, ऐसा क्यों नहीं कहा? और ऐसी टीका (आलोचना) करते हैं। आहाहा! गजब करते हैं न! दो भिन्न टीका में कहा है। उसमें है न? इतिहास में है, शिलान्यास (शिलालेख) में है कि भगवान के पास गये थे। आचार्य स्वयं आठ दिन रहे थे। और ऐसा कहा ऐसा कि? श्रुतकेवली-श्रुतकेवली भणेई, ऐसा कहा। टीका यह आयी। भगवान के पास गये तो भगवान ने कहा, ऐसा इन्होंने क्यों नहीं कहा? अरे! ऐसे के ऐसे ऐसे पके हैं। तथापि टीका में दोनों लिखा नहीं? श्रुत और केवली के निकट सुना है। श्रुतकेवली और केवली दोनों से सुना हुआ।

मुमुक्षु : नियमसार में दोनों है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों है ही न उसमें। अर्थ में भी है। टीका में भी दो है। मूल पाठ में है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि आत्मध्यानी महाविदेह में गये थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये। यह तो टीका में है। संस्कृत टीका। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा जानकर भाव शुद्ध करना - यह उपदेश है। लो! ऐसा जानकर। क्या जानकर? क्या जानकर? शुभ-अशुभ परिणाम वे बन्ध के कारण हैं। यह संवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण बिल्कुल नहीं है। आहाहा! आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान अपना स्वरूप है। उसे अन्तर में भान में पहिचान करके अनुभव करना, इसका

नाम प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन बिना संसारभ्रमण के कारण सेवन कर अनादि से संसार में भटकता है। निगोद में भाव शुभ है। शुभभाव तो निगोद में भी है। कहा न? आलू, शकरकन्द और नित्यनिगोद में भी शुभभाव तो है। तो और कहे कि वहाँ शुभभाव कैसा? वहाँ तो आहार-पानी लेने का नहीं, भगवान का स्मरण करने का नहीं। परन्तु अब स्मरण-फमरण न हो तो भी भाव होते हैं। सुन न! राग की मन्दता ऐसा शुभभाव निगोद में एकेन्द्रिय जीव को भी अनन्त बार हो गया है। वह कुछ नयी चीज़ नहीं है। उससे रहित आत्मा भिन्न चैतन्य का शुद्ध स्वरूप उसकी अनुभव में प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन, उसे शुद्धभाव कहते हैं, लो। उसे शुद्धभाव (कहते हैं) और वह शुद्धभाव मुक्ति का कारण है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १००

आगे भाव ही के फल को विशेषरूप से कहते हैं – अब **आगे भाव ही के...** अर्थात् सम्यग्दर्शन के फल को विशेष कहते हैं।

पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं।
दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए।।१००।।

यहाँ स्पष्ट बात की है।

अर्थ – जो भावश्रमण हैं, भावमुनि हैं,... जिसे सम्यग्दर्शन का भान और अनुभव हुआ है, ऐसे भावमुनि **वे जिसमें कल्याण की परम्परा है – ऐसे सुखों को पाते हैं...** उनके कल्याण की परम्परा तीर्थंकरगोत्र बाँधकर परम्परा से तीर्थंकर होकर, केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जायेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तीर्थंकरगोत्र भी समकिती को होता है, मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। षोडश भावना में दर्शनविशुद्धि पहली है। निश्चय सम्यग्दर्शन अनुभव बिना तीर्थंकरपने का भाव भी नहीं हो सकता।

यहाँ कहते हैं कि जो कोई आत्मा के अनुभवसहित, आत्मा के आनन्द के स्वाद के अनुभवी जीव और आगे बढ़कर साधु (हुए, जिसे) अन्दर रमणता चारित्र की हुई है, वह **कल्याण की परम्परा है...** कल्याण ही मिलेगा। एक के बाद एक... एक के

बाद एक... फिर एक कल्याण की वृद्धि होगी। **ऐसे सुखों को पाते हैं और जो द्रव्यश्रमण हैं,...** कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं। जिसे सम्यक् अनुभवदृष्टि आत्मा के स्वाद की नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड में लगे पड़े हैं, वे **द्रव्यश्रमण हैं, वे तिर्यंच, मनुष्य, कुदेव योनि में दुःखों को पाते हैं।** है पाठ? पाठ है या नहीं? पाठ तो है। **'णरतिरियकुदेवजोणीए'** ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है।

आत्मा का अनुभव, चैतन्य आनन्द के स्वभाववाला तत्त्व, ऐसा जहाँ अन्दर ज्ञान होकर, भान होकर प्रतीति हुई, ऐसा साधु आगे बढ़कर शुद्धभाव की परम्परा बढ़ाकर **सुखों को पाता है।** सुख को पावे। **द्रव्यश्रमण हैं, वे तिर्यंच, मनुष्य, कुदेव योनि में दुःखों को पाते हैं।** आत्मा के सम्यक् अनुभव निश्चय बिना जितना क्रियाकाण्ड सब हो, वह कोई कुदेव हों, मरकर मनुष्य हो, फिर मरकर ढोर हो-पशु हो। **दुःखों को पाते हैं।** लो! पहले तिर्यंच लिया है। नर पहला। अर्थ में पहले तिर्यंच लिया है। **'नरतिर्यक्कुदेवयोनौ'**

मुमुक्षु : मूल गाथा में ऐसा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नर। पहला नर है। अर्थ में ऐसा लिखा है।

भावार्थ - भावमुनि सम्यग्दर्शनसहित हैं,... देखो! है? यह तो पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ किया है। जयपुर, २०० वर्ष पहले, हों! सम्यग्दर्शनसहित हो। जिसे एक विकल्प का कर्तापना भी नहीं होता। विकल्प होता अवश्य है परन्तु धर्मात्मा समकिती उसका जाननेवाला रहता है, करनेवाला नहीं होता। आहाहा! भारी कठिन व्याख्या। **भावमुनि सम्यग्दर्शन सहित हैं, वे तो सोलहकारण भावना भाकर...** सोलहकारण जो तीर्थंकरगोत्र के हैं, वे समकिती को होते हैं। जिसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है (अर्थात्) शुभभाव से धर्म होगा, पाप में मजा है—ऐसी जिसकी मिथ्याबुद्धि है, उसे सोलहकारण में एक भी कारण सच्चा नहीं होता। सम्यग्दर्शन आत्मा के भानवाला स्थान, उसमें जो शुभभाव समकिती को होता है, वह भावना भाता है।

गर्भ,... कल्याणक। उसे गर्भ कल्याणक होता है। **जन्म,...** कल्याणक होता है। **तप,...** अर्थात् सच्चा मुनि कल्याणक होता है, **ज्ञान,...** कल्याणक होता है और

निर्वाण,... कल्याणक होता है। समझ में आया? **पंच कल्याणक सहित तीर्थंकर पद पाकर...** वह तीर्थंकर होकर मोक्ष जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह जोर दिया है, भाई! देखो! अर्थ में कहा है, हों! ऐसे तो कल्याण परम्परा ... टीका में ऐसा लेते हैं। परन्तु सब उसे पाते नहीं, परन्तु उसमें कोई पाते हैं। ऐसा। सब तीर्थंकरपद नहीं पाते। इसलिए यह शब्द नहीं है। राग होता है, इसलिए नहीं तो साधारण तो ऐसा है। **'पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं'** बस, यह शब्द इतना। शुद्धि की वृद्धि करते-करते आगे पूर्ण पद परमात्मा को पावे। ऐसा साथ में व्यवहार डाला। परन्तु ऐसा व्यवहार किसी को होता है। ऐसा।

किसी को आत्मज्ञान के भानसहित ऐसा तीर्थंकरगोत्र का भाव होता है, तीर्थंकरपना बाँधता है। और वह तीर्थंकररूप से जब उपजता है, तब उसके पंच कल्याणक होते हैं। माता के गर्भ में आवे तो उसका कल्याणक होता है। इन्द्र मनाते हैं। हें! कहो! उसका जन्म कल्याणक होता है। आत्मा के अनुभवसहित, सम्यग्दर्शनसहित जहाँ अवतरित हुआ है, और उस भव में तीर्थंकर होनेवाला है, उसका तो जन्म कल्याणक होता है। उसका जन्म कल्याणक होता है। तप कल्याणक अर्थात् मुनिदीक्षा। भावलिंगी, आत्मा के आनन्दसहित स्वरूप की रमणता के चारित्र को अंगीकार करनेवाले, उसका भी कल्याणक देव आकर करते हैं। ज्ञान कल्याणक। पश्चात् केवलज्ञान होता है। इस सम्यग्दर्शनसहित हो, उसे तीर्थंकरगोत्र होता है, उसे पंच कल्याणक होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा की पहिचान नहीं और सोलहकारण भावना भावे, तीर्थंकर पद पावे, ऐसा नहीं हो सकता। आता है या नहीं? क्या आता है उसमें? सोलहकारण भावना। दंसण विशुद्धि भावना भावे, तीर्थंकर पद पाय परमगुरु हो। भजन में आता है, भजन में। परन्तु वह तो सम्यक् आत्मा के एक विकल्प का-राग का कण जो दुःख है, महाव्रत का, दया-दान का, उसे भी जो दुःखरूप जानता है और आत्मा को आनन्दरूप जानता है, ऐसे समकिती को ऐसा भाव होता है। इसके अतिरिक्त ऐसा भाव अज्ञानी को नहीं होता। समझ में आया?

तीर्थंकर नाम पड़े, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए कि आहाहा! परन्तु वह तो सहज ऐसा आत्मा हो जिसका, उसे ऐसे भाव सहज आ जाते हैं और उसमें तीर्थंकर होकर

आगे मोक्ष जाए, ऐसा कहते हैं। जिसे सौ इन्द्र पूजते हैं। समझ में आया? यह महत्ता नहीं। उसके आनन्द और पूर्ण शान्ति की महत्ता अन्दर है। और सम्यग्दर्शनरहित जिसे आत्मा का अनुभव नहीं, 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' इस आत्मा का जहाँ अनुभव नहीं, आत्मा के आनन्द के स्वाद की खबर नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड में रचे-पचे हैं, ऐसे सम्यग्दर्शनरहित द्रव्यमुनि है, वह ढोर में जाएगा, कहते हैं! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य का कथन वह कठिन और कड़क। समझ में आया? वह हल्का मनुष्य होगा या कुदेव—व्यंतर, भूतड़ा आदि होगा। आहाहा!

तीन लोक का नाथ आनन्द का धनी प्रभु, उसकी जिसे खबर नहीं। मृग की नाभि में कस्तूरी, मृग की नाभि में कस्तूरी परन्तु उसे कस्तूरी की खबर नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर में आनन्द का नाथ स्वयं है, उसकी इसे खबर नहीं। यह खबर सब बाहर की धूल की। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि आत्मा के अनुभव के सम्यग्दर्शन बिना **तिर्यंच, मनुष्य, कुदेव योनि पाते हैं।** आहाहा! **यह भाव के विशेष से फल का विशेष है।** लो! भाव विशेष, फल विशेष। ऐसा। भारी कठिन परन्तु कठिन जगत को। बाहर में से खोजा है और माना है न। बाहर में सब खोजने गया है। है अन्दर। 'उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार।' ऐसा मार्ग जिसने सुना नहीं न, इसलिए ऐसा लगता है कि यह तो सब निश्चय की बात। निश्चय अर्थात् सच्ची बात। परन्तु खोटी बात तो साथ में करते नहीं कुछ। ऐई! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो यह कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १०१

आगे कहते हैं कि अशुद्ध भाव से अशुद्ध ही आहार किया, इसलिए दुर्गति ही पाई – भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), अनन्त बार किया, बापू! इसलिए तेरे लिये किया हुआ आहार उद्दिष्ट बनाकर, चौका बनाकर तूने लिया, उसके कारण चार गति में भटका। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! १०१ (गाथा)।

छायालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण।
पत्तो सि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो।।१०१।।

'गसिउं' अर्थात् खाया। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि कहते हैं कि हे **मुने! तूने अशुद्धभाव (मलिनभाव) से छियालीस दोषों से दूषित अशुद्ध अशन (आहार) ग्रस्या...** तेरे लिये किया हुआ उद्देशकर बनाया हुआ, तेरे लिये पानी गर्म किया, उसे तूने लिया, उसे भटकाव खाकर चार गति में भटका है। आहाहा! प्रकाशदासजी! है? पाठ तो है न, अपने पाठ? **अशुद्धभाव से छियालीस दोषों से दूषित अशुद्ध...** लो! छियालिस दोषरहित। चाहिए इसके बदले छियालिस दोषसहित, ऐसा आहार किया, ऐसा मुनिपने का नाम धराकर और ऐसा सदोष आहार किया।

अशुद्ध अशन... अशन-पानी सब लेना। **(आहार) ग्रस्या (खाया) इस कारण से तिर्यंचगति में...** इस कारण से तू तिर्यंचगति में... आहाहा! **'तिरियगईए'** यहाँ तो शब्द एक ही लिया है। तेरे लिये बनाया हुआ, तेरे लिये किया हुआ तूने आहार-पानी लिया। वह सदोष आहार, उद्देशिक आहार साधु होकर ऐसा तूने लिया। आहाहा! **पराधीन होकर महान (बड़े) व्यसन (कष्ट)...** है न **'महावसणं'? 'महावसणं'** अर्थात् कष्ट। **महान (बड़े) व्यसन (कष्ट) को प्राप्त किया।** चौरासी के अवतार का कष्ट मिला। विशेष व्याख्या भावार्थ में कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ५, रविवार, २६-०५-१९७४
गाथा - १०२ से १०५, प्रवचन-१५७

भावपाहुड़ १०२ है।

अर्थ – हे जीव! तू दुर्बुद्धि (अज्ञानी) होकर... मुनि बाह्य द्रव्यलिंगी है, उसे सम्बोधन कर बात करते हैं। हे दुर्बुद्धि अज्ञानी! इस दुर्बुद्धि का अर्थ ही अज्ञानी है। कोष्ठक में अज्ञानी की आवश्यकता नहीं। दुर्बुद्धि अज्ञानी पूरा एक है। **'ऽधी'** है न **'ऽधी'** वह दुर्बुद्धि। यह **'ऽधी'** का अर्थ दुर्बुद्धि है न। देखो न, पाठ है न **'ऽधी'**?

मुमुक्षु : 'ऽधी'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'ऽधी' दुर्बुद्धि।

(अज्ञानी) होकर अतिचारसहित... कोई अतिचार लगाया सचेत आहार खाकर। जिसमें एकेन्द्रिय जीव है। यह वनस्पति, कन्दमूल इत्यादि जीव है, ऐसा सूचित करते हैं। उसे तू मुनि नाम धराकर और ऐसे दोष अतिचार लगाये। **तथा अतिगर्व...** वहाँ उद्धत अलग शब्द की आवश्यकता नहीं है। यह अतिगर्व उद्धतपने से, ऐसा है पूरा शब्द। **अतिगर्व (उद्धतपने) से...** पण्डित जयचन्द्रजी का यह शब्द है। **सचित्त भोजन...** ऐकेन्द्रिय जीव जिसमें है, ऐसा भोजन किया। मुनि नाम धराकर अनन्त बार। आहाहा! **तथा पान,...** सचेत पानी है न यह जीव? एक बूँद में असंख्य जीव है। अज्ञानी को तो उसकी खबर नहीं। ऐसा **जीवसहित आहार–पानी लेकर अनादि काल से तीव्र दुःख को पाया,...** अनन्त-अनन्त काल में अनन्त संसार में ऐसे दुःख तुझे प्राप्त हुए। मुनि नाम धराकर भी, नग्न दिगम्बर होकर भी जिसमें ऐसे सचेत आहार खाये अथवा तपस्वी नाम धराकर हम कन्दमूल खायें तो हमारे बाधा नहीं, आदि। यह कहेंगे अर्थ में। **अनादि काल से तीव्र दुःख को पाया,...** जीव की खबर नहीं अभी। जीव कहाँ है? कितने हैं? एक आलू, शक्करकन्द की एक कणी में असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। कौन माने? ऐसा जिसे ज्ञान नहीं और जिसे ज्ञान होने पर भी वह सचेत, मुनि नाम धराकर खाता है, वह तीव्र दुःख को पाता है, ऐसा कहते हैं। चार

गति में भटकने के दु:ख को पाता है।

भावार्थ – मुनि को उपदेश करते हैं... मुख्य मुनि की अभी बात है न भावपाहुड़ में? **कि अनादि काल से जब तक अज्ञानी रहा...** अनादि से अज्ञानी (है, उसे) वस्तु की खबर नहीं होती। भगवान सर्वज्ञ जीव किसे कहते हैं? अजीव किसे कहते हैं? वह कितनी संख्या में है? उसकी खबर जिसे नहीं होती। **अज्ञानी रहा जीव का स्वरूप नहीं जाना,...** उसने भगवान ने—सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, ऐसे जीव का स्वरूप जाना नहीं। ऐसा एक-एक जीव और ऐसे अनन्त जीव एकेन्द्रियादि। उसके जीव के स्वरूप को उसने जाना नहीं। आहाहा!

तब तक सचित्त (जीवसहित) आहार-पानी करते हुए... जीवसहित। वह सचेत जीवसहित शब्द लिया है। यह कोष्ठक में डाला है, यह सब फेरफार है। **सचित्त (जीवसहित) आहार-पानी...** ऐसा है शब्द। **आहार-पानी करते हुए संसार में तीव्र नरकादिक के दु:ख को पाया।** नरक में, निगोद में जाकर अनन्त दु:ख पाये। **अब मुनि होकर भाव शुद्ध करके...** अब तो जैन मुनि होकर आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट करके। ऐसा कहते हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द का अन्तर सम्यग्दर्शन, अनुभूति। आत्मा का अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करके **शुद्ध करके सचित्त आहार पानी मत करे,...** मुनि होकर फिर आहार-पानी में सचेतपना हो, वह न कर। आहाहा! भावपाहुड़ की बात है न, इसलिए चिन्तवन... **नहीं तो फिर पूर्ववत् दु:ख भोगेगा।** अनन्त काल में दु:ख मिले, वे तुझे मिलेंगे, भाई! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १०३

आगे फिर कहते हैं –

कंदं मूलं बीयं पुप्फं पत्तादि किंचि सच्चित्तं।
असिऊण माणगव्वं भमिओ सि अणतसंसारे।।१०३।।

अर्थ - कन्द कहिये जमीकन्द... ऐसा मूल शब्द है, भाई! **कन्द कहिये**

जमीकन्द... ऐसा शब्द है पण्डित जयचन्द्रजी का। ऐसा कन्द कहिये जमीकन्द, ऐसा नहीं। **कन्द कहिये जमीकन्द...** ऐसा। सर्वत्र कहिये शब्द है। बहुत अधिक फेरफार कर डाला।

मुमुक्षु : भाषान्तर कर्ता ने कर डाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा का फेरफार किया। भाषा आनी चाहिए।

मुमुक्षु : भाषान्तर कर्ता ने किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर ऐसा किसलिए किया? डालना किसलिए चाहिए? ... पूरा फेरफार है यह।

कन्द कहिये जमीकन्द... अब रामजीभाई कहते हैं न और ऐसा हुआ। उसका क्या करना? यह तो जानने के लिये बात होती है। **जमीकन्द...** सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कन्दमूल में अनन्त जीव है, यह किसी ने जाने नहीं और माने नहीं।

मुमुक्षु : अनन्त जीव है, उसमें कौन माने?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक जीव में अनन्त गुण है और अनन्त जीव हैं, यह किसने माने हैं? अज्ञानी ने सर्वज्ञ के अतिरिक्त कल्पना से सभी बातें कीं। किये जाए। यह कहते हैं कि एक कन्दमूल का टुकड़ा, आलू, शकरकन्द, एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव है। यह सर्वज्ञ परमेश्वर ने प्रत्यक्ष देखा, वह कहा है। कहो, जयन्तीभाई! अब इसका तो भान नहीं होता और आत्मा का ध्यान करो। किसका धूल में ध्यान करे? जड़ हो जाएगा, जड़। मिथ्यात्व के पोषण हैं सब। आहाहा! समझ में आया?

कन्द कहिये जमीकन्द, बीज चना आदि अन्नादिक,... अन्न है और इस अन्न में चावल, गेहूँ, बाजरे यह जीव है। उसमें जीव है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त जिसे तीन काल का ज्ञान नहीं और आत्मा का स्वभाव सर्वज्ञ है, वह सर्वज्ञ की दशा पूर्ण हो, तब आत्मा पूर्ण हुआ कहलाता है। कहो, ऐई! आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। उसका ज्ञ स्वभाव है— जानना। अर्थात् कि सर्वज्ञशक्ति और सर्वज्ञस्वरूपी ही आत्मा है। उसमें से जिसमें सर्वज्ञपने में से सर्वज्ञपर्याय अन्दर से प्रगट की, उसे तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर। अनन्त सिद्ध हुए, वे सर्वज्ञ हैं। लाखों भगवान विराजते हैं महाविदेह

में। सर्वज्ञ परमेश्वर केवली तीन काल का ज्ञान है। ऐसे ज्ञानरहित अज्ञानी ने अपनी कल्पना से जीव की बात की हो तो उसमें कन्दमूल को जीव मानता नहीं। वे मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव हैं। समझ में आया? आहाहा!

मूल कहिये अदरक, मूली... अदरक। अदरक अर्थात् मूल। क्या कहलाता है? मूली-मूली। मूली और है न प्याज? उसके एक टुकड़े में अनन्त जीव है। आहाहा! एक-एक जीव अनन्त गुणवाला है। एक-एक जीव सर्वज्ञस्वभावी है। ऐसी जिसे खबर नहीं, वे तो मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि पाप बाँधकर चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? **गाजर आदिक,...** लो। गाजर-गाजर। यह गाजर नहीं? एक टुकड़े में अनन्त जीव गाजर में हैं। कोमल गाजर होती है न? आहाहा! शकरकन्द, लहसुन, प्याज इन सबमें एक टुकड़े में अनन्त जीव है। यह सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त किसी ने देखे नहीं। दूसरे मत में यह कुछ बात है ही नहीं। वीतराग के अतिरिक्त, सर्वज्ञ के अतिरिक्त। यह सब बातें कल्पना से जोड़ दी, आत्मा ऐसा होता है, फिर ऐसा करना, अमुक करना। उन मूढ़ जीवों ने अज्ञान में से सब कल्पना की है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **आदि लेकर जो भी कोई सचित्त वस्तु...** यह पुष्प। पुष्प अर्थात् फूल। **पुष्प फूल,...** पुष्प का अर्थ फूल हुआ। बस, यह तो साथ-साथ में शब्द करते हैं। **पुष्प अर्थात् फूल, पत्र नागरबेल आदिक...** आदि पान। नागरवेल आदि **इनको आदि लेकर जो भी कोई सचित्त वस्तु थी, उसे मान (गर्व) करके भक्षण की।** यह गर्व नहीं चाहिए कोष्ठक में। पूरा चाहिए। मानगर्व। मूल पाठ है न? मूल पाठ **'माणगव्वं'** है न? मान और गर्व से खाया। उसमें क्या है जीव-जीव करते हो? मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव, ऐसे को जीव मानकर ऐसा कहे तुम क्या (कहते हो)? ऐसे अनन्त जीव किसने देखे थे? ऐसा मानकर अभिमानी गर्व करके भक्षण करते हैं। **उससे हे जीव! तूने अनन्त संसार में भ्रमण किया।** अनन्त संसार चार गति में भ्रमण किया। आहाहा!

भावार्थ - कन्दमूलादिक सचित्त अनन्त जीवों की काय है... यह कन्दमूल आलू, शकरकन्द, लहसुन, प्याज, गाजर। यह इतना बड़ा होता है। बेल बड़ी होती है, उसे क्या कहा जाता है? सूरण-सूरण। सूरण की गाँठ होती है न इतनी बड़ी? उस सूरण के टुकड़े में अनन्त जीव है। कौन माने यह? अन्ध को खबर नहीं होती। आहाहा! ऐसी

अनन्त जीव की खान है वह तो। आहाहा! **कन्दमूलादिक सचित्त अनन्त जीवों की काय है...** वह तो। समूह है। **अन्य वनस्पति बीजादिक सचित्त हैं, इनको भक्षण किया। प्रथम तो मान करके कि हम तपस्वी हैं,...** हम तो त्यागी हैं। हमारे क्या है? **हमारे घरबार नहीं है, वन के पुष्प फलादिक खाकर तपस्या करते हैं,...** चाहे जो खायें, हमारे क्या है? हमको कुछ नहीं। मर जाएगा। नरक और निगोद में जाएगा। वहाँ कुछ सिफारिश काम ऐसा नहीं वहाँ। खबर ही नहीं उसे वस्तु की। आहाहा!

ऐसे मिथ्यादृष्टि तपस्वी... जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है। जिसे जीव की खबर नहीं होती। कितने जीव कहाँ हैं, उसकी खबर ही अज्ञानी को-मूढ़ को नहीं होती। ... हमको कुछ पाप लगता नहीं। ऐसा मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि होकर ऐसे पाप अनन्त किये। अभी भी यह नाम धराकर ऐसा करता है। आहाहा! **ऐसे इन कन्दादिक को खाकर, इस जीव ने संसार में भ्रमण किया। अब मुनि होकर इनका भक्षण मत कर,...** जो आत्मा के ज्ञानसहित मुनि हुआ, आत्मा के भानसहित मुनि। मुनि तो उसे कहते हैं कि जंगल में बसे, जिसे वस्त्र न हो, नग्नदशा हो, जिसे अन्तर में तीन कषाय का अभाव हो, जिसे आनन्द के रस की रेलमछेल अन्दर चलती हो। आहाहा! बाहर की जिसकी नग्नदशा हुई हो, वस्त्र का एक धागा भी जिसे नहीं होता, ऐसे जंगल में बसनेवाले को मुनि कहा जाता है। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! उसे साधु कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर भगवान किसे कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली किसे कहना और भगवान किसे कहना! आहाहा! क्या हो? अज्ञानियों को... आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। जैन के सम्प्रदाय में जन्मे, उसे खबर नहीं होती। वाड़ा में जन्मे उसे! और जहाँ-तहाँ भटका-भटक करे। आहाहा! अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, ऐसे अनन्त सिद्ध हो गये और अनन्त० संख्यात लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। कौन देखने गया था महाविदेह में है या नहीं? और ऐसा कोई कहता है। अरे! भगवान! सुन न, भाई! जिसे ज्ञान हो, वह देखने गये थे वहाँ। देखा है उन्हें। समझ में आया? आहाहा! तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान है।

सर्वज्ञ, अनन्त नेत्र जिनके खुल गये हैं। चार कर्मरहित हुए हैं, चार कर्म बाकी हैं। वाणी आदि समवसरण में है। सीमन्धर परमात्मा महाविदेह क्षेत्र में विराजते हैं। यह बात अन्यत्र कहाँ है कहीं किसी जगह ? अज्ञानियों ने अपनी कल्पना से बातें बिना भान के करके दुनिया को भ्रमणा में डाला है। वह दुनिया मूढ़ जैसी भ्रमणा में पड़कर भटकना चार गति में। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसे इन कन्दादिक को खाकर,... लो! **स्वच्छन्द होकर सर्वभक्षी हुआ। ऐसे इन कन्दादिक को खाकर, इस जीव ने संसार में भ्रमण किया। अब मुनि होकर इनका भक्षण मत कर, ऐसा उपदेश है। अन्यमत के तपस्वी कन्दमूलादिक फल-फूल खाकर अपने को महन्त मानते हैं,...** हम महन्त हैं, हम साधु हैं, मुनि हैं, त्यागी हैं। खावे सब। कन्दमूल, शहद आदि (खावे) और माने कि हम साधु। मूढ़ है, कहते हैं। मर जाएगा, यह नरक में-निगोद में जाएगा। आहाहा! अब कहते हैं कि यह सब मानना, इसमें विवेक चाहिए, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १०४

आगे विनय आदि का उपदेश करते हैं, पहिले विनय का वर्णन है -

विणयं पंचपयारं पालहि मणवयकायजोएण।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति ।।१०४।।

आहाहा! देखो! यह डालकर वापस विनय डाला। अर्थात् अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर, पंच परमेष्ठी कौन हैं, उन्हें पहचानकर उनका विनय चाहिए। पाँच परमेश्वर। णमो अरिहन्ताणं। यह तो गुण के धारक की दशावाले हैं। उन्हें पहिचानकर उनका विनय चाहिए।

अर्थ - हे मुने! जिस कारण से अविनयी मनुष्य भले प्रकार विहित जो मुक्ति उसको नहीं पाते हैं... सर्वज्ञ परमेश्वर सिद्ध भगवान सच्चे सन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु का विनय किये बिना, उन्होंने कहा उसे माने बिना मुक्ति नहीं मिलती, उसे मोक्ष नहीं मिलता, उसे धर्म नहीं होगा। आहाहा! बहुत कठिन बात। **भले प्रकार...** है न,

पाठ है न? **'विहियं'। 'सुविहियं'** इसका अर्थ किया है। विहित। **जो मुक्ति...** ऐसा। **उसको नहीं पाते हैं अर्थात् अभ्युदय तीर्थंकरादि सहित मुक्ति नहीं पाते हैं,... 'विहियं'** कहा सही न बीच में। जिसे तीर्थंकर पदवी मिले, फिर मुक्ति हो, ऐसी दशा ऐसे अविनयी जीव को, जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर कौन है, उसकी पहिचान भी नहीं हो, उसका आदर भी न हो और मैं ही स्वयं हूँ... समझ में आया? ऐसा माननेवाले मूढ़ जीव चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा! **मुक्ति नहीं पाते हैं,...** वह तीर्थंकरादि पदवी नहीं होती।

इसलिए हम उपदेश करते हैं कि हाथ जोड़ना,... सर्वज्ञ परमेश्वर हों, आचार्य हों, सच्चे उपाध्याय-साधु, सन्त हों। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं वे, हों! अज्ञानी कहते हैं, वे नहीं। **चरणों में गिरना,...** उनके चरण में गिरना। आहाहा! **आने पर उठना, सामने जाना और अनुकूल वचन कहना, यह पाँच प्रकार का विनय है...** लो! जिसे सच्चा परमेश्वर, सच्चे सिद्ध और सच्चे साधु, आचार्य, उपाध्याय, साधु, उनकी जिसे पहिचान हो, वह उनका विनय करे, कहते हैं। उनका बहुत विनय करे। वे कहते हैं, तत्प्रमाण माने। वे आवे वहाँ खड़ा हो, चरण में पड़े, हाथ जोड़े। **सामने जाना और अनुकूल वचन कहना, यह पाँच प्रकार का विनय है...** लो!

अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और इनके धारक पुरुष इनका विनय करना, ऐसे पाँच... जिसे सम्यग्ज्ञान हुआ है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जो कहते हैं, ऐसी जिसे अन्तर सम्यग्ज्ञान दशा हुई है। राग से, विकल्प से, संयोग से भिन्न पड़कर अन्तर अनुभूति जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ है। वह आत्मज्ञानी जीव पंच परमेष्ठी को व्यवहार से बराबर मानता है, ऐसा कहते हैं। वह उनका विनय करता है। आहाहा! वह स्वयं ज्ञान का भी विनय करता है। आहाहा! ज्ञान उसे कहते हैं। समझ में आया? ऐसे शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ, विकल्प छोड़ दो। क्या शून्य हो जाए? जड़ होगा। स्वयं चीज़ क्या है आत्मा, पदार्थ अस्ति क्या है, अस्ति-मौजूदगी कितनी और कैसी और कितने क्षेत्र में कितने गुण से और कैसी है, उसके भान बिना उस पर दृष्टि पड़ेगी ही नहीं। यह बाहर के विकल्प कम करे, ऐसा इसे दिखता है, विकल्प कम हुए ऐसा दिखता है। जड़ जैसा हो जाएगा, मिथ्यात्व का पोषण करके। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यहाँ तो ज्ञान, जिसे एक आत्मा सर्वज्ञ स्वरूपी है, ऐसे अनन्त आत्मायें है, उनका अपना आत्मा का अन्तर ज्ञान जिसे हुआ है। वह ज्ञान का विनय करे। वह ज्ञान का विनय करे, वह दर्शन का विनय करे। सम्यग्दर्शन। आहाहा! वह पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा स्वयं, उसकी अन्तर में प्रतीति अनुभूतिसहित, आनन्द के स्वादसहित... आहाहा! इसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन का विनय करे। धर्मी हो, वह सम्यग्दर्शन का विनय करे। मिथ्यादर्शन का आदर नहीं करे। बड़े महन्त नाम धराते हों परन्तु जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग से विपरीत दृष्टि है, कल्पना करके कल्पित बातें की है, ऐसे अज्ञानियों का धर्मी आदर नहीं करता, उन्हें नहीं मानता। कहो, जयन्तीभाई! क्या करना यह सब परन्तु? वह ज्ञान का विनय।

चारित्र का विनय। आत्मा आनन्दस्वरूप के अनुभवपूर्वक आनन्द में लीनता की रमणता जिसे हुई हो, ऐसी चारित्रदशा। आहाहा! वह चारित्रदशा नग्न मुनि को होती है। ऐसी चारित्रदशा वस्त्रवाले को नहीं हो सकती, तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? आहाहा! अरे! एक भी बात का ठिकाना नहीं हो और माने कि हम धर्मी हैं, चारित्रवन्त हैं और तपस्वी हैं। आहाहा! अनादि काल से ऐसे विपरीत भाव किये। कहते हैं, चारित्र का विनय करे। आहाहा! चारित्र अर्थात् आत्मा के आनन्द में जिसकी अतीन्द्रिय आनन्द की धारा बहती है और पंच महाव्रतादि का विकल्प-राग भी होता है। बाह्य में नग्नदशा होती है, ऐसे चारित्रवन्त का विनय करे। कहो, पण्डितजी! यह एक-एक गुण क्या है, उसे समझा नहीं। भाई! अभी तो... पड़ गयी। आहाहा!

चारित्र, तप... उग्र आनन्द का उछाला अन्दर आवे। चारित्र की रमणता करते हुए आनन्द की दशा, अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला आवे। जिसमें इच्छा की उत्पत्ति ही न हो। ऐसी अन्तर दशा को तप कहते हैं। बाकी यह सब लंघन। अपवास-बपवास करे, वह सब लंघन है। इस आत्मदर्शनसहित, अनुभूतिसहित सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सम्यग्दर्शन कहा, उस सहित जिसकी चारित्रदशा है और उसमें उसकी उग्रदशा, चारित्र का ही भाव .... उग्र पुरुषार्थ से जो आनन्द की लहर आवे, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से तपे और शोभे, उसे तप कहा जाता है। बाकी लंघन है। आहाहा! गजब बातें, भाई! बात-बात में अन्तर है। अज्ञानी की और ज्ञानी की बात में बहुत अन्तर है। आहाहा! **और इनके**

धारक पुरुष... चार गुण लिये। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और उनके धारक आत्मायें। **इनका विनय करना,...**

मुमुक्षु : समन्तभद्राचार्य ने कहा - न धर्मोधार्मिके बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पाँच है न।

इनके धारक पुरुष इनका विनय करना, ऐसे पाँच प्रकार के विनय को तू मन-वचन-काय... आहाहा! मन से, वचन से और काया से। **तीनों योगों से पालन कर।** आहाहा! भावपाहुड़ है न?

भावार्थ - विनय बिना मुक्ति नहीं है, इसलिए विनय का उपदेश है। पाँच परमेष्ठी और इन गुण के धारक और ये गुण, इनका जिसे विनय नहीं, उसे मोक्ष नहीं होता। उसे धर्म ही नहीं होता। मोक्ष तो बाद में। आहाहा! समझ में आया? **विनय बिना मुक्ति नहीं है,...** अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा पूर्ण दशा प्राप्त वर्तते हैं। उनका जिसे आदर नहीं, विनय नहीं, मानता नहीं और मैं ही स्वयं भगवान हूँ, ऐसा सब माने, वे सब मूढ़ मिथ्यादृष्टि चार गति में नरक और निगोद में भटकनेवाले हैं।

मुमुक्षु : अभी तो भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम तो दे सब बहुत। भगवान नाम नहीं देते लोगों को? होवे भिखारी और भगवान नाम हो। भगुभाई! लो न। 'भगु' नहीं कहा था हमारे? जेतपुर में था। कन्दोई-कन्दोई। (संवत्) १९७० की बात है। ७० का वर्ष। भगु एक कन्दोई था। भोला जीव बेचारा लड़का। ७० की बात है। ७० का पौष महीना। कितने वर्ष हो गये? ६० वर्ष हो गये। दीक्षा लेकर गये पहले। ७० में दीक्षा हुई न? मगसिर। भगु आवे, फिर कहे, महाराज! भगु पशु है। ऐसा बोले। नाम भगवान। 'भगु' कहे, महाराज! 'भगु' पशु है। स्वयं ऐसा बोला। किसलिए? कि वे घर के लोग कहे न, उसके माँ-बाप? लड़के की बहू? देखो, बापू! भगु पशु जैसा है, तुम ध्यान रखना। इसलिए यहाँ आकर (ऐसा कहे)। आहाहा! घर में उसके माँ-बाप कहे न स्त्रियों को? वह बेचारा भोला व्यक्ति। मूर्ख परन्तु पागल नहीं। भोला बहुत। भोला, उसे कुछ भान नहीं होता। भगु पशु है, महाराज! कहा, यह क्या? यह कौन है? यह तो कन्दोई है। इसके माँ-बाप घर में इसे

पशु कहते होंगे न इसलिए। इसी प्रकार यह भगवान नाम धरावे और हो पशु जैसा। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्या आचरण सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्त ने कहे गये जो तत्त्व, उस तत्त्व की श्रद्धा न हो, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव भगवान नाम कहे, और धरावे, वे भगु जैसे होनेवाले हैं सब। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

विनय बिना मुक्ति नहीं है, इसलिए विनय का उपदेश है। विनय में बड़े गुण हैं,... परमात्मा सर्वज्ञदेव सिद्ध भगवान शरीररहित परमात्मा हैं। अरिहन्त को अभी शरीर होता है, वाणी भी होती है। वाणी खिरे। त्रिकाल ज्ञान हो। तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हो। उसे परमात्मा और उसे भगवान कहते हैं। जिसे शरीर हो, आहार न हो, पानी न हो, क्षुधा न हो, रोग न हो, ऐसे परमात्मा को अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। और सिद्ध को शरीर नहीं होता। वे तो अशरीरी परमात्मा पूर्ण दशा (सहित) लोकाग्र में विराजमान हैं। आहाहा! उन सब जीवों के **विनय में बड़े गुण हैं,...** उनका विनय करने से बहुत गुण है।

ज्ञान की प्राप्ति होती है,... लो! आया। वह कहे कि विनय करो तो शुभराग है और शुभराग से... जिस समय... विनय करना है, वह तो शुभ विकल्प है। परन्तु उसमें बहुमानपने का भान है न, उतना अन्दर आत्मा को गुण है। आहाहा! ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसमें ऐसा आता है कि पर का विनय करना, वह विकल्प है। निश्चय की बात आती है। आहाहा! व्यवहार से कहे। बहुमान है न? है तो वह विकल्प, परन्तु उसके पीछे ज्ञान में उस प्रकार का बहुत विवेक वर्तता है। इसलिए वह ज्ञान की प्राप्ति है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

मानकषाय का नाश होता है,... पंच परमेष्ठी, धर्मात्मा के प्रति बहुमान से इसके मान का नाश होता है। आहाहा! मैं हूँ, ऐसा हो गया हो उसे। पंच परमेष्ठी त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवली, जिनका इन्द्र आदर करे, जिनकी सभा में सिंह और बाघ आते हैं... आहाहा! ऐसी सभा महाविदेह में अभी विराजमान हैं प्रभु सर्वज्ञ वीतराग, उनकी सभा में इन्द्र, करोड़ों देव आते हैं, ऐसे परमात्मा का विनय करने से, कहते हैं, मान कषाय का नाश होता है। उनके आज्ञाकारी साधु, आचार्य, उपाध्याय,

मुनि (हों), उनका भी विनय करने से मान का नाश होता है।

शिष्टाचार का पालना है... जो सज्जनों का शिष्टाचार है। बहुमान करना, वह उसका पालन इसमें होता है। **और कलह का निवारण है...** अविनय में तो कलह होती है, क्लेश होता है। विनय में तो कलह का निवारण होता है। **इत्यादि अनेक विनय के गुण जानने। इसलिए जो सम्यग्दर्शनादि से महान् हैं,...** लो! अपने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि में बड़े हैं, **उनका विनय करो...** आहाहा! अपने से विशेष गुणवाले, सम्यग्दर्शनसहितवाले, हों! उसकी बात है। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, यह बहुत मुश्किल पड़ गयी है अभी जगत को। हें! आहाहा! एक आत्मा परिपूर्ण परमात्मा, उसकी ओर की अन्तर्दृष्टि करके निर्विकल्प दर्शन हो, उसे यहाँ निर्विकल्प आनन्द की दशासहित हो, उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! यह जैन परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता, तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! यह पक्ष की बात नहीं होगी? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। किसी प्रकार से, दूसरी प्रकार से सिद्ध होगा ही नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा साक्षात् महाविदेह में विराजते हैं। गणधर चार ज्ञान के धारक, अन्तर्मुहूर्त में चौदह पूर्व की रचना करते हैं। उस में के यह आगम हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में वहाँ भगवान के पास गये थे। वहाँ जाकर, (वापस) आकर यह शास्त्र रचे हैं। वे कहते हैं कि विनय चाहिए। पंच परमेष्ठी का अथवा उस गुण का। और अपने से गुण में अधिक हों, सम्यग्दर्शन में विशेष हों, सम्यग्ज्ञान में विशेष हों, चारित्र अन्दर रमणता में विशेष हों, महान हों, **उनका विनय करो...** आहाहा! वहाँ गर्व न रखो, अभिमान न करो। आहाहा! **यह उपदेश है...**

और जो विनय बिना जिनमार्ग से भ्रष्ट भये,... यह स्पष्टीकरण डाला। जैन सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा का पन्थ चला आता था। अन्यमत तो अभी चलते हैं, ऐसे तो थे उस समय, परन्तु यह श्वेताम्बर है, वह जैनधर्म से भ्रष्ट होकर निकले हैं। उनकी यह बात करते हैं। कठिन लगे ऐसी है जरा। सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त अन्यमतियों का मार्ग, जिसमें सर्वज्ञ नहीं, जिन्होंने कल्पित अर्थ और

पदार्थों की बातें की है, वे तो मानो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु यह श्वेताम्बर पन्थ जो दिगम्बर में से निकला, वह श्रद्धा भ्रष्ट होकर निकला है। ऐई! है?

विनय बिना... धर्मात्मा, समकिती, सन्त थे उस समय। परन्तु बारह वर्ष के तीन दुष्काल पड़े, निभ नहीं सके, इसलिए वस्त्रसहित मुनिपना माना। वस्त्र हो और मुनिपना है, ऐसा माना। जैनधर्म से भ्रष्ट हो गये। भारी कठिन बातें, भाई! आहाहा! यह श्वेताम्बर और उसमें से निकले स्थानकवासी। दोनों जैनधर्म से भ्रष्ट हो गये हैं। अन्य तो भ्रष्ट है ही। परन्तु यह भी भ्रष्ट होकर निकले हैं। आहाहा! ऐई! जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : एकदम सच्ची बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम सच्ची बात है?

विनय बिना.... मुनि और धर्मात्मा थे, उनका आदर नहीं रहा और नग्नरूप से मुनिपना पाल नहीं सके। फिर वस्त्र का टुकड़ा रखकर पहले अर्धफालक थे। श्वेताम्बर का पन्थ निकला वह। इतना आधा टुकड़ा साथ में रखते थे और उसमें मुनिपना माना और सब कल्पित शास्त्र रचे। कहो, खीमचन्दभाई! ऐसी बात है जरा। कठिन लगे, भाई! मार्ग तो यह है, बापू! माने, न मान इससे तो कहीं... वस्तु तो है, वह है।

विनय बिना जिनमार्ग से भ्रष्ट भये, वस्त्रादिकसहित... देखो! वस्त्र रखे, पात्र रखा, ऐसे सहित **जो मोक्षमार्ग मानने लगे...** हमारे मोक्ष का मार्ग है, ऐसा मानने लगे, वे सब मिथ्यादृष्टि भ्रष्ट हैं। आहाहा! जैन में रहे हुए की बात है, हों! यह। अन्य की बातें तो है ही नहीं। वे तो सब पाखण्ड के पोषक हैं। वीतराग के अतिरिक्त सब मार्ग। मार्ग ऐसा है। ३६३ पाखण्ड कहे हैं न? आत्मा की बातें करे परन्तु वे सब कल्पित, अपनी दृष्टि से कल्पित की हो वह। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग से विनयपना छोड़ दिया। भ्रष्ट होकर मोक्षमार्ग मानने लगे। आहाहा! वस्त्र और पात्र रखकर (मुनिपना माना)। मुनि को वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता। पात्र-बात्र कैसे? वे तो आनन्द की लहर में भिक्षा के लिये जाए। हाथ में आहार ले। खड़े-खड़े आहार लें, खड़े (रहकर) आहार लें। ऐसी मुनि की सत्त्व दशा वीतरागमार्ग में अनादि से चली आती है। अरे! कहीं सुना न हो। ऐई! प्रवीणभाई! है या नहीं

पुस्तक? वहाँ रह गयी? समाप्त हो गयी। इतनी ही है? अधिक नहीं रखी होगी? चींटियाँ हो गयी हों! इसमें बहुत चींटियाँ हुई हैं। वह है न कुछ अन्दर? चींटियाँ बहुत हुई हैं, ऐसा भाई कहते थे। चेतन कहता था, चींटियाँ बहुत (हुई है)। खुराक हो वहाँ आवे। आनन्द की खुराक तो आत्मा में है। आहाहा! वहाँ राग से भिन्न पड़कर आनन्द की खुराक में आत्मा जाए, उसे धर्मात्मा कहा जाता है यहाँ तो, भाई! आहाहा! और वह सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ वह आत्मा। ऐसी आत्मा की जाति को जानकर अपने आनन्द की खुराक करे जीव। अतीन्द्रिय आनन्द का (खुराक ले)। आहाहा!

कहते हैं, इससे भ्रष्ट हो गये। बहुमान नहीं रहा। अपनी कल्पित (मान्यता से) वस्त्रादि रखकर हम भी साधु हैं, वस्त्र रखकर हम भी मुनि हैं, ऐसा मनवाने लगे, वे सब भ्रष्ट हुए हैं। उनका यहाँ निषेध है। उनकी इस मार्ग में गिनती नहीं है। कठिन लगे, बापू!

★ ★ ★

गाथा - १०५

आगे भक्तिरूप वैयावृत्त्य का उपदेश करते हैं – भक्ति चाहिए, कहते हैं। आहाहा! सच्चे तत्त्व के भानवाले जीव की भक्ति चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

णियसत्तीए महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि।
तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं।।१०५।।

अर्थ – हे महायश! आहाहा! नग्नमुनि हुए हैं, इसलिए महायशरूप से (सम्बोधन करते हैं)। अकेले स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठा, अकेला मुनि होकर। आहाहा! **हे मुने!** जंगल में बसता है, स्त्री, पुत्र हो नहीं, धन्धा-व्यापार छोड़ा होता है। कहते हैं, इस अपेक्षा से तो भाई ठीक महायश है तू। दूसरे की अपेक्षा त्याग किया इतना, परन्तु सच्चा मुनि नहीं तू। **जिनभक्ति में तत्पर होकर...** वीतराग त्रिलोकनाथ। आहाहा! वीतराग परमेश्वर, जिन्हें राग का नाश होकर वीतरागता प्रगटी है, ऐसे त्रिलोकनाथ जगत में विचरते हैं, ऐसे उनकी भक्ति कर। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य देखो न! महासन्त, महामुनि थे। आत्मा के आनन्द की लहर

जिन्हें उछली थी। अनुभव में आगे बढ़कर चारित्रवन्त थे। जिन्हें प्रचुर स्वसंवेदन था। ऐसी दशावन्त भी भगवान के पास गये थे। महाविदेह में परमात्मा साक्षात् विराजते हैं, वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे। साक्षात् भगवान की वाणी सीधी सुनी। समवसरण में लाखों-करोड़ों देव के समीप सहित। वह वाणी सुनने के पश्चात् यहाँ आकर यह शास्त्र बनाये। कितना उनका विनय! ओहोहो! पंचम काल के प्राणी, साधु, उन्होंने सदेह महाविदेह भगवान की भक्ति की। महाविदेह भगवान की यात्रा की। आहाहा! अरे! कौन माने? अज्ञानी को इसका कुछ पता नहीं लगता कि यह क्या कहते हैं? पागल कहे। सुन, बापू! वे परमात्मा विराजते हैं, प्रभु। वर्तमान समवसरण में। इन्द्र आते हैं, गणधर शास्त्र रचते हैं। सिंह और बाघ जिनके समवसरण में आते हैं, नाग आते हैं। भगवान की वाणी इच्छा बिना ॐ ध्वनि खिरती है। परमेश्वर को ऐसी वाणी नहीं होती, उन्हें तो पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हुई है और वीतरागता-सर्वज्ञता (हुई है), उनकी वाणी में ॐ ऐसी आवाज उठती है। इच्छा बिना, होंठ हिले बिना, कण्ठ हिले बिना। ऐसी जिन की भक्ति में तत्पर रहो। इसमें भाषा थोड़ी आड़ी-टेढ़ी की है।

मूल तो ऐसा है कि **भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेद...** नहीं डाले इसमें। **उस वैयावृत्त्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर।** ऐसा है उसमें। **कैसी भक्ति?** कि **जिनभक्ति में तत्पर होकर,...** ऐसा। ऐसी। ऐसा अन्दर फेरफार शब्द का बहुत फेरफार है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव... आहाहा! अरे रे! अरिहन्त पद के नाम में जन्मे, उन्हें अरिहन्तपद की खबर नहीं होती और जहाँ-तहाँ बेचारा सिर फोड़े, भटके। आहाहा! मरकर नरक और निगोद जानेवाले हैं सब। आहाहा! यहाँ दुनिया भले माने। ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात, बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! जिनभक्ति कहते हैं। आहाहा! वह अनादर करता है।

जिनभक्ति में तत्पर होकर भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेदरूप वैयावृत्त्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। कैसी? **जिनभक्ति में तत्पर होकर...** ऐसी भाषा आड़ी-टेढ़ी ली है, भाई! पण्डित जयचन्द्रजी की। **भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेदरूप वैयावृत्त्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर।** आहाहा! वीतरागदेव परमात्मा विराजते हों तो उनकी भक्ति, न हो तो उनकी प्रतिमा की भक्ति भी

शास्त्र में कही गयी है। है वह शुभभाव।

मुमुक्षु : स्वयं होवे तो शुभभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव। आहाहा! ऐसा भाव उसे आता है। सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसे जिनभक्ति के भाव आते हैं। भाव है शुभ, पुण्य; धर्म नहीं। आहाहा! धर्मदशा पूर्ण न हुई हो, न हो, तब ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। बहुमान आता है। ओहो! धन्य अवतार प्रभु! तेरी दशा पूर्ण तूने प्रगट की और तेरी वाणी खिरी, उसमें हमारा मार्ग उसमें से हाथ आया। आहाहा! समझ में आया?

जिनभक्ति में तत्पर होकर... लोक दिखाव के लिये, ऐसा कहते हैं। दुनिया देखे कि हम भगवान की भक्ति करते हैं, कुछ गिनती में आवें, ऐसा नहीं। **जिनभक्ति में तत्पर होकर भक्ति के रागपूर्वक...** आहाहा! **उस दस भेदरूप वैयावृत्त्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर।** आहाहा! आनन्दघनजी कहते हैं, एक बार भगवान की स्तुति करते हुए, 'देखण दे सखी देखण दे। जिनकंद प्रभु मुने देखण दे।' न देखा एकेन्द्रिय में मैंने प्रभु को हे नाथ! हरितकाय, एकेन्द्रिय, पृथ्वी, पानी में, अग्नि में भटककर मर गया अनन्त भव। वहाँ नहीं देखा मैंने। नहीं देखा दो इन्द्रिय में, नहीं देखा त्रिन्द्रिय में, नहीं देखा चौइन्द्रिय में, ऐसा कहकर व्यवहार भी सिद्ध किया वीतराग ने कहा वह। 'अेमां सखी मुने देखण दे।' अब मुझे देखने दे। मेरा नाथ अन्तर सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा ऐसा, पूर्णानन्द से, अमृत से भरपूर प्रभु, ऐसा मेरा स्वरूप अब मुझे देखने दे, सखी! सुमति को श्रद्धा कहते हैं। वह आता है उसमें। नहीं? आनन्दघनजी में। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्या कहा? चन्द्रप्रभु के दर्शन में आता है। देखण दे सखी। मैंने नहीं देखा मेरा वीतराग रूप। आहाहा!

भगवान आत्मा तो अन्दर वीतराग का रूप है चैतन्य। राग के कण रहित चीज़ वीतराग से भरपूर आत्मा है। आहाहा! ऐसा स्वरूप, हे सखी! अब मुझे देखने दे। मैंने दूसरा बहुत देखा। जगत का बहुत देखा। परन्तु कभी मेरा नाथ मैंने नहीं देखा, ऐसा

कहते हैं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त जिसकी पर्याय, वह वस्तु वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती। धर्म है, वह पर्याय है। अब पर्याय की खबर न हो इसे। ध्यान है, वह पर्याय है। और ध्यान का ध्येय है वस्तु, वह द्रव्य-गुण वस्तु सामान्य है, उसकी भी खबर नहीं होती सामान्य क्या और पर्याय क्या? अन्ध दौड़ से (दौड़ता जाता है)। समझ में आया?

सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। 'वैयावृत्त्य' दूसरे दुःख (कष्ट)... कोष्ठक में नहीं चाहिए। दुःख और कष्ट दोनों साथ में शब्द है। **दुःख (कष्ट) आने पर उसकी सेवा चाकरी करने को कहते हैं।** लो! आहाहा! भाव होता है न ऐसा। **आचार्य,...** की भक्ति कर। आचार्य। आचार्य किसे कहना? आहाहा! जिसे अन्तर का आनन्द, भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसे श्रद्धा में, अनुभव में प्रगट हुआ है, और जिसे आत्मज्ञान का स्वसंवेदन अन्तर वर्तता है। तदुपरान्त जिसे चारित्र की रमणता अन्दर में वर्तती है। आहाहा! तदुपरान्त इस जगत के प्राणी को शिक्षा और दीक्षा देनेवाले हैं। बाह्य की जिसे नग्नदशा होती है। ऐसे आचार्य की भक्ति कर, कहते हैं। आहाहा! अभी तो कुछ दिखते नहीं परन्तु श्रद्धा में करके भक्ति कर, ऐसा कहते हैं। कठिन पड़े। आचार्य की भक्ति कर।

उपाध्याय,... की (भक्ति) कर। उपाध्याय वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित होते हैं अन्दर। मात्र वे पढ़े और पढ़ावें, उसकी मुख्यता से उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। उनकी भक्ति कर। सेवा-चाकरी कर। **तपस्वी,...** मुनि-मुनि। मुनि होते हैं न बड़े महीने-महीने के उपवास हों। आत्मा के आनन्द के ध्यान में ऐसे मस्त होते हैं कि जिन्हें आहार लेने की वृत्ति ही उत्पन्न नहीं होती। महीने-महीने दो-दो महीने तक। आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते होते हैं। आहाहा! ऐसे तपस्वी, सम्यग्दर्शन के भानसहित, वीतरागी तपस्वी मुनि हों, उनकी भक्ति कर, सेवा-चाकरी कर।

शैक्ष्य,... शैक्ष्य अर्थात् शिष्य। नवदीक्षित हों, ऐसे शिष्यों की। आत्मज्ञान हो, आत्मदर्शन हो, अनुभव की दशा प्रगट हुई हो और जिनकी नग्नदशा शिष्य मुनि की, ऐसे की सेवा कर। **ग्लान,...** रोगी-रोगी। मुनि हों, उन्हें रोग हो, कठोर वर्तता हो। शरीर है। मुनि हों, उन्हें कठोर रोग हो। आहाहा! उनकी भक्ति। **गण,...** साधु का

टोला, सन्त का झुण्ड, अरे! एक सन्त मिले नहीं, उसमें झुण्ड की बातें करे। आहाहा! सन्त के गण की सेवा, यह **कुल,...** परम्परा से चला आता हो न धर्म का कुल, धर्मात्मा का। **संघ,...** उनका समुदाय। **साधु, मनोज्ञ, ये दस भेद मुनि के हैं।** मुनि के दस प्रकार हैं। विस्तार बहुत है तत्त्वार्थसूत्र में। तत्त्वार्थसूत्र है, उसमें बहुत अधिकार है। यह दस प्रकार के सब समकिती, ज्ञानी, जैन मुनियों की यह बात है। दूसरे में तो मुनिपना ऐसा हो नहीं सकता। आहाहा! अभी समकित नहीं हो सकता दूसरे में तो फिर साधुपना कहाँ से आया? आहाहा! कठिन बात। **इनका वैयावृत्त्य करते हैं, इसलिए दस भेद कहे हैं।** लो! इनकी सेवा करे, चाकरी करे। विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ६, सोमवार, २७-०५-१९७४
गाथा - १०६ से १०८, प्रवचन-१५८

भावपाहुड़। १०६ गाथा है। **आगे अपने दोष को गुरु के पास कहना, ऐसी गर्हा का उपदेश करते हैं:**—आत्मा का भान हुआ हो, चारित्र भी हो, तथापि उसे ऐसी दशा में कोई दोष लगा हो, उस दशा के योग्य न हो तो वह गुरु के पास कहे, यह व्यवहार की पद्धति है। गुरु के पास उसका आलोचन करे।

अर्थ :- हे मुने! मुनि को लक्ष्य कर मुख्य बात है न यह। **जो कुछ मन-वचन-काय के द्वारा अशुभ भावों से प्रतिज्ञा में दोष लगा हो,...** मुनि की जो प्रतिज्ञा है सविरती की, उसमें कोई दोष लगा हो तो **उसको गुरु के पास अपना गौरव (महन्तपने का गर्व) छोड़कर...** महन्तपने का अभिमान छोड़कर कि मैं तो बड़ा हूँ, मुझसे कैसे होगा? आहाहा! जो उसकी भूमिका के योग्य न हो, ऐसा दोष लगा हो तो महन्तपने का अभिमान छोड़कर दोष का प्रायश्चित्त ले। **और माया (कपट) छोड़कर...** मैं बड़ा हूँ, मुझसे कैसे ऐसा दोष कहा जाये? ऐसा गर्व छोड़ दे। **माया (कपट) छोड़कर मन-वचन-काय को सरल करके गर्हा कर अर्थात् वचन द्वारा प्रकाशित कर।** अपने आत्मा की अन्दर मुनि के निकट निन्दा करना, वह गर्हा है।

भावार्थ :- अपने कोई दोष लगा हो और निष्कपट होकर... यह भावशुद्धि का कारण बताते हैं। **गुरु को कहे तो वह दोष निवृत्त हो जावे।** वह उसका दोष टल जाये। सरलरूप से अपने को उस जाति का दोष लगा हो, वह अपने आत्मा की साक्षी से, गुरु की साक्षी से गर्हा (करे)। मुनि की एक विधि है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : दोष त्यागा क्यों नहीं? दोष तो हुआ है। चला कैसे जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष, स्वभाव का आश्रय करे तो चला जाये।

मुमुक्षु : यह बात बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह बाहर का व्यवहार है न! व्यवहार का इतना सरलपना

अपने अन्तर में जो भाव है, उसे बतलावे, इतना सरलपना हो जाये अन्दर। इतना अन्दर में अभिमान टलकर माया-कपट टलकर इतनी सरलतापूर्वक कहे, उतना दोष टलता है। वैसे निश्चय से तो स्वभाव का आश्रय ले, तब ही टलता है। परन्तु यहाँ तो अभी व्यवहार की बात है न! आहाहा! सर्वज्ञ के मार्ग में यह बात होती है, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने तीन काल-तीन लोक जाने, उन्होंने जो मुनिमार्ग की पद्धति कही, उस पद्धति में उससे विरुद्ध कुछ हुआ हो तो वह दोष गुरु के पास गर्हे, तो वह दोष निवारण हो जाये, ऐसा कहते हैं।

यदि आप शल्यवान रहे... अन्दर शल्य रहे। दोष लगा हो, उसे टाले नहीं महन्तपने के कारण अभिमान में, तो शल्य रह जाये अन्दर। यह तो सरल मार्ग है, भाई! यह कोई दुनिया को ठगने का मार्ग नहीं, यह तो आत्मा के लाभ का मार्ग है। इसलिए इस भावपाहुड़ में यह बात डाली है। अपने भाव की निर्मलता के लिये मलिनता के भाव का प्रायश्चित करे अथवा गुरु के निकट गर्हे। **यदि आप शल्यवान रहे तो मुनिपद में यह बड़ा दोष है,...** मुनि क्या, श्रावक या चाहे जो हो, उसके योग्य न हो ऐसी दशा हो गयी हो, उसे तो गुरु अर्थात् ज्ञानी धर्मात्मा के निकट गर्हे। आहाहा! मान छोड़कर, गौरव छोड़कर, अभिमान छोड़कर, अपनी पदवी बड़ी हो, उसका भी अभिमान छोड़कर करे, वह भावशुद्धि का कारण है, कहते हैं। देखो! ऐसी छोटी में छोटी बात भी भावशुद्ध में डाली है। जिसे मिथ्यादर्शन आदि तो टल गये हैं, परन्तु चारित्रदोष में भी इतनी कोई कमी आ जाये तो वह कमी का प्रायश्चित गुरु के पास गर्हणा करे।

इसलिए अपना दोष छिपाना नहीं,... जो कोई अपने को दोष लगा हो, उसे ढाँकना नहीं। उसे मार्ग में जाना है या गोपन करके अटकना है? आहाहा! **जैसा हो, वैसा सरलबुद्धि से गुरुओं के पास कहे, तब दोष मिटे...** इतनी दोष गर्हणा हुई न? अशुभ टले उतना और शुद्धस्वभाव के आश्रय से तो शुभ भी टले। ऐसा कहते हैं। यह तो अपने आत्मा के लाभ के लिये बात है न या दुनिया को दिखलाना है उसे? आहाहा! उसे दुनिया में बड़ा दिखाऊँगा तो ठीक रहेगा, परन्तु अन्दर दोष लगे, उसका शल्य रहेगा (वह) नुकसान करेगा। आहाहा! शरीर में लोहे का एक कण भी रह गया हो कहीं तो सड़े अन्दर में से। सड़ान करता हुआ बाहर तक सड़ान आवे। उसी प्रकार यह

छोटे में छोटा कोई ऐसा दोष उसे हो, उसको छोड़ देना चाहिए, वरना वह शल्य है। माया शल्य, मिथ्या शल्य, निदान शल्य। वैसे यह एक शल्य है, कहते हैं। आहाहा!

यह उपदेश है। काल के निमित्त से... अब यह जरा स्वयं रखते हैं। काल के निमित्त से **मुनिपद से भ्रष्ट भये,...** कौन?

मुमुक्षु : काल की बात आयी, इसलिए दिगम्बर छोड़कर श्वेताम्बर हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : काल के दोष से, ऐसा कहते हैं। ऐसा सनातन दिगम्बर मार्ग वीतराग परमेश्वर का कहा हुआ, केवली का कहा हुआ। आहाहा! वह मार्ग चला आता था सनातन अनादि। महाविदेह में तो एक ही मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर वहाँ महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ तो एक ही मार्ग है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी ऐसा कोई... नहीं। बाहर में बिल्कुल नहीं। आहाहा! उस समय बारह (वर्ष का) दुष्काल आदि पड़े, उसमें मुनिपद से भ्रष्ट हो गये। नग्नपना मुनिपना भावलिंगरूप से रख नहीं सके। इसलिए कहते हैं कि भ्रष्ट हुए, **पीछे गुरुओं के पास प्रायश्चित नहीं लिया,...** साधु आये बाहर से सच्चे। कि भाई! यह मार्ग अपना नहीं, यह तुमने क्या किया यह? वस्त्र का टुकड़ा रखा और यह सब। अब इस काल प्रमाण हमारा यह मार्ग है। अरेरे! आहाहा! जीव क्या करता है? पूरा सम्प्रदाय चलाया, श्वेताम्बर सम्प्रदाय। यह बात करते हैं। सम्प्रदायवालों को कड़क लगे।

कहते हैं कि भगवान का मार्ग तो अन्तर सम्यग्दर्शनसहित, अन्तर स्वरूप की चारित्रदशासहित बाहर में नग्न दशा, वह मार्ग अनादि का था। यह काल के दोष के कारण ऐसा, भाषा तो ऐसी कहे न! आहाहा! उसके कारण से मुनिपद से भ्रष्ट हुए। आहाहा! भारी कठिन बातें! कहो, पंथ बड़ा और उसे ऐसा कहना। २५०० वर्ष भगवान के... आता है ... यह तो मार्ग की पद्धति है, बापू! किसी के साथ वैर और विरोध की बात नहीं। किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं होता। वस्तुस्थिति तो यह है। बाकी सत्त्वेषु मैत्री। सब आत्मा मैत्रीरूप से देखे। आहाहा! वस्तु तो यह थी। वस्त्र का टुकड़ा रखकर फिर मुनिपना मनाने लगे, सर्वज्ञ परमेश्वर केवली का मार्ग जो था, उससे भ्रष्ट हुए। उन्हें दो हजार वर्ष हुए। प्रायश्चित नहीं लिया। सन्तों ने कहा कि यह मार्ग नहीं है। तुमने क्या

किया यह? तो कहे, अब हम इस प्रमाण चलनेवाले हैं। हमारे दूसरा मार्ग है नहीं। आहाहा!

तब विपरीत होकर अलग सम्प्रदाय बना लिये,... अलग सम्प्रदाय बनाया पूरा श्वेताम्बर। पुनातर! सूक्ष्म बात है। सम्प्रदाय की है। आहाहा! मनुष्य को दोष आया हो, उसे फिर निकालना भारी मुश्किल है। उसे बदलना... फेरफार करने के बाद यह चलना उसे... कि भाई! यह मार्ग नहीं। अनादि वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा परमेश्वर ऐसा मार्ग तीन काल में कहीं है नहीं। सर्वज्ञ ने देखा हुआ। एक समय में जिसने तीन काल-तीन लोक (देखे और) वर्णन किये, ऐसे परमेश्वर ने कहा हुआ यह मार्ग है। उस मार्ग में फेरफार करना, वह ... नहीं। बदला नहीं, बदला नहीं (और) नया सम्प्रदाय बनाया, शास्त्र रचे नये सब। वह ४५ सूत्र। उसमें से ३२ मान्य रखे। स्थानकवासी ने ३२ मान्य रखे।

मुमुक्षु : ७० बहुत छोटे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो छोटे हैं। वह तो सब देखे हैं न! सभी सूत्र (संवत्) १९७६ में ४५ सूत्र पाँच महीने में देखे। ७६-७६, कितने वर्ष हुए? ५४। ४५ सूत्र टीका सहित (देखे हुए हैं)। ७६ का चातुर्मास, दामनगर। दो भाद्रपद थे। व्याख्यान लेना। बस, फिर तो कुछ नहीं। कोई व्याख्यान हो नहीं। सवेरे व्याख्यान बस। आहार एक बार हो। पूरे दिन पढ़ना। ४५ सूत्र पढ़े पाँच महीने में। परन्तु (उनमें) कुछ नहीं मिलता। पूर्वापर विरोध का पार नहीं होता। नये बनाये हुए कल्पित। कठिन बात है, भाई!

'ऐसे विपर्यय हुआ।' अलग सम्प्रदाय बना लिये,... आहाहा! अभी आये थे। चार बस आयी थीं। आये थे। वन्दन करने। हमको पहिचाने सही न। हमारा ... पालेज का। मूलचन्दभाई है न वहाँ सेठ है। मूलचन्दभाई... है। चालीस लाख। वे आये थे। फिर आते थे। मूलचन्दभाई और वे आये थे। राजकोटवाला है कहीं। वह मूलचन्दभाई का ... अमरेली से आये थे। अभी चार बस आयी थी वहाँ से। वळता आये, दर्शन करने। ओहोहो! परन्तु तुमने यह क्या बना बड़ा! सहज बन गया है। रामजीभाई ने बनाया नहीं और वजुभाई ने बनाया नहीं। हमने तो ऐसा विचारा कहाँ था कि ऐसा होगा।

यह ... दस लाख ... यह तो बड़ा हो गया। ... पालेज के थे। कहा, सच्ची बात। पालेज ... यहाँ तो रात्रि में कह गये। ... बापू! यहाँ तो आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन की बात है, भाई! आत्मा क्या चीज़ है, उसके भान बिना, उसकी श्रद्धा और अनुभव बिना यह सब क्रिया-फ्रिया सब व्यर्थ है। तो हाँ तो करे बिना भान के।

मुमुक्षु : बिना भान के।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अर्थात् ऐसा कि ... करते हैं परन्तु हमको श्रद्धा है, ऐसा गहराई में माने। हमको श्रद्धा कहाँ नहीं? श्रद्धा तो है। आहाहा! यह शान्तिभाई के मकान में... चिमनभाई नहीं आये? सर्दी तो है नहीं, आये हों। शान्तिभाई का मकान है न! उसके आठवें मंजिल है न, अपने रहते थे वह। आठवीं मंजिल के ऊपर था। बारहवीं मंजिल। वह यह पालनपुरवाले बड़े गृहस्थ झबेरी हैं। वृद्ध... ८८ वर्ष की उम्र। आहाहा! परन्तु शरीर देखो तो अच्छा, हरता-फरता फर्स्टक्लास लकड़ी बिना चले। गृहस्थ व्यक्ति। सामायिक, प्रतिक्रमण सब लाईनसर क्रिया सवेरे से शाम तक किया करे। धन्धा-बन्धा छोड़ दिया। लड़के करते हैं। पैसेवाले हैं। एक-दो बार दर्शन करने आये थे बहुत कहा तो। मैंने कहा, समकित? समकित तो यह सब करते-करते होगा, ऐसा। क्या होगा? जगत को क्या चीज़ है अन्दर (खबर नहीं)। आहाहा! उसके अन्तर में वस्तु की प्राप्ति बिना... आहाहा!

पहला तो यह कि यह आत्मा सर्वज्ञ हो सकता है, यह जब बैठे; क्योंकि आत्मा स्वयं सर्वज्ञस्वभावी है, ज्ञ-स्वभावी है, इतना तो इसे जानने में लेना चाहिए न? ज्ञ-स्वभावी है, जाननस्वभावी है। तो जाननस्वभाव में फिर अपूर्णता और विपरीतता यह सम्भवे ही नहीं। ऐसा जो सर्वज्ञस्वभावी भगवान, और जब वह स्वभाव है तो उसे प्रगट जीवों को हुआ है, हुआ है अनन्त को तो ऐसे केवली भी जगत में हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसे हैं जगत में। पहले सर्वज्ञ की भी व्यवहारिक श्रद्धा तुझे न आवे, उसे आत्मा की श्रद्धा हो सकती ही नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर है, उनका बहुमान... भले वर्तमान नजर में न हो, परन्तु वर्तमान कहीं है, ऐसा तो उसे अनुभव में, निर्णय में आना चाहिए न? क्योंकि आत्मा सर्वज्ञस्वभावी

के साधक जीव हुए और वे साधक होनेवाले असंख्य समय में ही केवलज्ञान पावें। वह साधक जो अनुभवदृष्टि हुई और फिर केवलज्ञान पाने को उसे अनन्त काल नहीं चाहिए, असंख्य समय ही चाहिए। फिर भले दो, पाँच, पन्द्रह (भव), परन्तु वह असंख्य समय में। आहाहा! तब कहे, ऐसी कहाँ से हमको खबर पड़े? परन्तु ऐसा तो होगा या नहीं कि ... अनन्त काल में अनन्त जीव हो गये। वे साधक हुए या नहीं? साधनेवाले स्वरूप को। सर्वज्ञपना है अन्दर, उसे साधनेवाले हुए या नहीं? तो साधनेवाले हुए तो उसे साधकर पूर्ण होने में अनन्त काल चाहिए? क्योंकि त्रस में रहने की स्थिति ही अनन्त काल नहीं। त्रस में रहने की स्थिति ही दो हजार सागर है। आहाहा! इसलिए उसे पूर्ण होने में, त्रस में रहने में (और) पूर्ण होने में काल ही थोड़ा है उसे। पूर्ण होने को, हों! आहाहा! ऐसे अनन्त जीव हो गये अनन्त काल की अपेक्षा से। आहाहा! तो वह है या नहीं कहीं केवली? और वे केवली हैं तो जब शरीरसहित थे अरिहन्त तो उनकी वाणी थी। तो उस वाणी में सर्वज्ञपना और साधकपने का मुनिपने का भाव कैसा होता है, यह यहाँ वर्णन चलता है। यह भगवान ने देखा, ऐसा वर्णन किया। सर्वज्ञ (पद) पाने के लिये ऐसा साधन स्वरूप में एकाग्रता दर्शन-ज्ञान-चारित्र की हो। आहाहा! और उसकी वाणी में तत्त्व आये, वह तत्त्व यह आये कि जीवतत्त्व क्या? मोक्षमार्ग तत्त्व क्या? अर्थात् संवर-निर्जरा क्या? बन्धतत्त्व क्या? पुण्य-पाप वह क्या? वह सब सर्वज्ञ की वाणी में आया। इसके अतिरिक्त अज्ञानी अपने आप कल्पित करके मार्ग करे कि यह तत्त्व—ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी एक समय में (जाने) उन्हें जो मानता नहीं, केवलज्ञानी जगत में है, ऐसा ही मानता नहीं, वह तो मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। वह फिर चाहे जितनी आत्मा की बातें करे। आत्मा ही उसे कहते हैं कि केवलज्ञान की पर्याय में पूर्णता पावे, उसे आत्मा कहते हैं। अब ऐसा पाया हुआ आत्मा जगत में है, उसकी जिसे खबर नहीं, उसे आत्मा पूर्ण स्वरूप क्या है, उसकी श्रद्धा की उसे खबर नहीं। भाई! आहाहा! इसलिए वास्तव में तो उस आत्मा की ही उसे खबर नहीं। आहाहा! अब आत्मा की खबर नहीं, वह बातें करे ध्यान की, कायोत्सर्ग की और फलाना करना, ऐसा करना, वह करना। सब गप्प ही गप्प है।

मुमुक्षु : देनेवाले को खबर न हो तो वह आर्तध्यान और रौद्रध्यान हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आर्तध्यान और रौद्रध्यान। वह तो धर्मध्यान और शुक्लध्यान की बात चलती है। उल्टा ज्ञान तो कर रहा है अनादि से। आहाहा!

अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा चिदानन्द का नाथ प्रभु, उसका ध्यान अर्थात् ध्येय, जो उसे ध्येय लेना है, वह चीज़ कैसी है? वह पूर्ण स्वरूपी है, पूर्ण प्राप्त करे, ऐसी उसकी योग्यता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी जब तक प्रथम प्रतीति न आवे, तब तक उसे केवली की प्रतीति नहीं, आत्मा की प्रतीति नहीं। आत्मा पूर्ण कैसा होता है, उसकी भी उसे श्रद्धा की खबर नहीं। आहाहा! यह कोई वाडा की पद्धति नहीं। वह तो वस्तु के स्वरूप की पद्धति है यह तो। आहाहा! इसलिए उसमें तो आत्मा पूर्ण कैसा, वह भी उसकी प्रतीति में आवे, तब पूर्ण प्राप्तवाले जीवों की भी प्रतीति आवे और पूर्ण प्राप्त का साधन क्या था, वह भी उसकी प्रतीति में आवे। और पूर्ण प्राप्त जीवों की वाणी कैसी होती है? उस वाणी में वीतरागता ही आती है। जिस वाणी में वीतरागता का पोषक हो, वह वाणी वीतराग की है। तो वह शास्त्र को भी परखने की यह उसकी चाबी। आहाहा! अर्थात् देव, गुरु और शास्त्र तीनों आ गये इसमें। आहाहा! दिव्यशक्ति पूर्ण प्राप्त हो, वह परमात्मा। अब उससे आगे बात किसके घर की होगी? वह किसके घर में? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी है, मूढ़ है। आहाहा! वे कहते हैं, साधन पूरा करके आये हैं। अब तो मात्र यह... ऐसा कि लोक के लिये यह वाणी और सब है। आहाहा! जीव करते हैं न।

मुमुक्षु : उसे बैठी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बैठी हो, वह तो अज्ञान में पागलपने में मर जाये, उसमें क्या है? आहाहा!

यहाँ तो यह मुनिपने की पद्धति से भ्रष्ट हुए, तब उसे वास्तव में तो आत्मा का

पूर्ण स्वरूप क्या है? और केवलज्ञान क्या? और उनकी वाणी क्या? इन सबसे भ्रष्ट हुए। पण्डितजी! बातें ऐसी हैं, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों में सब गया। ... विपरीत था। ऐसा मार्ग है, बापू! किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं है। वह आत्मा है। उसकी भूल का फल उसे भोगना पड़ेगा। आहाहा! चार गति के दु:ख अनन्त बार भोगे। उन दु:खों को भोगेगा, उसके ऊपर द्वेष कैसे हो? आहाहा! उसके प्रति तो करुणा उपजे देखकर। श्रीमद् ने नहीं कहा? आता है? आत्मसिद्धि में।

कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई,
माने मार्ग मोक्ष का, करुणा उपजे जोई।

भाई! उसकी दया आती है, करुणा उपजती है। आहाहा! कहो, चेतनजी! ऐसी भाषा है, देखो! आहाहा! अरेरे! विपरीत दृष्टि में घोंटाकर यह मान बैठे कि मुझे उससे धर्म होगा, परम्परा से होगा। भाई! कहते हैं कि ऐसी क्रियाजड़वाले और या शुष्कज्ञान की बातें करनेवाले... आहाहा! जिसे अन्तर में ज्ञानस्वरूप का, आनन्दस्वरूप का स्पर्श नहीं और मात्र बातें करके मानो मोक्ष हो जायेगा। आहाहा! चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द में आरूढ़ हुए बिना जो कुछ क्रियायें (हैं, वे) सब निरर्थक हैं। चार गति में भटकने की है। आहाहा!

यहाँ तो कहे, यह सम्प्रदाय हुआ। ऐसे विपरीत हो गया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! श्रद्धा विपरीत, ज्ञान विपरीत, आचरण विपरीत, शास्त्र विपरीत, उनका केवली का स्वरूप विपरीत, गुरु का स्वरूप विपरीत, धर्म का स्वरूप विपरीत। आहाहा! उसमें सब विपरीत हो गया, भाई! आहाहा! यह उसमें यह मिलाया उन्होंने। पण्डित जयचन्द्रजी का है न यह अर्थ।

★ ★ ★

गाथा - १०७

आगे क्षमा का उपदेश करते हैं :— आहाहा!

दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा।
कम्ममलणासणट्ठं भावेण ण णिम्ममा सवणा॥१०७॥

अर्थ :- सत्पुरुष मुनि हैं... जो धर्मात्मा सत्पुरुष मुनि हैं। **वे दुर्जन के वचनरूप चपेट जो निष्ठुर (कठोर) दयारहित और कटुक (सुनते ही कानों को कड़े शूल समान लगे)...** कठोर शूल समान। ओहोहो! वह तो उनकी वाणी का योग हो, वह बोले। मुझे क्या कहते हैं यह? कोई कहते नहीं मेरे लिये। मैं कौन हूँ, इसकी तो उसे खबर नहीं। कौन निन्दा करे? चपेट मारे, कोई थप्पड़ मारे, कठोर वचन कहे। समता, ज्ञाता-दृष्टारूप से जाने। वह अवस्था की मेरे ज्ञान की पर्याय में वही जानने की योग्यता थी। मेरी पर्याय में वह जानने की योग्यता थी तो ज्ञानपर्याय में जानता हूँ। उसे ना करूँ कि ऐसा नहीं, तब तो वस्तु—ज्ञान की पर्याय का निषेध हो जाये। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में उस समय कोई प्रहार करे, मारे, गाली (दे), वह ज्ञान की पर्याय में जानने के योग्चय ही था उस समय। उस पर्याय में वही पर्याय थी। आहाहा! ऐसा जानकर क्षमा करे। समझ में आया?

सत्पुरुष मुनि हैं, वे दुर्जन के वचनरूप... कठोर, दयारहित। आहाहा! कडुवे **कटुक...** कटु शब्द। आहाहा! **ऐसी चपेट है उसको सहते हैं। वे किसलिए सहते हैं? कर्मों का नाश होने के लिये सहते हैं।** आहाहा! परीषह में नहीं आता? कर्म आठण अठ्ठम नहीं? कर्म परीषह कैसे सहन करे? क्या सूत्र? भूल गये। नहीं आता था? कर्म नाश के लिये।

मुमुक्षु : मार्ग ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ मार्ग... मार्ग से भ्रष्ट न हो और सहन करे। निर्जरा। मार्ग सेवनार्थं निर्जरार्थं परीषह।

मुमुक्षु : मार्गार्थं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। उसमें तो बहुत भरा है। अपना मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसमें से भ्रष्ट न हो, उसमें से न हटने के लिये मार्ग अचलनं, निर्जरार्थं और अशुद्धता को टालने के लिये परीषहजय, परीषहजय (करे)। आहाहा! ऐसी एक शास्त्र की रचना तो देखो! तत्त्वार्थसूत्र... परन्तु मार्ग अचलनात्। जो आत्मा शुद्ध चैतन्य, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र में रमता है, उसमें से नहीं हटने के लिय। आहाहा! और पूर्व के कर्म तथा अशुद्धता टलने के लिये परीषह जीतते हैं जीव। आहाहा! यह कहीं साधारण बात नहीं, यह कहीं पर के लिये नहीं। आहाहा! मार्ग से चलित नहीं होने के लिये—स्वरूप की श्रद्धा से, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप की जितने अंश में स्थिरता है, उसमें से नहीं चलित (होने के लिये), मार्ग अचलनं। आहाहा! उसे कर्म के क्षय के लिये निर्जरा करता है वह। आहाहा! आचार्य ने तो संक्षिप्त बात में बहुत भरा है। एक ओर ऐसा कहना कि सुनना, वह पुण्यबन्ध का कारण है। एक ओर ऐसा कहना कि आचार्य के शब्द एकान्त में वांचे तो (अमृत की) बूँद-बूँद झरती है। आता है? निहालभाई में आता है। अपेक्षा से जानना चाहिए न।

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय-व्यवहार। विकल्प है, उसे मुख्य गिनकर बन्धन कहा। परन्तु अन्तर लक्ष्य के जोर से वहाँ आगे सुनने का-वांचने आदि का काल होता है तो वहाँ शान्ति होती है, आनन्द झरता है, कहते हैं। आहाहा! धर्मी जीव को तो वांचन, श्रवण, मनन के समय भी शुद्धता की ओर का आश्रय होता है, इसलिए शुद्धि होती है। उसके कारण से नहीं... आहाहा! सुनने के कारण से नहीं। सुनने के ऊपर जो लक्ष्य है, वह तो राग है। आहाहा! भारी कठिन बात, भाई! 'ज्यां ज्यां जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही। आड़ा-टैढ़ा कर डाले तो तू आड़ा हो जायेगा। मार्ग तो है वह है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **कर्मों का नाश होने के लिये सहते हैं।** वह यह। मार्ग अचलं निर्जरार्थं परीषह... आहाहा! उमास्वामी का वाक्य है। आहाहा! **पहले अशुभ-कर्म बाँधे थे, उसके निमित्त से दुर्जन ने कटुक वचन कहे,...** वह कान में पड़े। उस अशुभ

का उदय था। उसमें तुझे क्या हुआ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह खिर गया। यह बोलना सरल है, परन्तु अन्दर समाधान करके...

मुमुक्षु : समाधान करके परिणाम....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात है यह। उस काल में कठोर शब्द पड़े ऊपर। समझे न? ऐसे पड़े.... उसे सुनते हुए शान्ति रखे। अशुभकर्म का बन्धन किया था, वह खिर जाता है।

वचन कहे, आपने सुने, उसको उपशम परिणाम से आप सहे,... जानने-देखने के भाव से उसे सुने, ऐसा कहते हैं। लो! **तब अशुभकर्म उदय हो खिर गये।** पूर्व का अशुभकर्म हो, वह खिर जाये। किसी के ऊपर किसलिए डाले कि यह तुमने ऐसा किया, यह तुमने ऐसा किया। ऐसे ऐसे कठोर शब्द बोले। अब वह तो उसे ठीक पड़े, ऐसा कहा। तू अब सुन न। तू शान्ति रख न! आहाहा! **अशुभकर्म उदय हो खिर गये। ऐसे कटुकवचन सहने से कर्म का नाश होता है।** ऐसे कठिन वचन (सुनते समय), ज्ञाता-दृष्टा मेरा स्वभाव तो जानने का है। वह चीज़ कहीं मुझे कहती नहीं कि सुन, तथा यह ज्ञान अपनी दशा छोड़कर वहाँ उसके पास सुनने जाता नहीं। आता नहीं सर्वविशुद्ध (अधिकार) में? आहाहा! आचार्यों ने तो... आहाहा! यह शब्द ऐसा नहीं कहता कि मुझे सुनने में रुक, तेरा ज्ञान रुक जाये, तथा ज्ञान की वर्तमान पर्याय शब्द के लिए अन्दर जाये—उसके पास नहीं जाती, ज्ञान की पर्याय ज्ञान में रहती है। आहाहा! ऐसा अन्तर में समाधान करके सहन करना अर्थात् क्षमा करना, क्षमा करना। आहाहा! उपशमभाव करना, ऐसा कहते हैं। अन्दर खदबदाहट हो विकल्प की, ऐसा न हो। वह तुझे नुकसान का कारण है। आहाहा! लो!

ऐसे कटुकवचन सहने से कर्म का नाश होता है। परन्तु इस प्रकार से, हों! वह सम्यग्दर्शन के भानसहित। अकेले कटुक सहन करे, वह तो एक शुभभाव है, पुण्य बाँधे। वापस ले जाये कि देखो, हम कटुक वचन सहन करते हैं, परन्तु वह सहन करते हैं, वे आत्मा के भान बिना। वह तो कुछ पुण्य बाँधे। शुभभाव क्षमा, व्यवहार क्षमा। यह तो निश्चय क्षमा। आत्मा ही स्वयं पुकार करके उठा। मैं तो जाननेवाला हूँ। यह शब्द मुझे कहे ही नहीं। मेरे पास शब्द आये ही नहीं, मेरी पर्याय वहाँ गयी नहीं, मैं हूँ वहाँ

हूँ। आहाहा! ऐसा करके अन्दर सम्यग्दर्शनसहित क्षमा करना, वह कर्म की निर्जरा का कारण है। कर्म के नाश का कारण है।

वे मुनि सत्पुरुष कैसे हैं? 'सप्पुरिसा' पहला और अन्तिम **वे मुनि सत्पुरुष कैसे हैं? अपने भाव से वचनादिक से निर्ममत्व हैं,...** भाव से वचन आदि से निर्ममत्व। वह वचन मुझे कहे, ऐसी उन्हें ममता नहीं, निर्मम हैं। आहाहा! यह वाणी, वचन मुझे कहे ही नहीं। वचन मुझे क्या कहे? मैं तो आत्मा हूँ। आहाहा! देखा! **अपने भाव से वचनादिक से निर्ममत्व हैं,...** वचन से, शरीर से—परपदार्थ मेरे, उनसे तो निर्ममत्व है। आहाहा! **वचन से तथा मानकषाय से और देहादिक से ममत्व नहीं है।** उसका स्पष्टीकरण किया कि वचन से नहीं, मान-कषाय से नहीं, देहादिक में ममता नहीं। आहाहा! यह वचन मुझे कहे, ऐसी ममता नहीं। देह मेरी है, (ऐसा नहीं) और वह देह का नाम लेकर कहता है, परन्तु देह ही मेरी नहीं। आहाहा! और मान-कषाय उसे होती ही नहीं। अभिमान नहीं। निर्मानरूप से सहन करे, आहाहा! हमको? हमको तुम ऐसा कहो? तुम कौन? भाई! अब रहने दे न! तू तुझमें रह। वह उसमें है। वह अन्तर में सम्यक् श्रद्धा के भानसहित क्षमा रखना, वह अपूर्व बात है, वह अपूर्व बात है। विकल्प उठाये बिना, आहाहा! ऐसी पद्धति सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी के पंथ में इस प्रकार से मार्ग होता है। आहाहा! दूसरे ने तो द्रव्य माना और पर्याय मानी नहीं, पर्याय मानी और द्रव्य माना नहीं, द्रव्य माना तो कितने गुणवाला स्वतन्त्र ऐसा माना नहीं। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा और रजकण को जितने गुणवाला कहा, वैसा आत्मा, उतने गुणवाला रजकण, स्व की और पर की यथार्थ प्रतीति के भानसहित ऐसी क्षमा करे, उसका कर्म का नाश होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ममत्व हो तो दुर्वचन सहे न जावें,... आहाहा! देह मेरा और यह वचन मुझे कहते हैं, ऐसी जो ममता हो तो उससे सहा न जाये। आहाहा! खलबलाहट... खलबलाहट हो जाये अन्दर। यह तत्त्व की बात चलती है, हों! यह कोई साधारण बात नहीं। आहाहा! **अभाव से दुर्वचन सहते हैं।** आहाहा! **अतः मुनि होकर किसी पर क्रोध नहीं करना, यह उपदेश है।** धर्मात्मा होकर दूसरे के प्रति क्लेश, क्रोध, अभिमान करके उसका तिरस्कार करना, ऐसा नहीं होता। **लौकिक में भी जो बड़े पुरुष हैं...** लो!

लौकिक में भी जो बड़े पुरुष हैं, वे **दुर्वचन सुनकर क्रोध नहीं करते हैं,...** बड़े पुरुष सुन ले। अपने को उसमें क्या है ? बालक तो इस प्रकार से ही कहे। लड़का-बालक आकर पिता को थप्पड़ मारे, क्रोध करता है वह ? यह तो बालक है। उसे तो 'मेरा बालक' है ऐसा धारकर (शान्ति रखता है)। वरना यहाँ तो बालक है (अर्थात्) वह तो अज्ञानी है ऐसा जानकर शान्ति रखे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें। वह तो कल्पना की। उसमें तत्त्व कहाँ आया ? वह तो है न, खबर है न। प्रायश्चित् करते हैं। वह क्षमा ही कहाँ है ? भान ही जहाँ नहीं वहाँ। वह मार्ग दूसरा... ऐसा कहे। वह तो यह देश के लिये सब मरते हैं, नहीं कितने ही ? यह वह क्षमा... ? वह तो यह देह मेरी नहीं, वाणी मुझे कहती नहीं, वह वाणी तो जड़ है, मुझे कहने की उसमें—वाणी में सामर्थ्य नहीं (क्यों) कि मुझे वह वाणी जानती नहीं। ऐसा जानकर जो समता रखे। दूसरा गाली सामने रखे, उसका अर्थ क्या ? सब लौकिक बातें। सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात सच्ची कहीं होती ही नहीं। आहाहा!

दुर्वचन सुनकर क्रोध नहीं करते हैं, तब मुनि को सहना उचित ही है। कहते हैं कि जगत में भी बड़े पुरुष साधारण की बात सुनकर (शान्ति रखते हैं)। हाथी चलता हो, पीछे कुत्ते भौंकते हों। हाथी उनके सामने देखे ? वह तो चलता है। हाथी तो चला जाता है उसके रास्ते। यह तो मोटर को कुत्ते भौंकते हैं। मोटर चलती हो और कुत्ते भौंककर साथ में दौड़े। कितनी देर दौड़ सकें वे ? फिर थक जाये तो खड़े रह जाये। आहाहा! इसी प्रकार धर्म के पंथ में चलनेवाले दौड़कर अन्दर... उसे कोई दूसरे कहे तो सुने। सामने क्या देखे ? आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

तब मुनि को सहना उचित ही है। संसार में बड़े पुरुष साधारण बात करे या नहीं ? ... वह साधारण है। तो धर्मी पुरुष को उसे सहन करना उचित है। उसके लिए तो यही योग्य है। आहाहा! **जो क्रोध करते हैं, वे कहने के तपस्वी (मुनि) हैं,...** वे कहने के मुनि आदि हैं, कहते हैं। आहाहा! **सच्चे तपस्वी नहीं है।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १०८

आगे क्षमा का फल कहते हैं :—

पावं खवइ असेसं खमाए पडिमंडिओ य मुणिपवरो।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ॥१०८॥

अर्थ :- जो मुनि प्रवर (मुनियों में श्रेष्ठ, प्रधान)... आत्मज्ञानसहित स्वरूप में स्थिरता जिसकी जमी है। आहाहा! जिसे स्थिरता कहाँ करना, ऐसी चीज़ की भेंट हुई है और उसमें स्थिरता की है। चारित्र अर्थात् स्थिरता, रमणता कहाँ करना, उस चीज़ की भेंट, अनुभव हो गया है। आहाहा! इससे उसमें चारित्र की रमणता जमी है। आहाहा! वह रमणतावाला सन्त, मुनि **क्रोध के अभावरूप क्षमा से मण्डित है...** वह तो क्रोध के अभावरूप क्षमा(सहित) है। शान्त... शान्त... शान्त... आहाहा! क्षमा से शोभित है। प्रधान सन्त, मुनि तो क्षमा से शोभित है, ऐसा कहते हैं। क्षमा रखे, वह उसकी शोभा है। क्रोध करे, बदला ले तो उसकी महत्ता रहती है, ऐसा नहीं है। गाली देनेवाले के ऊपर वह क्रोध करके उसे वापस नीचा करे तो वह महत्ता और शोभा रहती है, ऐसा नहीं। आहाहा! महत्ता की शोभा तो ऐसे रहती है, क्षमा करने से रहती है। क्रोध के अभाव से, क्षमा करने से उसे शान्ति रहती है। उसकी महत्ता उसकी वह शोभा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कुछ प्रतिकूल कहा, इसलिए उसके सामने कुछ कहूँ तो मेरी व्यवस्थिता रहे, वह शोभा नहीं है, कहते हैं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! शोभा तो वह चाहे जितना कहे तो भी सामने से कुछ भी आवाज नहीं, क्रोध नहीं, प्रतिकूलता का अंश नहीं—ऐसी क्षमा प्रगट करे, वह उसकी शोभा है। वह उसकी शोभा में वह सम्मिलित है। क्रोध करके अपने पद को बनाये रखने के लिये क्रोध करे, वह उसकी शोभा नहीं। उस पद की शोभा तो क्षमा से ही है। आहाहा! 'शठं प्रत्ये...' कहते हैं न लोग! ऐसा मार्ग नहीं होता, भाई! क्षमा रखता है। आहाहा! और यहाँ तो मुनि की बात है न।

वह मुनि समस्त पापों का क्षय करता है... क्रोधाग्नि न उत्पन्न करके शान्ति का रस उत्पन्न करता है। आहाहा! समरस जल में स्नान करता है। यह कहे, भाई! शत्रुंजय नदी में नहाये। शत्रुंजय में न नहाये, उसका अवतार व्यर्थ जाता है, ऐसी सब बातें करे।

शत्रुंजय का बहुत माहात्म्य उसमें आया है। अभव्य हो... शत्रुंजय जाये, उसका मोक्ष हो जाये। यह सम्मेदशिखर जाये, नहीं कहते? सम्मेदशिखर जाये (उसका) एक, दो भव में (मोक्ष होता है)। ४९ भव में एक व्यकित कहता था। ४९ भव में। मैंने कहा, यह वाणी, सम्मेदशिखर के —पर के दर्शन से भव घटे (ऐसा कहे), वह वाणी वीतराग की नहीं। महावीरकीर्ति आये थे। वे कहे कि ऐसा लिखा है। सम्मेदशिखर माहात्म्य में। क्या है? कि सम्मेदशिखर के दर्शन करे तो ४९ गाथा में मोक्ष हो। कहा, पर दर्शन से भव घटे, वह वाणी वीतराग की नहीं। मैंने शान्ति से कहा। उन्होंने सुना। आहाहा! बात तो ऐसी है, ऐसा है। परन्तु क्या ऐसी है? आहाहा!

तीन लोक के नाथ के समवसरण में दर्शन करे तो भव घटे नहीं। भव घटे पर से? वह तो शुभराग है। आहाहा! वस्तु तो वस्तु होगी न! वस्तु कहीं दूसरी चीज़ होगी? आहाहा! भगवान चिदानन्दस्वरूप भव और भव के भावरहित पदार्थरूप, उसकी शरण में जाये तो भव का अभाव होता है। आहाहा! जिसमें भव और भव के भाव का अभाव है, ऐसे स्वभाव की शरण में जाये, वहाँ भव का अभाव होगा। दूसरे को व्यवस्थित रखने जाये तो भव का अभाव होगा, दूसरे बहुत समझें मुझसे, सब बहुत समझे तो मुझे भव का अभाव होगा, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! लाखों और करोड़ों लोग, जिससे समझे, उसका कल्याण शीघ्र हो, ऐसा कुछ नहीं है। जिसे आत्मा का शरण और आत्मा का शरण ग्रहण किया, (उसका कल्याण होता है)। लो! वापस धूप आयी, उघड़ा।

क्षमा से मण्डित है, वह मुनि समस्त पापों का क्षय करता है... एक बात। **विद्याधर-देव-मनुष्यों द्वारा प्रशंसा करनेयोग्य निश्चय से होता है।** आहाहा! शान्त... शान्त... स्वभाव ऐसा जिसने प्रगट किया है, आहाहा! ऐसे विद्याधर से प्रशंसनीय। विद्याधर की श्रेणी के विद्याधर हों, वह उसकी प्रशंसा करे। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि बड़ी पदवीवाले भी उसकी प्रशंसा करते हैं, ऐसा कहते हैं। देव, मनुष्यों द्वारा प्रशंसा हो, ऐसा। बड़े देव भी उसकी प्रशंसा करे। ओहो! धन्य मुनि! शान्ति के सरोवर में स्थित तू। क्रोधाग्नि उत्पन्न नहीं की, ऐसे जीव की प्रशंसा देव करे। जिस पुण्य के फलरूप से देव में गये, वे भी ऐसी धर्म की महिमा करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मनुष्यों द्वारा। करोड़ोंपति मनुष्य... हो, तथापि उसके द्वारा (प्रशंसा) सम्यग्दर्शनसहित उपशमरस क्षमा में स्थित हैं, उनकी प्रशंसा तो मनुष्य करे। आहाहा! भावपाहुड़ में भावविशुद्ध के कारणों का वर्णन किया है। समझ में आया?

भावार्थ :- क्षमा गुण बड़ा प्रधान है,... प्रधान अर्थात् यह राजा का प्रधान होगा वह? तब? बोलो, प्रधान अर्थात् क्या? क्षमा गुण बड़ा मुख्य है। प्रधान अर्थात् मुख्य है, बड़ा, ऐसा। प्रधान आवे तो वह प्रधान आवे या नहीं? यहाँ क्या काम है? बापू! **इससे सबके स्तुति करनेयोग्य पुरुष होता है।** क्षमा गुणवाला, सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! अकेली साधारण क्षमा करे, वह क्षमा है ही नहीं। आहाहा! **स्तुति करनेयोग्य पुरुष होता है। जो मुनि हैं, उनके उत्तम क्षमा होती है,...** लो! अब ... उत्तम क्षमा आती है न! इस प्रकार का धर्म। उत्तम क्षमा। सम्यग्दर्शन अनुभूतिसहित जिसने क्षमा उत्पन्न की है, उसका नाम उत्तम क्षमा है। **वे तो सब मनुष्य-देव-विद्याधरों के स्तुतियोग्य होते ही हैं...** लो! सब मनुष्य, देव और विद्याधर (द्वारा) स्तुतियोग्य (होते हैं)। **और उनके सब पापों का क्षय होता ही है,...** आहाहा! **इसलिए क्षमा करना योग्य है - ऐसा उपदेश है।** लो! **क्रोधी सबके निन्दा करनेयोग्य होता है,...** क्रोध करनेवाला, जाजरमान कषाय करनेवाला सबसे निन्दायोग्य है। आहाहा! **इसलिए क्रोध का छोड़ना श्रेष्ठ है।** इसलिए क्रोध को छोड़ना, यह श्रेष्ठ हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ९, बुधवार, २९-०५-१९७४
गाथा - १०९-११०, प्रवचन-१५९

गाथा - १०९

भावपाहुड़। **आगे ऐसे क्षमागुण को जानकर क्षमा करना और क्रोध छोड़ना, ऐसा कहते हैं :—**

इय णाऊण खमागुण खमेहि तिविहेण सयल जीवाणं।
चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह ॥१०९॥

अर्थ :- हे क्षमागुण मुने! मुनि को लक्ष्यकर बात करते हैं। मुनि तो उसे कहते हैं कि जिसे आत्मज्ञान, स्वरूप आत्मा का चैतन्य आनन्द और शुद्ध है, उसका उन्हें अनुभव और भान होना चाहिए। ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसहित मुनि को सम्बोधकर यह बात करते हैं। परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं, उसे तो मुनि सम्बोधन नहीं कहा जा सकता। कहे जरा, महाजस और ऐसे शब्द आते हैं। भाव में अन्दर में पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे अन्तर में स्वसन्मुख और स्व के आश्रय की आरूढ़ता प्रगट हुई नहीं, उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन उपरान्त की यह बात है।

हे क्षमागुण मुने! (जिसके क्षमागुण हैं, ऐसे मुनि का सम्बोधन है)... अन्दर में तो एक साथ लिखा है। इसमें कोष्ठक में डाला है। **पूर्वोक्त प्रकार क्षमागुण को जान...** क्षमागुण अर्थात् आत्मा शान्त, आनन्दस्वरूप है, उसके भान की भूमिका में ज्ञाता-दृष्टारूप से प्रतिकूल संयोग में जाननेवाला-देखनेवालारूप से रहना, इसका नाम क्षमा कहा जाता है। आहाहा! वह क्षमा उत्तम क्षमा कही जाती है न, दस प्रकार के धर्म नहीं कहते? उत्तम क्षमा का अर्थ यह है कि सम्यग्दर्शनसहित क्षमा, उसे उत्तम क्षमा कहते हैं। यों तो ऐसे क्षमा तो बाह्य से अनन्त बार की, वह क्षमा नहीं। जिसने अन्तर आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त तीर्थंकरदेव ने कहा, केवली परमेश्वर परमात्मा ने जो आत्मा अन्दर कहा, वह शुद्ध चैतन्यघन है, उसका जिसे अन्तर में आदर और स्वभाव का

स्वीकार हुआ हो, वह प्रतिकूल संयोग के समय क्रोध न करके, क्षमा करता है। उसे यहाँ क्षमावन्त मुनि कहा जाता है। आहाहा!

कहते हैं कि **सब जीवों पर...** क्षमा गुण को जान, ऐसा कहते हैं। जानने का अर्थ यह कि आत्मा शान्त और क्षमास्वरूप ही है। सहन करना, ऐसी कोई चीज़ नहीं, वह तो जानना-देखना उसका स्वभाव है। चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग हों, परन्तु वह तो ज्ञेयरूप से है और आत्मा ज्ञानरूप से जाननेवाला-देखनेवाला है, ऐसा जिसे अन्तर में ज्ञाता-दृष्टारूप से रहने का हो, उसे क्षमावन्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कठिन बात!

सब जीवों पर मन-वचन-काय से क्षमा कर... सब आत्मायें। चाहे तो सिर को काटनेवाला शत्रु हो, वह जीव है। उसके प्रति भी विरोध का भाव उत्पन्न न होने देना और शान्ति, क्षमा, ज्ञानानन्द के आश्रय से ज्ञाता-दृष्टारूप से रहना, उसे यहाँ उत्तम क्षमा कहा जाता है। आहाहा! ऐसे मन-वचन-काय से... आता है न, खम्मेमी सव्वे जीवा। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप अन्दर है। उसे यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वह सब राग है। उस राग से पार भिन्न चीज़ है। आहाहा! इसने कभी खबर ली नहीं। यह राग का विकल्प उठे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, वह सब विकल्प और राग है, पुण्य है। उसके पीछे सच्चिदानन्द सिद्ध चैतन्य भगवान केवली ने देखा... समझ में आया?

'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता।' हे नाथ! आप सारे जगत को देखते हो। सर्वज्ञ परमेश्वर विराजते हैं, महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं। महावीरस्वामी आदि तो मोक्ष पधारे। वह तो सिद्धदशा—णमो सिद्धाणं में आये और यह भगवान विराजते हैं, वे णमो अरिहंताणं में हैं। वे पहले पद में हैं। उन अरिहंत की मुख की वाणी में यह ... प्रभु! 'तुम जाणग रीति।' आपकी जानने की रीति सब जग देखते हो। 'निज सत्ता से शुद्ध आत्म...' 'निज सत्ता से शुद्ध सबको पेखते हो।' यह भगवान आत्मा अपनी सत्ता—अस्तित्व, वह शुद्ध और पवित्र है। आहाहा! यह शुभ-अशुभराग जो है, वह आस्रव और विकार है, उसके पीछे प्रभु आत्मा विराजता है। वह स्वयं प्रभु है परन्तु कैसे जँचे इसे? आहाहा! पामरता में खतौनी कर डाली है न, तो इसे प्रभुता जँचती

नहीं। वह प्रभुता सम्यग्दृष्टि को जँचती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे अन्तर में पूर्णानन्द का नाथ मैं हूँ, शुद्ध चैतन्यघन सिद्धस्वरूपी मेरा स्वरूप है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव भी विकल्प है, वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! वह आस्रव है। उस आस्रव के पार पीछे अन्दर प्रभु चैतन्यघन शुद्ध है। अरे! उसकी अन्तर की दृष्टि होकर, अनुभव होकर सम्यग्दर्शन हो, उसे यहाँ धर्मी की पहली दशा गिनने में आती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान!

यह यहाँ कहते हैं कि हे क्षमावंत मुनि! उस-उस क्षमास्वरूप से भगवान को तूने जाना और देखा है, इसलिए तू क्षमा का जाननेवाला है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब तुझे प्रतिकूलता का संयोग आवे तो क्षमा करना, शान्ति रखना, भाई! आहाहा! किसी के प्रति क्रोध या अरुचि उत्पन्न नहीं करना, भाई! तेरा यह स्वरूप नहीं। तू तो अनुकूलता-प्रतिकूलता के प्रसंग में शान्ति रखना, भगवान! क्षमा करना, आत्मा की शान्ति रखना। आहाहा! कोई गाली दे, अपमान करे, निन्दा करे। भाई! वह तो जगत की चीज़ जगत के पास है। तुझे कहाँ कौन निन्दा करे? आहाहा! उस समय तू ज्ञाता-दृष्टा रहता हुआ, जाननेवाला-देखनेवाला रहकर क्षमा करना। आहाहा! यह पल अलग है। यह वस्तु का स्वभाव, उसके भानपूर्वक क्षमा, वह अलौकिक चीज़ है। इसलिए भगवान ने ऐसा कहा, उत्तम क्षमा। मुनियों की उत्तम क्षमा का अर्थ यह कि उसे आत्मा आनन्दस्वरूप अकेला क्षमा का पिण्ड, अकषायस्वरूप वीतराग मूर्ति है आत्मा... आहाहा! ऐसी वस्तु की अन्तर दृष्टि अनुभव हुआ है, उसे क्षमा रखने का मुनि को कहते हैं। जिसे भान नहीं और मिथ्यादृष्टि है, उसे क्षमा कैसी? उसे विकल्प आवे समता करने का तो वह पुण्य बाँधे, धर्म नहीं। आहाहा!

वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव का धर्म, भाई! प्रभु! सूक्ष्म है। कोई जगत के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं। आहाहा! वीतराग परमेश्वर तीन काल का जिन्हें ज्ञान है। एक सयम में—सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में परमात्मा पूर्ण जानते हैं। तीन काल-तीन लोक, जैसे हथेली में आँवला हो, उससे भी स्पष्ट जानते हैं। आहाहा! ऐसे भगवान के मुख में से ऐसा आया, प्रभु! तू क्षमा करना। आहाहा! भाई! तेरा आत्मा आनन्द का नाथ है। शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर तू आत्मा है। उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा अतीन्द्रिय

आनन्द का जिसे स्वाद आया है। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय आत्मस्वरूप भगवान आत्मा है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह आत्मा, हों! लोग कहे, ऐसा नहीं। दूसरे बहुत आत्मा... आत्मा बात करते हैं, परन्तु परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ ने जो अनन्त आत्मा देखे हैं, (वह आत्मा)। आहाहा! एक आलू का एक कण, उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर है और एक शरीर में अनन्त आत्मायें। जगत को कठिन पड़े। उसमें का एक-एक आत्मा पूर्णानन्द और शान्ति और अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। आहाहा! कहो, वजुभाई! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : क्षमावीरती भूषणम्।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्षमावीरती भूषणम्। आहाहा!

कहते हैं कि हे मुनि! सर्व जीवों के ऊपर इस प्रकार से आत्मा के भान की भूमिका में क्षमा रखना, भाई! किसी के प्रति क्रोध, द्वेष, अरुचि होने नहीं देना। आहाहा! आनन्दघनजी ने तो यहाँ तक कहा कि जिसे अन्दर में शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति के आवे, उनका जिसे प्रेम लग जाता है, उसे भगवान आनन्द का नाथ है, उसके प्रति उसे अरुचि है। आता है? 'संभव देव ते घुर सेवो सबे रे,...'

संभव देव ते घुर सेवो सबे रे, लहि प्रभु-सेवन भेद।
सेवन कारण पहिली भूमिका रे, अभय, अद्वेष, अखेद।

उसमें अद्वैष की व्याख्या में यह डाला है। परन्तु सूक्ष्म बात, हों, भाई! आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञान का समुद्र प्रभु है, उसका जिसे प्रेम नहीं, उसे उस पुण्य के परिणाम की प्रेम और रुचि है। आहाहा! और जिसे पुण्य के परिणाम की रुचि है, उसे भगवान आनन्द का नाथ आत्मा के प्रति उसे अरुचि-द्वेष है। आहाहा! यह कठिन बातें हैं, भाई! वीतरागमार्ग कोई साधारण नहीं। साधारण कर दे। यह तो अपूर्व बात है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे आत्मा को यहाँ सम्बोधकर कहते हैं। मेरा ऐसा कहना है यहाँ तो अभी।

हे क्षमागुण मुने! चैतन्यमूर्ति भगवान अन्दर अनाकुल आनन्द के रसकन्द से भरपूर प्रभु का तुझे भान है, उसकी तुझे रुचि है, वह तुझे पोसाता है। राग और पुण्य के

विकल्प धर्मी को नहीं पोसाते। आवे सही। पोसाण में वह बात नहीं। आहाहा! यह वह कहीं बात है वीतरागमार्ग! ऐसे जीव को सम्बोधकर कहते हैं, भाई! प्रतिकूल संयोग हो, क्षमा करना। मन, वचन, काया से करना। बाहर से क्षमा और मन में कुछ अरुचि रहे, वह क्षमा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ले गये हैं वहाँ? फट गया है? पत्र? गजसुकुमार का था न वहाँ।

गजसुकुमार में क्षमा आती है न! भगवान के निकट आज्ञा लेकर द्वारिका के श्मशान में चले हैं। आहाहा! श्रीकृष्ण के भाई राजकुमार गजसुकुमार—हाथी के तलुवे जैसा जिनका शरीर कोमल है पूरा। मुनि होते हैं। आत्मज्ञान, भान, अनुभवसहित, हों! अकेले मुनि हो गये यह बाहर के वस्त्र बदलते हैं और अन्दर आत्म अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, वह मुनि नहीं। सम्यग्दर्शन सूक्ष्म चीज़ है, भगवान! आहाहा! उस सम्यग्दर्शनसहित जंगल में प्रभु की आज्ञा लेकर श्मशान में चले जाते हैं। आहाहा! उनका ससुर आकर अग्नि भरता है। श्मशान में जलते हों न लोग। (सिर पर) मिट्टी की पाल बाँधकर अग्नि भरता है। अतीन्द्रिय आनन्द में झूलता प्रभु ज्ञाता-दृष्टारूप से जानता है। आहाहा! गजसुकुमार की क्षमा की महिमा की जाती है न! आता है न! उसमें नहीं आता होगा तुम्हारे। बहियों में आता है? नामा में यह नहीं आता होगा। बाहुबली की बुद्धि होओ, यह आता होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आवे? आहाहा! नूतन वर्ष को लिखते हैं न? बाहुबली का बल होओ, अभयकुमार की बुद्धि होओ। क्या है? चाहिए है क्या तुझे? शालिभद्र, शालिभद्र की ऋद्धि होओ। कहाँ डालेगा तू? क्या करेगा? यह आत्मा की ऋद्धि का भान नहीं होता और बाहर की ऋद्धि में मिला क्या? मूढ़ है। आहाहा! उसमें यह नहीं आता होगा। गजसुकुमार की क्षमा होओ, ऐसा नहीं आता होगा। परन्तु अन्यत्र कहीं आता है, हों! गजसुकुमार की क्षमा, यह आता है, कहीं आता अवश्य है... कहीं आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी बहियों में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहियों में नहीं आता।

आहाहा! भाई! वीतराग परमेश्वर का यह मार्ग है, भाई! जिसमें वीतरागता उत्पन्न हो, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! राग हो अवश्य, परन्तु वह धर्म नहीं। गजब बातें, बापू! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और यात्रा, यह सब भाव राग है, पुण्य है, वीतराग धर्म नहीं, बीच में आवे सही, हो, परन्तु धर्म नहीं। धर्म तो रागरहित चैतन्य भगवान के आनन्द के नाथ को स्पर्श कर जिसने अन्तर में से वीतरागता का अंश प्रगट किया है, उसे परमात्मा अरिहन्तदेव धर्म कहते हैं। वह 'केवली पण्णंतो धम्मो' मांगलिक में आता है न! शाम-सवेरे बोले सही, परन्तु अर्थ की कुछ खबर नहीं होती। केवली पण्णंतो धम्मो शरणं। कौनसा केवली पण्णंतो धम्मो? मांगलिक में आता है न? अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं। कोई शरण देने आवे, ऐसा नहीं। वह तो परमेश्वर पर है। तेरा परमेश्वर अन्दर है, उसे तू देख, जान और अनुभव (कर)। वह तुझे तेरा शरण है, ऐसा भगवान ने वर्णन किया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यदेह मिला और चला जाता है। वह सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ने कहा हुआ धर्म अन्तर में समझण में न आवे और उसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं और उसके बिना उसे अनुभव होता नहीं। आहाहा! उसे कहते हैं क्षमा कर।

बहुत काल से संचित क्रोधरूपी अग्नि को... क्रोधरूपी अग्नि है अन्दर ज्वाजल्यमान। आहाहा! बहुत काल से संचित **क्रोधरूपी अग्नि को क्षमारूप जल से सींच...** आहाहा! शान्ति के जल से क्रोध की अग्नि को सींच। आहाहा! अरुचि और रुचि अन्दर पर की हो और स्वभाव की अरुचि नहीं, परन्तु रुचि होने पर भी तीव्र राग हो, ऐसी जो कषाय अग्नि। आहाहा! उसे भगवान आनन्द का नाथ, उसकी शरण लेकर शान्ति से उसे अग्नि को सींच दे (बुझा दे)। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भगवान! बाहर से लोगों ने माना है, ऐसा स्वरूप नहीं। वीतराग का स्वरूप तो अभ्यन्तर में कुछ अलौकिक चीज़ है। आहाहा! परन्तु सुनने को मिलता नहीं, वह कब करे? विचारे कब? जाये कब? आहाहा!

झवेरी ने एक कहा था वहाँ। झवेरी है न, भाई को खबर होगी। चिमनभाई! तुम्हारा झवेरी नहीं वहाँ? शान्तिभाई के ऊपर रहता है बारहवें मंजिल पर। तुम्हारे

पालनपुर का झवेरी है। बड़ा गृहस्थ है। बहुत पैसे हैं। मुम्बई। वह बहुत क्रिया करे पूरे दिन। दो बार आये थे नीचे जरा। ८८ वर्ष की उम्र है। झवेरी है, बहुत पैसेवाला। स्वयं ने धन्धा छोड़ दिया है। पूरे दिन सामायिक, प्रतिक्रमण। भाई! कहा, सम्यग्दर्शन क्या है, कुछ खबर? वह तो महँगी चीज़ है। यह बाहर की सामायिक और प्रतिक्रमण क्रिया पूरे दिन किया करे। कुछ खबर नहीं होती। दो बार आये थे बेचारे। शान्तिभाई ने कहा होगा कि एक बार महाराज को नीचे सुनने आओ। महाराज कहते हैं। मैंने कहा, नहीं मैं नहीं कहता। क्योंकि बलजोरी से बेचारे को आना न हो न! आहाहा! आठवीं मंजिल या बारहवीं मंजिल में रहता है, नहीं? बारहवीं मंजिल में रहता है। तुम्हारा आठवीं मंजिल पर है। उससे आगे बाईस मंजिल हैं न? बाईस मंजिल है। नीलमबाग क्या कहलाये वह? नीलाम्बर। वहाँ थे न, अठारह दिन वहाँ रहे। अरे! कहा, जगत के प्राणी बेचारे कहाँ फँस रहे हैं! यह राग की मन्दता कदाचित हो तो वह पुण्य बाँधे, धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : करते-करते होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होगा करते-करते। लहसुन खाकर कस्तूरी की डकार करते-करते आती होगी? लहसुन खाकर कस्तूरी की डकार आवे? उसी प्रकार राग करके वीतरागता आवे? लोगों को भ्रमित करके मार डाला है बेचारों को। आहाहा! कहो, पण्डितजी! ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मूल तो... परन्तु यह क्या? वस्तु की दृष्टि की ही खबर नहीं होती। सम्यग्दर्शन किसे कहना और सम्यग्दर्शन कैसे होता है? अभी पहली भूमिका की खबर न हो। वे सब मर जाये, सूखकर अपवास करके, व्रत पालकर, सब चार गति में भटकनेवाले हैं। ऐसा तो अनन्त बार किया नौवें ग्रैवेयक गया तब। नौवें ग्रैवेयक नहीं गया? बारह देवलोक के ऊपर ग्रैवेयक है, भगवान ने देखा हुआ। उस एक-एक ग्रैवेयक में अनन्त बार उपजा है शुक्ललेश्या द्वारा। मिथ्यादृष्टिसहित साधु— नग्न मुनि हुआ, दिगम्बर, जंगलवासी। हजारों स्त्री, परिवार छोड़े। उसमें क्या हुआ?

धूल ? अन्दर जो राग की एकताबुद्धि मिथ्यात्व की, वह तो छोड़ी नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

भावपाहुड़ है न! **जल से सींच अर्थात् शमन कर।** शमन कर। आहाहा! यह क्षमा तो आनन्द का नाथ जगकर अन्दर ज्ञानरूप से रहे, उसे यहाँ क्षमा कहा जाता है। आहाहा! यह दूसरा गाली दे और तू सामने जरा क्रोध न करे, न बोले; इसलिए क्षमा (की), वह तो व्यवहारिक क्षमा पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं। आहाहा! **जल से सींच अर्थात् शमन कर।**

भावार्थ :- क्रोधरूपी अग्नि पुरुष के भले गुणों को दग्ध करनेवाली है... क्रोध अन्दर होता है, तब आत्मा के गुण की शान्ति को जला डालता है वह तो। आहाहा! **क्रोधरूपी अग्नि पुरुष के भले गुणों को दग्ध करनेवाली है और पर जीवों का घात करनेवाली है,...** क्रोध हो तो पर को मारे, टीपे, टीचे। आहाहा! **इसलिए इसको क्षमारूप जल से बुझाना,...** मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ। मुझे कोई प्रतिकूल बोले, निन्दा करे, ऐसी कोई चीज़ ही नहीं। ऐसे अन्तर आत्मा को ज्ञान में, आनन्द में रखकर क्रोध की अग्नि को बुझा। आहाहा! **अन्य प्रकार वह बुझती नहीं है...** क्रोधाग्नि, आत्मा के आनन्द की शान्ति बिना, क्षमा का उपशमरस जिसने अन्तर में आनन्द का उपशमरस प्रगट किया है... आहाहा! उस उपशमरस और आनन्द द्वारा इस क्रोध की अग्नि को बुझा। बापू! अनादि काल से अग्नि सुलगती है। आहाहा! यह समझना कठिन पड़े, अब उसे भारी कठिन। **यह क्षमागुण सब गुणों में प्रधान है।** सब गुणों में यह सम्यग्दर्शनसहित, आत्मा के अनुभूति के भानसहित क्षमागुण, वह सब गुणों में मुख्य है। **इसलिए यह उपदेश है कि क्रोध को छोड़कर क्षमा ग्रहण करना।** यह १०९ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ११०

११०। **आगे दीक्षाकालादिक की भावना का उपदेश करते हैं :—** आहाहा!

दिक्खाकालाईयं भावहि अवियारदंसणविसुद्धो।
उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण॥११०॥

देखो, आया! **अर्थ :- हे मुने! तू संसार को असार जानकर...** यह संसार अर्थात्? स्त्री, परिवार और संसार और दुकान, वह कोई संसार नहीं, वह तो परचीज़ है। आत्मा परमानन्द का नाथ शुद्धस्वरूप में से हटकर, राग और पुण्य-पाप के भाव में आना, उसका नाम संसार है। व्याख्या सब अलग। यह स्त्री, पुत्र और धन्धा, वह संसार नहीं। क्योंकि वह तो मरे, तब देह छूट जाये और सब छूट जाता है। छूट जाये तो वह संसार से छूट गया हो, यदि वह संसार हो तो। आहाहा! यह शरीर संसार नहीं, यह तो जड़ है, अजीव है। स्त्री, पुत्र, परिवार, वह कहीं संसार नहीं, वह तो परचीज़ है। संसार तो संसरणं इति संसार:। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें से हटकर पुण्य और पाप के विकार की रुचि में आकर भटकना, उसका नाम संसार है। समझ में आया? कहो, वजुभाई! ऐसा संसार! यह तो स्त्री, पुत्र छोड़े, संसार छोड़ा। सभी चिल्लाहट मचाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी इसने कहाँ संसार छोड़ा है? संसार कहना किसे, इसकी खबर नहीं। आहाहा! अरे! भगवान! भाई! परमात्मा तो, अन्दर उदयभाव है, उसे संसार कहते हैं।

मुमुक्षु : शुक्ललेश्या, वह संसार?

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार। शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह संसार। आहाहा! राग है, वह संसार। वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा में से हटकर राग में आता है, वह संसार। आहाहा! कहो, प्रवीणभाई! भाई! यह तो सब कठोर बातें सब, अलग प्रकार की यह तो। अलग प्रकार की, बापू! वीतरागमार्ग कोई अलग प्रकार है।

मुमुक्षु : है बहुत ऊँची, आदर्श।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! चैतन्यस्वरूप जिसका अन्दर पूर्ण भरा है। आनन्द और शान्ति के स्वभाव से पूर्ण छलाछल भरा भगवान है। उसमें से हटकर, च्युत होकर, यह पुण्य और पाप के विकल्प में आना, उसे और यह पुण्य और पाप मेरे हैं, ऐसा मानना, वही मिथ्यात्व और वही संसार है। आहाहा! यह संसार इसने अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी छोड़ा नहीं। आहाहा! यह तो अनन्त बार लिया। 'मुनिव्रत धार...' 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' ग्रैवेयक है नौ ग्रैवेयक। यह बारह देवलोक है न सौधर्म, ईशान, महेन्द्र और वह। यह चन्द्र, सूर्य तो ज्योतिष है परन्तु इनके ऊपर सौधर्म और बारह देवलोक हैं भगवान ने देखे हुए। उसमें उनके ऊपर नौ ग्रैवेयक हैं पासडा नौ। उसमें अनन्त बार प्रत्येक जीव मुनि होकर, दिगम्बर मुनि होकर, हों! आहाहा! वहाँ जा आया।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु आत्मा आनन्द की मूर्ति है, पुण्य और पाप के राग से भिन्न है, उसका इसने ज्ञान और अनुभव किया नहीं। इसलिए उसे जरा भी सुख मिला नहीं। वह पंच महाव्रत के परिणाम, वे दुःखरूप हैं, आस्रव हैं, राग है। आहाहा! मुनिव्रत धारण किया परन्तु सुख मिला नहीं, इसका अर्थ क्या हुआ? यह पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह वृत्ति है वह तो। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, वह आस्रव है, राग है, दुःख है। कठिन बातें, बापू! आहाहा! क्योंकि मुनिव्रत धारण किये और सुख नहीं मिला, इसका अर्थ ष्क्या हुआ? व्रत में सुख नहीं, वह तो दुःख है। वह व्रत का विकल्प है राग, उसके पीछे भगवान है, उसके आनन्द का अनुभव करे, तब उसे सुख होता है। आहाहा! बहुत कठिन काम। जगत को मुश्किल से समय मिले दो घड़ी, चार घड़ी। पूरे दिन कमाना। स्त्री, पुत्र का पोषण करने के लिये करना। आहाहा!

अरे! भगवान! यह मनुष्यदेह मिला, बापू! उसमें वीतराग परमेश्वर ने जो धर्म कहा, वह समझण में न ले और सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं करे (तो) इसने कुछ किया नहीं। आहाहा! भले इसने बाहर के व्रत, नियम और तप किये हों, उसमें पुण्य होगा, तो वह पुण्य तो पुण्यबन्धन रजकण में पड़े हैं अब। वह परिणाम तो चले गये। सातादि रजकण में पड़े। उसमें तुझे शरण क्या? आहाहा! शरण ऐसा आत्मा आनन्द का नाथ,

उसके सम्मुख तो तुझे देखना नहीं। आहाहा! बाहर सामने देखकर सब आचरण करके मानना है कि मैंने धर्म किया। माने। संसार अनादि है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

हे मुने! तू संसार को असार जानकर उत्तमबोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन उत्तमबोधि की व्याख्या की। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति के निमित्त...** आहाहा! **अविकार अर्थात् अतिचाररहित निर्मल सम्यग्दर्शनसहित होकर दीक्षाकाल आदिक की भावना कर।** यह क्या कहते हैं? कि जब तूने दीक्षा ली थी, तब सम्यग्दर्शनसहित था। उसकी दीक्षा, हों! यह मिथ्यादृष्टि की दीक्षा, वह दीक्षा है नहीं। परन्तु जब दीक्षा का काल था, तब तुझे भावना बहुत वैराग्य हो गया था। आहाहा! उदास... उदास... उदास... उस दीक्षाकाल में सम्यग्दर्शनसहित जो यह तेरी भावना थी, वह भावना वापस याद रख, भूल न जा—ऐसा कहते हैं। दीक्षा के समय सम्यग्दृष्टि को वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य... आहाहा! एक रजकण और राग मेरा नहीं। एक रजकण और उस राग का कण, वे दोनों मेरी चीज़ नहीं। मैं तो वीतरागस्वरूप हूँ। आहाहा! ऐसी दृष्टि में वीतरागता ग्रहण करने के लिये तूने दीक्षा ली थी। उसका नाम दीक्षा, हों! यह सब अभी तो समझने में आये ऐसा है, सब समझने जैसा। बापू! सूक्ष्म बात, भगवान! यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

कहते हैं कि **भावार्थ :- दीक्षा लेते हैं तब संसार, (शरीर) भोग को (विशेषतया) असार जानकर...** यह टीका में भाई! ४४ बोल लिये हैं, यह सार-असार के। ४४ बोल लिये हैं। आलोचना न करना, वह असार; आलोचना करना, वह सार—ऐसे-ऐसे ४४ बोल लिये हैं। समकित सार, मिथ्यात्व असार, सम्यग्ज्ञान सार, मिथ्याज्ञान असार, सम्यक्चारित्र सार, अचारित्र असार, सत्य बोलना सार, असत्य बोलना असार—ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : वह तो व्यवहार के।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार के। परन्तु यह बात ऐसी है न सब। सत्य बोलना, वह तो राग है। ऐसे ४४ बोल लिये हैं। यह सार शब्द पड़ा है न। '**असारसाराणि मुणिऊण**' सार-असार को जानकर। फिर उसके ४४ बोल टीकाकार ने लिये। परन्तु साधारण

टीकाकार है तो सब मिला डाले इकट्ठा। व्यवहार का राग और निश्चय का अराग दोनों को मिलाकर जोड़ डाले। आहाहा! भट्टारक हुए न सब ऐसे जैन में भी। तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं होती। जति-जति जिसे कहते हैं। अपने श्वेताम्बर में जति कहते हैं, दिगम्बर में भट्टारक कहते हैं।

संसार, शरीर। संसार अर्थात् उदयभाव पूरा। आहाहा! पुण्य और पाप के दोनों भाव, वे संसार हैं, भाई! क्योंकि उनके फल में तो गति मिले। आत्मा न मिले? पुण्यादि क्रिया हो तो उससे स्वर्ग मिले, या यह धूल के सेठिया कहलाये जो यह लाखोंपति, करोड़पति कहलाये न धूल के? ऐसे सेठ हों कदाचित् शुभभाव से, उसमें से आत्मा न हो। समझ में आया? आहाहा! यह शुभ और अशुभभाव और वह मेरा ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह संसार है। यह दीक्षा के समय तुझे संसार का वैराग्य था, कहते हैं। आहाहा!

शान्तिनाथ की बात आती है शास्त्र में। भगवान शान्तिनाथ तो तीर्थंकर थे और चक्रवर्ती थे और कामदेव थे। तीन थे। एक तो सोलहवें तीर्थंकर थे। दूसरा, वे चक्रवर्ती थे। सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें (तीर्थंकर) ये तीनों चक्रवर्ती थे और तीर्थंकर थे और कामदेव थे। छह खण्ड में इनके जैसा किसी का रूप नहीं, ऐसे कामदेव थे। वे जब दीक्षित होते हैं, छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं उन्हें। चक्रवर्ती थे न, तीर्थंकर भी। दीक्षित होते हैं तो रानियाँ चोटियाँ तोड़ती हैं, पीछे जाती हैं। अरे! नाथ! कहाँ जाते हो? तुम क्या करते हो? अरे! स्त्रियों! मैंने अभी तक तुम्हारे लालच के कारण राग किया नहीं। मुझे कमजोरी का राग था, इसलिए मैं तुम्हें चाहता था। वह मेरा राग मर गया है। उसे कोई जीवित नहीं कर सकता। तुम्हारा लालच मुझे राग नहीं कर सकता। आहाहा! मैं आत्मा के आनन्द में वनवास में आनन्द के साधक के लिये जाता हूँ। आहाहा! वनवास। मुनि तो वन में ही रहते थे। मुनियों की दशायें तो वन में ही रहती थी। नग्न दशा और वन में रहना, यह वीतराग मार्ग का मार्ग तो अनादि का यह था। लोगों ने सब फेरफार कर डाला। आहाहा! जब वनवास जाते हैं, (तब) छियानवें हजार स्त्रियाँ ऐसे (चोटियाँ खींचती हैं)। आहाहा!

अरे! वहाँ देखा था न भाई वहाँ। अयोध्या-अयोध्या। अयोध्या गये थे न। नदी है न बड़ी। रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता जब नदी से उतरते हैं, उस पार जाते हैं। सब

राजा विदा करने आते हैं। वहाँ गये थे। इस जगह ऐसा कि रामचन्द्रजी बैठते हैं जब, क्या कहलाता है ? नाव में और उस किनारे जाते हैं। तब सब कलकाहट करते थे। अरे! तुम राम, लक्ष्मण तो ठीक परन्तु, सीता भी साथ में ? हमारे से सहन नहीं होता तुम्हारा विरह। वे कहते हैं। पिताजी की आज्ञा थी कि हम वनवास में रहेंगे। यह हमको आनन्द है। हमको राज में आनन्द नहीं। 'रघुपति रीत ऐसी चली आई।' आता है न ? 'रघुपति रीत ऐसी चली आयी, प्राण जाये पर वचन न जाये।' पिताजी का वचन था माता के लिये, माता ने माँग की थी। माँग-माँग। कुछ दो। माँगने पर हाँ किया। वह किसी समय दूँगा। तब उस समय माँग की थी कि मेरे भरत को राज मिले। अरर्र! माता की आज्ञा, पिता की आज्ञा मुझे मान्य है हमारे। हम आनन्द में जंगल में जायेंगे, हम आनन्द में जंगल में जायेंगे। आहाहा! हमको कहीं प्रतिकूलता नहीं। यह सिंहासन में बैठनेवाले वे धूप में और सर्दी में बारह-बारह वर्ष जंगल में व्यतीत किये। परन्तु आनन्द है। सम्यग्दृष्टि है न। आहाहा!

और वह बात नहीं की थी ? सीताजी को ले जाता है रावण। यह सीताजी नुपुर और गहने ऊपर से डाल दिये हैं। रावण ले जाता है ऐसे। रामचन्द्रजी देखने ऐसे खोजने जाते हैं, उसमें नुपुर मिला। लक्ष्मण को पूछते हैं, भाई! यह नुपुर सीताजी का ? बारह वर्ष इकट्ठे रहे जंगल में। बंधव! यह गहना उनका है, ऐसा मुझे भास हुआ है। क्यों ? कि मैं एक बार माता को चरण वन्दन करता था। माता तुल्य है। बड़े भाई की स्त्री, इसलिए माता तुल्य है। आहाहा! मैं एक बार चरण वन्दन करता था, तब मेरी नजर नुपुर में गयी थी। उनके शरीर में नहीं, उनके नुपुर में गये थी। यह नुपुर उनका है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं कुछ जानता नहीं। यह अपने को शब्द बहुत याद नहीं रहते। उसे याद रहे। यहाँ तो अपने भाव का काम है। कहो, लक्ष्मण जैसे पुरुष और रामचन्द्रजी जैसे पुरुषोत्तम पुरुष, सीता जैसे भगवती पुरुष। आहाहा! समकिती है, सीताजी आत्मज्ञानी हैं। वह कहते हैं कि मुझे नजर में नुपुर पड़े हैं, एक बार चरण-वन्दन करता था तब। बाकी दूसरी तो मुझे कुछ खबर नहीं। आहाहा! यह लौकिक सज्जनता की नीति भी कितनी! आहाहा! महापुरुषों की नीति भी ऐसी होती है।

यह तो लोकोत्तर नीति, आत्मज्ञान। आहाहा! जिसे आत्मदर्शन हुआ, वह जब दीक्षा के समय संसार से भी उदास था, कहते हैं। पूरा संसार—उदयभाव से उदास। वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! भाई! उस समय के भाव को याद रखना अब, ऐसा कहते हैं। उस समय तुझे ऐसा ही उदासभाव आया था, उसे याद रखना।

शरीर। शरीर का तुझे उदासभाव था। आहाहा! यह शरीर तो मिट्टी का पिण्ड, पुद्गल, जड़, अजीव है। यह कहीं मेरी चीज़ नहीं। मैं तो आत्मा अन्दर पर से भिन्न हूँ। इसका (शरीर का) चाहे जैसा हो। मुझे उसके सामने देखना नहीं है। ऐसा आपको उस समय वैराग्य हुआ था। सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! अभी तो कहाँ है सम्यग्दर्शन ही नहीं वहाँ अभी। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! बातें ऐसी सूक्ष्म हैं न! शरीर के प्रति उदास हो गया था। असार-असार। मेरा भगवान आत्मा सार, शरीर असार। मेरा भगवान आत्मा सार, पुण्य-पाप के विकल्प संसार असार। आहाहा! भोग। मेरे आनन्द का अनुभव, वह सार; विनय के भोग की वासना, वह असार। आहाहा! कहो वारिया! समझ में आया यह? सूक्ष्म। सुनना। आहाहा! सार-असार के तीन बोल लिये यहाँ। टीकाकार ने ४४ लिये हैं। परन्तु सार है यह। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले तो शुभ-अशुभ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खबर नहीं।

यहाँ तो आत्मा प्रभु ज्ञानानन्द का नाथ प्रभु, वह सार है और उदयभाव पुण्य-पाप का भाव, वह असार है। अशरीरी मेरी चीज़, वह सार है; शरीर, वह असार है। यह तो मिट्टी है, धूल है। यह मिट्टी के रजकण हैं, यह कहीं मेरे नहीं। आहाहा! 'गर्व न करशो रे गात्र' ऐसा आता है। 'अेवुं माटीनुं भांड रे, क्षणमां लागे खोखरूँ।' यह मिट्टी का बर्तन है। ठोकर लगी तो तड़ पड़ जाए एकदम। इसी प्रकार यह मिट्टी के बर्तन जैसा है। जरा सा कुछ हो तो ऐं... ऐसा हो गया, कैसे हुआ? धूल में हो नहीं तो किसमें हो? आत्मा में हो? आहाहा! 'क्षणमां लागे रे खोखरूं।' खोखरूँ समझ में आया? अपनी गुजराती भाषा है। ठोकर लगे न ठोकर बर्तन को, दरार पड़ जाये। इसी प्रकार इसे जरा सी ठोकर लगे कहीं ऐं... ऐसा हो गया, यह उल्टी हो गयी, ढींकणा हो गया। और अभी तो यह

कैंसर और यह दूसरा क्या कहते हैं वह? हाईफेल, हृदय का हुमलो, अकस्मात। आहाहा! यह शरीर तो ऐसा जड़ है अब। कितनी तुझे मांडवी है इसके लिये। आहाहा! तेरा नाथ चैतन्य विराजता है, वह सार है, यह (शरीर) तो असार चीज़ है, मिट्टी चीज़ है। हड्डियाँ, माँस और चमड़े का बना हुआ है, अजीव पुद्गल है। वह असार है।

भोग, वह असार है। आहाहा! मेरे नाथ का आनन्द का भोग, वह सार है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, वह सार है। भोग इन्द्राणी जैसे का भोग, वह असार है। सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली जैसे गन्ध मारे वैसे समकिती को ऐसे विषय की वासना में ऐसी गन्ध लगती है। आहाहा! समझ में आया? बिल्ली सड़ी हुई हो और जैसे गन्ध मारे। कपड़ा रखे ऐसे। बिल्ली सड़ी हुई। उसी प्रकार धर्मी को सम्यग्दृष्टि जीव को यह इन्द्र के इन्द्रासन के भोग और चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियों के भोग, वह चक्रवर्ती भगवान समकिती थे शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ (और अरनाथ), उन्हें सड़ा हुआ गन्ध जैसा लगता था वह। परन्तु राग था, परन्तु गन्ध। लगे उन्हें। आहाहा! काला नाग है यह तो। विषय की वासना काला नाग देखे उसे। आहाहा! उसका नाम सार और असार। यह विषय की वासना असार है, भगवान आत्मा के आनन्द का अनुभव, वह सार है।

मुमुक्षु : राग आवे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से जाननेवाला रहता है, राग को अपना कहाँ मानता है अन्दर? आहाहा! जहर में हूँ, ऐसा मानता है विकल्प आवे तो। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात है।

शुभराग आवे भगवान की भक्ति, दया, दान, व्रत, उसे भी धर्मी तो दुःख जानता है, दुःख जानता है। राग है न! आहाहा! लो! चेतनजी! यह तो आया सब, तुम लाये थे कल। आहाहा! विकल्प की खलबलाहट उठे, वही कषाय अग्नि है, कहते हैं। आहाहा! 'राग आग दहे सदा तातै समामृत सेईये।' आता है? किसमें? छहढाला में। 'राग आग दहे सदा...' चाहे तो शुभराग, परन्तु आग है, भाई! इसे खबर कहाँ है, अभी श्रद्धा की खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धामधूम धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानमार्ग (रहा दूर)। अब उसमें तो ऐसा लिखा है, भक्ति में राग कहाँ है? भक्ति के ऊपर लक्ष्य है, वहाँ राग दुःख कहाँ है? भाई ने लिखा है। यह तो पहले भी आया था। अरे! भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! राग की उत्पत्ति बिना पर के ऊपर लक्ष्य जाता ही नहीं। चाहे तो...

मुमुक्षु : आकुलता उत्पन्न हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब पर के ऊपर लक्ष्य जाता है। भगवान समवसरण में विराजते हों। तीन लोक के नाथ सौ इन्द्रों के पूजनीक, उनके ऊपर लक्ष्य जाये, वह राग की वृत्ति है, भाई! तुझे खबर नहीं। राग की व्याख्या की तुझे खबर नहीं। आहाहा! भगवान अन्तर के घर में से हटा, वह राग है। आहाहा! शान्ति का सागर भगवान, उसमें से जितना बाहर निकला, वह वृत्ति सब राग है और वह आग है। आहाहा! वह कैसे माने? श्रद्धा का भान नहीं होता, समकित की खबर नहीं होती। 'राग आग दहे सदा तातै समामृत सेईये।' समतारूपी अमृत को सेवन कर। आहाहा! राग को आग जानकर भगवान के... यहाँ कहा अग्नि उसे? कषाय की अग्नि कही न? आहाहा!

अत्यन्त वैरागय उत्पन्न होता है,... आहाहा! दीक्षा के समय संसार, शरीर, भोग, **(विशेषतया) असार जानकर अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न होता है, वैसे ही उसके आदि शब्द से रोगोत्पत्ति,...** कठोर रोग आवे, तब ऐसा हो जाये कि आहाहा! परन्तु जहाँ रोग मिटे, वहाँ वापस भूल जाये। ऐसा शूल (दर्द) आया हो... ऐसा शूल आया हो... आहाहा! वह क्षण में शरीर में रहना अच्छा नहीं। परन्तु वह रोग मिटे ऐसे सीधे वापस... ऐई! जेचन्दभाई! सीधे चद्दर फिरावे। चद्दर थे न वे पहले। मोरबी या बांकानेर? राजकोट, राजकोट। चद्दर बिछाये थे। यह तो दृष्टान्त, हों! एक नहीं, सबकी बात है न यह तो। आहाहा! जरा दुःख आवे अन्दर से। आहाहा! पहले अपने पाटिया भींसाता कहते थे। अभी हार्ट का अटैक कहते हैं। पहले यह शब्द नहीं था। पहले तो पाटिया भींसाता, ऐसा कहते थे ६० वर्ष पहले। पाटिया भींसाता। छाती के पाटीया भींसाय छे, ऐसा (कहते थे)। उस समय ऐसा हो जाये कि आहाहा! अरे! यदि शरीर अच्छा रहे तो अब मैं तो धर्म करूँ। परन्तु जहाँ रोग मिटे, वापस सवेरे दुकान में जाये।

मुमुक्षु : डबल काम करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोगुना। हाँ, परन्तु फिर काल का काल गया हो तो आज के काल में वापस डबल करना चाहिए न। आहाहा! भाई! करने का कहाँ काम है, बापू? वह पर की क्रिया तो कहाँ कर सकता है? परन्तु राग किया इसने उस समय। दुकान का धन्धा आत्मा कर नहीं सकता। वह तो पर-जड़ की अवस्था है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उत्तमबोधि। **रोगोत्पत्ति,...** के काल में वैराग्य हो जाये। **मरणकालादिक जानना।** किसी का मरण होता देखे न (तो) स्वयं को ऐसा हो जाये कि आहाहा! मुझे भी ऐसा ही होगा। दर्द होता हो और ऐसे-ऐसे करता हो। ऐसे समय वैराग्य हो। **उस समय में जैसे भाव हो, वैसे ही संसार को असार जानकर, विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित होकर...** अकेली क्षमा नहीं। आत्मा के अनुभव और सम्यग्दर्शन सहित की बात है यहाँ तो। इसलिए '**उत्तमबोहिणिमित्तं**' कहा है न? '**उत्तमबोहिणिमित्तं णसारसाराणि मुणिऊण**' सार और असार को जानकर। आहाहा!

विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित होकर, उत्तमबोधि जिससे केवलज्ञान उत्पन्न होता है,... यह भावना अन्दर में रमणता करते, सम्यग्दर्शनसहित ऐसी भावना वीतराग से उत्पन्न करने से केवलज्ञान हो जाये। **उसके लिये दीक्षाकालादिक की निरन्तर भावना करना योग्य है,...** लो! इसके लिये यह भावना (करना)। **ऐसा उपदेश है।** ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का भगवान ने कहा हुआ उपदेश वह यह है। आहाहा! वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य... आहाहा! पच्चीस वर्ष का जवान लड़का मरे और बीस वर्ष की जवान एकदम जवान छोड़कर जाये। घर में अन्तिम लड़का वही था। उस समय उसे कितना होता होगा? हाय... हाय... रे.. अरे..! कोई नहीं होता हमारा। यह क्या हुआ? ऐसा वैराग्य संसार के काल में कि मेरा कोई नहीं। राग रजकण मेरे नहीं, मेरी चीज़ तो मुझमें ही है। ऐसे भानसहित, वैराग्यसहित राग से विरक्त होकर जो भावना थी, उस भावना को बनाये रख। मृत्यु तक उस भावना को बनाये रखना, ऐसा उपदेश है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल १०, गुरुवार, ३०-०५-१९७४
गाथा - ११०-१११, प्रवचन-१६०

११० वीं गाथा है। कोष्ठक में है। **निरन्तर स्मरण में रखना :—** ऐसा आया था न अन्दर? पहले आया था। **दीक्षाकालादिक की निरन्तर भावना करनायोग्य है,...** यह टीका का शब्द है। यह तो भाषाकार ने रखा। **क्या? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि हेतु...** पहला यह तर्क है कि सम्यग्दर्शन, वह आत्मा का स्वभाव है, वह उसका माल है। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि तत्त्व का वह माल स्वभाव, वस्तुस्वभाव है। उसका भान होकर मूल पहला सम्यग्दर्शन हो और उस स्वरूप का स्वभाव जो है, शुद्ध चैतन्य-माल अन्दर तत्त्व, उसका ज्ञान हो और उसमें रमणता हो, उसकी वृद्धि को हेतु... ऐसे तीन तो हैं, कहते हैं। मुनि की व्याख्या है न विशेषरूप से। वे तीन तो हैं, परन्तु तीन की वृद्धि के हेतु। **हे मुनि! दीक्षा के समय की अपूर्व उत्साहमय तीव्र विरक्त दशा को,...** स्मर। सम्यग्दृष्टि जीव जब दीक्षा-चारित्र लेता है, उस समय की उसे दीक्षा समय की अपूर्व उत्साहमय तीव्र विरक्ति। मानो बिल्कुल पर के ऊपर लक्ष्य ही न करूँ और अन्तर में जाऊँ, ऐसी तीव्र उत्साहदशा उस समय होती है।

मुमुक्षु : शुभभावना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव भले हो परन्तु पीछे शुद्धि की वृद्धि का लक्ष्य वहाँ है। वैराग्यभाव से सहित चिन्तन स्वरूप के झुकाववाला, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि का कारण है।

दीक्षा के समय की... यह तो सच्ची दीक्षा, हों! यह साधारण अभी ले, वह कहीं दीक्षा नहीं। यह तो आत्मा का स्वभाव जिसे माल अन्तर का भासित हुआ है कि मैं एक चैतन्य के स्वभाव के मालवाली चीज़ हूँ, तत्त्व हूँ, पदार्थ हूँ, वस्तु हूँ। मुझमें तो अनन्त आनन्द का माल बसा है। उसका, पर्याय उसका माप करती है। आहाहा! एक समय की यह दर्शन-ज्ञान पर्याय उसका माप करती है कि यह पूर्ण है, ऐसा। माल—वस्तु है न

तत्त्व पदार्थ, उसका जो त्रिकाली स्वभाव, तत्त्व का सत्त्व पूरा ध्रुव सत्त्व, उसका जिसने ज्ञान की पर्याय में माप निकाला है कि यह चीज़ ऐसी है और उसमें वह ज्ञान में, 'यह पूर्ण है' ऐसा आने पर उसकी जो प्रतीति होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और उस स्वरूप के माल की कीमत हुई, पर्याय ने माप किया, प्रतीति हुई, तदुपरान्त अब स्वरूप में माल जो शक्तिरूप से है, उसे पर्याय में लाने के लिये अन्तर रमणता करना, इसका नाम चारित्र। इन तीन की वृद्धि के हेतु यह विचार करना, ऐसा कहते हैं। दीक्षा के समय ऐसा वैराग्य आवे अन्दर। पूरी दुनिया से मानो उदास... उदास... उदयभाव से भी उदास। मुनिपना अर्थात् क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : अपूर्व उत्साह।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव-सन्मुख।

मुमुक्षु : वह गुणस्थान.... कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, गुणस्थान तो छठवाँ-सातवाँ है। परन्तु दीक्षा के समय भाव जो था न, वह उत्साह इतना था बस। फिर तो दीक्षा हुई, तब तो सातवे में ध्यान में आवे। परन्तु उत्साह तो पहले ऐसा हो न उसे कि एकदम पूर्ण पर से हटकर अन्दर में जाना। यह जयधवल में आता है न। जयधवल। मैंने तो दीक्षा के समय शुद्ध उपयोग को मैंने अंगीकार किया है।

मुमुक्षु : वास्तविक भावना से।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मैंने तो शुद्ध उपयोग (अंगीकार किया है), जिसमें शुभभाव भी न आवे। आहाहा! यह जयधवल में आया था प्रथम तब, बींछिया। (संवत्) २००० के वर्ष। ३० वर्ष हुए। लाठी में यह निकाली थी न, उसकी शोभायात्रा निकाली थी। २०००। उसमें यह आया था। तब वहाँ कहा था पहले कि देखो, यह मुनिपना! अत्यन्त उग्र उत्साह से जिसने आत्मा में—मेरी चीज़ मूल वस्तु उसमें—रमण करूँ, यह मैंने प्रतिज्ञा की थी। आहाहा! परन्तु यह शुभभाव आया महाव्रतादि का, आहार लेने की वृत्ति आयी, यह मेरा प्रत्याख्यान भंग हो गया। आहाहा! वाणी तो देखो दिगम्बर सन्तों की! ऐसी कहीं है? आहाहा! अरे! मैंने तो आत्मा के अनन्त आनन्द

स्वरूप में रमना, ऐसी मैंने तो प्रतिज्ञा की थी। इसके अतिरिक्त दूसरा नहीं। आहाहा! अरे! यह पाँच-पचास वर्ष या लाख, दो लाख वर्ष में जो कुछ शुभ उपयोग आया और उसमें मैं अटका, वह मेरी प्रतिज्ञा का भंग हुआ है। आहाहा! गजब बात है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उत्कृष्ट की बात लेनी है यहाँ तो। उसमें आता है यह, जयधवल में यह पाठ है। मुझे तो मेरे शुद्ध उपयोगरूपी मुनिपना ग्रहण किया है, पंच महाव्रत के विकल्प, ऐसा नहीं। वह तो मोक्षमार्ग में भी आता है न! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है शुरुआत में। मैंने तो शुद्ध उपयोगरूपी मुनिपना जो मोक्ष का साधन, उसे मैंने अंगीकार किया है। आहाहा! उदयभाव से मर गया हूँ मैं तो। मेरे शुद्ध उपयोग से रमूँ, वह मेरी चीज़ है। आहाहा! ऐसे मुनिपने की प्रतिज्ञा ली थी। यह बीच में आहार की वृत्ति आयी और यह शुभ उपयोग, यह धर्म उपदेश करना, महाव्रत के परिणाम और... आहाहा! देखो तो सही! दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण... आता है न श्रीमद् में। रहस्य समझा जा सकता है कि अहो! वीतरागता का वर्णन। जिसे (ऐसा है कि) पंच महाव्रत के परिणाम (में) भी मेरी प्रतिज्ञा का भंग हुआ है। आहाहा! मैं फिर प्रतिज्ञा लेता हूँ मरण के अवसर पर। समाधिमरण के अवसर पर। आहाहा! देह छूटने का काल है। मैं फिर से प्रतिज्ञा लेता हूँ। मुझे तो शुद्ध उपयोग में रहना। आहाहा! तब वह प्रत्याख्यान करके समाधिमरण में देह छोड़ता है। आहाहा! देह छूटने का समय तो आयेगा या नहीं? सबको नहीं आयेगा? जवानों को बाद में आयेगा, ऐसा होगा? आहाहा!

पर से तो मैं अत्यन्त उदास हूँ। मेरे स्वरूप में मैं सावधान हूँ। आहाहा! उसे दीक्षा के समय जो उत्साह था, ऐसी विरक्तदशा का याद करे, कहते हैं। आहाहा! यह तो सच्ची दीक्षा की बात है न। सम्यग्दर्शनसहित की बात है। आहाहा! दीक्षा अर्थात्? जो आत्मा का स्वभाव स्व-भाव, शाश्वत् वस्तु का भाव, आनन्दभाव, ज्ञानभाव, नित्यानन्दभाव, प्रभुता की पूर्णता की स्वच्छता का भाव—ऐसा जो मेरा स्वभाव, उसे मैंने जो अनुभव में, प्रतीति में लिया है, अब मेरे माल में मुझे रमना है। आहाहा! मेरी घर की चीज़ में मुझे रमना है। इसका नाम चारित्र है। आहाहा! कहो, वजुभाई! पहले जानना तो पड़ेगा या नहीं कि यह वस्तु की स्थिति ऐसी है? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है न परन्तु, महा वस्तु माल है। एक समय की पर्याय तो वह वास्तव में बारदान है। वह माल का माप करनेवाली है। आहाहा! वस्तु है न? राग-द्वेष तो नहीं परन्तु वर्तमान पर्याय जो है, वह पर्याय त्रिकाली वस्तु का माप करे, माल को तौलती है वह। आहाहा! ऐसी सम्यग्दर्शन पर्याय, सम्यग्ज्ञान पर्याय में ऐसा माल जिसे अन्तर में बैठा है। वस्तु है न परन्तु वह? तत्त्व है न? सत् का सत्त्व है न? सत्पना है न? वह तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण स्वच्छता और पूर्ण प्रभुता, वह उसका मूल स्वरूप है माल तो। उस माल का माप करके जिसे अन्तर में प्रतीति हो गयी है, उसे अब अन्तर रमणता में दीक्षा काल में तो इतनी उत्कृष्टता हो कि उसमें ही अब मैं तो आऊँ। बस हो गया। बाहर निकलना ही नहीं। आहाहा!

ऐसे **अपूर्व उत्साहमय तीव्र विरक्त दशा को,...** स्मरण में लावे। आहाहा! एक बात। **किसी रोगोत्पत्ति के समय की...** कठोर रोग आया हो शरीर में। आहाहा! एक लड़की जवान थी बारह-तेरह वर्ष की, उसे कुत्ते ने काट खाया, वह हड़के। राणपुर में। अपने प्रेमचन्दभाई थे न, उनके मित्र थे मोढ, उनकी पुत्री थी। उसके पिता मर गये थे। वह प्रेमचन्दभाई को सौंप गये कि तुम सम्हालना। उसे कुत्ते ने काट खाया, उसमें हड़किया कुत्ता। उसमें हड़किया कुत्ता फटा। न दिखलाये पानी, न पीया जाये पानी, न दिया जाये आहार, न दिया जाये पंखा। इतनी पीड़ा उसे, हवा भी न की जाये। आहाहा! ऐसे रोग के समय कैसा वैराग्य हो, वैराग्य करे तो।

मुमुक्षु : वैरागी को....

पूज्य गुरुदेवश्री : वैरागी को... आहाहा! प्रेमचन्दभाई को कहते हैं कि काका! वह मोढ़ था। लड़का आया था अभी। बहुत मित्र थे दोनों। वह मर गया, इसलिए फिर... यह प्रेमचन्दभाई को कहे, काका! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। मुझे क्या पीड़ा होती है, वह मैं कह नहीं सकती। मुझे कुछ खबर नहीं पड़ती। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... हड़कया कुत्ता। कहीं चैन पड़े नहीं। आहाहा! सोते हुए सोया जाये नहीं, बैठे हुए बैठा जाये नहीं, पंखा पवन का किया जाये नहीं, पानी पिया जाये नहीं, आहार लिया जाये नहीं। आहाहा! यह चौबीस घण्टे में, अड़तालीस घण्टे में देह ऐसे के ऐसे छूट गयी।

आहाहा! देखो, यह रोग के काल! उस समय धर्मात्मा को ऐसा वैराग्य आवे, आहाहा! यह शरीर!

मैंने एक गाय को देखा था। हीराभाई के मकान में गाय थी। एक गाय थी, उसे हडकिया कुत्ते ने काट खाया। गाय बड़ी लठ्ठ जैसी। चारों ओर घूमा करे, चक्कर लगाया करे। न पीवे पानी, नहीं आहार, नहीं हवा। चिल्लाहट चिल्लाहट। वह चौबीस घण्टे या थोड़े घण्टे रही वहाँ वृक्ष के नीचे, उसमें पड़ी, पड़कर तड़पड़ाहट करे। शरीर देखो तो निरोग, जवान अवस्था गाय की। एक पुलिस (वाला) निकला। पुलिस को कहा, यह क्या है यह? यह क्या स्थिति होती है देखा? देह की ऐसी स्थिति है, बापू! आहाहा! देह से आत्मा अन्दर भिन्न चीज़ है। उसकी खबर नहीं। वह पुलिस बेचारा जरा खड़ा रह गया। वहाँ रास्ता है न पुलिस के जाने का? देखो! यह कहा, तड़पती है देखो! आहाहा! उसमें कौवे (चोंच) मारे, ठोले। पूँछ हिला सके नहीं। देखो यह दशा शरीर की। आहाहा! ऐसे रोग के काल में जब वैराग्य की वृतित खड़ी हुई हो, तब कहते हैं कि याद रखना, भाई! आहाहा! दुनिया की लालच (को) भूल जाना, भाई! ऐसे काल में (आत्मा) कैसे भूल जाता है? आहाहा!

लाठीवाली बाई का नहीं कहा था? बहुत बार कहा। लाठी की लड़की थी जवान रूपवान। दो वर्ष का विवाह। उसके पति ने नया विवाह किया था। पुरानी मर गयी थी। शीतला निकले। दाने-दाने में कीड़े। धीरुभाई का मकान है न। अपने तलकचन्दभाई नहीं? उनके डेला में थे। रजाई में डाली हुई ऐसे। जवान अवस्था, रूपवान शरीर। नया विवाह किया हुआ उसका पति। आहाहा! ऐसे शरीर करे तो, माँ! मैंने यह पाप ऐसे इस भव में किये नहीं। मुझसे कुछ सहन होता नहीं। क्या होता है और क्या करना, कुछ सूझ पड़ती नहीं। ऐसे घुमावे तो लाखों, हजारों कीड़े ऐसे, ऐसे घुमावे तो हजारों कीड़े ऐसे (गिरें)। दाने-दाने में कीड़े पड़े हुए। आहाहा! ऐसे रोग के समय को याद करना, भाई! आहाहा! यह उसे नहीं, परन्तु तुझे भी ऐसे हो तो क्या होगा? यह याद करना, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : यह उसे है, ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसे रोग की उत्पत्ति के काल में... आहाहा! एकदम

जवान अवस्था थी बाई की, हों! जवान अवस्था। नरम बाई थी बेचारी नरम थी। बहुत बार हमारे व्याख्यान में आवे न। ऐसा का ऐसा सूख गया शरीर, मर गयी, हो गया। आहाहा! उसे न भावे खाना, न भावे पीना, न नींद आवे, न जागते हुए ठीक लगे, कुछ ठीक नहीं होता। आहाहा! शरीर में आता है न, कितने करोड़ रोग होते हैं? कितने रोग? ऐ... धनजीभाई!

मुमुक्षु : पाँच करोड़ अड़सठ लाख नब्बे हजार पाँच सौ चौरासी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह रूपवान शरीर अच्छा लगे। उसमें जब यह पाँच करोड़ रोग फटे। रोम-रोम में, अभी आयेगा अपने इसमें। पहले गाथा पड़ी रही है न। ३४ से गाथा पड़ी रही है। एक-एक अँगुल में छियानवे-छियानवे रोग। आहाहा! है न उसमें? कितने में है?

मुमुक्षु : १५०।

पूज्य गुरुदेवश्री : १५० पृष्ठ? गाथा? ३७ लो। ३७ गाथा है। वह अपने पड़ी रही है। ३७ गाथा है।

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया॥३७॥

आहाहा! **इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छियानवे-छियानवे रोग होते हैं,...** एक इतना अंगुल इतने में छियानवे रोग। ऐसे पूरे शरीर में। समझ में आया? आहाहा! एक-एक इतने अंगुल, इतने अंगुल कहलाये वे, उसमें छियानवे रोग। ऐसे-ऐसे पूरे शरीर में फटें, तब खबर पड़े। आहाहा! अन्त में मरण के समय ऐसे हाय... हाय... आँख में से आँसू बहते जायें। पुंजाभाई के पुत्र के समय भाई नहीं? अमुलख-अमुलख। अमुलख थे। नानालालभाई के काका के पुत्र। करोड़पति सब खड़े थे। पूरा कमरा भरा था। करोड़पति उनके तीनों भाई। नानालालभाई, मोहनभाई, बेचरभाई, उनके काका का पुत्र था। हमारा चातुर्मास वहाँ (संवत्) १९९९ में। मरने का समय। और बुलाया कि मांगलिक सुनाओ। वह बेचरभाई ने हाथ में प्लेट में जरा मौसम्बी लेकर देने के लिये दिया परन्तु वह हाथ में पकड़ नहीं सके और आँख में से आँसू की

धारा चले। यह करोड़पति सब भाई थे। क्या कर सके वहाँ? आहाहा! उस समय की दशा देखी हो। ९९ के वर्ष की बात है। ३२ वर्ष हुए। राजकोट में। ऐसे अवसर को याद करना, कहते हैं, भाई! आहाहा! शाताशीलिया होकर खाने-पीने के भाव को भूल जाना अब आवे तब। आहाहा! यह आया न।

रोगोत्पत्ति के समय की उग्र ज्ञान-वैराग्य सम्पत्ति को,... देखो, भाई! आहाहा! अरेरे! एक क्षण भी शरीर में रहना, वह ठीक नहीं, ऐसा उसे लगे। चिल्लाहट चिल्लाहट, कीड़े, जलन। वेदना हो अन्दर उसके अन्दर में। वह तो अग्नि के। अग्नि की चिंगारी हो न, वैसे बोले पूरे शरीर में। पैर में अग्नि की चिंगारी बोलती हों। आहाहा! इसी प्रकार ही अन्तड़ियों में, ऐसे रोग के समय धर्मी को ज्ञान और वैराग्य की सम्पत्ति प्रगट थी, उसे याद करना, भाई! आहाहा! अरे! शरीर के रजकण भी मेरे विचारानुसार नहीं होते, उसमें मैं किसे कहूँ कि ऐसा करना। आहाहा! कहते हैं कि ऐसे अवसर पर हे मुनि! ऐसे रोग के काल को याद करना। उस समय की वैराग्य और ज्ञान की सम्पदा को याद करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस समय का ज्ञान, उस समय का वैराग्य। आहाहा!

यह आत्मा के मोक्षमार्ग की वृद्धि के हेतु ऐसी भावना करना। दुनिया को भूल जाना। आहाहा! दुनिया कहाँ है और क्या है, वह उसके घर में रही। मुझे कुछ सहायता करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! आँख में से आँसू, भाई! बेचरभाई के आँख में से आँसू बहते थे। उसके उनको डबल निमोनिया था। दर्द आवे ऐसे। नीचे रखते हुए दर्द (आवे)। मरने की तैयारी। साध्य था। मांगलिक ऐसे सुना। सामने देखा। पीड़ा... पीड़ा... धारा चली जाये आँख में से। बेचरभाई के आँख में से आँसू गये। आहाहा! नानालालभाई के भाई बेचरभाई। बड़ा शरीर। स्वयं मरते हुए आठ दिन असाध्य हो गये। आठ? कितने दिन निकाले? बेचरभाई असाध्य थे। आठ दिन या बाईस दिन, ऐसे कुछ असाध्य... असाध्य... असाध्य... कुछ खबर नहीं होती। बड़ा शरीर ऐसा। आहाहा! बापू! यह जड़ के रोग के काल में जिस समय ज्ञानी को ज्ञान और वैराग्य की दशा हो, उस दशा को याद करना। आहाहा! ऐसे याद करना नहीं कि मैंने सातारूप से ऐसे लिये, बहुत खाया और पीया। मर गया अब खाया-पीया क्या था? आहाहा! खाया-पीया, वह राग था। आहाहा! राग में तो रुदन थे, आत्मा की शान्ति रगड़ जाती थी। आहाहा! यह

खाने-पीने के उत्साह में, प्रभु! शान्ति को तो तूने रगड़ दिया है। आहाहा!

यह तो अन्तर के माल की शुद्धि की वृद्धि के लिये ऐसी भावना करना, ऐसा कहते हैं। माल तो पड़ा है, तेरी बड़ी दुकान है अन्दर। आहाहा! बड़ा गोदाम है। तेरा ध्रुव बड़ा गोदाम है। आहाहा! अरे! यह बात बैठे कैसे? भाई! परन्तु तू वस्तु है न, नाथ! तत्त्व है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? वह पदार्थ एक समय की दशा में आ गया है? आहाहा! एक समय की पर्याय—पलटती दशा, उसमें वह माल पूरा उसमें आ गया है? वह तो पूरा भिन्न है। आहाहा! ऐसे स्वभाव की सन्मुखता की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र प्रगट हुए हैं, उसकी शुद्धि की वृद्धि के लिये ऐसी भावना करना, भाई! आहाहा! यह तो भाई! जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसकी बातें हैं। दूसरे को तो (ऐसा लगे), यह क्या सब लगायी? मार डाला। तो हमारे संसार का कुछ करना नहीं? कौन करे बापू? सुन न, भाई! राग और द्वेष, संकल्प और विकल्प करे। आहाहा! दो बातें हुई।

किसी दुःख के अवसर पर प्रगट हुई उदासीनता की... ऐसे कोई दुःख आये हों। पुत्र मर गया हो २० वर्ष का। दो दिन का विवाहित मर जाये और उस समय उसे वैराग्य हो। आहाहा! दुःख का प्रसंग है न वह शोक। आहाहा! एक गाँव में एक भाई मर गया तो दूसरे भाई को नहीं कहा जाता। क्योंकि उसकी भी मरने की तैयारी थी। मर गया, श्मशान में ले गये, जला आये। यहाँ आये वहाँ वह मर गया। उसे नहीं कहा जाये कि वह दूसरा भाई मर गया है। आहाहा! यहाँ निंगडा... आहाहा! ऐसे दुःख के प्रसंग तुझे भी बने हों। आहाहा! वह धुसक-धुसककर रोता हो उस समय। अरेरे! मेरे दुःख को किसे कहूँ? कौन ले? ऐसा कहे। ज्ञानी को उस दुःख के प्रसंग में वैराग्य हो गया होता है। आहाहा! ऐसा पुत्र मरा हो, पुत्री विधवा हो, मकान जला हो, बीमावाला उसी समय टूटा हो। आहाहा! चारों ओर की लगी हो ठीक सी (प्रतिकूलता)। ऐसे प्रसंग में, हे ज्ञानी! याद करना तेरे वैराग्य को। आहाहा! वह दुःख के अवसर। पहले था दीक्षा के वैराग्य की, दूसरा था रोग उत्पत्ति का, तीसरा दुःख का प्रसंग, ऐसा। पुत्री विधवा हो, पुत्र मरा हो, स्त्री मरे छोटी उम्र में और लड़के सात-आठ हों दो-दो वर्ष के अन्तराल के। दस-दस लड़के हों, लड़कियाँ हों, उस समय बाप मर जाये। उम्र ५० वर्ष की हो। उस समय उसे याद करना बापू, तुझे क्या? यह तो ज्ञानी की बात है न? ऐई! फूलचन्दभाई!

आहाहा! उसको तो कुछ नहीं, कहते हैं, वह तो मरेगा तो मैं दूसरी करूँगा। बड़ी उम्र हो तो दूसरी न हो। परन्तु यहाँ तो धर्मी की बात है। धर्मी को ऐसे बाहर के प्रसंग आये हों और उस समय उसे ज्ञान और वैराग्य की धारा हो, उसे तू याद करना, भाई! ऐसा कहते हैं। अज्ञानी ने तो शोक मचाया हो वहाँ। आहाहा!

पच्चीस-पच्चीस वर्ष की पुत्री हो, घर में पालन-पोषण किया हो। खिलाया-पिलाया सब हो और वह विवाह करके हरिजन के घर में चली जाये। और वह प्रसंग हो, तब क्या होता होगा? यह ख्रिस्ती-ब्रिस्ती लेकर चले जाते हैं न। अभी तो बहुत होता है न। आहाहा! सब होता है। आहाहा! यह काल ऐसा काल। वैराग्य का काल ऐसा सब होता है। पच्चीस-पच्चीस वर्ष की लड़कियाँ पालन-पोषण करके मोटर में छूट दी हो घूमने की। वह मोटर का सिख हो, उसे लेकर चली जाये। सिख क्या कहलाता है? सिख कहलाता है न? मुम्बई में हुआ था। यह तो सब बने हुए हैं न। सरदार सरदार, यह सच्ची बात। आहाहा! उस समय धर्मी को भी ऐसा प्रसंग आ जाये संसार में है तो। उस समय उसे वैराग्य की धारा आवे ज्ञान की। आहाहा! उस समय का प्रसंग है यह। धर्मी के प्रसंग की बात है, हों! आहाहा! उसे कहाँ मुँह दिखाना, क्या करना ऐसा हो जाये अन्दर। आहाहा! पंचों में सामने बैठकर बड़ी-बड़ी बातें की थीं, यह घर में आकर यह हुआ। हाय... हाय... ऐसे प्रसंग के ज्ञान और वैराग्य हुए हों धर्मी को, उसे तू याद करना। धर्मी को ऐसा कहते हैं।

प्रगट हुई उदासीनता... उदास। आहाहा! घर में बीस वर्ष का लड़का मर गया हो और सर्दी के दिन में पाक किया हो, वह सालमपाक और क्या कहलाता है वह? सवेरे उड़दिया और वह सब ऊपर उदास हो जाये। हाय... हाय... आहाहा! एक पिता था, वह इकलौती पुत्री, उसके ऊपर इतना प्रेम। कोई नहीं था। पुत्र मर गया। पुत्री अकेली। अफीम का बंधाण, बहुत अफीम का बंधाण बहुत सब। वह लड़की मर गयी और जलाकर आये और अरेरे! जिसके ऊपर मैंने इतना राग ढोला (किया)। स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, पुत्री एक थी। अरेरे! वह छोड़कर गयी तो यह अफीम न छोड़ा जाये अब? वह अफीम की डिब्बी डाल दी। अफीम का बंधाण छोड़ दिया। आहाहा! ऐसे प्रसंग। पुत्री और पिता, दो व्यक्ति उसमें एक के ऊपर प्रेम। वह मर गयी और उसे जलाकर आया।

आहाहा! यह अफीम का समय आया, बापू लो न। अरे, भाई! उस पुत्री के बिना चलेगा या नहीं अब? तो अफीम के बिना न चले अब? वह डिब्बी अफीम की थी, उसे फेंक दिया। ऐसे प्रसंग को याद करना, बापू! ऐसा कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा!

मुमुक्षु : अफीम खाकर मर गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : अफीम छोड़ दी। मर गये नहीं। अफीम का बंधाण (व्यसन) था न। छोड़ दिया। अफीम का बंधाण था, वह छोड़ दिया। इकलौती लड़की के बिना चलेगा अब, मैं अकेला रहा। आहाहा! सुधर जाता है।

कहते हैं कि जिसे आत्मा का भान हुआ है। मैं एक चैतन्य आनन्द के मालवाला तत्त्व हूँ। मुझमें अतीन्द्रिय आनन्द का मेरा गोदाम है मेरा आत्मा। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को खोलकर जितना खोल सकूँ, उतना निकाल सकूँ अन्दर से। आहाहा! ऐसी जिसे प्रतीति और ज्ञान और रमणता हुई है, ऐसे धर्मी ऐसे प्रसंगों को याद करके शुद्धि को बढ़ाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कोई मेरा नहीं, मैं किसी का नहीं, यह तो था दृष्टि में। यह तो स्थिरता की अस्थिरता में यह चारित्र की व्याख्या में है। आहाहा! वस्तु का स्वभाव वह मेरा शरण है, वह मुझे भासित हुआ है। अब दूसरा कोई शरण नहीं जगत में। ऐसी भावना करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धि को बढ़ाये। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! तुम्हारे दो व्यक्तियों में ऐसा प्रसंग बना नहीं होगा अभी।

और तीन बोल कहे। **किसी उपदेश तथा तत्त्वविचार के धन्य अवसर पर...** आहाहा! अब दूसरा बोल कहते हैं। कोई उपदेश ऐसा तत्त्व का आया हो, उस समय धन्य पल में उसे वैराग्य हो गया हो अन्दर से। आहाहा! कोई उपदेश और तत्त्वविचार। वहाँ स्वयं तत्त्व की विचारना-धारा में आनन्दस्वरूप मैं हूँ, ऐसी विचारधारा में कोई उल्लसित वीर्य प्रस्फुटित हो अन्दर। आहाहा! **धन्य अवसर पर जगी पवित्र...** आहाहा! धन्य समय के अन्दर आनन्द के नाथ को जगाकर जिसने सम्यग्दर्शन और ज्ञान में बाहर लाया है उस आत्मा को। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे **धन्य अवसर पर जगी पवित्र अन्तःभावना को स्मरण में रखना,...** उस समय भावना जो वैराग्य की प्रगट हुई हो। ऐसा उपदेश मिला हो अन्दर भगवान का,

मुनियों का। आहाहा! फाट... फाट वैराग्य अन्दर हो गया हो, ऐसे प्रसंग को हे धर्मात्मा! याद रखना कि जिससे तुझे शुद्धि की वृद्धि हो। बापू! तू किसी के सामने देखना नहीं। आहाहा! **धन्य अवसर पर...** भाषा देखो! कोई उपदेश के काल में या तत्त्व विचार के काल में। **धन्य अवसर पर जगी पवित्र अन्तःभावना को स्मरण में रखना, निरन्तर स्वसन्मुख ज्ञातापन का धीरज...** स्वसन्मुख ज्ञातापन को धीरज **स्मरण में रखना, भूलना नहीं। (इस गाथा का विशेष भावार्थ)।**

★ ★ ★

गाथा - १११

आगे भावलिंग शुद्ध करके द्रव्यलिंग सेवन का उपदेश करते हैं:—अब कहते हैं कि हे मुनि! सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् द्रव्यलिंग धारण करना। सम्यग्दर्शन के भान बिना बाह्यलिंग धारण करेगा तो उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं होगा। नग्नपना करे, वस्त्र पहनकर साधु माने, परन्तु अन्तर भाव सम्यग्दर्शन, वह चीज़ ही क्या है, उसकी खबर नहीं होती।

सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरिंगसुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं॥१११॥

अर्थ :- हे मुनिवर! तू अभ्यन्तरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर... अभ्यन्तरलिंग अर्थात् आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वह मैं हूँ—ऐसी जिसे अनुभव में प्रतीति हो, तब अभ्यन्तरलिंग सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ कहलाये। समझ में आया? यह तो न हो सम्यग्दर्शन (और) कैसे हो और क्या है, उसकी खबर नहीं होती और दीक्षा लेकर बैठे, वस्त्र बदले या नग्न हो नग्न। आहाहा! **हे मुनिवर! तू अभ्यन्तरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर...** सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहला कर्तव्य तो धर्मी का यह है। समझ में आया?

शुद्ध चैतन्य वस्तु भगवान आत्मा अन्तर स्वरूप तो उसका चैतन्य का—आत्मा का भावस्वरूप तो उसका अन्तर आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का वह तो दल है। आत्मा

उसे आत्मा कहते हैं कि अतीन्द्रिय आनन्द का दल, पिण्ड, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! यह शरीर कहीं आत्मा नहीं, यह तो जड़, मिट्टी, धूल है। कर्म जड़ है। यह पुण्य और पाप के भाव हों हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वह पापभावना, विकार, अचेतन जड़ है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव होते हैं, वे भी राग और अचेतन जड़ है। आहाहा! अचेतन है न। जिसमें चैतन्य का तत्त्व न आवे, ज्ञान का अंकुर जिसमें नहीं, उस राग को क्या कहना? चाहे तो व्रत का हो, तप का हो, पूजा और भक्ति का (हो) परन्तु है तो अचेतन राग। आहाहा! समझ में आया? अन्दर भगवान आत्मा, उस अचेतन विकल्प और राग के पीछे चैतन्य दल ध्रुवस्वरूप माल पड़ा है पूरा। आहाहा! दूधपाक कढाही का दूधपाक जैसे पड़ा हो न कढाही में, उसी प्रकार आत्मद्रव्य में ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का दूधपाक पका हुआ अन्दर पड़ा है।

मुमुक्षु : पका हुआ तैयार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार है। आहाहा! परन्तु सुना नहीं, खबर नहीं (कि) आत्मा क्या कहलाये? मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ, अभी खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति और अतीन्द्रिय स्वच्छता और अतीन्द्रिय प्रभुता (से भरपूर है)। यह बाहर की संघवी की पदवी और वकालत की पदवी और यह डॉक्टर की पदवी को, क्या कहलाता है? संघपति की, यह सेठाई की—यह सब धूल की पदवियाँ हैं। आहाहा! अन्दर में आत्मा के आनन्द का स्वच्छपना प्रभुता, जिसके स्वभाव की प्रभुता से प्रभुता के सामर्थ्य से भरपूर है वह। परन्तु इसे विश्वास में आवे, तब वह सामर्थ्य भासित हो न? कोई ऐसा कहे कि ऐसा सामर्थ्यवाला है तो फिर ऐसा कैसे? परन्तु वह सामर्थ्यवाला है, ऐसा बैठा कहाँ है इसे? आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव इस आत्मा को ऐसा कहते हैं, ऐसी तो इसे खबर ही नहीं। उसमें अनन्त बल है, अनन्त ज्ञान है, अनन्त प्रभुता है, सामर्थ्य का पार नहीं, इतनी प्रभुता भरी है। आहाहा! तो वह उसकी प्रभुता बाहर क्यों नहीं आती? परन्तु बापू! वह है, ऐसा विश्वास तुझे कहाँ आया है? तेरे लिये तो वह नहीं। होने पर भी नहीं। अस्तित्व है, ऐसा जिसने माना, उसे अस्तित्व है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें, बापू! धर्म की बात वीतराग की बहुत सूक्ष्म है। लोग यह बाहर कल्पित कर बैठे

हैं न! आहाहा! कहीं अन्त न आवे, ऐसी बात है।

यह तो चैतन्य भगवान अन्दर, आहाहा! बड़े तालाब में उतरने की सीढ़ियाँ होती हैं न अन्दर। उसमें से उतरा जाये या फिर पूरे चारों ओर... क्या कहलाता है? पाल में से कहीं उतरा जाये? मिट्टीवाली हो, वह हो,... गया हो। सीढ़ियाँ हो वहाँ उतरा जाये। इसी प्रकार इस आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान वह अन्तर में उतरने की सीढ़ियाँ हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान तो पूर्णानन्द से भरपूर, अतीन्द्रिय रस से भरा हुआ— छलाछल भरा हुआ आत्मा है। आहाहा! कैसे बैठे? यह कहीं पाँच-दस हजार पैदा हो वहाँ प्रसन्न हो जाये, स्त्री जरा अच्छी मिले, वहाँ प्रसन्न हो जाये। अब उसे आत्मा में आनन्द है और अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, कैसे बैठे? आहाहा! पामरता के प्रमाण दूसरे प्रकार के हो गये। प्रभुता के प्रमाण को आँकने की दृष्टि चाहिए, वह नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! तेरा आत्मा। आहाहा! अभ्यन्तर लिंग की प्राप्ति करने के पश्चात् चार प्रकार के बाह्यलिंग का सेवन कर। आहाहा! परन्तु उसके भान बिना तू बाह्यलिंग मुनिपना और श्रावकपना लेकर बैठेगा, मिथ्यात्व है सब। आहाहा! ओहोहो! भावपाहुड़ तो... चैतन्य का निर्विकल्प स्वभाव, पूर्ण एक-एक गुण, वह पूर्ण ऐसे तो अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त शक्ति का सामर्थ्य है। ऐसा जो स्वभाव, उसकी शुद्धि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करके शुद्धि करना, पश्चात् लिंग धारण करना, साधु होना। परन्तु इसके बिना लिंग धारण करेगा तो मरकर हैरान हो जायेगा। यह तो जहाँ-तहाँ मुनिपना दे देवे। आहाहा! कल ही कोई कहता था, १२ वर्ष का लड़का और १४ वर्ष की लड़की बहिन-भाई को दीक्षा देनेवाले हैं। अब उसे खबर न हो, क्या चीज़ है। आहाहा! अरेरे! भगवान के मार्ग को कहाँ कर डाला? शाक-भाजी के जैसा कर डाला। एक बार आया था न, वह पत्रिका में आया था। आहाहा! शाक-भाजी की भी कीमत है अभी तो। महँगा है। आहाहा! रुपये में सेर, ऐसा कुछ कहते हैं। बारह आने सेर यह लौकी न। बातें करे अपने कहाँ... करेला महँगा होगा न सब ही?

मुमुक्षु : करेला तो महँगा ही होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस ऋतु में रस के साथ हो न! कैसे मिलते हैं करेला खबर है?

मुमुक्षु : लौकी अभी दो रुपये किलो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो रुपये किले। ओहोहो! दो सेर और छह भार। दो रुपये में। एक रुपये का एक सेर और तीन भार। अरे अरे! गजब है न! अरेरे!

यहाँ कहते हैं, भाई! तेरा आत्मा का आनन्द है न अन्दर, उसे एक बार प्रतीति, सम्यक् में स्वाद लेकर प्रतीति करना। पश्चात् तू लिंग धारण करना। आहाहा! मेरा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है। उसका एक बार सम्यग्दर्शन में स्वाद लेकर शुद्धि प्रगट करके पश्चात् तू मुनिपना लेना। इसके बिना मुनिपना लेकर लिंग धारण करेगा तो तेरा सब निरर्थक जायेगा। आहाहा! ऐसे द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये। आहाहा!

शुद्धता को प्राप्त होकर चार प्रकार के बाह्यलिंग का सेवन कर,... यह चार कहेंगे। **क्योंकि जो भावरहित होते हैं, उनके प्रगटपने बाह्यलिंग अकार्य है...** आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द के स्वाद की खबर नहीं, अतीन्द्रिय का स्वाद कैसा होता है और कैसा आत्मा, उसकी खबर नहीं, उसे यह बाह्यलिंग अकार्यकारी है, कहते हैं। आहाहा! यह साधुपने के वस्त्र पहने।

मुमुक्षु : वस्त्र कहाँ.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र निकालकर, यहाँ तो बात, नग्न लो न। वह तो साधु भी कहाँ? द्रव्यलिंग भी कब है? वस्त्रवाले साधु तो द्रव्यलिंग भी नहीं। आहाहा! बातें कठिन पड़े। दुःख लगे दूसरे को, हों! दुःख लगने के लिये नहीं, प्रभु! वस्तु की स्थिति की स्पष्टता के लिये तो यह बात है, भाई! तेरे लिये तो हित की बात है। आहाहा! जो मिथ्यात्व सेवन कर दुःख में पड़े हैं और जिनके फल में भी दुःख होगा, उसका कैसे तिरस्कार करना? उसका अनादर क्यों करना? जानना कि है ऐसा, होता है जगत में। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं या मुनि ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तू बारह व्रत या पंच महाव्रत को अंगीकार करने से पहले सम्यग्दर्शन को प्रगट करना। जो शुद्ध चैतन्य है... आहाहा! ऐसी शुद्धता का जिसमें भान हो, प्रतीति हो, साक्षात् हो—ऐसी सम्यग्दर्शन की प्रत्यक्षता करके फिर बाह्यलिंग धारण करना। इसके बिना यदि मात्र

बाह्यलिंग धारण किये, अकार्य है, कुछ कार्य सिद्ध नहीं होगा, तेरा भटकना नहीं मिटेगा। आहाहा! नरक और निगोद के अवतार, बापू! आहाहा! वहाँ कोई सगा-सम्बन्धी मौसीबा नहीं बैठी कि आओ भाई! आहाहा! कैसे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा वस्तु जो है, उसका प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करके... यह अपूर्व बात है, भाई! सम्यग्दर्शन, वह कहीं साधारण बात नहीं कि यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। वह सम्यग्दर्शन नहीं है। नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह भी सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो आत्मा आनन्द का नाथ पूर्णानन्द का नाथ पूर्णानन्द से भरपूर पदार्थ, उसका जिसे प्रतीति में स्वाद आवे, उस अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे स्वाद आवे, और उसमें प्रतीति आवे, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। अभी उसकी तो खबर नहीं होती और हम धर्म करते हैं, यह व्रत लिये और तप लिये। रण में शोर मचाने जैसी बातें हैं सब। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करना, पश्चात् बाह्यलिंग की बातें करना। परन्तु सम्यग्दर्शन की ही जहाँ खबर नहीं और बाहर के लिंग ले लिये बारह व्रत के और पंच महाव्रत के, सब तेरे अकार्य है, भटकने के लिये है, परिभ्रमण के लिये। आहाहा! है? चार लिंग। **क्योंकि जो भावरहित होते हैं, उनके प्रगटपने बाह्यलिंग अकार्य है अर्थात् कार्यकारी नहीं है।** आहाहा! जिसे आत्मा वस्तु क्या है, उसका अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, अन्तर सन्मुख होकर उसकी प्रतीति की नहीं, उस सन्मुख जाने की क्रिया की, (और) बाह्यलिंग धारण करे, अकार्य है, कहते हैं। तुझे कुछ लाभ नहीं। आहाहा!

भावार्थ :- जो भाव की शुद्धता से रहित हैं,... यह भाव शब्द से सम्यग्दर्शन। यह सम्यग्दर्शन अलौकिक चीज़ है। यह सब मान ले कि हम समकिती हैं—(ऐसा नहीं)। यह अलौकिक बातें, बापू! आहाहा! जो भाव की शुद्धता से रहित है। **जिनके अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं है, उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है...** जिसे आत्मज्ञान नहीं। 'अेगं जाणई सव्वं जाणइ', ऐसा जाननेवाले को जाना नहीं। आहाहा! आत्मा का **अपनी आत्मा का...** भाषा ऐसी है न? भगवान का आत्मा, ऐसा नहीं। भगवान के आत्मा की श्रद्धा, वह तो राग है। आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव

परमात्मा की श्रद्धा, वह भी राग है, वह तो विकल्प है, वह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा!

अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान,... भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपी पूर्णानन्दस्वरूप है आत्मा का। ऐसे आत्मा का ज्ञान करके, उसकी पहिचान करके उसकी प्रतीति होना... आहाहा! वह **यथार्थ श्रद्धान...** उसका यथार्थ वस्तु का ज्ञान। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप का ज्ञान और उसके आत्मा में रमणता, वह उसका आचरण। आंशिक भी रमणता सम्यग्दर्शन के साथ होती है। समझ में आया? भारी कठिन बातें ऐसी। एक तो धन्धे के पाप के कारण निवृत्त न हो बेचारा। स्त्री, पुत्र के पोषण के लिये, कमाने के लिये धमाधम करता हो बारह महीने बेचारा। रात्रि के आठ-आठ बजे तक। आहाहा! समय मिले घण्टा भर तो दूसरा सुनने को मिले बाहर का। उसमें सम्यग्दर्शन क्या और कैसे प्राप्त होता है, यह बात भी सुनने को मिलती नहीं। उसका जीवन सब ढ़ोर जैसा जीवन है वह। आहाहा! दुनिया में भले इज्जत में गिना जाये कि यह पचास लाख पैदा किये और करोड़ रुपये आये, दो करोड़ आये, पाँच करोड़ हुए। उसकी कुर्सी पहले पड़े बाहर में।

मुमुक्षु : न्यायपूर्वक कमाना, उसमें पाप क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : न्यायपूर्वक कमाना, वह पाप है। (क्योंकि) कमाने का भाव ही पाप है। न्यायपूर्वक क्या? आहाहा! दुकान पर बैठने का भाव पाप। लोगों को सम्हालना, घर को सम्हालना, वह पाप। उसमें होगा प्रवीणभाई? क्यों, मुकेश क्या होगा? यह तेरा बाप सब करता है न! तेरे लिये करता होगा? उसके राग के लिये करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : न्यायपूर्वक.... अन्यायपूर्वक...

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप है। अन्याय में तो बड़ा पाप है। पैसा कमाने का भाव ही पाप है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... कमाना वह पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय से कमाये, पद्धतिसर कमाये तो भी भाव तो पाप है न वह? आहाहा! उसमें आत्मा तो भारी होता जाता है। ऐसी बात है। आहाहा! अरे! इसने

आत्मा अपनी चीज़ को नहीं जाना, कहते हैं और पर के लिये रुककर यह सब काल व्यतीत किया। आहाहा!

यह आती है एक कथा। एक भाई के लिये दूसरे भाई ने बहुत पाप किये। दूसरे भाई ने पाप बहुत किये, इसलिए वह मरकर नरक में गया। और जिसके लिये पाप किये थे, वह फिर वहाँ भवनपति का असुर हुआ। दोनों वहाँ हुए। फिर असुर उसको मारता है। तब उसे याद आया, परन्तु भाई! मैंने तेरे लिये पाप किये हैं न! परन्तु यहाँ कहाँ किसने कहा था तुझे? छोटे भाई के लिये बड़े भाई ने पाप किये रोग की दवा-बवा में अण्डा लाये और ढींकणा किया। उसमें वह मरकर नरक में गया, नारकी हुआ। और वह (छोटा भाई) जो था, उसे कुछ भाव ठीक रहे तो असुरकुमार का देव हुआ वहाँ। इसलिए असुर का देव हुआ तो उसको (बड़े भाई को) मारता है। उसमें याद आया, भाई! मैंने तेरे लिये पाप किये और तू मुझे मारता है? परन्तु तुझे किसने कहा था कि मेरे लिये करना? आहाहा! ऐसा बनता है। अनन्त बार बनता है, यह कहाँ नयी बात है? आहाहा!

आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं है, उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है, कारण पाकर तत्काल बिगड़ जाते हैं,... जिसे आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन नहीं, आत्म-अनुभव नहीं, वह बाह्यलिंग व्रत को धारण करे, वह प्रसंग आवे तो बिगड़कर भ्रष्ट हो जायेगा। आहाहा! उसे आत्मा का कुछ लाभ नहीं होता। इसलिए प्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने के पश्चात् बाह्यलिंग ऐसा करना।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ११, शुक्रवार, ३१-०५-१९७४
गाथा - १११ से ११४, प्रवचन-१६१

भावपाहुड़ है न। **जो भाव की शुद्धता से रहित हैं, जिनके अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं है, उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है,...** जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य की अन्तर दृष्टि हुई नहीं, अन्तरंग स्वभाव का ज्ञान हुआ नहीं और स्वभाव में लीनता और चारित्र नहीं। ऐसों का बाह्यलिंग अकार्यकारी है। **उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है, कारण पाकर तत्काल बिगड़ जाते हैं,...** यहाँ तक आया था। अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन... भाव का अर्थ ही यहाँ जिन सम्यग्दर्शन, वीतरागी सम्यग्दर्शन। अर्थात् कि वीतरागी स्वरूप जो चैतन्यस्वरूप है त्रिकाल, उसका दर्शन-वीतरागदर्शन जिन सम्यक् उसे कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ बाह्य वेश लेकर बैठे, वे सब अकार्यकारी है। उसके आत्मा को कुछ भी लाभ नहीं है, नुकसान है।

इसलिए यह उपदेश है—पहले भाव की शुद्धता करके... पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करके, ऐसा कहते हैं। पश्चात् उसे मुनिपने का भावलिंग आवे। **द्रव्यलिंग धारण करो।** सेवन करो, ऐसा शब्द है पाठ में। सेवन करो का अर्थ धारण करो। **यह द्रव्यलिंग चार प्रकार का कहा है, उसकी सूचना इस प्रकार है—१. मस्तक के,...** लोंच करे। **२. दाढी के,...** लोंच **२-३. मूछों के केशों का लोंच करना, तीन चिह्न तो ये और चौथा नीचे के केश रखना...** यह चार। मुनि तो द्रव्यलिंगी द्रव्यलिंग में नग्न होते हैं। उसे मुनि कहा जाता है। जिसका द्रव्यलिंग नग्नदशा हो। वस्त्र का धागा भी हो तो वह द्रव्यलिंगी साधु नहीं। वह साधु ही नहीं। ऐसी सूक्ष्म बात है, भगवान!

यह कहते हैं फिर से चार उसके लेते हैं, देखो। **१. वस्त्र का त्याग...** मुनि जो सच्चे मुनि हों और जिन्हें सम्यग्दर्शनसहित मुनिपना आया हो, उन्हें तो वस्त्र नहीं हो सकते। कितने ही कहते हैं न कि भाई! वस्त्र रखना, मूर्च्छा नहीं करना। मूर्च्छा परिग्रह... यहाँ इनकार करते हैं। भगवान कहते हैं कि यह वस्त्र रखे, उसे मूर्च्छा ही है।

आहाहा! सूक्ष्म बात! सम्प्रदाय को कठोर पड़े ऐसा है। मार्ग सनातन अनादि का तीर्थंकर का, केवली का तो यह मार्ग है। समझ में आया? मुनि को सम्यग्दर्शनसहित आत्मा का अनुभव... आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने— जिन्होंने आत्मा को देखा कि आत्मा तो शुद्ध पवित्र है, ऐसा जो अन्तर में दृष्टि से, ज्ञान की पर्याय से देखे, जानकर अनुभव करे, उसे तो सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसे यहाँ भाव में गिनने में आया। वह भाव न हो और मात्र वस्त्र का त्याग करके बैठे, तो वह अकार्यकारी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नग्न होकर घूमे, परन्तु अन्तर सम्यग्दर्शन की तो खबर नहीं। सम्यग्दर्शन अर्थात् कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा—यह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा!

ऐसा कि अरिहन्त महादेवो... अरिहन्त भगवान हैं और निर्ग्रन्थ साधु और भगवान का धर्म, उसे माने वह समकिती। वह तो व्यवहार राग है वह तो। परमात्मा कहते हैं कि हमको तू मान तो वह राग है। क्योंकि हम परद्रव्य हैं। आहाहा! हमारे आगम जो शास्त्र भगवान के कहे हुए, उन्हें मान, वह भी शुभराग है, कहते हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग तो ऐसा है, भाई! भगवान ऐसा कहते हैं। हमको मान तो, मैं तुझसे परद्रव्य हूँ, इसलिए तुझे शुभराग होगा। मुझे मानने से तुझे निश्चय सम्यग्दर्शन होगा, ऐसा नहीं है। इसलिए यहाँ स्वद्रव्य वस्तु भगवान, जिसमें अनन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीतरागता, शान्ति, आनन्द परिपूर्ण भरा है आत्मा में, वह चीज़ आत्मा मालवाली चीज़ है। आहाहा! जिसमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति पड़ी है, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा का अनुभव, ऐसे आत्मा को अनुसरकर दशा का होना, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन जिन सम्यक् कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसमें लिया है टीका में, जिन सम्यक् है। जिन अर्थात् वीतरागी समकित है। आहाहा! भाई! बहुत सूक्ष्म मार्ग है, भाई! लोगों ने अन्य मार्ग में जैनमार्ग मनवा दिया है।

वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जाने, उन भगवान ने छह द्रव्य जाने और उन भगवान ने कहा कि यह छह द्रव्य (उसमें) जो चैतन्य, छह में भी तेरा चैतन्य निज स्वरूप, उसकी दृष्टि और अनुभव, उसे जिन समकित कहते हैं। आहाहा! कहो, प्रेमचन्दभाई! समझ में आया

इसमें? गजब परन्तु ऐसा। यह सम्प्रदाय में क्या करना तो यह? ऐई! महेन्द्रभाई! क्या करना यह सम्प्रदाय में? बाहर में सब माने, यह वस्त्र-पात्र रखे और साधु माने। भगवान तो इनकार करते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी यह है, दूसरी कल्पित वाणी है सब। आहाहा! ऐसी है परन्तु लोगों को परीक्षा नहीं होती, विचार मंथन नहीं होता। जहाँ पड़े वहाँ पड़े वाड़ा में, हो गया। आहाहा! वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ... यह कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में थे। भगवान महाविदेह में विराजते हैं वीतराग सीमन्धर प्रभु, उनके निकट गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। आहाहा! कहते हैं कि मुनि को सम्यग्दर्शनसहित वस्त्र का त्याग होता है। आहाहा! वस्त्रसहित जितने हैं, वे तो कोई साधु हैं नहीं। आहाहा! जेठाभाई!

मुमुक्षु : यह भगवान की बात क्यों नहीं मानते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से शल्य है न। जिस-जिस कुल में जन्मा, वहाँ-वहाँ वह ऐसा माना हो, इसलिए उसे सत्य बात कान में पड़ी न हो और पड़ी हो तो भी उसे बैठना कठिन है।

मुमुक्षु : .... चिल्लाहट मचाते हैं। भगवान की बात अनादि से मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता नहीं। बात ऐसी है। सूक्ष्म है न! उसे ऐसा आत्मा वस्तु, वह ऐसी वस्तु है कि जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त सिद्धपद स्थित हैं। आहाहा! ऐसा आत्मा असंख्यप्रदेशी, वह सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! ऐसे असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण और अनन्त गुण की... कल प्रश्न करता था कोई, एक समय में अनन्त पर्याय? अनन्त। कोई प्रश्न करता था कल। अनन्त गुणों की एक समय में अनन्त पर्यायें होती है। अभी, हों! इसने कुछ सुना नहीं। तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं होती।

कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा महाअमूल्य जिसकी कीमत नहीं। आहाहा! श्रीमद् तो कहते हैं न कि जिनवाणी की कीमत करने जाये तो उसकी कीमत हो जाती है। आहाहा! ऐसा परमात्मा अन्दर देहदेवल में विराजता प्रभु... आहाहा! उसकी जिसे अन्तर में दृष्टि और अनुभव नहीं और साधु होकर बैठ जाये, वस्त्र छोड़कर। यह साधु,

हों! वे वस्त्रवाले तो साधु भी नहीं, वे समकिती भी नहीं। अरे! भगवान! बहुत कठिन पड़े। जेठाभाई!

मुमुक्षु : वह महावीर का वेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : महावीर का वेश वह नहीं। आहाहा! महावीर का वेश तो वस्त्ररहित नग्नपना, वह महावीर का वेश। ऐसी बात है, बापू! वह तो कुलिंग है। ऐसी परमात्मा के घर की कथन शैली आयी है। परन्तु सब बदल गया और यह बात सुनने को मिली नहीं न... आहाहा!

मुमुक्षु : जैसा तैसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आया है न, वह सब सुना है। ऐसा कि शत्रुंजय की यात्रा कर न, उसे फिर आहार दे। तब बेचारा देखो न, अभी कोई कहता था। ७० हजार के तो वस्त्र दिये वहाँ। ६७ हजार के। भाई आये थे न वे। काकूभाई बारोट। उसे साधु की श्रद्धा नहीं कुछ एक की भी। पालीताणा रहते हैं, नौकरी करते हैं। ६७ हजार के वस्त्र तो आये। वे साधु सब ले गये। पाँच सौ साधु हैं। पाँच हजार का मेवा लाये। पाँच हजार का बादाम-पिस्ता मेवा। ... नाम नहीं देते हैं। मेवा कहते हैं। उसने कहा, इसलिए खबर है। यह पाँच हजार का मेवा पौन घण्टे में समाप्त हो गया। पात्रा लेकर आर्जिका को... अरे! ऐसा मार्ग होगा, प्रभु? भाई! और पोस्टकार्ड के टिकिट। १३०० रुपये के टिकिट। सड़सड़ाहट साधु और आर्जिका आकर ले गये। अभी एक आये थे भाई! गृहस्थ की कोई महिला थी। यहाँ बहुत बार आती है। सेठिया हो न साथ में यहाँ बताने लावे।

मुमुक्षु : आर्जिका को टिकिट की क्या आवश्यकता थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : टिकिट, उसे पत्र-बत्र लिखना हो नहीं? तुम्हारे लिखना हो तो उसे लिखना हो नहीं? शिष्य हों उन सबके। परिवार है न। यह काकूभाई कहते थे मुझे। वहाँ अन्दर आये थे, बैठे थे। बापू! मार्ग अलग है, भाई! यह तो वस्त्रसहित के परिग्रही तो साधु भी नहीं, वे समकिती भी नहीं। आहाहा! ऐसी बातें, भाई! कठोर पड़े, भाई! प्रेमचन्दभाई! यह ठीक सुनाई देता है? नागरभाई तो आते थे, हों! वहाँ हमारे पास। हम

उसमें थे न जब (संवत्) १९८२ में वढ़वाण, ९० के वर्ष। वहाँ मुळी आये थे। पश्चात्... खबर है न, ... में। आते थे हमारे पास बेचारे, हों! परन्तु यह बात ऐसी सूक्ष्म पड़े न! बैठना कठिन। और पूरी लाईन दूसरी अभी और यह बात दूसरी।

कहते हैं, उसे वस्त्र का त्याग होता है। परन्तु वह सम्यग्दर्शनसहित; सम्यग्दर्शन बिना नग्न घूमे, वह भी साधु नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे **२. केशों का लोंच करना,...** केश का लोंच होता है। वे काटे-कटाये नहीं। आहाहा! जिसे आत्मज्ञान हो, आत्मदर्शन हो, आत्म-अनुभव हो। सम्यग्दर्शन, वह अलौकिक चीज़ है। यह साधारण मानते हैं, वह कुछ चीज़ नहीं कि हम समकिती हैं और भगवान को मानते हैं। सब थोथे थोथा। सम्यग्दर्शन तो अन्तर आनन्द का अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है। आहाहा! सुख का साहेबा है वह। कहाँ बैठे परन्तु इसे! अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का धाम आत्मा है। उसे अतीन्द्रिय सुख का स्वाद आवे, उसमें प्रतीति आवे, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! तब तो उसे चौथा गुणस्थान होता है अभी। आहाहा! और ऐसे सम्यग्दर्शन भावसहित मुनि हो तो उसे मुनि को वस्त्र का त्याग होता है। वह बाह्यलिंग उसे वस्त्र का त्याग का होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! केश लोच होता है।

३. शरीर का स्नानादि से संस्कार न करना,... शरीर को स्नान करके साफ करे, ऐसा उन्हें—मुनि को नहीं होता। और **४. प्रतिलेखन मयूरपिच्छिका रखना,...** मोरपिच्छी होती है। यह ऊन का ओघो और वह नहीं होता, मोरपिच्छी होती है। **ऐसे भी चार प्रकार का बाह्यलिंग कहा है। ऐसे-ऐसे सब बाह्य वस्त्रादिक से रहित नग्न रहना, ऐसा नग्नरूप भावविशुद्धि बिना हंसी का स्थान है...** बापू! आहाहा! जिसे आत्मज्ञान और अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन का भान नहीं, आनन्द का नाथ अन्तर में परमात्मा स्वयं है, उसे जिसने जगाया नहीं, उसके बिना नग्नपना तो हँसी का कारण है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **और कुछ उत्तम फल भी नहीं है।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ११२

आगे कहते हैं कि भाव बिगड़ने के कारण चार संज्ञा हैं, उनसे संसार-भ्रमण होता है, यह दिखाते हैं :— अब चार संज्ञा की बात करते हैं।

आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णाहि मोहिओ सि तुमं।
भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो॥११२॥

अर्थ :- **हे मुने!** मुनि को लक्ष्य करके भाव की शुद्धि की बात है न मुख्य। **तूने आहार...** संज्ञा। आहार की कांक्षा, गृद्धि की संज्ञा अनन्त बार तूने की, भाई! तेरा नाथ अनाहारी प्रभु विराजता है अन्दर। ऐसे अनाहारी के स्वभाव के भान बिना आहार की संज्ञा, अच्छा आहार लूँ... अच्छा आहार लूँ... अच्छा आहार लूँ... ऐसी आहार की संज्ञा। गृद्धि हों आहार संज्ञा अर्थात्। आहाहा! **भय,...** संज्ञा। प्रतिकूलता देखकर भय हो। ऐसी भय संज्ञा अनन्त बार तूने सेवन की है। भगवान आत्मा निर्भयस्वरूप है। आहाहा! समकित का पहला ही बोल है न निःशंक, आचार का। निःशंक अर्थात् निर्भय, निडर। सम्यग्दर्शन है, यह जहाँ भान हुआ, वह तो निडर और निर्भय हो गया। आहाहा! श्रेणिक राजा भगवान के समय में क्षायिक समकिती, परन्तु अन्तर में निर्भय है। बाह्य में जरा मस्तक फोड़कर... यह प्रश्न किया था। ऐई! ऐसा कि ऐसे समकिती ने ऐसा क्यों किया? वह चारित्रदोष था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जिसका अन्तर जागृत हुआ, उसे राग-दोष आवे, परनतु वह कोई समकित को दोष करे, नुकसान समकित को करे, यह तीन काल में नहीं। श्रेणिक राजा ने सिर फोड़ा और अपघात किया। ऐसा कि प्रश्न यह था कि यह तो अपघात कहलाये न? क्षायिक समकिती हैं। तीर्थंकरगोत्र बाँधा था। उस समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं, मरने के समय में। मरकर पहले नरक में गये हैं।

मुमुक्षु : वहाँ भी बाँधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे वहाँ भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। तीर्थंकरगोत्र जब से बन्ध

शुरु किया तो ठेठ वहाँ से यहाँ आयेंगे, मुनि होंगे, आठवें गुणस्थान तक बाँधेंगे। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! यह तो परमेश्वर के सर्वज्ञ की अरिहन्त की बात है। पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है अभी। पहला नरक है यहाँ। नीचे सात नरक हैं। पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति। ढाई हजार (वर्ष) गये अभी। साढ़े इक्यासी हजार (वर्ष) बाकी हैं। परन्तु वह क्षायिक समकित है, उसके प्रताप से तो बाहर आने से पहले छह महीने पहले उनकी माता की देव सम्हाल करने आयेंगे। अहो! प्रभु का जीव तुम्हारे यहाँ पधारनेवाला है। माता! यह क्षायिक समकित का प्रताप। चारित्र नहीं था, व्रत निश्चय नहीं था। छह महीने पहले देव माता के निकट आयेंगे।

जैसे यहाँ बड़ा व्यक्ति आता हो और एक व्यक्ति आवे न पहले कि भाई उनके लिये मकान साफ करो, दो व्यक्ति खड़े रखो, फलाना, ढींकणा। इसी प्रकार तीर्थंकर का जीव है, वह पहले नरक में है श्रेणिक राजा का जीव। जिसने संसार कट कर डाला है—नाश। आहाहा! एक भव बाकी है, अब तीर्थंकर के अवतार का। देव आकर माता की सेवा करेंगे। छप्पन देवियाँ आयेंगी। माता! हम सेवा करते हैं आपकी। आहाहा! ऐसे पुण्य तो समकित में बाँधे हुए हैं। चारित्र नहीं था, मुनिपना नहीं था कि वस्त्र का त्याग होकर जंगल में रहे मुनि, वह दशा नहीं थी। परन्तु सम्यग्दर्शन की दशा में इस प्रकार से भूमिका में शुद्धि प्रगट (की) और इतना पुण्य बाँधा... आहाहा! कि नरक में से आयेंगे जब माता के गर्भ में (उसके) छह महीने पहले तो देव सेवा करने आयेंगे। आहाहा! यह सब सम्यग्दर्शन की भूमिका का प्रताप है। यह सम्यग्दर्शन क्या, लोगों को खबर नहीं। अब सम्यग्दर्शन की खबर न हो और उससे पहले व्रत, तप और चारित्र आ गये। धूल में भी नहीं, बिना एक के शून्य हैं सब। ऐई! गिरधरभाई! यह सब सेठियाओं ने सब ऐसा चलाया है। ऐई! जादवजीभाई! जादवजीभाई वहाँ सेठिया थे कलकत्ता में। हमारे गिरधरभाई के पिता और ये सब सेठिया वहाँ थे, दरियापरी।

मुमुक्षु : दो पेढी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत पैसे। अरे! परन्तु यह धर्म क्या, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती।

और इससे पहले उसके व्रत, तप और अपवास किये, वह धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। सम्यग्दर्शन बिना के तेरे अपवास, व्रत और ... ब्रह्मचर्य, वह सब राग की मन्दता हो तो पापानुबन्धी पुण्य बाँधे। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! वीतरागमार्ग में किसी की सिफारिश नहीं चलती। सौ इन्द्र जिसे पूजते हैं। आहाहा! जिनकी सभा में सिंह और बाघ आवे। महाविदेह में विराजते हैं न, भगवान। सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। मनुष्यरूप से है, पाँच सौ धनुष्य का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। बारह सभा में सिंह और बाघ आते हैं। इन्द्र ऊपर से व्याख्यान सुनने आते हैं। आहाहा! ऐसे भगवान की वाणी में यह आया है कि भाई! तूने आहार संज्ञा अनन्त बार सेवन की और चार गति में भटका। अनाहारी भगवान आत्मा का तूने भान नहीं किया।

भय, मैथुन... संज्ञा। यह विषय की गृद्धि की भावना। मैथुन संज्ञा (अर्थात्) विषय की वासना, कांक्षा। आहाहा! भगवान आत्मा में आनन्द है, उसके भान बिना तूने विषयसेवन, मैथुन का सेवन तूने किया। आहाहा! ऐसे भाव से प्रभु! तू चार गति में भटका। तेरा नाथ अन्दर आनन्द का नाथ ब्रह्म है, वह ब्रह्मचर्य सेवन नहीं किया तूने ब्रह्मानन्द को। आत्मा के आनन्द का ब्रह्मचर्य, हों! इस शरीर से ब्रह्मचर्य पालनेवाले तो बहुत निकले। वह तो अज्ञानी अभव्य भी हो, उसमें कुछ नहीं। शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह ब्रह्मचर्य नहीं। वह तो एक शुभभाव है। आत्मा ब्रह्मानन्दस्वरूप भगवान परमेश्वर ने जो आनन्दस्वरूप (कहा), उस ब्रह्म में चरना, आनन्द में चरना, रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य परमात्मा कहते हैं। आहाहा! बात-बात में अन्तर। ऐसी संज्ञा से तू चार गति में भटका, भाई!

परिग्रह... संज्ञा। यह पैसा प्राप्त करना, स्त्री, पुत्र, परिवार। आत्मा के भान बिना ऐसी संज्ञायें तूने कीं। परिग्रह संज्ञा। पैसा जरा पाँच-पच्चीस लाख मिले, वहाँ मानो हमने बहुत कमाये और हम बहुत अब आगे बढ़ गये।

मुमुक्षु : कर्मी हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मी हुआ। दूसरा क्या हुआ? धर्मी कहाँ था? धूल भी नहीं। कैसे होगा इसमें प्रवीणभाई? यह तुम्हारे चश्मे की दुकान में पैसा बहुत पैदा हो। दो दुकान में दो व्यक्ति दोनों भाई बैठे। उसे पूछा था मैंने, यह तेरा पिता यहाँ आया तो वहाँ

उस दुकान में कौन जायेगा ? कहे, मेरा काका जाता है। पूछा था न ? वह देखने जाये। आहाहा! गृद्धि, परिग्रह की ममता... ममता... ममता। भगवान आत्मा तो राग के कणरहित है। आहाहा! जिसमें दया, दान और व्रत का विकल्प उठता है, वह राग है। उस रागरहित चीज़ आत्मा तो है। ऐसे आत्मा के भान बिना तूने ऐसे परिग्रह की संज्ञायें सेवन कीं।

मोहित होकर... ऐसा कहते हैं। उसमें उलझ गया। आहार में, भय में, विषय-मैथुन में और परिग्रह में। **'मोहिओ सि' अनादि काल से पराधीन होकर... 'अणप्पवसो'** है न ? आहाहा! स्वाधीन भगवान आत्मा है, उसका तूने भान नहीं किया और इस प्रकार से पराधीन होकर **संसाररूप वन में...** लो! भ्रमित संसार... है। संसाररूपी बड़ा वन है। चौरासी लाख के अवतार में अवतरित होना, ऐसा महान गहन वन है। आहाहा! एकेन्द्रिय के भव, पृथ्वी के, जल के, अग्नि के, वायु के, वनस्पति के, आलू, शक्करकन्द, निगोद के, कन्दमूल के एक शरीर में अनन्त जीव। ऐसा जो संसारवन, उसमें तू भ्रमा है। आहाहा!

यहाँ तो आत्मज्ञानसहित मुनि को कहते हैं, भाई! तू यह संज्ञा छोड़ अब। आहाहा! यह पर में भावना जो कांक्षा है, उसे छोड़ अब। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप है न! उसकी भावना कर न कि जिससे तुझे आनन्द मिले। यह तो पाप मिलेगा इसमें तो। आहाहा!

भावार्थ :- संज्ञा नाम वांछा के जगते रहने (अर्थात् बने रहने) का है,... लो! वांछा का जागृत रहना ऐसा का ऐसा। इच्छा रहा ही करे। आहार की, भय की, मैथुन की, परिग्रह की। **सो आहार की वांछा होना, भय होना,...** यह भी उसकी वांछा। **मैथुन की वांछा होना और परिग्रह की वांछा प्राणी के निरन्तर बनी रहती है, यह जन्मान्तर में चली जाती है,...** आहाहा! यह आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा भव में—दूसरे भव में चली जाये वापस। आहाहा! **जन्मान्तर में चली जाती है, जन्म लेते ही तत्काल प्रगट होती है।** लो! आहाहा! देखो न! बालक जन्मे, फिर कौन सिखाता है उसे ? वह तुरन्त पीवे आहार—दूध उसकी माँ का। आहार संज्ञा पड़ी ही है अन्दर। आहाहा! अभी सीखा नहीं कि ऐसा करना या ऐसा चूसना। आहाहा!

मुमुक्षु : समाज में.... नहीं रहें तो हम अलग पड़ जायेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भय संज्ञा है। समाज में व्यवस्थित नहीं रहे यदि ऐसा करने जायेगा तो। यह भय संज्ञा मिथ्यात्व है। यही बात है। ऐसा कि ऐसी बात अब अपने मानने जायेंगे तो समाज में हम हल्के पड़ जायेंगे। अपने पुत्र-पुत्री का विवाह नहीं होगा। यह तो मेरे... ऐई! जेठाभाई! तुम्हारे तो सात लड़के हैं। तब कहते थे न कि यह मेरे भाई हैं। अब लड़के बहुत हैं उसे। मुझे छूट दे देते हैं। ऐसा कहता था वह। फूलचन्दभाई को। मैंने कहा था सही, रामजीभाई ने कहा था कि ... कुछ अब निवृत्त होओगे या नहीं? वे कहते थे कि मुझे रामजीभाई ने कहा था। इसलिए कल... यह मेरे भाई हैं। मुझे सच्चे हृदय से जवाब दे देवे तो मैं पृथक् हो जाऊँ। सच्चे हृदय से, इतना शब्द बोले थे, हों! लो! कहा न कि मैं अब छोड़ने का, छोड़ने का हूँ। वह भाई गये और गुजर गये न अपने अमृतलालभाई। फिर तुरन्त कहते थे। अब उनके स्थान में मुझे आना है। बाहर की वृत्ति, मान मिले, दुनिया अच्छा कहे। आहाहा!

संसारवन में भ्रमण करता है। आहाहा! **कर्मों का बन्ध कर...** आहार, भय, मैथुन, परिग्रह से बन्धन होता है और बन्धन के कारण चार गति में भटके। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा?

मुमुक्षु : आनन्द माने तो वह....?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द माने तो मिथ्यात्व है। धर्मी आनन्द मानता नहीं उसमें। उसे भाव हो उस जाति का, परन्तु उसमें सुख मानता नहीं। और यह तो सुख मानता है और मिथ्यादृष्टिसहित का रौद्रध्यान है। आत्मज्ञान समकिती को यह भाव हो ऐसा जरा। परन्तु उसमें उसे सुखबुद्धि नहीं। मुनि जो आहार लेते हैं, इसलिए आहार संज्ञा है, ऐसा नहीं। आहार संज्ञा अलग, आहार लेने की वृत्ति अलग। तो आहार संज्ञा तो कांक्षा की गृद्धि। यह बड़ा प्रश्न चला था बहुत वर्ष पहले सम्प्रदाय में। मुनि को भी आहार संज्ञा है। वे आहार लेते हैं, वह आहार संज्ञा नहीं। उसकी गृद्धि होना, वह आहार संज्ञा है। वांछा होना, ऐसा कहा न! वह तो संयम के हेतु से आहार लेते हैं। यह तो उसकी गृद्धि

है। अच्छा आहार-पानी देखा, वहाँ प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! बादाम और पिस्ता, मावा और मेवा मिले वहाँ पात्रा भरे और प्रसन्न हो जाये। मुनि को तो कहाँ पात्रा है। उन्हें हाथ में मिले। गृद्धि हो, कहते हैं। बापू! ऐसे अवसर अब तुझे मुनिपना प्राप्त हुआ, छोड़ अब यह बात। आहाहा!

इसलिए मुनियों को यह उपदेश है कि अब इन संज्ञाओं का अभाव करो। चार प्रकार की वांछा का अभाव करो, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा की भावना कर न अब। यहाँ भावपाहुड़ है न! जिसमें अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति पड़ी है। मौजूद है, भाई! तेरे पास। आहाहा! उसकी भावना कर न, ऐसे तो अनन्त बार आहार लिया। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ११३

आगे कहते हैं कि बाह्य उत्तरगुण की प्रवृत्ति भी भाव शुद्ध करके करना :- ऐसा। सम्यग्दर्शन प्रगट करके यह बाह्यलिंग धारण करना और उत्तरगुण भी धारण करना। परन्तु वह सम्यग्दर्शन सहित की बात है यहाँ तो। उसके बिना तो सब बहुत त्याग करते हैं। क्षमा रखे और यह रखे और वह। वह तो सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा!

बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि।
पालहि भावविशुद्धो पूयालाहं ण ईहंतो॥११३॥

अर्थ :- हे मुनिवर! मुख्य तो मुनि को लक्ष्यकर बात है न! गर्भित में गृहस्थ भी आ जाते हैं। **तू भाव से विशुद्ध होकर...** यह भाव से निर्मल दृष्टि प्रगट करके। आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् वीतरागी परिणति है वह। आहाहा! ऐसी वीतरागी परिणति—पर्याय—भावशुद्धिरूपी दशा को प्रगट करके, आहाहा! **पूजा-लाभादिक को नहीं चाहते हुए...** पूजा-लाभ और मुझे दूसरे गिनेंगे अच्छे में। यह तपस्या करूँ, यह पूजा, शयन, आताप लूँ। दुनिया गिनती में गिने कि यह तो तपस्वी है—इसके लिये करे, वह वस्तु नहीं।

पूजा-लाभादिक को नहीं चाहते हुए बाह्यशयन... कायक्लेश। शरीर को आसन लगाकर ऐसे करे। **आतापन,...** गर्मी में खड़े रहना पर्वत के ऊपर जाकर ऐसे नग्नरूप से। परन्तु वह सम्यग्दर्शनसहित ऐसा होता है उन्हें। उत्तरगुण हों, उन्हें होता है।

वृक्षमूल योग धारण करना,... वृक्ष के मूल में बैठना। उन्हें—मुनि को कहीं मकान नहीं होता। वे वृक्ष की शाखा हो, बाहर बैठे। ऊपर से पानी इकट्ठा हो... वह आयेगा, पत्तों में... बड़े पत्ते हों और पानी जरा सा इकट्ठा हो वहाँ। फिर धार / प्रपात हो। **वृक्षमूल योग धारण करना इत्यादि उत्तरगुणों का पालन कर।**

भावार्थ :- शीतकाल में बाहर खुले मैदान में सोना... लो, यह शयन। सर्दी में खुल्ले मैदान में सोना। मुनि को कहीं मकान होता नहीं। उनके लिये किया हुआ उपाश्रय वह कहीं मुनि को चलता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : गुफायें बनाकर रखी हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुफायें बनायी हुई नहीं। गुफायें भी बनाकर रखी हो तो नहीं। वृक्ष के नीचे बैठे या गुफा तैयार हो वहाँ जाये। बनायी हो तो नहीं। तैयार की हो तो नहीं। साधु के लिये की हो तो नहीं। खण्डगिरि में है न। खण्डगिरि। बनाकर रखी है। ओशिका जैसा। नग्न साधु जाये। वहाँ गये थे न। खण्डगिरि, उदयगिरि। क्या कहलाता है वह? भवन। भुवनेश्वर। थे तुम? नहीं। भुवनेश्वर गये थे न। कटक की ओर, कलकत्ता से उस ओर। कलकत्ता से उस ओर, कटक की ओर। कटक से लोग आये थे वहाँ हम गये थे तो। वे वहाँ गुफायें हैं पर्वत के ऊपर। परन्तु वह सब पत्थर ओशिका जैसा किया। ऐसे ... देखे... बनाया हुआ था। उस बनायी हुई चीज़ को साधु प्रयोग करे नहीं। ऐसी बातें हैं। यह तो नग्नमुनि की बात चलती है, हों!

शीतकाल में बाहर खुले मैदान में... सोवे। ओहोहो! कहीं दीवार की आड़ न हो, वृक्ष की आड़ न हो। खुल्ला। सम्यग्दर्शन अनुभवसहित जहाँ मुनिपना प्रगट हुआ है... आहाहा! उन्हें ऐसे उत्तरगुण होते हैं। ऐसे उत्तरगुण धारण करे। आहाहा! **ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर सूर्यसन्मुख आतापनयोग धरना,...** सूर्य के सन्मुख (मुख) रखकर ... यह आत्मा के अनुभवसहित, सम्यग्दर्शनसहित की बात है। उसके बिना तो

बहुत आताप करते हैं अभी। आहाहा! पश्चात् तीसरा। **वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे...** वृक्ष-झाड़ के नीचे **योग धरना, जहाँ बूँदें वृक्ष पर गिरने के बाद एकत्र होकर शरीर पर गिरें।** देखो! पानी के बिन्दु वृक्ष के ऊपर पड़ने से **एकत्र होकर...** वहाँ इकट्ठे हों। बड़े पत्ते आदि हो न अथवा वृक्ष की डाली हो डाली, ऐसे आड़ी डाली हो, उसमें पानी इकट्ठा हो थोड़ा। ऐसे सपाट हो थोड़ा, फिर नीचे गिरे। आहाहा! ऐसा मुनि का मार्ग। यह उत्तरगुण ऐसे होते हैं, कहते हैं। आहाहा! **जहाँ बूँदें वृक्ष पर गिरने के बाद...** ऐसा। वृक्ष के ऊपर वर्षा के बिन्दु पड़े हैं। फिर एकत्र हो वहाँ इकट्ठे हों। फिर **शरीर पर गिरें।** फिर शरीर के ऊपर (पड़ें) वहाँ से। कहीं अधिक तो समाये नहीं। डाली हो, पत्ते हों, धड़ाधड़ धड़ाधड़ सिर पर। वहाँ आनन्द में रहे। आहाहा! मुनिपना बापू! सूक्ष्म बात है। मुनिपना तो परमेश्वरपद है। आहाहा! जिसे गणधर नमस्कार करें। णमो लोए सव्वसाहूणं।

मुमुक्षु : पानी गिरे उसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई अचेत भी होता है। कोई अचेत होता है। कहेंगे।

कुछ प्रासुक का भी संकल्प है... देखो! देखो अन्दर। **इसमें कुछ प्रासुक का भी संकल्प है...** कोई प्रासुक भी होता है। इकट्ठा हुआ हो न कड़वाहट और ऐसे वृक्ष हों ... छाल में पानी भर गया हो। अचेत हो गया हो। सब लिखा है एक-एक बात को। बहुत सरस बात। बिन्दु ऊपर गिरे, थोड़ी देर इकट्ठे हों, फिर नीचे पड़े, उसमें कोई संकल्प अचेत का भी हो, अचेत भी हो कोई, ऐसा। इतने बोल तो प्रयोग किये हैं। वृक्ष के ऊपर पानी की बिन्दु गिरे न झपट से। वृक्ष से टकराकर कोई पानी अचेतन भी हो जाये। और थोड़ी देर रहे छाल के ऊपर तो भी अचेतन (हो) कोई। कुछ कहा न? **कुछ प्रासुक का भी संकल्प है...** आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी ने भी जिस शैली से जो भाव बतलाना है न, उस भाव का चितार व्यवस्थित रखा ऐसे।

और बाधा बहुत है,... ऐसा कहते हैं। धड़ाधड़ पड़े टप... टप... टप... ऊपर। एक के बाद एक धारा। वृक्षमूल में बैठे हों मुनि। आहाहा! यह मुनि के सम्यग्दर्शनसहित उत्तरगुण कहे जाते हैं। उसे जानना तो चाहिए कि मुनिपना कैसा होता है? उसे मुनि कहते हैं। यह तो कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! **इनको आदि लेकर यह उत्तरगुण**

हैं,... ऐसा कि यह सब। मूलगुण वे अट्ठाईस। यह सब उत्तरगुण हैं। **इनका पालन भी भाव शुद्ध करके करना।** यह सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द के स्वादसहित ऐसा करना उत्तरगुण, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नये लोगों को तो ऐसा लगे कि यह ऐसा क्या यह वह? मार्ग ऐसा ही अनादि का है। लोगों ने सब बदल डाला है। समझ में आया? यह सब शास्त्र कल्पित बनाये। साधु को वस्त्र चलते हैं और पात्र चलते हैं। यह सब कल्पित शास्त्र हैं, भगवान के कहे हुए नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

भगवान की कही हुई तो यह बात है। दो-दो हजार वर्ष पहले की बातें, इसलिए लोग कुछ खोज करें नहीं। दो हजार वर्ष पहले सब निकल गये। दो फिरके पड़ गये। दिगम्बर में से श्वेताम्बर पंथ दो हजार वर्ष पहले निकल गया। फिर उन्होंने १५०० वर्ष पहले यह शास्त्र रचे यहाँ वल्लभीपुर (में)। वळा... वळा। ... वहाँ मन्दिर है। उसने रचे थे सब। संग्रहकर्ता देवधिगण, ऐसा लिखा है उसमें। प्रत्येक ग्रन्थ का नाम संग्रहकर्ता। जैनधर्मसार में। आचारांग के संग्रहकर्ता देवधिगण। वल्लभीपुर में वळा में यह श्वेताम्बर साधु इकट्ठे हुए और एक रानी थी, उसे यह बाहर का नग्नपने की अपेक्षा ठीक लगा। उसके उसमें फिर सब शास्त्र रचे। ९८०। भगवान के बाद। यह आचारांग, सूयगडांग, दश अवतार, सब वहाँ रचे हैं। उसमें फिर कल्पित कथायें और कल्पित तत्त्व की बातें रखीं। यह भगवान का मार्ग और भगवान के कहे हुए नहीं। ऐई! जादवजीभाई! कठिन बातें, भाई!

भावशुद्धि बिना करे तो तत्काल बिगड़े... जिसे आत्मदर्शन (नहीं), आत्मा ही जिसने देखा नहीं, आत्मा अनुभव किया नहीं, आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसका जिसे स्पर्श नहीं हुआ, उस बिना के यह सब लिंग लेकर बैठे, नग्नपने की बात है यह, हों! वस्त्रसहित है, वह तो लिंग भी कुलिंग है और दृष्टि भी खोटी है। आहाहा! कठिन काम, बापू! परन्तु यह तो जंगल है। इसमें कहीं अब कोई... वरना वाड़ा में तो रहने न दे। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ने कही हुई यह चीज़ है, बाकी सब कल्पित बातें हैं।

शुद्ध करके करने का उपदेश है। है? **भावशुद्धि बिना करे तो तत्काल बिगड़े और फल कुछ नहीं है, इसलिए भाव शुद्ध करके करने का उपदेश है। ऐसा न जानना**

कि इनको बाह्य में करने का निषेध करते हैं। ऐसे उत्तरगुणों का निषेध करते हैं, ऐसा नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शनसहित ऐसा हो, ऐसा कहते हैं। **इनको भी करना और भाव भी शुद्ध करना...** आहाहा! प्रथम में प्रथम तो सम्यग्दर्शनरूपी भाव शुद्ध करना। फिर दूसरी बात। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह करना और फिर यह भी करना, उसमें कहाँ बाधा है?

केवल पूजा-लाभादि के लिये, अपना बड़प्पन दिखाने के लिये करे... पूजा, दुनिया माने, लाभ दे, कुछ शिष्यों का लाभ हो, इज्जत बढ़े और महिमा दिखलाने को, अपनी महिमा दिखलाने के लिये ऐसा करे, **कुछ फल (लाभ) की प्राप्ति नहीं है।** कोई फल नहीं। आत्मा को धर्म का फल नहीं, ऐसा। ऐसे संसार का फल है भटकने का। आहाहा! मार्ग तो सुनने में कठिन पड़े ऐसा है। भाना तो और एक ओर रहा। आहाहा! जिनेश्वरदेव का मार्ग ऐसा है भाई! यह 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायर का नहीं काम वहाँ।' हरि अर्थात् आत्मा, हों! आहाहा! वीरों का काम है, यह तो कहते हैं। कायर के कलेजे काँप जायें, ऐसा मार्ग है यह। उसकी पहिचान तो कर, कहते हैं, श्रद्धा तो कर पहले। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ११४

आगे तत्त्व की भावना करने का उपदेश करते हैं :— अब नौ तत्त्व।

भावहि पढमं तच्चं बिदियं तदियं चउत्थ पंचमयं।
तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं॥११४॥

अर्थ :- हे मुने! तू प्रथम जो जीवतत्त्व उसका चिन्तवन कर,... यह भगवान आत्माकी विचारणा कर कि कौन है यह? क्या है यह? भान तो हुआ है, परन्तु अभी उसकी विशेष विचारणा (कर), ऐसा कहते हैं। ज्ञान-दर्शनस्वरूप है। आयेगा अन्दर। जीव दर्शन-ज्ञानमय चेतनास्वरूप है। वह तो देखना और जाननेस्वरूप से है भगवान आत्मा। उसमें दया, दान, व्रत, के परिणाम उठें, वह आत्मा नहीं, वह तो आस्रव है। वह

आस्रवतत्त्व में जाता है, जीवतत्त्व नहीं। आहाहा! यह शरीर आदि अजीवतत्त्व में जाते हैं। वह आत्मा नहीं। आत्मा तो सामान्य जीव... भावार्थ में है न? **प्रथम जीवतत्त्व की भावना तो सामान्य जीव दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है,...** यह तो जाननेवाला-देखनेवाला, जाननेवाला-देखनेवाला, ऐसी जिसकी चैतन्यस्वरूप दशा है। आहाहा! जगत का दृष्टा, ज्ञेय का ज्ञाता, ऐसा उसका स्वरूप है। कोई जगत की चीज़ को रचे, रखे या उत्पन्न करे या रक्षा करे, ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहाहा! परजीव की दया पाले, ऐसा स्वरूप में नहीं, कहते हैं। वह तो ज्ञानस्वरूप, दर्शनस्वरूप है। जाने कि यह हुआ और ऐसा होता है, उसे जाने। आहाहा! कठिन काम, भाई! वे कहें कि धर्म को शोधकर... निकाला। जीव दया बिन धर्म न होई। ऐसा आता है। 'ढूंढत ढूंढत ढूंढ लियो सब वेद पुराण कुरान मैं जोई।' सम्प्रदाय में दीक्षा लेने से पहले सब पढ़ा हुआ है। ऐसा है। यह सब ढूंढिया क्यों नाम पड़ा ऐसा। 'ढूंढत ढूंढत ढूंढ लियो सब वेद पुराण'... ढूंढत है तब यह चीज़ पावत, बिन ढूंढे नहि पावत कोई। ढूंढत है तब यह चीज पावत, बिन ढूंढे नहीं... जीवदया बिन धर्म न होई।' लो, ऐसा फिर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर जीव की। यह शब्द पड़ा है। ... जीवदया बिना धर्म न होई। यहाँ कहते हैं कि यह बात ही सब खोटी है। आत्मा चैतन्यमूर्ति ज्ञानदर्शन की रक्षा करना अपनी, वह धर्म है। पर की कौन रक्षा करे? उसका तो आयुष्य हो बचे और न हो तो मरे। वह तो उसके कारण से है। तेरे कारण से बचे और मरे—ऐसा है नहीं। बात-बात में अन्तर है। वह कहते हैं न कि 'माणस कहे परमानंदा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे अने एक त्रांबाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तुझे और मेरे बात-बात में अन्तर, भगवान! भाई! आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

प्रथम जो जीवतत्त्व उसका चिन्तन कर... यह ज्ञान। देखा! **उसकी भावना करना। पीछे ऐसा मैं हूँ, इस प्रकार आत्मतत्त्व की भावना करना।** यह जीवतत्त्व ही ऐसा होता है, वह मैं हूँ, ऐसा मैं हूँ। ऐसा मैं। ज्ञान और दर्शनस्वरूप जो आत्मा है, वह जीवतत्त्व। पश्चात् वह मैं हूँ ऐसा। जाननेवाला-देखनेवाला ऐसा जीवतत्त्व वह मैं हूँ। अजीवतत्त्व मैं नहीं, पुण्य-पाप के परिणाम दया, दान के, वह मैं नहीं। आहाहा! समझ

में आया? वह लड़का कहता था (कि) परन्तु यह नयी पीढ़ी को कठोर पड़ता है। काल नहीं कहता था? परसों प्रश्न हुआ था। जवान आया था न उस संघ में से। नयी पीढ़ी को कठोर पड़ता है। नयी-पुरानी पीढ़ी ही कहाँ थी? सब आत्मायें हैं और यह आत्मा की बात है। यहाँ कहाँ नया... ? दस वर्ष का लड़का, इसलिए बालक है, ६० वर्ष का, ८० वर्ष का, इसलिए वृद्ध है। यह तो शरीर की दशा की बात है। आत्मा को कहा है बालकपना, वृद्ध (पना) ? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! उसे बाल भी नहीं, वृद्ध भी नहीं, जवान नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक नहीं, ढोर नहीं, नारकी नहीं, वह तो आत्मा चैतन्यस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

पीछे ऐसा मैं हूँ इस प्रकार आत्मतत्त्व की भावना करना। लो! आहाहा! **द्वितीय अजीवतत्त्व का चिन्तन कर,...** अन्दर आयेगा। **तृतीय आस्रवतत्त्व का चिन्तन कर,...** यह पुण्य-पाप का भाव, वह आस्रवतत्त्व है। **चतुर्थ बन्धतत्त्व का चिन्तन कर,...** पुण्य-पाप से बन्धन होता है। **पंचम संवरतत्त्व का चिन्तन कर...** यह आत्मा आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर जो शुद्धता प्रगट हो, उसे संवरतत्त्व कहते हैं। संवर, यह लोग करके बैठे, वह संवर नहीं। अन्तर आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन करके पश्चात् स्वरूप में एकाग्र होना और उसके कारण शुद्धता आनन्द आदि की प्रगट हो, उसे भगवान संवर कहते हैं। ऐसे संवरतत्त्व का विचार करना।

और त्रिकरण अर्थात् मन-वचन-काया से, कृत-कारित-अनुमोदना से शुद्ध होकर आत्मस्वरूप का चिन्तन कर,... आहाहा! **जो आत्मा अनादिनिधन है...** यह आत्मा तो अनादि-अनन्त है। **और त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम इनको हरनेवाला है।** धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् पैसा, काम अर्थात् भोग, इन तीन का नाश करनेवाला भगवान आत्मा है।

मुमुक्षु : पैसे का भी नाश करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे की ममता का नाश, ऐसा। लो, विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल १२, शनिवार, ०१-०६-१९७४
गाथा - ११४ से ११५, प्रवचन-१६२

नोट :- यह प्रवचन ३०.५५ मिनिट का ही उपलब्ध है।

भावपाहुड़। ११४ गाथा। भावार्थ है। नौ तत्त्व की भावना करना, ऐसा। पाठ में तो ऐसा है न '**भावहि**'। पश्चात् इसका अर्थ चिन्तन करना। **प्रथम जीवतत्त्व की भावना तो...** जीवतत्त्व कैसा है, कहते हैं कि उसकी भावना कैसी करना? **सामान्य जीव दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है,...** सामान्य जीव। विशेष पर्याय नहीं, परन्तु सामान्य वस्तु। **जीव दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है,...** सामान्य स्वरूप त्रिकाल, **उसकी भावना करना।** लो, यहाँ तो सीधे उठाया सामान्य। सामान्य वस्तु जो है एकरूप ज्ञान-दर्शन चैतन्यस्वरूप, उसकी भावना, उसका चिन्तवन अथवा उसमें एकाग्रता करना। **पीछे ऐसा मैं हूँ, इस प्रकार आत्मतत्त्व की भावना करना।** यह मैं हूँ, ऐसा। सामान्य जो ज्ञान-दर्शन चेतनास्वरूप है, वह मैं आत्मा हूँ, ऐसा। **ऐसा मैं हूँ, इस प्रकार आत्मतत्त्व की भावना करना।**

दूसरा अजीवतत्त्व है, सो सामान्य अचेतन जड़ है, यह पाँच भेदरूप पुद्गल,... पाँच भेदरूप, उनके पाँच नाम अलग। **पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल हैं इनका विचार करना।** यह पुद्गल (में) यह शरीर, वाणी, कर्म सब आ गया। वे सब अजीवतत्त्व हैं। उस अजीव की भावना करना कि **वह मैं नहीं हूँ।** ऐसा। सामान्य चैतन्य दर्शन-ज्ञानमयी, वह मैं और यह अजीव, वह मैं नहीं। ऐसे पाँचों ही अजीव अर्थात् शरीर मैं नहीं, वाणी मैं नहीं, कर्म मैं नहीं, पैसा नहीं, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, यह शरीर आदि मैं नहीं, उनका आत्मा, वह मैं नहीं। आहाहा! **वह मैं नहीं हूँ।** लो!

तीसरा आस्रवतत्त्व है, वह जीव-पुद्गल के संयोगजनित भाव हैं,... व्याख्या की। जीव भगवान आत्मा और कर्म। **पुद्गल के संयोगजनित भाव हैं, इनमें अनादि कर्मसम्बन्ध से जीव के भाव...** अनादि कर्म के सम्बन्ध से जीव के भाव। **(भाव-**

आस्त्रव) तो राग-द्वेष-मोह हैं... राग, द्वेष और मिथ्याश्रद्धा, वह अनादि कर्म के सम्बन्ध से हुआ अपना भाव—उस आस्त्रव की भावना कर। भावना शब्द से विचारणा। कि यह तो आस्त्रवतत्त्व है। आहाहा! शुभाशुभभाव, वह आस्त्रवतत्त्व है। ऐसे तीसरे तत्त्व का विचार करना।

और अजीव पुद्गल के भावकर्म के उदयरूप... अब अजीव जो पुद्गलकर्म जड़, उसका भावकर्म, उसका भावकर्म जड़ का। **उदयरूप मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग द्रव्यास्त्रव है।** जड़ का उदय है न अन्दर, उसे यहाँ अजीव आस्त्रव कहा। **भावकर्म के उदयरूप...** भावकर्म कौन? वह जड़ के, हों! **मिथ्यात्व,...** अर्थात् कर्म में दर्शनमोह का उदय **अविरत,...** चारित्रमोह का उदय। **कषाय...** भी चारित्रमोह का उदय **और योग...** शरीर नामप्रकृति के उदय से जो योग। वह **द्रव्यास्त्रव है। इनकी भावना करना कि ये मुझे होते हैं,...** यह डाला है अन्दर। **(-असद्भूतव्यवहारनय अपेक्षा)...** लिखनेवाले ने लिखा है, भाई का नहीं। पण्डित जयचन्द्रजी का नहीं। मेरा होता है अर्थात् मेरे सम्बन्ध में होता है, ऐसा। वरना वह है तो जड़। **मुझे होते हैं...** ऐसा है न शब्द? इसलिए मेरे सम्बन्ध में वह जड़कर्म का उदय होता है।

(अशुद्ध निश्चय से) राग-द्वेष-मोह भाव मेरे हैं,... पुण्य और पाप तथा मिथ्या भ्रमणा, वे सब भाव मेरे हैं। **इनसे कर्मों का बन्ध होता है,...** इनसे तो नये कर्म का बन्ध होता है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप। लोगों ने राग की व्याख्या ही स्थूल कर डाली है। एक व्यक्ति ने अभी कहा था। वह साधु आये थे न, कहा—दया, दान, वह राग। दया, दान में राग? एक जवान साधु नहीं था? यह सब प्रवृत्ति में धमाल में धर्म माने। राग है कदाचित् शुभराग हो तो। वह राग कहीं धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : धन्धा-व्यापार करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धन्धा-व्यापार नहीं? व्यवहारिक धन्धे फंसे... यह सब व्यवहारिक धन्धे फंसे, नहीं आता? कहाँ आता है, ऐई? योगसार। व्यवहारिक धन्धे फंसे... आता है। व्यवहार, यह धन्धा—व्यवहार की बात है। योगसार में आता है। सब व्यवहार के धन्धे हैं। राग के दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, तप यह सब शुभराग का धन्धा है।

मुमुक्षु : ....अब समझे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब समझे? सुनने का राग करे, वाँचने का करे। वहाँ जाये तो धर्म ही हो। बस, दरियापरी उपाश्रय जाये। धर्मस्थानक है न वह। यहाँ तो कहते हैं कि धर्मस्थान के भाव जो होते हैं, वह भाव भी राग है। आहाहा! उसे क्या है, वह तो जड़ है। आहाहा! तत्त्व की खबर नहीं होती और लोग ऐसे के ऐसे भटके चार गति में। आहाहा! वह मोह कर्मबन्ध का कारण है। राग-द्वेष पुण्य, वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव कर्मबन्ध का कारण है। आहाहा! कहो, यह यात्रा का भाव और यह सब कर्मबन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। साथ में सब लोग दस-दस हजार हों न। तब निकाला था, नहीं? बड़ी यात्रा। माणेकचन्द? माकुभाई। बड़ी, बहुत बड़ी यात्रा। तब ... थे। दस हजार लोग। चारों ओर लोग... जाये। जीमाये तो आवे दो-पाँच सौ... जीमाते थे। दस लाख का खर्च किया था तब। आहाहा! परन्तु उसमें क्या? उसमें राग को मन्द किया हो और रखा हो तो शुभ है। पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : सामायिक, प्रतिक्रमण करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी धर्म नहीं। सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रौषध न, वह तो शुभविकल्प है, राग है, वहाँ आत्मा का भान नहीं। सम्यग्दर्शन किसे कहना, उस तत्त्व की तो खबर नहीं होती। वह विकल्प है, राग है, उससे भिन्न आत्मा, उसे आत्मतत्त्व कहते हैं। यह (राग) तो आस्रवतत्त्व है। वह आस्रव पुण्य के परिणाम, उनसे तो बन्ध होगा। उनसे भिन्न पड़कर अन्दर आत्मा को पहिचाने, आत्मा को पकड़े (कि) ज्ञानस्वरूपी जीव, उसका अनुभव, वह धर्म है। आहाहा! धमाधम चली, क्या चलता है न तुम्हारे? धामधूम से धमाधम चली ज्ञान मार्ग रहा दूर। आहाहा! ज्ञानमार्ग। आत्मा चैतन्यस्वरूप है, उसमें अन्तर रमणता, यह ज्ञानमार्ग है। बाकी यह सब प्रवृत्तियों में राग मन्द हो तो पुण्य और धन्धा आदि की प्रवृत्ति में पाप का राग—दोनों बन्ध का कारण है। आहाहा!

(अशुद्ध निश्चयनय से) राग-द्वेष-मोह भाव मेरे हैं, इनसे कर्मों का बन्ध होता है, उससे संसार होता है... लो! वह शुभभाव से बन्ध होगा और उससे संसार होगा, ऐसा कहते हैं। **इसलिए इनका कर्ता न होना...** यह तो फिर कोष्ठक में लिखा है। **चौथा**

बन्धतत्त्व है। वह मैं राग-द्वेष-मोहरूप परिणमन करता हूँ, वह तो मेरी चेतना का विभाव है, ... भावबन्ध है... मैं, पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव आदि मोह **परिणमन करता हूँ, वह तो मेरी चेतना का विभाव है, इसमें जो बँधते हैं, वे पुद्गल हैं,...** भावबन्ध है, उनसे नये जड़कर्म बँधते हैं। आहाहा! सच्ची बात की खबर भी नहीं होती, अब उसे जाना कहाँ? संसारवन में भटकता चौरासी के अवतार में कहीं कोई शरण नहीं। शरण तो चैतन्यस्वरूप, चेतनास्वरूप भगवान आत्मा, वह शरण है।

इसमें जो बँधते हैं, वे पुद्गल हैं, कर्म पुद्गल हैं, कर्म पुद्गल ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार बँधता है,... लो! यह शुभ-अशुभभाव से ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म बँधते हैं। लो! शुभभाव से यह ज्ञानावरणीय बँधता है, ऐसा कहते हैं। शुभभाव से मोहनीय बँधता है। आहाहा! **वे स्वभाव-प्रकृति,...** यह प्रकृति की—कर्म की बात करते हैं। कर्म में स्वभाव होता है, अर्थात् प्रकृति होती है। कर्म का स्वभाव, वह प्रकृति। उसकी स्थिति होती है कर्म में अवधि। उसका रस होता है अनुभाग। **और प्रदेशरूप...** होवें रजकण। **चार प्रकार होकर बँधते हैं,...** यह कर्म चार प्रकार से चार प्रकार होकर बँधते हैं। आहाहा!

वे मेरे विभाव तथा पुद्गल कर्म सब हेय हैं,... कहते हैं कि मेरे पुण्य-पाप के भाव, वे विभाव और उनसे बन्धन कर्म, वह जड़ **सब हेय हैं,...** आहाहा! कहो, शुभ-अशुभभाव, वह आस्रव है और उसका बन्धन कर्म है, वह दोनों धर्मी को तो हेय है—छोड़नेयोग्य है, आदरणीय नहीं। **संसार के कारण हैं,...** आहाहा! यह शुभ और अशुभभाव तथा मिथ्यात्वभाव, वह आस्रव है, नये बन्ध का कारण है, संसाररूप है, वह संसार का कारण है। आहाहा! **मुझे राग-द्वेष मोहरूप नहीं होना है, इस प्रकार भावना करना।** लो! आहाहा! भारी सूक्ष्म मार्ग न, इसलिए लोगों को पकड़ में नहीं आता, इसलिए धमाधम में चले गये। दस लाख खर्च करके यात्रा निकाले तो मानो ओहोहो! वह माला पहनावे उसे क्या कहा? मोक्षमाला? माला पहनावे मुक्ति की। मुक्ति की माला। धूल भी नहीं। बन्धन की माला है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया, पूरा हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : माला तो संसार की....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो माला पहनावे, तब ऐसा कि हम बहुत धर्म करते हैं। बड़े संघवी होकर तुमको यह मोक्ष की (माला पहनाते हैं)। वह बेचारा प्रसन्न हो जाये। बुद्धि स्थूल हो, पैसा कुछ पाँच-पच्चीस हजार खर्च किये हों। लो, मोक्ष की माला दी अपने को। उस कहनेवाले को उसे क्या है बेचारा? वह कहाँ भटकेगा, यह खबर है? मोहन मोती थे न अपने गढडा में। मोहन मोती थे। थे स्वामीनारायण। परन्तु यहाँ का प्रेम था। उनके साधु उसे (कहे)। ऐई! मोहनभाई! तुम तो वैकुण्ठ में मोक्ष जानेवाले हो, बहुत तुम जानो। परन्तु तुमने तुम्हारा जाना कुछ? ऐसे के ऐसे सर्वत्र। तुम कहाँ जाओगे यह निश्चित किया? वह क्या कहे? ऐसा कहाँ से निकाला? जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : गढडा .... वैकुण्ठ में जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वे कहें कि सम्मेदशिखर का जीव हो, वह चाहे जो हो, वह मोक्ष जाये। वहाँ वनस्पति उगी हो वहाँ की, वह जीव मोक्ष जाये। यह वह कुछ... आहाहा! अरे! बापू! मोक्ष अर्थात् क्या? आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु का आश्रय लिये बिना मोक्ष का मार्ग कभी होता नहीं। बाहर के आश्रय से मोक्ष का मार्ग नहीं बनता, प्रगट नहीं होता। आहाहा! बहिर्मुख वृत्ति है, बहिर्मुख दृष्टि है, उसमें तो बहिरात्मपना है। आहाहा! अन्तर स्वरूप चैतन्य ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु, उसे अन्तर अवलम्बकर आश्रय करके जो निर्मल संवर-निर्जरा की शुद्ध पर्याय हो, वह धर्म और मोक्ष का मार्ग है, बाकी सब बातें हैं। आहाहा! उसकी समझण में तो बदले कि मार्ग तो यह है। आहाहा! ऐसी भावना करनी, लो!

पाँचवाँ संवरतत्त्व है, वह राग-द्वेष-मोहरूप जीव के (परिणाम) विभाव हैं, उनका न होना... लो! आहाहा! शुभभाव भी नहीं होना, उसका नाम संवर है। **राग-द्वेष-मोहरूप जीव के विभाव हैं, उनका न होना...** विभाव न होना—विभाव का न होना **और दर्शन-ज्ञानरूप चेतनाभाव स्थिर होना...** जानने और देखने का चेतनाभाव जानने का भाव। ऐसे स्वरूप में स्थिर होना, **यह संवर है,...** जामनगर में तो बहुत होता

है संवर अष्टमी और पंचमी को। कितने ही तो दुकान का सब काम करके देरी से आवे आठ बजे। फिर प्रौषध करे आठ बजे। ढसरडा (अर्थात्) रूढ़ि-रूढ़ि ऐसी कर डाली है न।

यह संवर है, वह अपना भाव है... देखा! जानने-देखने का जो स्वभाव चैतन्य का, उसमें एकाग्र होकर राग की उत्पत्ति न होकर अरागी स्वभाव की पर्याय उत्पन्न हो, वह मेरा स्वभाव है। वे मेरे परिणाम हैं। आहाहा! वह अपना भाव है, अपना भाव है। रागादि भाव, वह अपना भाव नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **वह अपना भाव है और इसी से पुद्गलकर्मजनित भ्रमण मिटता है।** लो! संवर। यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया पालने का भाव, वह राग, वह हिंसा है। आहाहा! गजब बात है। पर की दया का भाव, वह अपनी हिंसा। अब यह वह कहाँ मिलान करना जगत के साथ। आहाहा! वे कहें कि जीव की दया पालो, छह काय की दया पालो। बस, तुम्हारे धर्म।

मुमुक्षु : स्वयं को स्वीकार किया या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं नहीं, पर की बात है। हमारे हीराजी महाराज बेचारे अहिंसा की बात करे। अहिंसा समयं ते... भाई! भगवान ने तो, पर की हिंसा नहीं करना, यह अहिंसा—यह सिद्धान्त का सार है। यह जाना, उसने सब जाना, ऐसा। एतावतं... लो, जानना, उसमें सब यह आ गया? पर की दया, वह धर्म आया। अब उसमें क्या? यह चूड़ा में जाये तो सब लोग आवे हीराजी महाराज के सामने। सभी तेरापंथी, यह रायचन्द गाँधी कैसे? गाँधी नहीं गोसलिया। रायचन्द गोसलिया। तेरापंथी, वह आवे, उसमें हीराजी महाराज में आवे। हीराजी महाराज की शान्ति, कषाय मन्द।

अर्थ :- हे मुने! जब तक वह जीवादि तत्त्वों को नहीं भाता है... सब तत्त्व की बात करते हैं सातों की। छोड़नेयोग्य का भी ज्ञान तो उसका करना न बराबर? पुण्य-पाप, आस्रव-बन्ध छोड़नेयोग्य है, संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह प्रगट करनेयोग्य है। परन्तु उसकी भावना, विचारणा तो सबकी करनी न! किसे आस्रव कहना? किसे बन्ध कहना? भावबन्ध, द्रव्यबन्ध। **जीवादि तत्त्वों को नहीं भाता है...** यह नौ तत्त्व की जैसी मर्यादा है, उस प्रकार से जो अन्तर अभ्यास और भावना नहीं करता, वह **चिन्तन**

करनेयोग्य का चिन्तन नहीं करता है... चिन्तन करनेयोग्य की चिन्ता नहीं करता, ऐसा कहते हैं। नौ तत्त्व में चिन्तन करनेयोग्य है, उसका चिन्तवन नहीं करता और अचिन्तवन (रूप) दूसरे का चिन्तन करता है। संसार की बात, लड़के का विवाह होता हो अच्छे घर में। दो-पाँच-दस लाख लेकर आती हो कन्या। विचार में बैठे तो गहरा उतर जाये। घण्टे-दो घण्टे। शोभायात्रा गयी हो। लड़के की शोभायात्रा निकले न कहीं। तो साथ में न हो। वह एक ओर कौने में विचार में पड़ गया हो। बापू क्यों नहीं इसमें साथ में? ठीक बैठे होंगे अन्दर में घर में कहीं। बापू! चलो न। शोभायात्रा कहाँ गयी? शोभायात्रा गयी चौक में। चौक में अर्थात् चार गति में गया। परन्तु तुम नहीं? मैं तो भाई, विचार में चढ़ गया था कि इसका ऐसा करूँगा... इसका ऐसा करूँगा... इसका ऐसा करूँगा। आहाहा! घोड़े दौड़ावे अन्दर राग के और विकल्प के।

कहते हैं, **चिन्तन करनेयोग्य का चिन्तन नहीं करता है...** ऐसा कहते हैं और नहीं चिन्तन करनेयोग्य का चिन्तन दो-दो घड़ी, चार-चार घड़ी। आहाहा! पूरे दिन यही मन्थन करते हैं न। व्यापार कैसे हो? और पैसा कैसे मिले? पुत्री अच्छी जगह कैसे विवाह हो? लड़के को अच्छे ठिकाने की कन्या मिले। उसमें मर गया। समझ में आया? यह चिन्तवनयोग्य का चिन्तन करता नहीं, ऐसा कहते हैं। '**जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं**' ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो चिन्तवनयोग्य है पर से भिन्न करके आत्मा को और आत्मा से भिन्न करके रागादि को... आहाहा! यह चिन्तवनयोग्य तो चिन्तन करता नहीं।

जब तक जरा और मरण रहित... वहाँ तक—तब तक ऐसा। **जब तक...** यह करता नहीं। जीवादि तत्त्वों की भावना और चिन्तवन योग्य की चिन्तवना, **तब तक जरा और मरण से रहित...** ऐसा मोक्ष नहीं पावे वह। आहाहा! है न पाठ? '**जरमरणविवज्जियं**' यहाँ तो उम्र हो जहाँ ६०, ७०, ८०, ९०, १००। शरीर जीर्ण हो, बोला जाये नहीं, कमर टूटे, सहारे बिना बैठा जाये नहीं, मुख में से लार गिरे, दाँत हो नहीं, आकरी रोटी चबाये जाये नहीं। फिर बहू को कहे, कुछ बना दो न मुझे पोचा। वह कहे, परन्तु प्रतिदिन नहीं होता ऐसा पोचा करके। अपने पहुँच सके? पोचा अर्थात् हलुवा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहे परन्तु दे तो सही अब। पचेगा बाद में। फिर विवाद, फिर बाधा उठे घर में। बहू को अप्रिय लगे। फिर एक ओर जाओ तुम अब एक ओर, यहाँ नहीं अब। गोदाम में सोओ। वहाँ तुमको रोटियाँ भेजेंगे। ऐसा होता है बहुत जगह। आहाहा! कहो, जादवजीभाई! ऐसा है।

मुमुक्षु : बहू आवे तब खबर पड़े कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह सब देखा हुआ है न हमने तो सब। सुना हुआ है न। भले हम नाचे नहीं, परन्तु नाचनेवालों को देखा तो है न। यह सब ऐसा है न। हमारे घर में सब होता था न। ऐसा ही सब चलता है। हमारे शिवलालभाई की बहू मरने पड़ी।... बहिन है .... तुम कुछ करना बाद में, हों! क्योंकि तुम्हारी प्रकृति जरा वैसी है। उम्र ५२-५३ वर्ष हो गयी। पुत्र-पुत्री हो गये थे परन्तु मर गये। कुछ करना तुमको। तुमको सम्हालना मुश्किल पड़ जायेगा तुम्हें। ऐसा कह जाये। अब तुझे जाना है कहीं न, किसलिए...? वह पीछे जरा थोड़ी मेहनत की, परन्तु मिली नहीं। ५३ वर्ष में कौन मिले? दस-पन्द्रह हजार रुपये होंगे तब। ऐसे के ऐसे लोग। अन्त में बेचारी कुंवरजीभाई की बहू भद्रिक बेचारी। उनकी सेवा की। आहाहा! कषाय... कषाय... कषाय... रोग शरीर में आवे और उस प्रमाण विचारा हो नहीं। पूरे दिन पकाने में रुके या तेरी सेवा में रुके? घर में लोग न हो, दुकान में काम में लोग पड़े हों। ऐई... फिर खदबदाहट... खदबदाहट। जिसे तत्त्व की भावना और चिन्तवना योग्य का चिन्तवन किया नहीं, उसे ऐसे अवसर में जरा और मरण में मर जायेगा। आहाहा!

तब तक जरा और मरण से रहित मोक्षस्थान को नहीं पाता है। आनन्द की पूर्ण प्राप्ति, वह मोक्ष। उस तत्त्व की विचारणा और चिन्तवन योग्य के चिन्तवन में नहीं रहे तो उसे जरा-मरणरहित मोक्ष नहीं मिलेगा।

भावार्थ :- तत्त्व की भावना तो पहिले कही... पहली गाथा में नहीं? **वह चिन्तन करनेयोग्य धर्म-शुक्लध्यान का विषयभूत जो ध्येय वस्तु अपना शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनाभाव...** लो! ठीक आया। अनादि-अनन्त... भगवान आत्मा अनादि-

अनन्त दर्शन-ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है। आहाहा! आनन्द का धाम है। आहाहा! **ऐसा ही अरहन्त-सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप,...** पहले तो यह कहते हैं कि **धर्म-शुक्लध्यान का विषयभूत जो ध्येय वस्तु अपना शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनाभाव...** ध्येय तो यह है। अपना भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञानमयी वस्तु का ध्यान और उउसकी भावना में रहना।

ऐसा ही अरहन्त-सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप, उसका चिन्तवन... करना। अरिहन्त और सिद्ध। उसमें अरहन्त शब्द रखा है। **उसका चिन्तन जब तक इस आत्मा के न हो, तब तक संसार से निवृत्त होना नहीं है,...** संसार से निवृत्त नहीं होगा, भटक मरेगा चौरासी के अवतार में। आहाहा! **इसलिए तत्त्व की भावना और शुद्धस्वरूप के ध्यान का उपाय...** दो ली न! तत्त्व की विचारणा और शुद्धस्वरूप का ध्यान, वह **निरन्तर रखना, यह उपदेश है।** लो! आहाहा! करनेयोग्य तो यह भगवान आत्मा का ध्यान, उसकी विचारणा और उसमें रहना, यह करनेयोग्य है। तो जन्म-जरा मिटे, वरना मिटे, ऐसा नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल १३, रविवार, ०२-०६-१९७४
गाथा - ११६ से ११८, प्रवचन-१६३

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़। ११६ गाथा का उपोद्घात है।

★ ★ ★

गाथा - ११६

आगे कहते हैं कि पुण्य-पाप का और बन्ध-मोक्ष का कारण परिणाम ही है:—यह गाथा में कहते हैं।

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो॥११६॥

कैसा आचार्य को आधार देना पड़ता है। जैनशासन में ऐसा देखा है।

अर्थ :- पाप-पुण्य,... बन्धन में। और **बन्ध-मोक्ष का कारण परिणाम ही को कहा है।** पाप और पुण्य बँधता है, उसका मूलकारण परिणाम कहा है। बन्ध भी परिणाम है और मोक्ष भी परिणाम है। बाहर के क्रियाकाण्ड हैं, वे कहीं पुण्य और पाप तथा धर्म के परिणाम हैं, ऐसा है नहीं। **जीव के...** नीचे का डाला है थोड़ा। **मिथ्यात्व...** विपरीत मान्यता। ११७ है न, उसका स्पष्टीकरण किया है। **मिथ्यात्व,...** है न मूल ११७ में है। **मिथ्यात्व, कषाय, असंयम और योग...** विपरीत श्रद्धा, **विषय-कषाय, अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होते हैं, उनसे तो पापास्त्रव का बन्ध होता है।** उन परिणामों से पाप का बन्ध होता है। और पुण्य **परमेष्ठी की भक्ति...** लो! पंच परमेष्ठी की भक्ति। उससे पुण्य बँधता है। परमेष्ठी की भक्ति के जो परिणाम हैं, उनसे पुण्यबन्धन है। **जीवों पर दया...** दूसरे जीव के ऊपर दया, वह भी शुभभाव, पुण्यबन्धन का कारण है। ऐसे सत्य बोलना इत्यादि। **मन्दकषाय...** राग की अथवा कषाय की मन्दता और **शुभ लेश्यारूप परिणाम।** तीसरा पद शुक्ल **शुभलेश्यारूप परिणाम होते हैं, इससे पुण्यास्त्रव का बन्ध होता है।** उससे पुण्य के आस्त्रव का बन्ध होता है।

शुद्धपरिणामरहित विभावरूप परिणाम से बन्ध होता है। बन्ध की व्याख्या। शुद्ध परिणाम जो आत्मा के वीतरागी परिणाम शुद्धस्वभाव के आश्रय से जो हों, ऐसे परिणामरहित विभावरूप परिणाम—विकाररूप परिणाम, उनसे बन्ध होता है। **शुद्धभाव के सन्मुख रहना...** यह स्वयं जरा डाला है। पुण्यास्त्रव... शुद्धभाव त्रिकाली आत्मा परमानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन के सन्मुख रखना और **उसके अनुकूल शुभ परिणाम रखना...** उसकी विकल्पादि दशा शुद्ध सन्मुख (परिणति) में हो, वह शुभ परिणाम है। **अशुभ परिणाम सर्वथा दूर करना,...** यह स्वयं ने किया है। **यह उपदेश है।**

मूल तो शुद्धस्वभाव आत्मा का पुण्य-पापरहित, ऐसे स्वभाव के सन्मुख की दृष्टि रखकर उसकी सन्मुखता में जो कुछ कचाश है, उसमें शुभभाव हो, वह होता है वहाँ। अशुभभाव टालकर शुभभाव धर्मी को होता है। परन्तु उस धर्मी की दृष्टि शुद्ध के ऊपर है इसलिए। यह कहेंगे। ज्ञानी को ही पुण्यबन्धन का कारण होता है। अज्ञानी को पाप बँधता है। क्योंकि ज्ञानी को आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, श्रद्धा है, इससे उसे पुण्यशाली कहा है। सम्यग्दृष्टि को पुण्यशाली (कहा है) क्योंकि वह पुण्यबन्धन, तीर्थंकरगोत्र आदि का पुण्यबन्धन, उसके ही होता है, इसलिए उसे पुण्यशाली कहा है। मिथ्यादृष्टि को शुभभाव होने पर भी उसे पापी में गिनने में आया है। गोम्मटसार में है न? यह आगे लेंगे। इसलिए शुद्धभाव के सन्मुख रहना, त्रिकाली चैतन्य पवित्र शुद्ध के सन्मुख रहना, होना और उसे अनुकूल शुभ परिणाम, ऐसा। सम्यग्दर्शन की भूमिका में उसके अनुकूल शुभ परिणाम। तीर्थंकरगोत्र आदि बाँधे, स्वर्ग का आयुष्य बाँधे, आहारकशरीरादि ऐसे शुभ परिणाम रखना (अर्थात्) होते हैं।

अशुभ परिणाम सर्वथा दूर करना, यह उपदेश है। लो! यह जिनशासन ने देखा। जैनशासन में, लो यहाँ तो ऐसा कहा, भगवान के शासन में परिणाम से पुण्य, परिणाम से पाप, परिणाम से बन्ध, परिणाम से मोक्ष। बाहर की देह की क्रिया से कहीं पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष नहीं, ऐसा कहते हैं। देह की क्रिया से कोई हिंसा हुई, परन्तु हिंसा के परिणाम नहीं तो उसे पापबन्ध नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। परिणाम के ऊपर पूरा आधार है। शुभ परिणाम हो तो पुण्यबन्धन, अशुभ हो तो पाप। पुण्य-पाप के भाव, दोनों बन्ध का कारण और आत्मा के शुद्ध परिणाम स्वद्रव्य के आश्रय के, वह मोक्ष का कारण।

★ ★ ★

गाथा - ११७

आगे पुण्य-पाप का बन्ध जैसे भावों से होता है... यह भाव का थोड़ा अन्दर लिखा था, वह कहेंगे। **उनको कहते हैं। पहिले पाप-बन्ध के परिणाम कहते हैं :—**

मिच्छत्त तह कसायासंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं।
बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो॥११७॥

यहाँ तो मिथ्यादृष्टि जीव लिया है।

अर्थ :- मिथ्यात्व, कषाय, असंयम और योग जिसमें अशुभलेश्या पाई जाती है... जिसमें बुरे परिणाम कृष्ण, नील, कापोत—ऐसे भाव (हों)। **इस प्रकार भावों से यह जीव जिनवचन से पराङ्मुख होता है...** मूल मिथ्यादृष्टि लेना है। वीतराग के वचनों से जो पराङ्मुख है। वीतराग के वचन तो वीतरागता को बतलानेवाले हैं। वीतराग आत्मा का स्वभाव और वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अकषाय परिणाम, उसे बतलानेवाला है। उससे पराङ्मुख है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! राग से धर्म माननेवाले, शरीर की क्रिया से धर्म माननेवाले, वे सब जिनवचन से पराङ्मुख है। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की आज्ञा से वे विरुद्ध में वर्तनेवाले हैं। उसे यहाँ पापबन्धन कहा है। उसे कोई शुभभाव हो तो भी उसकी गिनती गिनी नहीं। वह प्राणी पापी ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी मुनि पापी प्राणी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अनुभव बिना पुण्य को भी पाप कहा है न! पापी ही है। सूक्ष्म बात है न, भाई!

वस्तु चैतन्यस्वरूप परमानन्द का नाथ, उसकी सन्मुखता की प्रभु की आज्ञा है। तो उसकी सन्मुखता की जिसे श्रद्धा है, उसे कहते हैं कि कोई अशुभभाव आदि हो, तो भी उसे पुण्यबन्धन विशेष हो जायेगा शुभभाव से। अशुभभाव आवे परन्तु वह आयुष्य नहीं बाँधे। वह शुभभाव आयेगा, तब ही आयुष्य बाँधेगा। आहाहा! और अज्ञानी को तो शुभभाव होने पर भी मिथ्यात्वी जिनवचन से पराङ्मुख है। वीतरागभाव की श्रद्धा से विपरीत है। उसके शुभभाव को भी पाप में ही गिनने में आया है। ऐसी बात है। वह **पराङ्मुख होता है—अशुभकर्म को बाँधता है, वह पाप ही बाँधता है।** देखा!

भावार्थ :- मिथ्यात्वभाव तत्त्वार्थ का श्रद्धानरहित परिणाम है। चैतन्यस्वरूप तत्त्वार्थ की श्रद्धा से रहित परिणाम। अजीव की श्रद्धा कि अजीव से मुझे कुछ लाभ होगा, यह तत्त्वार्थ की श्रद्धान से विपरीत; पुण्य के परिणाम से लाभ होगा, यह तत्त्वार्थ-श्रद्धान से विपरीत; देह की क्रिया से मुझे कुछ पुण्य और पाप होंगे, यह भी तत्त्वार्थ श्रद्धान से विपरीत है। इस अजीवतत्त्व से पुण्य-पाप माना। आहाहा! **कषाय क्रोधादिक (भाव) है। असंयम परद्रव्य के ग्रहणरूप है, त्यागरूप भाव नहीं,...** परद्रव्य को ग्रहण करने के त्यागरूप भाव नहीं, वह असंयम। असंयम की व्याख्या। **इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों से प्रीति...** इन्द्रियों के विषयों में प्रीति। सम्यग्दृष्टि को इन्द्रिय के विषयों में प्रीति नहीं। आहाहा! विषय होते हैं परन्तु प्रीति नहीं और इसे प्रीति है। यह पूरा अन्तर है।

और जीवों की विराधनासहित भाव हैं। जीव की विराधनासहित मारने आदि के भाव हैं। वह असंयम में जाते हैं। दो डाले न? एक तो परद्रव्य के ग्रहणरूप, त्यागरूप भाव नहीं, एक बात। पश्चात् इन्द्रियाँ और छह काय की विराधना। दो डालने के हैं न। असंयम डालना है न? इसलिए पाँच इन्द्रिय और छह काय की हिंसा, ऐसा कहना है। बारह—छह काय की हिंसा और छह यह। **असंयम परद्रव्य के ग्रहणरूप है, त्यागरूप भाव नहीं,...** इतनी बात।

अब इसकी व्याख्या कि **इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों से प्रीति और जीवों की विराधनासहित भाव है।** ऐसा। पाँच इन्द्रियाँ और छठवाँ मन, यह छह हुए और छह काय। उनके भाव—इन्द्रियों के प्रीति के भाव और जीव की विराधना का भाव, वह असंयम, ऐसा कहते हैं। उसका नाम असंयम। यहाँ तो मिथ्यादृष्टिवाले को असंयम लिया है। **योग मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों का चलना है। ये भाव जब तीव्र कषायसहित...** तीव्र कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया (लोभ) आदि। **कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्यारूप हों, तब इस जीव के पापकर्म का बन्ध होता है। पापबन्ध करनेवाला जीव कैसा है? उसके जिनवचन की श्रद्धा नहीं है।** यह बात लेनी है यहाँ। उसे पाप बँधता है मिथ्यादृष्टि को। जिसे वीतरागभाव आत्मा और वीतरागभाव की आज्ञा वर्तमान वीतरागभाव प्रगट करने की—ऐसे जिनवचन के भाव से जिसका भाव विरुद्ध है। आहाहा! वीतरागभावस्वरूप आत्मा को मानता नहीं और वीतरागी परिणति को धर्म

मानता नहीं। वह तो राग को धर्म माननेवाला है। आहाहा! वह जिनवचन से बाह्य है, पराङ्मुख है।

उसके जिनवचन की श्रद्धा नहीं है। इस विशेषण का आशय यह है कि अन्यमत के श्रद्धानी के जो कदाचित् शुभलेश्या के निमित्त से पुण्य का भी बन्ध हो तो उसको पाप ही में गिनते हैं। देखा! **अन्यमत के श्रद्धानी के जो कदाचित् शुभलेश्या के निमित्त से पुण्य का भी बन्ध हो...** सूक्ष्म बात है। उन्हें अन्यमत में डाला है न— श्वेताम्बर सथानकवासी को अन्यमत में डाला है। मोक्षमार्गप्रकाशक में और कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में। दूसरे तो ठीक, परन्तु यह भी अन्यमति, ऐसा कहते हैं। **अन्यमत के श्रद्धानी के जो कदाचित् शुभलेश्या के निमित्त से पुण्य का भी बन्ध हो तो उसको पाप ही में गिनते हैं।** आहाहा! कठिन बात।

जिनवचन पराङ्मुख का आशय **विशेषण का आशय यह है कि अन्यमत के श्रद्धानी के...** वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर की आज्ञा जिसे मान्य नहीं और वीतराग की आज्ञा से बाह्य मार्ग है। आहाहा! ऐसे को शुक्ललेश्या आदि हो, पुण्यबन्ध हो तो भी वह पाप में ही गिनने में आता है। दृष्टि विपरीत है न। आहाहा! गोम्मटसार की बात ली है।

मुमुक्षु : यह पहले कुन्दकुन्दाचार्य ने (कहा)। गोम्मटसार तो बाद में लिखा गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है। यह तो गोम्मटसार व्यवहार ग्रन्थ है, उसमें भी यह कहा है, ऐसा। वह खास बहुत परिचयवाला शास्त्र अभ्यास में लोगों को। जैनशाला में विद्वानों के लिये।

जो जिन आज्ञा में प्रवर्तता है... लो! आहाहा! जिसे जिन आज्ञा में अर्थात् आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्य, उसकी जिसे श्रद्धा-ज्ञान है, वह जिनाज्ञा में प्रवर्तता है। आहाहा! जिन की आज्ञा, स्वभाव शुद्ध चैतन्य के सन्मुख की श्रद्धा-ज्ञान और आचरण, यह जिन की आज्ञा है। यह **जिन आज्ञा में प्रवर्तता है, उसके कदाचित् पाप भी बँधे...** उसकी कुछ गिनती नहीं, ऐसा कहते हैं। **वह पुण्यजीवों की ही पंक्ति में गिना जाता है,...** देखा! वह पुण्यजीव की पंक्ति में गिनने में आता है। क्योंकि ऊँचा पुण्य समकिती को

ही बँधता है। तीर्थंकरगोत्र, सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य, आहारकशरीर आदि उत्तम प्रकृति, वह समकिती की भूमिका में बँधती है। समकित से नहीं, परन्तु समकिती की भूमिका में ही ऊँचा पुण्य बँधता है, इसलिए उसे पुण्यबन्ध कहा। तो थोड़ा पाप बाँधता है... ओहोहो! चौथे गुणस्थानवाला तो युद्ध में भी हो। परन्तु उसका पाप का बन्धन बहुत अल्प है और पुण्य बन्धन के भाव बहुत उग्र हैं। इससे उस समकिती को पुण्यवन्त प्राणी में गिनने में आया है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि को पापी जीवों में माना है... भले वह शुभ परिणाम हो। प्रवचनसार में आता है न, नहीं? ... पुण्य भाई! हल्का पुण्य बाँधे। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त उनके देव-गुरु ने कहे हुए व्रत और तप पाले तो ... ऐसा पुण्य बाँधे, बुरा पुण्य बाँधे। प्रवचनसार। आहाहा! भारी कठिन बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हल्का पुण्य। यहाँ तो इनकार ही करते हैं। हल्का पुण्य कहा है यहाँ। वह सब पाप में जाता है। प्रधानता पाप की है न! मिथ्यात्व के परिणाम हैं न! वे परिणाम सब पाप में ही जाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को पाप हो, वह पुण्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुण्य है, वह पुण्यशाली प्राणी है। आहाहा! उसे— सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव आवे, अशुभलेश्या आवे, परन्तु वहाँ आयुष्य नहीं बँधता। आयुष्य तो जब शुभभाव आयेगा, तब ही बाँधेगा। आहाहा! देखो न! करोड़ पूर्व। लाखों वर्ष, अरब वर्ष रहे, परन्तु आत्मदर्शन है और शुद्धता का भान हुआ है, उसे अशुभभाव आवे सही, परन्तु उसमें आयुष्य नहीं बाँधे, कर्म बाँधेगा वह (भी) थोड़ी स्थिति और थोड़ा रसवाला। बहुत ही थोड़ा। और आयुष्य तो जब शुभभाव आयेगा, तब ही बाँधेगा वह। नारकी में भी शुभभाव आयेगा, तब ही मनुष्य का आयुष्य बाँधेगा। देव समकिती। आहाहा! देव को भी शुभभाव आयेगा, तब ही यहाँ का मनुष्य का बाँधेगा। मनुष्य और तिर्यंच भी जब शुभभाव होगा, तब ही वह आयुष्य देव का बाँधेगा। देखो न, ऊँचा उठा है जिसे आत्मा का स्वभाव प्रगट हुआ है। वह तो संसार से निकल गया है, ऐसा कहते हैं। इसलिए उसे पुण्यवन्त प्राणी कहा जाता है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि को पापी जीवों में माना है और सम्यग्दृष्टि को पुण्यवान जीवों में माना है। देखो! उसकी भूमिका में पुण्य के परिणाम की प्रधानता मुख्यता है, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार पापबन्ध के कारण कहे।** लो! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ११८

आगे इससे उल्टा जीव... समकिती की बात है। यह मिथ्यादृष्टि की बात की।

'**तव्विवरीओ बंधइ**' वह '**जिणवयणपुरम्मुहो**' था न। उससे विपरीत यह सुलटा। तत्विपरीत अर्थात्? जिनवचन से पराङ्मुख जीव से विपरीत है यह अर्थात् जिनवचन की आज्ञा माननेवाला है। जिनवचन की आज्ञा वीतरागभाव को मनानेवाली है। आत्मा का सम्यग्दर्शन, वह भी वीतरागभाव है, आत्मा का सम्यग्ज्ञान, वह वीतरागभाव है, सम्यक्चारित्र वीतरागभाव है। वीतरागभाव की ही भगवान की आज्ञा है। आहाहा! उसे माननेवाला है और जिनवचन में पराङ्मुख से वह उल्टा है, ऐसा। जिनवचन से पराङ्मुख मिथ्यादृष्टि, उससे यह उल्टा है। आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन है, वह जिन सम्यक् है। जिन सम्यक्। चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द और वीतरागमूर्ति ऐसी मूर्ति को जिसने माना है... लो, यह बाह्य मूर्ति की अपेक्षा यह मूर्ति कहना है। बाबूभाई! ऐसे वीतरागस्वभावी आत्मा, उसे वीतरागभाव से माना है। सम्यग्दर्शन वीतरागभाव है न, रागभाव नहीं। यह जिनवचन की आज्ञा है। भगवान की यह आज्ञा है। आहाहा!

तव्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो।
दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं॥११८॥

लो! **अर्थ :- उस पूर्वोक्त जिनवचन का श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित सम्यग्दृष्टि...** आहाहा! द्रव्यलिंगी नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु जिनवचन की श्रद्धा नहीं, ऐसा कहते हैं। वैसे तो जिनवचन सच्चे हैं, ऐसा माने, परन्तु वीतरागी परिणाम वह धर्म है, ऐसा मानता नहीं। नीचे भी देखो न... मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। नौवें ग्रैवेयक जाता है तो माया से

जाता है ? माया हो तो वहाँ जा सकता नहीं। उसे व्यवहार की वीतराग की व्यवहारश्रद्धा है। है उसमें ? आता है। यह निश्चय-व्यवहार, निश्चयश्रद्धा (नहीं)। व्यवहार आज्ञा तो आता है न वह बन्ध अधिकार में ? अभव्य जिनवर कथित व्यवहार, व्रत, नियम आदि मानता है, जानता है। परन्तु उसका हेतु वहाँ राग के ऊपर है, और दृष्टि यहाँ अरागी नहीं। भले उसको भोग का हेतु नहीं, परन्तु वह राग का भोग है न ? राग का भोग। वही उसकी दृष्टि वहाँ पड़ी है, हेतु। अनुकूल भोग मिले, इसलिए करे, वह तो फिर पाप में जाये। परन्तु जिसे राग का हेतु है बन्धन में, वह भी भोग का ही हेतु है। स्वभाव का भोग का अनुभव का नहीं, ऐसा। चैतन्यस्वभाव आनन्दस्वरूप के अनुभव का भोग का नहीं, (परन्तु) राग के भोग का है। वह तो बन्ध के भोग का (भाव है)। आहाहा!

जिनवचन का श्रद्धानी... व्यवहार जिनवचन की श्रद्धा तो अभव्य को भी होती है, ऐसा कहा है वहाँ। पीछे लिया छठवें में। यह तो जिन आज्ञा से व्रत, नियम पाले, ऐसा नहीं कहा वहाँ ? जिनवर ने कहे हुए। वह तो व्यवहार है। निश्चय के कहे हुए जो भाव हैं। ऐसी बात है। आहाहा! वस्तु तो अत्यन्त निर्लेप, निर्दोष पड़ी है। वीतरागभाव से उसकी श्रद्धा करे, तब उसे परमार्थ से जिनवचन की श्रद्धा हुई कहलाये। अन्य तो जिनवर ने कहे हुए व्रत, नियम तो अभव्य भी पालता है, परन्तु वह व्यवहार आज्ञा, वह परमार्थ आज्ञा नहीं। आहाहा! आज्ञा के भी दो प्रकार वापस। आहाहा! यह जिनवचन की श्रद्धावाला मिथ्यात्वरहित है। (ऐसा) यहाँ तो कहा। वहाँ तो कहा, जिनवर ने कहे हुए व्रतादि पालता है, तथापि मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : निश्चय की....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय की श्रद्धा नहीं, ऐसा कहना है। यहाँ निश्चय की है, ऐसा कहना है। समझ में आया ? गम्भीर गहरा मार्ग है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि जिनवचन के बाहर का जीव भले, कहते हैं कि कोई दया, दान, व्रत, भक्ति आदि हो उसे, तथापि उसको पापी गिनने में आया। देखो, यह बात वह कहीं! आहाहा! क्योंकि उसका फल परिणाम से तो चार गति है। आहाहा! अब यह लोगों को कठोर पड़ता है मनुष्यों को। व्रत, नियम और तप को पहले करो। मिथ्यादृष्टि भले हो,

परन्तु यह पहले करो तो उसे कोमल परिणाम होंगे। धूल भी नहीं होंगे, सुन न! आहाहा! अनन्त गुण जो हैं, वे सब वीतरागभाव से हैं। उन अनन्त गुण का पिण्ड स्वयं वीतरागभाव से तत्त्व पड़ा है। 'चैतन्य प्रतिमा हो।' आता है न श्रीमद् में, वह यह। वीतराग प्रतिमा हो, ऐसा। आत्मा में अनन्त गुण हैं, वह प्रत्येक गुण वीतरागभाव से है। ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप स्वयं वीतरागस्वरूप है। उसकी प्रतिमारूप हो (अर्थात्) वीतरागभाव से हो, ऐसा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

वीतराग की परिणति से होना, वह चैतन्य प्रतिमा कहलाता है। यह (बाह्य) प्रतिमा तो व्यवहार है। शुभभाव हो तब उसे (निमित्त) कहा जाता है। आत्मा चैतन्य प्रतिमा वीतरागमूर्ति ही है वह। और उसके परिणाम होना चैतन्य की जाति के, वह चैतन्य प्रतिमा हुई, वीतरागमूर्ति हुआ। आहाहा! वे सब जिनवचन के श्रद्धानी, मिथ्यात्वरहित हैं। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव शुभकर्म को बाँधता है जिसने कि—भावों में विशुद्धि प्राप्त की है।** एक तो शुद्धता तो है, परन्तु कषाय की मन्दता की भी विशुद्धि प्राप्ति की है। लो, यहाँ विशुद्धि आयी, ऐई! वह विशुद्धि के तीन भाग करते हैं। कषाय मन्द, विशुद्धि और संक्लेश। संक्लेश, विशुद्धि और मन्द कषाय, तीन लिये। यहाँ तो विशुद्धि उसे कहा है।

ऐसे दोनों प्रकार के जीव शुभाशुभ कर्म को बाँधते हैं,... कौन दो प्रकार के? पहले ११७ में कहा, वह मिथ्यादृष्टि अशुभ को बाँधता है वह और यहाँ सम्यग्दृष्टि शुभ को बाँधता है वह। बन्धन के प्रकार के जीव में दो ऐसे कहे। एक तो जिसे जिनवचन की श्रद्धा नहीं, राग की श्रद्धा है। जिनवचन की श्रद्धा तो वीतरागभाव की श्रद्धा करावे और सम्यक् गुणस्थान चौथे में वह वीतराग परिणाम सम्यग्दर्शन है। राग नहीं। आहाहा! पूरा संसारसमुद्र तिर जाना है, वह बात कहीं साधारण है? अन्दर का थाह लाकर संसार तिर जाना है। आहाहा! चैतन्यमूर्ति अन्दर आनन्द और शुद्धता की मूर्ति प्रभु, उसे पर्याय में उसका थाह लाकर, आहाहा। उसका नमूना पर्याय में लाकर, ऐसा कहना है। आहाहा! उसने जिन आज्ञा मानी कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। कहो, शशीभाई! गजब बातें! यह कुँए में नहीं गिरते? वे थाह नहीं लाते? कुँआ हो और चरसा। कोश पड़े न कोश? ऐई! ऐसा देखा हुआ है उमराला में। नदी के किनारे एक बड़ा कुँआ है। अन्दर

में सर्प रहता है। परन्तु अन्दर पड़े पानी में खड़ा। अपने तो देखते, हों! हम गिरते नहीं उसमें। अपना काम नहीं, कहा, वे लोग पड़ते जवान लड़के। पड़कर ठेठ नीचे जाकर थाह ले आवे अन्दर से। बाहर मुँह निकालने में देरी लगे परन्तु हाथ ऊँचा करे ऐसा। देखो यह ले आया ठेठ तक (जाकर)। इसी प्रकार यह चैतन्यरत्न ले आवे अन्दर जाकर। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यरत्न से भरपूर समुद्र प्रभु है, उसका थाह ला थाह, कहते हैं। यह जिनवचन की आज्ञा है। आहाहा! उसकी श्रद्धा, ज्ञान में शान्ति और आनन्द का थाह आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग और यह सब बाहर से कल्पित कर बैठे हैं। और बाहर में वस्त्र... यह धर्म ही नहीं, यह विरोध है, ऐसा है, वैसा है। दया, दान, भक्ति, पूजा में धर्म मानते ही नहीं, धर्म को समझते ही नहीं, ऐसा लिखा है। चिमनचकु (ने)। पहिचानते हो भाई? चिमनलाल। वे तुम्हारे काका के मित्र हैं। सेवा में साथ में हैं वहाँ। उस घास-बास में। परन्तु छोटाभाई का जीव वह है, हों! ऐसे नरम कोमल जीव है। सुनते हुए ऐसा हो जाये हाय... हाय... अरेरे! अवतार गया। व्यर्थ गया, ऐसा बोले बेचारा, हों! अभी तक अवतार व्यर्थ गया। हमने कुछ सच्चा किया नहीं। इतनी भी अन्दर रंज आता है न अन्दर। आहाहा! बापू! यह मार्ग अलग, भाई! सुनने को मिले नहीं, वह सुनने के बाद उसकी हाँ (कब) करे कि हाँ, मार्ग तो यह है।

ऐसे दोनों प्रकार के... है न पाठ में। '**दुविहपयारं बंधइ**' कौन दो? मिथ्यादृष्टि। मिथ्यादृष्टि पाप को बाँधे, सम्यग्दृष्टि पुण्य को बाँधे। इस प्रकार से बात ली है। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन की भूमिका में ही ऊँचा यह सर्वार्थसिद्धि का क्या कहलाता है वह? अनुत्तर विमान के अतिरिक्त, हों! वह ... मिथ्यादृष्टि जाये। वह पाँच-पाँच, क्या कहा जाता है उसे?

मुमुक्षु : नौ अनुदिश।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुदिश के अतिरिक्त वह अनुत्तर पाँच अनुत्तर। वहाँ सम्यग्दृष्टि ही जाता है। उसका आयुष्य सम्यग्दृष्टि ही बाँधता है। वह नौवें ग्रैवेयक तक तो मिथ्यादृष्टि भी बाँधे। आहाहा! ऐसा पुण्य तो सम्यग्दृष्टि की भूमिका में ही बँधता है। इसलिए सम्यग्दृष्टि ही पुण्यबन्ध का कारण करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। और तीर्थंकरगोत्र

भी वह बाँधे। आहाहा! वह तो अभ्युदय यह गणधर आदि की पदवी भी ऐसे को ही होती है, ऐसा धवल में कहा है। अभ्युदय ऐसे सब। आहाहा!

ऐसे दोनों प्रकार के जीव... अर्थात् कि पहले ११७ में कहा। जिनवचन से पराङ्मुख मिथ्यादृष्टि, वह अशुभ बाँधे ऐसा। अशुभ को बाँधे। उसे वह शुभभाव आवे, उसकी गिनती नहीं गिनी। वह अशुभभाव ही गिनने में आया है। आहाहा! और यहाँ अशुभभाव समकिती को आता है आर्तध्यान, रौद्रध्यान आदि, परन्तु उसे गिनती में नहीं लिया। आहाहा! भावशुद्धि में भी नहीं। वह भावशुद्धि का अर्थ किया है लो, भाव की विशुद्धि। है न अन्तिम पद? भावशुद्धि, वह भावों से विशुद्धि, ऐसा उसका अर्थ किया है। शुद्धि का विशुद्धि किया है।

ऐसे दोनों प्रकार के जीव... जिनवचन से पराङ्मुख मिथ्यात्व सहित जीव है,... वह पाप को बाँधे। और जिनवचन से सन्मुख—पराङ्मुख से विपरीत, वह पुण्य को बाँधे। यहाँ शब्दावली बात ली है। तब यहाँ... सम्यग्दृष्टि बाँधता है पुण्य। ऐई! उसे बन्धन-आस्रव नहीं कहा... स्वभाव की अपेक्षा की दृष्टि का जो... है, उतना बन्धन नहीं। यहाँ तो कहा, समकिती ही पुण्यबन्ध का कारण, ऐसा कहा यहाँ। आहाहा! उसे ही शुभभाव भक्ति आदि का (आवे), कहा न ऊपर? परमेष्ठी की भक्ति, जीव के ऊपर दया, मन्द कषाय, शुभ लेश्यापरिणाम, वे आवे उसे। आते हैं, वह क्या है? बन्ध का कारण है। बन्ध का कारण है, वह सुख है या दुःख? सुख होगा? आहाहा! पंच परमेष्ठी की भक्ति ली। अब उसे पुण्यबन्ध कहा। वह समकिती ही बाँधे, ऐसा कहते हैं वापस यहाँ। आहाहा! गजब बात है। वीतराग की शैली सन्तों की गजब बात है। मेल खाती बात है, मेल खाती बात। गजब बात! ओहोहो! कहो, सम्यग्दृष्टि को ही पुण्यबन्ध का कारण कहा। भाई! उसे बन्धन करनेवाला नहीं, यह शैली नहीं ली यहाँ। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ही पुण्यबन्ध का कारण करनेवाला है। देखो न, कैसी बात है! आहाहा! यह विवाद लेते हैं न सब आड़ा-टेढ़ा करके। मुफ्त के, बापू! समझे बिना, भाई! आहाहा! उसने और यह जवाब दिया कि सम्यग्दृष्टि को सुख होता है या नहीं? नहीं, उसे दुःख ही होता है। रतनलालजी ने ऐसा जवाब दिया। अकेला दुःख ही होता है। तब वह दीपचन्दजी सेठिया कहे, समकिती को अकेला सुख ही होता है, दुःख जरा भी नहीं होता।

मुमुक्षु : दोनों आमने-सामने आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों आमने-सामने आये। अब दोनों आग्रह छोड़े नहीं। यहाँ तो समकिती को पुण्यबन्ध का कारण करनेवाला कहा। अबन्ध नहीं यहाँ। है तो अबन्ध स्वभाव उसका जितना प्रगट हुआ उतना। परन्तु उसे यहाँ बन्ध के प्रकार में डालना है तो अशुभ का बाँधनेवाला मिथ्यादृष्टि, शुभ का बाँधनेवाला सम्यग्दृष्टि, (ऐसा कहा)। आहाहा! क्योंकि उसे शुभ का पुण्य बँधेगा, उसका अन्त आ जायेगा और इसको अशुभ का बन्ध होगा, उसका अन्त आने का कहीं नहीं। आहाहा! समझ में आया? लोग अन्तर वस्तु जाने बिना, ऐसा का ऐसा अनुमान करके बैठे कि उसको ऐसा है और वैसा है और फलाना है। ऐसा चले?

जिसे आत्मा की शान्ति ज्ञात हुई है, उसे अशान्ति का दुःख लगे बिना रहता ही नहीं अन्दर। आहाहा! आत्मा शान्त निर्मल वीतरागमूर्ति है—ऐसी दृष्टि जिसे हुई, उसे जितना राग है, वह शुभ आदि का उसे दुःख लगे बिना रहता नहीं। क्योंकि वह आकुलता है। आहाहा! परन्तु यहाँ उसे पुण्यबन्ध के उसमें प्रधानपना पुण्यबन्धन है न उसे। समकिती पुण्यबन्ध में डाला। गोम्मटसार में यह डाला। लो! वह तो यहाँ डाला। गोम्मटसार तो बाद में हुआ है न। परन्तु यह तो व्यवहार के ग्रन्थ में यह डाला है। मिथ्यादृष्टि पापी है और सम्यग्दृष्टि पुण्यवन्त है, लो! मोक्षमार्ग में आता है, मोक्षमार्गप्रकाशक (में) वहाँ भी आता है। जिसकी विपरीत दृष्टि है, वह सबके भाव कोई शुभ हों तो भी उसे अशुभ में ही गिनने में आया है। क्योंकि उसका योगफल अशुभ ही है। और मूल अशुभ जो मिथ्यात्व, वह तो पड़ा है, ऐसा। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि को उसके अशुभभाव आवे, परन्तु उसका योगफल शुभ में ही जाता है। आयुष्य भी उसमें बँधता है। आहाहा! भविष्य का काल रहेगा, वह शुभ के फल में रहेगा, ऐसा कहते हैं। देखो न भाषा! भविष्य में रहेगा, वह शुभ के फल में रहेगा, उसे फिर उसका अन्त आ जायेगा, केवल (ज्ञान) प्राप्त करेगा। आहाहा! समझ में आया?

यह संक्षेप से जिनभगवान ने कहा है। 'बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं' 'वज्जरियं' अर्थात् कहा। कथितं। भगवान के मुख में से वाणी में यह आया। आहाहा! जिनेश्वरदेव ने परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर ने संक्षेप में इस प्रकार से पापबन्धन करनेवाला

और पुण्यबन्धन करनेवाले के दो प्रकार वर्णन किये। आहाहा! कहो, कल्याणभाई! आहाहा! ऐसी बात है। वीतरागमार्ग में जन्मे, उसे अभी वीतरागमार्ग क्या कहता है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! और कहने जाये तो (ऐसा कहे), अकेला निश्चय एकान्त है। अरे! भाई! सुन न! यह क्या किया साथ में? निश्चय एकान्त है, उसके साथ शुभभाववाले जीव को यहाँ पुण्यवन्त कहा। व्यवहार में कहा। परन्तु ऐसा व्यवहार उसे। आहाहा! उसे ऐसे आयुष्य बँधेंगे और प्रकृति तीर्थंकरादि की बँधेगी कि जो शुभ के फल में शुभ की गति में जायेगा। अशुभभाव आयेंगे (परन्तु) उसका फल उसे अशुभगति में जायेगा, यह नहीं आयेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : आयुष्य बाँधे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आयुष्य बाँधे तो भविष्य में उसे आयुष्य शुभ के फल का रहेगा। आहाहा! आहाहा! जिसे दृष्टि निर्मल हुई है, जिसकी वीतराग पर्यायरूप से आत्मा परिणमित हुआ है। अरे! कहते हैं, भले चौथे में हो, परन्तु उसके शुभभाव में उसे पुण्य बँधकर भविष्य में रहने का आयुष्य तो उसे शुभ के आयुष्य में रहेगा। आहाहा! वह भले देव में रहेगा कदाचित् मिथ्यादृष्टि, परन्तु वह कलुषित परिणाम में रहकर वापस वहाँ से मरकर ढोर और नरक में जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

और जिन आज्ञा के भी दो प्रकार और उसके बन्धन के भी दो प्रकार। एक व्यवहार जिन आज्ञा कि यह व्रत, तप आदि जो समकितरहित, परन्तु वीतराग ने कहे हुए, व्रत, तप आदि पालन करे, तो व्यवहार से जिन आज्ञा कहा उसे। परन्तु उसे भी यहाँ पाप का बन्धन करनेवाला कहा है। समझ में आया? व्यवहार से जिन की आज्ञा प्रमाण पालता है यह व्रत, तप, संयम आदि। मिथ्यादृष्टि की आज्ञा पाले, वह और अलग। वह तो बहुत हल्का साधारण पाप। परन्तु ऐसा जो हो, उसे यहाँ तो पाप में डाला। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि जीव, आहाहा! उसे अशुभभाव आवे, स्त्री के विषय की बात, युद्ध की बात में, आहाहा! तथापि कहते हैं कि उसे भविष्य में रहना है न एक भव में, वह भव तो उसे शुभ में बँधेगा। आहाहा! वहाँ आगे रहेगा। बाहर के अनुकूल के साधन में वह रहनेवाला है। कहो, बाबूभाई! ऐसी बात है। तब वे ऐसा कहें, अरे! धूप में रहने की अपेक्षा छाया अच्छी। आता है न दो जगह? अव्रत में रहने की अपेक्षा

व्रत में (रहना) अच्छा। परन्तु व्रत किसे होते हैं? सम्यग्दर्शन अकेला उसे व्रत होंगे? सम्यग्दर्शन उपरान्त जिसे दूसरे कषाय (चौकड़ी) के अभाव में शान्ति भी प्रगट हुई है, उसे ऐसे व्रत होते हैं। इसलिए उसे अव्रत में रहने की अपेक्षा व्रत में ठीक, वह तो इस अपेक्षा से कहा है। आहाहा! कितनी अपेक्षायें परन्तु, चारों ओर सन्धि मेलवाली।

यह संक्षेप से जिन भगवान ने कहा है। है न पाठ में? '**वज्जरियं**' '**संखेपेणेव वज्जरियं**' अर्थात् संक्षेप से भगवान जिनदेव परमेश्वर ने दो प्रकार के बन्धन करनेवाले जीव का वर्णन भगवान ने कहा है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अन्यमत में रहे हुए जीव, उनके कोई शुभभाव करे, तो भी उसे पापी गिनने में आया। अरे! जैन दिगम्बर मत में रहे हुए बाहर व्यवहार से सम्प्रदाय में, परन्तु जिसे दृष्टि का भान नहीं... आहाहा! उसके व्रत, नियम के परिणाम को भी पाप में डाला है। ऐसा हुआ या नहीं? आहाहा! आता है न सातवें में (मोक्षमार्गप्रकाशक सातवें अधिकार में)? जिन आज्ञा मानता है, तथापि मिथ्यात्व का अंश रह जाता है। जिन आज्ञा अर्थात् बाहर से माने वह। अन्तर की आज्ञा जो दृष्टि है, उसकी खबर नहीं। वहाँ कहा है उन्होंने। भाई! जिन आज्ञा माने। वह आज्ञा अर्थात् व्यवहार से ऐसा मानता है। परमार्थ से जो वीतरागपने की श्रद्धा, वह उसे कहाँ है? जिन आज्ञा माने, तथापि एकान्तिक दृष्टि रह जाती है, मिथ्यात्वभाव। उसे भी यहाँ तो मिथ्यादृष्टिवाले जीव को शुभभाव हो, तो भी उसकी गिनती न गिनकर पापी में डाला। आहाहा! योगसार में कहा न! 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! यह तो वीतराग मार्ग के सब भाव हैं, इस प्रकार के।

भावार्थ :- पहिले कहा था कि जिनवचन से पराङ्मुख मिथ्यात्वसहित जीव है... ११७। **उससे विपरीत जिन आज्ञा का श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि...** अब वहाँ जिन आज्ञा मानता है, ऐसा कहा तथापि मिथ्यादृष्टि लिया भाई! सातवें अध्याय में, नहीं? यह नहीं। आहाहा! पहली शुरुआत में लिया है न सातवें में। आहाहा! पढ़ा है या नहीं चन्दूभाई मोक्षमार्गप्रकाशक? पढ़ा ही होगा न! क्यों आया नहीं तुम्हारे? आहाहा! **उससे विपरीत जिन आज्ञा का श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि जीव...** अपने मिलान करना चाहिए न? वहाँ कहा जिन आज्ञा मानता है, तथापि मिथ्यादृष्टि है। यहाँ उसरूप से कहा, जिन आज्ञा प्रमाण

पाले तो भी मिथ्यादृष्टि। वह परमार्थ से जिन आज्ञा का जो वीतरागभाव है, उसे मानता नहीं। समझ में आया? जिन आज्ञा तो वास्तव में तो वीतरागभाव की है। आहाहा! क्या हो परन्तु? लोगों को नीचे से आगे हटना नहीं। और यह नीचे का करें और व्रत, तप, भक्ति, पूजा और दान करते-करते हो जायेगा। रतिभाई! ... हो जायेगा धीरे-धीरे। लोगों को बहुत कड़क लगता है।

यहाँ तो दृष्टि के जोर के ऊपर की बात है। जिसकी दृष्टि वीतराग मार्ग से विपरीत है, वह भले शुभ हो परन्तु वह सब पापी प्राणी हैं। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव आने पर भी, उसकी मुख्यता न गिनकर शुभ की ही मुख्यता गिनकर पुण्यवन्त गिनने में आया है। आहाहा! वह पुण्य में रहनेवाला है अब वह। आहाहा!

जीव विशुद्धभाव को प्राप्त होकर,... लो, वहाँ विशुद्धि ली न। शुद्धि। **प्राप्त होकर शुभकर्म को बाँधता है,...** वहाँ विशुद्धि का अर्थ यह किया है। **शुभकर्म को बाँधता है,...** यही विशुद्धभाव को प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **क्योंकि इसके सम्यक्त्व के माहात्म्य से ऐसे उज्ज्वल भाव हैं, जिनसे मिथ्यात्व के साथ बँधनेवाली पापप्रकृतियों का अभाव है।** ४७ प्रकृति का तो बन्धन है ही नहीं। आहाहा! **कुछ तीव्र पापफल का दाता नहीं होता।** लो! **कदाचित् किंचित् कोई पापप्रकृति बँधती है, तो उसका अनुभाग मन्द होता है,...** अनुभाग—रस बहुत कम होता है। **कुछ तीव्र पापफल का दाता नहीं होता।** आहाहा! उसे दुर्गति नहीं जाना पड़ता। आहाहा! और उसमें ऐसा कहा है, भाई! समकिती दुर्गति में जाये तो भी वह कर्म को खिपाता है। वह दूसरी अपेक्षा है। योगसार। वह तो बँध गयी हे और अब जाये तो वहाँ वह छूट जायेगा। आहाहा!

इसलिए सम्यग्दृष्टि शुभकर्म ही को बाँधनेवाला है। भाषा देखो! आहाहा! **सम्यग्दृष्टि शुभकर्म ही को बाँधनेवाला है।** शुभकर्म को ही बाँधनेवाला है। उस ओर कहे कि सम्यग्दृष्टि आस्रव और बन्धरहित है। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि शुभकर्म का ही बाँधनेवाला है। क्या अपेक्षा है न! वीतराग की वाणी कैसी बात है! आहाहा! **इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्म के बन्धन का संक्षेप से विधान सर्वज्ञदेव ने कहा है,...** सर्वज्ञ परमेश्वर ने यह कहा है, लो! आहाहा! **वह जानना चाहिए।** भगवान ने ऐसा कहा है, वह जानना चाहिए। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल १४, सोमवार, ०३-०६-१९७४
गाथा - ११९ , प्रवचन-१६४

गाथा - ११९

११९ गाथा है। **आगे कहते हैं कि हे मुने! तू ऐसी भावना कर :—** सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् मुनि हो, उसे मुख्यरूप से यह उपदेश है। निर्मलभाव होने के कारण उसे गुण की पूर्णता प्राप्त होती है, उसकी यह विचारणा चलती है।

णाणावरणादीहिं य अट्ठहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं।
डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां॥११९॥

अर्थ :- हे मुनिवर! तू ऐसी भावना कर कि मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्ठित हूँ,... लो, एक ओर ऐसा कहे कि आत्मा अबद्धस्पृष्ट है। यह दृष्टि की अपेक्षा की बात है। यह पर्याय की है। समझ में आया? वस्तु स्वयं कर्म और राग के बन्धनरहित है, उस वस्तु की दृष्टि की अपेक्षा से है। अब वह वस्तुदृष्टि हुई, तथापि निर्मलता करने के लिये वह बाकी जो आठ कर्म हैं, उनका मुझे व्यवहार सम्बन्ध है, ऐसा इसे जानना चाहिए, ऐसा कहते हैं। एक ओर कहे, आत्मा अबद्धस्पृष्ट, कर्म से बँधा हुआ और स्पर्शित नहीं है। यह द्रव्यदृष्टि, वस्तुदृष्टि की अपेक्षा से बात है। परन्तु पर्याय में जब तक पूर्ण निर्मलता नहीं, तब तक कर्म के—आठ कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में पर्याय है। कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में पर्याय है, द्रव्य नहीं। समझ में आया? **तू ऐसी भावना कर...** लोगों को ऐसा लगे कि यह क्या? एक ओर ऐसा कहे, एक ओर ऐसा कहे। परन्तु अभी पर्यायनय की अपेक्षा से बात चलती है। वह जुगलकिशोर (मुख्तयार) कहते थे न, १५वीं गाथा के विवाद में। कि यह भी है, यह बन्ध-बन्ध है न। अबन्ध-अबन्ध भी, वह अबन्ध है, वह तो दृष्टि और द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से कहा। पर्याय अपेक्षा से कर्म का सम्बन्ध है, ऐसा इसे जानना चाहिए। समझ में आया?

मुमुक्षु : जैनशासन है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनशासन यह कहा। जैनशासन पर्याय है शुद्ध उपयोग वीतरागभाव। परन्तु वह तो द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से—वस्तु की अपेक्षा से और उसका विषय करनेवाली दृष्टि की अपेक्षा से तो वह आत्मा अबद्ध और अस्पृष्ट ही है। परन्तु एक बार पर्याय को जाननेवाली दृष्टि रह जाती है न। कहो, एक ओर आत्मा सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव और बन्ध को करता ही नहीं। किस अपेक्षा से? दृष्टि और स्वभाव की अपेक्षा की बात है। लालचन्दभाई! बहुत सूक्ष्म बातें यह।

अरे! जन्म-जरा-मरण में दुःखी है, यह चौरासी के अवतार में। इसे कहीं शान्ति, सुख है नहीं। शान्ति और सुख का धाम तो प्रभु है। आहाहा! वहाँ दृष्टि करे, वहाँ लीनता करे तो वहाँ शान्ति और सुख मिले। इतना होने पर भी पूर्ण शान्ति और पूर्ण सुख जहाँ नहीं, (वहाँ) उसे पर्याय में आठ कर्म के सम्बन्ध का दुःख है। समझ में आया? यहाँ तो कहा न, देखो! '**अहं**' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। **मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्ठित हूँ,...** १४-१५ (गाथा समयसार) में कहा कि मैं कर्म के बन्ध के सम्बन्धरहित हूँ। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : यह भी मैं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी मैं कहा। परन्तु किस अपेक्षा से मैं कहा? त्रिकाल वस्तु जो शुद्ध है, उसका पर्याय में भान हुआ, वह भानवाला ऐसा कहता है कि मैं तो त्रिकाल अबद्धस्पृष्ट हूँ। आहाहा! और वही भानवाला पर्याय को देखने पर कहते हैं कि आहाहा! कहो, चेतनजी! ऐसी बात करना उसे। दो नय का मेल रखना चाहिए न। दूसरे नय का विषय नहीं? कर्म का सम्बन्ध है पर्याय में, वह व्यवहारनय का विषय है, परन्तु उस व्यवहारनय के आश्रय से धर्म नहीं। धर्म नहीं, इसलिए उसका विषय (व्यवहारनय का) नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहारनय है....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार भी है या नहीं?

मुमुक्षु : व्यवहार से कहो, उपचार से कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार से अर्थात्? व्यवहार से कहो या उपचार से है। है या

नहीं? नहीं तब? है न उपचार। कर्म के निमित्त का सम्बन्ध पर्याय के साथ है या नहीं? व्यवहार है एक जाति का, वह है या नहीं? है। कैसी शैली है, देखो न! आहाहा! यहाँ तो भावलिंगी मुनि हुआ है, सम्यग्दृष्टि है, अबद्धस्पृष्ट तो वह ध्येय तो पड़ा ही है। वह तो चलता ही है। आहाहा! यहाँ तो पर्याय में जो कचाश है और उस पर्याय को कर्म के निमित्त के साथ सम्बन्ध है, वही व्यवहार है। परन्तु है न?

मुमुक्षु : उसका अभाव करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, उसका अभाव करना है या न हो उसका? कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...कहाँ है? कर्म का सम्बन्ध है, उतना पर्याय में विकार और अल्पता है या नहीं? कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में उसकी अल्पता और विपरीतता का भाव है या नहीं? वही पर्याय को देखता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान उसे देखता है। कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में ज्ञान, दर्शन, वीर्य की हीनता और रागादि चारित्र में विपरीतता। लो! आहाहा! यह वीतरागमार्ग तो कण-कण में विवेक बताता है। ऐसा ही मान ले कि मैं सर्वथा अबद्धस्पृष्ट हूँ, पर्याय में भी अबद्धस्पृष्ट हो गया—ऐसा नहीं, यह कहते हैं। पर्याय में अबद्धस्पृष्ट नहीं हो गया अभी। दृष्टि की अपेक्षा से द्रव्यस्वभाव से अबद्धस्पृष्ट हुआ। आहाहा! देखो न, वीतराग का धर्म!

भाई! तुझे शुद्धता पूर्ण करनी है, शुद्धता पूरी करनी है। और पूर्ण शुद्धता नहीं, वहाँ अशुद्धता है और अशुद्धता है, वह कर्म के सम्बन्ध में अशुद्धता है। कर्म तो जड़ है। उसके कारण से नहीं परन्तु उसके सम्बन्ध के कारण, ऐसा। उसका लक्ष्य किया है न उतना। इतना पर्याय में बद्धस्पृष्टभाव, अशुद्धभाव, दुःखरूपभाव, विपरीत रागरूपभाव है। आहाहा! लो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। वहाँ कहते हैं कि अबद्धस्पृष्ट, वह जैनशासन है। यह कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ कहते हैं कि पर्याय में अशुद्धता और अपूर्णता है। अशुद्धता अर्थात् विपरीतता। अपूर्णता अर्थात् ज्ञान, दर्शन और वीर्य की अपूर्णता। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग के अतिरिक्त (कहीं नहीं)। कण-कण का विवेक। आहाहा!

भाई! तुझे दृष्टि में तो स्वभाव की अपेक्षा से तो अबद्धस्पृष्ट का तो अनुभव हुआ, परन्तु अब अनुभव में पर्याय की पूर्णता है? उसकी यह बात करते हैं। समझ में आया? यह वस्तु पूर्ण है, वस्तु पूर्ण है, उसकी दृष्टि हुई, परन्तु पर्याय पूर्ण है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सब समझना और यह सब... लो! लालचन्दभाई! यह सेठियाओं को धन्धे के कारण समय मिलता नहीं। परन्तु (समय) देना पड़ेगा न इन्हें। आहाहा!

द्रव्यस्वभाव की अपेक्ष से क्या है और पर्याय के भाव की अपेक्षा से क्या है, उसका बराबर इसे ज्ञान होना चाहिए। यदि पर्याय में अशुद्धता न हो तो शुद्धता करने के लिये प्रयत्न उसे नहीं होगा। अशुद्धता बिल्कुल न हो तो स्वभाव-सन्मुख होने का प्रयत्न नहीं होगा। स्वभाव भले अबद्धस्पृष्ट है, परन्तु उसकी ओर का प्रयत्न जो है, वह अशुद्धता को टालने का है। आहाहा! समझ में आया? यही विवाद न! शास्त्र में ऐसे आवें जहाँ बहुत कलश। समकिती को आस्रव, बन्ध है नहीं, समकिती को दुःख नहीं, वह तो सुख को ही वेदता है। भाई! किस अपेक्षा से? वह किस अपेक्षा से? आहाहा! द्रव्य के स्वभाव की... दृष्टि का विषय त्रिकाल ध्रुव है, इसलिए उसके विषय की दृष्टि राग को स्वीकारती नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु ज्ञान की पर्याय को देखनेवाली, ज्ञान का नय पर्याय जो है... आहाहा! मुझमें अशुद्धता है। मैं अहं। यहाँ अधिक... मैं अबद्ध हूँ। आहाहा! एकान्त खींचे तो त्तव का लोप हो जाये। पर्याय में अशुद्धता नहीं, ऐसा जो माने तब तो हो गया। शुद्धता पूर्ण हो गयी है?

यह तो द्रव्य के स्वभाव का भान होने के पश्चात् भी, वस्तु पूर्ण शुद्ध है परन्तु पर्याय में (पूर्ण) शुद्धता नहीं, इसलिए हे मुनि! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, लो! **'हे मुनिवर!'** और मुनिवर। पहले से चला आता है न सम्बोधन। सम्बोधन चला आता है न। **'वेढिओ य अहं'** दो कहते हैं न। तू ऐसा विचार, ऐसा कहते हैं न। तब किसे? कि मुनिवर को, ऐसा। **मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्ठित हूँ,...** ... आहाहा! और एकान्त पर्याय में भी आठ कर्म का सम्बन्ध नहीं, ऐसा माने तो वह अज्ञानी है। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अकषायकरण... अकषायकरण, हों! कुन्दकुन्दाचार्य तो स्वयं मुनि हैं न, उन्हें विकल्प आया है... वे स्वयं भी ऐसा कहते हैं कि मुझे पर्याय में अशुद्धता, अल्पता, अशुद्धता चारित्रगुण की, अल्पता ज्ञान-दर्शन-

वीर्य की, ऐसा पर्याय में है तो मैं भी मेरे आत्मा को आठ कर्म से वेष्ठित हूँ, ऐसा मैं जानता हूँ। आहाहा! मुनिवर को कहते हैं (तो) स्वयं मुनि हैं या नहीं?

इसलिए इनको भस्म करके... लो! आठ कर्म और आठ कर्म के सम्बन्ध से होती अशुद्धता का नाश करने के लिये। आहाहा! '**उन कर्मों के नाश करने का विचार करे।' वेष्ठित हूँ, इसलिए इनको भस्म करके...** यह आठ कर्म और निमित्त से होती अशुद्धता तथा अल्पज्ञता का नाश करके। आहाहा! वैसे तो राग का नाश करना, वह आत्मा में नहीं, ऐसा कहा वहाँ तो। राग का नाशकर्ता आत्मा को कहना, वह उपचार से है। आहाहा! क्योंकि ज्ञान तो ज्ञानरूप से ही रहा है, वह कहीं रागरूप हुआ नहीं। आहाहा! यह वस्तु के स्वभाव की अपेक्षा से कहा। 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' आता है न श्रीमद् में? 'वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' यह तो हित करना है, भाई! यह कहीं बातें करके दुनिया को बतलाना है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि यह अशुद्धता मुझे है। कर्म का—आठ कर्म का लिप्तपना मुझे है। आहाहा! वहाँ भी ऐसा कहा न पहले, नहीं? अमृतचन्द्राचार्य ने। द्रव्यदृष्टि से तो मैं शुद्ध पूर्ण हूँ। आहाहा! पर्याय में मुझे अनादि की कलुषितता वर्तती है। अनादि की अर्थात् जो कलुषितता है, वह अनादि की है। कभी कलुषितता पर्याय में से गयी है और (पश्चात्) नई हुई है, ऐसा है? आहाहा! मुझे अन्दर कलुषितता है। अरे! मुनि को कलुषितता! यह शुभभाव के पंच महाव्रतादि के परिणाम, वह कलुषितता है। आहाहा! पर्याय को ऐसे देखनेवाला। आहाहा! पर्याय को देखना ही नहीं...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का आश्रय लेना नहीं। पर्याय में खड़े रहना नहीं। ऐसा गजब मार्ग, भाई! कहो हरिचन्दभाई! ऐसा था वहाँ खस में? वहाँ थे न। किसी के ... न रहे यहाँ। तब कहते हैं कि वह हाथी को एक मच्छर भी गुनगुनाकर खड़ा रखे। कहा था न भाई हरिचन्दभाई। ... बहुत वर्ष हों, तब तपसी थे वहाँ। कौआ बैठा हुआ... उघाड़ा पानी का वह हो न मेहमान के लिये पानी का गोला। वह कौआ पीता था। तपसी! यह कौआ है। हाँ! परन्तु किसलिए कहते हैं? उस दिन की बात है। डेला था

काठी का किसी का। व्याख्यान में आते थे। परन्तु यह क्या? यह मेहमान के लिये पानी भरा हुआ है। ... परन्तु किसलिए कहते हैं? ऐसा, यहाँ मलिनता है? कहे, हाँ। किसलिए? पुरुषार्थ करके नाश करने के लिये। यह कहते हैं न यहाँ। समझ में आया? अशुद्धता है, उतना जानने के लिये नहीं। देखो न!

'**डहिऊण इण्हिं**' नाश करके। आहाहा! है? यह क्या अशुद्धता? अशुद्धता है, उतना पक्ष करके खड़े रहना, इसके लिये नहीं। अशुद्धता है, इसलिए स्वभाव का आश्रय करके उसे टालने को (कहा है)। आहाहा! समझ में आया? एक न्याय बदले तो पूरी चीज़ बदल जाती है। ऐसा नहीं। एकान्त... एकान्त शुद्ध ही है... शुद्ध ही है... शुद्ध ही है... यह तो वस्तु की अपेक्षा से है। पर्याय की अपेक्षा से तो कहते हैं न मैं... आहाहा! '**अहं**' **ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्ठित हूँ,...** वेष्ठित हूँ। आहाहा! मूल तो भावकर्म है। भावकर्म की अशुद्धता से पर्याय में घिरा हुआ हूँ। आहाहा! **इनको भस्म करके...** यह कारण है, कहते हैं। यह जाना है कि मुझमें अशुद्धता आदि है। यह जानकर नाश करने के लिये है। तब कहे, ज्ञानी को नाश करने के लिये है? नहीं। परन्तु नाश किया नहीं, तब तक है या नहीं? और जितने अंश में नाश करता है, उतने अंश में नहीं। परन्तु नाश नहीं किया, उतने अंश में तो है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कहा, यह तो दृष्टि की अपेक्षा से कहा। परन्तु ज्ञान की अपेक्षा देखे, उसकी अपेक्षा से? ... वस्तु की दृष्टि की अपेक्षा से है। यह अन्तर (में) गया तो राग से उतना भिन्न पड़ गया। परन्तु पर्याय में है, वह कहाँ अलग पर्याय से राग अलग है? वह तो द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से निर्मल पर्याय से राग भिन्न। वह तो स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से है। आहाहा! परन्तु पर्याय की अपेक्षा से तो राग अभेदरूप से है। आहाहा! यह वह वीतराग की वाणी! है न? अन्तिम कलश में है। यह तो भाई! धर्म की बातें हैं। साधारण बात में बैठ जाये और एकान्त में फँस जाये, ऐसा नहीं। अनेकान्त का मार्ग है।

इसलिए इनको भस्म करके अनन्त ज्ञानादि गुण जिनस्वरूप चेतना को प्रगट करूँ। देखो! '**अणंतणाणाइगुणचित्तां**' इस हेतु से जानना चाहिए। अनन्त ज्ञानादि गुण

अर्थात् ... अनन्त ज्ञान ... पूर्ण चेतना। पूर्ण चेतना... प्रगट ज्ञानी। ... प्रगट है। मुनि को भी क्षायिक समकित जीव ... उसके स्थान में अनन्त ज्ञान, वह उसे कहाँ है अभी? अनन्त ज्ञान अनन्त... आदि चेतना को प्रगट की। एक गाथा में कितना रखा है! आहाहा! यह तो वीतराग की वाणी है। **अनन्त ज्ञानादि...** शब्द प्रयोग किया है न! पाठ में है या नहीं? क्योंकि पर्याय में अनन्तज्ञान नहीं अभी। मुनि हुआ है, तथापि पर्याय में अनन्त ज्ञान नहीं। मति-श्रुत आदि विभावज्ञान वर्तते हैं। आहाहा! इससे मैं पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करके उसका—अशुद्धता का नाश करके पूर्ण पर्याय को प्राप्त करूँगा।

भावार्थ :- अपने को कर्मों से वेष्ठित माने और उनसे अनन्त ज्ञानादि गुण आच्छादित माने, तब उन कर्मों के नाश करने का विचार करे,... पर्याय की ... परन्तु पर्याय में वह शुद्धता है, द्रव्य का ज्ञान है तो स्वभाव सन्मुख होकर, उसका नाश होगा। परन्तु पर्याय में अशुद्धता ही न जाने। द्रव्य शुद्ध है और पर्याय अशुद्ध है ही नहीं। आहाहा! मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कहा है न कि द्रव्य से शुद्ध की... है। पर्याय से शुद्ध तो ... वह ... आहाहा! **अपने को कर्मों से वेष्ठित माने...** यह कहीं कथा नहीं। यह तो आत्मा की धर्मकथा है। ... **अपने को कर्मों से वेष्ठित माने और उनसे अनन्त ज्ञानादि...** माने अर्थात् कि ... श्रद्धा में? श्रद्धा में पर्याय की अशुद्धता से माने, ऐसा नहीं। ज्ञान के लक्ष्य में अशुद्धता है, ऐसा जाने। समझ में आया?

और उनसे अनन्त ज्ञानादि गुण आच्छादित माने,... पर्याय पूर्ण हुई ही नहीं अभी। आहाहा! मुनिपना सेवन किया, सम्यग्दृष्टि हूँ। त्रिकाल भगवान आत्मा की... अवस्था जो अपूर्ण ... **तब उन कर्मों के नाश करने का विचार करे,...** लो! पर्याय में अशुद्धता है, शुद्ध पर्याय ढँक गयी है। आहाहा! **अनन्त ज्ञानादि गुण आच्छादित माने, तब उन कर्मों के नाश करने का विचार करे, इसलिए कर्मों के बन्ध की और उनके अभाव की भावना करने का उपदेश है।** कर्मों के सम्बन्ध का (विचार) और उसका अभाव करने का यह उपदेश है। आहाहा! सम्बन्ध जाने तो अभाव करे न? सम्बन्ध कुछ नहीं तो अभाव किसका? अभाव करना रहा कहाँ? आहाहा! राग और अशुद्धता मुझमें है ही नहीं। तो फिर अभाव करना रहा ही नहीं उसे तो कुछ। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में नहीं, यह अलग बात है, गुण में नहीं, वह अलग बात है। पर्याय में अशुद्धता ठेठ तक रहती है। आहाहा! केवली को पर्याय में अशुद्धता है। असिद्धपना है, उतनी अशुद्धता है।

यहाँ तो निचले गुणस्थानवाले को कहते हैं मुनि को। अरे! (मुझे) पर्याय में अशुद्धता निमित्त के आधीन, मेरी पर्याय की योग्यता से निमित्त के आधीन (होकर होती है)। निमित्त ने कराया नहीं। निमित्त के आधीन होने से अशुद्धता वर्तती है, अपूर्णता वर्तती है। अशुद्धता मोह की अपेक्षा से, अपूर्णता ज्ञान, दर्शन और वीर्य की, सुख आदि की अपेक्षा से। आहाहा! ऐसा सीधा मार्ग है, उसे खींचतान करके... भाई! यह किसी के घर की चीज़ है कल्पित की हुई? यह तो वस्तु की स्थिति ही ऐसी है।

पूर्ण स्वरूप है, वह बराबर है, पूर्ण ही है। और उस पूर्ण को पर्याय में शुद्धता बहुत हो तो पूर्ण (स्वभाव) में पुष्टि मिलती है और अशुद्धता बहुत हो तो पूर्ण में अपूर्णता होती है, ऐसा है—ऐसा नहीं। यह वस्तु दूसरी बात है। समझ में आया? आहाहा! अशुद्धता को... ऐसे तो उसमें ऐसा कहा, देखो! अशुद्धता को जानता हुआ अशुद्धता को प्राप्त होता है। शुद्धता को जानता हुआ शुद्ध को प्राप्त होता है। ... अकेला ही आत्मा को अशुद्ध जाने, ऐसा वहाँ कहते हैं। अकेला आत्मा को त्रिकाल शुद्ध ही जाने। शुद्ध जाने, वह शुद्धता की प्राप्ति करता है। अकेला अशुद्ध ही हूँ, ऐसा पर्याय में अकेला जाने तो अशुद्धता की—मिथ्यात्व की प्राप्ति है, ऐसा है। यहाँ तो त्रिकाली वस्तु को शुद्ध जानने पर भी, पर्याय में अशुद्धता को जाने तो वह नाश करे, ऐसा कहते हैं। ऐसे अभाव की भावना करने का उपदेश है। वह अशुद्धता है; इसलिए जानने के लिये है; रखने के लिये नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रमाण हुआ न यह। अशुद्धता है और त्रिकाली शुद्ध है—यह ज्ञान हुआ, वह प्रमाण हुआ। अशुद्धता है, ऐसा जाना व्यवहारनय से, वह तब प्रमाणज्ञान हुआ। परन्तु प्रमाणज्ञान में उस शुद्धता, अभेद, अबद्धस्पृष्ट है, ऐसा निश्चय है, उसका निषेध करके पर्याय की अशुद्धता को मिलाता नहीं। प्रमाणज्ञान पर्याय में अशुद्धता है, उसे मिलाता है, परन्तु त्रिकाल शुद्ध हूँ, ऐसी जो दृष्टि और अबद्धस्पृष्ट है,

उसे ऐसा का ऐसा रखकर। यह तो त्रिकाल भी अशुद्ध हूँ और पर्याय से अशुद्ध हूँ, ऐसा नहीं। पंसारी की गाँठ से... वह कहते हैं न, हल्दी की गाँठ से पंसारी नहीं हुआ जाता। यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उनका कहा हुआ मार्ग है, भाई! यह कहीं ऐरे-गैरे को लेकर चल निकले, ऐसा मार्ग नहीं। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। त्रिकाल में... कुछ... नहीं। यह कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं, पर्याय में अशुद्धता नहीं। ... पूर्ण शुद्धता, भले शुद्धता का भान हुआ ... शुद्धता हुई है। भान हुआ, उसमें अशुद्धता का भान हुआ है न? शुद्धता पर्याय में प्रगट हुई है, उसमें 'यह अशुद्ध है' ऐसा भान हुआ, परन्तु उस समय अशुद्धता... ज्ञात हुई, उसमें शुद्धता नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! ... तो ऐसा कहते हैं। ... पर्याय में पामर माने। तृणतुल्य। एक समय की पर्याय, परन्तु मुझमें अनन्त। ... मैं अधिक हूँ। एक ओर यह और एक ओर पर्याय में ... पूर्णता का आश्रय लेकर पामरता टालेगा कहाँ से? आहाहा!

इसलिए कर्मों के बन्ध की और उनके अभाव की भावना करने का... देखा! कर्मबन्ध की भावना करना अर्थात् कर्मबन्ध है, ऐसा जानना; रागादि है-ऐसा जानना। और अभाव ... है न? **कर्मों के बन्ध की...** ऐसा है न? भाव की बात है इसमें। **कर्मों के बन्ध की और उनके अभाव की भावना करने का...** भावना का अर्थ कर्मबन्ध... है और उसका अभाव करने की भावना है। समझ में आया? है न सामने पुस्तक है। **कर्मों का अभाव शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है,...** देखो भाषा! अशुद्धता है भले। जाना कि ... परन्तु उसकी भावना तो ... **कर्मों का अभाव शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है,...** पर्याय के लक्ष्य से उसका अभाव होता नहीं। समझ में आया? अरे! ऐसे समय में... झगड़ा... आहाहा! यह क्या करते हैं? अवसर थोड़ा, करने का बहुत, समय मिले थोड़ा। उसमें यह करे या दूसरा करे इसमें? मुफ्त की सिरपच्ची।

यह कहते हैं न कि मरने की भी फुरसत नहीं। यह कहते हैं कि मेरे स्वभाव की सावधानी के समक्ष मैं निवृत्त नहीं। एक सेकेण्ड... आहाहा! मरने की भी फुरसत नहीं। बापू! वह मरण आयेगा तब एक ... हाय... हाय... अरर! अकस्मात आया, ... हुए नहीं।

यह समाचार आये हैं न, अकस्मात् हुआ है कहीं। बहिन यहाँ आती थी न। कैसे? ... प्रेमचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... वे गुजर गये। यह समाचार आये। यह अकस्मात् हुआ था। ऐसा लिखा है, भाई? अकस्मात् लिखा, क्या लिखा? ... नहीं अपने अंग्रेजी नहीं? वह तो खेद होकर लिखा है, वह दूसरा। यह तो अकस्मात् हुआ। आती थी बहिन यहाँ आती थीं बैठने। गुजर गये। ... भेजा था। ... कैलाशचन्दजी, प्रेमचन्द के भाई कैलाशचन्द नहीं आते थे प्रवचन में? .... उन बहिन को प्रेम है। भाई-बहिन आते थे। उम्र छोटी। ... ... आहाहा! ... अब आत्मा को करने के लिये निवृत्त कहाँ है कि इस सिरपच्ची में पड़ें?

कर्मों का अभाव... यहाँ अब योगफल लाते हैं। पर का सम्बन्ध है, अशुद्धता है, ऐसा जानना सही। परन्तु उसकी भावना करना अर्थात्? है इतना। अब उसकी भावना करना अर्थात् कि नाश करने की है। परन्तु नाश किस प्रकार हो? आहाहा! उस पर्याय के लक्ष्य से पर्याय का नाश नहीं होता। **शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है,... 'डहिऊण'** है न? **'डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां'** चेतना... चेतना... आहाहा! वह शुद्ध चेतना... कर्म के सम्बन्ध में समकिती को भी अशुद्ध चेतना है। उसे मैं स्वरूप के ध्यान द्वारा नाश करूँ। आहाहा! **शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है, उसी के करने का उपदेश है।** बहुत सरस! ऐसा न मान ले कि सम्यक् हुआ, चारित्र हुआ इसलिए ... साधक होता है न। आहाहा! ... यह समझना। उसे शुद्धस्वरूप के भान से उसका नाश करना। ... नाश... आहाहा! कौआ है, कहते हैं। मैंने कहा कि यह कौआ है। उसे ... .. सवेरे।

कर्म आठ हैं—१. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण, ३. मोहनीय, ४. अन्तराय—ये चार घातियाकर्म हैं, इनकी प्रकृति सैंतालीस हैं,... ४७, ४७। सैंतालिस कहते हैं न हिन्दी। **केवलज्ञानावरण से अनन्त ज्ञान आच्छादित है,...** देखो! केवलज्ञानावरणी से निमित्त के सम्बन्ध में केवलज्ञान की पर्याय ढँकी हुई है। खुल्ली नहीं। और केवलज्ञानावरणीय निमित्त है इसलिए। अपना उल्टा पुरुषार्थ, इससे वह स्वयं ढँक गयी

है। यहाँ तो पर के निमित्त के सम्बन्ध से बात है न। ऐसा ही पकड़ रखे कि यह केवलज्ञानावरणीय कर्म के कारण अटका है। कर्म हटे तो केवलज्ञान हो। ऐसा कहाँ था? वह तो यह कहे, छह काय की दया पालने का कहो, व्रत और अपवास कहो, प्रत्याख्यान का, तपस्या, यह निर्जरा। तो हमको समझ में आये और झट हो। अब ऐसी बातें करके पकड़ में आये नहीं और कुछ हो नहीं। न हो, ऐसा होगा? यही हो ऐसा है। ... उसमें क्या है? आहाहा!

कहते हैं कि **अनन्त ज्ञान आच्छादित है, केवलदर्शनावरण से अनन्त दर्शन आच्छादित है,...** अनन्त दर्शन प्रगट नहीं हुआ, इतना केवलदर्शन का और निमित्त का सम्बन्ध है पर्याय में। इससे केवलदर्शन... हो गया है। अपने कारण से। आता है न ४७ नय में। अनीश्वर नय, ईश्वर नय ... पर्याय से पराधीन। ऐसा नहीं। आहाहा! पर्याय में ... ऐसी ... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की, अमृतचन्द्राचार्य की ... एक ओर कहे, आत्मा राग का कर्ता नहीं, दूसरी ओर कहे कि राग का ... कर्ता ही है। किस अपेक्षा से? ... अपेक्षा से ... कहाँ करना? पर्याय में ... करे। आहाहा! ... है। आहाहा! ... आत्मा का राग, निश्चय के परिणाम की ... ... नहीं। बाहर में। ... आत्मा इन्द्रिय के विषय का भोक्ता नहीं। आत्मा शुद्ध चैतन्य कहें, वह इन्द्रिय के विषय का भोक्ता कहाँ से? आहाहा! त्रिकाल वस्तु के स्वभाव की अपेक्षा से। इतना वहाँ कहा।

आत्मा इन्द्रिय के विषय का भोक्ता नहीं। यहाँ कहते हैं कि अशुद्धता का भोक्ता है। पर्याय का ज्ञान हुआ। वरना प्रमाणज्ञान सच्चा होगा नहीं। आहाहा! ... मोहनीय। लो! **मोहनीय से अनन्त सुख प्रगट नहीं होता है...** ठीक! मोहनीय को इतना सम्बन्ध है अभी। इससे अनन्त सुख प्रगट हुआ नहीं। ऐसा ज्ञानी, मुनि भी ऐसा जानते हैं। आहाहा! पर्याय में ... इससे सुख के स्थान में ... है, दु:ख भी है। आहाहा! वह पर के कारण से नहीं। निमित्ताधीन होकर मेरी पर्याय का धर्म है। आहाहा! दु:खरूप से होना, वह पर्याय का धर्म है। आहाहा! सुखरूप से होना, वह स्वभाव का धर्म है। आहाहा! ऐसा कहीं था नहीं। हरिभाई! खस में था कहीं ऐसा? यह तो भाग्यशाली रह गये सब सुनने के लिये। बेचारे चले गये ... भाई। पुरानी रूढ़ि माने। भाग्यशाली है उसे यह कान में पड़े ऐसी बात है। वीतराग परमात्मा... ... सुनने को मिले नहीं। भाग्यवान को मिले। ... यह आवे।

मोहनीय से... भाषा देखी! मोहनीय। चारित्र अशुद्ध, ऐसा नहीं लिखा। ... सुख ... दर्शन और चारित्र की पूर्णता, वह सुख है। चारित्र की पूर्णता नहीं, वहाँ सुख नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन है, चारित्र है, ... परन्तु अभी पर्याय में चारित्रमोह के निमित्त के आधीन होकर दुःख है। बराबर होगा? मोहनीय के ... प्रगट नहीं होता। यहाँ मोहनीय अर्थात् चारित्रमोह है। मुनि को तो दर्शनमोह है नहीं। आहाहा! चारित्रमोह के उदय के आधीन पर्याय की, पर्याय का धर्म वह। उसके आधीन होकर अशुद्धता होती है। अशुद्धता हो, वह दुःख होता है। इससे अनन्त सुख नहीं। है न? **मोहनीय से अनन्त सुख प्रगट नहीं होता।** आहाहा! कितना याद रखना इसमें? ... वास्तविकतावाला है, उसे याद रखने की एक... आहाहा! इस वस्तु का प्रेम जिसे हो जाये, उसे भी वास्तविकता अन्दर आ जाये। यह शब्द आया। मुनि के आधीन अशुद्धता नहीं, ऐसा नहीं लिया। ऐसा लिया।

मोहनीय से अनन्त सुख प्रगट नहीं होता। ... आहाहा! ... **और अन्तराय से अनन्त वीर्य प्रगट नहीं होता है,...** अन्तराय का निमित्त है। ... पर्याय है, अनन्त वीर्य प्रगट ... नहीं। ... चैतन्य हूँ। जिसकी पर्याय में क्षायिक समकित, चारित्र हुआ, आहाहा! स्वरूप की रमणता जमी, तथापि पूर्णता स्वरूप की ... नहीं, इससे वीर्य अनन्त नहीं। इससे अनन्त वीर्य... साधन पर्याय का धर्म है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए इनका नाश करो। चार अघातिकर्म हैं, इनसे अव्याबाध,...** इसमें लिया। वेदनीय का अभाव हो जाये। **अगुरुलघु, सूक्ष्मता और अवगाहना...** यह गोत्र का ... अवगाहना। **(-की निर्मल पर्याय) प्रगट नहीं होते हैं,...** चार कर्म के निमित्त के आधीन एक भी पर्याय को ... **निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होते हैं, इन अघातिकर्मों की प्रकृति एक सौ एक हैं।** घाति को ४७, इसको १०१। तो १४८ हुई।

घातिकर्मों का नाश होने पर अघातिकर्मों का स्वयमेव अभाव हो जाता है,... यह अभाव अपने आप त्याग हो जाता है। आहाहा! ... पर्याय है न व्यक्त। पुण्य-पाप। ...यह **घातिकर्मों का नाश होने पर अघातिकर्मों का स्वयमेव अभाव हो जाता है, इस प्रकार जानना चाहिए।** पर्याय की ... बहुत सरस बात की है। ... ... अशुद्धता को ... ऐसा ज्ञान न हो। ११९ गाथा हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १, बुधवार, ०५-०६-१९७४
गाथा - १२० से १२२ , प्रवचन-१६५

भावपाहुड़ चलता है, १२० गाथा। गिनती के बोल हैं, यह तो पढ़ जाना। परन्तु थोड़ा अर्थ करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १२०

आगे इन कर्मों का नाश होने के लिये अनेक प्रकार का उपदेश है,... राग का अभाव करने में और शील गुण के आचरण में अनेक प्रकार का उपदेश है।

सीलसहस्सट्ठारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं।
भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा ॥१२०॥

आहाहा! पहले तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद की यह बात है। समझ में आया? यह तो चारित्र और मुनिपने की व्याख्या है न विशेष? पहले तो आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप है, उसकी पहली दृष्टि करनी है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उस अतीन्द्रिय आनन्द का पहले अनुभव करना। अर्थात् कि उसे प्रथम धर्म की प्राप्ति में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, इससे उसे दुनिया के विषय का स्वाद घट जाये। समझ में आया? प्रथम यह वस्तु, पश्चात् उसकी बात ली है। जिसे अन्तर आत्मा अनाकुल आनन्दस्वरूप है, ऐसा जिसे पुण्य-पाप के, शुभ-अशुभराग के विकल्प से भिन्न पड़कर ऐसे स्वरूप का जिसे भान हुआ, वह स्वरूप में अब रमना चाहता है। जो स्वरूप देखा, जाना, ऐसा है—ऐसा अनुभव में आया। पश्चात् अब उसे शुद्ध पूर्ण करने के लिये आचरण की अथवा रागादि के अभाव की चौरासी लाख गुण की व्याख्या करते हैं।

अर्थ :- शील अठारह हजार भेदरूप है... लो! यह मूल चीज़ ब्रह्मचर्य तो अपना स्वभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द ब्रह्मस्वरूप है,

उसका भान होने से, उसे ब्रह्मचर्य की शुरुआत अठारह हजार शीलांग रस की शुरुआत होती है वहाँ से। पूर्णता तो चौदहवें में होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शीलांगरस ? हाँ। भेद हैं सब। यह अर्थ में है, पढ़ लेना। अभी थोड़ा कहते हैं। अठारह हजार शीलांग के (शील अंग के) भेद है। यह स्वरूप के पूर्ण आनन्द के आचरण के यह सब भेद हैं। और चौरासी लाख गुण, वे दोष के अभावस्वभावरूप गुण हैं। दो बात की है। आहाहा! जैसे बड़ा समुद्र उल्लंघना हो, तब उसमें कितनी सावधानी चाहिए, इसी प्रकार संसाररूपी समुद्र जिसे छोड़ना है अथवा तिरना है, उसे अन्तर के आनन्द के स्वरूप के आचरण की सावधानी बहुत चाहिए। ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग मार्ग तीर्थंकर का मार्ग बहुत सूक्ष्म। बाहर से लोग मान बैठे हैं न व्रत, तप, अपवास और यह और यह और भक्ति, पूजा, यात्रा, वह कोई धर्म नहीं। वह तो राग की मन्दता उसमें हो तो पुण्य होगा। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान!

आत्मा आनन्दस्वरूप अन्दर शुद्ध चैतन्यघन है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने इस आत्मा को देखा है, पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द यह तो है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर यह पदार्थ है। आहाहा! उसकी प्रथम रुचि में पोसाण में आ जाना चाहिए कि आनन्द हो तो वह मुझमें है। आनन्द पुण्य और पाप के भाव में भी नहीं। देहादि की क्रियायें या लक्ष्मी, इज्जत या यह धूल आदि सामग्री में कहीं सुख नहीं है। ऐसी पहले रुचि बदलना चाहिए, ऐसा कहते हैं। यह यहाँ कहते हैं।

शील अठारह हजार भेदरूप है... यह शील के आचरण के स्वरूप की अन्तर रमणता के अठारह हजार भेद हैं। **और उत्तरगुण चौरासी लाख हैं।** राग और दोष के प्रकार से अभावरूप ऐसे चौरासी लाख उत्तरगुण हैं। **आचार्य कहते हैं कि हे मुने!** मुनि को लक्ष्यकर बात है न! मोक्ष अधिकार है। आहाहा! **बहुत झूठे प्रलापरूप निरर्थक वचनों से क्या ? इन शीलों को और उत्तरगुणों को सबको तू निरन्तर भा,...** आहाहा! भगवान आत्मा के स्वरूप की रमणता के जो यह सब भेद हैं, उनकी तू भावना कर। और दोषों के अभावस्वभावरूप उत्तरगुण की तू भावना कर। यहाँ तो ऐसी बात है, भाई! मोक्ष अधिकार की बात है। संसार में कैसे पदवी मिले ? पैसा कैसे मिले ? यह धूल कैसे

मिले ? राजा और सेठिया कैसे हुआ जाये ? यह तो सब पुण्य का फल तो विष्टा का फल है। आहाहा! आत्मा के स्वभाव का जो फल, वह आनन्द है। आहाहा! यह बात सुनी न हो, इसलिए (ऐसा लगे) क्या कहते हैं यह ? यह यहाँ कहना चाहते हैं।

शीलों को और उत्तरगुणों को सबको तू निरन्तर भा,... है न ? '**अणुदिणु**' ऐसा शब्द है न? भाई! तुझे—मुनि को करनेयोग्य हो तो (यह है)। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ विराजता है न, प्रभु तू। तेरी अस्ति और तेरी होनेपने की स्थिति ही अतीन्द्रिय आनन्दवाली है। ऐसे आनन्द का नाथ प्रभु, उसे देख न तू। अन्तर में जो यह प्रभु आनन्द से विराजमान है। आहाहा! उसे प्रथम सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में वह पूर्ण आनन्दस्वरूप शुद्ध है, वह ध्येय बन जाता है। आहाहा! ध्येय-ध्यान करनेयोग्य हो तो वह चीज़ है। जानेयोग्य हो तो उस चीज़ में जानेयोग्य है। आहाहा! कहो, समझ में आय इसमें ? समझ में आया या नहीं ? ऐ... चेतन! थोड़ा-थोड़ा। समझ में आया इसमें। आत्मा है या नहीं ? यह शरीर है, यह तो जड़ है। यह तो धूल अजीव है। यह तो मिट्टी, जड़, धूल है। वह कहीं आत्मा है ? अन्दर कर्म है, वह धूल है, अजीव है। वह आत्मा है ? फिर यह पुण्य-पाप के भाव हो, वह आस्रव है। वह आत्मा है ? आहाहा! आत्मा है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द और अनाकुल शान्ति से समृद्धिवाला है। आहाहा! इसकी समृद्धि की ऋद्धि अपरम्पार है। परन्तु इसे विश्वास में आना चाहिए न।

मुमुक्षु : नमूना दिखाओ तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निकाले तो इसे खबर पड़े न, ऐसा कहते हैं। ऐ दास! आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जिसे यह आत्मा अनाकुल शान्ति और आनन्द का अनुभव और सम्यग्दर्शन नहीं, वे सब द्रव्यलिंगी साधु भले हों, पाँच महाव्रत पाले, नग्न मुनि हों, जंगल में रहे, सब निरर्थक है।

मुमुक्षु : संसार तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संसार ही है। बढ़ना क्या और ? पंच महाव्रत के परिणाम राग, वह सब संसार है। संसार है, उसमें से कहाँ निकला ? आहाहा! वीतरागमार्ग

कठोर है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर... यहाँ तो सम्यग्दर्शन उपरान्त आचरण की निर्मलता को बढ़ाना, वह यहाँ बात है। समझ में आया?

निरन्तर भा, इनकी भावना-चिन्तन-अभ्यास... यह तो भावना कहो, चिन्तन कहो या अभ्यास (कहो), ऐसा। **निरन्तर रख,...** आहाहा! भाई! तेरा समय चला जाता है। आयुष्य के समय जाते हैं। मृत्यु के समीप में आयुष्य पूरा होने की तैयारी में जाता है। आहाहा! यह कर न अब, भाई! तुझे संसार से छूटना हो तो। छूटना अर्थात् मोक्ष करना, ऐसा। छूटना, वह तो मोक्ष शब्द है न, इसलिए छूटना आया, ऐसा। यह **निरन्तर रख। जैसे इनकी प्राप्ति हो, वैसे ही कर।** आहाहा!

भावार्थ थोड़ासा लेते हैं पहला। **आत्मा जीव नामक वस्तु अनन्त धर्मस्वरूप है।** यह आत्मा वस्तु जो है **आत्मा जीव नामक वस्तु...** ऐसे जीव उसका नाम है न, एक नाम। **अनन्त धर्मस्वरूप है।** उसमें तो अनन्त गुण और अनन्त धर्म रहे हुए हैं। अस्ति-नास्ति आदि धर्म और ज्ञान, दर्शन आदि गुण। आहाहा! ऐसा महा समुद्र है वह। **अनन्त धर्मस्वरूप है।** आहाहा! उसके स्वभाव में उसकी अनन्त शक्तियाँ स्वरूप है।

संक्षेप से इनकी दो परिणति हैं,... संक्षिप्त में उसकी अवस्था, हालत, परिणति, दशा दो प्रकार की है। **एक स्वाभाविक एक विभावरूप। इनमें स्वाभाविक तो शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतना परिणाम है...** आत्मा के जानने-देखने के परिणाम। भले राग हो, परन्तु जानने-देखने के परिणाम तो उसे प्रगट हुए होते हैं पहले। समझ में आया? आहाहा! शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी चेतना परिणाम, ऐसा। शुद्ध दर्शन, शुद्ध ज्ञान, ऐसी चेतना अर्थात् जानना-देखना, ऐसी चेतना परिणाम, वह स्वाभाविक परिणाम है। वे तो धर्म के परिणाम हैं। आहाहा! यह आत्मा के ज्ञानचेतना के परिणाम शुद्ध चैतन्य में एकाग्रता के भाव, वह शुद्ध चेतना परिणाम, वह स्वभाव परिणाम है, वह धर्म की दशा है। अब यह बात कैसे जँचे? यहाँ तो कहते हैं यह यात्रा की, यह भक्ति की, हो गया धर्म, लो! यात्रा में धर्म नहीं, ऐसा कहा वहाँ भड़के इसके पिता। सुना न हो न। बाहर माना हो तो क्या करे बेचारा। उसमें कहीं अन्दर में समाये तब कहे न।

मुमुक्षु : सब सेठिया....

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा कहते हैं सबको। आहाहा! सेठिया अर्थात् क्या परन्तु? पैसा हो और इज्जत हो, वह सेठिया? यहाँ तो सेठिया अर्थात् आत्मा के स्वभाव का भान और पहिचान श्रेष्ठ, उसे सेठिया कहते हैं। बाकी सब रंक-भिखारी है।

मुमुक्षु : धर्म में ऐसा कहा जाता है परन्तु लौकिक में तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक में अर्थात् लोक मचाये शोर। यह हमारे कहते थे, एक वह साधु था न रतनचन्दजी। सिद्धपुर-सिद्धपुर। कच्छी। सिद्धपुर में थे न श्रीमद् के उसमें। ऐसा कि यह सब ... होता है तो लोग वैसा करेंगे। वह कहे, लोक मचाये शोर। लोक को शोर मचाने दो। अपना करो न अपना करना हो वह।

मुमुक्षु : पण्डित जयचन्द्रजी ने लिया है लोक मचाये शोर।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! लोग क्या कहेंगे? लो! सुन न अब! दुनिया दुनिया तो गहल-पागल है। पागल क्या कहता है, उसके सामने तुझे देखना है? या परमात्मा क्या कहते हैं, उसके सामने तुझे देखना है? परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ वीतराग तो कहते हैं कि प्रभु! तेरे स्वरूप में तो अनन्त स्वभाव है, वह गुण हुआ। वस्तु हुई, उस वस्तु का अनन्त गुण धर्म है। दो हुए। अब उसकी पर्याय अर्थात् अवस्था दो प्रकार की। बात यह है कि जिसे धर्म करना हो न, उसे पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल में से सुखबुद्धि उड़ जानी चाहिए। यदि उसमें सुखबुद्धि रहे तो मिथ्यात्वभाव है, उसे धर्म करने का प्रश्न नहीं। हाँ, आसक्ति रहे विषय की, परन्तु सुखबुद्धि न रहे। समझ में आया? आहाहा! ऐसा स्वभाव का जहाँ परिणमन हो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय चेतना के परिणाम हैं, वह स्वाभाविक परिणति है, वह स्वाभाविक आत्मा की दशा है, वह धर्म स्वभावरूप है। **और विभावपरिणाम कर्म के निमित्त से हैं।** विकारीभाव कर्म के निमित्त से होते हैं। निमित्त का अर्थ (यह कि) वह स्वभाव नहीं, इसलिए निमित्त के आधीन स्वयं करता है। स्वभाव तो चैतन्य के आश्रय से हुआ है। इसलिए कहा विभाव में कर्म का निमित्त है इतना। होता है स्वयं से, परन्तु उसे लक्ष्य जाता है, कर्म के लक्ष्य से वे भाव होते हैं।

मुमुक्षु : स्वयं निमित्त के आधीन हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आधीन हुआ तो होते हैं। वह विकार है, वह दोष है, वह अधर्म है। शुद्ध चेतनापरिणाम जो आत्मा दर्शन, ज्ञान आदिमय स्वरूप, उसके परिणाम शुद्ध हों, वे धर्मरूप हैं और विभाव जितना पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध भाव, वह सब विभाव परिणाम है, वह अधर्मरूप है।

ये प्रधानरूप से तो मोहकर्म के निमित्त से हुए हैं। विभाव-विभाव। मोहकर्म का निमित्त मुख्य था उसमें। **संक्षेप से मिथ्यात्व, राग-द्वेष हैं,...** संक्षिप्त में तो मिथ्यात्व, यह पुण्य-पाप के भाव में सुखबुद्धि, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, संक्षेप में उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष कहते हैं। अनुकूल में राग हो इष्ट में और प्रतिकूल में द्वेष हो, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वे विभाव परिणाम मुख्य गिनने में आये हैं। **इनके विस्तार से अनेक भेद हैं।** इनके विस्तार के बहुत भेद हैं। **अन्य कर्मों के उदय से विभाव होते हैं, उनमें पौरुष प्रधान नहीं है,...** अघातिकर्म में हो, उसका कुछ पौरुष प्रधान नहीं। वह तो हो उतना। **इसलिए उपदेश-अपेक्षा वे गौण हैं,...** चार कर्म के निमित्त से होती अवस्था को यहाँ उपदेश अपेक्षा से गौण करके **उनमें पौरुष प्रधान नहीं है, इसलिए उपदेश-अपेक्षा वे गौण हैं; इस प्रकार ये शील और उत्तरगुण स्वभाव-विभाव परिणति के भेद से भेदरूप करके कहे हैं।** लो! स्वभाव में आचरण करना, उसके अठारह हजार भेद हैं। पाँचवें श्रमणसूत्र में आता था स्थानकवासी में। बाबूभाई! किया था प्रतिक्रमण? अठारह हजार शीलांगव्रत धारा। पाँचवें श्रमणसूत्र में। पंच ... अठारह हजार शीलांगव्रतधारा... पाँचवें में आता था। ऐई! जयन्तीभाई! किया नहीं होगा, यह मुखाग्र किया था? परन्तु तब मुखाग्र किया था? ऐसा! ठीक। उसमें आता है यह। जादवजीभाई! पाँचवें ... नमो ... उसमें आता है। पंच... अठारह हजार शीलांगधारा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह सब व्याख्या सम्प्रदाय में बहुत चलती थी। ... न आवे। यह शील के भेद हैं, वह पढ़ लेना अपने आप।

★ ★ ★

गाथा - १२१

अब १२१ गाथा। यह पढ़ जाने की बात है, भेद की है न। **अब भेदों के विकल्प से रहित होकर ध्यान करने का उपदेश करते हैं :—** लो!

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण।
रुदट्ठ झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं॥१२१॥

आहाहा! **अर्थ :- हे मुनि! आर्त-रौद्रध्यान को छोड़...** आर्त अर्थात्, आत्मा जिसमें शान्ति पीड़ित हो, ऐसी चिन्तवना आर्तध्यान की छोड़। आहाहा! रौद्रध्यान को छोड़। रौद्रध्यान हिंसा, झूठ, चोरी की धारावाही एकाग्रता छोड़। **और धर्म-शुक्लध्यान हैं, उन्हें ही कर,...** धर्मध्यान। धर्म अर्थात् आत्मा का स्वभाव, उसका ध्यान और शुक्ल-उज्ज्वल ध्यान। आहाहा! **उन्हें ही कर, क्योंकि रौद्र और आर्तध्यान तो इस जीव ने अनादि काल से बहुत समय तक किये हैं।** आहाहा! आर्त और रौद्रध्यान तो अनन्त काल से करता आया है, वह कोई नयी चीज़ नहीं। वह तो बहुत बार की है भाई! आहाहा! अनादि काल से। '**जीवेण इमेण रुदट्ठ झाइयाइं**' आहाहा! रुद-अट्ठ है न। रौद्रार्त। अर्थात् आर्त और रौद्र दो। आहाहा! पर की चिन्तवना तो तूने अनन्त बार की, परन्तु आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान की कभी तूने चिन्तवना की नहीं। तेरे घर में तू आया नहीं। पर,घर में व्यभिचारी होकर शुभ-अशुभभाव का ध्यान किया। यह तो **बहुत समय तक किये हैं।** अनन्त काल। आहाहा!

भावार्थ :- आर्त-रौद्रध्यान अशुभ हैं,... पहले दो तो अशुभ हैं। **संसार के कारण हैं।** लो! यह संसार में भटकने के कारण हैं। **ये दोनों ध्यान तो जीव के बिना उपदेश ही अनादि से पाये जाते हैं,...** यह तो उसे आते हैं। उसके उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं। अनादि से करता है राग और द्वेष, उसका ध्यान, उसकी चिन्तवना। आहाहा! **इसलिए इनको छोड़ने का उपदेश है। धर्म-शुक्लध्यान स्वर्ग-मोक्ष के कारण हैं।** जरा राग रहे न धर्मध्यान में, उसकी बात है। **इनको कभी नहीं ध्याया,...** देखा! यह स्वर्ग-मोक्ष का कारण कहा परन्तु शुद्धता के धर्मध्यान की अपेक्षावाले। उसमें जो शुभराग रह जाये, उससे स्वर्ग मिले और शुद्धता से मोक्ष, निर्जरा, संवर हो। आहाहा!

शुक्लध्यान स्वर्ग-मोक्ष के कारण हैं। इनको कभी नहीं ध्याया,... आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु का ध्यान तूने कभी नहीं किया। उसे ध्येय बनाकर उसका ध्यान तूने नहीं किया, ऐसा कहते हैं। जगत की चीज़ों को ध्येय बनाकर उसका ध्यान तूने अनन्त बार किये। आहाहा! व्यापार और देखो न, करने बैठे वहाँ लवलीन-लवलीन हो जाये। आहाहा! उसमें फिर आमदनी दस-दस, बीस-बीस हजार की हो एक दिन की। वह बैठा हो तो मानो क्या करते हैं, मानो ऐसा कि ओहोहो! लवलीन-लवलीन। पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार की आमदनी हो दुकान में, ऐसे व्यापार हों, तो उसमें क्या? धूल में क्या है? वह तो पूर्व के पुण्य हों तो होता है। परन्तु ध्यान करे, उसे ऐसा मिले, ऐसा मिले, ऐसा करे और ऐसा करे। आहाहा! मुम्बई में वह सट्टा करते हैं न। सट्टा क्या कहलाता है? समुद्र के किनारे। क्या कहलाता है? सट्टा का धन्धा कहलाता है क्या? देखने गये थे एक बार कहा न, समुद्र के किनारे मुम्बई वे मारवाड़ी ऐसे लो... ले... ले... ले... ले... ऐसा करे। कोलाबा। वह कोलाबा में देखा हुआ है।

मुमुक्षु : अमेरिका के भाव आवें....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ किनारे भाव आता। १९६७-६८ की बात है। देखने गये थे। मैंने कहा, यह क्या करते हैं सब? मैं पालेज से माल लेने गया था दुकान का, फिर फुरसत थी तो देखने गये, क्या करते हैं सब? वह कहे अमेरिका से आता है वह समाचार। ...

मुमुक्षु : वहाँ बाजार खुले न, इसलिए भाव आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव आवे वहाँ। फिर मारवाड़ी ऐसे... ले... दे... ले... वह तो पागल देख लो। आहाहा! कछोटा बाँधा हो... यह क्या करते हैं? कहा यह। ले... ले... करे। यह लिया और दिया, यह लिया और दिया। तल्लीन हो जाये परन्तु उसमें। आहाहा! ऐसे आर्त और रौद्रध्यान तो तूने अनन्त बार किये, बापू! यह संसार के कारण हैं। आहाहा! परिभ्रमण गहरे-गहरे जाने का। संसार के चतुर, संसार में गहरे जानेवाले हैं। आहाहा! यह तेरा आत्मा कौन है, प्रभु! यह पुण्य और पाप के भाव से भिन्न वस्तु है, अस्ति है, अस्ति है, मौजूद है, प्रगट है। आहाहा! उसका तूने ध्यान किया नहीं और

उसका यदि ध्यान करे तो उसे निर्मलता प्रगट हुए बिना रहे नहीं और निर्मलता प्रगट हो, वह मोक्ष का कारण होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

इसलिए इनका ध्यान करने का उपदेश है। ध्यान का स्वरूप एकाग्रचिन्तानिरोध... लो! **धर्मध्यान में तो धर्मानुराग का सद्भाव है।** धर्मध्यान में जरा शुभराग-धर्म का प्रेम रहता है। इस **धर्म के-मोक्षमार्ग के कारण में...** इस धर्म में मोक्षमार्ग के कारण में **रागसहित एकाग्र चिन्तानिरोध होता है,...** धर्मध्यान में थोड़ा राग भी होता है और स्वरूप की शुद्धता की एकाग्रता भी होती है। दो बातें हैं। **एकाग्र चिन्तानिरोध होता है, इसलिए शुभराग के निमित्त से पुण्यबन्ध भी होता है...** आत्मा के ध्यान में, शुद्धता की एकाग्रता में शुद्धता हुई, वह तो धर्म हुआ, वह तो मोक्ष का कारण है। परन्तु जितना राग रह जाये, अभी विकल्प-शुभराग, वह पुण्यबन्ध का कारण है। उससे स्वर्ग और यह सेठाई समकिती को भी मिलती है। स्वर्ग में जाये और वहाँ से वापस मरकर बड़ा करोड़ों-अरबोंपति में जन्मे।

मुमुक्षु : वहाँ उसे कुछ धन्धा-व्यापार न करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न। उसके कारण से पैसा आवे। पूर्व का पुण्य बँधा है न, उसके कारण से करोड़ों रुपये की उपज हो, वहाँ वह जन्मे। उसे स्वयं धन्धा करे, ऐसा न हो। ऐसे ही पैसे मिलें उसे। आहाहा!

विशुद्ध भाव के निमित्त से पापकर्म की निर्जरा भी होती है। लो! धर्मध्यान में तीन प्रकार। आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ध्यान करने से जितनी निर्मलता प्रगट हुई, वह मोक्ष का कारण है। जरा राग बाकी रहा, वह पुण्यबन्ध का कारण स्वर्ग का और शुद्धता के कारण पाप की निर्जरा भी होती है। ऐसा मोक्ष का कारण तो होता है, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि शुद्ध आत्मा के अवलम्बन से जो प्रगट हुए, उसमें पाप की निर्जरा भी होती है, ऐसा कहते हैं। वह धर्मध्यान की व्याख्या की। लोग जो मानते हैं, उसकी अपेक्षा यह कोई अलग प्रकार है। कहो, समझ में आया? यह उपधान करे। करते हैं न? डेढ़-डेढ़ महीने के। एक बार खाना और दूसरे दिन न खाना। वह धर्मध्यान नहीं। वह तो राग की मन्दता हो तो पुण्य बाँधे और मिथ्यात्वसहित है। क्योंकि वह धर्म है, ऐसा वह मानता है। आहाहा! बहुत कठिन बातें!

निर्जरा भी होती है। तीन बातें कीं। कि आत्मा शुद्ध चैतन्य का जिसने आश्रय लिया, उसकी जिसने एकाग्रता की, उसे शुद्ध परिणाम प्रगट हुए, इतनी तो संवर-निर्जरा और पाप की निर्जरा करे। उत्पन्नरूप से संवर-निर्जरा और पाप की निर्जरा करे और पुण्य से जरा राग बाकी रहा, उससे पुण्य बाँधे। आहाहा! यह तो सम्यग्दृष्टि का पुण्य। वह सम्यग्दृष्टि तीर्थंकरगोत्र बाँधे। अज्ञानी को तीर्थंकरगोत्र नहीं होता। जिसे सम्यग्दर्शन का भान नहीं, जिसे आत्मा के स्वाद की खबर नहीं। आत्मा आनन्दस्वरूप का स्वाद जिसे आया नहीं, सम्यग्दर्शन बिना, उसे तीर्थंकरगोत्र के परिणाम हो सकते ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शुक्लध्यान में आठवें-नौवें-दसवें गुणस्थान में तो अव्यक्तराग है। सातवें तक वह धर्मध्यान लिया। शुक्लध्यान में आठवाँ गुणस्थान, नौवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ। दसवें गुणस्थान में तो अभी अव्यक्त राग है। थोड़ा राग है। **वहाँ अनुभव अपेक्षा उपयोग उज्ज्वल है, इसलिए शुक्ल नाम रखा है...** राग का कण अव्यक्त रह गया और उज्ज्वल उपयोग आत्मा के ध्यान में होता है। ऐसा ध्यान मुनि को होता है। सम्यग्दृष्टि और भावलिंग जिसे मुनिपना प्रगट हुआ होता है, उसे यह दशा अन्दर आगे बढ़े तो होती है।

मुमुक्षु : शुक्लध्यान कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुक्ल शुक्ल—उजला।

इससे ऊपर के गुणस्थान में राग-कषाय का अभाव ही है,... बारहवें के पश्चात्... ग्यारह में। **इसलिए सर्वथा ही उपयोग उज्ज्वल है, वहाँ शुक्लध्यान युक्त ही है।** वहाँ शुक्लध्यान युक्त इतनी निर्मलता हुई, इसलिए उसे शुक्लध्यान बराबर कहना, ऐसा कहते हैं। **इतनी और विशेषता है कि उपयोग के एकाग्रपनारूप ध्यान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही है।** आत्मा के आनन्द के ध्यान में तो अन्तर्मुहूर्त रह सके। **उस अपेक्षा से तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में ध्यान का उपचार है...** पश्चात् केवली को और चौदहवें (गुणस्थान में) ध्यानसहित उपचार है, ऐसा कहते हैं। यहाँ अन्तर्मुहूर्त ध्यान रहे, वह तो बारहवें तक की बात है, ऐसा। विशेष समझाया है। **उस अपेक्षा से तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में ध्यान का उपचार है और योगक्रिया के स्थंभन की अपेक्षा ध्यान**

कहा है। यह शुक्लध्यान कर्म की निर्जरा करके जीव को मोक्ष प्राप्त कराता है,... लो! **ऐसे ध्यान का उपदेश जानना।** आहाहा! अंक... १२९ लिखा है? २१ के बदले २९। २१ चाहिए।

★ ★ ★

गाथा - १२२

ऐसा धर्मध्यान और शुक्लध्यान उत्कृष्ट प्रकार का **यह ध्यान भावलिंगी मुनियों को मोक्ष करता है :—** आहाहा! भावलिंगी अर्थात्? जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव है। अकेली बाह्य क्रिया नग्न और पंच महाव्रत के परिणाम, वह तो द्रव्यक्रिया बाहर की है। भावलिंग अर्थात् पंच महाव्रत के परिणाम से भी रहित अन्तर स्वरूप के ध्यान की दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं, उसे भावलिंगी साधु कहते हैं। जिसे आत्मा का दर्शन, अनुभव, ज्ञान और चारित्र अन्तर (में) नहीं और अकेली नग्नदशा और पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण पाले, वे सब द्रव्यलिंगी हैं, वे साधु नहीं। वेश द्रव्य का धारण किया है। आहाहा! १२२ (गाथा)।

जे के वि दव्वसवणा इंदियसुआउला ण छिंदंति।
छिदंति भावसवणा झाणकुढारेहिं भवरुक्खं॥१२२॥

भाषा देखो!

अर्थ :- कई द्रव्यलिंगी श्रमण हैं, वे तो इन्द्रियसुख में व्याकुल हैं,... लो! पंच महाव्रत के भाव, वह तो राग है। राग के प्रेम में पड़े हैं वे। इन्द्रिय के सुख के प्रेम में पड़े हैं। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग है और राग के फल में बन्धन है। उसके फल में इन्द्रिय के विषय मिलें। जिसे राग का प्रेम है, उसे इन्द्रिय के विषय का ही प्रेम है। आहाहा! क्योंकि जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप... है? '**इंदियसुआउला**' आकुल हैं इन्द्रिय के सुख में, वे अज्ञानी। चाहे तो पंच महाव्रत पाले, आहाहा! नग्न मुनि हों, जंगल में बसे, परन्तु इन्द्रियसुख में व्याकुल है। आहाहा! क्योंकि जिसने आत्मा के आनन्द के सुख को तो देखा नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र चाहिए, वह तो है नहीं। आहाहा!

और यह व्यवहार क्रियाकाण्ड में खड़ा हो, तो कहते हैं कि इन्द्रिय के सुख में वह आकुलता में पड़ा है, ऐसा कहते हैं। उसे राग का ही अनुभव है। आत्मा के आनन्द का अनुभव नहीं। आहाहा!

'**इंदियसुआउला ण छिंदंति**' लो! **उनको यह धर्म-शुक्लध्यान नहीं होता है। वे तो संसाररूपी वृक्ष को काटने में समर्थ नहीं है,...** जिसे आत्मा के आनन्द का ध्यान नहीं, आत्मा के आनन्द का समकित नहीं, आत्मा के आनन्द का अन्तर स्वसन्मुख का स्वसंवेदनज्ञान नहीं और उस स्वरूप में आनन्द की रमणता नहीं, ऐसे जीव पंच महाव्रत आदि क्रिया करके संसार को नहीं छेद सकते, वे संसार को नहीं काट सकते। आहाहा! स्वसन्मुख के आत्मा के आनन्द का समकित हुआ नहीं, स्वस्वभाव के आनन्द का जिसे ज्ञान हुआ नहीं और उसमें रमणतारूप लीनता—चारित्र हुआ नहीं, वह बाह्य क्रियाकाण्ड करे, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, पंच महाव्रत पाले, नग्नपना ले, महीने-महीने के अपवास करे, वह संसार को नहीं छेद सकता। क्योंकि वह स्वयं—रागभाव स्वयं संसार है। आहाहा!

और जो भावलिंगी श्रमण हैं,... आहाहा! सुना भी न हो, यह समकित क्या है? यह तो देव-गुरु-शास्त्र को मानो, नौ तत्त्व को मानो, वह समकित है। अब चारित्र लो। धूल भी नहीं अब सुन न! ऐसे नौ (तत्त्व) के व्यवहाररूप श्रद्धा को अभव्य भी उसे करता है। देव-गुरु-शास्त्र की—परद्रव्य की श्रद्धा तो अभव्य भी करता है। उसमें कहाँ से आया समकित? आहाहा! कहते हैं, भावलिंगी। गुण को लिंग कहते हैं न! भाई! प्रवचनसार में आता है। लिंग... लिंग। जीव का ज्ञानगुण वह उसका लिंग है। लिंग से वह ज्ञात हो, ऐसा। भावलिंग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसके जो लिंग हैं, उनसे जिसने आत्मा को जाना, अनुभव किया है, उसे यहाँ भावलिंगी कहा जाता है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि यह तो निश्चय की बात है। निश्चय अर्थात् सच्चा। व्यवहार अर्थात् आरोपित उपचार। उसमें कोई है नहीं। लौकिक कथन है।

भावलिंगी... जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के गुण की पर्याय प्रगट हुई है, ऐसे लिंग को धरनेवाला लिंगी कहा जाता है। भावलिंगी। आहाहा! यह महाव्रत आदि के

परिणाम को धारता नहीं। हो, परन्तु उन्हें धारता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें! यहाँ तो थोड़ा स्त्री-पुत्र छोड़े और ले लेवे दीक्षा, हो गये साधु।

मुमुक्षु : ....संसार छोड़ा यह ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार किसे कहना, इसकी उसे खबर नहीं। यह दया, दान, व्रत के भाव, वह संसार है। उन्हें अपना मानना और लाभ मानना, वह भाव संसार है। वह संसार तो छोड़ा नहीं। स्वभाव में से संसरण—हटकर विकार के पुण्य के परिणाम में आया, वह संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : छह काय का चूरा ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय का चूरा, उसका आत्मा चूरा नहीं होता वहाँ? छह काय का चूरा कौन करे? ऐई! शान्तिभाई! यह सब शान्तिभाई ने किया हुआ ऐसा सब। छह काय का चूरा नहीं करना, फलाना करना। लो, भाई! तुम्हारे साथ फिर सब को डाला, हों! तुमको अकेले को नहीं। यह तो जिसकी बात हो, उसे सामने बोला जाये न। आहाहा! ...बहिन को ऐसा कहते थे कि छह काय के चूरा में उसे पकाना नहीं। क्योंकि उसमें हिंसा होती है। पकाने का बन्द किया। ऐसी बाहर की बातों में रहकर बेचारे...

मुमुक्षु : दलना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दलना नहीं, पानी भरना नहीं, यह नहीं करना। यह सब लो तुम्हारे छह काय के कूटा से निवृत्त। छह काय के चूरा में तेरा जीव नहीं एक? जीव के राग की क्रिया करे और माने धर्म, वह तो छह काय के चूरा में आत्मा का चूरा किया। आहाहा! अपने आत्मा की राग उत्पन्न करके हिंसा की। चाहे तो शुभराग हो दया, दान, व्रत का, परन्तु वह राग हिंसा है। यह तो वीतराग मार्ग है। आहाहा! अपने स्वरूप की हिंसा होती है वहाँ। वह तो इसकी खबर नहीं होती। बाहर के यह छोड़े, फलाना छोड़ा, ढींकणा छोड़ा।

भावलिंगी श्रमण हैं, वे ध्यानरूपी कुहाडे से संसाररूपी वृक्ष को काटते हैं। आहाहा! लो, यह भावलिंगी साधु। यह तो उसका स्वरूप बताते हैं। समझ में आया? ध्यानरूपी कुहाडा-कुठार। आत्मा शुद्धस्वरूप पवित्र अनन्त धर्मस्वरूप का ध्यान (अर्थात्

कि) उसे ध्येय बनाकर उसमें लीनता। राग और पुण्य-पाप के विकल्प राग से भिन्न पड़कर ऐसा जो ध्यान, उसरूपी कुहाडा। **संसाररूपी वृक्ष...** वह रागरूपी उदयभाव, उसे छेदते हैं। रागरूपी संसार, उसे यह ध्यानरूपी कुहाड़ा से मुनि छेदते हैं।

भावार्थ :- जो मुनि द्रव्यलिंग तो धारण करते हैं,... नग्नपना, वह द्रव्यलिंग, हों! वस्त्रसहित, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं। जो वस्त्रसहित साधु हो, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं और भावलिंग भी नहीं—दोनों नहीं। परन्तु वस्त्ररहित होकर नग्नपना धारण करे, यह पंच महाव्रत धारण करे, **परन्तु उनको परमार्थ-सुख का अनुभव नहीं हुआ है।** लो! परन्तु परमार्थ आत्मा का आनन्द का स्वाद आया नहीं उसे। **उनको परमार्थ-सुख का अनुभव नहीं हुआ है।** आहाहा! तब और ऐसा कितने ही कहें कि, यह और अपने को क्या खबर पड़े? कि उसे परमार्थ सुख का अनुभव नहीं। यह करते हैं, उससे साधु को पहिचानो। आहाहा! बचाव... बचाव... बचाव... बचाव करना। उसके लक्षण में सब ज्ञात होता है। उसकी प्ररूपणा, उसका आचरण, उसका जोर कहाँ जाता है। आनन्द की दृष्टि में जोर न जाकर राग की क्रिया में जोर जाता है, वह आनन्द का उसे भान नहीं है। आहाहा!

इसलिए इहलोक परलोक में इन्द्रियों के सुख ही को चाहते हैं,... लो! अव्यक्तरूप से। भले ऐसे इन्द्रिय के विषय (छोड़े), परन्तु जिसे राग की एकता है और पुण्यभाव में जो पड़ा है, वह इसलोक और परलोक के इन्द्रिय के विषय की चाहना में है। क्योंकि आत्मा के आनन्द के स्वभाव की तो खबर नहीं, सम्यग्दर्शन तो है नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, सम्यक्चारित्र नहीं। जो आत्मा के अवलम्बन से, आनन्द के अवलम्बन से, आनन्दवाला आत्मा—ऐसा भान, आनन्दवाला आत्मा—ऐसी श्रद्धा, आनन्दस्वरूप—ऐसी रमणता, वह मोक्ष का मार्ग, वह तो है नहीं। पर के आश्रय से पंच महाव्रत और यह समिति—देखकर चलना, ऐसे खाना, निर्दोष आहार लेना। यह भी कहाँ ठिकाना है निर्दोष का अभी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? यह होगा अन्त में। अन्त में एक साधु, एक साध्वी बताये अन्त में। वह कैसा परन्तु? हंस कहे हों परन्तु हंस दिखाई नहीं दे तो कहीं

बगुले को हंस माना जाये ? कहा है कि भाई ! भरतक्षेत्र में हंस है। परन्तु हंस दिखते नहीं तो ? यह सब अच्छा लगे बाहर का। आहाहा !

कहते हैं कि जिसे परमार्थ सुख का अनुभव नहीं हुआ। आहाहा ! उसे विषयसुख की वासना टली ही नहीं, कहते हैं, भले वह राग पुण्य करता हो, पंच महाव्रत पालता हो। क्योंकि इस ओर के आनन्द की खबर नहीं, इसलिए पर में आनन्द माने बिना रहे नहीं। आहाहा ! अरे ! ऐसे मुनिपने को प्राप्त अभी नमूना दिखना कठिन है। ऐसा काल, ऐसा काल। आहाहा ! जिसे अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि **परमार्थ-सुख का अनुभव नहीं हुआ है,...** अतीन्द्रिय सुखस्वरूप भगवान आत्मा का तो अनुभव नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन जो कहते हैं, सच्चा समकित कहते हैं, वह तो अतीन्द्रिय सुख के अनुभववाली प्रतीति कहते हैं... आहाहा ! वह तो नहीं। पश्चात् **इहलोक परलोक में इन्द्रियों के सुख ही को चाहते हैं,...** उसका उत्साह राग में ही जाता है। स्वभाव-सन्मुख का आनन्द तो जाना नहीं, इसलिए परसन्मुख में उसका उल्लास जाता है। इसलिए वह इसलोक और परलोक के सुख की ही वांछा करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

तपश्चरणादिक भी इसी अभिलाषा से करते हैं... आहाहा ! यह अपवास और महीने-महीने का संथारा, रस का त्याग और यह सब, आत्मा आनन्दस्वरूप का घर तो देखा नहीं, इसलिए बाह्य रागादि की क्रिया में सब मानता है। वह सब **तपश्चरणादिक भी इसी अभिलाषा से करते हैं...** अर्थात् राग की भावना से करते हैं, ऐसा कहते हैं। उसे राग की भावना है। आहाहा ! निर्विकल्प भगवान आत्मा के आनन्द की खबर नहीं, अनुभव नहीं। इसलिए वह तपस्यादि में भी राग की अभिलाषा से ही तपस्या करता है। जो अनुभव किया है, उसे अनुभवने के लिये तपस्या करता है, ऐसा कहते हैं। राग को अनुभव किया है और राग के लिये तपस्या करते हैं। आहाहा ! तम्बोली ! यह तो सब निश्चय की बात है, कहते हैं। लो !

मुमुक्षु : निश्चय की ही बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय की बात अर्थात् यह तो ऊँची श्रेणीवाले का काम है।

अभी हमारे क्या करना? भाई! यह तो निचली श्रेणी की बात है। जिसे धर्म की श्रेणी प्रगट करना हो, उसे आत्मा के ध्यान में जाना पड़ेगा। आहाहा! उसे आत्मा के सन्मुख होना पड़ेगा। और आत्मा के सन्मुख के आनन्द के भान बिना राग की सन्मुखता में और स्वभाव की विमुखता में जो कुछ अपवास, त्यागादि करे, उसे राग की ही, इन्द्रिय के विषय की ही अभिलाषा है। क्योंकि जो अनुभव किया उसका उसे भाव है। जो नहीं अनुभव किया, उसका भाव कहाँ से आवे उसे? आहाहा!

उनको धर्म-शुक्लध्यान कैसे हो? अर्थात् नहीं होता है। जिनने परमार्थ सुख का आस्वाद लिया... जिसने आत्मा के आनन्द का स्वाद लिया। आहाहा! कैसी बात डाली है! **उनको इन्द्रियसुख दुःख ही है...** उन्हें इन्द्रिय का सुख, (वह) दुःख लगता है। आहाहा! **ऐसा स्पष्ट भासित होता है, अतः परमार्थ सुख का उपाय धर्म-शुक्लध्यान है, उसको करके वे संसार का अभाव करते हैं, इसलिए भावलिंगी होकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करके भी वापस आत्मा का ध्यान करना। उसका अभ्यास करना। यह करनेयोग्य है। तब उसे मोक्ष होता है, वरना मोक्ष नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण २, गुरुवार, ०६-०६-१९७४
गाथा - १२२ से १२५, प्रवचन-१६६

भावपाहुड़, १२२ (गाथा) में ऐसा कहा। भावपाहुड़ है न! जिसे इन्द्रियसुख की आकुलता है, वह आत्मा की ओर का ध्यान नहीं कर सकता। और उसके बिना संसार का नाश नहीं हो सकेगा। पाँचों ही इन्द्रिय की ओर के सुख की बुद्धि जहाँ है जिसे, शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पाँचों ही ओर की जिसे सुखबुद्धि की आकुलता है, वह '**ण छिंदंति**' वह संसार छेद नहीं सकेगा। '**छिंदंति भावसवणा**' सम्यग्दृष्टि जीव भाव जिन सम्यक् जिसे सुखबुद्धि आत्मा में हुई है, आत्मा में आनन्द और सुख है—ऐसा जिसे अन्तर भान हुआ, वह स्वरूप के ध्यानरूपी कुठार से संसार का छेद करेगा। ऐसी बात है। क्योंकि जिसे कुछ भी पाँच इन्द्रियों में प्रीति और रुचि, सुखबुद्धि रहे, वह अन्तर में नहीं जा सकेगा। आत्मा अनाकुल आनन्दस्वरूप है। जिसे कीर्ति में प्रेम है, रूप में रस है, गन्ध में जिसकी लीनता-एकाग्रता है, स्पर्श में जो अकेला मगन हो गया है, उसे चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप अणीन्द्रिय की उसे दृष्टि और ध्यान नहीं हो सकेगा। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १२३

आगे इस ही अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं :—

जह दीवो गब्भहरे मारुयबाहाविवज्जिओ जलइ।
तह रायाणिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ॥१२३॥

अर्थ :- जैसे दीपक गर्भगृह... गर्भगृह अर्थात् हवारहित कोई अन्दर गर्भागार आदि हो, जिसमें दीपक रखे तो पवन आवे नहीं। वह **गर्भगृह अर्थात् जहाँ पवन का संचार नहीं है, ऐसे मध्य के घर में...** मध्य घर में हो। पाँच-दस घर हों, उसमें मध्य के

घर में रखे। वहाँ पवन आने का प्रसंग न हो। **ऐसे मध्य के घर में पवन की बाधारहित निश्चल होकर जलता है (प्रकाश करता है),...** निश्चल अर्थात् हिले बिना जले अन्दर। पवन नहीं, इसलिए हिलता नहीं।

वैसे ही... यह तो दृष्टान्त हुआ। **अन्तरंग मन में रागरूपी पवन से रहित...** अन्तरंग मन में जिसे परपदार्थ के प्रति प्रेम है, वह अन्दर में स्वभाव की दृष्टि नहीं कर सकेगा। परन्तु जिसे परपदार्थ के प्रति प्रेम नहीं, आसक्ति हो, परन्तु रस नहीं, समझ में आया? परपदार्थ के प्रति सुखबुद्धि उड़ गयी है, वह **रागरूपी पवन से रहित...** जिसे परसन्मुख के प्रेम का राग-रुचि हट गयी है, उसे आत्मा की ओर के ध्यान में उसे रागरूपी पवन झकोर मारे, ऐसा उसे नहीं रहता। यह तो भावपाहुड़ अधिकार है न। रागरूपी भाव परसन्मुख के झुकाववाला रहे, रुचि (रहे) तो अन्तर आत्मा के स्वभाव में वह नहीं जा सकेगा। उसे आत्मा में आनन्द है, ऐसी बुद्धि नहीं होगी। आहाहा! और जिसे रागरूपी पवन रुक गया है, उसे अन्तर आनन्द के स्वरूप में ध्यान में लीन होने का उसे प्रसंग है। आहाहा! चैतन्यस्वरूप तो भगवान विराजता है, मौजूद है, परन्तु राग की परसन्मुख के झुकाव में झुकाव का जो राग, उसका जो प्रेम, वह अन्दर के स्वभाव की ओर नहीं जाने देता। परन्तु जिसे उस राग का प्रेम—राग का राग छूट गया है। राग भले हो, परन्तु राग का राग छूट गया है। आहाहा!

उसे **पवन की बाधारहित निश्चल होकर जलता है,...** प्रकाश करे। आत्मा जलहल ज्योति चैतन्यबिम्ब प्रभु, जिसे रागरूपी पवन की बाधा नहीं, उसे अन्तर ध्यान में निश्चलरूप से उसे ज्ञान प्रकाश करता है। कठिन बातें भाई यह। आहाहा! क्योंकि सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ये तीनों आत्मा के ओर की ध्यान की ही अवस्था है। आत्मा की ओर की एकाग्रता की यह तीन अवस्थायें हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन अर्थात् ऐसे देव-गुरु-शास्त्र माने, ऐसा नहीं। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु जिसमें उसे प्रीति के प्रेम में एकाग्रता हो गयी है, अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी लहर जिसकी दौड़ गयी है अन्दर। आहाहा! परिणति की धारा जिसके आनन्द में मुड़ गयी है। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी ध्यान अवस्था प्रकाशित होती है। ठेठ बात ली है यहाँ। आहाहा! मोक्ष का मार्ग ही ध्यान है। संसार का मार्ग, वह ध्यान है (परन्तु) आर्तध्यान

और रौद्रध्यान। आहाहा! यह तो चैतन्य भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप (का ध्यान)।

निश्चल होकर जलता है (प्रकाश करता है), वैसे ही अन्तरंग मन में रागरूपी पवन से रहित... राग तो, दसवें गुणस्थान तक होता है। परन्तु यहाँ तो राग का रस जो है रुचि, उसकी बात है। आहाहा! जिसे राग की रुचि है, उसे आत्मा की रुचि का ध्यान नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। जिसे अन्दर राग, शुभराग भी पोषाता है, पोसाण में है, लाभ में खपाता है, उसे यहाँ राग कहा जाता है। ऐसा मार्ग! **ध्यानरूपी दीपक भी जलता है, एकाग्र होकर ठहरता है,...** आहाहा! विकल्प का जो राग है, उसका जहाँ प्रेम नहीं, उसे अन्तर में निर्विकल्प ध्यान एकाग्रता से हो सकता है। देखो, यह मार्ग! यह वीतरागमार्ग। वीतराग अर्थात् राग की रुचिरहित, आत्मा के स्वभाव की एकाग्रता का ध्यान, वह वीतरागमार्ग है। आहाहा!

आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता है। चैतन्यस्वरूप शुद्ध चैतन्य की ओर के झुकाव से एकाग्रता, उसे चैतन्य का, शान्ति का, आनन्द का, ज्ञान का प्रकाश भाव होता है। वह प्रकाश चैतन्य का बढ़ता है उसे, कहते हैं। पर्याय की बात है। समझ में आया? ऐसा भाई हम कहाँ करें? लोग कहते हैं। हम तो गृहस्थ हैं। हमारे गृहस्थी... तू गृहस्थ है ही नहीं। गृहस्थ और साधु, वह सब पर्याय के भेद हैं, वस्तु में वे हैं ही नहीं। आहाहा! वस्तु तो चैतन्यमूर्ति ध्रुव एकरूप स्वभाव से विराजमान प्रभु में एकाग्र होना, वह पर्याय है। वह ध्रुव में ध्यान करके एकाग्र होना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है, वह अपनी पर्याय को प्रकाशता है। आहाहा! यह छह काय की दया पालना, व्रत पालना, ऐसा हो तो कर सकते हैं, लो! भाई! तू आत्मा नहीं प्रभु? तेरा स्वभाव परमानन्द प्रभु चैतन्यचमत्कार के भाव से भरपूर वह भगवान प्रभु स्वयं तू जीव नहीं? उस जीव का ध्यान करना। जिसे राग का ध्यान जाये, उसे चैतन्य का ध्यान होता है, ऐसा कहते हैं। लो, इतने में मोक्ष का मार्ग समाहित कर दिया। साधारण प्राणी तो कहे, भाई! हमारे मस्तिष्क नहीं होता, जानपना बहुत नहीं होता। यहाँ जानपने का क्या काम है? आत्मा ऐसा पूर्णानन्दस्वरूप है, उसे राग के प्रेम से भिन्न करके स्वरूप की दृष्टि करके एकाग्र होना, वह तो आठ वर्ष का बालक और पशु भी कर सकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : चौथे काल की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काल की बात ही नहीं। आत्मा की बात है यहाँ तो। काल-फाल यहाँ है ही नहीं। कहो, पण्डितजी! आहाहा! काल, काल के घर में रह गया। आत्मा में वह काल है ही नहीं। चौथा काल और पाँचवाँ काल। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप, सत् शाश्वत् जिसकी अस्ति, ज्ञान और आनन्दवाली जिसकी अस्ति है, उसे काल क्या? चौथे काल में भी सातवें नरक में जानेवाले थे, पाँचवें काल में भी समकिती एकावतारी हो सकता है। उसे काल का क्या काम है यहाँ? आहाहा! महाविदेह में भी सातवें नरक में जानेवाले हैं। यह काल और काल और क्षेत्र कहाँ बाधक है उसे? जो कोई स्वरूप आत्मा का शुद्ध चैतन्य ध्रुव का जानपना करके फिर उस ओर के ध्यान में स्थिर होता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का प्रकाश होता है, उसे मोक्षमार्ग की वानगी—झलक आती है अन्दर। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

भावार्थ :- पहिले कहा था कि जो इन्द्रियसुख से व्याकुल हैं, उनके शुभध्यान नहीं होता है,... जिसे पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाववाले भाव में प्रीति है, वह शुभध्यान नहीं कर सकता। अन्तर के स्वरूप में स्थिर, धीर, वीर रूप से अन्दर में एकाग्र होना, वह ऐसे इन्द्रिय सुख के लोलुपी नहीं जा सकते, नहीं कर सकते। आहाहा! और ऐसे इन्द्रिय के सुख तो अनन्त बार जहर के प्याले इसने पीये हैं। अनन्त बार (पीये), तो भी इसे कुछ सन्तोष तो हुआ नहीं। अग्नि में चाहे जितनी लकड़ियाँ डाले, तो कहीं अग्नि शान्त होगी? वह तो जले। इसी प्रकार विषयों की वासना चाहे जितनी करे तो जले और सुलगे ही वह तो, सर्वत्र। आहाहा! यह विषयसुख के, विषय शब्द से स्पर्श का विषय अकेला, ऐसा नहीं। कीर्ति सुनकर भी जिसे ऐसे ठीकबुद्धि होती है, वह विषय है। आहाहा! जिसे महत्ता कोई कहे तब उसे मस्तिष्क में ठीक पड़ता है, वह इन्द्रिय के विषय का लोलुपी है। आहाहा! ऐसे रूप देखकर स्त्री का या शरीर का किसी का सुन्दररूप देखकर जहाँ राग से ललचाया है, वह भी इन्द्रिय के विषय में लोलुप हो गया है। भगवान आत्मा का आनन्दरूप उसे वह देखने को, जानने को, स्थिर होने को योग्य नहीं। ऐसे गन्ध, रस और स्पर्श। अच्छे-अच्छे मक्खन और ऐसी चीज़ें खाते हुए उसे अन्दर रस आवे रस। उसकी ओर के झुकाव में मिठास आवे।

भाई! यह राग की मिठास है। इस मिठासवाले को इन्द्रिय के विषय की आकुलता है। आहाहा!

पहिले कहा था कि जो इन्द्रियसुख से व्याकुल हैं, उनके शुभध्यान नहीं होता है, उसका यह दीपक का दृष्टान्त है—जहाँ इन्द्रियों के सुख में जो राग, वह ही हुआ पवन... इन्द्रियों के सुख में जो राग **वह ही हुआ पवन...** ऐसा। आहाहा! बाहर के किसी भी शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में जहाँ राग में रस और प्रीति जमे, उसे तो आत्मा का भान नहीं हो सकता। समझ में आया? विषय छोड़े, यह नहीं; वे तो छूटे हुए ही पड़े हैं, परन्तु उनके प्रति का राग का रस है, उसे छोड़े बिना आत्मा की ओर का झुकाव नहीं हो सकता। आहाहा!

इन्द्रियों के सुख में जो राग वह ही हुआ पवन, वह विद्यमान है,... पाँचों ही इन्द्रियों के झुकाव में राग की अस्ति जिसे है प्रेम—रुचि, **उनके ध्यानरूपी दीपक कैसे निर्बाध उद्योत करे?** आहाहा! **अर्थात् न करे और जिनके यह रागरूपी पवन बाधा न करे, उनके ध्यानरूपी दीपक निश्चल ठहरता है।** मूल तो मोक्षमार्ग ध्यान है, ऐसा कहना है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध का ध्यान करना, वही मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब विकल्प शुभ-अशुभ हैं, वे सब संसार मार्ग और संसाररूप हैं। आहाहा!

कल आया था, नहीं? कि समकिती की और मिथ्यात्वी की क्रिया तो बाह्य में एकसरीखी दिखती है। एकसरीखी क्या, परन्तु उससे विशेष दिखाई दे। सम्यग्दृष्टि को छियानवें हजार स्त्रियों का संयोग दिखाई दे। मिथ्यादृष्टि को एक भी स्त्री का संयोग न हो, लो! ब्रह्मचारी हो। उससे क्या? अन्दर में जिसे राग का रस पड़ा है अन्दर, वह सब धर्म का त्यागी है। राग का रस छोड़ा और स्वभाव का रस प्रगट किया, वह मिथ्यात्व और सब कषाय का वह त्यागी है। ऐसी बात! सम्यग्दर्शन-ज्ञान वह है। **'झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा' 'दुविहं पि मोक्खहेउं'** यह आत्मा आनन्दस्वरूप, उसके अन्तर में झुकाव से वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त होते हैं। जिसे राग में रस पड़ा है, वह अन्तर में कैसे जा सकेगा? आहाहा! ऐसी बातें लगे लोगों को। यह तो कहे, भाई! ऐसा

होगा आठवें, दसवें में। यहाँ तो चौथे गुणस्थान से बात चलती है। समझ में आया?

ऐसा जो ध्यान जमा है राग आर्त और रौद्रध्यान में, उसे छोड़कर आत्मा में जाना, उसे यहाँ धर्मध्यान और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। कहो, यहाँ ऐसे मन्दिर बनाये और यह सब परमागम २४-२४ लाख के मन्दिर बने, इसलिए मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं—ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐई! उस समय का शुभभाव हो तो पुण्यबन्ध का कारण है, बस। परद्रव्य सन्मुख। आहाहा!

मुमुक्षु : वह शुभभाव हो तो उसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो। यह तो शर्त। वरना मान के लिये हो कि हमने किया... हमने किया... देखो, हमारी अस्ति में हुआ। देखो, वरना यहाँ होता? यह सब अभिमान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खोटी बात है। वह दरबार कहते थे। कौन सा गाँव? पाँचवडा के। पाँचवड़ा के दरबार थे न एक? अपने यहाँ आते थे। गुजर गये बेचारे। देखो! महाराज! यह सोनगढ़ में आप आये तो यह सब हुआ। मैंने कहा, यह होनेवाला था, वह हुआ, मुझसे हुआ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? आहाहा! अरे! ज्ञानभाव वह क्या करे? चैतन्यस्वभाव, ज्ञानभाव, वह क्या करे? क्या पर को करे? पर को चिने? पर की महत्ता में स्वयं प्रसन्नता माने? आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात!

चैतन्यस्वभाव ज्ञान और आनन्द जिसका स्वरूप है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, उसे राग का प्रेम और राग की रुचि नहीं रहती। आसक्ति हो, वह अलग बात है। समझ में आया? आसक्ति और रस दो अलग चीज़ है। राग का रस, वह मिथ्यात्वभाव है और राग की आसक्ति, वह चारित्रदोष है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग कहे कौन? ... लोग कहे। तथापि हम यह करते हैं सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण। धूल भी नहीं सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण। राग की क्रिया है। यदि शुभराग करता हो तो। पुण्यभाव

है मिथ्यात्वसहित। मिथ्यात्व की तो बड़ी विपरीतता पड़ी है। आहाहा! जिसे राग का रस है, उसे मिथ्यात्व तो पड़ा है। तेरी कौनसी क्रिया उसमें गिनती में आवे? **निश्चल ठहरता है।** लो!

★ ★ ★

गाथा - १२४

आगे कहते हैं कि ध्यान में जो परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्मा का स्वरूप है... मूल तो ध्येय-ध्यान में शुद्धस्वरूप है, परन्तु **उस आराधना में नायक (प्रधान) पंच परमेष्ठी हैं, उनका ध्यान करने का उपदेश करते हैं:—**दोनों के ध्यान का उपदेश है। अपने शुद्ध स्वरूप का भी और उसमें न रह सके तो पंच परमेष्ठी का।

झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे॥१२४॥

अर्थ :- हे मुने! तू पंच गुरु अर्थात् पंच परमेष्ठी का ध्यान कर। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु यह धर्मात्मा, यह पूर्ण हुए वे अरिहन्त और सिद्ध। साधकरूप से विराजमान वे आचार्य, उपाध्याय, साधु। शुद्ध आत्मा के आनन्दस्वरूप के आराधक... आहाहा! उनका ध्यान कर कि ओहो! कैसी उनकी दशा है! **यहाँ 'अपि' शब्द शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान को सूचित करता है।** और वह पंच परमेष्ठी का स्वरूप ही तेरा है अन्दर, उसका ध्यान कर। आहाहा! 'अपि' शब्द है न? **'पंच वि'** ऐसा कि यह और यह। ऐसे दो। **'पंच वि'** और आत्मा शुद्धात्मा। आहाहा!

शुद्धात्मा, वह कहे दिखता नहीं, दिखता नहीं परन्तु तूने देखने का प्रयत्न कब किया है तो दिखाई दे नहीं? समझ में आया? वस्तु मौजूद है, उसकी ओर के देखने के ध्यान बिना वह दिखाई कैसे दे? वह देखने जाये पर अकेला शब्द, रूप, रस, गन्ध को। उसमें देखने में यह कहाँ मिले? शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उसे जानने जाये, उसमें रुके, उसमें यह कहाँ मिले वहाँ? वह तो पाँच शब्द, रूप, रस, गन्ध और उनके प्रति राग, उससे रहित चीज़ है वह तो। इसलिए कहते हैं कि **तू पंच गुरु अर्थात् पंच परमेष्ठी**

का ध्यान कर। यहाँ 'अपि' शब्द शुद्धात्मस्वरूप के ध्यान को सूचित करता है। यह शुद्धस्वरूप पंच परमेष्ठी शुद्धस्वरूप है और तेरा भी शुद्धस्वरूप है अन्दर, उसका ध्यान कर। आहाहा! देखो न, भावपाहुड़ में... यहाँ तो मोक्ष का भावपाहुड़ है न।

पंच परमेष्ठी कैसे हैं ? मंगल... हैं वे। आहाहा! है न अन्दर, देखो न! **'मंगलचउ-सरणलोयपरियरिए' पाप के नाशक अथवा सुखदायक...** है। आहाहा! पंच परमेष्ठी— अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, यह सब आत्मा की दशायें हैं। आत्मा की पूर्ण दशा, वह अरिहन्त और सिद्ध। साधकदशा, वह आचार्य, उपाध्याय, साधु। आहाहा! **मंगल अर्थात् पाप के नाशक... 'मंग'** है न **'मंग'** सुख, **'मंग'** अर्थात् सुख ऐसा। पाप को गाले। **'मम'** अर्थात् पाप और **'गल'** अर्थात् गाले। अथवा फिर सुखदायक कहा। **'मंग'।** अस्ति-नास्ति की। **और चउशरण अर्थात् चार शरण...** है वह। अन्तर में स्वरूप तेरा है, वह पंच परमेष्ठीस्वरूप ही तू है अन्दर। आहाहा! यह शरण है।

लोक के प्राणियों से अरहन्त, सिद्ध, साधु, केवलीप्रणीत धर्म, ये परिकरित अर्थात् परिवारित हैं— लोक के प्राणियों में अरिहन्त, सिद्ध, साधु, केवलीप्रणीत धर्म उस सहित है। ऐसा धर्मसहित है, वह लोक के प्राणियों में उत्तम यह है, ऐसा कहते हैं। लोक के प्राणियों में पाँच पद हैं, वे उत्तम हैं। **नर-सूर-विद्याधरसहित हैं, पूज्य हैं,...** यह पंच परमेष्ठी तो मनुष्य के राजा, देव और विद्याधर से पूज्य हैं वे तो। ओहोहो! **इसलिए वे लोकोत्तम कहे जाते हैं,...** लो! मांगलिक, शरण और लोकोत्तम। उस परिवारसहित कहा। परिवार (अर्थात्) उनके सहित हैं, ऐसा। आहाहा! **आराधना के नायक हैं,...** शुद्ध स्वरूप को सेवन में वे पंच परमेष्ठी नायक हैं, प्रमुख हैं। आत्मा के शुद्धस्वरूप के आराधना में वे प्रमुख हैं। कोई कहे कि यह अरिहन्त और सिद्ध तो जैन के हैं। यहाँ तो आत्मा का जो स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसके आराधनेवाले, उन्हें पंच परमेष्ठी कहते हैं।

आराधना के नायक हैं, वीर हैं,... 'वीरे' कर्मों के जीतने को सुभट हैं... आहाहा! कर्म और अशुद्धभाव को नाश करने के लिये सुभट हैं। **विशिष्ट लक्ष्मी को प्राप्त हैं...** खास आनन्द और ज्ञानरूपी लक्ष्मी जिन्हें प्राप्त हुई है **तथा देते हैं।** दूसरों को भी देने में वे निमित्त हैं। आहाहा! अन्यत्र कहीं अनन्त आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी जिन्हें प्राप्त

नहीं, वे क्या दें? आहाहा! **विशिष्ट लक्ष्मी को प्राप्त हैं...** आहाहा! यह धूल की नहीं। विशिष्ट अर्थात् खास। अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त ज्ञान, ऐसी खास लक्ष्मी जो आत्मा की, उसे वह प्राप्त हुए परमात्मा हैं पाँचों ही परमेष्ठी और दूसरों को भी वे देते हैं। यह आया था पहले। देव-देव। देव दे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

मुमुक्षु : ददाति इति देव।

पूज्य गुरुदेवश्री : ददाति इति देव। निमित्त की बात है। जिसे मिले उसे ददाति, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि वे समझावे तो यही समझावे न। कहीं दूसरा कहते हैं वे? ऐसा। भाई! तेरा आत्मा हमारी पर्याय से भी पूर्ण पर्याय का धनी है अन्दर में। आहाहा! ऐसी शुद्धता का सागर है। केवलज्ञान की लक्ष्मी भी जिसमें अनन्त पड़ी है। जिसे दृष्टि में लेने से, उसका स्वीकार होने से उसे केवलज्ञान प्रगट होता है। ऐसा तेरा आत्मा है— ऐसा भगवान पंच परमेष्ठी बतलाते हैं।

इस प्रकार पंच परम गुरु का ध्यान कर। लो! यह तो अपने आ गया है वहाँ मोक्षपाहुड़ में। पंच परमेष्ठी भी तू है। चार शरण आदि भी तू है। आत्मा शरण है। यह सब आया था, नहीं? आराधना। अन्तिम गाथा यह आयी थी। मोक्ष (पाहुड़) की अन्तिम गाथा। आराधना, वह तू है। तेरी आराधना। आहाहा! तू बड़ा देव है। राग के प्रेम में उसे दिव्यता भासती नहीं। अल्पज्ञदशा के अभिमान में वर्तमान कुछ ज्ञानादि का क्षयोपशम हो, रागादि हो शुभ, उसके अहंपने में यह त्रिकाल महाप्रभु है, ऐसा इसे भासित नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! यह पंच गुरु का ध्यान अथवा पंच गुरुस्वरूप तू, ऐसे शुद्धात्मस्वरूप का ध्यान कर। आहाहा! यह चौदह पूर्व और बारह अंग में यह कहना है। भगवान की वाणी बारह अंग की, (उसमें) यह कहना है, वीतरागभाव प्रगट कर। वह कब होगा? कि स्वरूप का आश्रय करे तो। आहाहा! वह कहे, 'दान, शील और तप धर्म के चार प्रकार।' ऐसा करके धर्म वर्णन करते हैं। वह तो शुभभाव की बात है। दान, शील। बाहर का शील। ऐसा कि तुम यह करो। ...और ऐसा कहते हैं। दान, शील, तप की ... परन्तु वह तो शुभभाव है। उसे भी खबर नहीं और तुझे भी खबर नहीं कि धर्म क्या है। आहाहा!

मुमुक्षु : आचार्य भगवान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े नाम दे तो कौन इनकार करे। वह आता है न, नहीं उसका? ... आता है न पुस्तक में, नहीं? यह ...लक्ष्मी। लक्ष्मीचन्द भीख माँगता देखा और यह....

मुमुक्षु : लक्ष्मी .... भीख माँगे...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। आहाहा!

इस जगत में आत्मा की सेवा करके, आराधन करके पूर्ण पद को प्राप्त हुए, वे अरिहन्त और सिद्ध। और प्राप्त करने की तैयारीवाले हैं, वे आचार्य, उपाध्याय, और साधु। लो! आहाहा! यह कोई पक्ष के नहीं। यह गुण के सेवन करनेवालों के यह पद हैं। भगवान आत्मा का पद, उसके सेवन करनेवालों की इस पद की स्थिति है। आहाहा! ऐसे आत्मा का जिसने आराधना किया है, उसे तू सेव, उसका तू ध्यान कर अथवा तू स्वयं ही पंच परमेष्ठीस्वरूप है, उसका तू ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। यह परन्तु यह कठिन। ध्यान करना, वह मोक्ष का मार्ग। कुछ करना, व्रत, तप, अपवास-बपवास। वह तो सब शुभभाव है। बाहर का ऐसा न करना, वह शुभभाव है। वह कहाँ ध्यान है, वह तो आर्तध्यान है। आहाहा! धर्मध्यान तो वस्तु का स्वभाव, धर्म जिसका स्वभाव है शुद्ध चैतन्य, उसक ध्यान, उसे धर्मध्यान कहते हैं। अब यह बात इसे नजर में आवे नहीं, महिमा भासित हो नहीं और अपने शुभभाव की हीनता दिखाई दे नहीं। उसे महत्ता देकर बैठे, अब क्या करना? कहाँ जाना? आहाहा!

भावार्थ :- यहाँ पंच परमेष्ठी का ध्यान करने के लिये कहा। भावार्थ। **उस ध्यान में विघ्न को दूर करनेवाले चार मंगलस्वरूप कहे...** लो, ऐसा कहा। ध्यान में विघ्न (दूर) करनेवाले चार मंगलस्वरूप। **ध्यान में विघ्न को दूर करनेवाले चार मंगलस्वरूप कहे...** वह दूर करनेवाले है। **विघ्न को दूर करनेवाले...** है न यहाँ तो? **विघ्न को दूर करनेवाले चार मंगलस्वरूप कहे, वे यही हैं,...** वे चार यही हैं। अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली पण्णंतो धर्म। विघ्न में दूर करनेवाले वे मंगलस्वरूप हैं, ऐसा कहते हैं, ध्यान में। यह चार शरण है। **और 'लोकोत्तम' कहे हैं...** लोक में उत्तम में उत्तम पदार्थ

हो तो वह पंच परमेष्ठी है। आहाहा! **वे भी इन्हीं को कहे हैं।** उत्तम तो उन्हें ही कहा है।

इनके सिवाय प्राणी को अन्य शरण या रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है... आहाहा! उनका स्वरूप विचारे, ध्यावे तो वह शरण है। इसके अतिरिक्त कोई शरण है नहीं। आहाहा! मरण के समय ऐसे शरीर में पीड़ा हो, डॉक्टरों ने हाथ धो दिये हों कि अब इसमें बचेगा नहीं। आहाहा! अकेला खाट में तड़पता हो, दवा बन्द हो। कान से सुने कि दवा बन्द कर। अब इसे चाहिए हो वह दो क्योंकि अन्तिम है, ऐसा कहे। हलुवा माँगे तो हलुवा दो, फलाना दो। परन्तु शरण क्या है, उसकी कहीं खबर है? ऐसे में मैं क्या करूँ? कहाँ नजर डालूँ? नजर डालनेयोग्य तो अन्दर चिदानन्द निधान है। जहाँ शरण है, मांगलिक है, उत्तम है। आहाहा! उसका माहात्म्य आवे नहीं और वहाँ वह जा सके नहीं। यह तो कहे, मुझे सुनाओ, मरते हुए कुछ सुनाओ। सुनाकर भी तुझे क्या करना? तू सुन न तुझे अन्दर। सुनने में तेरा राग-विकल्प रहेगा। आहाहा!

और लोक में उत्तम भी ये ही हैं। आराधना दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ये चार हैं, इनके नायक (स्वामी) भी ये ही हैं,... सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, यह निर्विकल्प दशा, इसकी आराधना-सेवा करनेवाले भी भगवान पंच परमेष्ठी हैं। **इसलिए ध्यान करनेवाले के लिये इनका ध्यान श्रेष्ठ है। शुद्धस्वरूप की प्राप्ति इन्हीं के ध्यान से होती है,...** अर्थात् उनका ज्ञान करे न कि यह वास्तविक तत्त्व है। वह जाये अन्दर में, इसलिए उसका शरण कहा जाता है वह। **इसलिए यह उपदेश है।** लो! आहाहा! लोग कहे, परन्तु हमारे करना क्या इसमें? घर में जाकर अब करना क्या? आप सब यहाँ सुनाओ लो। कुछ कहे कि भाई! सामायिक करना दो घड़ी, प्रौषध करना, फलाना अपवास करना, दान देना, आंबेल करना तो घर में जाकर करे कुछ नया। परन्तु यह तो अब अनन्त बार किया, सुन न! आहाहा! यह तो शुभभाव की क्रिया है, राग मन्द हो तो। अन्तर स्वरूप चैतन्य है, तू वहाँ जा, तेरा आत्मा तो वहाँ ही है। वहाँ जाना था। वहाँ घर में जाकर क्या करना? वहाँ भी आत्मा की ओर झुकाव है, वह करना। आहाहा!

योगसार में आता है न 'गृहकाम करते हुए हेयाहेय का ज्ञान।' आता है, दो गाथायें आती हैं। एक १८ और एक ६५। तब वे और इनकार करें। गृहस्थाश्रमी को शुद्ध

ध्यान होता नहीं, शुद्धभाव होता नहीं। लो! आहाहा! बापू! आत्मा न, भाई! आत्मा है, उसके अवलम्बन से उसे शुद्धभाव हुए बिना रहता ही नहीं। फिर भले चौथे में हो, पाँचवें में हो, गृहस्थाश्रम में हो। चक्रवर्ती के लिये आता है, नहीं? भरतेश वैभव में आता है। छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में (रहते थे) ... उसमें तो ऐसा आता है। विषय लिया हो और तुरन्त ध्यान में बैठ जाये वापस। ऐसा आता है भरतेश वैभव में। तुरन्त ध्यान में। राग हो गया, वह हो गया अस्थिरता का, रस नहीं था। छूटकर, (वापस ध्यान में बैठे)। ऐसा भरतेश वैभव में आता है। राग हुआ। जाना कि यह हुआ, दूसरा क्या? परन्तु अब? फिर ध्यान किया उसने तुरन्त ही वह। आहाहा! तुरन्त ही उससे छूटकर स्वरूप में (स्थिर होता है)। क्षायिक समकिती, क्षयोपशम हो तो भी क्या?

★ ★ ★

गाथा - १२५

आगे ध्यान है वह, 'ज्ञान का एकाग्र होना' है,... देखो! व्याख्या की है वापस। ध्यान अर्थात् क्या? **इसलिए ज्ञान के अनुभवन का उपदेश करते हैं:**—ध्यान अर्थात् क्या?

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति॥१२५॥

आहाहा! **अर्थ :- भव्यजीव...** मोक्ष के लिये योग्य प्राणियों **ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल को सम्यक्त्वभावसहित पीकर...** आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, वह ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल है। ज्ञान की पर्याय को प्रगट करके निर्मल... शुद्ध निर्विकल्प ज्ञान, ऐसा ज्ञानमय निर्मल शीतल। निर्मल और ठण्डा जल को सम्यक्त्वभाव -सहित—पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीतिसहित ऐसे ज्ञान को पी न, भाई! कहते हैं। आहाहा! परन्तु इसका दूसरा रास्ता? ऐसा पूछते थे सब। यह तो बड़ा ऊँचा रास्ता कहा जाता है। पहला ही यह है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप से प्रवाह में विराजमान है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ऐसा उसका स्वरूप। उसकी अन्तर एकाग्रता

का नाम ध्यान। ध्यान कोई बीच में विचार करे और प्रकाश दिखाई दे और लाल दिखाई दे और सफेद दिखाई दे... आहाहा! वह ध्यान नहीं।

ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल को... आहाहा! उसे '**भावेण**' शब्द पड़ा है न वह? उसका अर्थ किया सम्यक्त्वभाव। '**भावेण**' शब्द पड़ा है न। वह '**पाऊण भविय भावेण**' यह अर्थ किया। मूल यहाँ भाव का अर्थ सर्वत्र जिनसमकित—जिनसमकित लेते हैं ये। समझ में आया? **सम्यक्त्वभावसहित...** अर्थात् '**भविय भावेण**' '**भविय णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भावेण**' ऐसा। आहाहा! रचना भी! शुद्ध चैतन्य-स्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द की प्रतीति अनुभव में, ऐसे सम्यक्त्वभावसहित, यह भाव कहा यहाँ। समझ में आया? वह कहे, 'दान, शील, तप, भावना धर्म के चार प्रकार।' कौनसा भाव? वह शुभभाव। मन्दिर बनाना और यह सिद्धचक्र का यह करना, वह करना। अब वह तो संसार—शुभभाव है। कठोर मार्ग, भाई!

यहाँ तो सम्यक्भावसहित '**णाणमयविमलसीयलसलिलं**' शीतल जल को पी। आहाहा! '**भविय**' हे भव्यजीव! ऐसा। ज्ञानमयी विमल—निर्मल, विकल्पवाला ज्ञान नहीं। आहाहा! स्वसंवेदनज्ञान—स्व—अपने स्वभाव को प्रत्यक्ष जाने, वेदन करे, ऐसा विमल और शीतल '**सलिलं**' शीतल सलिल अर्थात् पानी। ऐसे पानी को समकितसहित पाकर, ऐसा। समकित और सम्यग्ज्ञान दोनों डाले। आहाहा! भावपाहुड़ है न? सम्यग्दर्शन, वही वास्तविक भाव है। शुभाशुभभाव, वह अशुभभाव, अशुद्धभाव। आहाहा! वहाँ ऐसा पूछा था कि अगास में कि यह बात की, परन्तु इसका कोई साधन बाहर? कोई साधन है? ऐसा पूछता था, अगास। यह भक्ति और यह और वह। यह सब साधन-फाधन कुछ नहीं। व्यवहार साधन का आरोप देकर कहा जाता है उसे। वह साधन है नहीं।

यहाँ तो ऐसा शीतल जल भगवान आत्मा। शीतल अर्थात् शान्त, उपशमरस से भरपूर ज्ञान। आहाहा! अकषायस्वभाववाला जो ज्ञान, उसे समकित के भावसहित पी। आहाहा! तेरे जन्म-मरण का नाश हो जायेगा। आहाहा! उसमें भव का अभाव होगा। बाकी सब बातें। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! क्या यह मन्दिर बनाया और तुमने यह सब किया न?

मुमुक्षु : बहुत भाग्यशाली, रुपये बहुत इकट्ठे हो गये। मजा करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खुशहाली बतलाने को आये थे न फिर पीछे से चार-पाँच व्यक्ति। पाँच व्यक्ति नहीं आये थे? खुशहाली बताने आये थे न।

मुमुक्षु : रुपये मिले इसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : पचास हजार का मन्दिर हुआ और लाख मिले। उसमें चालीसेक हजार का खर्च होगा, चालीस-पैंतालीस का। वह कहीं गिना नहीं, ऐसा कहे। पूँजी तो आत्मा में पड़ी है, वह हो, वह पूँजी कहलाये। आहाहा! जिसने अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान को स्वीकार किया भानसहित में, उसे पूँजी हुई। उसे पूँजी ताजी दिखाई दी। आहाहा!

देखो न! आचार्य क्या कहते हैं? भव्य! हे मोक्षमार्ग के योग्य! आहाहा! अभव्य को कहते नहीं। मोक्षमार्ग के योग्य भव्य! तू सम्यग्दर्शन के भावसहित सम्यग्ज्ञानरूपी जल को पी। आहाहा!

मुमुक्षु : यह ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया। स्थिर हुआ न उतना। सब सुख, अनन्त गुण का अंश सब आया। अनन्त गुण का आया इकट्ठा। आहाहा! उसे पहले निर्णय तो करे कि मार्ग तो यह है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग है नहीं। आहाहा! वे तो ऐसा कहे, भाई थे न—तंबोली थे तब, नहीं? जामनगर। उसको लेकर आये थे सबमें। उसे और खबर पड़ी तो आये थे। नहीं तो न आवे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किया करे नौकरी उसमें क्या? उसे लगे वह ठीक। आहाहा! यह तुम्हारी सब गलती, लोगों को गलती होती है। कल्याण का मार्ग रुक जाता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब कल्याण का मार्ग है, ऐसा। कहा, यह एक मार्ग सच्चा, बाकी सब खोटे हैं। तुझे सुनना हो तो सुन। ऐसा कहा। यह एक ही मार्ग सच्चा कहते हैं कल्याण का। बाकी सब कहते हैं, यह करो। (वह) खोटा मार्ग है। आहाहा! वह था न साथ में क्या कहलाये तुम्हारे? बनिया रतिलाल। ...

मुमुक्षु : .... में था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। ... वह आया था सामने। कुछ पैसे हुए हैं। ऐसा है, वैसा है। सबकी ओर से वह बोलता था। कहा, यह मार्ग जो कहते हैं, वह एक ही कल्याण का मार्ग है। बाकी सब तुम्हारे रास्ते अकल्याण के हैं। आहाहा! हिम्मतभाई ने कहा, महाराज ऐसा कहते हैं। इनकार करते हैं। हिम्मतभाई बेचारे सज्जन मनुष्य हैं। उनका भाई काका का, प्रमुख है न। परन्तु बहुत सज्जन मनुष्य। आहाहा! उस समय कहा, महाराज ऐसा कहते हैं कि हमको तुम्हारे साथ चर्चा करना (नहीं) और मार्ग ऐसा... अब तुम्हारे क्या करना है? ... आहाहा!

कहते हैं, अहो! ऐसा जिसे सम्यक्भावसहित ज्ञानजल जिसने पीया, अनुभव किया, ऐसा कहते हैं। वह **व्याधिस्वरूप जरा-मरण की वेदना (पीड़ा) को भस्म करके...** व्याधिस्वरूप जरा। शरीर की जीर्णता-वृद्धावस्था, मरण, वेदना, उसे **भस्म करके अर्थात् संसार से रहित...** मुक्त होता है। **शिव अर्थात् परमानन्द सुखरूप होते हैं।** लो! उस परमानन्दमय आत्मदशा मोक्षदशा उसे प्राप्त होती है। इस मार्ग से प्राप्त होगी, बाकी मार्ग से प्राप्त नहीं होती।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ३, शुक्रवार, ०७-०६-१९७४
गाथा - १२५ से १२७, प्रवचन-१६७

भावार्थ :- जैसे निर्मल और शीतल जल के पीने से पित्त की दाहरूप व्याधि मिटकर साता होती है,... दृष्टान्त है। निर्मल और शीतल जल के पीने से **पित्त की....** पित्त-ज्वर—पित्त-ज्वर। **दाहरूप व्याधि मिटकर साता होती है, वैसे ही यह ज्ञान है...** चैतन्यस्वरूप जो ज्ञान-ज्ञान **वह जब रागादि मल से रहित...** पूजा और व्रतादि का भाव जो है, वह पुण्य है। अपवास आदि का भाव, वह तो पुण्य है; वह धर्म नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहारधर्म तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारधर्म का अर्थ? निश्चयधर्म यहाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा में उसका—ज्ञान का अनुभव करे, तो राग को व्यवहारधर्म कहते हैं। व्यवहारधर्म अर्थात् धर्म नहीं। कहो। आहाहा!

ज्ञान है, वह जब रागादि मल से रहित... राग शब्द से यह पुण्य-पाप के विकल्प भाव **इससे रहित...** ज्ञानस्वरूप आत्मा, ऐसे ज्ञान को अर्थात् आत्मस्वभाव को राग से रहित होकर **निर्मल और आकुलतारहित...** इसका अर्थ हुआ कि शुभ-अशुभराग, वह मल है। पूजा, व्रत, तप आदि का भाव जो विकल्प, वह मल है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोग तो .... करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते हैं परन्तु क्या करे? वह स्वरूप तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यस्वरूप है, उसमें राग कैसा?

यहाँ तो परमात्मा सर्वज्ञदेव वीतराग धर्म कहते हैं। वह तो आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उस ज्ञानस्वभाव में, राग के मल से रहित होकर शीतल अर्थात् शान्त अविकारी परिणाम को अनुभव करे, पीवे, वेदन करे, उसे यहाँ धर्म कहा जाता है। ऐसी बात है। आहाहा! परमात्मा वीतरागदेव सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था, वे परमात्मा भाव में ऐसा वर्णन करते हैं। तेरा भाव चैतन्य ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान...

अर्थात् कि जिसमें राग के विकल्प का आश्रय नहीं, मदद नहीं—ऐसा जो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसे राग के पुण्य-पाप अर्थात् रागरूपी मैल से रहित होकर रागरहित शान्तस्वभाव आत्मा के आनन्द का वेदन करे, उसे भगवान धर्म कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! उसे अभी ज्ञान में निर्णय में भी यह बात लेता नहीं और निर्णय में भी अभी राग से धर्म होता है, इस पुण्य से धर्म होता है, (ऐसा मानता है), उसकी गाड़ी तो वहाँ राग में अटकी है। आहाहा!

मुमुक्षु : सत्कार्य है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्कार्य कहाँ था? काल आया है न, यह सब वह मोरारजीभाई हैं न मोरारजी? कार्यकर्ता।

मुमुक्षु : मोरारजी देसाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : देसाई। वहाँ दो महीने पहले राजकोट थे न। रामजीभाई के यहाँ ढेबर भाई आये थे और एक छगनभाई जोशी, हरिजन के सेवक। व्याख्यान सुनने आवे बहुत बार, परन्तु यह सुनकर फिर मोरारजी को लिखा कि कानजी मुनि तो, यहाँ दिगम्बरी एक कानजी मुनि है। वे मुनि कहें। बेचारों को कहाँ खबर मुनि है। सम्प्रदाय की दृष्टि से। वे ऐसा कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह धर्म नहीं, वह सत्कार्य नहीं। कल बड़ा आया है।

मुमुक्षु : गीता में ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गीता में लिखा है, ऐसा लिखा है। गीता में भी प्रज्ञास्थित जीव को शुभाशुभभाव और आरम्भ सब, उससे रहित हो, तब वह प्रज्ञा प्रगट होगी। परन्तु उनकी बात रखी है, उसने रखी है। वह वापस गिनी नहीं। बाद में फिर वह अनासक्ति से करना, यह रखा। अनासक्ति से सत्कार्य करना। अर्थात् कि पर का भला करना, पर को सुखी करना। परन्तु पर का कर सकता ही नहीं वहाँ। आहाहा! परवस्तु है, वह भिन्न है। भिन्न को भिन्न तत्त्व करे क्या? क्या करे उसे? आहाहा! अरे! इसे अभिमान है न अनादि का कि मैं पर को सुखी करूँ, पर की सेवा करूँ। आहाहा! एक अँगुली भी ऐसे हिले, वह आत्मा के अधिकार से नहीं।

मुमुक्षु : परन्तु शास्त्र में .... सेवा करे, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प आवे और उसे प्रसंग हो और विकल्प आया तो सेवा करे। विकल्प हुआ, इसलिए वह उसे कहे कि तुमको कैसे है ? सेवा करे क्या ? पैर दबा सकता है वहाँ ? आहाहा! कोई बलगम हो, वह ले लेवे, पेशाब करावे, साफ करे—ऐसा करे। वह क्रिया जड़ की है। परन्तु उसे विकल्प आया है, इतना। परन्तु वह विकल्प भी पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तो सभा में इन्द्रों और गणधरों के बीच यह कहते थे। आहाहा! अरे! दुनिया को बैठे नहीं, उसे ऐसा लगे...

यहाँ तो यह कहते हैं। **रागादिक मल से रहित...** अर्थात् शुभ-अशुभभाव जो है, वह मैल है। आहाहा! ऐसे मैल से रहित निर्मल, ऐसा। शुभ-अशुभराग के मैल से रहित ऐसा जो आत्मा का ज्ञान **निर्मल और आकुलतारहित...** वर्तमान शान्तभाव। रागमलरहित और शान्तभावसहित। ज्ञान में एकाग्रता में शान्तभाव जो हुआ, अनाकुल भाव, उसका नाम शान्तभाव। **उसकी भावना कर...** उसमें शान्तभाव में एकाग्र होकर... आहाहा! मार्ग अलौकिक है, भाई! जन्म-मरण को टालने का उपाय अलौकिक है। साधारण मानते हैं, वह बात ऐसी नहीं। वीतराग परमात्मा के घर में वीतरागी बातें हैं। उसका आत्मा ज्ञानस्वरूप है प्रभु। उसमें—ज्ञान में अन्तर एकाग्रता, वह राग के मलरहित और एकाग्रता अर्थात् निर्मल परिणाम शुद्ध हुए, अनाकुल शान्त परिणाम, आहाहा! उसकी **रुचि, श्रद्धा, प्रतीति से पीवे,...** निर्विकल्प शान्तरस को पीवे। आहाहा! ऐसा मार्ग लोगों को कठिन लगे। एक तो मानो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं। कमाना, खाना, पीना और भोग में सब समय जाये। थोड़ा समय मिले सुनने को, उसमें यह क्या चीज़ है, वह सुनने को मिलती नहीं। भले पाँच-पचास लाख इकट्ठे हों धूल। धूल के सेठिया होकर मरकर जाये नीचे, ढोर में जाये। आहाहा! ऐई! गिरधरभाई! आहाहा! प्रभु! आत्मा अन्दर महा श्रेष्ठ तत्त्व है। चैतन्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, वह जाननस्वभाव क्या करे ? किसे करे ? जाननेवाली आँख किसे करे ? ऐसे चैतन्यस्वभाव पर का करे या राग को करे, वह ज्ञान का स्वभाव कहाँ है ? आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! तृषा लगी हो और जैसे

शीतल जल—पानी पीवे तो उसकी तृषा मिटकर पित्त मिटे, इसी प्रकार जिसे जन्म-जरा-मरण व्याधि चौरासी के अवतार लगे हैं....

इससे तन्मय हो... भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव, स्वभाववान स्वयं, परन्तु जिसका ज्ञान त्रिकाल स्वभाव, अविनाशी स्वभाव, उसमें तन्मय वह पर्याय। द्रव्य, वह स्वभाववान; ज्ञान, वह स्वभाव; उसमें एकाग्रता, वह वर्तमान पर्याय। स्वभाववान, वह द्रव्य; ज्ञानस्वभाव, वह गुण और उसमें एकाग्रता, वह पर्याय। आहाहा! यह द्रव्य, गुण और पर्याय को धर्म कहते हैं। आहाहा! पर की सेवा करना, पर का यह करना यह ऐसा कि धर्म है। ऐसा आज आया है कल। उसे (यह) बैठा है। लौकिक लाईन है न।

मुमुक्षु : वह सब सत् कार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्कार्य। सत् तो ज्ञानस्वरूपी ध्रुव सत् है, उसमें एकाग्र होना, वह सत्कार्य है। राग तो असत् है, त्रिकाल स्वरूप में वह नहीं। और त्रिकाल स्वरूप की अपेक्षा से तो यह दया, दान का राग, सत् की अपेक्षा से असत् है। आहाहा! इससे असत् ऐसे मलिन परिणाम से भिन्न पड़कर ज्ञानस्वरूपी निर्मल जल, शान्त अनाकुल, आनन्द का जल पी, भाई! और जन्म-जरा-मरण के रोग को टाल। आहाहा! लोगों को भी यह शरीर ठीक मिले, कुछ पाँच-पचास लाख पैसे आवें, लड़के दो-पाँच कुछ ठीक हो, कमायी कुछ ठीक हो दो लाख, पाँच लाख की (तो) मानो हम सुखी हैं। धूल भी नहीं, सुन न! दाल जैसे सिंक गया है (बहुत दुःखी हुआ है)। ऐई! तंबोली! यहाँ तो ऐसी बात है, भगवान! राग के अंगारों में सींक गया है। यह मेरा... मेरा... मेरा... मेरा... यह राग का अंगारा है अन्दर। अंगारा समझते हो न? अग्नि। आहाहा! यह अंगारों में जल रहा है, जल रहा है यह। मूर्ख होकर मानता है कि हम सुखी हैं। आहाहा!

सुख तो प्रभु आत्मा के आनन्द का जल पीने से सुखी होगा। भले नरक में नारकी हो। आहाहा! सातवें नरक का नारकी रवरव नरक में रहा हुआ अपरिठाणे, परन्तु जिसे अन्तर ज्ञानजल का सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है... आहाहा! बाहर के संयोग की प्रतिकूलता का पार नहीं, परन्तु अन्दर में संयोगीभाव से भी भिन्न पड़कर, संयोगी चीज़ तो एकओर रह गयी परन्तु संयोगी शुभ और अशुभभाव से भिन्न पड़कर, यह ज्ञानजल का अनुभव

करता है, सुखी है। और यहाँ पचास-पचास लाख के बँगले हों, पाँच-पाँच, दस-दस करोड़ रुपये पैसे हों, रूपवान स्त्री हो, होशियार पुत्र हों। दुःखी है बेचारा वह।

मुमुक्षु : दुःखी और बेचारा दोनों?

पूज्य गुरुदेवश्री : भिखारी है। ऐई! यहाँ तो ऐसी बात है, भाई! आहाहा! और आत्मा की शान्ति का जाननेवाला—वेदनेवाला वह बादशाह है। समकिती, आत्मा का बादशाह है, अज्ञानी पर का बादशाह मानकर कषाय की अग्नि से सिंकता है। अरे! उसे खबर नहीं। उसकी उसे खबर नहीं। पागलरूप से स्वच्छन्दी होकर मानता है (कि) हम सुखी हैं। भाई! दुःख से जल गया है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य क्या कहते हैं? '**णाणमयविमलसीयल-सलिलं**' यह पानी। चैतन्य जलहल ज्योति प्रभु विराजता है, उसमें एकाग्र होकर राग के मलरहित आकुलतारहित शान्तभाव को... आहाहा! पी। है न? '**पाऊण**' आहाहा। '**भविय**' है भव्य! '**भावेण**' सम्यग्दर्शनसहित, ऐसा। '**भावेण**' अर्थात्। आहाहा! आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, परमेश्वरस्वरूप है, ईश्वर स्वयं ही अपना ईश्वर है। आहाहा! ऐसे ईश्वर को, अन्दर उसके ईश्वर की ईश्वरता की सम्हाल कर और राग की मलिनता को छोड़, तुझे आनन्द होगा, तुझे सुख होगा, तुझे समाधान प्राप्त होगा। आहाहा! उसे यहाँ परमात्मा वीतरागदेव उसको मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

श्रद्धा... भावना। यह ज्ञानस्वभाव वस्तु, वस्तु वह स्वभाववान और ज्ञानस्वभाव आत्मा, उसकी भावना—एकाग्र होकर। आहाहा! **रुचि, श्रद्धा, प्रतीति से पीवे,...** ऐसा। सम्यक् भाव था सही न अन्दर? '**भविय भावेण**' इसलिए यह डाला इसमें। ऐसा ही है इसका अर्थ, नहीं? उसका अर्थ। आहाहा! अर्थ करनेवाले भी गाथा के भाव का ही अर्थ करते हैं। दुनिया को विषयों में, पैसे में, शरीर में सुख भासित होता है, वह मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्वभाव है, मिथ्याश्रद्धा है। आत्मा में आनन्द का भासन होना। आहाहा! मैं सुखस्वरूप ही हूँ। राग के विकल्प से भिन्न पड़कर, चिदानन्दस्वभाव को अवलम्बकर जो शान्तभाव, निर्मलभाव, रागरहित भाव प्रगट हो, वह मोह-क्षोभरहित भाव को परमात्मा ने जैन धर्म कहा है। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। यह सब बाह्य व्रत लेकर बैठे हों न! अब उन्हें कहे कि व्रत धर्म नहीं। कठोर लगे। वस्तु यह है,

बापू! तेरे हित की बात है, भाई! ठगा जायेगा, मर जायेगा उसमें। यह पुण्यभाव का भाव, वह भी राग की मन्दता हो तो पुण्य होगा, उससे कहीं धर्म नहीं। आहाहा! जिनेश्वरदेव का धर्म तो राग की पुण्य-पाप के हैं न... नीचे अर्थ है। देखो!

लौकिक जन और अन्यमति कई कहते हैं। लौकिक और अन्यमति। अन्यमति और जैन में भी लौकिक मान्यतावाले। आहाहा! **पूजा आदिक शुभ क्रियाओं में व्रत क्रियासहित, वह जिनधर्म है।** ऐसा अज्ञानी कहते हैं। आहाहा! **परन्तु ऐसा नहीं है। जिनमत में जिनभगवान ने इस प्रकार कहा है। पूजादिक में व्रतसहित होना, वह तो पुण्य है।** ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा! यह लोग कहते हैं कि सत्कार्य, वह शुभभाव, वह धर्म है। लो! वहाँ तक आया था कल, लिखा है उसमें। आहाहा! क्या करे, यह लौकिक लाईन में। लौकिक में यह मान्यता है। यह दूसरी बात है, बापू! ऐसे भाव तो अनन्त बार किये हैं व्रत के, पूजा के, भक्ति के, उनसे कोई पुण्यादि से स्वर्ग का देव हो कुछ, बड़ा अच्छा हो, बाकी पुण्य हो तो धूल का सेठिया हो, यह धूल के—पैसे के। धूल के सेठिया, मिट्टी के सेठ। आहाहा! लाखपति और करोड़पति, ऐसा कहते हैं न! तो लाख और करोड़ तो जड़ है, उसका पति हो धूल का। आहाहा! चैतन्य का पति न हो वह। आहाहा!

कहते हैं, देखो! **पूजादिक और व्रत वह पुण्य है, उसमें पूजा आदि शब्द से भक्ति...** यह भगवान की भक्ति भी पुण्य है। तीन लोक के नाथ परमात्मा समवसरण में विराजते हैं, उनकी भी आरती उतारना और भक्ति, वह पुण्य है; धर्म नहीं। वह भाव आवे। वीतरागी मुनि को भी वह भाव पूजा का (भावपूजा का) आवे, परन्तु हैं पुण्य। वह धर्म नहीं। आहाहा! **भक्ति, वन्दना,...** देव-गुरु-शास्त्र को वन्दन करना, वह पुण्य है। है? कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! लोग नहीं मानते न। हीन कर डाले, ऐई! सोनगढ़वालों ने तो व्यवहार का लोप किया। एकान्त है। अरे! भगवान! सुन न! व्यवहार के पुण्यपरिणाम, वे तो धर्म नहीं, अधर्म है। आहाहा! आवे सही, समकिती को, ज्ञानी को भी ऐसा पूजा, भक्ति का भाव आवे सही, परन्तु व्यवहार है बन्ध का कारण। आहाहा! जितने अंश में ज्ञानस्वभाव भगवान में तन्मय और एकाग्र हुआ हो, उतने अंश में उसे धर्म है। वस्तु तो यह है परन्तु अब....

अरे! यह चौरासी के अवतार में दुःखी है। आहाहा! पहले क्षण में यहाँ राजा हो चक्रवर्ती और दूसरे क्षण में सातवें नरक का नारकी हो। आहाहा! ऐसे अनन्त भव इसने किये। परन्तु भूल गया। पहले क्षण में हीरा के पलंग में सोता हो। ढोलियो समझे? पलंग। पलंग-पलंग। हीरा के पलंग में सोता हो और देव सेवा करते हों। चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, लो! आहाहा! पर्दा गिरा, आँख मींची तो सातवें नरक में गया। आहाहा! रवरव नरक में। इसी प्रकार तो अनन्त बार अनन्त जीव गये हैं। नहीं गये, ऐसे एकेन्द्रिय जीव को भी भाव तो मिथ्यात्व का ही पड़ा है। आहाहा! ऐसे जन्म-जरा और मरण, ऐसे दुःख को टालने का उपाय तो ज्ञान के जल में रमना, वह है।

यहाँ कहा न, **भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य,...** लो भाई! गुरु की वैयावृत्य करना। मुनि का आता है, प्रवचनसार (में)। वह शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। परद्रव्य के ऊपर का लक्ष्य जाये, उसमें राग ही होता है। स्त्री, कुटुम्ब के ऊपर लक्ष्य जाये तो पाप-राग होता है। देव, गुरु, धर्म के ऊपर राग जाये तो पुण्य होगा। आहाहा! परद्रव्य के आश्रय में कभी विकाररहित दशा नहीं होती। स्वद्रव्य का आश्रय करे, तब विकाररहित दशा होती है। आहाहा! अरे! इसे गले उतारना कठिन पड़े, यह बैठना कठिन पड़े इसे। सुनने को मिले नहीं। ऐसा का ऐसा बेचारा दुःखी होकर चार गति में भटक रहा है। उसे परमात्मा अकषाय करुणा द्वारा कहते हैं, प्रभु! तू सुन न एक बार, भाई! आहाहा! ऐसे जो वन्दन, वैयावृत्य, वह पूजा में जाते हैं। यह देव, गुरु और शास्त्र को अर्थात् परद्रव्य के आश्रय से, ऐसा कहते हैं। यह **देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है और उपवास आदि व्रत है, वह शुभक्रिया है। इनमें आत्मा का राग है, वह शुभपरिणाम है। इससे पुण्यकर्म होता है। उसे पुण्य कहते हैं, इसका फल स्वर्गादि है।** वह कहीं आत्मा का फल उसमें नहीं। आहाहा!

जरा-मरणरूप दाह-वेदना मिट जाती है... भाई! तू जिसे सुख मानता है, वह दुःख है। विषयों में, भोग में, इज्जत में, पैसे में, लक्ष्मी में वह सुख तू मानता है, भगवान! वह दुःख है, वह दाह है। आहाहा! उस दाह के दुःख को मिटाने का उपाय, आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप प्रभु की एकाग्रता से शान्तरस को पीओ। तेरी जन्म-जरा-मरण की पीड़ा मिट जायेगी। जैसे शीतल जल पीने से दाह मिटेगी, वैसे भगवान आत्मा के आनन्द के

अनुभव से संसार का दाह मिट जायेगा। आहाहा! **और संसार से निवृत्त होकर सुखरूप होता है,...** संसार-विकल्प सब दुःखरूप है। आहाहा! उससे **निवृत्त होकर सुखरूप होता है,...** आनन्दरूप आत्मा होता है। आनन्दरूप पूर्ण होना। आता है न वह चौथी गाथा में, नहीं? नियमसार। मोक्ष अर्थात् महा आनन्द का लाभ। नहीं? नियमसार। पहली लाईन आती है न! महा आनन्द का लाभ, ऐसा आता है। **समस्त कर्मों के नाश द्वारा साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला महा-आनन्द का लाभ, सो मोक्ष है।** नियमसार चौथी गाथा। **समस्त कर्मों के नाश द्वारा साक्षात् प्राप्त किया जानेवाला...** प्राप्त होता **महा-आनन्द का लाभ,...** वह महा आनन्द का लाभ, वह मोक्ष। दुःख का लाभ, वह संसार। आहाहा!

संसार से निवृत्त होकर सुखरूप होता है,... वह यह सुख अर्थात् महा आनन्द का लाभ। **इसलिए भव्य जीवों को यह उपदेश है कि ज्ञान में लीन होओ।** आहाहा! तेरा नाथ आनन्द से विराजता है। प्रभु! वहाँ जा न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परिपूर्ण समृद्धि से भरपूर तत्त्व है। अनादि पड़ा है वह तत्त्व। उसे पर्याय में उसका आश्रय करके उस पर्याय को पी। आहाहा! जैसा शुद्ध अस्तित्व द्रव्य और गुण है, वैसा पर्याय में उस अस्तित्व का परिणमन शुद्ध का करके पी। आहाहा! तुझे पूर्ण आनन्द के लाभ की मोक्षदशा प्रगट होगी। यह बनिया कहते हैं न लाभ मिला। यहाँ तो कहते हैं, महा आनन्द का लाभ, वह मोक्ष। लाभ सवाया, यह बनिया लिखते हैं न सवेरे? दरवाजे के ऊपर लिखे। लाभ सवाया। धूल भी नहीं लाभ सवाया। नूतन वर्ष के दिन लिखे उस दरवाजे के ऊपर। आहाहा! लाभ सवाया तो यह है। महा लाभ आया न? कर्म के नाश से प्राप्त आनन्द का महा लाभ, वह मोक्ष। यह व्याख्या। मोक्ष कोई दूसरी चीज़ नहीं। आनन्द की पूर्ण प्राप्ति का नाम मोक्ष। आहाहा! वह आत्मा के अनाकुल शान्तरस की एकाग्रता द्वारा उसे पीने से मोक्ष मिले, ऐसा है। तेरे व्यवहार और क्रियाकाण्ड से मोक्ष मिले, ऐसा नहीं। आहाहा! **इसलिए ज्ञान में लीन होओ।** आहाहा! भारी गाथा रखी। सवा सौ गाथा। सवाया काम है, लो! सवाया। यह लाभ सवाया। वे बनिया लिखते हैं, वह नहीं।

★ ★ ★

गाथा - १२६

आगे कहते हैं कि इस ध्यानरूप अग्नि से संसार के बीच आठों कर्म एक बार दग्ध हो जाने पर पीछे फिर संसार नहीं होता है, यह बीज भावमुनि के दग्ध हो जाता है:— सम्यग्दर्शनसहित जो भावमुनि। मुनि की व्याख्या सूक्ष्म है, भाई! आत्मा के अनुभवसहित बाह्य में नग्नदशा बन जाये, अन्तर में तीन कषाय का अभाव हो जाये और अकेला आनन्द का वेदन जिसे हो स्वभाव की अपेक्षा से, उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। वे मुनि नग्न होते हैं, जंगलवासी होते हैं। आहाहा! उन्हें मुक्ति होती है। क्योंकि जिसे आत्मज्ञान के भानसहित स्वरूप की रमणता उत्कृष्ट बहुत जमी है, बाह्य में नग्नदशा है। विकल्प उठे तो पंच महाव्रतादि का विकल्प उठे, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा मार्ग! समझ में आया?

जह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे।
तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भावसवणाणं॥१२६॥

अर्थ :- **जैसे पृथ्वीतल पर... 'महिवीढे'** है न? **पृथ्वीतल पर...** इस पृथ्वी के ऊपर **बीज के जल जाने पर...** बीज-बीज **जल जाने पर उसका अंकुर फिर नहीं उगता है,...** बीज जलने के बाद अंकुर नहीं होता। **वैसे ही भावलिंगी श्रमण के...** चारित्र से मुक्ति है न। परन्तु वह चारित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित होता है। चारित्र अन्दर की रमणता होती है। उसकी दशा अवधूत आनन्द में मस्त रहनेवाले होते हैं। आहाहा! और वे जंगल में, वनवास में रहते हैं। यह तो सब बदल गया अभी तो पूरी बात। आहाहा! श्वेताम्बर को तो यहाँ साधु गिना ही नहीं। मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, प्रभु! वस्त्रसहित है, वह तो मुनि द्रव्यलिंग भी नहीं। जैन वीतरागमार्ग में अनादि का स्वभाव के आश्रय से आनन्द प्रगटे, चारित्र में रमणता, उस मुनि की दशा एकदम नग्न होती है। वे जंगल में बसते हैं। गाँव में तो आहार लेने—भिक्षा के लिये आवे। हाथ में आहार (ले)। मुनि को पात्र नहीं होते। आहाहा! पाणीपात्र, ऊभा-खड़े। आहाहा! हम तैयार हो गये हैं मोक्ष के लिये। बैठे हुए आहार नहीं, खड़े आहार। चले जायें, वापस जंगल में चले जायें। ऐसे भावश्रमण चारित्रवन्त को मुक्ति तत्काल होती है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा!

भावलिंगी श्रमण के संसार का कर्मरूपी बीज दग्ध हो जाता है... उन्हें तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष तो जल गये होते हैं। आहाहा! आता है। श्वेताम्बर में आता है। **भावलिंगी श्रमण के संसार का कर्मरूपी बीज दग्ध हो जाता है, इसलिए संसाररूप अंकुर फिर नहीं होता है...** जला हुअ बीज, उसे फिर से अंकुर नहीं होता। उसी प्रकार जिसे आत्मा के आनन्द के अनुभव से मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी बीज को जला डाला है, वह फिर से उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! जिसे गणधर नमस्कार करे। चौदह पूर्व और बारह अंग की रचना तो अन्तर्मुहूर्त में करे गणधर। वह गणधर जिसे नमस्कार करे। णमो लोए सव्व साहूणं। आहाहा! ऐसे साधु को गणधर के नमस्कार पहुँचे, वे साधु कैसे होते हैं! आहाहा! अन्तर की जिसे दशा आनन्द के हिलोरे में चढ़ा हुआ हो वह अन्दर। अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलता हो। घड़ीक में विकल्प आवे, और आनन्द में आवे। आहाहा! ऐसे भावश्रमण मुनि को... भावलिंगी कहा न? पाठ में है न यह? '**भावसवणाणं**' भावश्रमण। भावश्रमण। द्रव्यश्रमण (अर्थात्) अकेला नग्नपना धारण किया और उसे कोई पंच महाव्रत के विकल्प रहते हों, वह तो द्रव्यलिंगी है। वस्त्र-पात्रवाला तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। परन्तु जिसे पंच महाव्रत के विकल्प हों, साधु के अट्ठाईस गुण का राग हो, बाह्य में नग्नदशा हो, आगम प्रमाण व्यवहार जिसका निर्दोष, आहार-पानी निर्दोष, उसके लिये बनाया हुआ चौका (आहार) आदि न लेता हो, उसे द्रव्यलिंगी कहा जाता है। और उसमें अन्तर आनन्द का भान होता है, शुद्ध चैतन्य के आनन्द का रसीला हो जाता है। उस आनन्द के रसिक का रसिक ऐसा चारित्र जो स्वरूप में रमणता, उसे भावलिंग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भाई! बातें सब फेरफार बहुत है। अभी के साथ...

मुमुक्षु : ऐसी व्याख्या कोई जानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने यहाँ अपना काम है न! दूसरे का क्या काम है? यह तो समझने के लिये बात है। आहाहा!

भावश्रमण कहा है न पाठ में? वह भावश्रमण, वही श्रमण। उसका द्रव्यलिंग नग्न और अट्ठाईस मूलगुण होते हैं। आहाहा! ऐसा निश्चय हो, वहाँ ऐसा व्यवहार होता

है, परन्तु वह व्यवहार भी पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! **इसलिए संसाररूप अंकुर फिर नहीं होता है।**

भावार्थ :- संसार के बीज ज्ञानावरणादि कर्म हैं। लो! '**कम्मबीयदड्ढे**' ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, अन्तराय (आदि) आठ कर्म हैं न आठ, वह संसार का बीज है। **ये कर्म भावश्रमण के ध्यानरूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं,...** लो! ध्यानरूप अग्नि से, क्रिया से नहीं। आहाहा! जैसे आर्त और रौद्रध्यान राग में एकाग्र होकर होता है, उसी प्रकार आत्मा में एकाकार होकर यह धर्मध्यान और शुक्लध्यान होता है। आहाहा! **ये कर्म भावश्रमण के...** जिसे अन्तर भावलिंग निर्मलदशा वीतरागी प्रगट हुई, वह वीतरागी दशा उसका लिंग है। उसके द्वारा वह भावश्रमण पहिचाना जाता है। ऐसा जो मुनि **ध्यानरूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं,...** अन्तर के आनन्दस्वरूप परमात्मा में लीन होने से आठ कर्म का नाश—भस्म हो जाते हैं। आठ कर्म जलकर राख—अकर्मरूप हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं। परमाणु तो रहते हैं। कर्म की पर्याय है, वह पलटकर अकर्मरूप हो जाती है। इसका नाम भस्म किया। भस्म दूसरा क्या? जो कर्मरूप पर्याय थी, वह अकर्मरूप हुई। परमाणु तो वह के वही रहे। पर्याय बदल गई, इसका नाम भस्म किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! वे परमाणु जल जाते हैं? नाश होते हैं? **भस्म हो जाते हैं,...** लो, अकर्मरूप पर्याय हुई, उसे कर्मरूप पर्याय भस्म हो गई, ऐसा कहा। यह व्यय को भस्म कहा। आहाहा!

इसलिए फिर संसाररूप अंकुर किससे हो? जहाँ बीज जल गया, वहाँ अंकुर कहाँ से आवे? आहाहा! कच्चा बीज हो तो अंकुर फूटे, परन्तु बीज जहाँ जला, वहाँ अंकुर कहाँ से आवे? इसी प्रकार जिसे आत्मा के ध्यान से, शुद्ध चैतन्यस्वरूप जिसका ध्येय है, उसके ध्यान की पर्याय से उसके आठ कर्म के अंकुर जल जाते हैं। आहाहा! उसे नया अंकुर होता नहीं। नया कर्म उत्पन्न होता ही नहीं उसे, ऐसा कहते हैं। **भावश्रमण होकर धर्म-शुक्लध्यान से कर्मों का नाश करना योग्य है,...** आहाहा! द्रव्यलिंग और द्रव्यश्रमण तो अनन्त बार हुआ। मुनि द्रव्यलिंगी नग्नपना अनन्त बार हुआ। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' छहढाला में आता है न!

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत धारण किया तो भी सुख नहीं मिला, ऐसा कहते हैं। वह दुःखी था। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' वह तो दुःख था। पंच महाव्रत के परिणाम और वह सब दुःख, राग, आकुलता थी। आहाहा! 'पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आत्मा का ज्ञान किये बिना उसे सुख मिलता नहीं। सुख आंशिक भी मिला नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावश्रमण होकर धर्म-शुक्लध्यान से कर्मों का नाश करना योग्य है, यह उपदेश है। कोई सर्वथा एकान्ती अन्यथा कहे कि—कर्म अनादि है, उसका अन्त भी नहीं है,... अनादि के कर्म का अन्त कैसे आवे? ऐसा कहते हैं। है न अभिप्राय? अनादि का कर्म का अन्त कैसे आवे? ऐसा कहते हैं। **उसका अन्त भी नहीं है, उसका भी यह निषेध है।** अनादि का कर्म हो, परन्तु जल जाता है। बहुतों का यह मत है कि बड़ी ऊँची पदवी आवे परन्तु वापस जन्मा ही करे। अत्यन्त अवतारहित हो जाये, ऐसा नहीं। यह झूठी बात है। बीज जलने के पश्चात् उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार आत्मा के ध्यान द्वारा। आत्मा के ध्यान द्वारा ऐसा कहा। कोई क्रियाकाण्ड द्वारा, पंच महाव्रत या उसके द्वारा नहीं। सूक्ष्म मार्ग प्रभु का। वीतराग परमात्मा ने वीतरागभाव से धर्म बताया है। रागभाव, वह धर्म नहीं। आहाहा!

उसका भी यह निषेध है। बीज अनादि है, वह एक बार दग्ध हो जाने पर पीछे फिर नहीं उगता है। यह दृष्टान्त है। एकबार बीज को जलाया, फिर से नहीं उगेगा। **उसी तरह इसे जानना।** भगवान आत्मा अपने आनन्द के स्वरूप के ध्यान से जिसने आठ कर्म के बीज को जला दिया, फिर से नहीं उगेगा। आहाहा! करने का यह है। बाकी सब थोथा। परिवार में कभी पैसे न हुए हों पाँच-पच्चीस लाख और पाँच-पच्चीस लाख हों तो उसे आहाहा! ऊँचा एक परिवार में दीपक जगा। दूसरे ऐसा कहें कि हमारे परिवार में कर्मी जगा।

मुमुक्षु : कोई ऐसा न कहे कि धर्मी जगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मी जगा, ऐसा कहे। कर्म का करनेवाला जगा यह।

मुमुक्षु : अकर्मी कहे तो गाली दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकर्मी कहे तो गाली दे। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १२७

आगे संक्षेप से उपदेश करते हैं :—

भावसवणो वि पवइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होह॥१२७॥

लो! आहाहा! **अर्थ :-** **भावश्रमण...** आत्मा के आनन्द के अनुभवसहित स्वरूप में आनन्द की रमणतावाला साधु। ऐसा साधुपना पुरुषलिंगवाले को होता है। स्त्री को साधुपना होता ही नहीं। समझ में आया? यह तो श्वेताम्बर ने शास्त्र नये कल्पित रचे, उसमें वह सब सिद्ध कर दिया। स्त्री को मुक्ति और कपड़ेसहित साधुपना। वह सब कल्पित शास्त्र हैं, भगवान के कहे हुए नहीं। आहाहा! पूरी जिन्दगी उसमें व्यतीत की हो न, क्या करना अब?

यहाँ तो **भावश्रमण तो सुखों को पाता है...** जिसे अन्तर में आनन्द की दशा जगी है, अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त है, वही सुखी है। वह सुख को पाता है। आहाहा! **और द्रव्यश्रमण दुःखों को पाता है,...** ठीक! नग्न हो और पंच महाव्रत के परिणाम हों, वह दुःख को पाता है। आहाहा! क्योंकि वह पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग और आकुलता है। आहाहा! यहाँ तो पाँच महाव्रत का ठिकाना न हो और (माने कि) हम साधु। **द्रव्यश्रमण दुःखों को पाता है,...** आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले, व्यवहार समिति, गुप्ति पाले, वह द्रव्यलिंगी। वह दुःख को पाता है। आहाहा! **इस प्रकार गुण-दोषों को...** लो, आया। गुण-दोष को जानकर। नहीं आया उसमें? छहढाला। ऐई! पण्डितजी!

मुमुक्षु : बिन जाने....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। बिन जाने... यह जानकर लो। द्रव्यश्रमण दुःख को

पावे और भावश्रमण सुख को पावे, ऐसा जानना। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखी है। वर्तमान भी दुःख और इसका फल भी दुःख। सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द के भान बिना जो कुछ पंच महाव्रत के परिणाम, वह सब वर्तमान दुःख है, उसका फल भी दुःख चार गति है। आहाहा! और भावश्रमण वर्तमान में भी सुखी है और फल में भी आगे भी परमानन्द के मोक्ष के सुख को पायेगा। आहाहा! गजब मार्ग, भाई! सुनने को मिलता नहीं, वह कब विचारे? ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाये। पशु की भाँति जिन्दगी जाये। पूरे दिन ढोर खाऊँ... खाऊँ... खाऊँ.... खाऊँ किया ही करे। इसी प्रकार पूरे दिन यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ, ऐसा किया ही करता है ढोर की भाँति। ढोर समझते हो? पशु-पशु। पशु को तो आहारसंज्ञा बहुत होती है न? खाया ही करे... खाया ही करे... पेट में पड़ा हो तो भी थोड़ा मिले तो (खाया करे)। इसी प्रकार अज्ञानी पूरे दिन यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... राग करूँ, पुण्य करूँ, फलाना करूँ, व्यापार करूँ और यह करूँ। ढोर की तरह है पूरे दिन राग करना... करना... करना... राग का जिसका खुराक है।

दोषों को जानकर हे जीव! तू भावसहित संयमी बन। आहाहा! '**भावेण य संजुदो होह**' है न चौथा पद। '**भावेण**' अर्थात् सम्यग्दर्शन भावसहित, ऐसा। भाव का अर्थ ही यहाँ सम्यग्दर्शन लेते हैं सर्वत्र। अर्थ में भी लेंगे। जिन समकित उसका नाम यहाँ भाव, वीतरागी समकित। व्यवहार समकित नहीं, व्यवहार समकित तो राग है। है नीचे परन्तु ऐसा है। पाठ में सर्वत्र आता है। **सम्यग्दर्शनसहित भावश्रमण होता है,...** देखो, भावार्थ में है न! यह भाव अर्थात् '**भावेण य संजुदो होह**' भाव का अर्थ सम्यग्दर्शन। निश्चय सम्यग्दर्शन, जिन सम्यग्दर्शन, वीतराग सम्यग्दर्शन। यह चौथे गुणस्थान में रागरहित सम्यक्, वह वीतराग सम्यक्। आहाहा! ऐसे भावसहित संयमी बन, उससे साधु हो। भावार्थ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ४, शनिवार, दिनांक ०८-०६-१९७४
गाथा - १२७ से १३१, प्रवचन-१६८

भावार्थ :- सम्यग्दर्शनसहित भावश्रमण होता है,... है भावार्थ? १२७ गाथा। साधु... यहाँ मुख्यरूप से चारित्रवन्त की व्याख्या है और वह साधु भावश्रमण पहले सम्यग्दर्शनसहित होता है। अकेला द्रव्यपना धारण करे, (वह साधु नहीं)।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन का आरोप करे तो क्या बाधा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आरोप-बारोप यह सब बात झूठी है। वह श्वेताम्बर में है। आरोप किसमें? यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन हो तो राग को व्यवहार सम्यग्दर्शन का आरोप दिया जाता है। इस प्रकार आरोप दिया जाता है। वस्तु नहीं और आरोप किसका? आहाहा!

चैतन्यस्वरूप शुद्ध पूर्ण अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त क्षायिक समकित आदि अनन्त पर्यायों का तो पिण्ड है, वह आत्मा। उसके अन्तर दर्शन अनुभव में प्रतीति निश्चयस्वभाव, ऐसा सम्यग्दर्शनसहित भावसाधु होता है। **यह संसार का अभाव करके सुखों को पाता है...** वह भावश्रमण सम्यग्दर्शनसहित अपने स्वरूप में जिसकी दृष्टि आनन्दमय हो गयी है, तदुपरान्त जिसे चारित्र प्रगट हुआ है—स्वरूप की अन्तर रमणता। ऐसा भावश्रमण—साधु संसार का अभाव करके, संसार शब्द से (आशय है) उदयभाव का अभाव करके **सुखों को पाता है...** अनन्त आनन्द को प्राप्त होता है।

और मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण... नग्न मुनिपना धारण करे, पंच महाव्रत आदि विकल्प धारण करे, परन्तु अन्तर सम्यग्दर्शन नहीं। यह मूल चाहिए धर्म का मूल। चारित्र, वह धर्म है, उसका मूल सम्यग्दर्शन। वह सम्यग्दर्शन नहीं, मिथ्यात्वदर्शनसहित है, वह **भेषमात्र होता है,...** द्रव्यश्रमण भेषमात्र है। अन्तर वस्तु जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का भान और अनुभव नहीं, वह द्रव्यश्रमण **भेषमात्र होता है, यह संसार का अभाव नहीं कर सकता है,...** द्रव्यलिंग धारण करे, पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण धारण

करे, (परन्तु वह) संसार का अभाव नहीं कर सकता। क्योंकि वह रागादि भाव संसार है। आहाहा! संसार का अभाव तो शुद्ध चैतन्यस्वभाव, राग के अभावस्वभावस्वरूप... विकल्प की एकताबुद्धि जहाँ पड़ी है, वह मिथ्यात्व। चाहे तो पंच महाव्रत के भाव हों, पाँच समिति, गुप्ति व्यवहार का भाव हो, राग की मन्दता है, पुण्य। उसमें जिसकी एकताबुद्धि है, वह संसार में दुःखी है। नग्नपना धारण करके भी संसार के दुःख में अवतरेगा। **यह संसार का अभाव नहीं कर सकता है, इसलिए दुःखों को पाता है।** सम्यग्दर्शन बिना राग की एकताबुद्धिवाला द्रव्यश्रमण मुनि नग्न हो तो भी दुःख का अनुभव करेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : नौवें ग्रैवेयक गया, वहाँ भी दुःख?

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रैवेयक अर्थात् उसमें क्या स्वर्ग में? स्वर्ग में भी मिथ्यात्वसहित दुःखी है। कल कहा था न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' नौवे ग्रैवेयक गया, नग्न मुनि दिगम्बर पंच महाव्रतधारी शुक्ललेश्या। शुक्ललेश्या। क्या हुआ तो? वह दुःखरूप भाव है। दुःख के फल में भी दुःखरूप संयोग मिलेंगे उसे।

मुमुक्षु : वर्तमान में विकल्प उसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कम कुछ हुए नहीं जरा भी। राग की एकताबुद्धि पूर्ण विकल्प में पड़ा है। जहाँ स्वभाव निर्विकल्प वस्तु, उसकी अन्तर की एकता नहीं और राग की एकता में सब विकल्प मिथ्यात्व के पड़े हैं। आहाहा! भावपाहुड़ है न! जिसे यह आत्मदर्शन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान स्व-चैतन्यद्रव्य के आश्रय से प्रगट नहीं, वे सब द्रव्यश्रमण संसार में दुःखी होकर परिभ्रमण करेंगे। आहाहा!

संसार का अभाव नहीं कर सकता है, इसलिए दुःखों को पाता है। आहाहा! **अतः उपदेश करते हैं कि दोनों के गुण-दोष जानकर...** दोनों के क्या? समकितसहित भावश्रमण सुख को प्राप्त करे, मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण दुःख को प्राप्त करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक में गुण और एक में दोष।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो का—गुण-दोष का विचार करके **भावसंयमी होना योग्य है...** आहाहा! अन्तर में आत्मा के आनन्द में लीनतारूप चारित्र और संयम ऐसा भावश्रमण बना होना योग्य है। आहाहा! **यह सब उपदेश का सार है।** कहा न? आहाहा! ज्ञान और आनन्दस्वरूपी प्रभु आत्मा की अन्तर में प्रतीति अनुभव में (होना), वस्तु स्वरूप ज्ञान और आनन्द है, उसे अनुसरकर जो प्रतीति और अनुभव हो, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! आहाहा! इसके बिना अकेली शास्त्र से श्रद्धा करे, वह श्रद्धा नहीं।

कहते हैं कि भावश्रमण—साधु सम्यग्दर्शनसहित जिसे अन्तर चारित्र आनन्द की लहर प्रगटी है, अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ है, वह सुख को प्राप्त करेगा। वह अतीन्द्रिय आनन्द के मोक्ष के लाभ को प्राप्त करेगा। और समकितरहित क्रियाकाण्डी मुनि द्रव्यलिंगी... आहाहा! वह दु:ख की दशा को प्राप्त करेगा। क्योंकि वह भाव स्वयं दु:खरूप है। पंच महाव्रत के परिणाम, साधु के अट्ठाईस (मूल) गुण का विकल्प, छह आवश्यक और आते हैं न सब? वह सब शुभराग की वृत्ति उठती है, वह स्वयं दु:खरूप है। वह भले पंच महाव्रत पालन करे, परन्तु वह दु:खरूप है। उसके फल में वह परम्परा से दु:ख को प्राप्त करेगा। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १२८

आगे फिर भी इसी का उपदेश अर्थरूप संक्षेप से कहते हैं :— १२८।

तित्थयरगणहराइं अब्भुदयपरंपराइं सोक्खाइं।
पावंति भावसहिया संखेवि जिमेहिं वज्जरियं ॥१२८॥

संक्षेप में सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग परमेश्वर संक्षेप में कहते हैं। स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं परन्तु ऐसा कि यह तो भगवान ने भी संक्षेप में कहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अर्थ :- जो भावसहित मुनि है,... जिसे अन्तर आत्मदर्शन, आत्मसाक्षात्कार सम्यग्ज्ञान-दर्शन में हुआ है, ऐसा जो भावश्रमण साधु **अभ्युदयसहित...** उसे तीर्थंकर

पदवी, बलदेव पदवी, गणधर पदवी आदि मिलेगी। आहाहा! भावसहित सम्यग्दर्शनसहित ऐसे मुनि को पुण्यसहित अभ्युदय बाहर में (प्राप्त होंगे)। बहुत महिमा की है इसमें टीकाकार ने। बाहर की बात आवे, वहाँ बहुत महिमा करे। यह बाहर का साधन है। ऐसा कि अशोकवृक्ष मिले, ऐसे इन्द्र चँवर ढोरे। यह सब बाहर की बात है। उसमें आत्मा को क्या? यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा का ध्यान करके जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ, उसे परम्परा तीर्थंकरादि की पदवी, सुख की परम्परा मिलकर मोक्ष जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मिथ्यात्व को तीर्थंकररूप से... चाहे तो पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण, वह राग की एकताबुद्धिवाला तो मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकरगोत्र के भाव हो ही नहीं सकते।

भावार्थ :- तीर्थंकर गणधर चक्रवर्ती आदि पदों के सुख पाते हैं... परम्परा से सुख यहाँ लिया था न। यह संक्षेप में भगवान ने कहा है। '**वज्जरियं**' अर्थात् कहा। परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने बहुत संक्षिप्त में आत्मज्ञान और आत्म-अनुभवसहित जो भावश्रमण साधु, वह तीर्थंकरादि, गणधरादि की सुख की परम्परा पाकर मुक्ति को प्राप्त करेंगे। समझ में आया? आहाहा! **तीर्थंकर गणधर चक्रवर्ती आदि पदों के सुख बड़े अभ्युदयसहित है,...** तीर्थंकर की, गणधर की, चक्रवर्ती, बलदेव आदि की **पदों के सुख बड़े अभ्युदयसहित है,...** पुण्य के फलसहित है। ऐसा कि उसका पुण्य भी दूसरी जाति का होता है। समकिती का पुण्य पुण्यानुबन्धी पुण्य होता है, मिथ्यादृष्टि का पुण्य पापानुबन्धी पुण्य होता है। आहाहा!

उसको भावसहित सम्यग्दृष्टि मुनि पाते हैं। तीर्थंकर और गणधर आदि चक्रवर्ती। आदि अर्थात् बलदेव। ऐसा सुख बड़ा अभ्युदय पुण्यसहित **भावसहित सम्यग्दृष्टि मुनि पाते हैं।** आहाहा! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी कुछ खबर नहीं, उसकी कीमत नहीं। और उसका ध्येय क्या है? सम्यग्दर्शन का ध्येय ध्रुव है। यह आगे 'धीरा' शब्द आयेगा उसमें है। '**धीरो**' है न १३० में। धीर धीर। ध्येय के प्रति धी को प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। ध्येय के प्रति धी अर्थात् बुद्धि। ध्येय के प्रति धी को—बुद्धि को प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निरुक्ति है। ध्येय ध्रुव चैतन्यप्रभु पूर्णानन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसी ऐसी अनेक शक्तियों का पिण्ड जो भगवान आत्मा साक्षात् परमात्मस्वरूप वह आत्मा है वस्तुरूप से। उसमें जिसका धी अर्थात् बुद्धि, ध्येय के प्रति प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। धीरुभाई! उसे धीर कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ... संस्कृत में है। १३० में। आहाहा! ध्येय के प्रति धी को प्रेरे अर्थात् धीर। 'र' है। 'धी' है और 'र' है। धी—बुद्धि। ध्येय के प्रति धी को 'र' अर्थात् प्रेरे, उसे यहाँ धीर और वीर कहा जाता है। वीर अर्थात् विशेष अपने वीर्य को 'र' अर्थात् ध्येय के प्रति प्रेरे, उसे वीर कहते हैं। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा स्वयं है। स्वयं स्वरूप से परमात्मा है, उसमें जिसकी वीर्य की प्रेरणा स्वसन्मुख हो, उसे यहाँ वीर कहा जाता है। आहाहा! अर्थात् जो आत्मा का वीर्य शुद्धता के परिणमन को रचे, उसे वीर कहा जाता है और वीर्य कहा जाता है। अशुद्धता को रचे पुण्य-पाप के भाव को (वह नपुंसक वीर्य है)। यहाँ तो जरा सम्यग्दर्शनसहित का भाव है न, इसलिए उसे कुछ महत्ता दी है व्यवहार से। बाकी तो शुभभाव में आत्मा का वीर्य काम करे, वह नपुंसक वीर्य है। वह वीर्य नपुंसक है। अपने शुद्धस्वभाव में वीर्य की प्रेरणा हो, उसे वीर और वीर्य कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया, भाई? वीर-वीर। आत्मबल वीर्य जो है न अन्तर? वह शुद्धता को रचे तो वीर्य कहलाये। पुण्य-पाप को रचे, वह वीर्य नहीं, वह नपुंसक। और वह पुण्य को रचकर, यह मेरी रचना है, मेरा भाव है, वह तो नपुंसक में नपुंसक है।

मुमुक्षु : वह मिथ्यादृष्टि हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि। आहाहा!

चैतन्य महल में विराजता अनन्त गुण जिसके धाम में आनन्द और शान्ति पड़ी है अन्दर। आहाहा! ऐसे धाम में धी को—बुद्धि को लगाकर उसमें जो जमता है, उसे यहाँ धीर और वीर कहते हैं। आहाहा! लाखों लोग बाहर में शूरवीर कहे, वह शूरवीर नहीं। आहाहा! आचार्य स्वयं १२९ में कहेंगे। धन्य है उस सन्त को, कहते हैं। आहाहा!

तीर्थंकरादि भावसहित सम्यग्दृष्टि मुनि पाते हैं। यह सब उपदेश का संक्षेप से उपदेश कहा है... यह सब उपदेश का संक्षेप से उपदेश कहा है, इसलिए भावसहित मुनि होना योग्य है। अकेला द्रव्यलिंग धारण करना, वह तो अनन्त बार किये, उसमें कुछ है नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १२९

आगे आचार्य कहते हैं कि जो भावश्रमण हैं, उनको धन्य है, उनको हमारा नमस्कार हो :— कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा!

ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं।
भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाणं॥१२९॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि जो मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ (विशिष्ट) ज्ञान... '**दंसणवरणाण**' शब्द है न? '**वरणाण**' अर्थात् श्रेष्ठ ज्ञान, ऐसा अर्थ लिया। सम्यग्दर्शनसहित है और प्रधान जिसका ज्ञान है। आत्मा का ज्ञान, उसे विशिष्ट ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! शास्त्रज्ञान अल्प हो या न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। '**वरणाण**' चैतन्य भगवान का अपना ज्ञान—आत्मा के ज्ञान को वरज्ञान—श्रेष्ठज्ञान कहा जाता है। आहाहा! '**भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाणं**' **सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ ज्ञान और निर्दोष चारित्र...** '**दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं**' ज्ञान में इन्होंने वर का अर्थ डाला। जिसे आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन, पूर्णानन्द के नाथ को जिसने निहारा है... आहाहा! ऐसा जो शुद्ध चैतन्यघन स्वरूप, उसकी जिसे अन्तर में सम्यक् सच्ची प्रशस्त दृष्टि हुई है और जिसका श्रेष्ठ ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, उसे श्रेष्ठ ज्ञान कहते हैं। आहाहा! आचार्य का हृदय ऐसा है कि '**वरणाण**' शास्त्र के पठन बहुत हों, परन्तु आत्मा का ज्ञान नहीं उसे वर—प्रधान—श्रेष्ठ ज्ञान नहीं, वह सब हल्का ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिसे अन्तर आत्मा सम्यग्दर्शन में यथार्थ भान हुआ है और जिसका आत्मज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान हुआ है, ऐसा जो श्रेष्ठ ज्ञान और जो चारित्र से शुद्ध है, ऐसा।

'**चरणसुद्धाणं**' वहाँ ऐसा शब्द प्रयोग किया है। '**दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं**' आहाहा! **और निर्दोष चारित्र इनसे शुद्ध हैं...** अन्तर वीतराग चारित्र है। पंच महाव्रत के परिणाम, वह तो चारित्र का दोष है। पंच महाव्रत का विकल्प है, वह राग है, चारित्र का दोष है। आहाहा! यहाँ तो वीतरागचारित्र। चैतन्यस्वरूप वीतरागमूर्ति है, उसमें वीतरागभाव से लीन, वह चारित्र शुद्ध है, वह चारित्र शुद्ध है। ऐसा शब्द प्रयोग किया है न! चारित्र '**चरणसुद्धाणं**' कुन्दकुन्दाचार्य की शैली स्व के आश्रय की अलौकिक है। आहाहा!

जो मुनि सम्यग्दर्शन (सहित) श्रेष्ठ ज्ञान (सहित) और निर्दोष चारित्र इनसे शुद्ध हैं... वीतराग धारा जिसे बहती है। आहाहा! आनन्द की उग्र धारा पर्याय में उग्र धारा आनन्द की होती है। **इसलिए भावसहित हैं...** लो! यह तीनों भावसहित हुआ। सम्यग्दर्शन, श्रेष्ठ ज्ञान, चारित्र शुद्ध। ओहोहो! **और प्रणष्ट हो गई है माया अर्थात् कपट परिणाम जिनके ऐसे हैं...** अर्थात् बाह्य आचरण है और अन्तर में ठिकाना नहीं, वह तो माया (चारी) कपटी है, कहते हैं। आहाहा! जिसे अभ्यन्तर आनन्द उछला है, आनन्द प्रगट हुआ है। वह माया, कपट रहित है। जैसा स्वरूप है, वैसा प्रगट हुआ। उसे माया से, कपट से कुछ कहना है, यह बात रहती नहीं। आहाहा! बाह्य चारित्र का दिखाव करे, व्यवहार का और अन्तर में दर्शन-ज्ञान नहीं, वह तो माया-कपट है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'**पणट्ठमायाणं**' **प्रणष्ट हो गई है माया अर्थात् कपट परिणाम जिनके ऐसे हैं...** निःशल्यव्रती कहा न? तत्त्वार्थसूत्र। निःशल्सव्रती। चारित्रवन्त ऐसे होते हैं कि जिसमें मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष, माया, निदान, मिथ्यात्व शल्य नहीं होता। तीन शल्य नहीं होते, वह सम्यग्दर्शनसहित निःशल्य होता है। आहाहा! निःशल्योव्रती, तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी (कृत में आता है)। चारित्रवन्त तो निःशल्य होता है। मिथ्यात्व का शल्य नहीं। निदान—आचरण के फल का हेतु नहीं, माया नहीं। माया शल्य नहीं। आहाहा! **प्रणष्ट हो गई है माया अर्थात् कपट परिणाम जिनके ऐसे हैं, वे धन्य हैं।** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमको गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे नम्बर में आये। पहले भगवान, दूसरे गणधर, तीसरे कुन्दकुन्दाचार्य। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! भावश्रमण की भक्ति। आहाहा! भक्ति जगी है। वाह रे वाह सन्त!

तेरे चरणकमल में हमारा नमस्कार है! कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। आहाहा!

यह दर्शन, ज्ञान और चारित्रसहित है और माया—कपटरहित है, वह धन्य है! बस यहाँ तो। आप तो समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, ऐसी रचना करने की ताकत है न आपमें। कहते हैं, दूसरे को वह ताकत भले न हो, परन्तु आत्मदर्शन, ज्ञान और चारित्र शुद्ध है, वह हमको नमस्कार योग्य है, कहते हैं। आहाहा!

वे धन्य हैं। '**धण्णा**' है न। **उनके लिये हमारा मन-वचन-काय से सदा नमस्कार हो।** देखो! '**णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाणं**' '**णिच्चं**' ऐसा शब्द है न। आहाहा! नित्य, सदा हमारा भावश्रमण के प्रति बहुमान, नमस्कार सदा ही रहो। आहाहा! भाव का तो ठिकाना नहीं और द्रव्य का भी ठिकाना नहीं और साधु माने कि हम साधु हैं। आहाहा! पंच महाव्रत किसे कहते हैं, इसका ठिकाना नहीं। यह और वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माने, वह नग्न होकर उसके लिये चौका करके (बनाया हुआ) आहार ले, वह तो व्यवहार से भ्रष्ट है। चौका कहते हैं न? चौका। आचार्य तो कहते हैं अहो! जिसे आत्मदर्शन हुआ है, जिसका श्रेष्ठ ज्ञान प्रगट हुआ है, आत्मा का ज्ञान, वह श्रेष्ठ ज्ञान है, ऐसा कहते हैं और जिसका चारित्र शुद्ध है। आहाहा! '**चरणसुद्धाणं**' निर्दोष चारित्र है। निर्मल वीतरागदशा प्रगट हुई। वह चारित्र यह। यह मुनिपना। **उनके लिये हमारा मन-वचन-काय से...** मन, वचन और काय से तीनों योग से। **सदा नमस्कार हो।** आहाहा! जिसने मुक्ति के मार्ग को साधा है और जिसे मुक्ति अल्प काल में है। अनन्त आनन्द की प्राप्ति, अनन्त दुःख का अन्त, अनन्त दुःख का अन्त, अनन्त सुख की प्राप्ति। अनन्त दुःख का व्यय, अनन्त सुख का उत्पाद, ध्रुव तो त्रिकाल है। आहाहा! यह निश्चय की वस्तु लोगों को ऐसी लगे न! व्यवहार साधन... व्यवहार साधन...

मुमुक्षु : पर्याय नहीं? यह पर्याय की बात नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार नहीं। यह व्यवहार तो यह क्रिया करे। उसमें आया है न वह। बड़ी पुस्तक में, अभी प्रकाशित हुई है न, उसमें आया है। निश्चयचारित्र न हो, तब तक इस व्यवहारचारित्र से निश्चयचारित्र। ... तो होगा। बड़ी पुस्तक अभी दिल्ली से प्रकाशित हुई है न सौ रुपये की। यहाँ आयी है। वह पुस्तक प्रसिद्ध हुई है। दो सौ रुपये लेते हैं परन्तु पुस्तक की कीमत सौ रुपये की है। दो सौ लिये हैं। एक हजार

पुस्तकें प्रकाशित की हैं। यहाँ आयी है भेंटरूप से। उसमें ऐसा लिखा है कि जहाँ तक चारित्र निश्चय न हो... परन्तु अभी निश्चय समकित न हो, वह तो पहले कहे। चारित्र व्यवहार क्रियाकाण्ड करना, करते-करते निश्चय हो जायेगा। आहाहा! अरे! भगवान के नाम से यह प्रचार। २५०० वर्ष परमात्मा को सादि-अनन्त मुक्ति को हुए। आहाहा! पूर्णानन्द की प्राप्ति ऐसी मोक्षदशा भगवान को २५०० वर्ष हुए। उसका यह महोत्सव करते हैं न यह लोग २५०० वर्ष का। महोत्सव तो यह, स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह महावीर भगवान का मोक्ष का महोत्सव है। निर्वाण का महोत्सव है न? निर्वाण का अर्थ मोक्ष। मोक्ष का महोत्सव कब हो? कि अपना आत्मस्वभाव, निजस्वभाव, निज परमात्मा की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह निर्वाण का महोत्सव और निर्वाण का कारण। आहाहा! आचार्य प्रमोद में आकर दो हजार वर्ष पहले शास्त्र रचनाकाल में कहते हैं, अहो! मन, वचन, काय से ऐसे धन्य सन्त के, मुनि के चरण में हमारा नमस्कार है। आहाहा!

भावार्थ :- भावलिंगियों में जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध हैं... तीनों, ऐसा। वरना सम्यग्दर्शन को भी भावलिंग कहा जाता है। परन्तु यहाँ तो तीनों लेना है न! चारित्र लेना है न! **भावलिंगियों में जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध हैं, उनके प्रति आचार्य को भक्ति उत्पन्न हुई है...** आचार्य को बहुमान आया है। अहो! जिसने जन्म को सफल किया, आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव करके, जिसने रमणता प्रगट की। आहाहा! धन्य प्रभु तेरे अवतार को! कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य। समझ में आया? ऐसे भावश्रमण को **आचार्य को भक्ति उत्पन्न हुई है, इसलिए उनको धन्य कहकर नमस्कार किया है...** देखा! धन्य अवतार प्रभु तेरा! आहाहा! जिसने आनन्द के नाथ को शोध लिया है और आनन्द में मग्न है। अतीन्द्रिय आनन्द में मग्न, वह चारित्र। आहाहा! वीतराग की बातें सूक्ष्म, बड़ी गम्भीर है। जिसे ऐसा मुनिपना होता है, उसकी भी खबर नहीं, उसे सम्यग्दर्शन कहाँ से आया? आहाहा!

वह युक्त है, जिनके मोक्षमार्ग में अनुराग है,... जिसे मोक्षमार्ग में प्रेम है। पूर्णानन्द के नाथ की जिसने श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट की है और उसका जिसे प्रेम है। **उनमें मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति में प्रधानता दिखती है,... उनमें मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति में**

प्रधानता दिखती है, उनको नमस्कार करें ही करें। आहाहा! उस समय श्वेताम्बर पंथ निकल चुका था न! कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उससे पहले श्वेताम्बर पंथ सौ वर्ष पहले निकल चुका था। उन लोगों ने अभी शास्त्र रचना नहीं की थी। पंथ अलग हो गया था। इससे यह कहते हैं। ओहो! धन्य मुनि तेरा! ऐसा मुनि (पना) जिसे प्रगट हुआ ऐसा, धन्य सहित मेरा नमस्कार है। आहाहा! इस प्रकार ऐसे ऐसा कि वस्त्रसहितवाले को हम नहीं मानते, इसलिए उनकी निन्दा करते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! **मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति में प्रधानता दिखती है,...** दूसरे आत्मा में मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, शुद्धता, निर्विकल्पता, वीतरागता देखे, **उनको नमस्कार करें ही करें।** आहाहा! कठिन बातें भाई ऐसी!

★ ★ ★

गाथा - १३०

आगे कहते हैं कि जो भावश्रमण हैं, वे देवादिक की ऋद्धि देखकर मोह को प्राप्त नहीं होते हैं:— देव की ऋद्धि देखे, करोड़ों देव (दिखाई दे) परन्तु जिसे आत्मा के आनन्द का भान है, मेरा आनन्द मेरे पास है, मैं आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसे आनन्द का जिसे स्वाद आया है, वह दूसरे देव की ऋद्धि को इच्छता नहीं। आहाहा! तृणतुल्य मानता है। भगवान आत्मा के आनन्द का, आनन्द का नाथ पूर्ण प्रभु है यह। मेरा आनन्द मुझमें ठसाठस पूर्ण भरा है। आहाहा! मेरे आनन्द के लिये मुझे किसी परपदार्थ की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा जिसे आनन्द का स्वाद और अनुभव हुआ है, उसे देव विक्रिया से ऋद्धि बतावे, ऐसी आशा है नहीं। आहाहा!

इड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो॥१३०॥

यह शब्द बहुत बार रखते हैं। '**जिणभावणभाविओ**' जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। आहाहा! '**जिणभावणभाविओ धीरो**' यह 'धीर' आया। अभी व्याख्या की नहीं थी? वह यह 'धीर'। यह संस्कृत टीका में है उसमें, हों! देखो! जिनभावना—

समकितभावना। यह तो बहुत जगह आता है। यहाँ दूसरा कहना है कि सम्यग्दर्शन, वह वीतरागभाव है, ऐसा कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि सम्यग्दर्शन सराग, वह सम्यग्दर्शन। वीतराग सम्यग्दर्शन फिर सातवें, आठवें में होता है—ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन ही जिन वीतरागभाव है। आहाहा!

अर्थ :- जिनभावना (सम्यक्त्व भावना) से वासित... आहाहा! वीतरागीस्वरूप आत्मा का जिसे वेदन वर्तता है, उसमें सम्यग्दर्शन में उसे भान हो गया है कि मेरा आत्मा आनन्दस्वरूप से पूर्ण है। उसे जिसने प्रतीति में लिया, उसे पूर्ण आनन्द अल्प काल में प्राप्त होनेवाला है। इसलिए इस ऋद्धि को इच्छता नहीं। ऐसा कहकर यह कहते हैं कि मुनि हैं, वे पंचम काल के मुनि सच्चे हों, वे भी स्वर्ग में जानेवाले हैं। मोक्ष तो नहीं है। परन्तु कहते हैं कि जो मुनि है, उसने अपने आनन्द की ऋद्धि को देखा है, उसे देव की ऋद्धि तुच्छ लगती है। आहाहा!

जिसने दूधपाक का स्वाद चखा है। दूधपाक समझते हो? खीर कहते हैं न तुम्हारे? तुम्हारे खीर कहते हैं। हमारे यहाँ खीर और दूधपाक में अन्तर करते हैं। एक सेर दूध में नौ टाक चावल, चावल, वह बनावे तो उसे खीर कहते हैं। परन्तु एक सेर दूध में रुपया भार चावल, उसे पकावे उसे दूधपाक कहते हैं। एक सेर दूध, एक रुपया भार चावल। दूध का पाक, उसे दूधपाक कहते हैं। और एक सेर दूध में पाँच भार चावल (डाले) उसे खीर कहते हैं। तुम्हारे तो दूधपाक को भी खीर कहते हैं। आहाहा! खीर कहते हैं, खबर है न। परन्तु हमारे खीर और दूधपाक में अन्तर है काठियावाड़ में। एक मण दूध में एक सेर चावल। बस। यह दूधपाक का स्वाद जिसने चखा, उसे ज्वार होती है न ज्वार? लाल ज्वार होती है लाल, छिलके लाल बहुत कसरहित, उस लाल ज्वार की रोटी का स्वाद उसे नहीं आता।

इसी प्रकार जिसने आत्मा के आनन्द का स्वाद चखा है, उसे स्वर्ग के इन्द्र के सुख भी तुच्छ लगते हैं। आहाहा! भले स्वर्ग में जाऊँगा, कहते हैं मुनि दूसरी बात, परन्तु वह ऋद्धि, वह नहीं। वह ऋद्धि तुच्छ है। आहाहा! ऋद्धि-वृद्धि आता है न? 'सिद्धि वृद्धि दिसे प्रगट सदा...' 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे...' आता है न! 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे अन्तर में प्रगट सदा, स्वार्थ के साचे, परमार्थ के साचे साचे साचे वेण कहे,

साचे जिनमति है। पर्यायबुद्धि नाहि'—आता है न। 'न गृहस्थ है, न यति है।' 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा। अंतर की लक्ष्मी सो अजाची लक्षपति है। दास भगवन्त के उदास रहे जगतसों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।' ऐसा आता है बनारसीदास में। समयसार नाटक। आहाहा! 'काहु के विरोधि नाहिं, पर्यायबुद्धि नाहिं।' 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे...' रिद्धि तो मेरी चैतन्य की अन्दर है और वृद्धि, वह चैतन्य की वृद्धि निर्मल हो, वह मेरे पास है और वही सिद्धि है। यह वचन की सिद्धि और दूसरी सिद्धि से, यह मेरी सिद्धि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा।' प्रगट सदा। द्रव्य तो है ही, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो दशा प्रगट हुई है, वह हमारी ऋद्धि है, वह हमारी वृद्धि है, वह हमारी सिद्धि है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

जिनभावना से वासित जीव... जिसे सम्यग्दर्शन वीतरागी भाव गृहस्थाश्रम में होने पर भी जिसे प्रगट हुआ है। आहाहा! वह **किंनर,...** देव **किंपुरुष देव; कल्पवासी देव और विद्याधर, इनसे विक्रियारूप विस्तार की गई अतुल-ऋद्धियों से...** लाखों-करोड़ों देव बनावे और एक-एक को हीरा का हार पहनावे और ऐसे ऋद्धि दिखावे। किसी ऋद्धि की महिमा नहीं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि जीव गरीब है, रंक है, उसे अपनी ऋद्धि की खबर नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव बादशाह है, अपनी ऋद्धि की उसे खबर है। आहाहा!

देव और विद्याधर... नीचे मनुष्य लिये। पहले देव और यह विद्याधर। **इनसे विक्रियारूप विस्तार की गई अतुल-ऋद्धियों से मोह को प्राप्त नहीं होता है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी बाहर की ऋद्धि को देखकर मोह-विस्मयता नहीं पाता। अपनी ऋद्धि अन्दर है। आहाहा! परन्तु उसे जरा राग सम्यग्दृष्टि को तो राग होता है, विषय का राग आदि आसक्ति का। यहाँ तो मुनि की बात ली है न। उन्हें तो आसक्ति का भी राग नहीं। आहाहा! जिसे चारित्र की ऋद्धि प्रगट हुई है... आहाहा! ऐसे जीव समकितसहित हैं, वे देव और मनुष्यों की ऋद्धि को देखकर विस्मयता आती नहीं। आहाहा! कुतूहलता हुई नहीं कि आहा! ऐसा आता नहीं। अद्भुतात् अद्भुत ऋद्धि मेरे अन्दर में है।

आहाहा! आता है न पीछे अद्भुतात् अद्भुतं। पीछे (२७४) कलश में आता है। समयसार में पीछे कलश है न, उसमें अद्भुतात् अद्भुतं (आता है)।

ऋद्धियों से मोह को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव कैसा है? धीर है,... देखो, यह आया। सम्यग्दृष्टि जीव धीर है। क्योंकि ध्येय के प्रति बुद्धि को जिसने प्रेरी है। आहाहा! मेरा ध्येय तो ध्रुव है। पर्याय भी जहाँ ध्येय नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि का ध्येय ध्रुव है। सम्यग्दृष्टि का ध्येय निमित्त नहीं, परमात्मा, अरिहन्त, वे नहीं, वे ध्येय नहीं। उनके प्रति राग होता है, वह ध्येय नहीं। राग का ज्ञान हो जिस समय में उसकी पर्याय में, वह ध्येय नहीं। **सम्यग्दृष्टि जीव कैसा है? धीर है, दृढ़बुद्धि है अर्थात् निःशंकित अंग का धारक है।** ऐसा लिया। निःशंक है कि मेरी चीज़ मेरे पास है। मेरा आनन्द और मेरी शान्ति, वह मेरे पास है। किसी दूसरी चीज़ से वह शान्ति मिलती है, ऐसा मानता नहीं। आहाहा! **दृढ़बुद्धि अर्थात् निःशंकित अंग का धारक है।** निःकांक्ष है। कांक्षा ही नहीं, कोई इच्छा नहीं। इच्छा हो तो पूर्ण मोक्ष की। परन्तु उस इच्छा से भी कहीं पूर्ण मोक्ष मिलता नहीं। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीतरागता, पूर्ण वीर्य प्रगट हुआ है। ऐसी ऋद्धिवाले भगवान के मुख से निकले हुए शास्त्र, उसमें का यह शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्य ने तो इसकी रचना की है, वाणी भगवान की है। आहाहा!

कहते हैं... आहाहा! **दृढ़बुद्धि अर्थात् निःशंकित...** है। निःशंक और निःकांक्ष। निःशंक तो स्वरूप की पूर्ण प्रतीति, निःकांक्ष तो पर ऋद्धि की इच्छा नहीं। अपनी ऋद्धि में निःशंक, पर ऋद्धि की कांक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़े न लोगों को, इसलिए फिर वे व्रत पालना, अपवास करना, वह ठीक पड़े। तो उस रास्ते चल पड़े। आहाहा! उस रास्ते मन्दिर बनाओ, ऐसा बनाओ। कौन बनावे? वह तो पर की चीज़ है। उस काल में बनना हो, तब बनता है। बनानेवाले के भाव में शुभभाव हो तो पुण्य है। कहीं मन्दिर बनवाने के भाव में धर्म नहीं। आहाहा!

भावार्थ :- जिसके जिनसम्यक्त्व दृढ़ है... जिनसमकित दृढ़ है। देखो, भाषा! आहाहा! यह जिनवर के चरण का उपासक, यह चैतन्यमूर्ति जिनस्वरूप का सेवक।

जिसके जिनसम्यक्त्व दृढ़ है... आहाहा! **उसके संसार की ऋद्धि तृणवत् है,...** संसार की ऋद्धि तृण... सड़ा हुआ तिनका, तिनका सड़ा हुआ। इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़ा हुआ तिनका है। आत्मा के आनन्द को सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् आनन्द का नाथ, उसका जिसे स्वाद आया, उसे संसार की ऋद्धि तृणवत् लगती है। आहाहा! **परमार्थसुख ही की भावना है,...** धर्मात्मा को तो परमार्थसुख—आत्मा के आनन्द का सुख, उसकी भावना होती है। आहाहा! विषय के सुख, देव के सुख की इच्छा उसे होती नहीं। आवे बीच में, परन्तु उसकी इच्छा नहीं, उसकी रुचि नहीं। आहाहा!

विनाशीक ऋद्धि की वांछा क्यों हो? क्षणमात्र में नाश हो, ऐसी ऋद्धि संसार की। आहाहा! बड़ा देव, ऐसी ऋद्धिवाला लो आठवाँ स्वर्ग। क्षण में तिर्यंच में उत्पन्न हो। तिर्यंच। आहाहा! यह आत्मा की भावना (से) आगे एक क्षण में उत्कृष्ट पुरुषार्थ हो तो केवलज्ञान ले—ऐसा पुरुषार्थ अन्दर है। ऐसी भावनावाला ऐसी भावना कैसे करे, कहते हैं। **विनाशीक ऋद्धि की वांछा क्यों हो?** ओहोहो! धर्मी की दृष्टि तो ध्रुव अविनाशी के ऊपर है। तो इस अपेक्षा से तो केवलज्ञान की पर्याय, संवर-निर्जरा की पर्याय भी नाशवान है। केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है न! एक समय रहती है। दूसरे समय में दूसरा होता है। केवलज्ञान वही नहीं, वही नहीं। वैसा अवश्य परन्तु वह नहीं, दूसरे समय में दूसरा। नाशवान है। आहाहा! संवर, निर्जरा, मोक्ष का मार्ग, वह नाशवान है। तो उस बाहर की ऋद्धि का क्या कहना? कहते हैं। आहाहा! जहाँ उसका आश्रय नाशवान पर्याय के ऊपर नहीं, उसका पर नाशवान चीज़ के ऊपर आकांक्षा कैसे हो? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १३१

आगे इस ही का समर्थन है कि ऐसी ऋद्धि भी नहीं चाहता है तो अन्य सांसारिक सुख की क्या कथा ?— आहाहा! '**मुणिधवलो**' ऐसा शब्द डाला है। '**धवलो**' अर्थात् प्रधान। आहाहा! धवल-धवल नहीं आता अपने? जयधवल और महाधवल (और धवल) ग्रन्थ है न ग्रन्थ। धवल का अर्थ उजला होता है। मुनिप्रधान। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव....

किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं।
जाणंतो पस्संतो चिंततो मोक्ख मुणिधवलो॥१३१॥

अर्थ :- सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वोक्त प्रकार की भी ऋद्धि को नहीं चाहता है... स्वर्ग की। **तो मुनिधवल अर्थात् मुनिप्रधान है, वह अन्य जो मनुष्य देवों के सुख...** साधारण मनुष्य और देव के **भोगादिक जिनमें अल्प सार है...** '**अप्पसाराणं**' शब्द पड़ा है न! कहीं सार ही नहीं वास्तव में। आहाहा! **उनमें क्या मोह को प्राप्त हो ?** आहाहा! जिसे देव की महा अतुल ऋद्धि का मोह-कांक्षा नहीं, उसे साधारण मनुष्य के, देव के सुख की (आकांक्षा कहाँ से हो) ? आहाहा! **जिनमें अल्प सार है, उनमें क्या मोह को प्राप्त हो ? कैसा है मुनिधवल ? मोक्ष को जानता है, उस ही की तरफ दृष्टि है, उस ही का चिन्तन करता है।** ऐसा है न? '**जाणंतो पस्संतो चिंततो**' आहाहा! '**मोक्ख**' मोक्ष— पूर्णानन्द का लाभ, उसे जानता है, उस ओर दृष्टि है, उसका चिन्तवन करे। जिसे बड़े देव की ऋद्धि की भी कांक्षा नहीं, उसे साधारण मनुष्य के, देव के भोग की इच्छा तो होती नहीं। आत्मा (के) अनन्त आनन्द के भोग की भावना होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ५, रविवार, दिनांक ०९-०६-१९७४
गाथा - १३१ से १३४, प्रवचन-१६९

पूर्वोक्त प्रकार की भी ऋद्धि को नहीं चाहता है... जिसे आत्मा का श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव हुआ है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव को संसार की देव आदि की ऋद्धि की भी उसे रुचि होती नहीं। धर्मी जीव को पर में से सुखबुद्धि उड़ जाती है। पर में सुख है, यह बुद्धि उड़ जाती है। सम्यग्दर्शन होने पर, आत्मा में आनन्द है, उस अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है प्रभु आत्मा, ऐसा भान और प्रतीति, अनुभव होने पर सम्यग्दृष्टि को पर में, देव आदि की ऋद्धि में भी सुखबुद्धि होती नहीं। **तो मुनिधवल...** मुनि की क्या बात करना? ऐसा कहते हैं। उन्हें तो आसक्ति होती नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव को पर में सुखबुद्धि होती नहीं, तथापि उसे आसक्ति होती है। तो कहते हैं कि मुनिधवल— मुनिप्रधान जिसे आत्मा के आनन्द की उग्र दशा प्रगट हुई है, **वह अन्य जो मनुष्य देवों के सुख-भोगादिक जिनमें अल्प सार है, उनमें क्या मोह को प्राप्त हो?** आहाहा! यहाँ तो सुख के ऊपर ही पूरी बात ली है।

गृहस्थाश्रम में चक्रवर्तीपद में हो, परन्तु आत्मा का भान और सम्यक्त्व हुआ, उसे पर में सुखबुद्धि नहीं रहती। इन्द्र के इन्द्रासन में भी सुखबुद्धि उड़ जाती है। सुखबुद्धि अपने आत्मा में है। आहाहा! छह खण्ड के राज में पड़ा दिखाई दे, हजारों इन्द्राणी इन्द्र को होती हैं, तथापि उस पर में सुखबुद्धि की रुचि ही उड़ गयी है। आहाहा! उसका नाम अन्तर दर्शन, शुद्धि और समकित कहा जाता है। तो मुनि की क्या बात करना? कहते हैं। मुनि तो चारित्र में, आनन्द में रमते होते हैं। उन्हें तो ऐसी ऋद्धि की आसक्ति अस्थिरता भी होती नहीं, ऐसा। नि:कांक्ष होते हैं।

कैसा है मुनिधवल? मोक्ष को जानता है,... आहाहा! परमानन्दरूपी मोक्ष का उसे ख्याल है। परमानन्द है, परमानन्द तो मोक्ष में है, अन्यत्र कहीं परमानन्द है नहीं। ऐसा जानते हैं **उस ही की तरफ दृष्टि है,...** मुनि की तो मोक्ष के ऊपर दृष्टि है। आहाहा! ध्येयरूप से द्रव्य है, परन्तु मोक्ष आत्मा का अनन्त आनन्द का लाभ, आत्मा के अनन्त

आनन्द का लाभ, वह मोक्ष, मुनि की तो वहाँ आगे ध्येय, दृष्टि है उत्पन्न करने की अपेक्षा से। वैसे ध्येय तो ध्रुव के ऊपर है। धर्मी का ध्येय, ध्रुव नित्यानन्द प्रभु वहाँ उसका ध्येय है। परन्तु प्रगट करने के लिये उसकी दृष्टि पूर्ण आनन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति के ऊपर दृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य के ऊपर दृष्टि और पर्याय के ऊपर भी दृष्टि रखनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को प्रगट करना, इस अपेक्षा से दृष्टि कही न! साध्य तो मोक्ष है न? साध्य मोक्ष है, ध्येय द्रव्य है। साध्य मोक्ष है, साधक मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : पर्याय के ऊपर दृष्टि दे तो द्रव्य के ऊपर न जाये,....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लक्ष्य / दृष्टि तो वहाँ ही है, परन्तु प्रगट करने के लिये साध्य अनन्त आनन्द का लाभरूपी मोक्ष, वह साध्य। पीछे आया नहीं समयसार (में)? उपाय-उपेय, उपाय-उपेय। उपेय, वह साध्य है। सिद्ध। सिद्धपद, वह साध्य है और उपाय आत्मा के अन्तर से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह उपाय, वह साधक है। आहाहा!

धर्म अर्थात् आत्मा का आनन्द। वस्तु स्वभाव, वह धर्म। तो वस्तु जो भगवान आत्मा, उसका धर्म नित्य तो आनन्द है। उस धर्म की दशा को प्रगट करने के लिये ध्येय में तो धर्म का धारक द्रव्य, उसके ऊपर दृष्टि है। आहाहा! और उपेयरूप से, प्राप्त करने के रूप से तो परम आनन्दरूपी मोक्ष की दशा है। तो मुनि को तो ऐसी ऋद्धि... यहाँ मुनि है न? पंचम काल के मुनि हैं। उन्हें केवल (ज्ञान) नहीं है, स्वर्ग में जायेंगे। स्वर्ग में ही जायें पंचम काल के मुनि सच्चे सन्त, हों! तो कहते हैं कि परन्तु उस ऋद्धि की आसक्ति नहीं उन्हें अभी। आहाहा! **उस ही का चिन्तन करता है।** आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का चिन्तवन करते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- **जो मुनि प्रधान हैं...** धवल कहा न, धवल? मुनि आत्मा के आनन्द में स्वसंवेदन को साधनेवाले प्रधान हैं, **उनकी भावना मोक्ष के सुखों में है।** लो! आहाहा! मोक्ष के सुख में उनकी भावना होती है, ऐसा कहते हैं। **वे बड़ी-बड़ी देवविद्याधरों की फैलाई हुई विक्रियाऋद्धि में भी लालसा नहीं करते हैं...** देवादि की ऋद्धि देखकर लालसा नहीं करते वे। आहाहा! **तो किंचित्मात्र विनाशीक जो मनुष्य,**

देवों के भोगादिक का सुख... 'अप्पसाराणं' है न शब्द ? **'अप्पसाराणं'** जिसमें अल्पसार है अथवा बुरा सार है।

मुमुक्षु : थोड़ा-सा सार है सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : अप-बुरा लिया न, दूसरा अर्थ किया। जिसमें बुरा सार, बुरा है दुःख, ऐसे विनाशीक मनुष्य के भोग को कैसे इच्छे ? ऐसा कहते हैं। देव के भोग को भी सम्यग्दृष्टि इच्छता नहीं और मुनि को उस ओर की आसक्ति नहीं तो यह मनुष्य के हल्के साररहित... आहाहा! ऐसे सुख को मुनि कैसे इच्छे ? कहते हैं। **वांछा कैसे करे ? अर्थात् नहीं करे।** लो! आहाहा! धर्म, धर्म की दृष्टि और धर्मी को प्रगट करने की मोक्षदशा। वस्तु आनन्दमय, प्रगट करने के योग्य मोक्ष आनन्दमय और उसका उपाय भी आनन्दमय। इसलिए यह भावपाहुड़ है न! भावपाहुड़ है न ? जिसे अपना अतीन्द्रिय आनन्द अन्तर में है, ऐसा अनुभव हुआ, वह पर में आनन्द कैसे चाहे ? आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए तृणवत् लगते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो ज्ञान खोटा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा, उसमें सुख कहाँ है, (कि) वह खोटा हुआ। सुख है इन्द्र में ? ऐसा कि इन्द्र में सुख है और सुख नहीं मानता, (इसलिए) ज्ञान खोटा हुआ, ऐसा (ये) कहते हैं। धूल में भी सुख नहीं। आहाहा! कषाय के अंगारों में सिंकते हैं। विषयसुख की लालसावाले कषाय की अग्नि से सिंकते हैं, जलते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १३२

आगे उपदेश करते हैं कि जब तक जरा आदिक न आवें, तब तक अपना हित कर लो :— आहाहा! यह गाथा दसवैकालिक में आती है।

मुमुक्षु : जरा में धर्म नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पुरुषार्थहीनवाले को बताते हैं। बाकी जरा हो या रोग हो, वह कहीं बाधक नहीं है उसे। परन्तु पुरुषार्थहीनतावाले को उग्र पुरुषार्थ कराने के

लिये, यह बात करते हैं। वरना शरीर में जीर्णता आवे, तब धर्म न हो सके, ऐसा है? शरीर में रोग आवे और धर्म न हो सके? शरीर में रोग जड़ में। आहाहा! सातवें नरक के नारकी की रोग की पीड़ा सुनी न जाये, ऐसी पीड़ा। सातवें नरक अपरिठाणा रवरव नरक। आहाहा! उसमें भी सम्यग्दर्शन पाते हैं। वहाँ रोग कहाँ बाधक है? आहाहा! यहाँ तो पुरुषार्थ की उग्रता शीघ्र करने के लिये, जरा (वृद्धावस्था) न आवे, रोग न आवे, इन्द्रिय हीनता न पावे, उससे पहले कर ले, ऐसा कहते हैं। बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में नहीं होगा।

मुमुक्षु : धर्म तो बुढ़ापे में ही होता है न, जवानी में तो कमाना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कमाता नहीं, हैरान होता है वहाँ। जवानी में... बालकपन में पढ़ना, जवानी में कमाना, वृद्धावस्था में धर्म हो, ऐसा होगा? नहीं। आहाहा! इसे बालपना, वह तो जड़ की अवस्था—देह की अवस्था है। युवापना, वह देह-जड़ की अवस्था है। वृद्धावस्था वह जड़ की, उससे आत्मा को कोई बाधा नहीं, परन्तु यहाँ तो पुरुषार्थहीनतावाले प्राणी को शीघ्र कर ले, यह बताने के लिये यह वैराग्य की बात करते हैं। बाद में नहीं होगा, तुझे कठिनता पड़ेगी। वृद्धावस्था आवे, बैठा नहीं जा सके, कमर टूटे, कमर में... क्या कहलाता है? वह मणका घूम जाता है, भाई! नहीं कुछ? ऐई! क्या कहते हैं? मणका, ऐसा कहते हैं। अपने को कुछ खबर नहीं। लोग कहते हैं। यहाँ से मणका खिसक जाता है, यहाँ कमर में से ऐसे। फिर पड़ा रहे खाट में। उठा नहीं जाता। आहाहा! उस काल में पुरुषार्थहीन को उग्रपना बतलाने के लिये (कहते हैं) कि भाई! उस काल में फिर नहीं होगा, पहले से कर ले न। आहाहा!

उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं।
इन्दियबलं ण वियलइ ताव तुमं कुमहि अप्पहियं॥१३२॥

आहाहा! यह दशवैकालिक में ऐसा आता है। 'जरा जाव न पीलयी वाई जाव न वधई, जाव इन्दीया न हायंति।' श्वेताम्बर दशवैकालिक सूत्र है न। वह तो कण्ठस्थ था न सब। छह हजार श्लोक कण्ठस्थ थे। यह न्याय दिया। 'जरा जाव न...' वृद्धावस्था पीड़ा न पावे, रोग दिखाई न दे, बाहर न आवे रोग। अन्दर तो सब रोग पड़े हैं। अन्दर शरीर में पाँच करोड़ रोग हैं, पाँच करोड़।

मुमुक्षु : .... ६८ लाख ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। और इन्द्रियाँ हीन न हों, उससे पहले धर्म कर ले, ऐसा कहते हैं। है न '**अप्पहियं**'।

अर्थ :- हे मुने! जब तक तेरे जरा (बुढ़ापा) न आवे... आँख में पानी झरे, मुख में से लार झरे, कमर में दर्द, जोड़ों में दर्द। जोड़-जोड़ दुःखे यह। आहाहा! भाई! तू पहले से कर ले, भाई! ऐसा कहते हैं। अवसर आया है, बापू! आहाहा! तूरा हित पहले से कर ले। फिर ऐसे समय में पुरुषार्थ हीनवाले को नहीं हो सकेगा। बाकी पुरुषार्थी को तो उसमें भी समकित और चारित्र प्राप्त हो सकता है, उसमें कहाँ? आहाहा!

हे मुने! जब तक तेरे जरा (बुढ़ापा) न आवे तथा जब तक रोगरूपी अग्नि तेरी देहरूपी कुटि को भस्म न करे... आहाहा! **रोगरूपी अग्नि तेरी देहरूपी कुटि...** झोंपड़ी, यह झोंपड़ी। आहाहा! भगवान तो अमृत का सागर भिन्न है। यह देह कुटि तो भिन्न है, यह तो मिट्टी है। आहाहा! **देहरूपी कुटि को भस्म न करे और जब तक इन्द्रियों का बल न घटे...** इन्द्रियों का बल घट जाये, आँख देख सके नहीं, कान से सुन सके नहीं, व्यवस्थित इन्द्रियों के सहारे बिना बैठ सके नहीं। टेका समझे न? दीवार आदि सहारा। अकेला बैठ सके नहीं। उन **इन्द्रियों का बल न घटे, तब तक अपना हित कर लो। 'तब तक अपना हित...'** ऐसा है न पाठ? '**अप्पहियं तुमं कुमहि**' आत्महित पहले कर लो। उस समय फिर तुझे मुश्किल पड़ेगी। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कौन इनकार करता है? परन्तु यहाँ तो पुरुषार्थहीन की पहले बात करनी है न। पुरुषार्थहीन के लिये पहले से यह कर ले। फिर होगा या नहीं होगा, क्या खबर पड़े? ऐसा कहते हैं। पुरुषार्थहीनवाले की यह व्याख्या है। जिसे पुरुषार्थ उग्र है, उसे तो चाहे जिस स्थिति में आत्मज्ञान पाकर पुरुषार्थ करके चारित्र भी पा सकता है, उसमें क्या?

भावार्थ :- वृद्ध अवस्था में देह रोगों से जर्जरित हो जाता है,... लो! रोग से जर्जरित हो जाता है। **इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं, तब असमर्थ होकर इस लोक के कार्य**

उठना-बैठना भी नहीं कर सकता है... लो! उठना हो तो कितनी मेहनत पड़े। हाथ दे, बैठना हो तो मुश्किल पड़े। आहाहा! **तब परलोकसम्बन्धी तपश्चरणादिक तथा ज्ञानाभ्यास और स्वरूप का अनुभवादि कार्य कैसे करे?** ऐसा। परलोकसम्बन्धी तपस्या अर्थात् संयम, मुनिपना। अथवा **ज्ञानाभ्यास**- अन्तर के ज्ञानस्वरूप का अभ्यास **और स्वरूप का अनुभवादि...** और आत्मा के आनन्द का अनुभव **कैसे करे?** आहाहा! **इसलिए उपदेश है कि जब तक सामर्थ्य है, तब तक अपना हितरूप कार्य कर लो।** जब तक सामर्थ्य है, कर ले, फिर (नहीं होगा)। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १३३

आगे अहिंसाधर्म के उपदेश का वर्णन करते हैं :—

छज्जीव छडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं।
कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं॥१३३॥

अर्थ :- हे मुनिवर! मुनि को लक्ष्यकर मुख्य बात है न! भावपाहुड़। **छह काय के जीवों पर दया कर...** आहाहा! एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति, अग्नि, त्रस— छह काय के जीवों के ऊपर दया कर।

मुमुक्षु : पर की दया तो की नहीं जा सकती?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भाव की बात है न। कर सकने की कहाँ? पर को नहीं मारने का भाव कर। मारने का भाव छोड़ दे। संयम लेना है। संयम की बात है। दया कर, इतनी बात है। पर की दया पाल सकता है या नहीं, यह कहीं बात नहीं। पर की दया कौन पालता है? पर को न मारने का भाव रख। आहाहा!

छह अनायतनों को मन, वचन, काय के योगों से छोड़... यह सूक्ष्म बात आयी। **छह अनायतनों को...** अर्थ में आयेगा। जो धर्म के स्थान नहीं—कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और उनके सेवक, यह छह अनायतन। कुगुरु—जैनधर्म में जो चीज़ है, ऐसी चीज़ उसमें नहीं, उसे माननेवाला, वह कुगुरु। कुशास्त्र—जिसमें आत्मा

के तत्त्व से विरुद्ध बात है और कुदेव—वह देव नहीं। यहाँ साधारण बात की है, देव की व्याख्या अगासवालों ने। क्षेत्रपाल और देवी। परन्तु यहाँ तो देव-कुदेव जो... आहाहा! उन्हें तो सब इकट्ठा रखना है। यहाँ तो श्वेताम्बर में कहे देव, वे एक भी देव नहीं, वे कुदेव है। जिस देव को आहार, जिस देव को शरीर में रोग, जो देव स्त्रीरूप होकर देव हो जाये, वे सब देव हैं ही नहीं। यह देव की व्याख्या ही नहीं। कुगुरु—वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माने, वे कुगुरु हैं।

मुमुक्षु : यह तो समन्वय का जमाना है....

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय। वस्तु का समन्वय किस प्रकार हो? जहर और अमृत का समन्वय किस प्रकार हो? 'है' इस अपेक्षा से समन्वय है। दोनों हैं। परन्तु दोनों समान हैं, ऐसा नहीं। मार्ग तो ऐसा कठोर मार्ग है, भाई! कहा है न मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में तो कहा नहीं? श्वेताम्बर मत में देवादि, मोक्षमार्ग आदि और तत्त्व की (बात) विरुद्ध है। मोक्षमार्ग में आता है—मोक्षमार्गप्रकाशक, टोडरमलजी। उसमें देवादि, तत्त्वादि और मोक्षमार्ग—तीन कहे हैं। मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि। चारित्र का और यह देवादि का। कठोर बात है, भाई! वह अनायतन है। उन्हें परमत में डाला है न। क्या चेतनजी! श्वेताम्बरमत, स्थानकवासीमत अन्यमत में डाला है। मोक्षमार्गप्रकाशक, पाँचवाँ अध्याय, जैनमत ही नहीं। ऐई! जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? अन्यमत की बात। यह तो भाई! उनके प्रति द्वेष की बात नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

मुमुक्षु : वे लोग ऐसा मानते हैं कि यह लोग द्वेष करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु द्वेष किसका? सच्चा माने तुम्हारा खोटा उसे? तो उसे अच्छा कहलाये? मार्ग तो ऐसा है, बापू! आचार्य को अन्दर अनायतन कहने में ऐसा आशय है। क्योंकि वे श्वेतात्मबर निकलने के बाद यह ग्रन्थ बनाये हैं। कुन्दकुन्दाचार्य से पहले सौ वर्ष पहले श्वेताम्बर मत निकल चुका था। स्थानकवासी तो अभी पाँच सौ वर्ष पहले (निकला)। आहाहा! तलवार की धार मार्ग है। दुनिया के साथ कुछ समन्वय हो, ऐसा नहीं, भाई!

वास्तव में तो कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और तीन को माननेवाले, वे छहों अनायतन हैं—धर्म के स्थान ही नहीं। फिर सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र और उन्हें माननेवाले—यह व्यवहार से आयतन है। निश्चय से तो वे भी अनायतन हैं। आहाहा! निश्चय से तो आयतन आत्मा भगवान है। जहाँ धर्म की उत्पत्ति जिससे होती है।

(नोंध - यहाँ से प्रवचन का अमुक भाग आगे के पृष्ठ पर आ गया है, इसलिए नहीं लिया गया है।)

ऐसा अपना आत्मा ही आयतन है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई!

भाई ने कहा न अनायतन। न्यालभाई की बात सच्ची है। निहालभाई ने अनायतन कहा है न। तो चिल्लाहट मचा गये सब। बापू! व्यवहार से आयतन है। वह व्यवहारनय के समकित का जहाँ वर्णन आवे, तब उसे छह आयतन कहा जाता है। सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र। परन्तु उन्हें मानने की ओर का झुकाव है, वह शुभराग है। व्यवहार से आयतन है और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र तो व्यवहार से भी आयतन नहीं। कहो, धीरुभाई! चिल्लाहट मचा जाये, ऐसा है यह तो। ऐई! प्रेमचन्दभाई! क्या हो ... यह सब सेठिया सब स्थानकवासी थे। आहाहा!

भाई! वीतरागमार्ग है, निर्ग्रन्थ मार्ग है। सम्यग्दर्शन निर्ग्रन्थ अर्थात् राग की एकता टूटकर दशा होती है। और निर्ग्रन्थपना तो राग की अस्थिरता टूटकर स्थिर हो, तब निर्ग्रन्थ मार्ग है। आहाहा! ऐसे मार्ग की जहाँ स्थिति नहीं और विपरीत है, वे सब कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र है। आहाहा! आचार्य ने दो—छह काय और छह अनायतन, ऐसे बारह बोल इकट्ठे लिये।

अनायतनों को मन, वचन, काय के योगों से... ऐसा। वापस बाहर से छोड़ा और मन में कुछ रहे कि कुछ ठीक होगा पर में। **मन, वचन, काय के योगों से छोड़...** आहाहा! **तथा अपूर्व जो पहिले न हुआ ऐसा महासत्त्व अर्थात् सब जीवों में व्यापक (ज्ञायक) महासत्त्व चेतनाभाव को भा।** आहाहा! **'भावि अपुव्वं महासत्तं'** ऐसा अर्थ लिया है। उस टीका में और ऐसा ... सम्बोधन किया। **'भावि अपुव्वं महासत्तं'** ऐसा भी अर्थ है। अर्थात्? अपूर्व महासत्त्व, चैतन्य जो दल, आनन्द, ज्ञानस्वरूप का ध्रुव दल,

पिण्ड, वह महासत्त्व है। आहाहा! एक समय की पर्याय के पीछे महासत्त्व, सत् का सत्त्व। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता— ऐसा जो महासत्त्व चैतन्य का, उसकी भावना कर। आहाहा!

महासत्त्व अर्थात् सब जीवों में व्यापक... ऐसा। सब जीवों में ज्ञायकपना है। आहाहा! ज्ञायक। जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... सब आत्मा में वह महासत्त्व जानपना है। उस जानने के स्वभाव का महासत्त्व का ध्यान कर। आहाहा! उसकी भावना को भा। आहाहा! कहो, निमित्त की नहीं, राग की नहीं, एक समय की पर्याय की नहीं। त्रिकाली महासत्ता प्रभु ज्ञायकभाव, आनन्द का नाथ प्रभु, ऐसे महासत्त्व की भावना कर, भाई! आहाहा! अर्थात् कि उसमें एकाग्र हो, ऐसा। आहाहा! **अपूर्व जो पहिले न हुआ ऐसा महासत्त्व...** ज्ञायकपने दृष्टि-अनुभव कभी नहीं हुआ। आहाहा! ऐसी **महासत्त्व चेतना...** महासत्त्व—सामर्थ्यरूपी चेतना त्रिकाली **भाव को भा।** आहाहा!

भावार्थ :- अनादि काल से जीव का स्वरूप चेतनास्वरूप न जाना... भगवान आत्मा का स्वरूप तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द चेतना है। यह पुण्य और पाप, दया, दान और व्रत, वह कहीं उसका स्वरूप नहीं। उसका स्वरूप नहीं, वह तो विकार है, वह तो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! **अनादि काल से जीव का स्वरूप...** जीव का स्वरूप—आत्मा का स्वरूप। अपना निजरूप चेतनास्वरूप। चेतना निजस्वरूप है। जानना-देखना, वह निजस्वरूप है। आहाहा! उसे **न जाना...** शास्त्र पढ़ा ग्यारह अंग। नौ पूर्व की लब्धि होती है न नौ पूर्व की ? अभव्य को भी होती है। उस महासत्त्व को नहीं जाना। ज्ञायकभाव महासामर्थ्यस्वरूप चेतना, ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वरूप, उसे नहीं भाया, उसके सन्मुख नहीं हुआ, उसकी एकाग्रता नहीं की, तो अब कर न, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसलिए जीवों की हिंसा की... ऐसा। चेतना महाप्रभु आत्मा है, ऐसा जाना नहीं, तो दूसरे प्राणी को मारने का भाव किया। दूसरे प्राणी तो महा चेतनासत्त्व है। ऐसी सत्ता के स्वीकार बिना, चेतना के महास्वभाव के स्वीकार बिना, मानो दूसरे जीव चेतनारहित हैं, ऐसा करके उनकी हिंसा की, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जीवों की हिंसा की, अतः यह उपदेश हैं कि अब जीवात्मा का स्वरूप जानकर...** जीवात्मा सब जीवात्मा कह

दिये। ज्ञान-दर्शन से भरपूर प्रभु सब आत्मा है। आहाहा! **छह काय के जीवों पर दया कर।** ऐसा। आहाहा! छह काय के जीव हैं, वे वास्तव में तो जीव नहीं। जीव तो चेतनाभाव ज्ञायक, वह जीव है। छह कायपना, वह जीव नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार आवे न! आहाहा! और यह छहकाय के जीव में भी पूर्व भव के माता, पिता, पुत्र, स्त्री उसमें पड़े हैं। जिसे तू पुत्ररूप से कहता था कि उसे याद करूँ, वह पुत्र मरकर वहाँ पड़े हैं उसमें। एकेन्द्रिय जीव में पड़े हैं। माता-पिता के जीव भी वहाँ पड़े हैं। अनन्त माता-पिता किये।

यहाँ महासत्त्व ज्ञायकस्वरूप, वह भी महासत्त्व व्यापक सबमें महास्वरूप, ऐसा भान करके, ऐसा भान करके किसी भी प्राणी को नहीं मारना, वह विकल्प नहीं उठाना, उसका नाम अहिंसा है। ऊपर अहिंसा धर्म का उपदेश है न! ऊपर कहा। इसका नाम अहिंसा। सब प्राणी चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव, पूरा समुद्र—सागर ज्ञायकभाव से भरपूर है। पूरा लोक। सूक्ष्म जीव है न! यहाँ भी है। ... पूरा लोक भरा है। प्रभु ज्ञायकसत्त्व है। वह सब आत्मायें ज्ञायकसत्त्व है। ऐसी व्यापक दृष्टि जहाँ हुई... आहाहा! मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ। वे सब प्राणी ज्ञायकस्वरूप हैं। तो किसी को मारने का भाव नहीं हो। आहाहा!

छह काय के जीवों पर दया कर। अनादि ही से आप्त,... देव। आप्त अर्थात् देव। **आगम,...** अर्थात् शास्त्र और **पदार्थ का...** आगम, आप्त-देव और पदार्थ ऐसा लिया। देव, पदार्थ और आगम **इनकी सेवा करनेवालों का स्वरूप जाना नहीं,...** सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे पदार्थ को माननेवाले, उनकी सेवा करनेवाले का स्वरूप जाना नहीं। आहाहा! **इसलिए अनाप्त आदि छह अनायतन...** अनाप्त अर्थात् आप्त नहीं, देव नहीं, वह अनाप्त। अ-आगम... आगम नहीं ऐसे, आगम नहीं उसे आगम माना है। आहाहा! भगवान की वाणी, वही आगम है। परन्तु उस वाणी बिना कल्पित बनाये, वह आगम नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आता है न कि यह आगम बनाया है न? बहुत पूछते हैं। वे श्वेताम्बर आवे सही न। भाई! यह अध्यात्म के ग्रन्थ, शास्त्र हैं। ऐसा कहा। यह अध्यात्म के शास्त्र हैं। परमागम हैं, अध्यात्म के हैं। दिगम्बर शास्त्र हैं। यह परमागम

(मन्दिर)। वे श्वेताम्बर आवे न बहुत। पालीताणा में है न आगम मन्दिर, नीचे है। तो वे मानो कि यह आगम है, ऐसा कहे। कहा, भाई! यह अध्यात्म आगम है, आत्मा को बतानेवाले, जनानेवाले। आहाहा!

अनाप्त आदि छह अनायतन... अर्थात् यह देव नहीं, उसे देव मानना, आगम नहीं उसे आगम मानना, पदार्थ वास्तविक तत्त्व नहीं, उसे तत्त्व मानना और उसके माननेवाले को मानना। छह बोल हुए। आहाहा! **इसलिए अनाप्त आदि छह अनायतन...** तीन दूनी छह हुए न? **जो मोक्षमार्ग के स्थान नहीं है...** मोक्षमार्ग का स्थान नहीं वहाँ। वे मोक्षमार्ग का ठिकाना नहीं, स्थान नहीं। आहाहा! **उनको अच्छे समझकर सेवन किया,...** ऐसे मोक्षमार्ग के स्थान नहीं, उसे भला मानकर **अच्छे समझकर सेवन किया, अतः यह उपदेश है कि अनायतन का परिहार कर।** आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि को तो अनायतन होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता नहीं, परन्तु यह तो उपदेश में तो आवे सही न! उपदेश में तो ऐसा आवे, किसी का ऐसा संग नहीं करना, परिचय नहीं करना। समकिती को भी अनायतन नहीं। परन्तु उपदेश में क्या आवे? व्यवहार समकित के कथन आवे तो ऐसा आवे। अनायतन की सेवा नहीं करना। बहुत बड़ा भाग है न वह, इसलिए उपदेश में तो ऐसा ही आवे न। आता है न उसमें। पाँचवें अध्याय में नहीं आता? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अनायतन है। यहाँ तो ... अभी बड़ा भाग वह है ऐसा। क्या है छठवें में? 'कोई निन्दा करे तो निन्दा करो, स्तुति करे तो स्तुति करो, लक्ष्मी आओ, जाओ, मरण आज ही होओ, युगान्तर में होओ, परन्तु नीतिवान निपुण पुरुष न्यायमार्ग से एक कदम भी चलित नहीं होते। ऐसा न्याय विचारकर निन्दा-प्रशंसा आदि के भय से, लोभादिक से भी अन्यायरूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति करना योग्य नहीं। ओहो! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है। उनके आधार से तो धर्म है। उनमें शिथिलता रखे तो अन्य धर्म किस प्रकार हो? बहुत क्या कहें? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी

होना योग्य है। क्योंकि कुदेवादि का त्याग न करने से मिथ्यात्वभाव बहुत पुष्ट होता है। और...' अब यहाँ कहना है। 'इस काल में यहाँ उनकी प्रवृत्ति विशेष देखने में आती है।' इसलिए लिखा है। इस काल में ऐसे कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र और (उन्हें) माननेवालों की प्रवृत्ति विशेष दिखाई देती है। वे लोग बहुत और संख्या बहुत। इसलिए यहाँ उनका विशेष निरूपण किया है। लो! देखो न! पंक्ति-पंक्ति न्याय से भरी है सब। मोक्षमार्गप्रकाशक, टोडरमलजी। 'इस काल में उनकी प्रवृत्ति विशेष दिखाई देती है। इसलिए कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का निषेध किया है।' ऐसा कहते हैं। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत हजारों बोल का स्पष्टीकरण किया है। निचोड़-निचोड़। वह भी बहुतों को मान्य नहीं।

मुमुक्षु : बीस पंथी को भी मान्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें नहीं और वह विकास (चन्द) है न अभी, उसे मान्य नहीं। वे टोडरमलजी भूले हैं, श्रीमद्जी भूले हैं। निश्चय समकित चौथे में मानते हैं (ऐसा वह कहता है)।

मुमुक्षु : स्वयं सबसे अधिक भूला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चौथे गुणस्थान में समकित, निश्चय समकित होता ही नहीं। व्यवहार समकित होता है और उन लोगों ने सबने निश्चय स्थापित किया है, सब भूले हैं। एक है विकास। आहाहा! ऐसा है भाई! संसार तो ऐसा सब चलता ही जाता है। आहाहा! सत्य पंथ के निकट आना बहुत दुर्लभ है, सत्य पंथ में लगना यह दुर्लभ है। यह सब समागम और संसर्ग तो छूट जायेंगे, यह कहीं रहेंगे नहीं इसके साथ। आहाहा! इसलिए यह समागम और संसर्ग में खोटे पोषण में बनाया होगा, वह सब तुझे खटकेगा, दु:ख होगा तुझे। आहाहा!

जीव के स्वरूप के उपदेशक ये दोनों ही तूने पहिले जाने नहीं... यह आया न? **अतः यह उपदेश है कि अनायतन का परिहार कर। जीव के स्वरूप के उपदेशक ये दोनों ही तूने पहिले जाने नहीं,...** जीव के स्वरूप के कहनेवाले और जीव का स्वरूप, ऐसा। जीव का वास्तविक स्वरूप कहनेवाले देव-गुरु-शास्त्र और जीव का स्वरूप।

कहनेवाले और जीव का स्वरूप दोनों को तूने यथार्थ जाना नहीं। **न भावना की,...** आहाहा! अन्तर स्वरूप ज्ञायकमूर्ति प्रभु की तूने एकाग्रता नहीं की, उसके सन्मुख होकर स्वीकार नहीं किया। आहाहा! उसके सन्मुख होना, वही उसका स्वीकार है और उससे विमुख रहना, वही उसका अस्वीकार है। आहाहा!

इसलिए अब भावना कर, इस प्रकार उपदेश है। लो! छह जीव। नीचे किया है। छह जीव और षडायतन एक पद भी लिखा है। नीचे है। छह एक साथ हैं। छह जीव, छह षडायतन के नाम ... किये हैं। यह षट् जीव का स्वरूप और षट् अनायतन ऐसा तूने बराबर जाना नहीं, कहते हैं। इससे आत्मा के... मन, वचन, काया से छोड़, ऐसा है न पाठ में? वाणी से भी उसका अनुमोदन नहीं, कराना नहीं, करना नहीं, मन से भी जिसकी प्रशंसा नहीं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र। आहाहा! **अब भावना कर, इस प्रकार उपदेश है।** भाई! जीव का स्वरूप महासत्त्व और आयतन जो देव-गुरु-शास्त्र सच्चे और उनके सेवक, उनकी भावना कर। आहाहा! यह तो व्यवहार है, वह निश्चय है।

★ ★ ★

गाथा - १३४

आगे कहते हैं कि जीव का तथा उपदेश करनेवाले का स्वरूप जाने बिना... देखो, यह आया। तत्त्व का उपदेश करनेवाले देव, गुरु और शास्त्र। जीव का (स्वरूप) और **उपदेश करनेवाले का स्वरूप जाने बिना सब जीवों के प्राणों का आहार किया,...** आहाहा! छह काय के जीव का आहार किया तूने पूर्व में। आहाहा! और आहार कर सके नहीं न? वह भाव किया न भाव? छह काय के जीव को मारकर आहार किया, ऐसा बताते हैं।

दसविहपाणआहारो अणंतभवसायरे भमंतेण।
भोयसुहकारणट्ठं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं॥१३४॥

आहाहा! भावपाहुड़ में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वैराग्य का प्रवाह बहता है। भाई! तुझे अनन्त भवसागर में भ्रमण हुआ। आहाहा! अनन्त भवसागर। अनन्त-अनन्त

भव के समुद्र में अनादि से डुबा हुआ है। आहाहा! अनन्त भवसागर। आहाहा! महा भवसागर समुद्र। एक-एक योनि में अनन्त बार अवतार धारण किये। आहाहा! ऐसे **अनन्तभवसागर में भ्रमण करते हुए, सकल त्रस, स्थावर जीवों के दस प्रकार के प्राणों का आहार,...** किया। आहाहा! पाँच इन्द्रिय आदि प्राण लूटकर आहार किया है।

भोग-सुख के कारण के लिये... आहाहा! अपने सुख को, राग के भोग के लिये ऐसे मन, वचन, काया से **भोग-सुख के कारण के लिये मन, वचन, काय से किया।** आहाहा! यह कन्दमूल, आलू और शक्करकन्द होते हैं न, आलू-आलू। अपने भोग के लिये... आहाहा! और सुख के लिये, ऐसा कि... आहाहा! ऐसे आहार किये। उसमें अनन्त जीव पड़े हैं जिसमें। आहाहा! यह आत्मा के स्वरूप को जाने बिना और उसके उपदेश को कौन कहता है, उसे जाने बिना। ऐसा। आहाहा! सत्य उपदेशक कौन देव, गुरु हैं? सत्य कहनेवाले शास्त्र कौन हैं? ऐसा कहते हैं। आहाहा! सत्य कहनेवाले देव, सत्य कहनेवाले गुरु, सत्य कहनेवाले शास्त्र। आहाहा! उस चीज़ को जाने बिना अनन्त भवसागर में अनन्त प्राणी के प्राण का भोजन तूने लिया। आहाहा! राग किया, परन्तु निमित्त से बात तो ऐसी है या नहीं? यह कन्दमूल के आहार को अन्यमति बाबा खाते हैं न। जंगल में रहे, कन्दमूल, जड़ी-बूटी होती है न! बहुत आहार। एक रुपयाभार खाये और एक महीने तक आहार न ले सके, ऐसी जड़ी-बूटी जंगल में (होती है)। परन्तु जीव, अनन्त जीव। आहाहा! एक टुकड़े में—छोटे राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में में अनन्त जीव। आहाहा! तूने उसके स्वरूप को जाने बिना और उनके कहनेवाले तत्त्व के उपदेश को जाने बिना ऐसे आहार, तूने अनन्त बार लिये हैं।

मन, वचन, काय से... ऐसा। आहाहा! भावार्थ में है न! **अनादि काल से जिनमत के उपदेश के बिना...** ऐसा। वीतराग परमात्मा ने जो आत्मा और छह काय का स्वरूप और अनायतन का स्वरूप कहा, ऐसे **जिनमत के उपदेश के बिना अज्ञानी होकर तूने त्रस, स्थावर, जीवों के प्राणों का आहार किया...** यहाँ कहते हैं कि देखो, दस प्रकार के प्राण का आहार कर सकता है न, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। उसे तर्क करना है। उपदेश के वाक्य में तो वहाँ से बात ऐसी ही आवे न! आहाहा! दस जड़ प्राण का तो आहार आत्मा कर सकता नहीं। आत्मा राग करे, परन्तु जिसके निमित्त से राग हुआ,

उसका आहार किया, ऐसा व्यवहार का कथन उसमें आवे। आहाहा! आलू / बटाटा कहते हैं न आलू। चिप्स करके पतली चिप्स करके घी में तलते हैं न। एक-एक चिप्स में अनन्त जीव। लहसुन, प्याज घी में सेंककर ऐसा प्याज लगे मीठा धमधमाट। सर्दी में और वर्षा में (बनाकर खाये)। तेरापंथी के साधु भी प्याज तलकर खाये। स्थानकवासी।

मुमुक्षु : प्रासुक करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रासुक करके। कुछ खबर नहीं होती वस्तु की। यह प्याज।... दो प्याज आये हो तो पाव आधा अधिक दे देवे दूसरे साधु को। टुकड़ा-टुकड़ा दे तो सब साधु प्रसन्न हो जाये। ऐसा कहते थे। भाई! लीलाधरजी हमारे साथ रहे थे न! लीलाधरजी। अरे! भगवान! ऐसा आहार... ऐसा कि अचेतन (प्रासुक) है न। हमारे लिये कहाँ बनाया है? ऐसा।

यहाँ तो सीधा आहार, उसकी बात है। आहाहा! **अनादि काल से जिनमत के उपदेश के बिना...** वीतराग परमात्मा सर्वज्ञदेव का उपदेश। जिनमत का अर्थात् सर्वज्ञदेव का उपदेश। तीन लोक के नाथ और तीन काल का जिन्हें ज्ञान, उनका जो उपदेश, उसे तूने जाना नहीं। आहाहा! **अज्ञानी होकर तूने त्रस, स्थावर जीवों के प्राणों का आहार किया, इसलिए अब जीवों का स्वरूप जानकर...** जीव का स्वरूप जानकर... उसके स्थान कहाँ हैं, ऐसा आता है न अजीव अधिकार में, नियमसार में। आता है। आता है जहाँ हो वहाँ। ... कहाँ-कहाँ जीव की उत्पत्ति, जीव के स्थान कहाँ हैं, उसे जानना चाहिए। जाने तो फिर उसे छोड़ देगा, ऐसा। खबर नहीं कहाँ जीव और कितने कैसे उपजते हैं। यह आता है नियमसार में व्यवहार (चारित्र) अधिकार में। व्यवहार अधिकार है न! आवे न व्यवहार बतावे तो सही न। काई हो जाये। रोटी, अनाज। अनाज बहुत टाईम रहे तो उसमें काई हो जाये। लील-फूग समझते हो न? काई। काई हो जाये। यह पेड़ा, बर्फी। पेड़ा-बर्फी होते हैं न। थोड़े दिन रखे तो उसमें काई हरी... हरी... हरी (हो जाये)। वह अनन्त काय है। ऐसे स्थानों का ज्ञान करके, ऐसा कहते हैं। जीवों का स्वरूप जानकर, ऐसा।

जीवों की दया पाल, भोगाभिलाष छोड़, यह उपदेश है। आहाहा! ऐसे को मारकर खाना, ऐसी अभिलाषा छोड़ दे। आहाहा! भावपाहुड़ है न! **यह उपदेश है।** लो विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ६, सोमवार, दिनांक १०-०६-१९७४
गाथा - १३५ से १३७, प्रवचन-१७०

गाथा - १३५

इस अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़, १३५ गाथा। **फिर कहते हैं कि ऐसे प्राणियों की हिंसा से संसार में भ्रमण कर दुःख पाया :—**

पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि।
उप्पजंत मरंतो पत्तो सि णिरंतरं दुक्खं॥१३५॥

मुनि को लक्ष्यकर बात है न। भावपाहुड़ है न। ऊँचे भाव की बात है।

अर्थ :- हे मुने! हे महायश! ऐसा शब्द प्रयोग किया है। यह पहले आया था कि द्रव्यलिंग धारण किया, यह किया, वह ठीक है, इस अपेक्षा से बात, ऐसा। ऐसा अर्थ आ गया है पहले। **तूने प्राणियों के घात से चौरासी लाख योनियों के मध्य में...** देखो भाषा है। मध्य शब्द है न! चौरासी लाख अवतार के मध्य में रहा। अनन्त बार उपजा और अनन्त बार मरा। चौरासी लाख के अवतार के मध्य में, ऐसा। **उत्पन्न होते हुए...** अनन्त बार उपजा **और मरते हुए निरन्तर दुःख पाया।**

भावार्थ :- जिनमत के उपदेश के बिना,... वीतराग भगवान ने जो चैतन्यस्वभावी आत्मा कहा। आया था न १३३ में आया था। '**भावि अपुव्वं महासत्तं**' चैतन्य महासत्त्व है पूरा पूर्ण ऐसे जीव के स्वभाव को जाने बिना **जीवों की हिंसा से यह जीव चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न हुआ है...** चौरासी लाख में अवतरित हुआ और मरा। **हिंसा से कर्मबन्ध होता है, कर्मबन्ध के उदय से उत्पत्ति-मरणरूप संसार होता है।** चौरासी में उत्पन्न होता है और मरता है। **इस प्रकार जन्म-मरण के दुःख सहता है, इसलिए जीवों की दया का उपदेश है।**

★ ★ ★

गाथा - १३५

आगे उस दया ही का उपदेश करते हैं :—

जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए॥१३६॥

अर्थ :- हे मुने! जीवों को और प्राणीभूत सत्त्वों को... चार बोल लिये। **परम्परा से अपना कल्याण...** आत्मा का भान होकर सम्यग्दर्शनसहित... शुभभाव की यह (बात) है न। तीर्थंकरगोत्र शुभभाव से बँधता है न। **परम्परा से अपना कल्याण...** सम्यग्दर्शनसहित प्राणी की दया का भाव है, वह शुभभाव है और उसमें तीर्थंकरगोत्र बँधे, क्रम-क्रम से मोक्ष भी जाये। **कल्याण और सुख होने के लिये...** परम्परा से कल्याण और सुख होने के लिये **मन, वचन, काय की शुद्धता से अभयदान दे।** आहाहा! '**तिविहसुद्धीए**' शब्द प्रयोग किया है। मन, वचन और काया की शुद्धि। वीतरागी पर्याय प्रगट करके उसमें शुभभाव बाकी रह जाये तो कल्याण की परम्परा मिले उसमें। **अभयदान दे।** आहाहा! यह चार की व्याख्या करते हैं। जीव किसे कहना? प्राणी किसे कहना? भूत किसे कहना? सत्त्व किसे कहना? चार बोल है न। जीव, प्राणी, भूत और सत्त्व। ऐसे तो सब जीव हैं, परन्तु अपेक्षा से भेद किये हैं।

भावार्थ :- जीव पंचेन्द्रियों को जीव कहते हैं,... पंचेन्द्रिय प्राणी कहकर जीव कहते हैं। **प्राणी विकलत्रय को कहते हैं,...** नीचे उतरे अब ऐसे। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, उसे प्राणी कहते हैं। उसमें से नीचे उतरे ऐसे एकेन्द्रिय। **भूत वनस्पति को कहते हैं और सत्त्व पृथ्वी, अप, तेज, वायु को कहते हैं।** चार को सत्त्व कहते हैं। एकेन्द्रिय, त्रस, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, इन तीन में आ गये भेद। पाठ में भेद है न। '**जीवाणमभयदाणं देहि**' पंचेन्द्रिय प्राणी को अभयदान दे। प्राणी। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय विकलत्रय। अभयदान दे।

भूत वनस्पति को... तरु। चार आदि। तरु कहते हैं न वृक्ष। वृक्ष आदि को अभयदान दे। **और सत्त्व पृथ्वी...** के जीव, जल के जीव, अग्नि के जीव, वायु के जीव। **इन सब जीवों को अपने समान जानकर अभयदान देने का उपदेश है। इससे शुभ**

प्रकृतियों का बन्ध होने से... दया का भाव हुआ न, ऐसा शुभभाव आया न शुभ। पुण्यबन्ध का कारण है। **अभ्युदाय का सुख होता है,...** अर्थात् पुण्य परम्परा तीर्थंकरगोत्र आदि बाँधकर स्वर्ग में इन्द्रादि के पद मिलकर परम्परा से मुक्ति होगी, ऐसा कहते हैं। **परम्परा से तीर्थंकरपद पाकर मोक्ष पाता है, यह उपदेश है।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १३७

अब यह ३६३ पाखण्ड। **आगे यह जीव षट् अनायतन के प्रसंग से मिथ्यात्व से संसार में भ्रमण करता है, उसका स्वरूप कहते हैं। पहिले मिथ्यात्व के भेदों को कहते हैं :—** यह ३६३ मिथ्यात्व के भेद हैं। कोई कहते हैं न, जो दूसरे को मिथ्यादृष्टि देखे, वह स्वयं मिथ्यादृष्टि है। ऐसा तो है नहीं। मुनि भी ३६३ पाखण्ड को मिथ्यादृष्टि मानते हैं। सम्यग्दृष्टि भी ३६३ पाखण्ड को मिथ्यादृष्टि मानते हैं। केवली भी ३६३ पाखण्ड को मिथ्यादृष्टि कहते हैं। दूसरे को मिथ्यादृष्टि देखे, वह स्वयं मिथ्यादृष्टि है और समकिती है, वह सबको समकिती देखे। कहो (ऐसा वे कहते हैं)।

मुमुक्षु : भगवान हैं वे दूसरे को....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों को कुछ खबर नहीं होती, किस प्रकार से चलता है यह। आहाहा! यहाँ तो स्पष्ट बात है, लो! यह ३६३ पाखण्ड अनायतन के प्रसंग मिथ्यात्व के भेद हैं ऐसे। यह धर्म के आयतन नहीं, धर्म के स्थान नहीं। आहाहा!

असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी।
सत्तट्ठी अण्णाणी वेणईया होंति बत्तीसा॥१३७॥

अर्थ :- एक सौ अस्सी क्रियावादी हैं,... अर्थ में करेंगे। यह हिलना, चलना, बोलना इन सब क्रिया में कोई भी क्रिया मैं कर सकता हूँ, ऐसा मानते हैं, वे सब क्रियावादी हैं। आहाहा! **चौरासी अक्रियावादियों के भेद हैं,...** यद्यपि यह चौरासी अक्रियावादी तो अनादि काल के हैं। यह कोई नये नहीं, अनादि के हैं। परन्तु टीकाकार ने जरा... इन्होंने नहीं डाला। परन्तु उन टीकाकार ने संक्षेप में डाला है। श्वेतपट

श्वेताम्बर ऐसा कि अक्रियावादी है, ऐसा डाला है। श्वेताम्बर तो अभी निकले। पहले यह ३६३ पाखण्ड तो अनादि के चले आते हैं, ये कोई नये नहीं हैं।

चौरासी अक्रियावादियों के भेद हैं,... श्वेताम्बर में चौरासी भेद आते हैं, परन्तु यह सुना है। अन्तर्भेद उसके। यह तो वह चौरासी का अंक आया न, मिला लिया। **अज्ञानी सड़सठ भेदरूप हैं और विनयवादी बत्तीस हैं।** ऐसा करके ३६३ पाखण्ड मत हैं जगत में। आहाहा! यह तो अनादि से कहते आये हैं। गोम्मटसार में भी यह ही हैं। गोम्मटसार में है न। कोई भी एक पक्ष करके मानता है। गोम्मटसार में। कोई अकेले पुरुषार्थ को माने, कोई अकेले स्वभाव को माने, कोई अकेले ईश्वर को, निमित्त को माने। ईश्वर का अर्थ निमित्त किया है भाई ने—फूलचन्दजी ने। नहीं? ऐसे अज्ञानी ३६३ पाखण्ड मत मिथ्यात्व के हैं। यह तो अन्यमत के प्रकार हैं। जो गृहीत मिथ्यात्व में जाते हैं यह सब। गृहीत मिथ्यात्व। और सातवें अध्याय में जो लिया है, मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवाँ अध्याय है न सातवाँ? वहाँ तो ऐसा लिया है कि जो जैनी है, जिनाज्ञा मानते हैं, उन्हें भी मिथ्यात्व का अंश रह जाता है। क्योंकि एकान्त व्यवहार से मोक्ष मानता है, एकान्त निश्चय होता है, व्यवहार होता ही नहीं—ऐसे एकान्त पक्ष के माननेवाले जैन में अर्थात् दिगम्बर सम्प्रदाय में भी मिथ्यात्व का शल्य रह जाता है, उसका स्पष्टीकरण किया है। सातवाँ अध्याय, मोक्षमार्गप्रकाशक।

भावार्थ :- वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मस्वरूप सर्वज्ञ ने कहा है,... वस्तु आत्मा और परमाणु आदि जो छह द्रव्य, उनका स्वरूप अनन्तधर्मस्वरूप है, अनन्त धर्म है। नित्य, अनित्य, एक, अनेक, तत्, अतत् आदि है न। चौदह बोल तो हैं अन्त में अनेकान्त के। समयसार। स्वचतुष्टय से है और परचतुष्टय से नहीं, ऐसे भेद हैं। **वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मस्वरूप सर्वज्ञ ने कहा है, वह प्रमाण और नय से सत्यार्थ सिद्ध होता है।** वह प्रमाण से पूरी चीज़ की और नय से एक-एक धर्म की सिद्धि से साबित होते हैं। **जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं है...** यहाँ डाला है यह। जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं, उन्होंने ऐसा अनन्त धर्मस्वरूप पदार्थ को देखा नहीं, और वह जो एकान्त बातें करे, वे सब मिथ्यात्ववाद हैं।

जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं है तथा सर्वज्ञ के स्वरूप का यथार्थ रूप से निश्चय करके उसका श्रद्धान नहीं किया है—दो बातें। जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं और सर्वज्ञ

के स्वरूप का **यथार्थ रूप से निश्चय करके उसका श्रद्धान नहीं किया है**—जिनके मत में सर्वज्ञ हों, ऐसा माना हो साधारण। परन्तु **यथार्थ रूप से निश्चय करके उसका श्रद्धान नहीं किया है—ऐसे अन्यवादियों ने वस्तु का एक धर्म ग्रहण करके...** वस्तु का एक पक्ष ग्रहण करके **उसका पक्षपात किया कि हमने इस प्रकार माना है, वह ऐसे ही है,...** कोई कहे नित्य ही है, अनित्य ही है, एक ही है, अनेक ही है, शुद्ध ही है, अशुद्ध है इत्यादि। स्वपने है, तो है ही। परपने नहीं तो नहीं ही। एकान्त हो जाये। स्वपने है और परपने नहीं। ऐसे अनेक धर्म को नहीं माननेवाले **अन्य प्रकार नहीं है।** हमने माना वह है और दूसरा नहीं। **इस प्रकार विधि-निषेध करके...** है और नहीं, ऐसा। **एक-एक धर्म के पक्षपाती हो गये, उनके ये संक्षेप से तीन सौ त्रेसठ भेद हो गये।** लो!

क्रियावादी की व्याख्या करते हैं। **क्रियावादी :- कई तो गमन करना,...** बस चलना। यह क्रिया जीव की है, ऐसा मानते हैं। **बैठना,...** चलने की क्रिया तो जड़ की है। तो यह जीव की क्रिया है, ऐसा मानते हैं। वे क्रियावादी मिथ्यादृष्टि हैं। दीपचन्दजी ने लिया है न उसमें। यह सब बोल लिये हैं दीपचन्दजी ने अनुभवप्रकाश में। चलना, बोलना, हिलना, खाना, पीना, वह सब जड़ की क्रिया है। पुद्गल की क्रिया है। डाली है उसमें। दीपचन्दजी।

मुमुक्षु : अन्दर-अन्दर लड़ना वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्रिया जड़ की है न। ऐसे-ऐसे शरीर की है। आत्मा की कहाँ है?

बैठना, खड़े रहना,... यह सब जड़ की क्रिया है। **खाना, पीना...** यह जड़ की क्रिया है। इसे आत्मा की मानते हैं। आहाहा! **सोना...** सोना। दो-चार घड़ी सो जाये, वह क्रिया आत्मा की है। आत्मा की क्रिया कहाँ है वह? **उत्पन्न होना,...** उपजना। यह जन्म में उपजना, आत्मा की क्रिया है। शरीर का मरना, छूटना, वह आत्मा की क्रिया। आहाहा! कल हुकमचन्दजी ने बहुत अच्छा लिखा है। वे हुकमचन्दजी है न जयपुरवाले, उन्होंने ऐसा तर्क लगाया है। बहुत अच्छा लगाया है कि जो बालपना है, वह आत्मा है? तो बालकपना न हो, तब आत्मा नहीं, ऐसा होगा। वृद्धपना है, वह आत्मा है? तो वृद्धपना न हो, तब आत्मा नहीं, ऐसा होगा। मूर्खपना, वह आत्मा है? तो मूर्खपना न हो, तब

आत्मा नया हो जाये। पण्डित, वह आत्मा है? शास्त्र के। शास्त्र का पढ़ना, वह आत्मा है? पढ़ा नहीं था, तब आत्मा नहीं था? और राग, वह आत्मा है। तो राग नहीं है तो आत्मा नहीं? और यहाँ तक लगाया है उन्होंने तो। बहुत अच्छा तर्क किया है कि जो ज्ञान की पर्याय परलक्ष्यी है, वह आत्मा नहीं क्योंकि परलक्ष्यी ज्ञान नहीं था और परलक्ष्यी ज्ञान नहीं रहे तो आत्मा नहीं रहेगा? आहाहा! सूक्ष्म बोल तो यहाँ तक लिया है कि आत्मा की जो एक समय की पर्याय है, वह पर्याय स्वयं आत्मा हो तो पर्याय का अभाव हो तो द्रव्य का अभाव हो जायेगा। समझ में आया? आहाहा! शरीर, वाणी, मन, वह तो नहीं, राग भी नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय, वह यदि आत्मा हो तो पर्याय का अभाव होता है, एक समय की पर्याय का। दूसरे समय में भले दूसरी हो, परन्तु उस समय की पर्याय का तो अभाव होता है। तो पर्याय आत्मा हो तो उसका अभाव हुआ तो आत्मा रहा ही नहीं। पर्याय के अभाव में तो आत्मा तो है ही। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उन्होंने ली है। बात तो ऐसी है। आहाहा!

चैतन्य ध्रुव, वह तो पर्याय से नहीं, पर्याय के कारण से नहीं। आहाहा! वह तो ३८वीं गाथा में नहीं आया नियमसार में? केवलज्ञानादि पर्याय, संवर-निर्जरादि पर्याय नाशवान है। वस्तु अविनाशी है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय, संवर-निर्जरा की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय, पुण्य-पाप की पर्याय, वह सब नाशवान है। तो नाशवान, वह आत्मा नहीं। आहाहा! अविनाशी त्रिकाल स्वरूप है, वह आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु की स्थिति है। थोड़ा तर्क यह अधिक करे। आहाहा! कहो, चेतनजी! एक समय की पर्याय से आत्मा हो तो पर्याय बदल जाये तो आत्मा नहीं रहे।

मुमुक्षु : ध्रुव, वह आत्मा ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव, वह आत्मा है। वहाँ ३८ में यह कहा है न, वास्तव में वह आत्मा है। ऐसा लिया है न नियमसार में ३८ गाथा में? वास्तव में वह भगवान ध्रुव सत्य

अनादि-अनन्त वह आत्मा है। कभी उसका अभाव नहीं होता। आहाहा! उसका निर्णय करनेवाली पर्याय है, परन्तु निर्णय करनेवाली पर्याय ऐसा निर्णय करती है कि मैं तो त्रिकाल अविनाशी हूँ। आहाहा!

उत्पन्न होना, नष्ट होना,... यहाँ तो उसमें से गया सब उत्पाद-व्यय। यहाँ तो बाहर में उत्पन्न होना जन्म-मरण वह। उसे ही आत्मा माने। शरीर उत्पन्न हुआ तो आत्मा उत्पन्न हुआ, शरीर नाश हुआ तो आत्मा का नाश हुआ। वास्तव में तो आत्मा उत्पाद-व्ययस्वरूप में आता ही नहीं, अपनी पर्याय में द्रव्य आता ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल है। आहाहा!

अर्थात् वह उत्पाद-व्यय जन्म और मरण को कहते हैं तथा उत्पाद-व्यय एक समय की पर्याय को ही अकेली माने, वह भी क्रियावादी है। अक्रियबिम्ब चैतन्य ध्रुव उसने माना नहीं। जिसमें परिणमन ही नहीं। आहाहा! परिणमन तो एक समय की पर्याय में है, ध्रुव में परिणमन नहीं। आहाहा! अर्थात् उपजना और मरना, वह उत्पाद-व्ययवाली पर्याय को आत्मा मानता है, वह तो मिथ्यात्व है।

देखना, जानना,... देखने की क्रिया, वही आत्मा—ऐसा नहीं। वह तो एक समय की अवस्था है। **जानना,...** उसमें एक-एक पक्ष ले लेवे सब। **करना...** कुछ करना। कुछ करना, वह आत्मा। क्या करना? राग करना, वह आत्मा है? आहाहा! **भोगना,...** राग को भोगना या परचीज़ को भोगना, वह आत्मा। वह आत्मा नहीं। आहाहा! **भूलना...** प्रथम कुछ याद हो, उसे भूलना, वह आत्मा नहीं। वह तो पर्याय में भूलना होता है। आहाहा! **याद करना,...** वह भी उतना आत्मा नहीं। एक समय की पर्याय को याद करना, धारणा में याद करना, उसे आत्मा मान लेता है। आहाहा!

प्रीति करना... परपदार्थ में प्रेम करना, वही आत्मा। वह आत्मा नहीं। आहाहा! **हर्ष करना,...** हर्ष-हर्ष। हर्ष आता है, वह क्षणभंगुर अवस्था है। वही आत्मा—ऐसा है नहीं। आहाहा! **विषाद करना,...** खेद-खेद। खेद करना, वह आत्मा। वह कोई आत्मा नहीं। आहाहा! **द्वेष करना,...** लो! द्वेष-घृणा, वह आत्मा नहीं। परन्तु उसे आत्मा माने,

वे सब क्रियावादी मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! **जीना,...** यह जीना, वही आत्मा। लो! जीओ और जीने दो, भगवान का आदेश। यह बहुत बोलते हैं। शोभायात्रा निकले न, क्या कहलाता है? रथयात्रा। महावीर का सन्देश, जीओ और जीने दो। यहाँ इनकार करते हैं। आहाहा! शरीर से जीवे और शरीर से मरे, वह आत्मा है? आहाहा! **जीना, मरना इत्यादिक क्रियायें हैं...** यह तो। आहाहा!

इनको जीवादिक पदार्थों के देखकर... इनको जीवादिक पदार्थों के देखकर... ऐसा। जीवादि पदार्थों में यह है ऐसा देखकर, ऐसा। **किसी ने किसी क्रिया का पक्ष किया है।** किसी ने किसी क्रिया का पक्ष किया। उठना, बैठना यह, उत्पाद-व्यय। **और किसी ने किसी क्रिया का पक्ष किया है।** किसी ने किसी क्रिया यह भेद है जिसे सब। **ऐसे परस्पर क्रियाविवाद से भेद हुए हैं,...** परस्पर क्रियाविवाद से भेद हुआ। आहाहा! वास्तव में तो यह गृहीत मिथ्यात्व के भेद हैं और वह निश्चय-व्यवहार है, वह अन्दर गृहीत मिथ्यात्व है और अगृहीत भी है। सातवें (अधिकार) में। **संक्षेप से एक सौ अस्सी भेद निरूपण किये हैं,...** लो! **ऐसे परस्पर क्रियाविवाद से भेद हुए हैं,...** वास्तव में तो विकल्प की क्रिया, वह आत्मा है, आत्मा की है, वे सब क्रियावादी मिथ्यादृष्टि हैं। **इनके संक्षेप से एक सौ अस्सी भेद निरूपण किये हैं,...** क्रियावादी के एक-एक पक्ष को पूरा स्वरूप माननेवाले ऐसे १८० भेद हैं। यह मुनि कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं या नहीं? कि यह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : भगवान ने कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान तो केवली थे। वस्तु स्वरूप हो, ऐसा बतावे नहीं? दूसरे मिथ्यादृष्टि को समकिती मान लेना? तू स्वयं समकिती और दूसरे को मिथ्यादृष्टि माने तो स्वयं मिथ्यादृष्टि। यह क्या इसका अर्थ? कोई लोग कुछ न्याय को तौलते ही नहीं कौन जाने। ऐसी स्थूल दृष्टि हो गयी। सत्य को, न्याय को कांटे में तौलना चाहिए, किसी के पक्षपात से बात नहीं लेनी चाहिए। सर्वज्ञ ने कहा हुआ स्वरूप क्या है? कैसे है? किस प्रकार है? ऐसे उसके ज्ञान में यथार्थपना आना चाहिए। यह विपरीत भाववाले सब एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं।

कई अक्रियावादी हैं,... यह उन टीकाकार ने यह डाला अक्रियावादी में। इन्द्र,

चन्द्र, नागेन्द्र आदि... वह श्वेताम्बर के हैं सब। परन्तु वे श्वेताम्बर तो अभी हुए हैं। यह अक्रियावादी तो अनादि के हैं, यह कहीं नये नहीं। बात तो ऐसी होनी चाहिए न कि अनादि सनातन सत्य होना चाहिए न। यहाँ श्वेताम्बर निकले, तब से ही यह क्रियावादी है, ऐसा कुछ नहीं। **जीवादिक पदार्थों में क्रिया का अभाव मानकर...** जीव क्रियारहित है। परिणति भी ऐसी... ऐसा माने। जड़ भी परिणतिरहित—क्रियारहित है जड़ादि। **जीवादिक पदार्थों में क्रिया का अभाव मानकर...** परिणति—क्रिया जो पलटती है, उसका अभाव मानते हैं।

आपस में विवाद करते हैं। आहाहा! **कई कहते हैं जीव जानता नहीं है,...** लो, ठीक! जानने की क्रिया, यह उसकी नहीं, ऐसा कहे। **जानता नहीं है,...** जानने की क्रिया उसकी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह अक्रियावादी में डाले। **कई कहते हैं कि कुछ करता ही नहीं है,...** परिणमन आदि करता ही नहीं। **कई कहते हैं भोगता ही नहीं है,...** रागादि का भोक्ता नहीं। यह सब अक्रियावादी में डाले, लो! **कई कहते हैं उत्पन्न नहीं होता है,...** चौरासी के अवतार में उत्पन्न नहीं होता। **कई कहते हैं नष्ट नहीं होता है,...** आहाहा! ऐसा तो कहा परमात्मप्रकाश में **'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।'** (गाथा ६८) (जीव उपजता और मरता नहीं)। वह किस अपेक्षा से? आत्मा उपजता नहीं, उत्पाद पर्याय आत्मा में आती नहीं और व्यय हो उसमें आत्मा आता नहीं तथा बन्ध-मोक्ष की पर्याय में भी आत्मा आता नहीं। उत्पन्न (हो), वह तो पर्याय है। आहाहा! **'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।'** लो, ऐसा कहा। जीव अपनी पर्याय में भी उपजता नहीं और पर्याय में भी मरता नहीं। संसार का अभाव करता नहीं और मोक्ष की पर्याय को करता नहीं, वह जीव।

नित्यानन्द प्रभु जीव उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। पर्याय में उपजे-विनसे, वह तो व्यवहार जीव उत्पाद-व्यय, वह नहीं। आहाहा! अनादि-अनन्त भगवान आत्मा, ओहोहो! किस काल में नहीं था? किस काल में नहीं होगा? आहाहा! दीर्घदृष्टि से देखे तो वह तो त्रिकाल ध्रुवस्वरूप ही है। उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! उसे इस प्रकार न मानकर परिणति—परिणति न माने। उसमें फिर परिणति कैसी? बदले क्या? वेदान्त कहता है न बदलना क्या? आत्मा और अनुभव करे, यह क्या? आत्मा और अनुभव,

यह तो दो भेद हो गये। आत्मा अपना अनुभव करे। द्वैत हो गया न! द्वैत को तो वह मानता नहीं।

अनुभवस्वरूप ही वह आत्मा है। अनुभूति से भिन्न, न कहा वहाँ? समयसार। अनुभूति से भिन्न सब। पुण्य-पाप, दया-दान, विकल्प व्रत आदि अनुभूति से भिन्न है, पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! व्रतादि के परिणाम, वे पुद्गल के परिणाम कहे हैं। आहाहा! निश्चयव्रत दूसरी बात है, व्यवहार व्रत दूसरी बात। निश्चयव्रत तो स्वरूप में रमणता, वह निश्चयव्रत। आत्मा आनन्दस्वरूप ध्रुव में लिपट जाना, लीन हो जाना, वह निर्मल क्रिया है। वह पर्याय की क्रिया है। राग की क्रिया जो व्रतादि की, वह तो बन्ध की क्रिया है। यह उसे पुद्गल के परिणाम कहा है। शुभराग को पुद्गल के परिणाम कहा है। आहाहा! वह विस्तार करके... आया था न!

कुछ करता नहीं है, कई कहते हैं भोगता नहीं है, कई कहते हैं उत्पन्न नहीं होता है... आत्मा तो है, वह है। उत्पन्न क्या हो? अरे! है, वह है, परन्तु पर्याय में उत्पन्न हो। है वह। आहाहा! जन्म-मरण में गति में उत्पन्न होता है। गति शरीर को उत्पन्न करती है, वह प्रश्न नहीं। मनुष्यगति उसके उदयभाव में उत्पन्न होती है न? गति गति तो उसे कहते हैं न। आत्मा में गति नहीं होती। यह कहीं मनुष्यगति नहीं। यह तो शरीर जड़ है। मनुष्यगति आत्मा में मनुष्यपने की योग्यता, ऐसा गति का उदय आत्मा में है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म लोगों को... उनको सबको ऐसा लगे अच्छा बस। सबके ऊपर समभाव रखो, समन्वय करो, सभी धर्म समान। यहाँ तो इनकार करते हैं।

कई कहते हैं नष्ट नहीं होता है,... व्यय होता ही नहीं उसमें। **कई कहते हैं गमन नहीं करता है...** आत्मा चलता ही नहीं। क्षेत्रान्तर होता है न। देह चले, वह अलग बात है। परन्तु आत्मा भी क्षेत्रान्तर होता है न जरा? उसकी अपनी क्रियावतीशक्ति के कारण से। कर्म के कारण से नहीं, शरीर के कारण से नहीं। उसका क्षेत्रान्तर होना एक स्थान से ऐसे क्षेत्रान्तर, गमन, कम्पन, उसकी अपनी पर्याय की क्रिया है। श्रेणिक राजा नरक में गये, वे नरकगति के कारण से नहीं गये, तथा नरकायु बाँधा, (इसलिए गये, ऐसा भी नहीं है)। वह तो जड़ है। ऐसा भी नहीं। उसकी अपनी क्रिया की ऐसी योग्यता है तो ऐसे गमन किया। आहाहा!

कई कहते हैं गमन नहीं करता है और कई कहते हैं ठहरता (ही) नहीं है— खड़े रहना, वह कैसा? **इत्यादि क्रिया के अभाव के पक्षपात से...** ऐसे क्रिया के अभाव का पक्षपात **सर्वथा एकान्ती होते हैं।** लो! **इनके संक्षेप से चौरासी भेद हैं।** यह टीका करनेवाले मध्यस्थ हैं और वह जरा टीका करे ... श्वेताम्बर। यह तो जैसा है, उस प्रकार से (कहते हैं)।

मुमुक्षु : अनादि का है यह तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का है यह तो। ... सादि है। सादि है यह कहीं... आहाहा! वस्तुस्थिति हो, ऐसी कहे न। फिर भले उसमें मिलाना हो, वह अलग बात है। परन्तु अकेले ही वे हैं, ऐसा नहीं।

कई अज्ञानवादी हैं, इनमें कई तो सर्वज्ञ का अभाव मानते हैं,... लो! अज्ञानवादी। सर्वज्ञ हो नहीं सकते। पूर्ण आत्मा की पर्याय प्रगट हो सकती ही नहीं, ऐसा मानते हैं। वेदान्त। एक आत्मा तो ईश्वर का अंश है। वह पूर्ण प्रगट नहीं कर सकता, यह अज्ञानवाद है। सर्वज्ञ पूर्ण पर्याय में प्रगट हो, इतना तो उसका स्वभाव है। आहाहा! यह तुम्हारे रतनचन्दजी कहते हैं न कि वर्तमान पर्याय को अर्थ कहना। आगे-पीछे को अर्थ नहीं कहना। वर्तमान पर्याय को जानकर दूसरे को जानते हैं। वे सर्वज्ञ नहीं। सर्वज्ञ तो एक समय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं। भूत और भविष्य की पर्याय जो हो गयी और होगी, उसे (वर्तमानवत्) देखते हैं। द्रव्य में शक्ति है, भविष्य में होने की, ऐसा देखते हैं—ऐसा नहीं। और भूतकाल की पर्याय का कारणपना अन्दर है, ऐसा देखते हैं—ऐसा भी नहीं। जिस समय में प्रगट पर्याय का परिणमन था, प्रगट पर्याय का परिणमन होगा, ऐसा वर्तमान, ऐसे त्रिकाल देखते हैं भगवान तो। आहाहा! ऐसे सर्वज्ञ को न माने, वह भी अज्ञानवादी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई!

क्योंकि ज्ञानस्वभाव आत्मा का, उसकी परिपूर्णता पर्याय न माने, वह अज्ञानवादी है। आहाहा! एक समय में केवलज्ञान की पर्याय अपनी पूर्णता को देखे, पर... परन्तु आत्मा त्रिकाली है या नहीं? तो त्रिकालीपना उसके ज्ञान में आता है न? अपना त्रिकाली। आहाहा! और त्रिकाली पर्याय जो अपनी है, वह भी ज्ञान में ज्ञात होती है। अपने में पूर्व जो पर्याय हो गयी, वह शक्ति में है, ऐसा जानते हैं, यह नहीं। जैसे पूर्व में

हुई थी, ऐसे वर्तमान जानते हैं। आहाहा! और भविष्य में जैसी होगी, वह वर्तमान में है, ऐसा जानते हैं। होगी, शक्ति में है तब होगी, ऐसा नहीं। आहाहा! उसके ज्ञान के स्वभाव की खबर नहीं।

सर्वज्ञ का अभाव मानते हैं, कई कहते हैं जीव अस्ति है... अब फिर ... बात। सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक (जानते हैं)। वह तीन काल-तीन लोक फिर और दूसरे। परन्तु अपना त्रिकाली स्वरूप है, उसे जाने वहाँ सर्वज्ञ हो गया। आदि-सन्त बिना का स्वरूप है न अपना और आदि-अन्त बिना की पर्याय है। आदि है पर्याय की? अन्त है पर्याय का? अपने में अपनी, हों! पर की नहीं। आहाहा! ऐसा सर्वज्ञ का स्वभाव है और सर्वज्ञ पर्याय में पूर्णता प्राप्त होती है, ऐसा न माने, वह सम्प्रदाय में हो तो भी अज्ञानवादी है। यह तो अनादि के गृहीत मिथ्यात्व में डाला है। आहाहा!

कई कहते हैं जीव अस्ति है... अकेला बस। है बस। पर से नहीं, ऐसा नहीं। है ही बस। ऐसा नहीं। अपने से है, पर से नहीं है। आहाहा! अज्ञानवादी कहता है कि **जीव अस्ति है, यह कौन जाने?** ऐसा। है, उसे कौन जाने? कौन जाने? स्वयं जाने। आहाहा! त्रिकाल त्रिकाल वस्तु कौन जाने? ऐसा करके अज्ञानी बात को उड़ा देता है। आहाहा! वह अज्ञानवाद है, कहते हैं। **कई कहते हैं जीव नास्ति है...** जीव पर से नहीं। **यह कौन जाने?** आहाहा! कौन जाने? आत्मा जाने। पर से मैं नहीं, त्रिकाल नहीं। अपने से मैं त्रिकाल हूँ। आहाहा!

कई कहते हैं जीव नित्य है, यह कौन जाने? ऐसा। उसमें नित्य और अनित्य के एक-एक पक्ष को क्रियावाद में डाला। और यहाँ तो नित्य है या नहीं, कौन जाने? आहाहा! परन्तु तूने निर्णय किया है कि नित्य है, वह कौन जाने? नित्य है, वह कौन जाने? तो जानने में आया कि यह नित्य है, तब तो जाना। जानने में आया कि यह तो नित्य है। कौन जाने कौन? वह स्वयं जाने। आहाहा! **नित्य है, यह कौन जाने? कई कहते हैं जीव अनित्य है, यह कौन जाने?** अर्थात् अज्ञान स्थापित करे। नित्य कौन जाने क्या, आत्मा जाने। बदलता है क्षण-क्षण में, वह अनित्य है। आहाहा! अज्ञान ... उसकी खबर न पड़े। यह कहते हैं न अभी? भाई, सम्यग्दर्शन है या नहीं, यह खबर नहीं पड़ती। अज्ञान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब ऐसा कुछ मेल बिना का। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य को सम्यग्दर्शन है या नहीं, अपने को क्या खबर पड़े। कहा था न। चेतनजी को कहा था। आहाहा! पर की क्या खबर पड़े? आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य कुन्दकुन्दाचार्य के हजार वर्ष बाद हुए, उन्होंने तो पुकार किया टीका में। जिसे मोक्ष निकट है, संसार का किनारा आ गया है, ऐसे अनेकान्त विद्या के जाननेवाले, सर्व पक्ष का आग्रह छूट गया है। आहाहा! वस्तु में स्वभाव का भान हो गया है। लो! अमृतचन्द्राचार्य। हजार वर्ष पहले हो गये कुन्दकुन्दाचार्य। न जानने में आवे, यह बात कैसी? आहाहा! जाननेवाला जगत का जाननेवाला है न बड़ा।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग के पाठी हों....

पूज्य गुरुदेवश्री : भान बिना क्या कहे? यह अन्दर निःसन्देह न हो। अरेरे!

इत्यादि संशय-विपर्यय-अनध्यवसायरूप होकर... लो! अज्ञान में तीनों डाले। संशय, विपरीत (अनध्यवसाय)। ऐसा होगा या नहीं, किसे खबर? विपरीत। अनध्यवसायरूप—अनिर्णय। **विवाद करते हैं। इनके संक्षेप से सड़सठ भेद हैं।** लो! ६७। अब। **कई विनयवादी हैं, उनमें से कई कहते हैं, देवादि के विनय से सिद्धि है,...** अपने तो परमेश्वर का विनय करो, मुक्ति होगी। यह मिथ्यात्व विनयवाद है। देव-गुरु-शास्त्र के विनय से मुक्ति होगी, ऐसा माननेवाले विनयवादी एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! **कई कहते हैं गुरु के विनय से सिद्धि है,...** उसमें सब डाला देव-गुरु आदि। अपने तो गुरु का विनय करें, अब मुक्ति तो उनके हाथ में है।

मुमुक्षु : निदान हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : निदान हो जायेगा। यह कहता था वह। बावळा के नहीं आते थे? क्या कहलाता है वह? हीरालाल खोजा-खोजा बावळा का। अपने तो गुरु को पकड़ा है। अब अपने फलाने मन्दिर में जाना या न जाना, ऐसा कुछ नहीं। यह श्वेताम्बर में नहीं जाना, दिगम्बर में जाना, ऐसा कुछ नहीं। उसका मोक्ष अब कर देंगे अपने को। यह सब विनयवादी अज्ञानी हैं।

मुमुक्षु : बड़े का कर्तव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े का क्या कर्तव्य है? बड़े का कर्तव्य बड़े का जानना-देखना वह।

मुमुक्षु : बड़े का कर्तव्य छोटे को....

पूज्य गुरुदेवश्री : किया। यह सब ऐसे के ऐसे एकान्त हैं, कहते हैं।

गुरु के विनय से सिद्धि है,... बस अपने तो विनय करते हैं। जाओ। वह आता है न। बाणविद्या साधी, नहीं? वह नहीं आता? आता है। द्रोणाचार्य।

मुमुक्षु : एकलव्य, गुरु द्रोणाचार्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन में ... किया, विद्यार्थी हो गया। अब वह तो बाहर की विद्या का यहाँ क्या काम है? आहाहा! यहाँ तो जब तक देव-गुरु लक्ष्य में रहे, तब तक तो राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : १७० गाथा में कहा नहीं? पंचास्तिकाय। स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। जब तक आगम की श्रद्धा लक्ष्य में रहेगी, पदार्थ की श्रद्धा का लक्ष्य रहेगा, तीर्थंकर कहते हैं कि हमारी श्रद्धा का लक्ष्य रहेगा, तब तक मुक्ति नहीं होगी। १७० गाथा है पंचास्तिकाय। आगम, पदार्थ और तीर्थंकर। आहाहा! ऐसा मार्ग है भाई यह तो।

कोई कहते हैं कि माता के विनय से सिद्धि है,... लो, ठीक। आता है न अन्यमति में नहीं, वह कौन? माता-पिता का। श्रवण। आता है न, वहाँ जामनगर में है न बाहर श्मशान में। श्रवण (श्रवणकुमार)। दो ओर... अन्धे माता-पिता हैं, उनकी विनय-भक्ति (और) यात्रा कराता है। इसलिए माता-पिता का विनय करना, वह मुक्ति का कारण है। झूठी बात है। जामनगर में है। कई कहते हैं कि माता के विनय से, **कई कहते हैं कि पिता के विनय से सिद्धि है...** लो! आहाहा! माता ने सवा नौ महीने गर्भ में रखा तो उसकी विनय करने से अपने को जाओ मुक्ति। वह कहे पिता का विनय करने से। **कई कहते हैं कि राजा के विनय से सिद्धि है,...** बड़ा राजा हो, उसकी विनय करें तो मुक्ति होगी। सब राग है। आहाहा!

कई कहते हैं कि सबके विनय से सिद्धि है,... लो! आता है न! पंथ है न तुम्हारे जामनगर में? विनय-विनय। जामनगर में है न? क्या कहलाता है वह? ...पंथ। अन्त में नहीं उस दरवाजे के पास बड़ी जगह है बड़ी, विनयपंथी। शास्त्र में आता है, सबके पैर छूना। कुत्ता हो तो कुत्ते के, बिल्ली हो तो बिल्ली के। प्रणामधामी वह। प्रणामी... है न वहाँ। उसका साधु मिला था। सब भगवान, जय नारायण करना। यह लो। **सबके विनय से सिद्धि है,...** यह तो कहे सबका विनय ही करना। आहाहा! **इत्यादि विवाद करते हैं, इनके संक्षेप से बत्तीस भेद हैं। इस प्रकार सर्वथा एकान्तियों के तीन सौ त्रेसठ भेद संक्षेप से हैं, विस्तार करने पर बहुत हो जाते हैं,...** अनन्त भेद ऐसा कि अन्तर्भेद।

इनमें कई ईश्वरवादी हैं,... यह गोम्मटसार में डाला। **कई कालवादी हैं,...** काल होगा, वह होगा; ईश्वर करे, ऐसे होगा, ऐसा माननेवाले। **कई स्वभाववादी हैं,...** भाई! स्वभाव हो, वह होगा। एकान्त माननेवाले, हों! **कई विनयवादी हैं, कई आत्मवादी हैं।** आत्मा पुरुषार्थ करे राग का तो कल्याण हो जायेगा। **इनका स्वरूप गोम्मटसारादि ग्रंथों से जानना,...** लो! **ऐसे मिथ्यात्व के भेद हैं।** लो, इतने तो भेद कहे हैं मुनि कुन्दकुन्दाचार्य। यह तो स्वयं कहे, नहीं, दूसरे को मिथ्यात्व कहे, वह मिथ्यादृष्टि ही हो। पहले आया था। कल आया, पहले आया था कथन। दिल्ली में तो यह शान्तिसागर हैं न अपने, वे बहुत शान्त हैं। शान्तिसागर हैं, वे गृहस्थ हैं। मुनि होनेवाले थे, माता-पिता हैं, स्त्री है, पुत्र है। विद्यानन्दजी के निकट साधु होनेवाले थे। फिर यह बात जहाँ सुनी। अरे! नरम व्यक्ति है, वैरागी है। माता-पिता हैं, स्त्री है। अभी तो निवृत्ति... यहाँ आते हैं। वाँचते हैं वहाँ दिल्ली में। जानता हूँ। शान्तिसागर है। उसका नाम ही शान्तिसागर है। वे लोग कहीं जायें नहीं अन्यत्र। दूसरे को माने नहीं। ऐसा कि ... अर्थात् क्या? ऐसा सब बहुत लिखा है, कल पढ़ा था? ऐसा पढ़कर भड़कते हैं बेचारे। क्या हो? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अरे! सत् स्वरूप मिलने पर भी, सुनने पर भी **आगे कहते हैं कि अभव्य जीव अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता है,...** नालायक जीव है, वह अपना स्वभाव बदलता नहीं। जो पकड़ मानी है, उसे बदलता नहीं। **उसका मिथ्यात्व नहीं मिटता है :—** यह विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक ११-०६-१९७४
गाथा - १३८ से १४०, प्रवचन-१७१

गाथा - १३८

आगे कहते हैं कि अभव्यजीव अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता है,... यह दृष्टान्त है। अभव्य जैसे जीव या अभव्य, अपना जो स्वभाव—राग से एकत्वबुद्धि मानी है, वह स्वभाव छोड़ता नहीं। जैनधर्म को मानता नहीं, इसका अर्थ। आत्मा वीतरागस्वरूप है, उस वीतरागस्वरूप की परिणति की प्रतीति उसे नहीं। राग की प्रतीति है, राग-राग। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, गहरे-गहरे उसे राग की प्रतीति और रुचि है। यह बात करते हैं।

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति॥१३८॥

अर्थ :- अभव्य जीव भले प्रकार जिनधर्म को सुनकर... लो! '**सुट्ठु वि**' है न? कहते हैं कि अच्छा समागम मिले, उसकी बात सच्ची बात सुने, परन्तु अन्तर में राग की एकता तोड़े नहीं, राग की रुचि और राग का प्रेम है जिसे अन्दर में, वह ऐसे अनेक शास्त्र सुनने पर भी उसका स्वभाव बदलता नहीं, कहते हैं। राग की रुचि छोड़कर चैतन्यस्वभाव मीठा मधुर आनन्द की उसे रुचि नहीं होती। समझ में आया? **अभव्य जीव... 'सुट्ठु'** है न? भले प्रकार से, ऐसा। शास्त्र है, वह यथार्थ उसे मिले। सुनने को मिले, गुरुगम से सुने। **अपनी प्रकृति (-स्वभाव) को नहीं छोड़ता है।** परन्तु राग को अपना स्वरूप मानता है, उसे छोड़ता नहीं। चाहे तो अभव्य हो या भव्य हो। आहाहा!

यहाँ दृष्टान्त है कि सर्प गुड़सहित दूध को पीते रहने पर भी... शक्करसहित दूध को पीवे सर्प, तो भी वह सर्प का जहर छोड़ता नहीं। आहाहा! **विषरहित नहीं होता है।** आहाहा! इसी प्रकार मीठी मधुर वाणी वीतराग की, वीतरागभाव, वीतरागविज्ञान, लो और यह शब्द आया न जयपुर का, वीतरागविज्ञान। आता है न, छहढाला में आता है।

वीतरागविज्ञान पाठमाला। यह शब्द बराबर रचा है। वीतरागविज्ञान। आत्मा राग से रहित वीतरागस्वरूप, उसका वीतराग स्वसंवेदन विज्ञान, उसका नाम वीतरागविज्ञान है। यह रागवाला ज्ञान... राग से, पुण्य से, विकल्प से लाभ होगा, यह रागवाला विज्ञान अर्थात् अज्ञान। आहाहा! यह कहते हैं कि **विषरहित नहीं होता है।** वीतरागविज्ञान परिणति प्रगट नहीं करता।

अन्तर में वीतरागविज्ञानस्वरूप आत्मा है। वीतरागविज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। उसके सन्मुख होकर, वीतराग परिणति वीतराग स्वसंवेदनज्ञान (प्रगट नहीं करता)। यह तो चौथे गुणस्थान से ऐसा कहा है, लो! वीतरागविज्ञान। वह और कहे, वीतरागविज्ञान सातवें-आठवें में आता है। यहाँ तो गहरे-गहरे चैतन्य भगवान शुद्ध पवित्र मधुर आनन्दरस ऐसा जो तत्त्व, वह अज्ञानी को रुचता नहीं, पोषाता नहीं। राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया, उसकी उसे रुचि और पोषाण। आहाहा! वह अभव्य, सर्प को शक्करसहित दूध दो तो वह जहर नहीं छोड़ता। यह तो अपनी गाथा है बन्ध (अधिकार) में। ३१७ गाथा। ३१७ गाथा समयसार। वहाँ '**अज्झाइदूण**' शब्द है। वहाँ शास्त्र पढ़कर, यहाँ आकर्षण इतना लिया। द्रव्यश्रुत पढ़कर भी अभव्य अथवा ऐसे अभव्य जैसे जीव... कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं कि जब तक उसे राग की रुचि रहे और स्वभाव की रुचि न हो, तब तक वह अभव्य जैसा है। आहाहा!

भावार्थ :- जो कारण पाकर भी नहीं छूटता है... ऐसा कहते हैं। कारण मिलने पर भी छोड़ता नहीं, **उसे प्रकृति या स्वभाव कहते हैं।** ऐसा। प्रकृति छोड़ता नहीं, ऐसा कहा न अर्थात् स्वभाव छोड़ता नहीं। **अभव्य का यह स्वभाव है कि जिसमें अनेकान्त तत्त्वस्वरूप है ऐसा वीतरागविज्ञान...** लो, देखो आया। आत्मा वीतरागविज्ञानस्वरूप है। ऐसा वीतरागविज्ञानस्वरूप शास्त्र को सुनने पर भी... आहाहा! अभव्य अन्तर में से वीतरागविज्ञान का भाव प्रगट करता नहीं। राग की रुचिवाला है, ऐसा कहना है। **वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म...** भाषा देखो! बराबर है। जैनधर्म अर्थात् वीतरागविज्ञान-स्वरूप। राग को अपना माने, वह वीतराग नहीं, परन्तु अज्ञान, रागस्वरूप है। जितने अनेकान्त मत से भिन्न कहे न ऊपर? विनय, अज्ञानवादी, क्रियावादी, अक्रियावादी। सब कुछ न कुछ भी एकान्त में अटके हैं, ऐसा कहते हैं। किसी भी प्रकार से राग के

अंश को अन्तर में लाभदायक मानते हैं। समझे ? राग के अंश को लाभदायक मानते हैं। अनेकान्त धर्म को नहीं मानते। अनेकान्त ही वीतरागविज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसमें राग कहाँ है ? है ही नहीं, राग है ही नहीं। यह अनेकान्त है। आहाहा!

वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म... भाषा। जिनधर्म की व्याख्या की। सच्ची बात है। **वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म...** रागरहित जिनधर्म है न ? रागरहित... शुभराग से भी रहित वीतरागविज्ञान अपना स्वरूप ही चैतन्य का वीतरागविज्ञान है। वह वीतरागविज्ञानस्वरूप, वह जैनधर्म है। आत्मा वीतरागविज्ञानस्वरूप है। उसकी पर्याय में—अवस्था में वीतरागविज्ञानपना परिणमन करना, वह जैनधर्म। आहाहा! जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, कोई वाड़ा नहीं, सम्प्रदाय नहीं, वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! जिसे राग का विकल्प सूक्ष्म भी चैतन्य के मूल तत्त्व को स्पर्शता नहीं, ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! चाहे तो महाव्रत के परिणाम हों, भक्ति आदि के परिणाम हों, वह राग स्वभाव को स्पर्शता ही नहीं। ऐसी भिन्न चीज़ है। ऐसा जो वीतरागी-विज्ञानस्वरूप प्रभु आत्मा, उसके सन्मुख होकर वीतरागविज्ञान प्रगट करना। देखो! दूसरा ज्ञान कम-ज्यादा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वीतरागविज्ञान... भले सम्यग्दर्शन में थोड़ा ज्ञान हो तो भी उसे वीतरागविज्ञान कहा जाता है। आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागविज्ञानस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर वीतरागविज्ञान की पर्याय प्रगट करना, वह जैनधर्म। आहाहा!

अनेकान्त तत्त्वस्वरूप है, ऐसा वीतराग-विज्ञानस्वरूप... भाषा देखी न ? अनेकान्त तत्त्वस्वरूप अर्थात् आत्मा वीतरागविज्ञानपिण्ड और रागभाव नहीं, ऐसा अनेकान्त स्वरूप। आहाहा! टीका की है न! जिसमें अनेकान्त तत्त्वस्वरूप अर्थात् भगवान आत्मा अकषाय स्वभाव का विज्ञान पिण्ड, उसमें राग का अभाव, वह अनेकान्त है। वह उसका—आत्मा का स्वभाव ही अनेकान्त है। वीतरागविज्ञान पिण्ड, राग के भाव से रहित। आहाहा! **अनेकान्त तत्त्वस्वरूप है, ऐसा वीतराग-विज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व को मिटानेवाला है,...** आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाल अकषायरूप वीतरागभाव और जिसका विज्ञान पिण्ड है, ऐसे स्वरूप के सन्मुख होकर अनेकान्त तत्त्वस्वरूप जैनधर्म अर्थात् कि वीतरागविज्ञानपना जिसने प्रगट किया है, उसे जैनधर्म कहते हैं। ऐसी बात

है। अब अभी लोग यह व्यवहार की क्रिया, राग की क्रिया से लाभ मनावे, कहते हैं, वह जैनधर्म ही नहीं। आहाहा!

जैनधर्म **अनेकान्त तत्त्वस्वरूप है, ऐसा वीतरागविज्ञानस्वरूप...** आहाहा! **जिनधर्म मिथ्यात्व को मिटानेवाला है,...** वह तो भ्रान्ति का नाश करनेवाला है। अर्थात् वीतराग-विज्ञानस्वरूप अनेकान्त तत्त्व, ऐसा भान होने पर उसे मिथ्यात्व भाव रहता नहीं। वह मिथ्यात्व का नाश करनेवाला धर्म है। एकान्त मान्यता और राग से लाभ, ऐसी जो मान्यता—मिथ्यात्व, उसका तो नाश करनेवाला स्वभाव है। सूक्ष्म बात है। बहुत सरस बात ली।

अभव्य का यह स्वभाव है कि जिसमें अनेकान्त तत्त्वस्वरूप है ऐसा... आहाहा! **वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व को मिटानेवाला है, उसका भले प्रकार स्वरूप सुनकर...** वापस सुना उसने। आहाहा! उसका **भले प्रकार स्वरूप सुनकर भी जिसका मिथ्यात्वस्वरूप भाव नहीं बदलता है...** राग की प्रीति के प्रेम में पड़ा अभव्य, उसे वीतरागस्वरूप विज्ञान की बात कान में पड़ने पर भी वह बदलता नहीं। आहाहा! **उसका भले प्रकार स्वरूप सुनकर...** जैसा उसका—आत्मा का स्वरूप है और जैनधर्म का पर्याय में जो स्वरूप है, रागरहित विज्ञानघन की परिणति होना, ऐसा जैनधर्म का स्वरूप उसने सुना, तथापि **मिथ्यात्वस्वरूप भाव नहीं बदलता है...** पुण्य और राग के प्रेम की प्रीति वह छोड़ता नहीं। आहाहा! वह धर्म अर्थात् शुभभाव को ही धर्म मानता है। वह राग है, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा!

यह वस्तुस्वरूप है,... आहाहा! यह भी एक वस्तु का उल्टा स्वभाव है, कहते हैं। ऐसे राग की एकता में पड़ा, वह राग की एकता तोड़ता नहीं, वह राग की एकतावाला ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! जैसे आत्मा का वीतरागविज्ञान अनेकान्त तत्त्वस्वरूप धर्म है, ऐसा राग से भिन्न नहीं पड़कर राग की एकता में रहना, ऐसा एकान्तरूप धर्म, वह भी एक अज्ञानी का स्वभाव है ऐसा, कहते हैं। प्रकृति कहना है न। प्रकृति कही थी न? '**ण मुयइ पयडि**' ऐसा है न? प्रकृति को छोड़ता नहीं अर्थात् कि ऐसा स्वभाव छोड़ता नहीं, ऐसा। समझ में आया? प्रकृति को छोड़ता नहीं। उसका अर्थ राग के प्रेम की प्रीति का स्वभाव छोड़ता नहीं। आहाहा! यह भी एक उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। '**पयडि**' कही न!

मुमुक्षु : अभव्य का।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह एक अभव्य का वह स्वभाव। ऐसे भव्य का भी उस प्रकार से (स्वभाव है)। प्रवचनसार में तो लिया, जब तक इस प्रकार से प्राप्त न करे और दूसरा रुचे, वह भी अभव्य है। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव शान्तरस है, शान्तरस। अकषायरस स्वभाव आत्मा का शान्तरस। उसे उस शान्तरस की बात कान में पड़ने पर भी अशान्त ऐसा जो राग, उसका प्रेम वह छोड़ता नहीं, ऐसी उसकी प्रकृति का स्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : छोड़ना चाहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ना चाहता नहीं। उसका स्वभाव ही ऐसा हो गया है। आहाहा! छोड़ना चाहे उसे तो छूटे बिना रहे ही नहीं। थोड़ी देरी लगे। परन्तु यह तो उस राग के प्रेम में, उसे वीतरागविज्ञान तत्त्व कान में पड़ने पर भी राग के पक्ष को नहीं छोड़ता, ऐसा कहते हैं। ऐसा उसका प्रकृति का स्वभाव है। आहाहा!

यह वस्तु का स्वरूप है,... ऐसा कहा। यह भी एक स्वरूप है, प्रकृति। ऐसा कहा न, प्रकृति एक स्वरूप है। राग को छोड़े नहीं और वीतरागविज्ञान को प्रगट करे नहीं, ऐसे राग के प्रेमवाला राग के पक्ष में चढ़ गया, वह भी एक उसका स्वभाव है, कहते हैं। आहाहा! कहो, चेतनजी! आहाहा! वीतरागविज्ञान अनेकान्त तत्त्वस्वरूप चैतन्य प्रभु, वह तो वीतरागभावस्वरूप है और रागस्वरूप नहीं। ऐसा अनेकान्त तत्त्वस्वरूप वीतरागविज्ञानस्वरूप जैनधर्म... आहाहा! उसे कान में पड़ने पर भी, आहाहा! जिसे, कहते हैं श्रवण मिला नहीं, उसे तो क्या कहना? ऐसा। जिसे सुनने को मिला नहीं, वह तो क्या? परन्तु जिसे सुनने को मिला... आहाहा! तथापि वीतरागविज्ञान भगवान ऐसा जैनधर्म स्वभाव शुद्ध उपयोग, उसे वह मानता नहीं। उसे तो वह अशुद्ध उपयोग रागादि, बस मन्दता बहुत हो जाये राग की बहुत मन्दता, बस हो गया, वह धर्म है। क्योंकि रागरहित वीतरागविज्ञान स्वभाव सुना, परन्तु जाना नहीं अन्दर में, इससे राग को ही अपना स्वरूप मानकर पड़ा है। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! शब्द भी देखो, ऐसे रखे हैं न! वह प्रकृति शब्द है सही न!

'**ण मुयइ पयडि**' न छोड़े स्वभाव अभव्य, ऐसा। है न पण्डितजी! न छोड़े स्वभाव अभव्य। क्या स्वभाव? राग की एकताबुद्धि की जो मान्यता, वह अभव्य का स्वभाव। आहाहा! आनन्द का रस भगवान आत्मा उसे रुचता ही नहीं। आहाहा! उसे राग की मन्दता ऐसा जो शुभराग... प्रशस्त प्रकृति, ऐसा कहा। प्रशस्त कहा है न उसे? ऐसा कहते हैं शास्त्र में। शुभराग को प्रशस्त कहा है न? प्रशस्त का प्रेम हो गया है उसे। आहाहा! दिशा बदल सकता नहीं। जो दिशा, राग के ऊपर दिशा है, उसे ऐसे स्वभाव के ऊपर दिशा बदला सकता नहीं। आहाहा!

किसी का नहीं किया हुआ है। ऐसा कहा है। प्रकृति कही न। राग की एकताबुद्धि का स्वभाव माना हुआ, वह किसी ने किया हुआ नहीं, इसने स्वयं किया हुआ है। आहाहा! **यहाँ, उपदेश-अपेक्षा इस प्रकार जानना कि जो अभव्यरूप प्रकृति तो सर्वज्ञगम्य है,...** प्रकृति अर्थात् स्वभाव अभव्य का। **तो भी अभव्य की प्रकृति के समान अपनी प्रकृति न रखना,...** यह स्वभाव। आहाहा! **मिथ्यात्व को छोड़ना...** ओहो! गहरे-गहरे राग के प्रेम को छोड़ना और वीतरागस्वभाव का प्रेम, प्रीति और जुड़ान करना, ऐसा कहते हैं। यह तो मूल बात है न इसलिए... पूरा धर्म ही सम्यग्दर्शन से उत्पन्न होता है और पूरा अधर्म ही मिथ्यात्व से उत्पन्न होता है। आहाहा!

व्यवहार राग है, उसे कहीं साधन कहा है शास्त्र में, तो वहाँ चिपटते हैं वे। वह तो स्वरूप का, आनन्द का साधन साधता है वीतरागभाव का, उसे ऐसी राग की मन्दता का ऐसा एक प्रकार होता है, ऐसा करके व्यवहार साधन का आरोप उसे दिया है। साधन-फाधन राग है नहीं। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा जिसका वीतरागस्वभाव, ऐसा जिसने अन्तर का स्वभाव का साधन किया है, उसे भूमिका के प्रमाण में राग की मन्दता की कैसी जाति होती है, उसे बतलाने के लिये उस राग को व्यवहार साधन कहा है। (परन्तु) साधन है नहीं। यह तकरार / विवाद, लो! आहाहा! व्यवहार साधन कहा है। निश्चय साध्य।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से... व्यवहार और क्या यह? साधन है या नहीं? आहाहा! राग की मन्दता, वह तो अमृतस्वरूप भगवान, अनाकुल आनन्दस्वरूप भगवान

से विपरीत भाव है, वह अचेतनभाव, रागभाव, जड़भाव, दुःखभाव, जहरभाव है। आहाहा! उसका जिसे प्रेम है, उसकी प्रकृति अभव्य जैसी है, ऐसा यहाँ कहते हैं। अभव्य जैसी प्रकृति नहीं रखना। यह उपदेश का सार है। भगवान! तेरा वीतरागविज्ञानस्वरूप प्रभु है न! रागरहित विज्ञानस्वरूप तेरा है। उस स्वरूप का, राग की एकताबुद्धि तोड़कर उस स्वरूप का अनुभव कर। आहाहा! सूक्ष्म मार्ग, बहुत सूक्ष्म इसलिए लोगों को... सूक्ष्म बात विकल्प से पकड़ में नहीं आती, वाणी से ज्ञात नहीं होती, शास्त्र ईशारा करे। ईशारा पकड़े तब उसे खबर पड़े। 'शास्त्र ईशारा करके अलग रहे...' आता है न, आनन्दघनजी में आता है। 'शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहे।' अळगा शास्त्र—भिन्न रहे। जो अन्दर में वीतरागविज्ञान तत्त्व है। महाप्रभु वीतराग आनन्द का धाम है। उसमें राग का कण नहीं, दुःख की गन्ध नहीं। आहाहा! ऐसी बात सुनने पर भी, कहते हैं कि राग का प्रेम न छोड़े, वह अभव्य की प्रकृति जैसे हैं। आहाहा! पण्डितजी! बात तो ऐसी है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १३९

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं :—

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि॥१३९॥

आहाहा! आचार्य की शैली की रचना! आहाहा! '**मिच्छत्तछण्णदिट्ठी**' ऐसा। कर्म के कारण ढँक गया है, ऐसा नहीं। आहाहा!

अर्थ :- दुर्मत जो सर्वथा एकान्त मत,... सर्वथा एकपक्षी मत, वह तो राग को पोषण करनेवाला मत। **उनसे प्ररूपित अन्यमत, वे ही हुए दोष, उनके द्वारा अपनी दुर्बुद्धि से (मिथ्यात्व से) आच्छादित है...** देखा! अपनी दुर्बुद्धि से ढँक गया है, कर्म के कारण नहीं। आहाहा! '**मिच्छत्तछण्ण**' विपरीत बुद्धि। राग के विकल्प की एकत्वबुद्धि से वह ढँक गया है। आहाहा! पर्याय में पर्यायबुद्धिवाला, राग की एकताबुद्धि से पकड़ा

गया है। वह '**मिच्छत्तछण्ण**' मिथ्यात्व से ढँक गया है, कर्म से नहीं। कर्म तो जड़ पर है। आहाहा!

अपनी दुर्बुद्धि से आच्छादित है... लो! '**दुद्धीए**' है न? '**दुद्धीए**' दुर्बुद्धि '**दुम्मएहिं**' दुर्मत—अन्यमत ऐसा। एकान्त मत। दुर्बुद्धि और दुर्मत यह उसका दोष है। आहाहा! '**मिच्छत्तछण्णदिट्ठी**' मिथ्यात्व के भाव से ढँका हुआ है क्यों? कि '**दुद्धीए**' बुद्धि विपरीत। आहाहा! भगवान रागरहित अनेकान्तस्वरूपी प्रभु की बुद्धि में न बैठकर, रागसहित ऐसा एकान्त मत जिसका है। आहाहा! ऐसे दुर्बुद्धि **ऐसा अभव्यजीव है...** आहाहा! यह तो दृष्टान्त दिया है अभव्य का, हों! आहाहा! अरे! आनन्द का नाथ, इसने अपनी दुर्बुद्धि से ढाँक दिया है, ऐसा कहते हैं। विद्यमान वस्तु अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा, वीतराग विज्ञानघन को दुर्बुद्धि ने, मिथ्याश्रद्धा ने, राग की एकत्वबुद्धि ने ढाँक दिया है। आहाहा! यह बड़ा पाप किया, कहते हैं। फिर भले दया पाले, व्रत करे और तपस्या करे। आहाहा! कितने शब्द प्रयोग किये, देखो न! '**मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं**' ऐसा। दुर्बुद्धि, दुर्मत अर्थात् एकान्त मत। ऐसे दोष द्वारा '**मिच्छत्तछण्ण**' मिथ्यात्वभाव के दोष द्वारा ढँक गया है। उसे धारणा बोलने की खबर नहीं। आहाहा!

दुर्मत जो सर्वथा एकान्त मत,... यहाँ से निकाला। '**दुम्मएहिं**' है न? उसमें से यह निकाला। दुर्मत—सर्वथा एकान्ती मत **उनसे प्ररूपित अन्यमत,...** ऐसा। **वे ही हुए दोष, उनके द्वारा अपनी दुर्बुद्धि से (मिथ्यात्व से) आच्छादित है बुद्धि जिनकी, ऐसा अभव्यजीव है, उसे जिनप्रणीत धर्म नहीं रुचता है,...** आहाहा! जिनप्रणीत अर्थात् अनेकान्तस्वरूप वीतरागविज्ञानस्वरूप ऐसा जो जैनधर्म न रुचे। आहाहा! चौरासी में अवतरित होने के खेल उसने खेले हैं। आहाहा! राग के रस के प्रेम में जैनधर्म, उसे सुनने को मिलने पर भी वह पलटता नहीं। आहाहा! जिनप्रणीत धर्म वीतरागविज्ञानधर्म। राग, पुण्य के व्यवहार साधन से रहित स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—वीतराग पर्याय, ऐसा जो जैनधर्म। आहाहा! **नहीं रुचता है,...** उसे वह पोसाता नहीं। पोसाता नहीं को क्या कहते हैं हिन्दी में? जँचता नहीं, पुसाता नहीं। आहाहा! यह माल पोसाता नहीं माल। वहाँ माल लेने जाते हैं या नहीं? तो चार रुपये का मण हो और

यहाँ मिलता हो साढ़े तीन उपजे तो वह माल नहीं पोसाता। साढ़े चार में लाना, आठ आना किराये के खर्च करना और यहाँ उपजे साढ़े तीन, वह माल पोसायेगा? नहीं पोसायेगा। भाई! साढ़े तीन में मिले और आधा रुपया किराया का, यहाँ साढ़े चार मिले तो माल पोसाये। बराबर है लाओ। आहाहा! इसी प्रकार रागरहित प्रभु आत्मा पर की अपेक्षारहित धर्म, वह अज्ञानी को पोसाता नहीं। उसे कुछ अपेक्षा चाहिए है। आहाहा! ऐसा कहते मूल, हों!

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि॥१३९॥

आहाहा! जो उसके स्वभाव में नहीं, ऐसे विभाव के पक्ष से हटना नहीं और विभाव के पोषण में पड़ा। आहाहा! निरपेक्ष रागरहित धर्म जैनधर्म है। आहाहा! वीतरागविज्ञानस्वरूप यह शब्द बहुत अच्छा प्रयोग किया है। भाई ने ही रखा है नाम। हुकमचन्दजी, जयपुर। वीतरागविज्ञान पाठशाला, ऐसा नाम रखा है। सैकड़ों पाठशालायें बनायी हैं और बहुत प्रचार बहुत करते हैं। हुकमचन्दजी बहुत प्रचार करते हैं। एक अच्छा आदमी निकला है। पण्डित में हुकमचन्दजी बहुत अच्छे हैं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वाँचते हैं। आहाहा!

कितने शब्द प्रयोग किये आचार्य ने? '**मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।**' आहाहा! यह दोष है। भगवान आत्मा अन्दर वीतरागविज्ञान रसस्वरूप। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप कहो, ज्ञानस्वरूप कहो, वीतरागविज्ञानस्वरूप कहो, अकेला ज्ञान और आनन्द का रसस्वरूप प्रभु है। आहाहा! उसे अनुभव करने के लिये कोई राग और निमित्त और पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! यह अज्ञानी को पर की अपेक्षा बिना यह समझ में नहीं आता, नहीं बैठता, वह बात बात हटती नहीं, कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने गजब काम किया है! ओहोहो! 'न हुये न होंयेंगे कुन्दकुन्द से' आता है न यह वृन्दावनदास में? कुन्दकुन्दाचार्य जैसे न हुए तो दूसरे आचार्यों का बलिदान किया?

मुमुक्षु : कैलाशचन्दजी ने कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा था। कुछ ठिकाना नहीं होता। वृन्दावन तो ऐसा कहते हैं, ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य हुए, ऐसे दूसरे नहीं होते। यह तो उनके लिये महत्ता है। और यह कहा दर्शनसार। न हुए, न होंगे तीनों लिये हैं। है नहीं, हुए नहीं और होंगे नहीं। हुआ नहीं, है नहीं और होंगे नहीं। यह तो बहुमान से। उसमें कहीं दूसरे आचार्यों का अनादर है, ऐसा नहीं है।

और यह दर्शनसार में कहा है। देवचन्दजी (देवसेन आचार्य) का दर्शनसार है। ... गाथा है। उसमें गाथा लिखी है। हे कुन्दकुन्दाचार्य! आप भगवान के पास जाकर यदि यह माल न लाये होते तो हम मुनि धर्म कैसे प्राप्त करते? है न? लाओ न जरा। देखो है न दर्शनसार। ऐसा पाठ है, हों! देवचन्दजी (देवसेन आचार्य) का बनाया हुआ है।

मुमुक्षु : समयसार है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है? उसमें से लिया है, हों! दर्शनसार! देवचन्दजी ने बनाया है।

जइ पउमणंदिणाहो सीमन्धरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव श्री सीमन्धरस्वामी के पास से प्राप्त हुए दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने—कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?

मुमुक्षु : आचार्य कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य स्वयं कहते हैं देवचन्दजी। आहाहा! तो वहाँ दूसरे आचार्यों का बलिदान हुआ है उसमें? उनकी तो उत्कृष्टता बताते हैं। ओहोहो! साक्षात् भगवान के पास, साक्षात् परमात्मा विराजते हैं, उनके पास गये और यह बोध लाये और हमको यदि यह न मिलता तो हम मुनि कैसे बोध प्राप्त करते? देवसेन आचार्य स्वयं कहते हैं। लोगों को अपनी कल्पना से कल्पना दौड़ाकर कुछ न कुछ करना है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इनके कथन कठोर न, (इसलिए) रुचता नहीं। आहाहा! ऐसा है, देखो!

जइ पउमणंदिणाहो सीमन्धरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

हम सच्चे मार्ग को कैसे प्राप्त करते? तो दूसरे आचार्यों को निकालकर इनको एक को रखा? आहाहा!

बुद्धि जिसकी, ऐसा अभव्य जीव है, उसे जिनप्रणीत धर्म नहीं रुचता है,... जिनप्रणीत अर्थात् वीतराग का कहा हुआ वीतरागभाव। वह तो वीतरागभाव कहते हैं न। जैनधर्म वीतरागभाव है। आत्मा वीतराग जिनस्वरूप है। 'जिन सो ही है आत्मा।' 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनवचन का मर्म।' आहाहा! इसमें पक्ष की कहाँ बात है? ...तो वीतरागदशा और सर्वज्ञदशा प्रगट होती है, वह कहाँ से आती है? उसका स्वभाव ही वीतरागविज्ञान है। आहाहा!

जहाँ सम्यक् भान हुआ, धर्मी को सब इन्द्र-इन्द्राणी और पूरे लोक में से सुखबुद्धि उड़ जाती है। उसका नाम वीतरागधर्म है। इन्द्र के इन्द्रासन में भी सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! चक्रवर्ती के राज। कैसे कहलाये? जुगलिया। जुगलिया होते हैं न? भोगभूमि। तीन-तीन पल्योपम का आयुष्य, तीन कोस ऊँचे। उनके कल्पवृक्ष के फल। परन्तु वे सब सुख, धर्म ऐसा भगवान आत्मा का भान होने पर उन सबमें से सुखबुद्धि उड़ जाती है। भले पड़ा हो चक्रवर्ती के राज में, इन्द्र के इन्द्रासन में। आहाहा! ऐसा वीतरागधर्म जिसे अन्तर में रुचा, उसे पर के राग की रुचि के भाव हट जाते हैं। राग रहे सही, परन्तु रुचि नहीं। आहाहा! यह तो अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड में धर्म मनाना और उससे धर्म माने, वह पूरा जैनधर्म से विरुद्ध है। ऐई! पण्डितजी! ऐसी बात है परन्तु....

जिनप्रणीत धर्म नहीं रुचता है,... वीतरागविज्ञान। परमात्मा ने तो वीतरागस्वरूप धर्म बताया है, वीतरागभाव बताया है। सर्व शास्त्र का तात्पर्य भी वीतराग है। पंचास्तिकाय

में आता है। सर्व शास्त्र का तात्पर्य क्या है ? कि वीतरागता है। चारों ही अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता का अर्थ ? निमित्त, राग और पर्याय से हटकर स्वभाव -सन्मुख होना, वह वीतरागता है। आहाहा! अरे! भगवान! कहते हैं, ऐसा बाहर आया तो भी उसका विरोध करे, रस न आवे। अरे भाई! यह तुझे शोभा नहीं देता। यह तो अभव्य जैसी प्रकृति है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका एक चिह्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिह्न है वह तो बताते हैं, लक्षण है। ऐसे सीधा न देखे, परन्तु इस प्रकार के लक्षण हैं, वे अभव्य जैसे हैं।

मिथ्यात्व के उपदेश से अपनी दुर्बुद्धि द्वारा... उपदेश भले मिथ्यात्व का हो परन्तु दुर्बुद्धि अपनी, ऐसा कहते हैं। **जिसके मिथ्यादृष्टि है...** आहाहा! **उसको जिनधर्म नहीं रुचता है,...** आहाहा! राग से धर्म मनवाना, वह मिथ्यात्व का उपदेश, उसे **अपनी दुर्बुद्धि द्वारा...** और जिसे यह बात रुच गयी (कि) बराबर है। राग से... प्रशस्त राग है, शुभराग है।

मुमुक्षु : .... कितना लाभ होगा! मनुष्यपना मिले, गुरु मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले उसमें क्या धूल हुई उसमें ? बाहर मिले उसमें क्या हुआ ? उनका लक्ष्य करे, तब तक राग होता है। यह वीतराग की वाणी मिले, वह शुभभाव से। तो वाणी के ऊपर लक्ष्य जाये तो राग होगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

उसको जैनधर्म नहीं रुचता है, तब ज्ञात होता है कि ये अभव्य जीव के भाव हैं। आहाहा! **यथार्थ अभव्य जीव को तो सर्वज्ञ जानते हैं, परन्तु ये अभव्य जीव के चिह्न हैं,...** चिह्न, निशान, लक्षण। आहाहा! **इनसे परीक्षा द्वारा जाना जाता है।** लो! यह परीक्षा, ठीक! राग का प्रेम जाता नहीं और रागरहित स्वभाव सुनने पर भी रुचता नहीं, यह अभव्य के लक्षण हैं, कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १४०

आगे कहते हैं कि ऐसे मिथ्यात्व के निमित्त से दुर्गति का पात्र होता है:— आहाहा!

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ॥१४०॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि जो कुत्सित (निन्द्य) मिथ्यात्वधर्म में रत (लीन) है... राग में धर्म माननेवाला, एकान्त में माननेवाला, वह कुत्सित धर्म है, निंद्य धर्म है। आहाहा! **मिथ्यात्वधर्म में रत (लीन) है (और) जो पाखण्डी निन्द्यभेषियों की भक्तिसंयुक्त है,...** और उस अज्ञान धर्म में, राग में धर्म मनवानेवाले और एकान्त में धर्म मनवानेवालों की भक्ति करता है वह। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! जो अज्ञान और राग में धर्म मानकर पड़ा है और राग में धर्म तथा एकान्त में धर्म मनवानेवाले की भक्तिसहित है, ऐसा कहते हैं। भक्ति वहाँ गयी उसकी। आहाहा! '**कुच्छियतवं**' मिथ्यात्वसहित। आहाहा! **जो निन्द्य मिथ्यात्वधर्म पालता है, मिथ्यादृष्टियों की भक्ति करता है...** ऐसा। जो निन्द्य मिथ्यात्वधर्म पालता है। एकान्त... एकान्त की व्याख्या में यह विवाद आता है। व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, इसका नाम अनेकान्त।—ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : उससे होता है और दूसरे से नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! अपने से अपनी पर्याय होती है, पर से नहीं होती, यह अनेकान्त है। स्वचतुष्टय है न यह? अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं। पर का काल कहो या पर कहो या निमित्त कहो, उससे नहीं। पर से भी होता है और अपने से भी होता है, यह अनेकान्त, ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब व्याख्या, पूरा बड़ा अन्तर। ऐसी बात एक तो इसे रुचि है, कहते हैं और ऐसा बतलानेवालों की यह भक्ति करता है। बराबर, तुम्हारी बात सच्ची, जाओ। ओहोहो! ऐसा कहते हैं।

निन्द्य मिथ्यात्वधर्म में लीन है,... और निन्द्य पाखण्डी भेषियों की भक्तिसंयुक्त

है। आहाहा! **निन्द्य मिथ्यात्वधर्म पालता है,...** इसका अर्थ किया। और **मिथ्यादृष्टियों की भक्ति करता है...** आहाहा! सब धर्म समान, यह निन्द्यधर्म मानता है। सब धर्म समान हैं समन्वय। ऐसा है नहीं। आत्मधर्म एक ही यह धर्म है। दूसरे कहनेवाले सब धर्म विपरीत हैं। आहाहा! **निन्द्य मिथ्यात्वधर्म पालता है, मिथ्यादृष्टियों की भक्ति करता है और मिथ्या अज्ञानतप करता है,...** ऐसा। अपवास करे बहुत-बहुत, करे.... ले। उसमें क्या, दृष्टि मिथ्या है। वे सब कुतप हैं। आहाहा! **वह दुर्गति ही पाता है,...** आहाहा! **इसलिए मिथ्यात्व छोड़ना,...** पर में एकत्वबुद्धि है और उससे लाभ मानता है, वह बुद्धि छोड़ना। वीतरागविज्ञानस्वभाव आत्मा से लाभ होता है; राग से, निमित्त से लाभ नहीं होता। (विपरीत) मान्यता हो तो छोड़ना, ऐसा कहते हैं। **इसलिए मिथ्यात्व छोड़ना, यह उपदेश है।** आहाहा!

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि ऐसे मिथ्यात्व के मोहित जीव... ऐसी मिथ्याश्रद्धा में मोहित जीव। ओहोहो! **संसार में भ्रमण करता है:—** अरेरे! चौरासी के अवतार में अवतरता है, ऐसी मिथ्याश्रद्धा द्वारा। जो अवताररहित चीज़ है, अर्थात् कि राग और विकल्परहित चीज़ है प्रभु, उस चीज़ को न जानकर... यह वीतराग मार्ग है, परन्तु रागादि, पुण्यादि, पर में मानकर अपना स्वरूप माना और जो बैठा निन्द्यधर्म में और निन्द्यधर्म की भक्ति करता है और ऐसी दृष्टिसहित तप करता है अज्ञान में, उसकी दुर्गति है, कहते हैं। आहाहा! उसका भविष्य बिगड़ जायेगा। आहाहा! ऐसे में मोहित है। उसमें सावधान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह चार गति में भ्रमण करेगा। विशेष गाथा लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ७, बुधवार, दिनांक १२-०६-१९७४
गाथा - १४१ से १४४, प्रवचन-१७२

गाथा - १४१

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि ऐसे मिथ्यात्व से मोहित जीव संसार में भ्रमण करता है :—

इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो।
भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि॥१४१॥

... मिथ्यादृष्टि का संसार। उसमें **कुनय सर्वथा एकान्त उन सहित कुशास्त्र...** एकान्त नय से और उसके बने हुए पुरुषार्थ से **उनसे मोहित (बेहोश)...** लो! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो जीव स्वभाव आदि जड़ स्वभाव कहा, उससे उल्टा कहनेवाले अज्ञानियों के कुनय और कुशास्त्र में मोहित हुए जीव। **यह जीव अनादि काल से लगाकर संसार में भ्रमण कर रहा है,...** पूरे अष्टपाहुड़ में सम्यग्दर्शन का जोर अधिक है। दर्शनपाहुड़ ... सम्यग्दर्शन। ... पूरे आठों ही पाहुड़ में सम्यग्दर्शन ... यह अनन्त काल में पाया नहीं, जाना नहीं, अनुभव किया नहीं। उस सम्यग्दर्शन बिना कुशास्त्र और कुक्रिया, उसमें कुशास्त्र, उसमें मोहित हुआ जीव अनादि काल से भ्रमण करता है। अपना आनन्दस्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वभाव, वह महाप्रभु चैतन्य ध्रुव से भरपूर प्रभु है। उसके आश्रय बिना, उसके अवलम्बन—ध्रुव तत्त्व के अवलम्बन बिना, ऐसे कुशास्त्र से मोहित है, वह जीव परिभ्रमण करता है। आहाहा!

ऐसे हे धीर मुने! सम्बोधन करते हैं। हे धीर! '**चिंतेहि**' उसका चिन्तवन कर। तेरा परमात्मस्वभाव शुद्ध ध्रुव के आश्रय बिना ऐसे अनेक पाखण्डियों के मत में पड़ा संसार में भ्रमण कर रहा है, ऐसा कहते हैं। ... यहाँ कहते हैं न! कहा न! कुशास्त्र कहा। ... आदि शास्त्र। पाखण्डी जैन के साधु को कहा है। समयसार की पिछली गाथायें हैं न! ... गाथा। मिथ्यात्व का नाश करनेवाले हैं। ऐसे साधु को पाखण्डी कहा

है। ... आता है ? समयसार ... गाथा। पाखण्डी। एकलिंगी। पाखण्डी ... आता है न। पुण्य और पाप के भाव को खण्डित करनेवाले और स्वरूप का आराधन करनेवाले, उन्हें यहाँ पाखण्डी साधु, ... साधु। यह विपरीत। एकान्त कुनय को साधनेवाले, कुनय ... कुशास्त्र बनाये हुए, उसमें जो मोहित है, वह पाखण्डी-अज्ञानी है।

इसलिए हे धीर! मुनियों को धीररूप से सम्बोधन किया है। पहले आ गया है। धी... बुद्धि ध्येय के प्रति प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। ध्येय ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसमें धी अर्थात् वर्तमान बुद्धि, त्रिकाल ध्रुव के प्रति, ध्येय के प्रति प्रेरे... आहाहा! उसे धीर कहा जाता है। समझ में आया ? धी है न धी ? धीर और धी शब्द पड़ा है। धी अर्थात् बुद्धि, र अर्थात् प्रेरणा। धी अर्थात् बुद्धि वर्तमान और ध्येय ध्रुव। ध्रुव त्रिकाल ज्ञायकभाव पूर्णानन्दस्वरूप उस ओर धी को प्रेरे, ध्येय के प्रति धी को प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। आहाहा! **ऐसे हे धीर मुने! तू विचार कर।**

भावार्थ :- आचार्य कहते हैं... पाखण्डी। यह १४२ को पाखण्डी कहा है। पाषंडी। मूल तो वस्तु की खबर नहीं इसलिए। ऐसा कि मिथ्यादृष्टि को सब मिथ्यात्वी ही भासित होते हैं और सम्यग्दृष्टि को सब समकिती भासित होते हैं। ... और सुननेवाले भी वापस उत्साह करते हैं, वाह! वाह! बहुत सरस! यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पहले नहीं आया ? नीचे से तो शुरु किया है १३९ से। '**मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।**' आहाहा! मिथ्यात्व के—विपरीत श्रद्धा के दोष से ढँका हुआ आत्मा, दुर्बुद्धि '**दुम्मएहिं दोसेहिं।**' देखो! इतनी तो व्याख्या अज्ञान में ... '**कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो।**' आचार्य ने कहा न ? ४० में। पाखण्डी के ... अज्ञानी के कहे हुए तत्त्व, उसके कहे हुए शास्त्रों में मोहित जीव, सर्वज्ञ परमेश्वर ने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा कहा, उसके सन्मुख की दृष्टि नहीं और अज्ञानी के कहे हुए शास्त्र में, कुत्सित धर्म में जिसकी दृष्टि, वह कुगई (कुगति) का भाजन होगा, कहते हैं। वह कुगति का भाजन, नरक और निगोद का भाजन होगा। आहाहा! और ऐसा लगा न कि कुन्दकुन्दाचार्य को ? ऐसे कुगति में जायेंगे। सबको ऐसा नहीं लगा ? स्वयं मिथ्यादृष्टि, इसलिए यह सब मिथ्यादृष्टि। सिद्धान्त किया है।

१४१ **भावार्थ :- आचार्य कहते हैं कि पूर्वोक्त तीन सौ त्रेसठ कुवादियों से...**

एकान्त मत के माननेवाले। विनय से मुक्ति होती है। उसकी अपने को खबर नहीं पड़ती भाई! यह सम्यग्दर्शन क्या जीव ... ? वह सब अज्ञानवादी हैं। आहाहा! केवली होंगे या नहीं, खबर नहीं पड़ती। धर्मात्मा सन्त समकिती होंगे या नहीं, खबर नहीं पड़ती। वे सब अज्ञानवादी हैं। आहाहा! और क्रिया से ही मुक्ति होगी, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि से (मुक्ति होगी, ऐसा माननेवाला) वह क्रियावादी मिथ्यादृष्टि। और अक्रियावादी, आत्मा के शुद्ध परिणमन ही नहीं, आत्मा त्रिकाल ध्रुव में शुद्ध परिणमन की क्रिया ही नहीं, (ऐसा माननेवाले) अक्रियावादी। पर्याय का (शुद्ध) होना, त्रिकाल के अवलम्बन से ध्रुव अक्रिय वस्तु है, उसमें से परिणमन होना, वह भी राग की क्रियारहित है, परन्तु शुद्ध परिणति की क्रिया है। राग से निवृत्तिरूप, परन्तु शुद्ध की परिणतिरूप है, प्रवृत्तिरूप है। ऐसा जीव का शुद्ध परिणति का स्वभाव है। उसे न माने, वे सब अक्रियावादी हैं। आहाहा!

पूर्वोक्त तीन सौ त्रेसठ कुवादियों से... लो, उन्हें कुवादी कहा कुन्दकुन्दाचार्य ने। स्वयं कुवादी होंगे, इसलिए कुवादी कहा सबको? आहाहा! प्रवचनसार में तो अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), जिन्हें संसार का किनारा नजदीक आ गया है, अन्त आने का छोर है कुन्दकुन्दाचार्य को। एकान्त नय का पक्षपात जिन्होंने छेद डाला है। आहाहा! अनेकान्त विद्या को जिन्होंने सिद्ध किया है। आहाहा! है न प्रवचनसार में? अमृतचन्द्राचार्य कुन्दकुन्दाचार्य के लिये कहते हैं। ***संसार समुद्र का किनारा जिनको निकट है।*** अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। संस्कृत में है। '**अथ खलु कश्चिदासन्नसंसारपारावारपारः**' संस्कृत है। अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् हजार वर्ष में हुए। वे कुन्दकुन्दाचार्य का वर्णन करते हैं। छद्मस्थ पर को जाननेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! संसार समुद्र का किनारा जिनको निकट है। एकाध भव बाकी है अब, कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....

ऐसे कोई (आसन्नभव्य महात्मा—श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव), सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति जिनको प्रगट हुई है... लो, पंच महाव्रतधारी अमृतचन्द्राचार्य

दिगम्बर मुनि ऐसा कहते हैं कि उत्तम विवेक ज्योति जिनको प्रगट हुई है। राग से भिन्न विवेक जिन्हें प्रगट हुआ है। आहाहा! जिन्हें भेदज्ञान हुआ है। देखो, एक मुनि दूसरे मुनि की परीक्षा करके कहते हैं। ***(परम भेदविज्ञान का प्रकाश जिन्हें उत्पन्न हुआ है) और समस्त एकान्तवादरूप अविद्या का अभिनिवेश जिनको अस्त हुआ है...*** अस्त हो गया है। आहाहा! अभिप्राय, निश्चय, आग्रह खोटा। ***ऐसे, पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनभगवान की) अनेकान्तवाद विद्या को प्राप्त करके...*** आहाहा! स्वरूप अमृतमय है, रागमय नहीं। शान्तमय है, अशान्तरूप नहीं। पवित्र है, अपवित्ररूप नहीं। ऐसा जो अनेकान्तवाद वस्तु का स्वरूप, ऐसी विद्या को प्राप्त हुए हैं।

समस्त पक्ष का परिग्रह (शत्रु-मित्रादि का समस्त पक्षपात) छोड़ा... है। कुन्दकुन्दाचार्य के लिये अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। यह प्रवचनसार। ***अत्यन्त मध्यस्थ होकर, सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से जो आत्मा को अत्यन्त हिततम है।*** आहाहा! ***ऐसी, भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य परमार्थ सत्य (पारमार्थिक रीति से सच्ची), अक्षय (अविनाशी) मोक्षलक्ष्मी को उपादेयरूप से निश्चित करते हुए...*** पूर्णानन्द को पूर्णपद को उपादेयरूप से अंगीकार करते हुए। आहाहा! ***प्रवर्तमान तीर्थ के नायक (श्री महावीरस्वामी) पूर्वक भगवन्त पंच परमेष्ठी को प्रणमन और वन्दन से होते नमस्कार द्वारा स्मरण करके (सन्मान करके) सर्व आरम्भ से (उद्यम से) मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए...*** लो! मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए यह शास्त्र बनाते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य मुनि, यह कुन्दकुन्दाचार्य की सच्ची प्रशंसा करते हैं। कहो, चेतनजी! अब उन्हें समकित होगा या नहीं? अरे! भगवान! भाई! सूर्य उगा हो, उजाले की खबर न पड़े? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **कुवादियों से सर्वथा एकान्तपक्षरूप कुनय द्वारा रचे हुए...** आहाहा! यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने बनाये जो ॐ ध्वनिवाले आगम, परमागम की रचना गणधरदेव दिगम्बर सन्त ने की, वह शास्त्र। इसके अतिरिक्त सब कुशास्त्र हैं। आहाहा! **कुनय द्वारा रचे हुए शास्त्रों से मोहित होकर यह जीव संसार में अनादि काल से भ्रमण करता है,...** आहाहा! **सो हे धीर मुनि! अब ऐसे कुवादियों की संगति भी मत कर,...** उनकी संगति न कर। आहाहा! यह तो जरा लोका के ऊपर उतरे हैं न। उन्होंने

टीका में डाला है। लोका मिथ्यादृष्टि पके, उनकी संगति करना नहीं। यह तो एक व्यक्तिगत की कहाँ बात है ? **यह उपदेश है।** तब कुवादी और सत्यवादी कौन है, उसकी परीक्षा तो होनी चाहिए या नहीं ? इसके बिना छद्मस्थ किसकी संगति छोड़े और किसकी संगति करे ? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती राजा हो, छियानवें हजार स्त्रियों का विषय हो, तथापि वह सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग में है। पण्डितजी! भूयत्थो मोक्ख मग्गो। गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी, इतनी स्त्रियाँ और राजपाट में पड़ा होने पर भी वह ... वह मोक्ष के मार्ग में है। आहाहा! और अणगा... अणगार मुनि होकर भी मोही अर्थात् मिथ्यात्व को सेवन करनेवाला... आहाहा! वह संसारमार्ग में है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, उसमें लिखा है न, देखो न! है या नहीं ? आहाहा! मार्ग तो जैसा हो, वैसा ही कहे न! अणगार नाम धरावे और एकान्त राग का पोषण करे और राग की क्रिया द्वारा धर्म मनावे, वह मिथ्यादृष्टि संसारमार्ग में है। आहाहा! रत्नकरण्डश्रावकाचार में भी यह लिया है। वह ... गाथा है।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान। दोपहर में यह आया था न अपने। आता है न ... आता है। नाम कल दिये, उसमें सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र कोई नहीं आया। दूसरे नाम दिये। परमेश्वर कहो, यह कहो, यह कहो। क्योंकि सम्यग्दर्शन और ज्ञान की ही वहाँ दशा है। फिर चारित्र जो संयम, उसकी बाद में बात।

मुमुक्षु : वह तो आये बिना रहे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आवे, तथापि अभी नहीं तो भी उसकी ही महिमा की है, ऐसा। आया था न कल दोपहर में। परमेश्वर कहो उसे, विज्ञानवादी विज्ञान एकरस कहो। अष्टपाहुड़ में। उसे सम्यग्दर्शन कहो, सम्यग्ज्ञान कहो। ऐसा कलश है। उसमें ऐसा शब्द नहीं आया कि सम्यक्चारित्र कहो। क्योंकि उसकी बात है नहीं अभी। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान। आहाहा! परमात्मा पूर्णस्वरूप से विराजमान अपना स्वरूप है। आहाहा! उसका जिसने आदर किया और जिसे स्वीकार हुआ, जिसे अनुभव हुआ

आत्मा ऐसा पूर्णानन्द, उसे कहते हैं कि यह अनन्त नाम देना हो तो दे, ऐसा कहते हैं। कल आया था। आहाहा! ऐसे अज्ञानियों के मत में, जिनका अभिप्राय झूठा है, जिनकी दृष्टि विपरीत है, जिनका एकान्त आग्रह है, ऐसे कुवादियों का संग न कर।

यहाँ एकान्त में भी वापस यह ले जाते हैं कि धर्म निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, यह अनेकान्त है। ऐसा नहीं। मिथ्या एकान्त। प्रत्येक द्रव्य की क्रमसर पर्याय होती है और अक्रम भी होती है, इसका नाम अनेकान्त, ऐसा। प्रत्येक समय की क्रमसर ही छहों द्रव्यों का स्वभाव प्रवाहधारा। अनादि-अनन्त परिणति का प्रवाह क्रमसर ही उसका प्रवाह होता है। आहाहा! उसे दृष्टि द्रव्य के ऊपर होती है, इसलिए उसका प्रवाह क्रमसर चलता, उसका वह जाननेवाला रहता है। आहाहा! एकान्तनय... अक्रमबद्ध। परन्तु गुण अक्रम। गुण अक्रम, पर्याय क्रम और दूसरे प्रकार से कहा है कि पर्याय क्रम परन्तु दूसरे क्रम की अपेक्षा से अक्रम। समझ में आया? दूसरा द्रव्य क्रमबद्ध है न? तो अपनी पर्याय में उस क्रमबद्ध की अपेक्षा से अक्रम। अक्रम अर्थात् वह नहीं, ऐसा।

मुमुक्षु : उसका क्रम इसमें नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें नहीं।

★ ★ ★

गाथा - १४२

आगे कहते हैं कि पूर्वोक्त तीन सौ त्रेसठ पाखण्डियों का मार्ग... लो! वह तो यह आया। **छोड़कर जिनमार्ग में मन लगाओ :—** आहाहा!

पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठि भेया उमग्ग मुत्तूण।
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥१४२॥

आहाहा! **अर्थ :- हे जीव! तीन सौ त्रेसठ पाखण्डियों के मार्ग को छोड़कर...** जगत में ३६३ पाखण्ड हैं या नहीं? **जिनमार्ग में अपने मन को रोक... 'रुंभहि'** ऐसा है न? **'उमग्ग मुत्तूण। रुंभहि मणु जिणमग्गे'** उन्मार्ग को छोड़कर जैनमार्ग वीतरागभाव,

वहाँ मन को रोक। **तीन सौ त्रेसठ पाखण्डियों के मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में अपने मन को रोक (लगा)...** आहाहा! वीतरागस्वरूप आत्मा में दृष्टि लगा दे। **यह संक्षेप है...** लो, बहुत संक्षिप्त में यह कहना है। **और निरर्थक प्रलापरूप कहने से क्या ?** यहाँ तो जैनमार्ग, दिगम्बर मार्ग वह जैनमार्ग एक है। बाकी कोई जैनमार्ग नहीं। आहाहा! यह तो कहते आये हैं पहले से बोधपाहुड़ में, दर्शनपाहुड़ में। वह यहाँ कहा है, छनावट की है। आहाहा! क्योंकि उस समय वह पंथ निकल चुका था न, कुन्दकुन्दाचार्य हुए तब श्वेताम्बर पंथ निकल चुका था, सौ वर्ष पहले। यह जैनमार्ग।

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड असंख्यप्रदेशी धाम। धाम अर्थात् उसका क्षेत्र। उसमें अनन्त गुण विराजमान, उसमें रागादि और पर का अभाव ऐसे आत्मा में मन को लगा। आहाहा! ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा, वीतरागमार्ग राग की अपेक्षारहित, उसमें मन को लगा। संसार समुद्र का पार लाना हो तो यह मार्ग है। आहाहा! **और निरर्थक प्रलापरूप कहने से क्या ?**

भावार्थ :- इस प्रकार मिथ्यात्व का वर्णन किया। आचार्य कहते हैं कि बहुत निरर्थक वचनालाप से क्या ? इतना ही संक्षेप से कहते हैं कि तीन सौ त्रेसठ कुवादि पाखण्डी कहे, उनका मार्ग छोड़कर जिनमार्ग में मन को रोको,... जिनमार्ग— वीतरागभाव, जो आत्मा में वीतरागस्वभाव है, उसे वीतरागभावरूपी सम्यग्दर्शन से प्रगट किया है। उसमें मन को रोक। आहाहा! राग और पुण्य की क्रिया से, राग की क्रिया से धर्म मनाया हो, उसे छोड़, ऐसा कहते हैं। **उनका मार्ग छोड़कर जिनमार्ग में मन को रोको, अन्यत्र न जाने दो।** आहाहा!

यहाँ इतना और विशेष जानना कि—कालदोष से इस पंचम काल में अनेक पक्षपात से मत-मतान्तर हो गये हैं,... लो, ठीक। **पंचम काल में अनेक पक्षपात से मत-मतान्तर हो गये हैं, उनको भी...** कालदोष से, ऐसा लिया, देखा! दोष तो इसका है परन्तु यह काल ही ऐसा कोई... आहाहा! **उनको भी मिथ्या जानकर उनका प्रसंग न करो।** आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहते हैं। टीका में है न, जयसेनाचार्य की टीका में है। परन्तु यहाँ तो कालदोष लिया, ऐसा। वह जीव का दोष है, ऐसा न लेकर। यह तो ... इस काल के ऐसे प्रसंग में ऐसे जीव पके, ऐसा। आहाहा! वीतरागमार्ग को पूरा बदल डाला, ऐसा कहते हैं।

मिथ्या जानकर उनका प्रसंग न करो। जगत में अनेक अभिप्राय जगे हैं वीतरागमार्ग को छोड़कर, उनका प्रसंग न करो। **सर्वथा एकान्त का पक्षपात छोड़कर अनेकान्तरूप जिनवचन का शरण लो।** आहाहा! वहाँ ऐसा कहते थे, हों! पहले गये (संवत्) २०१३ के वर्ष में कलकत्ता। अनेकान्त जिन्दाबाद। ऐसा कि यह लोग एकान्त है और हमारा जिन्दाबाद ऐसा कहे। कलकत्ता १३ के वर्ष गये थे न पहले यात्रा में। एक मन्दिर के दर्शन करके बाहर निकले, मन्दिर के लोग खड़े थे ६-८। अनेकान्त जिन्दाबाद, ऐसा। कहा, अपने करो अनेकान्त जिन्दाबाद। अनेकान्त किसे कहना... वे बेचारे ऐसा कि यह मूर्ति, मूर्ति की पूजा, भक्ति से धर्म होता है, ऐसा (ये) मानते नहीं। यात्रा को धर्म नहीं मानते, महाव्रत के परिणाम को धर्म नहीं मानते, ऐसा। यह एकान्तवाद है, अनेकान्तवाद नहीं। अनेकान्तवाद तो यह। भक्ति, पूजा, दान, दया से धर्म होता है, यह अनेकान्तवाद। आहाहा! यह दिगम्बर में भी ऐसा (चलता है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर में बोलते थे, लो। बड़ा मन्दिर है न एक कलकत्ता में। बेलगछिया नहीं, गाँव में। गाँव में है। गाँव में थे वहाँ अन्दर। वह निकली न तब शोभायात्रा स्वागत की। तो वहाँ दर्शन करने गये थे वहाँ बीच में। आहाहा! धर्म के नाम से भी... ऐसा कि यह दया, दान, भक्ति, पूजा, यात्रा, यह भी धर्म है। और ये लोग इसे धर्म कहते नहीं, ऐसा। बात सच्ची है। धर्म तो आत्मा की रागरहित श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट हो, वह धर्म है। होता है बीच में राग, आवे अवश्य, परन्तु वह धर्म नहीं। आहाहा!

सर्वथा एकान्त का पक्षपात छोड़कर अनेकान्तरूप जिनवचन का शरण लो। जिनवचन में वीतरागता बतायी है, ऐसा कहते हैं। जिनवचन तो शब्द हैं, परन्तु जिनवचन की शरण लो, अर्थात् जिनवचन में कहा हुआ वीतरागभाव, आहाहा! उसकी शरण लो।

★ ★ ★

गाथा - १४३

आगे सम्यग्दर्शन का निरूपण करते हैं,... अब इसका वजन देते हैं, जोर (देते हैं)। **पहिले कहते हैं कि 'सम्यग्दर्शनरहित प्राणी चलता हुआ मृतक' है:—** शव शव है। आहाहा!

जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चलसबओ।
सवओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसबओ॥१४३॥

अर्थ :- लोक में जीवरहित शरीर को 'शव' कहते हैं,... मुर्दा। जीवरहित शरीर को सब मुर्दा कहते हैं। **मृतक या मुर्दा करते हैं,...** लो! तीन शब्द प्रयोग किये। **वैसे ही सम्यग्दर्शनरहित पुरुष 'चलता हुआ मृतक' है।** आहाहा! जिसकी श्रद्धा में मिथ्यात्वभाव है, वह सम्यग्दर्शनरहित चलता मृतक है। आहाहा! चलता मुर्दा। उस मुर्दे को दूसरे उठावें ऐसे। यह चलता मुर्दा है। आहाहा! कितना वजन दिया, देखो! रत्नकरण्डश्रावकाचार में यहाँ तक कहा कि भस्म अग्नि। अग्नि भस्म से ढँकी हुई हो तो भी वह अग्नि है। इसी प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन (वह) चाण्डाल... चाण्डाल को हुआ हो तो वह भी देव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गणधर उसे देव कहते हैं, ऐसा कहा। आहाहा! मातंग चाण्डाल का अवतार हो, परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन, राग से भिन्न और स्वभाव से अभिन्न का भान अनुभव में हो गया, कहते हैं कि वह राख से ढँकी हुई अग्नि की भाँति अग्नि है अन्दर। भले शरीर चाण्डाल का हो, नीच कुल में अवतरित हुआ हो, परन्तु वह देव है। आहाहा! इतनी कीमत सम्यग्दर्शन की है।

सम्यग्दर्शनरहित पुरुष 'चलता हुआ मृतक' है। आहाहा! अर्थात्? कि चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द और अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका जो जीवन ऐसा पूर्ण है, उसका जिसे स्वीकार नहीं और जिसे राग, निमित्त और एक समय की पर्याय में स्वीकार है, वह त्रिकाली चैतन्य के जीवन को उसने तो मुर्दा कर डाला है। वह मृतक मिथ्यादृष्टि मरा हुआ मुर्दा है। आहाहा! जीव का जीवन त्रिकाली आनन्द और ज्ञानस्वभाव से

जीवित ज्योति प्रभु है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द पूर्ण स्वभाव से टिकता जीवता जीव है वह। ऐसे जीव का जिसे स्वीकार नहीं, वह मिथ्यादृष्टि चलता मुर्दा है, कहते हैं। आहाहा! उसने जीव को जीवित रखा नहीं। ऐसा जो जीवन जीव का, ओहोहो! एक समय में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता ऐसा जो जीव का जीवन अर्थात् टिकना, ऐसा उसका अस्तित्व है, ऐसी उसकी सत्ता है, उसका स्वीकार नहीं और राग और पुण्य की क्रिया तथा निमित्त का स्वीकार, उसने चैतन्य के ऐसे जीवन को संहार किया है। आहाहा! आत्महनो भवंति आता है न, बन्ध अधिकार में। ओहोहो! मैं पर को जिला सकता हूँ, पर को मार सकता हूँ, पर को सुखी कर सकता हूँ, पर को दुःखी कर सकता हूँ—ऐसा माननेवाले आत्महनो भवंति—आत्मा के घातक हैं। पर का घात कर सकूँ, यह माननेवाले आत्मा के घातक हैं। पर का जीवन कर सकता हूँ, आहाहा! वह आत्महनो भवंति। वह ज्ञाता-दृष्टा के जीवन को घात डाला है उसने। आहाहा!

सम्यग्दर्शनरहित पुरुष 'चलता हुआ मृतक' है। आहाहा! **मृतक तो लोक में अपूज्य है,...** मुर्दे को पूजते हैं? गाड़ देते हैं या जला डालते हैं। दो में से (एक करे), या गाड़ दे, मुसलमान होवे तो और हिन्दू जला दे, भस्म कर दे। **अग्नि से जलाया जाता है...** यह देखो, इसमें ही आया। **या पृथ्वी में गाड़ दिया जाता है...** दो में से एक। **और दर्शनरहित चलता हुआ मुर्दा...** आहाहा! वह ज्ञाता-दृष्टा किसी का कर नहीं सकता और किसी से कुछ लेता भी नहीं। किसी से कुछ लेना नहीं और किसी को देना भी नहीं। ऐसा ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव है। आहाहा! ऐसा नहीं मानकर **दर्शनरहित चलता हुआ मुर्दा लोकोत्तर जो मुनि-सम्यग्दृष्टि उनमें अपूज्य है,...** लो! लोक में मुर्दा अपूज्य है। **लोकोत्तर जो मुनि-सम्यग्दृष्टि उनमें...** यह मुर्दा मिथ्यादृष्टि अपूज्य है। आहाहा!

वे उसको वन्दनादि नहीं करते हैं। धर्मी समकिती ऐसे मिथ्यादृष्टि को वन्दन आदि नहीं करते। **मुनिभेष धारण करता है...** आहाहा! **तो भी उसे संघ के बाहर रखते हैं...** जिसकी दृष्टि विपरीत है, ऐसे बाह्य ख्याल में आ गया, उसकी बात है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कहा है न, ख्याल में—बाहर में न आवे, तब तक संघ से बाहर न करे उसे। आता है। आचार व्यस्थित हो, इसलिए रखे, बाहर न करे। आचार बाहर व्यवस्थित

हो, अन्दर में अन्तर हो माने मिथ्यादृष्टिपना। अन्दर में ऐसा ख्याल आ गया, परन्तु बाहर में व्यवस्थित करे। ऐसा आता है। यह तो ख्याल आ गया। ... स्वरूप है बाहर। ऐसे को तो संघ में रखे नहीं, ऐसा कहते हैं। आता है न भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में। मोक्षमार्गप्रकाशक में। जिसका व्यवहार आचार व्यवस्थित हो, व्यवहारश्रद्धा आगम प्रमाण सब। समकिती भी उसका आदर करे, ऐसा आता है न? बाहर से....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े रूप से का दृष्टान्त दिया है। उसमें दृष्टान्त दिया है। परिवार में बड़ा मोटा हो और गरीब हो, साधारण हो तो भी आदर करे। परन्तु आगम प्रमाण उसका आचरण, उसकी व्यवहार श्रद्धा बराबर होनी चाहिए। और उसका ख्याल आ गया हो अन्दर अभिप्राय से, मिथ्यात्व से, परन्तु बाहर में फेरफार न हो तो संघ से बाहर न कर सके। यहाँ तो फेरफारवाली प्ररूपणा ख्याल में आयी, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

लोकोत्तर जो मुनि-सम्यग्दृष्टि उनमें अपूज्य हैं... आहाहा! कठिन बातें! चौक में बातें करे, सब समन्वय करो, सब धर्म समान हैं। ऐसे एकान्त मिथ्यादृष्टि को संघ से बाहर कर डाले। आहाहा! **अथवा परलोक में निन्द्यगति पाकर अपूज्य होता है।** दो प्रकार से है। जिसकी दृष्टि विपरीत है, मिथ्यात्व है, अनेकान्त से उसकी विरोधवाली दृष्टि है, ऐसे जीव इस भव में भी निन्दनीक हैं, परभव में भी नीच गति को पाते हैं। आहाहा! प्रवचनसार में लिया है जरा कि मुनि हैं सच्चे मुनि, वे भी कोई व्यन्तर में जाये, वैभव पावे। फेरफार हो गया हो। वस्तु बराबर है, परन्तु भाव में कोई फेरफार चारित्र का विराधक हो गया। आता है न, भाई! व्यन्तर आदि का वैभव पाकर फिर मोक्ष जायेंगे। शुरुआत में आता है न पहली गाथायें। शुरुआत में यह आता है। यह प्रवचनसार में है।

'**देवासुरमणुयरायविहवेहिं**' असुर का भी वैभव। है सम्यग्दृष्टि परन्तु कुछ अन्तर पड़ा हो बाद में। तो वह मरकर असुर में भी जाये। असुर में व्यन्तर में जाये। छठवीं गाथा है। '**संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविवेहिं जीवस्स चरित्तादो**' जीव को चारित्र से '**दंसणणाणप्पहाणादो**' इसके पश्चात् मुक्ति पायेगा। ऐसा पंचम काल के

जीव का ऐसा सहज कोई फेरफार चारित्र का दोष आ गया। ऐसे चारित्रवाला। समकित बराबर है। तथापि उसमें भी अन्तर पड़ गया। वरना व्यन्तर का आयुष्य कैसे बाँधे? समझ में आया? यहाँ तो सच्चे मुनि को भी व्यन्तर में जाये, ऐसा लिखा है। किस अपेक्षा से? सहज अन्तर हो गया अन्दर श्रद्धा में और राग में अन्तर हो गया। व्यन्तर का आयुष्य बाँध ले, परन्तु फिर वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। कहो, पण्डितजी! गाथा है, देखा!

दर्शन-ज्ञान प्रधान चरित्र से प्राप्ति करें निर्वाण अहो,
देवेन्द्रो-असुरेन्द्रों एवं नरपतियों के वैभव को॥ ६

छठवीं गाथा। पंचम काल है। उसमें कोई फेरफार सहज अन्दर हो गया थोड़ा।

मुमुक्षु : फेरफार श्रद्धा में नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में भी थोड़ा हुआ है। इसके बिना आयुष्य कैसे बाँधे? आहाहा!

मुमुक्षु : श्रद्धा में हुआ, बन्ध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा हुआ। असुर हो नहीं, असुर के देव का आयुष्य बँधता नहीं। ऐसा जरा पंचम काल में सच्चे सन्त में भी किसी समय थोड़ा फेरफार हो जाता है, इतना लक्ष्य रखकर बात की है। परन्तु जिसकी दृष्टि बराबर थी, किन्तु सहज कुछ अन्तर पड़ा साधारण सूक्ष्म, (उसमें) असुर का (आयुष्य) बँध गया। ऐसी बात है जरा। वरना सम्यग्दृष्टि तो...

मुमुक्षु : मोक्ष पावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर मोक्ष पावे। फिर वह वहाँ से वह सब खिर जानेवाला है। आगे मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। परन्तु जिसके अन्दर सम्यग्दर्शन की धारा पहले व्यवस्थित थी, उसमें सहज थोड़ा अन्तर पड़ गया। इतनी बात है। परन्तु जिसे अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना ही नहीं पहले से... ऐसी बात है। आहाहा! कहो, कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसार, छठवीं गाथा में ऐसा लिया।

और ऐसा कहा कि आचार्य, उपाध्याय, साधु कैसे होते हैं? कि जो शुद्ध उपयोग

को प्राप्त हों। शुद्ध उपयोग को प्राप्त, उन्हें आचार्य, उपाध्याय, साधु कहते हैं। परम शुद्ध उपयोग। पंच महाव्रत को प्राप्त की बात नहीं ली। पाँच गाथायें। शुद्ध उपयोग को प्राप्त। आहाहा! फिर छठवीं में जरा अन्तर खा गया। उनके ख्याल में रहा कि यह पाँचवाँ काल है। कोई सच्चे सन्त धर्मात्मा हैं, उन्हें कोई अन्दर में सहज अन्तर हो गया हो तो वे असुर का वैभव पाकर वहाँ से फिर मनुष्य होकर, फिर मोक्ष जायेंगे। छोटाभाई! आता है। परन्तु उसमें से कोई ऐसा बचाव करे कि देखो इसमें ऐसा है। ऐसी यहाँ बात नहीं। वह तो प्राप्त हैं, वस्तु थी, उसमें से कोई सहज कोई पुरुषार्थ की कमी से अन्तर पड़ गया। यह तो पहले ही ठिकाना न हो जहाँ अभी। शुद्ध उपयोग को पाकर पहली बात करके, फिर की है न, भाई! पाँच गाथाओं में शुद्ध उपयोग, परम शुद्ध उपयोग को प्राप्त हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु उन्हें कहते हैं। परम शुद्ध उपयोग। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में टोडरमलजी ने ऐसा कहा (कि) साधुपना अर्थात् परम शुद्ध उपयोग को प्राप्त, वह साधुपना। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण की बात बाद में ली, परन्तु पहली यह ली।

मुमुक्षु : परम ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुद्ध उपयोग, शुद्ध उपयोग। तब और अभी तो रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं कि शुद्ध उपयोग अभी होता नहीं। यह क्या कहते हैं? यहाँ कहते हैं, पंच परमेष्ठी शुद्ध उपयोगवाले ही होते हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु शुद्ध उपयोगवाले ही होते हैं। आहाहा!

यह दृष्टान्त दिया है न टीका में, नहीं? जयसेनाचार्य ने। बहुत आम के वन हों और दूसरे वृक्ष थोड़े हों, तथापि उसे आम का वन कहा जाता है। इसी प्रकार शुभराग आवे, तथापि शुद्ध उपयोग की प्रधानता है, इसलिए उसे शुद्ध उपयोगी कहते हैं और दृष्टि (सम्यग्दृष्टि) को शुद्ध उपयोग किसी समय आता है, परन्तु शुभराग में उसकी प्रधानता है, तो उसे शुभ उपयोगी कहते हैं, ऐसा। आहाहा! आचार्य के शब्द। दूसरे भाग में। यह तो भाई! मध्यस्थ से बातें हैं। अपना पक्ष ठीक पड़े, उस प्रकार से शास्त्र के अर्थ करना, वह मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु : उल्टे अर्थ करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा करे, कैसे चले? सर्वज्ञ वीतराग की पेढ़ी है यह तो। परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्त देव के व्यापार की यह पेढ़ी है। चारित्रदोष हो, वह दूसरी बात है परन्तु, अन्दर श्रद्धा में गड़बड़ करे, आहाहा! जैनदर्शन में मुर्दा कहा, तू मर गया है। आहाहा! चैतन्य के पूर्णानन्द के नाथ को तूने स्वीकार नहीं किया और अल्पज्ञरूप से और रागरूप से लाभ हो, ऐसा स्वीकार किया। पूरे जीवन की ज्योति की तूने अनादर-हिंसा की है। तू मृतक कलेवर जैसा है। आहाहा! कलेवर इस भव में भी पूज्य नहीं और परभव में पूज्य नहीं। जैसे उसको गाड़ दे और जला देते हैं। आहाहा!

उसमें तो ऐसा भी कहा है, सम्यग्दृष्टि नरक का आयुष्य बाँधता नहीं, परन्तु बाँधा हो... योगसार में नहीं? तो वह वहाँ जाये, वह कर्म खिर जाते हैं। बापू! क्या हो? ऐसी स्थिति का कोई आयुष्य बँध गया। सम्यग्दर्शन है, भान है। सहज हट गया। आहाहा! परन्तु अन्दर में जोर जो है, वह तो अन्दर रहा है। सहज अन्तर पड़ गया। तो यह कहते हैं कि आगे जाकर नरक में जायेगा तो नरक का आयुष्य क्षय करेगा। वह कर्म की निर्जरा के लिये वहाँ जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सूक्ष्म बात है। कोई एक नय के पक्ष में आ गया एकान्त कुछ। जो भूल, उसे ख्याल में न रही तो वह आ जाये। छद्मस्थ है न। उसमें पंचम काल। ऐसा लिया स्थूलरूप से विपरीतता है, वह तो प्रत्यक्ष प्रसिद्ध है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बस इतना। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष रहे परन्तु ज्ञान की....

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ में नहीं आये। उस समय ऐसा कोई भाव आ गया हो थोड़ा। तो कहते हैं कि नरक का आयुष्य बँध जाये तो ... असुर का बँध जाये। वहाँ से निकलकर उसका—संसार का अन्त कर देगा। दर्शनशुद्धि बहुत सेवन की है न इसलिए। यह तो मार्ग ऐसा है कि आग्रह करनेयोग्य कुछ नहीं। जैसे स्वरूप है, वैसे उसे जानना चाहिए। फेरफार जरा... तो पूरा फेरफार हो जाये।

परलोक में निन्द्यगति पाकर अपूज्य होता है। ओहोहो!

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन बिना पुरुष मृतकतुल्य है। मुर्दातुल्य है मुर्दातुल्य है, ऐसा कहते हैं। चारित्र बिना मुर्दातुल्य है, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : चारित्र से भ्रष्ट हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो चारित्र भ्रष्ट हो, वह चारित्र भ्रष्ट कहीं... दंसण भट्ठा न सिझंती, चरित भट्ठा सिंझती, है न? दर्शनभ्रष्ट तो दंसण भट्ठा भट्ठा। ज्ञान से भ्रष्ट, चारित्र से, सबसे भ्रष्ट है। चरित्त भट्ठा सिझंती। चारित्र भ्रष्ट है, वह उसके ख्याल में है। चारित्र पायेगा। आहाहा! यह श्लोक है। दर्शनपाहुड़ का है।

★ ★ ★

गाथा - १४४

आगे सम्यक्त्व का महानपना कहते हैं :— बोधपाहुड़ में इसकी महिमा, दर्शनपाहुड़ में इसकी महिमा, सब चारित्र में उसके सबमें इसकी ही महिमा की है, सम्यक्त्व की। खेवटिया है, यह आता है न रत्नकरण्डश्रावकाचार में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्णधारं। सम्यग्दर्शन कर्णधार है वाहन का चलानेवाला। वाहन चलता है न? वह कर्णधार है। पूरे मोक्षमार्ग को चलानेवाला सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं॥१४४॥

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ९, शुक्रवार, दिनांक १४-०६-१९७४
गाथा - १४५ से १४८, प्रवचन-१७३

भावपाहुड़ १४५ गाथा।

जह फणिराओ सोहइ फणमणिमाणिक्ककिरणविप्फुरिओ।
तह विमलदंसणधरो जिणभत्ती पवयणे जीवो॥१४५॥

इसका अर्थ।

मुमुक्षु : जिनभक्ति जो सर्व तत्त्व का सिद्धान्त है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तव में तो वह आत्मा का वीतरागस्वभाव है, उसकी भक्ति, वह सर्व सार है ऐसा। मूल तो यह जिनभक्ति का अर्थ है। वीतरागस्वरूप आत्मा, जिनस्वरूप ही आत्मा है। उसकी भक्ति अर्थात् उसकी रुचि परिणति, वही सब प्रवचन का सिद्धान्त है। वह प्रवचन सिद्धान्त का रहस्य ही यह है। जिनभक्ति। जिनभक्ति अर्थात्?

मुमुक्षु : अन्दर के जिन की भक्ति या बाहर के जिन की?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्दर के। यह सिद्धान्त ऐसा संस्कृत में '**जिणभत्ती पवयणे**' जिनभक्ति प्रवचन अर्थात् गुप्त तत्त्व सिद्धान्त। ऐसा संस्कृत में है। मूल तो यह है। मूल तो यह कहना है कि पूरा सिद्धान्त तत्त्व का रहस्य चैतन्यमूर्ति जो आत्मा निर्विकल्प अर्थात् वीतरागस्वरूप, उसकी भक्ति अर्थात् उसका अनुभव और प्रतीति, वह सम्पूर्ण जैनसिद्धान्त का रहस्य है। मूल तो ऐसा कहना है। आहाहा! देखो!

अर्थ :- जैसे फणिराज (धरणेन्द्र)... शब्द है न धरणेन्द्र। **सो फण जो सहस्त्र फण...** थे। भगवान पार्श्वनाथ भगवान जब ध्यान में थे, तब उपसर्ग हुआ तो धरणेन्द्र आये। पद्मावती उनकी रानी और धरणेन्द्र। उस समय सहस्त्र फण—एक हजार फण बनाये। **उसमें लगे हुए मणियों के...** उन हजार फण में एक-एक फण में मणिरत्न है। भगवान के ऊपर ऐसे रक्षा करने के लिये यह नाग का रूप धारण करके धरणेन्द्र ने

हजार फण धारण किये, हजार फण। उसमें एक-एक फण में एक-एक मणि। **मणियों के बीच जो लाल-माणिक्य...** उसमें सब फण में बीच में एक माणेक लाल माणेक रत्न था। बीच के फण में। **उनकी किरणों से विस्फुरित...** उसकी किरण से वह **शोभा पाता है,...** पूरा ऐसा आता है बड़े हजार फण का आता है बहुत जगह, पार्श्वनाथ भगवान के ऊपर। हजारफणी नहीं आता? सहस्त्रफणी आता है। वहाँ गिरनार में आता है। नाग भगवान को उपसर्ग टालने के लिये जहाँ आये थे, रक्षा करने, वहाँ हजार फणी की, एक-एक फण में मणि और बीच के फण में माणेक लाल माणेक रत्न, उससे सब पूरा शोभता था। इसी प्रकार **जिनभक्तिसहित निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक...** आहाहा! वीतराग परमात्मा की भक्ति अर्थात् कि जिनभक्ति अर्थात् आत्मस्वभाव की भक्ति।

मुमुक्षु : वह तो निश्चयभक्ति हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही बात कही न। वहाँ कहा न, ३१ में क्या कहा? केवली के गुण किसे कहना? केवली की स्तुति करे किसे कहना? पूछा न ३१ गाथा में, समयसार। शिष्य ने प्रश्न किया कि, प्रभु! केवलज्ञानी की स्तुति कहना किसे? तब उत्तर दिया कि यह आत्मा अणीन्द्रिय जो है, वह खण्ड इन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय और उसका विषय—तीन की रुचि छोड़कर उनसे भिन्न चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की रुचि, दृष्टि, अनुभव का नाम केवलज्ञानी की स्तुति है। आहाहा!

मुमुक्षु : करना अपनी स्तुति और कहना केवली की स्तुति।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ ही यह है। भगवान तो जो हैं, वे हैं। परन्तु उनकी स्तुति यह भगवान स्वयं ऐसा है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ वीतरागमूर्ति ही आत्मा है। उसकी भक्ति अर्थात् कि उसमें एकाग्रता, उसे ज्ञेय बनाकर उसमें एकाग्रता। दूसरा लक्ष्य छूट जाये। आहाहा! ऐसा जो आत्मा जिनस्वरूपी प्रभु, उसका भजन अर्थात् एकाग्रता। वह जैसे फणी फण में मणिरत्न में लाल माणेक शोभे, वैसे यह समकिती जगत में शोभता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आज व्रत की कीमत अधिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्रत कहाँ थे अब धूल में? इसके लिये तो लगायी है यहाँ।

उसकी अपेक्षा चारित्र की कीमत अधिक। परन्तु ये माने हुए व्रत, वे तो व्रत भी कहाँ हैं? अज्ञान है, बालव्रत, बालतप। परन्तु अब जगत को कठिन पड़े। अन्तर चीज़ महाप्रभु, अकेला ज्ञानस्वभाव का पुंज अथवा अकषायरस का अकेला तत्त्व, जिनस्वरूपी प्रभु अनन्त गुण वीतरागस्वभाव से विराजमान है। वस्तु एक, गुण अनन्त। यह एक-एक गुण वीतरागभाव से विराजमान है। ऐसे अनन्त गुण का एकरूप ऐसा प्रभु आत्मा, उसके सन्मुख होकर एकाग्र होना, वह उसकी भक्ति है। गुप्त तत्त्व सिद्धान्त ऐसा कहा न! रहस्य। सिद्धान्त तत्त्व का रहस्य यह है। आहाहा!

स्वयं महाप्रभु पूर्ण, पूर्ण शक्ति और आनन्द के रहस्य से भरपूर पदार्थ। आहाहा! ऐसे क्षेत्र देखो तो छोटा, परन्तु जिसकी शक्ति देखो तो अमाप स्वभाव का (पिण्ड)। ऐसा जो स्वभाव स्वरूप उसका, उसकी ओर की भक्ति अर्थात् कि उसका बहुमान अर्थात् कि वैसे स्वभाव-सन्मुख की समीपता वह जिनभक्ति है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे फणिराज (धरणेन्द्र) है सो फण जो सहस्त्र फण उसमें लगे हुए मणियों के बीच जो लाल-माणिक्य उनकी किरणों से विस्फुरित (दैदीप्यमान) शोभा पाता है,... लाल मणि होती है न। आहाहा! **वैसे ही जिनभक्तिसहित...** वीतरागस्वरूप आत्मा का 'जिन सो ही आत्मा...' जिनभक्तिसहित... 'अप्पा सो परम अप्पा' आत्मा, वह परमात्मा है, भगवानस्वरूप है, वीतरागमूर्ति है। चारित्रमूर्ति कहो, वीतरागमूर्ति कहो, अकषायस्वभावस्वरूप कहो। यहाँ तो कषायरहित भाव अकषायस्वभाव की एकाग्रता, उसे सम्यग्दर्शन की शोभा है, कहते हैं। उसके कारण वह सब शोभता है। आहाहा!

निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक जीव प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है। ऐसा लिया यहाँ। प्रवचन है न, उसका अर्थ ऐसा किया। **मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है।** इसलिए ऐसा जीव मोक्षमार्ग की प्ररूपणा और सत्य यह ही कह सके। जिसे आत्मा का बहुमान, वीतरागस्वरूपी प्रभु, वह जैनदर्शन, वह आत्मा। आहाहा! उसका जिसे बहुमान आकर सम्यग्दर्शन हुआ है, वही मोक्षमार्ग की प्ररूपणा में शोभता है, कहते हैं। आहाहा! **मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है।** आहाहा! एक तो यह कहा कि रहस्य है वह, परन्तु दूसरी बात कि वह मोक्षमार्ग जो राग से भिन्न ऐसा स्वरूप चैतन्य का, उसकी जिसे दृष्टि हुई, अनुभव हुआ, वह जीव वास्तविक

रागरहित मोक्षमार्ग को कह सकने के योग्य वह है। आहाहा! समझ में आया? गाथा बहुत अच्छी आ गयी है। सभी गाथायें ऊँची हैं सब। उसमें तो लिखा है न एक जगह कि पूरे पाहुड़ में सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। ऐसा लिखा है। है वहाँ इस गाथा का अर्थ।

मुमुक्षु : सब शास्त्र का यह सार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह सार। वहाँ डाला है। इस गाथा के बाद। अष्टपाहुड़ का यह सब सार है। इस ओर है। समकित ही सार है। उसकी प्रधानता का ही वर्णन पूरे शास्त्र में है, ऐसा है। आहाहा! यह थोड़ा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि बाह्य व्रत और तप चाहे जितने हों, परन्तु जिसमें सम्यग्दर्शन नहीं, वह शोभा को नहीं पाता। आहाहा! क्योंकि पूरा भगवान पूर्ण स्वरूप प्रभु, उसकी जिसे भक्ति अर्थात् अन्तर एकाग्रता अर्थात् कि स्वभाव-सन्मुख हुआ, उसकी सब शोभा है। आहाहा! और उसे छोड़कर यह सब बाह्य व्रत और तप सब करते हैं, वे सब बालव्रत और मूर्खता से भरपूर तप है सब।

मुमुक्षु : सब सम्यग्दर्शन पाने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। उससे पाया जाता होगा? आहाहा! यह लिखा है। यह सब करते हैं, वह निश्चयचारित्र पाने के लिये यह व्यवहार है। अरे! धूल भी नहीं। राग के कारण वीतरागता पायी जाती होगी? यहाँ तो वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसके कारण वीतरागता प्रगट होती है। राग की मन्दता और व्रत के कारण से यह बाह्य व्रत पालते हैं तो निश्चयचारित्र होगा। बिल्कुल मिथ्या शल्य है। भगवान वीतरागस्वरूपी आत्मा का उसे मान नहीं आया और यहाँ राग की मन्दता से यह होगा, ऐसा मान वहाँ आया। विपरीत दृष्टि है।

जिनभक्ति... यहाँ तो अभी मस्तिष्क में यह अधिक उठता है। वीतरागस्वरूप प्रभु, ऐसा जो परमात्मा अपना भगवान, उसकी जिसे भक्ति हुई है, उसकी जिसे सन्मुखता हुई है, आहाहा! कहते हैं कि उन सबमें वह शोभता है। बाकी जिनस्वभाव से विमुख होकर जितने व्रत, तप, भक्ति और पूजा करे, वह सब निरर्थक है। भाव है न

भावपाहुड़। अर्थात् वीतरागभाव की पर्याय प्रगट हो, वह वीतरागभाव के आश्रय से प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह वीतराग पर्याय है। वह आया था अपने अकर्म पर्याय। सम्यग्दर्शन वह... राग चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधने का हो, भगवान की भक्ति का राग हो, परन्तु वह कर्मजाति है, वह आत्मजाति नहीं।

अन्दर चैतन्य अनन्त गुण से, जैसे उन हजार फण में एक-एक फण में मणि और बिचले में ऐसे लाल माणेक, वह शोभता है; उसी प्रकार अनन्त गुण के पिण्ड में प्रभु एकाकार होने से जो सम्यग्दर्शन होता है वीतरागी पर्याय, वह शोभती है। आहाहा! आचार्यों का हृदय उल्लसित हो गया है। तेरा स्वभाव, स्व-भाव आत्मा का स्वभाव त्रिकाल स्वभाव तो वीतरागस्वभाव है। चारित्रगुण है न त्रिकाल? अर्थात् कि वीतरागस्वभाव। आहाहा! उसका जिसे समीपपना आया, उसके सन्मुख हुआ, उसने उसकी भक्ति की। उसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा!

वैसे ही जिनभक्तिसहित निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक जीव प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है। यहाँ ऐसा लिया। क्योंकि वह वास्तविक अनुभव में आत्मा की प्रतीति वीतरागभाव की हुई है और वह वीतराग धर्म है। वही वीतरागता को यथार्थ कह सकेगा, कहते हैं। वरना कहीं गड़बड़ करेगा। कुछ व्यवहार से लाभ होता है और राग से लाभ होता है और निमित्त से लाभ होता है, ऐसी गड़बड़ करेगा, ऐसा कहते हैं मूल, भाई! कहने का आशय यह है यहाँ। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा अकषाय वीतरागस्वरूपी प्रभु दृष्टि में बैठा है, वह वास्तविक वीतरागता का वर्णन कर सकेगा। दूसरा कहीं भी लप डाल देगा कुछ भी। राग से—व्यवहार करने से ऐसा होता है और निमित्त को सेवन करने से ऐसा होता है, विकल्प से ऐसा होता है, फलाने से ऐसा होता है, राग मन्दता करते-करते शुद्धि बढ़ जाती है। आहाहा!

'**तह विमलदंसणधरो**' ऐसा है न तीसरा पद। '**जिणभत्ती पवयणे जीवो**' यह जिनभक्ति अर्थात् वीतरागता की दशा का वर्णन वही कर सकेगा। आहाहा! जिसे वीतरागभाव बैठा है अन्दर। दूसरे तो राग के प्रेम में राग के रसिक, राग से लाभ होगा, व्यवहार करते-करते लाभ होगा, गुरु की कृपा मिलेगी तो लाभ होगा, ऐसे पर की ओर के झुकाववाली वृत्ति अज्ञानी की है, कहते हैं। आहाहा! वह प्रवचन शब्द इसलिए फिर

उसे कथन में डाला यहाँ। उसमें डाला गोप में। विकल्प से गोपित हो गया है, पृथक् पड़कर अन्दर पड़ा है, ऐसा। यह सिद्धान्त का तत्त्व है। यही ऐसा कि प्रवचन सिद्धान्त वीतरागभाव का कथन वह कर सकेगा। वीतरागभाव से लाभ होगा, रागभाव से नहीं होगा। आहाहा! निमित्त से आत्मा में कार्य नहीं होता। क्योंकि निमित्त से हो, वह तो राग से हुआ, व्यवहार करते-करते निश्चय होता है, वह तो राग से हुआ। ओहोहो! माणेकरत्न जैसे शोभता है। यहाँ नहीं? वे पार्श्वनाथ भगवान हैं न, वहाँ है न। यहाँ है। फण है न। वहाँ रखा है। भावनगर के हैं, भावनगर का फोटो है।

भावार्थ :- सम्यक्त्वसहित जीव की जिन-प्रवचन में बड़ी अधिकता है। लो! सम्यक्त्वसहित जीव की वीतराग प्रवचन में बड़ी अधिकता है। आहाहा! **जहाँ-तहाँ (सब जगह) शास्त्रों में समकित की ही प्रधानता कही है।** लो! उसमें है यह आया? उसमें... उसमें। उसमें नहीं निकला? वह कहीं है। इसके पहले १४२ में आया। 'इस षट्प्राभृत ग्रन्थ में प्रारम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त समकित की ही प्रशंसा की गयी है। यह सब गाथा का तात्पर्य है।' १४२। १४२ गाथा में आ गया पहले। १४२ है न उसमें? '**तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं। अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविह**' आ गया यह १४४ में अपने। १४४। दो का अन्तर है। १४४ में यह आ गया कि इसमें पहले से यह ठेठ तक षट्प्राभृत में समकित का ही माहात्म्य कहा है। यह आया था, पढ़ा था।

★ ★ ★

गाथा - १४६

आगे सम्यग्दर्शनसहित लिंग है, उसकी महिमा कहते हैं :— अब लो! कहते हैं कि जिनलिंग नग्न दिगम्बर और अट्ठाईस मूलगुण, वह लिंग सम्यग्दर्शन हो तो ही शोभता है। वरना व्यर्थ है। आहाहा!

जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले।
भाविय तववयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥१४६॥

'**जिणलिंगं दंसणविसुद्धं**' नीचे से लिखा है यहाँ। '**जिणलिंगं दंसणेण सुविसुद्धं**' ऐसा। नीचे है। आहाहा!

मुमुक्षु : ठीक जँचता है, ऐसा स्वयं लिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा लिखते हैं। वरना यतिभंग होता है, ऐसा लिखा है। होंगे कुछ नियम इनके यतिभंग के। अपने को कहाँ आता है। साहित्य के वह लिखने के क्या कहलाते हैं वे?

अर्थ :- जैसे निर्मल आकाशमण्डल में... निर्मल आकाशमण्डल **ताराओं के समूहसहित चन्द्रमा का बिम्ब शोभा पाता है,...** आहाहा! ६६९७५ क्रोड़ाक्रोड़ी तारे हैं, इतने तारे हैं। ६६९७५ क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। इतनी तारों की संख्या आकाश में है। उन तारों में एक चन्द्रमा का बिम्ब शोभता है। **वैसे जिनशासन में...** वीतरागमार्ग में। आहाहा! **दर्शन से विशुद्ध...** सम्यग्दर्शन अनुभवसहित **भावित किये हुए तप तथा व्रतों से निर्मल जिनलिंग है, सो शोभा पाता है।** सम्यग्दर्शनसहित जिसने व्रत और तप को भाया है, उसकी शोभा है। आहाहा! यह बात पूरी पड़ी रही। बाहर के व्रत, तप, आचरण और रूढ़ि रह गये। सर्प गया और लकीर रह गयी, कहते हैं न। समझते हो? सर्प नहीं कहते सर्प? सर्प गये और ढसरडा अर्थात् तुम्हारे कुछ भाषा होगी हिन्दी।

मुमुक्षु : साँप चला गया, लकीर रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लकीर, बस यह। साँप चले गये और लकीर पड़ी रही। लीसोटा। साँप निकले न तो धूल हो न बहुत धूल? साँप तो चला गया, लकीर रह गयी। आहाहा! इसी प्रकार पूरा वीतरागभाव... सम्यग्दर्शन एक वीतरागभाव है, सम्यग्ज्ञान एक वीतरागभाव है, सम्यक्चारित्र भी वीतरागभाव है। इस वीतरागभाव में सम्यग्दर्शनसहित जो यह व्रत और तप हों, भाये हुए अन्दर यथार्थरूप से, (तो) जिनलिंग शोभता है। तो जिनलिंग शोभता है। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं। लो!

भावार्थ :- जिनलिंग अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनिभेष यद्यपि तप-व्रतसहित निर्मल है, तो भी सम्यग्दर्शन के बिना शोभा नहीं पाता है। आहाहा! वीतरागस्वभावी आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर में सम्यक् एकान्त दृष्टि, सम्यक् एकान्त उस ओर का, उसके बिना जिनलिंग शोभे नहीं। यह हो तो जिनलिंग शोभे। आहाहा!

जिनलिंग अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनिभेष यद्यपि तप-व्रतसहित निर्मल है, तो भी सम्यग्दर्शन के बिना शोभा नहीं पाता है। आहाहा! कहते हैं कि भले व्रत और तप सब निरतिचार पालते हों। परन्तु सम्यग्दर्शन बिना एकड़ा रहित शून्य है। आहाहा! जहाँ सुख का पंथ हाथ नहीं आया, वहाँ सब थोथा है, कहते हैं। आहाहा! सुख का सागर आत्मा आनन्द की मूर्ति आत्मा अर्थात् कि जिनस्वरूपी वीतरागी आनन्दमूर्ति प्रभु, उसकी जिसे समीपता से प्रतीति, अनुभव सम्यक् नहीं (हुए), उसके व्रत और तप की शोभा कहीं नहीं है। आहाहा! अभी तो ऐसी गड़बड़ करते हैं सब। देशसेवा करे वह धर्म, भगवान की सेवा करे वह धर्म।

मुमुक्षु : .... साँप की लकीर ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग बात है। वह तो दस प्रकार का धर्म तो उस जाति की योग्यता का कर्तव्य, इतनी बात है वहाँ। ठाणंग में दसवें ठाणे में है। खबर है न। वह जवाहरलालजी निकालते थे उसमें से सब। राष्ट्रधर्म। ऐसा आता है। परन्तु राष्ट्रधर्म में देश की उस जाति की योग्यता का कर्तव्य इतना। वह मूल धर्म, उस धर्म की बात नहीं वहाँ। देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म, ऐसे सब धर्म के दस ठाणांग में दसवें ठाणे में है। उस समय आते थे न सब बाहर के लोगों में कथन। यहाँ लिखा, वह तो एक प्रकार का उस-उस देश का एक कर्तव्य उसकी योग्यता को, बस इतना। वह धर्म नहीं। उसके साथ सूत्रधर्म, चारित्रधर्म भी इकट्ठा डाला है। आहाहा! भावश्रुतज्ञान, वह धर्म; भाव स्थिरता अन्दर में, वह धर्म। वह वास्तविक धर्म। बाकी वे तो कहें भाई! पुत्रों का कर्तव्य है कि माँ-बाप की सेवा करना। उसका अर्थ क्या? वह धर्म है? आहाहा! वह तो शुभराग है। परन्तु वह लौकिक नीति का उस जाति का कर्तव्य है, उसे धर्म कहते हैं। वास्तविक धर्म की बात कोई है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, मुनि वेश धारण किया, व्रत-तप आदि धारण किये हों, परन्तु जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन नहीं, वह कहीं शोभा को प्राप्त नहीं होते। और वह सब हो तो सम्यग्दर्शन और शोभा को प्राप्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भावार्थ है न!

जिनलिंग अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनिभेष... वह भी दिगम्बर मुनि वेश, हों! यह वस्त्रवाले

वेश तो द्रव्यलिंग भी नहीं। आहाहा! यहाँ तो वीतरागमार्ग की बात है, भाई! वीतराग मार्ग में द्रव्यलिंग, वह तो नग्नपना होता है और अन्दर पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं, वे पुण्य के, वह पुण्य है, बाह्य लिंग है। और उसे जो सच्चे व्रत और तप अन्दर हों, परन्तु यह सम्यग्दर्शन हो तो वह शोभा को प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। जिसे सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, वह क्या चीज़ है? कैसे प्राप्त होता है? ऐसे जीव को यह व्रत और तप, वह सब रण में शोर मचाने जैसे हैं। आहाहा! यह साधुपना नग्न होकर हजारों रानियों को छोड़कर बैठे, परन्तु अन्तर सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसका पता नहीं, वह सब अज्ञानियों का वेश शोभा को प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसके होने पर ही अत्यन्त शोभायमान होता है। लो! आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ प्रभु परमात्मा है... आहाहा! उस परमात्मा का जहाँ भान हुआ (कि) मैं तो परमात्मा हूँ। आहाहा! वस्तु से आत्मा परमात्मा है। आहाहा! परमात्मा न हो तो परमात्मा की पर्याय प्रगट कहाँ से होगी? बाहर से आती है कहीं? आहाहा! परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा। परमस्वरूप कहो, परमात्मस्वरूप कहो, परमपारिणामिकस्वरूप कहो। विश्वधर्म की व्याख्या दूसरी की। उन्होंने पूछा होगा विद्यानन्दजी से। विश्वधर्म अर्थात्? विश्वधर्म अर्थात् पारिणामिकभाव, वह विश्व धर्म इसलिए कहता हूँ। कहो, ऐसा कहा रात्रि में।

मुमुक्षु : चेतन महाराज को?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चेतनजी को। वहाँ। वहाँ न? मनसुर बाहर दो कोस। हम गाँव में थे मनसुर में। वह बाहर। पारिणामिकभाव वह विश्वधर्म। कहो, ठीक, मैंने कहा यह लगाया। वह कल कहते थे। आहाहा!

परमपारिणामिकस्वभाव ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, वीतरागभाव, अकलंकभाव, निर्दोष स्वभाव से भरपूर परमात्मा स्वयं, ऐसा परमात्मा के सन्मुख की अनुभव की प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। उस बिना का सब थोथा थोथा है। यह व्रत करे और सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण सब बिना एक के शून्य हैं। यह शून्य कहीं बिना एक के संख्या में आते नहीं। बिन्दी। एक बिना बिन्दी। आहाहा! यह कल कहा था। मैंने कहा, गजब लगाया। वह मानो कि यह इस प्रकार का व्यक्ति है, ऐसा। आहाहा! जैनधर्म अर्थात्

क्या ? वीतरागस्वभाव, जैनधर्म अर्थात् वीतरागभाव। जय हो वीतरागभाव की... जैनधर्म। आहाहा! **अत्यन्त शोभायमान होता है।**

★ ★ ★

गाथा - १४७

१४७। **आगे कहते हैं कि ऐसा जानकर दर्शनरत्न को धारण करो,...** ऐसा, मिथ्यात्व के दोष और समकित के गुण को जानकर। यह छहढाला में आया न? जानकर यह करना, ऐसा कहते हैं अब।

इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स॥१४७॥

आहाहा! लाख उपाय करके, करोड़ उपाय करके भी भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसका अन्तर स्वीकार कर। इसका नाम समकित है। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा वह समकित है और नव तत्त्व की श्रद्धा, (वह समकित), यह सब बातें थोथा है। भगवान स्वयं देवस्वरूप परमात्मा है, उसे '**दंसणरयणं धरेह**' उसके समकित को प्रगट कर। आहाहा! दूसरी बात बाद में। जहाँ अभी सम्यग्दर्शन का भी ठिकाना नहीं, उसे व्रत, तप और संयम आये कहाँ से? अज्ञानी ने मनवा लिये। बाहर के वेश बदले, हो गये साधु और चारित्र।

यहाँ तो परमात्मा अरिहन्तदेव तीर्थंकर परमात्मा के हुकम में ऐसा आया कि **हे मुने! तू इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण...** आहाहा! **और मिथ्यात्व के दोषों को जानकर...** विपरीत मान्यता में महा संसार है। भले व्रत पालता हो, इन्द्रिय दमन करता हो, परन्तु वह राग की क्रिया है, उसे वह धर्म मानता है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म। लोगों को, जगत को सुनने को मिला नहीं। बाहर का यह करो और यह करो, व्रत पालो और अपवास करो और तपस्या करो। और वे मन्दिरमार्गी ऐसा कहे कि मन्दिर बनाओ और यात्रा करो। सब एक की एक जाति राग की क्रिया है सब। आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ वीतरागमूर्ति

प्रभु, आहाहा! उसका समकित धारण कर। आहाहा! उसकी सच्ची श्रद्धा और अनुभव कर। आहाहा!

सम्यक्त्वरूपी रत्न को भावपूर्वक धारण कर। आहाहा! ऐसा कि धारणा में नहीं, परन्तु भावपूर्वक अन्दर अनुभव करके। आहाहा! धारणाा में ऐसा आवे कि यह आत्मा ऐसा है और वैसा है विकल्प से, ऐसा नहीं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के वचन केवली के वचनों की तुलना में आते हैं। आहाहा! **भावपूर्वक धारण कर।** कहते हैं कि स्वभाव जो आत्मा का परमानन्द और पूर्ण स्वरूप प्रभु, उसे अन्तर वीतरागपर्याय से धारण कर समकित को। ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकल्प से नहीं, मन से नहीं, राग से नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात जगत को। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है तुम्हारे, जाओ समकित। अब व्रत और तप—चारित्र पालन करो। आहाहा!

यहाँ वीतराग परमेश्वर... धीर होकर, धीर पुरुष होकर जरा अन्दर... आहाहा! तेरी बुद्धि को वीतरागभाव की ओर मोड़। वीतरागभाव अर्थात् आत्मा। आहाहा! धी कहा था न, धी। धीर-धीर। धी अर्थात् बुद्धि। उसे ध्येय, ध्यानस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है, उसके प्रति धी अर्थात् बुद्धि, र अर्थात् प्रेर, वहाँ मोड़, तब तुझे समकित होगा। आहाहा! पहला तो अभी क्या कहते हैं, यह पकड़ना कठिन पड़े। आहाहा! यह तो वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी का कथन है। यह कथन सन्त कह रहे हैं। आहाहा!

कहते हैं कि **सम्यक्त्वरूपी रत्न को...** रत्न है यह। इस रत्न की कीमत में तुझे मोक्ष मिलेगा। आहाहा! तीन रत्न कहे हैं न, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन रत्न—त्रिरत्न। आहाहा! अन्दर चैतन्यरत्न है पूर्णानन्द का नाथ, उसकी प्रतीति सन्मुख होकर अनुभव, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! चैतन्य हीरा जिसमें अनन्त पासा, गुण के अनन्त निर्मल पासा पड़े हैं। आहाहा! ऐसे आत्मा में सम्यक्रूपी रत्न को धारण कर। आहाहा! जैसा उसका स्वरूप है, वैसी अन्दर ज्ञान में प्रतीति कर। आहाहा! ज्ञान करके प्रतीति कर, ऐसा। जान करके प्रतीति कर। आहाहा!

यह गुणरूपी रत्नों में सार है... वह आत्मा के अनन्त गुणरूपी रत्न में सम्यग्दर्शन

सार है। **और मोक्षरूपी मन्दिर का प्रथम सोपान है।** मोक्षरूपी मन्दिर का पहली सीढ़ी—सोपान है। आहाहा! **अर्थात् चढ़ने के लिये पहिली सीढ़ी है।** सम्यग्दर्शन तो अभी मोक्षरूपी महल में चढ़ने का पहला सोपान है। आहाहा! पूर्ण वीतरागमूर्ति प्रभु ऐसे आत्मा की जिसे अन्तर सन्मुख होकर, निमित्त, राग और एक समय की पर्याय से विमुख होकर, पूर्ण के सन्मुख होकर... आहाहा! जिसने रत्न धारण किया, वह सार है, वह पहली सीढ़ी है। आहाहा! मोक्ष की पहली सीढ़ी। वह मोक्ष महल में जाने का पहला सोपान। पश्चात् चारित्र और पश्चात् शुक्लध्यान और पश्चात् केवलज्ञान। आहाहा!

भावार्थ :- जितने भी व्यवहार मोक्षमार्ग के अंग हैं,... ऐसा लिखा। **(गृहस्थ के दान-पूजादिक और मुनि के महाव्रत शीलसंयमादिक) उन सबमें सार सम्यग्दर्शन है,...** आहाहा! यह सब दान-शील आदि में सम्यग्दर्शन न हो तो यह थोथा-थोथा है उसका।

मुमुक्षु : वह व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार राग से पुण्य बाँधे। दान, शील, तप और भाव से पुण्य बाँधे, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : धर्म के चार प्रकार कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धर्म के कहे हैं तुम्हारे। व्यवहार। डाला है न इसने उसमें। यह २५०० वर्ष का विरोध करते हैं न। यह डालते हैं रामविजय। भगवान ने धर्म के चार प्रकार कहे हैं। दान, शील, तप, भावना। वह तो तुम करते नहीं और यह सब... करते हो, ऐसा कहता है। भगवान ने दान, शील, तप, भाव, यह शुभभाव कहा, उसे भगवान ने धर्म कहा ही नहीं। आहाहा! दान तो आत्मा के स्वरूप का दान देना, अन्तर आनन्द का नाथ, उसे जगाकर आत्मा की पर्याय प्रगट करके सम्प्रदान... छह कारक है न? छह कारक नहीं? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। अन्तर आनन्द का नाथ, उसे जगाकर उसे ढूँढकर अन्दर एकाग्र होना। आहाहा! उसमें से निर्मलता की पर्याय प्रगट करे और स्वयं रखे, उसका नाम दान है। बाकी पैसा-बैसा यह धूल के दान, उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह करोड़ों रुपये खर्च

करे और करोड़ों मन्दिर बनावे, राग की मन्दता हो तो मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधे। मिथ्यात्वसहित। आहाहा!

मुमुक्षु : आप मिथ्यात्व को प्रत्येक समय आगे रखते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब वे कहते थे, पुण्य बाँधे अर्थात् कुछ अच्छा करता है, ऐसा हो जाये उसे। ऐई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **(गृहस्थ के दान-पूजादिक और मुनि के महाव्रत शीलसंयमादिक) उन सबमें सार सम्यग्दर्शन है, इससे सब सफल हैं,...** जो सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव। आहाहा! जैसा उसका पवित्र स्वरूप है, वैसा ही पवित्रता का (स्वरूप) प्रतीति में लेकर जिसने पवित्रता पर्याय में प्रगट की है, वह सार है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का यह मार्ग है। उसे लोगों ने राग की क्रिया में समाहित कर दिया है। उसने अन्यमार्ग को जैनमार्ग माना। आहाहा! **इसलिए मिथ्यात्व को छोड़कर...** राग की एकताबुद्धि और राग के माहात्म्य को छोड़कर। आहाहा! शुभराग—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, उस राग का माहात्म्य छोड़कर। उसका (राग का) माहात्म्य करे, वह मिथ्यात्व है। **मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यग्दर्शन अंगीकार करो, यह प्रधान उपदेश है।** लो! सन्तों का यह उपदेश मुख्य है।

★ ★ ★

गाथा - १४८

आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन किसको होता है? किसे होता है? **जो जीव जीवपदार्थ के स्वरूप को जानकर...** जीव के स्वरूप को बराबर जानकर **उसकी भावना करे, इसका श्रद्धान करके अपने को जीवपदार्थ जानकर...** देखा! आहाहा! **जो जीव जीवपदार्थ के स्वरूप को जानकर...** जीव के स्वरूप को जानकर **इसकी भावना करे,...** अन्दर एकाग्रता करे। **इसका श्रद्धान करके अपने को जीवपदार्थ जानकर...** मैं तो परमात्मा जीवस्वरूप हूँ। जीवती जागती ज्योति चैतन्य हूँ। आहाहा! मुझमें यह पुण्य और पाप के विकल्प है नहीं। **जीवपदार्थ जानकर अनुभव द्वारा प्रतीति**

करे... भाषा देखो! ऐसी श्रद्धा करे, ऐसा भी नहीं, कहते हैं। यह वस्तु का स्वरूप है, उसे अनुसरकर दशा करे, साक्षात् आनन्द का वेदन आवे, उसे प्रतीति हो, उसे समकित कहते हैं। आहाहा!

अनुभव द्वारा प्रतीति करे... आहाहा! इस आत्मा के आनन्द के वेदन द्वारा प्रतीति करे कि यह आत्मा। पण्डितजी! जो स्वरूप जैसा है, वह सर्वज्ञ ने कहा वह, हों! अज्ञानी कहें, ऐसा नहीं। अज्ञानी तो कुछ आत्मा की बातें करते हैं अभी। परन्तु परमात्मा वीतराग तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ ने जो आत्मा का स्वरूप कहा, ऐसा है, ऐसे आत्मस्वरूप को जानकर, उसकी भावना करके एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन प्रगट करे। आहाहा! वह **अनुभव द्वारा प्रतीति करे उसके होता है।** लो! आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे तो सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह द्रव्य समकित आरोपित कर साधुपना देते हैं न तुम्हारे श्वेताम्बर में। अरे! प्रभु! यह क्या?

मुमुक्षु : साधु का वेश कहना है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधु ऐसा सब। फिर उसके अहंकार में चढ़ जाये। हम व्रतधारी हैं और हम तपस्वी हैं। आहाहा! मूल एकड़ा रह गया अन्दर।

इसलिए अब यह जीव पदार्थ कैसा है, उसका स्वरूप कहते हैं :— ऐसा कहते हैं। सन्धि की।

कत्ता भोइ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य।
दंसणणाणुवओगो णिद्दिट्ठो जिणवरिन्देहिं॥१४८॥

कुन्दकुन्दाचार्य को भी आश्रय लेना पड़ता है। '**जिणवरिन्देहिं**' ऐसा कहा है। जिनवर भगवान ने ऐसा कहा है, ऐसा। स्वयं कहते हैं वह जिनवर ही कहते हैं।

अर्थ :- '**जीव**' **नामक पदार्थ है, सो कैसा है—कर्ता है, भोक्ता है,...** प्रत्येक की व्याख्या करेंगे। **अमूर्तिक है, शरीरप्रमाण है,...** व्यापक नहीं। वेदान्त कहता है न यह सर्वत्र व्यापक है, ऐसा नहीं। शरीरप्रमाण आत्मा अन्दर भिन्न है। आहाहा! यह मिट्टी है, उसके अन्दर भिन्न चैतन्य प्रभु आत्मा अमूर्तिक—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शरहित और आनन्दगुण सहितवाला। वह शरीरप्रमाण उसका अवगाहन है। इसलिए शरीरप्रमाण

डालना पड़ा है। **अनादिनिधन है...** अनादि-अनन्त है वह तो। भगवान आत्मा अनादि—जिसकी आदि नहीं, अन्त नहीं, नाश नहीं। वह त्रिकाली तत्त्व है। आहाहा! **दर्शन-ज्ञान उपयोगवाला है,...** जिसका स्वभाव ही दर्शन और ज्ञान उपयोग है। उसके भेद करेंगे। **इस प्रकार जिनवरेन्द्र...** जिनवर इन्द्र—जिनवरेन्द्र **सर्वज्ञदेव वीतराग ने कहा है।** ऐसा जिनवरदेव परमात्मा ने गणधर और इन्द्रों के समक्ष में भगवान ने ऐसा कहा है।

भावार्थ :- यहाँ 'जीव' नामक पदार्थ के छह विशेषण कहे। इनका आशय ऐसा है—१. 'कर्ता' कहा, वह निश्चयनय से तो अपने अशुद्धभावों का अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है... क्या कहा? अशुद्ध निश्चयनय से पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव को अज्ञान अवस्था में आप भी कर्ता है, अज्ञान में उसका कर्ता है। आहाहा! **निश्चयनय से...** अर्थात् स्व की अपेक्षा से लें तो **अपने अशुद्धभावों का...** यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव, वे सब अशुद्धभाव। वह **अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है...** जिसे, आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, ऐसा भासित नहीं हुआ—ऐसा अज्ञानी उन राग-द्वेष का कर्ता है। समझ में आया?

व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मों का कर्ता है... कर्ता नहीं परन्तु पुद्गल कर्म होते हैं, उसमें अशुद्धभाव का निमित्तपना है, इतना गिनकर उसे व्यवहार से कर्ता कहते हैं। **शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है।** लो! आहाहा! सम्यग्ज्ञान की दृष्टि से देखें, शुद्ध निश्चय से देखें तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ वह पवित्र, पवित्र परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति वीतरागता के परिणाम का कर्ता है। आहाहा! **शुद्धनय (शुद्धनिश्चयनय) से अपने शुद्धभावों का...** अर्थात् वीतरागी पर्याय। रागरहित वीतरागी दशा का वह कर्ता है। यह परमार्थ है। इत्यादि आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १०, शनिवार, दिनांक १५-०६-१९७४
गाथा - १४८, प्रवचन-१७४

१४८ गाथा में जीव के विशेषण वर्णन करते हैं। जैसा जीव का स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वैसा जगत में सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरों ने देखा नहीं, जाना नहीं। इससे जीव का स्वरूप कैसा हो, व्यवहार और निश्चय से, दोनों प्रकार से सर्वज्ञ ने कहा, उस प्रकार से उसे जानना चाहिए। कर्ता। एक बोल आया था कल।

१. 'कर्ता' वह निश्चयनय से तो अपने अशुद्ध भावों का अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है... निश्चय से वास्तविक दृष्टि से... पर्याय की दृष्टि से कहा, वह अज्ञान अवस्था में, अज्ञान और राग-द्वेष का कर्ता आत्मा है। कर्म कर्ता नहीं। इसके अशुद्धभाव का कर्म कर्ता नहीं। और अशुद्धभाव है न इसमें? यदि अशुद्ध भाव न हो तो परम आनन्द होना चाहिए। परम आनन्द का अभाव है तो वहाँ अशुद्धता है। मिथ्या भ्रान्ति, राग और द्वेष का भाव, वह अशुद्ध है। उस अशुद्ध का परिणमन करनेवाला अज्ञानी आत्मा स्वयं है, ऐसा इसे जानना चाहिए।

तथा व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मों का कर्ता है... यह दूसरी चीज़ है, ऐसा कहते हैं। जब आत्मा राग और द्वेष तथा मिथ्यात्व... सर्वज्ञ के मार्ग के अतिरिक्त दूसरे मार्ग की मान्यता करे, तब उसे मिथ्यात्वभाव होता है। और उस मिथ्यात्वभाव का निमित्त और नये कर्म बँधें, उसमें वह कर्मबन्धन में वह मिथ्यात्वभाव निमित्त है। इससे कर्मबन्धन का करनेवाला व्यवहार से कहने में आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें हेतु क्या सिद्ध हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हेतु सिद्ध हुआ न कि अशुद्धता अपने से होती है और अशुद्धता का निमित्त है, जहाँ ऐसा वह कर्म बँधता है, उसे व्यवहार से ऐसा सिद्ध किया। उसके आत्मा की चीज़ ऐसी है, ऐसा कहते हैं। जीव का पूरा स्वरूप कहेंगे, तब जीव का जैसा स्वरूप है... ऊपर कहा कि **सम्यग्दर्शन किसको होता है?** ऊपर कहा

१४७ में। **जो जीव, जीवपदार्थ के स्वरूप को जानकर...** जैसा उसका स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा तीर्थंकरदेव ने (कहा), वैसा जानकर **इसकी भावना करे,...** चैतन्य आनन्दमय, ज्ञान-दर्शन-आनन्दमय है। अशुद्धता पर्याय में है। ऐसा उसका स्वभाव जानकर भावना करे। **इसका श्रद्धान करके, अपने को जीवपदार्थ जानकर अनुभव द्वारा प्रतीति करे...** आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्य, ऐसा अनुभव करके प्रतीति करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! यह तो अभी पहली भूमिका की बात है। यह कर्ता।

और शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है। लो, दूसरा बोल आया। अपना पवित्र स्वरूप, आनन्दस्वरूप शुद्ध की दृष्टि होने से वह स्वयं शुद्ध की दशा का कर्ता है। आनन्द और वीतरागी पर्याय का परिणमन करनेवाला कर्ता वह आत्मा है। उस शुद्ध परिणमन का कर्ता दूसरी कोई चीज़ सहायता करे तो हो, ऐसी वह चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग तीर्थंकरदेव ने जो सर्वज्ञ ज्ञान में अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, उसके अनन्त गुण, पर्यायें देखी हैं, उनकी वाणी में ऐसा आया, ऐसा स्वरूप उन्होंने वर्णन किया। ऐसा उसे जानकर वास्तविक आत्मा का अनुभव करे तो उसे सम्यग्दर्शन होता है, धर्म की प्रथम दशा होती है, ऐसा कहते हैं।

शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का... देखो! उसमें ऐसा कहा था। **अपने अशुद्धभावों...** वहाँ ऐसा कहा था। दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव, वे अपनी पर्याय के अशुद्धभाव के भाव हैं। यदि अशुद्धभाव न हो तो उसे टालने का रहता नहीं। इसलिए अशुद्धभाव करता है अज्ञानी स्वयं से और उसका निमित्त पाकर कर्म हो, उस कर्म का व्यवहार से कर्ता उपचार से कहा जाता है। वास्तविक उसका कर्ता आत्मा नहीं है। शुद्धनय से भगवान आत्मा चैतन्य आनन्ददल, सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, ऐसी दृष्टि होने से उस शुद्धनय की दृष्टि से निर्मल पर्याय का कर्ता वह है। सम्यग्दृष्टि राग का कर्ता नहीं। आहाहा! यह तो दोपहर में आता है न! चैतन्यस्वरूप अपना शुद्ध, उसका वह कर्ता पर्याय का है। आहाहा! ऐसा इसे जानना चाहिए।

२. 'भोक्ता' कहा, वह निश्चयनय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतनभाव का भोक्ता है... आहाहा! आत्मा वास्तविक दृष्टि करके देखे तो आत्मा अपने आनन्द और

शान्ति का भोगनेवाला है, पर्याय में। **निश्चयनय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी...** देखो! इसमें अपने कहा, उसमें भी अपने कहा। अपना जो ज्ञान-दर्शन स्वभाव है, जानन-दर्शन स्वभाव है, उसका वह भोक्ता-अनुभव करनेवाला है। शुद्ध निश्चय में राग का भी भोक्ता नहीं और पर का भोक्ता तो अज्ञानी भी नहीं। आहाहा!

व्यवहारनय से पुद्गलकर्म के फल जो सुख-दुःख आदि का भोक्ता है। अर्थात् पूर्व के पुण्य-पाप के कारण से संयोग अनुकूल-प्रतिकूल हों, उनके समय जो राग-द्वेष को भोगता है, उसमें वह उनका निमित्तपना है, इसलिए उन्हें व्यवहार से भोक्ता कहा जाता है। अर्थात् (भोक्ता) नहीं, उसे कहना निमित्तरूप से, उसका नाम व्यवहार। आहाहा! शरीर, दाल, भात, रोटी का भोक्ता आत्मा नहीं। वह तो जड़ है। आहाहा! जड़ है, रूपी है, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाली चीज़ है। आत्मा अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श है। वह आत्मा जड़ को भोगता है और वेदन करता है, ऐसा हो सकता नहीं। परन्तु विकार को जब भोगता है, तब निमित्त कर्म के फल संयोग हैं, इसलिए उन्हें व्यवहार से भोगता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा सब कहाँ समझना? निवृत्ति नहीं मिलती एक तो पाप के कारण। संसार का धन्धा-पानी। आहाहा! उसमें और...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... होना होगा वह हुआ ही करता है। आहाहा! जो रजकण इसके पास आनेवाले हैं, वे आयेंगे ही, नहीं आनेवाले वे नहीं ही आयेंगे।

मुमुक्षु : धन्धा करना पड़ेगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग करता है, वह धन्धा करता है। धन्धा कर सकता नहीं। राग कर सकता है अज्ञानभाव से। आहाहा! राग का धन्धा वह करे। पर का धन्धा जड़ का वह नहीं कर सकता। आहाहा! और राग को वह अज्ञानभाव से भोगता है। पर को तो भोग सकता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवस्थित बैठा नहीं। यह बातें हैं ऊपर से। आहाहा! ऐसी बात है। सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु आत्मा है, आत्मा ही सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, ऐसा जिसे

अन्तर में बैठे, उसे तो ज्ञान की पर्याय, आनन्द की, उसका ही वह भोक्ता और कर्ता है।

व्यवहारनय से पुद्गलकर्म... अर्थात् इस शरीर को, स्त्री के शरीर को या दाल, भात, रोटी को और मकान को, इज्जत को भोगता है, ऐसा कहना, वह व्यवहारनय से कथन है। क्योंकि उसमें राग-द्वेष का वेदन है, उसमें वह चीज़ निमित्त पड़ती है, इसलिए उसे व्यवहार से भोगता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

३. 'अमूर्तिक' कहा, वह निश्चय से तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द ये पुद्गल के गुण-पर्याय हैं,... यह सब पुद्गलगुण की अवस्था है। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, और शब्द **इससे रहित अमूर्तिक है...** भगवान आत्मा तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ है। **इससे रहित अमूर्तिक है और व्यवहार से जबतक पुद्गलकर्म से बँधा है, तब तक मूर्तिक भी कहते हैं।** व्यवहार से कहा जाता है। मूर्तिक तो मूर्तिक ही है। आहाहा! चैतन्यपिण्ड प्रभु रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़, वह तो अमूर्त ही है। परन्तु मूर्त ऐसे कर्म के, जड़ के सम्बन्ध से उसे उपचार से मूर्त कहा जाता है। ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा!

४. 'शरीर परिमाण' कहा, वह निश्चय से तो असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है,... जैसा चौदह राजू लोक है चौदह ब्रह्माण्ड, उसके जितने प्रदेश हैं असंख्य, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण। लौकिक के माप जितने प्रदेश हैं, ऐसा। यहाँ प्रदेश... यहाँ प्रदेश... यहाँ प्रदेश... अन्दर आत्मा में। ऐसे संख्या से वे असंख्य हैं। ... वीतराग परमेश्वर को यह असंख्य... ऐसी बात ... अज्ञानी आत्मा-आत्मा करे। विकल्प रहित हो जाओ, विकल्प रहित हो जाओ—ऐसा कहता है, परन्तु कितना, कैसा... उसके गुण का अस्तित्व कितना है? चौड़ा कितना है... यह बात अज्ञानी के... समझ में आया? यह कहा। असंख्यत प्रदेश है। जैसे सोने की चैन आती है न सोने की चैन। मकोड़ा आवे न मकोड़ा। उसमें पूरी चैन, उसी प्रकार असंख्य प्रदेशी पूरा आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं और जैसे सोना का मकोड़ा है, उसे यहाँ प्रदेश कहते हैं। परन्तु उसके हजार या दो हजार मकोड़ा हो। इसे (आत्मा को) असंख्य प्रदेश हैं। ऐसी बात है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त, यह बात कहीं है नहीं। ऐसी ... अज्ञानी को बराबर ... **परन्तु संकोच विस्तारशक्ति से...** संकोच ... उसके असंख्य

विस्तारशक्ति से शरीर से कुछ कम प्रदेशप्रमाण आकार में रहता है। अनादि-अनन्त....

५. अनादिनिधन कहा, वह पर्यायदृष्टि से देखने पर... वर्तमान अवस्था-हालत, बदलना, उसे **देखने पर तो उत्पन्न होता है,...** नयी अवस्था से उत्पन्न होता है, पुरानी अवस्था से नष्ट होता है। आत्मा समय-समय की पर्याय अनन्त गुण की, वह अनन्त गुण भी सर्वज्ञ में होते हैं, अन्यत्र किसी जगह नहीं होते। असंख्य प्रदेश और अनन्त गुण। आहाहा! और अनन्त गुण की एक समय में उत्पादरूपी पर्याय होती है और पूर्व की पर्याय का व्यय, नष्ट होती है। **तो भी द्रव्यदृष्टि से देखा जाये तो...** वस्तु से देखें, तब तो **अनादिनिधन सदा नित्य अविनाशी है।** अवस्था से देखें तो उत्पन्न और विनाश दिखता है। वस्तु से देखें तो अनादि-अनन्त है। उसमें दोनों पहलू हैं। वह पर्याय और द्रव्य और वे सब सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हो सकते। देखा नहीं और कल्पना से बातें सबने—अज्ञानियों ने की हैं। समझ में आया?

द्रव्य अर्थात् क्या? और पर्याय अर्थात् क्या? प्रत्येक आत्मा में संख्या से अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुणों की, एक समय में—सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायों का उत्पन्न होना होता है। और वे अनन्त पर्यायें जो उत्पन्न पहले थीं, उनका उत्पन्न समय में उनका (पूर्व का) व्यय होता है। आहाहा! ऐसी अवस्थादृष्टि से देखें तो ऐसा है। वस्तुदृष्टि से देखें तो अनादि-अनन्त है। दोनों उसका स्वरूप है। आहाहा! उसमें ऐसा भी कहा न, उसका अर्थ कि उत्पन्न होता है अपने से। ऐसा हुआ न, भाई? जितने गुण हैं, उनकी पर्याय से उत्पन्न होता है, वह स्वयं से; पर के कारण से नहीं। कहते हैं न निमित्त से होता है। कहते हैं कि अनन्त गुण हैं शक्ति से। भगवान वस्तु एक और शक्ति के सामर्थ्य के गुणों की संख्या अनन्त।

... उसे कहते हैं कि ... जिसमें अनन्त गुण असंख्य प्रदेश में ... उसकी एक समय में अवस्था ... अनन्त अवस्था उत्पन्न हो और दूसरे समय में उनका व्यय हो। पहले समय में व्यय होकर इनका उत्पाद हो। आहाहा! ... द्रव्यदृष्टि से देखें तो अनादि-अनन्त है। दोनों स्वरूप इसके हैं। पर्याय से उत्पन्न-ध्वंस है और द्रव्य से सदा ही एकरूप ... है। पर के कारण से नहीं, अपने कारण से। इस वस्तुस्थिति का कोई कर्ता नहीं, उसकी पर्याय का दूसरा कोई कर्ता नहीं। जैन सम्प्रदाय में आकर भी जैन परमेश्वर

की बात वह माने नहीं और अज्ञानी का कहा हुआ माने, आहाहा! उल्टे रास्ते जाकर चार गति में भटकने के रास्ते हैं।

सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान (हुआ), तब आत्मा पूरा होता है, तब आत्मा पूरा होता है। उसे एक समय में केवलज्ञान और केवलदर्शन होता है, तब तो आत्मा पूरा होता है पर्याय में। द्रव्य से तो पूरा है। आहाहा! समझ में आया? वह पूर्ण सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक को जानने की दशा प्रगट करे, वह स्वयं से करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब वह पर्याय में पूर्ण होता है। ऐसा एक-एक आत्मा ऐसा पूर्ण होने की योग्यतावाला है। आहाहा! समझ में आया?

६. दर्शन-ज्ञान-उपयोगसहित कहा,... कैसा है भगवान आत्मा? देखना और जानना, ऐसे स्वभावसहित है। वस्तु स्वभाववान, आत्मा स्वभाववान और उसका देखना-जानना, वह स्वभाव अनादि-अनन्त। **वह देखने-जाननेरूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है।** आहाहा! वास्तविक आत्मा रागरूप, पुण्यरूप नहीं। उसका स्वरूप ही जानना, देखना, जानने-देखने का भाव त्रिकाल, जानने-देखने के स्वभावस्वरूप **उपयोगस्वरूप चेतनारूप है।** आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें नय नहीं लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल लिया, उसमें नय कहाँ फिर? वस्तु तो एक त्रिकाल है दर्शन-ज्ञान उपयोग, ऐसा। स्वभाव बस। पर्याय का परिणमन ... में आ गया।

इन विशेषणों से अन्यमती अन्य प्रकार सर्वथा एकान्तरूप मानते हैं, उनका निषेध भी जानना चाहिए। कर्ता विशेषण से तो सांख्यमती सर्वथा अकर्ता मानता है... सांख्यमत है एक कि आत्मा बदलता ही नहीं, पलटता ही नहीं, अकर्ता है। उसके सामने कर्ता कहकर उसका निषेध किया। कर्ता न हो तो अपना परिणमन शुद्ध करके अशुद्ध को टाल नहीं सकेगा। शुद्ध परिणमन करके अशुद्ध का नाश, कर्ता न हो और परिणमन न हो तो नहीं कर सकेगा। अज्ञानी को कर्ता सांख्यमति ने माना नहीं।

भोक्ता विशेषण से बौद्धमती क्षणिक मानकर कहता है कि कर्म को करनेवाला तो और है तथा भोगनेवाला और है... ऐसा कहते हैं न। ... क्षणिक मानते हैं न वे तो।

करनेवाला अन्य आत्मा, भोगनेवाला अन्य आत्मा, ऐसा बौद्ध कहते हैं। उसका निषेध है। जो करता है, वही भोगता है। आहाहा! निश्चय से, अशुद्ध निश्चय से तो राग को करता है, वह राग को भोगता है। शुद्ध निश्चय से वीतरागदशा को करता है और वीतरागदशा को भोगता है। आहाहा! ऐसा समय-समय का स्वरूप स्वतन्त्र वीतरागदर्शन के अतिरिक्त कहीं है नहीं। लोगों ने भ्रमित करके मार डाला है दूसरों को और भ्रमित बेचारे पाखण्ड में। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! आहाहा! लो! वे लोग कहे कि यह एक आत्मा करे, और दूसरा आत्मा भोगे। नित्य मानते नहीं न! क्षणिक मानते हैं न बौद्ध? पहले क्षण की दशावाला करे, दूसरे क्षण की अवस्थावाला दूसरा भोगे।

मुमुक्षु : बाई करे और भोगे पति।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई करता नहीं। स्त्री करती नहीं और भाई भी भोगता नहीं। सब झूठी-झूठी बातें हैं। आहाहा! शरीर का कौन करे? शरीर की क्रिया कौन करे? रूपी को कौन करे? यह तो कहा न? रोटी का एक-एक परमाणु वर्तमान अपनी पर्याय को करे। आहाहा!

रात्रि में कहा था, नहीं? कि प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु एक समय में अनन्त गुण की जो पर्याय, उस पर्याय का उत्पाद, उत्पाद उत्पाद को करे, ध्रुव के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप, पूरा चौदह ब्रह्माण्ड भरा है। वह उत्पाद अनन्त गुण की पर्याय का जो उत्पाद अवस्था नयी उत्पन्न होती है, उसका उत्पाद उत्पाद से होता है। ओहोहो! उसका स्वकाल होता है प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का, उस काल में ही वह उत्पाद होता है, उत्पाद से उत्पाद होता है। आहाहा! अकेला ज्ञाता-दृष्टा है। जाने-देखे वह है। बाकी कोई है नहीं। समझ में आया? अरे! जैन परमेश्वर जिन्हें सर्वज्ञपना (प्रगट हुआ), जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं। लो, यह साक्षात् भगवान तो विराजते हैं महाविदेह में। सीमन्धर भगवान तीर्थंकर केवली तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है। उन भगवान के मुख से निकली हुई यह वाणी है। कहते हैं....

मुमुक्षु : उत्पाद उत्पाद को करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल में जिस-जिस समय की जो पर्याय उस समय की वह पर्याय उस पर्याय को करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निश्चय, वही यथार्थ, दूसरा नय क्या? पर्यायनय से वह-वह स्वयं पर्याय का उत्पाद पर्याय करे। आहाहा!

मुमुक्षु : यह सब हमारा कर्तापना कहाँ चला गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कार्यकर्ता का कहाँ गया, कहते हैं इसमें। धरमचन्दभाई! आहाहा! मार्ग तो ऐसा, बापू!

मुमुक्षु : बहुत बीमारों को सुधारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी बीमार को सुधारता नहीं। आहाहा!

वस्तु अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, अनन्तगुणे। उनके एक समय की जो उनका समय है उस काल का जो समय है, उस समय की वह अनन्त गुण की पर्याय का उत्पाद उत्पाद से होता है। आहाहा! निमित्त से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं, पूर्व की पर्याय से नहीं। यह वह कोई चीज़ है! आहाहा!

मुमुक्षु : एक समय पकड़ सकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ तो सकता नहीं परन्तु ख्याल में तो ले सकता है न? ख्याल कर सकता है न?

मुमुक्षु : अनुमान से जान सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जिस समय की जो पर्याय वह उत्पाद, वह सत् है। उत्पाद, वह सत् है। तो सत् को किसी पर के हेतु की आवश्यकता नहीं हो सकती। आहाहा! ऐसी दृष्टि जिसकी होती है, उसकी दृष्टि ज्ञायक के ऊपर जाती है। आहाहा! है तो दृष्टि पर्याय, दृष्टि है वह पर्याय है। आहाहा! ऐसे देखा तो '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ त्रिकाल भगवान आत्मा ... ऐसे देखो तो सम्यग्दर्शन की पर्याय ... आहाहा! श्रीचन्दजी! ... आहाहा! अरे! इसने सुना नहीं। एक रजकण में अनन्त गुण। यह (शरीर) तो एक रजकण नहीं, यह तो अनन्त रजकण का दल है। उसका अन्तिम पॉईन्ट एक टुकड़ा (उस) एक रजकण में अनन्त गुण हैं।

मुमुक्षु : इतने में समाये कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : समाना क्या? स्वभाव है, उसका माप क्या? क्षेत्र की क्या आवश्यकता है। आहाहा! स्वभाव। यह तो रूपी स्वभाव की बात चलती है, लो! ओहोहो!

एक रजकण में अनन्त रूपी गुण रूपवाले, रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाले, आहाहा! ऐसे अनन्त गुण की एक समय में उत्पत्ति-पर्याय हो, वह उत्पाद उत्पाद से होता है। द्रव्य-गुण से नहीं, पूर्व पर्याय से नहीं, निमित्त से तो नहीं। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! ऐसा स्वरूप, भगवान! ऐसा स्वरूप है उसका। अरे! यह वाद-विवाद से कहीं पार पड़े ऐसा नहीं। यह चीज़ सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने पूर्णरूप (देखी है), इससे दूसरी कोई चीज़ हो नहीं सकती। आहाहा! अरे! यह द्रव्य और गुण की पर्याय जो हो छहों द्रव्य की उस समय में होती है और उस समय में उसका व्यय पूर्व का हो, वह उसका स्वकाल है। व्यय होने का स्वकाल, उत्पन्न होने का स्वकाल। ध्रुव का स्वकाल भिन्न रह गया। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे नहीं क्या, आत्मा है न। आत्मा है या नहीं वह? एक क्षण में अन्तर्मुख केवल (ज्ञान) लेता है। यह वस्तु है ऐसा तो उसे ख्याल में तो ले। है कोई चीज़। तो है तो क्या है? इतना तो ख्याल में आना चाहिए न कि आत्मा और रजकण हैं। है, ऐसा कहना हो तब वह है तो क्या है वह? आत्मा है तो उसमें अनन्त गुण हैं। अनन्त गुण हैं तो उसकी अनन्त पर्याय है। वह है, उसमें यह सब आ जाता है। ऐसे रजकण हैं अजीव, अजीव हैं, वैसे यह अजीव है तो अनन्त अजीव हैं, उसमें एक-एक अजीव रजकण अनन्त गुणवाला है। है, तो अनन्त गुणवाला है और अनन्त पर्यायवाला है। वस्तु यह है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानियों ने कल्पना से घोड़ा दौड़ाकर सबने बातें कीं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त जितने पंथ हैं वीतरागमार्ग के अतिरिक्त, सबने कल्पना, कल्पना की बातें घोड़े दौड़ायें हैं। देखा नहीं उसने किसी का कुछ स्वरूप।

मुमुक्षु : इस काल में समन्वय करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल में समन्वय करे। खोटा और सच्चा दोनों है, यह समन्वय। खोटा और सच्चा दोनों समान हैं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा हुआ न। झूठे माननेवाले भी हैं, सच्चे माननेवाले भी हैं। 'है' उसमें समन्वय आ गया। आहाहा! क्या हो?

मुमुक्षु : झूठे को झूठेरूप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा है न वह। झूठेरूप से भी वह सत् है या नहीं? झूठा भी है या नहीं? या झूठा नहीं? आहाहा! लॉजिक से, न्याय से तो इसे समझना चाहिए। आहाहा!

एक-एक आत्मा परिपूर्ण गुण का नाथ और उसका पूर्णरूप पर्याय प्रगट हो, तब पूर्णरूप उसका है। तब वह आत्मा की पूरी दशा और पूर्णरूप होता है, फिर इससे आगे कोई चीज़ हो नहीं सकती। समझ में आया? आहाहा! विपरीतता घुस गयी हो न वह उल्टी, इसलिए यह बात किसी प्रकार बैठती नहीं। मिथ्यात्व की विपरीतता घुसी हो और बाहर के अन्यमति के कथन सुनकर। आहाहा!

भोक्ता है। **जो जीव कर्म करता है, उसका फल वही जीव भोगता है, इस कथन से बौद्धमती के कहने का निषेध है।** भगवान आत्मा एक समय में जो रागादि को, शुद्धादि को करे, वही जीव वापस शुद्ध को भोगे और अशुद्ध को भोगे। जीव दूसरा आता नहीं, पर्याय दूसरी हुई। करे, वही भोगे और भोगे, वही करे, यहाँ तो उसकी बात है। बौद्ध कहते हैं कि अन्य करे और अन्य भोगे। सर्वज्ञ के अतिरिक्त जितने पंथ हैं, वे सब पाखण्ड पंथ हैं। नरक और निगोद में जाने के रास्ते हैं। बाहर से तो लगे अच्छे। विकल्परहित हो जाओ, विकल्परहित हो जाओ। विकल्परहित हो जाओ तो विकल्प है क्या? और हो जाओ तो वह पर्याय में होता है या गुण में होता है? ... वह रहित हो। तो इसका अर्थ वह क्या दशा है वह? वह कोई अवस्था है? कोई गुण है? या त्रिकाल द्रव्य है? उसके भान बिना विकल्परहित हो जाओ। क्या विकल्परहित हो? अस्तित्व कितना है? एक-एक आत्मा अनन्त गुणवाला अस्तित्व, उसके अस्तित्व की पर्यायें

अनन्त, ऐसे अस्तित्व की अस्ति पर दृष्टि पड़ने से विकल्प का नाश होता है। अकेला विकल्प का नाश हो तो नास्ति होकर जड़ हो जायेगा। समझ में आया? यह कहते हैं कि ऐसा अस्तित्व है जीव का अनन्त गुणवाला द्रव्यस्वभाव, उसकी अनन्त पर्याय, ऐसा अस्तित्व है। ऐसे अस्तित्व के अन्दर महा अस्तित्व में दृष्टि पड़ने से उसकी विकल्प की एकता टूट जाती है। इसके बिना विकल्प की एकता तीन काल में टूटती नहीं। समझ में आया? अस्तित्व कितना है, उसमें पैर रखे बिना राग का नास्तित्व हो सकता ही नहीं कभी। अब अस्तित्व कितना और कहाँ है, उसकी तो बात नहीं होती। वह यहाँ कहते हैं असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का अस्तित्व है उसका। आहाहा! ऐसे पूर्ण अस्तित्व के ऊपर....

मुमुक्षु : .... आये हैं न ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्या समझे? सुना न हो कभी। रोटियाँ खायी हो और किया हो पूरी जिन्दगी कमाने का।

मुमुक्षु : पूजा, भक्ति करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा-भक्ति। कभी सुना न हो बाप-दादा ने। स्थानकवासी में यह बात नहीं और मन्दिरमार्गी में भी नहीं, अन्यमत में तो यह है नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा है। ऐसा है। इसे अभ्यास करना पड़ेगा। आहाहा! परन्तु यहाँ सादी भाषा में तो आता है कि तू है या नहीं कोई चीज़? कितने क्षेत्र में है, यह जाना है कभी तूने?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल कमाये? उसका क्षेत्र कितना है? चौड़ा कितना है? कोई भी चीज़ हो तो उसका अवगाहन हो न ऐसा चौड़ा? वह कितने में है, यह सुना है? देखा है कभी? आहाहा! और उस अवगाहन में प्रदेश कितने हैं वे? और उन प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण कितने हैं? आहाहा! द्रव्य अर्थात् वस्तु, क्षेत्र उसकी चौड़ाई, गुण उसके व्याप्त अनन्त गुण उसके भाव और उसकी वर्तमान होती अवस्था उसका काल। इस प्रकार पूर्ण वस्तु है। समझ में आया?

श्रीमद् ने भी उसे वह कैसा? त्रिपाठी सूर्यराम। त्रिपाठी को लिखा श्रीमद् ने उस

समय। वह वेदान्ती था। परन्तु उन्हें कुछ नरम मनुष्य होगा, ऐसा लगता है। इसलिए श्रीमद् ने लिखा। अपने आत्मा की व्याख्या चार प्रकार से कह सकते हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। बहुत गम्भीर वस्तु है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। तो उसमें से अद्भुतता निकले ऐसा है, ऐसा उन्होंने कहा है। पत्र में है। क्योंकि वह वेदान्ती था न सर्वव्यापक एक ही आत्मा। एक ही बात। आत्मा नहीं। बस आत्मा हो गया। आत्मा-आत्मा। आहाहा! क्या आत्मा परन्तु? अनिर्वचनीय। इतना तो वचन कहा गया न? इतना इशारा तो आया या नहीं?

मुमुक्षु : उसने कुछ बताया तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताया बताया। द्रव्य है, वह अनन्त गुण और पर्याय का पिण्ड, उसे द्रव्य कहते हैं। क्षेत्र है, वह असंख्यप्रदेशी चौड़ा है, उसे क्षेत्र कहते हैं। भाव, उसमें अनन्त शक्तियाँ रही हुई हैं, उसे भाव कहते हैं और परिणति जो हो पर्याय, उसे काल कहते हैं। आहाहा! ऐसी व्याख्या। उसने पूछा था श्रीमद् से। वह एकान्त माने मानो आत्मा। क्या आत्मा आत्मा परन्तु? आत्मा का द्रव्य कैसा? क्षेत्र कितना? काल कितना? भाव कैसा? उसके भान बिना तो आत्मा-आत्मा। आहाहा! सुना है? मनसुखराम त्रिपाठी? सूर्यराम त्रिपाठी। पत्र में है। इससे यहाँ कहा, भोक्ता जीव है और उसका वह कर्ता अज्ञान का भी कर्ता और अज्ञान का भी भोक्ता पर्याय में। स्वभाव का कर्ता और स्वभाव का भोक्ता।

'अमूर्तिक' कहने से मीमांसक आदि इस शरीरसहित मूर्तिक ही मानते हैं,... वह तो मूर्त ही है। कर्म और शरीर है, उसे अमूर्त नहीं, ऐसा मानते हैं। उसका निषेध है। **'शरीरप्रमाण' कहने से नैयायिक, वैशेषिक, वेदान्ती आदि सर्वथा, सर्वव्यापक...** वह कितने क्षेत्र में है, वह (कुछ नहीं), बस है, यह हो गया आत्मा। अज्ञानियों ने आत्मा की बात की आत्मा ऐसा। परन्तु कितने में, कहाँ है, वह नहीं। वह सब है उसमें। सबमें मिल जाओ। सब आत्मा का व्यापकपना है, उसका एक अंश है, वह आत्मा। वह अंश उसकी प्रार्थना और भक्ति करे तो अंश अंश में मिल जाये।

मुमुक्षु : ज्योति में ज्योति मिल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मिले नहीं। सत्ता खो जाये? अपनी सत्ता जो भिन्न है, वह सत्ता पर में मिल जाये? अभाव हो जाये? आहाहा!

'शरीरप्रमाण' कहने से नयायिक, वैशेषिक, वेदान्ती आदि सर्वथा, सर्वव्यापक मानते हैं... सर्वथा सर्वव्यापक मानते हैं। **उसका निषेध है। 'अनादिनिधन' कहने से बौद्धमती सर्वथा क्षणस्थायी मानता है,...** क्षणिक ही आत्मा। समय समय का आत्मा, त्रिकाल नहीं। **'दर्शनज्ञानउपयोगमयी' कहने से...** भगवान आत्मा देखने और जानने के व्यापारवाला, शक्तिवाला है। उसकी शक्ति तो दर्शन और ज्ञान, वह मुख्य वस्तु है। **सांख्यमती तो ज्ञानरहित चेतनामात्र मानता है,...** और जानना क्या? और जानना क्या? उपाधि है, ऐसा। जानना उसका स्वभाव है। स्व को और पर को जानना, ऐसा तो उसका स्वभाव है। आहाहा! पूर्ण दर्शन और पूर्ण ज्ञान हो जाये, तब उसकी आत्मा की पूर्णता वीतरागदेव में वर्णन की गयी है। उसके पश्चात् और दूसरा कुछ है, अज्ञान है उसके पश्चात्। समझ में आया? आहाहा! अरे! मुश्किल मुश्किल से मिला, उसमें वापस कहीं के कहीं विपरीतता घुस गयी बेचारे को। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा को, एक-एक आत्मा ऐसे अनन्त आत्मायें; एक-एक रजकण, ऐसे अनन्त रजकण, उन्हें अनादि-अनन्त देखा और पर्याय से सादि-सान्त देखा। ऐसा ही उसका स्वरूप है।

नैयायिक, वैशेषिक गुणगुणी के सर्वथा भेद मानकर ज्ञान और जीव के सर्वथा भेद मानते हैं,... ज्ञान भिन्न और आत्मा भिन्न, ऐसा मानते हैं। वह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप ही है। चैतन्यब्रह्म भगवान आत्मा, आनन्दब्रह्म, ज्ञानस्वरूपी प्रभु है। वह उसका स्वरूप ही ऐसा है। जानना, वह कहीं उपाधि नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें। यह सूक्ष्म है, हों! यह कहते हैं उसमें। क्या कहते हैं?

गुणी ऐसा आत्मा और ज्ञानगुण दोनों भिन्न हैं। जैसे शक्कर और मीठापन दोनों भिन्न हैं, ऐसा (वे) कहते हैं। शक्कर भिन्न और मिठास भिन्न। मिठास भिन्न तो फिर शक्कर कहाँ रही? इसी प्रकार आत्मा भिन्न और उसका ज्ञान भिन्न। तो ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। जानन स्वभाव का पिण्ड आत्मा है। फिर ज्ञान भिन्न और आत्मा भिन्न कहाँ आया? आहाहा! थोड़े अन्तर से बड़ा अन्तर है। अज्ञानियों को यह मस्तिष्क में हाथ

आवे ऐसा नहीं। आँख मींचकर करो ध्यान। किसका? जड़ का। आँखें मीचो, आँखें मीचो। परन्तु क्या मींचे? मींचे तो जड़ है वह तो। उसका मींचना हो, वह जड़ से होता है। फिर अन्दर दिखाई दे अन्धेरा। अन्धेरे का जाननेवाला जो है चैतन्य, वह भिन्न तत्त्व है। वह अन्धेरे से और आँख से भिन्न तत्त्व है। आहाहा! तथापि वह तत्त्व है। अन्धेरा और आँख वे तत्त्व हैं अजीव, परन्तु उनसे जाननेवाला तत्त्व भिन्न अत्यन्त पृथक् है। ज्ञान को सर्वथा भेद मानता है।

बौद्धमत का विशेष विज्ञानाद्वैतवाद ज्ञानमात्र ही मानता है... बौद्ध का एक पंथ (ऐसा मानता है कि) सब ज्ञान ही है, सब ज्ञान ही है। पूरी दुनिया ज्ञान ही है बस। ज्ञान के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ नहीं, ऐसा ही मानता है। उसका निषेध किया, लो। **और वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है,...** और ज्ञान तथा आत्मा यह दो क्या? द्वैत हो गया, ऐसा कहता है। अद्वैत मानता है न? आत्मा और आत्मा का ज्ञान, आत्मा और आत्मा का अनुभव यह क्या? द्वैत हो गया, ऐसा नहीं मानता। ऐसा कुछ नहीं। **वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है, इन सबका निषेध है।** लो!

इस प्रकार सर्वज्ञ का कहा हुआ... सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की अस्ति में महावीर भगवान की अस्ति में भगवान ने कहा, सीमन्धर भगवान की अस्ति में भगवान वहाँ कहते हैं महाविदेह में अभी। केवलज्ञानी परमात्मा उसे... **अपने को ऐसा मानकर...** जीव का स्वरूप सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा जानकर **अपने को ऐसा मानकर...** ऐसा अपना स्वभाव और अशुद्धता है, ऐसा जानकर **श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करना चाहिए।** आहाहा! आत्मा एक ... श्रद्धारूपी प्रतीति तो पर्याय है, प्रतीति पर्याय है। पर्याय में ऐसा आत्मा पूर्ण शुद्ध है, सर्वज्ञ हो सकता है, पूर्ण पर्याय प्राप्त कर सकता है, ऐसा मैं हूँ ऐसी श्रद्धा—प्रतीति करना। आहाहा!

जीव कहने से अजीव पदार्थ भी जाना जाता है। लो! कहा? जीव का स्वरूप कहा था, ऐसा जानकर, अजीव भी चीज़ है। जीव के सामने जीव की जाति से विरुद्ध जातिवाली एक अजीव (चीज़) है। यह रजकण सब शरीर के, वाणी के, मन के, वह सब जगत की अजीव चीज़ है। तो उसे भी जानना चाहिए। उसमें नहीं और अजीव

अजीव में है। जीव में नहीं, अजीव अजीव में है, ऐसा इसे जानना चाहिए। आहाहा! **अजीव न हो तो जीव नाम कैसे होता ?** इसे जीव कहना, इसका अर्थ कि अजीव दूसरी चीज़ है। इसे आत्मा कहना तो दूसरी चीज़ अनात्मा है। आहाहा! एक ही आत्मा माने और अजीव को न माने, वह मूढ़ जीव है। मिथ्यात्व का पोषक है, निगोद में जानेवाला है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी दृष्टि मिथ्यात्व का फल निगोद है। मिथ्यात्व का फल निगोद है। क्योंकि जहाँ ज्ञान के अक्षर के अनन्तवें भाग की दशा रह गयी, विकास, हों! वस्तु स्वभाव तो पूर्ण है। अक्षर का अनन्तवाँ भाग रह गया है पर्याय में। उसे जीव कौन कहे ? एक निगोद के एक टुकड़े में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, एक जीव में अनन्त गुण, एक-एक जीव की अनन्त पर्याय। कौन कहे ? यह माने कौन ? आहाहा! इसलिए कहते हैं कि जीव कहते ही दूसरी चीज़ एक अजीव है। वेदान्त तो एक जीव को ही मानता है, अजीव को मानता नहीं। यह और सांख्यवाले अजीव को माने।

मुमुक्षु : वे जीव को न माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे जीव को न माने। यह सब....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अब कोई। बाकी तो क्या कहते हैं ? अजीव को क्या कहा ? कोई भाषा है। मैटर। बस मैटर। मैटर कहते हैं। खबर है न। यह तो मैटर सब है। दूसरा-बूसरा कुछ नहीं। परन्तु मैटर का जाननेवाला कौन ? मैटर मैटर को जाने ? आहाहा! जाननेवाला कौन ? कि यह आत्मा। जानन स्वभाव से भरपूर भगवान है। और वह पूर्ण केवलज्ञान हो, तीन काल-तीन लोक को जानने की दशा हो, तब वह आत्मा पूरा होता है। बाद में और... कोई होता नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

अजीव न हो तो जीव नाम कैसे होता ? इसलिए अजीव का स्वरूप कहा है, वैसा ही उसका श्रद्धान आगम-अनुसार करना। भगवान की वाणी में अजीव का स्वरूप आया है, वैसा जानना चाहिए। **इस प्रकार अजीव पदार्थ का स्वरूप जानकर और इन**

दोनों के संयोग से अन्य आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष... होता है। जीव ज्ञानानन्दस्वभाव होने पर भी कर्म अजीव है, वह भी चीज़ हुई। और उसके संयोग से जो दया, दान, व्रत, विकल्प उठे, मैं ध्यान करूँ, मैं ऐसा करूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह राग है, वह आस्त्रव है, वह भावबन्ध है। वह राग है, विकल्प उठता है वृत्तियाँ, वह भावबन्ध है। संवर-निर्जरा भी है। वह आत्मा के अन्तर स्वरूप का आश्रय करके जितना आस्त्रव टलता है, उतनी शुद्धता पर्याय में प्रगट होती है, वह शुद्धता प्रगट हो, उसे संवर कहते हैं और शुद्धता बढ़े, उसे निर्जरा कहते हैं और शुद्धता पूर्ण हो, उसे मोक्ष कहते हैं। आहाहा!

इन भावों की प्रवृत्ति होती है। यह भी भाव है, कहते हैं। जैसे जीव है, वैसे अजीव है। जीव के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में जीव है। अजीव भी उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में अजीव है। अब दोनों के संग में आत्मा में जो पुण्य और पाप के भाव हों, शुभ-अशुभ वृत्ति दया, दान, व्रत, भक्ति, ध्यान करूँ—ऐसा विकल्प, वह सब आस्त्रव है। आहाहा! वह अटका हुआ भाव, वह बन्ध है। राग में अटकता भाव, वह बन्ध है और संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह शुद्ध है। वह आत्मा के परिपूर्ण स्वभाव को आश्रय करके जो शुद्धता प्रगट हो, धर्म प्रगट हो, उसका नाम संवर और शुद्धि वृद्धि पावे, उसका नाम निर्जरा और पूर्ण शुद्धता हो, उसका नाम मोक्ष। पर्याय में पूर्ण शुद्धता हो। द्रव्य तो शुद्ध है वह। गुण तो शुद्ध है। आहाहा! यह पर्याय की पूर्णता हो, वह मोक्ष।

इन भावों की प्रवृत्ति होती है। इनका आगम के अनुसार स्वरूप जानकर... भगवान के कहे हुए शास्त्र, उन्हें गुरुगम से जानकर **जानकर श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है,...** आहाहा! **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसर कृष्ण ८, सोमवार, दिनांक २१-१२-१९७०
गाथा - १४८-१४९, प्रवचन-१५४

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। यहाँ आया था बीच में, देखो! और, **दर्शन-ज्ञान उपयोगसहित कहा,...** बीच में है। यह जीव है, वह दर्शन-ज्ञानोपयोगमय स्वरूप है। विकार या शरीरमय यह चीज़ नहीं है। **दर्शन-ज्ञान उपयोगमयी कहने से सांख्यमती तो ज्ञानरहित चेतनामात्र मानता है,...** चेतना है परन्तु उसमें ज्ञान है, जानना है—ऐसा है नहीं। तो वह वस्तु खोटी है। **नैयायिक, वैशेषिक, गुणगुणी के सर्वथा भेद मानकर...** गुणी आत्मा और गुण ज्ञान, दर्शन सर्वथा भिन्न मानता है। इसलिए यहाँ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी कहा। आत्मा जानने-देखने के उपयोगमय अभेद स्वरूप है। गुणी भिन्न और गुण भिन्न ऐसा नहीं है। समझ में आया? जानने-देखनेवाला स्वभाववान उस स्वभाव से अभेद है। जानना-देखना अलग है और जानने-देखनेवाला अलग है, ऐसा नहीं है।

गुणगुणी के सर्वथा भेद मानकर ज्ञान और जीव के सर्वथा भेद मानते हैं, बौद्धमत का विशेष विज्ञानाद्वैतवादी ज्ञानमात्र ही मानता है... बौद्ध का एक भाग है, वह विज्ञान ही अकेला मानता है। जगत में अकेला विज्ञान है। विज्ञानमय आत्मा या ऐसा कोई नहीं। विज्ञान अकेला माने, वह भी झूठा। **और वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है,...** वेदान्त तो अद्वैत मानता है न अद्वैत? ज्ञान और आत्मा, ऐसे दो भेद भी उसे तो नहीं है। यह अत्यन्त झूठा है। **वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है,...** कोई निरूपण ही नहीं कि आत्मा है, वह जानता है, वह जानने का कुछ (कार्य करता है), परन्तु जानने का माने, तब तो पर्याय हो गयी और गुण और गुणी दो चीज़ हो गयी। दो तो मानना नहीं। **वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है, इन सबका निषेध है।**

इस प्रकार सर्वज्ञ का कहा हुआ जीव का स्वरूप जानकर... है न शब्द? यह 'ज्ञ' रह गया है। है न उसमें? **इस प्रकार सर्वज्ञ का कहा हुआ...** सर्वज्ञ परमात्मा जिसके मत में है, उसके मत में तीन काल-तीन लोक जानने में आये और उसकी बात

सत्य है। जिसका सर्वज्ञ मत ही नहीं अथवा जिसने सर्वज्ञस्वभावी जीव पद को माना ही नहीं, इसलिए सर्वज्ञ एक समय में तीन काल को जाने, ऐसी पर्याय भी उसे नहीं होती। वस्तु स्वयं सर्वज्ञस्वरूपी ही है। अर्थात् ज्ञानस्वभावी आत्मा तो ज्ञान में और अपूर्णता क्या ? ज्ञान पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... सर्व पूर्ण ज्ञान। ऐसा ही उसका स्वभाव है। ऐसी दशा प्रगटे, उसे सर्वज्ञ हो। परन्तु जिसने ज्ञानस्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव ही माना नहीं, उसे सर्वज्ञपना होता नहीं। समझ में आया ? है ? वहाँ सेठ ? आया है या नहीं ? 'ज्ञ' शब्द चाहिए, 'ज्ञ' शब्द चाहिए।

सर्वज्ञ का कहा हुआ जीव का स्वरूप जानकर... ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीन काल-तीन लोक जाने हैं, उनके कहे पदार्थ को जानकर, **अपने को ऐसा मानकर...** स्वयं ऐसा माने। **श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करना चाहिए।** भगवान ने आत्मा को ज्ञानमय कहा है, शरीरप्रमाण कहा है, भानभाव से शुद्ध चेतना निर्मल अवस्था का करनेवाला है, अज्ञानभाव से विकार का कर्ता है। ऐसा ऐसा भगवान ने कहा है, ऐसा जानकर **अपने को ऐसा मानकर...** ज्ञान-दर्शनमय हूँ, जानने-देखने के भावस्वभाव हूँ। पूरी दुनिया को उदासीन से मैं तो जानूँ। जानना और देखना इसके अतिरिक्त मेरा कोई स्वभाव नहीं है। ऐसी **श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करना चाहिए।**

और, **जीव कहने से अजीव पदार्थ भी जाना जाता है, अजीव न हो तो जीव नाम कैसे होता ?** अजीव न हो तो यह जीव कैसे कहा ? अजीव है तो यह जीव है। ऐसे यह जीव है तो वह अजीव है। है .... परन्तु उसमें जीव है, ऐसा कहना है, तब एक अजीव है दूसरा। तब जीव है, ऐसा हुआ न ? दूसरा अजीव है। **इसलिए अजीव का स्वरूप कहा है, वैसा ही उसका श्रद्धान आगम- अनुसार करना।** लो ! उसमें निज श्रद्धा करके मानना और यह तो आगम अनुसार अजीव की श्रद्धा करना, ऐसी दो बातें ली। पाँच अजीव (द्रव्य) है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल। उसे भगवान ने कहा है। आगम में तत्प्रमाण जानना। जानकर उनसे भिन्न है, इसलिए जानना। अजीव को जानने का (प्रयोजन) इतना कि उससे मैं भिन्न हूँ, मुझसे वे भिन्न हैं, इसलिए जानना।

आगम अनुसार करना। इस प्रकार अजीव पदार्थ का स्वरूप जानकर और इन

दोनों के संयोग से... दो हुआ। एक जीव का स्वरूप कहा। वह तो जानन-देखन स्वभाव। क्योंकि ज्ञान और दर्शन का भाव स्वभाव रसरूप, वही आत्मा है। ऐसा अन्तर में सन्मुख होकर जानकर, श्रद्धा, रुचि करना। और अजीव को आगम अनुसार जानना कि वह मुझसे भिन्न है। और **दोनों के संयोग से अन्य आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन भावों की प्रवृत्ति होती है।** जीव है, उसे अजीव का संयोग है। तो उस संयोग के सद्भाव की पर्याय उसमें हो, ऐसा संयोग है और यहाँ भाव हो, वह आस्रव है। संयोग के लक्ष्य से भावबन्ध होता है और संयोग के अभाव से उसे संवर-निर्जरा और मोक्ष होता है। क्या कहा?

जीव, ऐसा कहा कि जीव जो है, वह दर्शन-ज्ञानमय आत्मा है। देखो! इतने में आ गया थोड़े में एक आत्मा थोड़े में वाँचने का करने का... व्याख्या थोड़े में रखी। यह आत्मा जो है, वह जानना-देखना स्वरूप, बस। वह आत्मा। उसे जानकर उसके सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना, वह संवर और निर्जरा है। अब वह संवर, निर्जरा और मोक्ष कैसे है? ऐसा सिद्ध करते हैं। जीव से पाँच भिन्न अजीव हैं। उनका स्वरूप आगम अनुसार जानना और उनसे रहित हूँ, ऐसा जानने के लिये (जानना)। अब जीव और अजीव के सम्बन्ध में पाँच पर्यायें प्रगट होती हैं। अजीव के लक्ष्य से, सम्बन्ध से आस्रव और बन्ध उत्पन्न होता है। अजीव तो वह है, आस्रव और बन्ध तो। जितना स्वरूप में एकाग्र होने पर अजीव का सम्बन्ध, अबन्ध, सम्बन्ध अभाव होता है, उतना यहाँ संवर होता है और उससे विशेष शुद्धि जितना सम्बन्ध विशेष छूटे, उतनी निर्जरा है। सर्वथा सम्बन्ध छूटे, उसे मोक्ष कहते हैं। समझ में आया? लो, यह नव तत्त्व। सात में पुण्य-पाप गये आस्रव में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष। मोक्षतत्त्व। जीव के साथ...

मुमुक्षु : आज तो कुन्दकुन्दाचार्य की तिथि।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य की तिथि का याद आ गया। आज कुन्दकुन्दाचार्य की आचार्य पदारोहण की तिथि है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज को आचार्य आरोहणपना

आज हुआ था। आज पौष कृष्ण अष्टमी है। सिद्धान्त की शास्त्र की पौष कृष्ण अष्टमी है। अपने (गुजराती में) मगसर कृष्ण अष्टमी। ग्यारह वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी। ओहोहो! ग्यारह वर्ष। बहुत समर्थ! बहुत शक्ति! ३३ वर्ष दीक्षा रही, पश्चात् आचार्यपद मिला। ९५ वर्ष तक जीवित रहे। ९५ वर्ष। वह आज आचार्यपद का आरोहण दिवस है। वह आचार्यपद ऐसी योग्यता लेकर आते हैं। क्षयोपशमभाव में आते हैं। आचार्यपना। ऐसा ही उनका उघाड़ और उस जाति की मर्यादा-हद होती है उनकी, इसलिए उन्हें सहज ही सब संघ एकत्रित होकर ऐसा कहता है कि हमारे प्रमुख यह हैं। इनकी आज्ञा में हम सब चलेंगे। ये संघ के नायक हैं। ऐसा आचार्यपदपना पौष कृष्ण अष्टमी को मिला था। ओहो! उनकी वाणी, यह सब श्लोक... अकेली वीतरागता झरती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागता झरती है अर्थात्? वीतरागता ही बतलाते हैं।

आत्मा ज्ञान-दर्शनमय है, ऐसा कहकर भी पर का सम्बन्ध और राग बिना का वीतरागभाव बतलाया है। वीतरागभाव के ज्ञान में अजीव की स्थिति क्या है, ऐसी जानने में आती है, उसे अजीवतत्त्व बतलाया। आहाहा! अजीव के सम्बन्ध में राग और द्वेष और आस्रव बन्ध उत्पन्न होता है। वह वास्तविक जीव का स्वरूप नहीं है, ऐसा बतलाया और अजीव के सम्बन्ध से छूटा, इतना यहाँ स्वभाव के साथ सम्बन्ध किया अथवा स्वभाव के साथ सम्बन्ध किया, उतना अजीव के सम्बन्ध से छूटा। उसे संवर कहते हैं। प्रवृत्ति कहते हैं न, देखो न! **अन्य आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन भावों की प्रवृत्ति होती है।** पर्याय की बात है न, पर्याय? जीव तो ज्ञान-दर्शन-स्वभावमय कहा। वह जीव अनादि-अनन्त। अजीव पाँच—धर्मास्ति आदि। और दोनों के सम्बन्ध से... अकेले आत्मा में ऐसी पाँच पर्यायें नहीं होतीं, इसलिए अजीव के संग से, संग से-लक्ष्य से, अपना लक्ष्य छूटकर जितना लक्ष्य पर में जाए, उतना वहाँ आस्रव और बन्धभाव उत्पन्न होता है। बन्ध सम्बन्ध हुआ न? सम्बन्ध हुआ, इसलिए बन्ध और आस्रव उत्पन्न हुआ। और जितना स्वभाव के साथ सम्बन्ध करे एकाग्र होकर, उतना अजीव का सम्बन्ध छूटे। इतना यहाँ संवर कहने में आता है। विशेष उग्ररूप से स्वभाव का सम्बन्ध करे तो

विशेष अजीव का सम्बन्ध छूटे, उसे निर्जरा कहा जाता है। पूर्ण स्वभाव का सम्बन्ध करे तो पूर्ण अजीव सम्बन्ध छूटे। उसे मोक्ष कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

दोनों के संयोग से... दो के संयोग से **अन्य आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष (पाँच भाव) इन भावों की...** भाव अर्थात् पर्याय। पाँच पर्याय की **प्रवृत्ति होती है।** वह पर्याय अस्तिरूप से है, ऐसा सिद्ध करना है। जैसे जीव और अजीव दो हैं, वैसे यह पाँच पर्याय भी है। दो आस्रव और बन्ध मलिन, संवर और निर्जरा अपूर्ण शुद्ध, मोक्ष पूर्ण शुद्ध। समझ में आया? देखो! मोक्ष, वह पूर्ण शुद्ध अवस्था। संवर-निर्जरा, वह अपूर्ण शुद्ध अवस्था। आस्रव और बन्ध, यह अशुद्ध अवस्था। जब वस्तु है और वस्तु जब पर के सम्बन्ध में आती है, तब दोष उत्पन्न होता है। अर्थात् दोष की अस्ति है। अजीव की अस्ति है और जीव स्वभाव की अस्ति है, वैसे दोष की भी अस्ति है। ऐसी बात पर्याय में दोष की अस्ति और अजीव का सम्बन्ध जितना, वह स्वभाव सम्बन्ध हो, उतना अजीव सम्बन्ध छूटे, अजीव के पूर्ण सम्बन्ध के साथ राग और द्वेष और बन्ध हो, ऐसी बात वस्तु के सात, नव तत्त्व माने बिना सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? उसकी भी खबर नहीं होती। सम्प्रदाय में पड़े हैं, हो गया। यह भगवान जाने। नव तत्त्व है। नव तत्त्व। सात तत्त्व क्या है? किस प्रकार? ऐसा ही हो और दूसरे प्रकार से न हो, ऐसा भास होना चाहिए न?

भगवान ने कहे परन्तु कैसे कहे, इतने ही कहे और दूसरे नहीं कहे। और इतने कहे में प्रयोजन क्या है? समझ में आया? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य में है या नहीं श्लोक पहला? 'न हुए न होयेंगे नहीं।' यह लो, यह निकला, तीसरे पृष्ठ पर है। प्रस्तावना में पहले शुरुआत में ही, नीचे श्लोक है। शुरुआत में एकदम शुरुआत पहली। गाथा नहीं परन्तु पहली शुरुआत। यह गायन है न? 'जासके मुखारविन्दते...' यह तुम्हारे आया था न, दूसरे पृष्ठ पर, तीसरे पृष्ठ पर। यह पृष्ठ घुमाओ। है? देखो! इसमें तीसरे पृष्ठ पर है। ...'जासके मुखारविन्दते प्रकाश भास वृन्द' है? 'जासके मुखारविन्दते प्रकाश भास वृन्द'। भाषा का वृन्द निकलता है इनके मुख से। निकला? 'स्याद्वाद जैन बैन इन्दु चन्द कुन्दकुन्द से।' कहो, 'स्याद्वाद जैन बैन' अपेक्षा से सर्व कथन। स्वपने है, परपने नहीं। 'इन्दु चन्द्र श्री कुन्दकुन्द से। तासके अभ्यास से विकास भेदज्ञान होत।' भगवान

कुन्दकुन्दाचार्य के वचन उनके अभ्यास से विकास भेदज्ञान हो। भेदज्ञान का विकास हो। एक-एक राग भिन्न, विकल्प भिन्न, द्रव्य से एक समय की पर्याय का अंश भिन्न। ऐसा भेदज्ञान जिसकी भाषा में से अभ्यास करे तो हो। आहाहा! है?

'तासके अभ्यास से विकास भेदज्ञान होत, मूढ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्द से।' कुन्दकुन्द के वचनों को मूढ कुछ जान नहीं सकता। लखे है न? लखे अर्थात् जानना। कुन्दकुन्द के वचनों को... वे बहुत कहते हैं, हमने समयसार पढ़ा। अभी आया था न एक व्यक्ति। वह और कहता था यह ... कि हमने समयसार पढ़ा है, हों! ठीक, अब पढ़ा। परन्तु क्या पढ़ा है तो? अरे! भाई! समयसार अर्थात् क्या, बापू! समझ में आया?

मुमुक्षु : वाँच-वाँचकर पुस्तक फाड़ डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक फाड़ डाली वाँच-वाँचकर। परन्तु भाव क्या है, वह समझे बिना? एक-एक गाथा और एक-एक पद की महागम्भीरता है।

'मूंढ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्द से' कुबुद्धि और मूढ दो शब्द प्रयोग किये हैं। कुन्दकुन्द के शास्त्रों के अर्थों के भाव कुबुद्धि और अज्ञानी समझ नहीं सकता। 'देत है आशीष शिष्य के इंदु चन्द जाहि।' देत वह आशीष देते हैं शिष्य को। मस्तक नमाकर। 'इंदु चन्द...' इन्दु अर्थात् क्या? चन्द्र होता है वैसे तो। इन्द्र और चन्द्र, लो! इन्द्र और चन्द्र जहाँ सिर नमा देते हैं। जिनकी वाणी में। 'मोहमार खण्डमार... से।' मोहरूपी मार के खण्ड-खण्ड कर डाले हैं। मार्तण्ड-सूर्य कुन्दकुन्द। कुन्दकुन्दरूपी सूर्य, मार्तण्ड अर्थात् सूर्य। कुन्दकुन्दरूपी सूर्य ने मोहरूपी मार के खण्ड कर डाले हैं। मिथ्यात्व के, अज्ञान के, राग के खण्ड करके अखण्ड वस्तु बतायी।

'विशुद्धि बुद्धि वृद्धि...' जिसकी विशुद्धि बुद्धि 'वृद्धि दा, प्रसिद्ध ऋद्धि ...' विशुद्ध बुद्धि थी, वृद्धि थी, प्रसिद्ध थे, ऋद्धि थी, सिद्धि थी। 'हुए न है न होंगे मुनिन्द्र कुन्दकुन्द से' कविवर वृन्दावनदासजी (कृत)। 'हुए न, है न होयेंगे मुनिन्द्र कुन्दकुन्द'। उनके जैसे तो वे हुए हैं। आचार्यपद का आरोहण है न? वैसे तो गा गये हैं कवि वृन्दावन कवि। दिगम्बर कवि। लो, अब कितने ही कहते हैं हुए न बस, उनके जैसे? परन्तु भाई! अब यह किस अपेक्षा से? सुन तो सही। उन्होंने जो इस समय के समय में

काम किया है... उसकी बात हुई ऐसी... आहाहा! उनके एक-एक शब्द में कितनी बात है! समझ में आया?

यह तो बनारसीदास का कहा था न? उसमें यह शब्द है। देखो! आता है न? 'मोक्ष ... से सम।' यह समयसार की व्याख्या की है। बनारसीदास ने की है। नाटक समयसार की महिमा। '**मोख चलिवेकौ सौन...**' शुकन शुकन। मोक्ष के पन्थ में चलने का शुकन है समयसार। समझ में आया? आहाहा! पहला समयसार हाथ नहीं आया, पश्चात् कहा था हमने सेठ को। ऐ सेठ! कहा, यह अशरीरी समयसार है। ... नहीं था अभी कुछ। (संवत्) १९७८ की बात है। यह अशरीरी समयसार है। समयसार का अर्थ अशरीरीपना कैसे प्राप्त हो यह बात है। पुण्य मिले और स्वर्ग मिले, धूल मिले, यह बात इसमें नहीं। देखो! '**मोख चलिवेकौ सौन...**' मोक्ष के पन्थ में चलने के लिये शुकन, शुकन हो गये इसे। इसे मोक्षपन्थ मिलकर मोक्ष ही हो जानेवाला है। '**करमकौ करे बौन...**' कर्म को टाल डाले। '**जाके रस-भौन बुध लौन ज्यौं घुलत है।**' कहो, समझ में आया? रस मौन। रस भवन। ज्ञानी को आनन्द के रस का भवन। '**लौन ज्यौं घुलत है।**' जैसे नमक पानी में मिल जाए, वैसे आत्मा के ज्ञान और आनन्द उसमें घुल जाते हैं। समयसार समझे उसे आत्मा आनन्दमय हो जाता है, ऐसा कहते हैं। '**गुनको गरन्थ...**' यह गुण का तो ग्रन्थ है। '**निरगुनकौ सुगम पंथ**', गुणरहित होने के लिये यह सुगम पन्थ है। गुणरहित अर्थात्? बाहर के गुण यह प्रकृति, रज आदि। '**जाकौ जसु कहत सुरेश अकुलत है॥**' जिसका यश कहते हुए सुरेश—इन्द्र भी आकुलता पाता है। ऐसी चीज़ है समयसार। समझ में आया या नहीं? यह तो हिन्दी है। सेठ! हिन्दी है ....

मुमुक्षु : चालू हिन्दी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चालू ही है न परन्तु क्या है यह?

'**जाकौ जसु कहत सुरेश अकुलत है॥**' जिसका यश कहते हुए सुरेश—इन्द्र भी अकुलाते हैं। आहाहा! उसे क्या कहना? ऐसी वाणी अमृत कुन्दकुन्दाचार्य की है। है? '**याहीके जु पच्छी ते उड़त ग्यानगगनमैं,**' यह कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी समयसार के जो पक्षी हैं 'उड़त ग्यानगगनमैं,' ज्ञान के गगन में आकाश में उड़कर चले जायें। '**याहीके विपच्छी**' यह '**जगजालमैं रुलत है**' उसमें है? उसमें नहीं? यह तो समयसार

नाटक है। '**याहीके विपच्छी जगजालमैं रुलत है**' समयसार के विरोधी चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा!

'**हाटकसौ विमल**' शुद्ध सुवर्ण समान विमल है। हाटक अर्थात् सुवर्ण। सोना सोलहवान जैसे होता है। आहाहा! उनकी वाणी के भाव वीतराग के फेण से... रहे हुए हैं। वीतराग... वीतराग... वीतराग... अहो! गजब शैली! कहते हैं, कहते हैं कि सुवर्ण से विमल '**विराटकसौ विसतार**' विराट बड़ा जगत का इससे भी विस्तारवाला है। '**नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है॥**' यह फाटक नहीं लगता? रेलवे का। फाटक बन्द है। यह फाटक खुल गया है, ऐसा कहते हैं। '**नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है॥**' जिसके हृदय के फाटक बन्द है, वे यह समयसार सुने तो फाटक खुल जाते हैं। अन्दर से नेत्र खुल जाते हैं। आहाहा! लो! ... आ गये दो। समझ में आया? आज आचार्य का दिन है न यह? पौष कृष्ण अष्टमी, यह पौष कृष्ण अष्टमी है। सिद्धान्त की पौष कृष्ण अष्टमी है। मगसिर कृष्ण ... शुक्ल बाद में आवे उसमें। सिद्धान्त के हिसाब से कृष्ण पहले आता है। शुक्ल बाद में आता है। यह पौष कृष्ण है, पश्चात् पौष शुक्ल आयेगा। ओहोहो!

वर्तमान में तो महाविदेहक्षेत्र में नहीं। वे तो स्वयं स्वर्ग में हैं। वैमानिक में। थे तब उनकी दशा और यह बात... ओहो! अलौकिक! इसलिए ऐसा कहा कि ऐसे इस पंचम काल में उन्होंने जो काम किया है, तीर्थंकर जैसा काम किया है। पंचम काल के तीर्थंकर हैं। अमृतचन्द्राचार्यदेव ने... आहाहा! शक्ति का वर्णन देखो न गजब है! गजब!! अन्दर गहरे... गहरे... गहरे... देखो तो ऐसे अकेली द्रव्य, गुण और निर्मल वीतरागी पर्याय का ही वर्णन है। राग और निमित्त की गन्ध कहीं स्पर्शी नहीं है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा द्रव्य वस्तु, उसकी शक्तियाँ भी पूर्ण पवित्र निर्मल। ऐसी शक्ति का धारक उस द्रव्य का आश्रय ले, उसकी वैसी ही वीतराग पर्याय होती है। वह उसकी पर्याय कहलाती है। अरे! व्यवहार से भगवान! तुमको माने, वह विकल्प उसकी पर्याय है या नहीं? नहीं। भगवान को माने ऐसा जो राग, वह तेरी पर्याय नहीं। परन्तु तुमको मानता है न? मैं हूँ, वह तो तू है। तुझमें है, ऐसा तू है, वैसा मैं हूँ। मुझे मानने जा, तो विकल्प उठेगा। तुझे मानने जा तो तुझे अन्दर विकल्प टूटेगा। आहाहा!

समझ में आया? विकल्प होगा, यह कहते हैं कि हमको तू मानने, सर्वज्ञ को मानने परलक्ष्य से, वह जो विकल्प उठेगा, वह तेरा स्वरूप नहीं, हों! वह तेरे द्रव्य-गुण और पर्याय का स्वरूप नहीं, हों! आहाहा! गजब बात करते हैं न! आहाहा! वह विकल्प भिन्न है, जाति भिन्न है। आहाहा! वह आत्मा नहीं। आहाहा! अकेला वीतरागभाव प्रवाहित किया है।

कहते हैं, यहाँ सात तत्त्व की बात रखी। इस श्लोक का ही अर्थ चलता है न, देखो न! कर्ता-भोक्ता का। आचार्य। यह चलता है न, कर्ता-भोक्ता मैं तो ऐसा... जिनवर ने देखा वह हम कहते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर ने इस आत्मा को ऐसा कहा है। ऐसा हम कहते हैं। भगवान ने कहा है। हम कहते हैं, ऐसा नहीं कहा वापस, देखा! '**णिद्दट्ठो जिणवरिन्देहिं**' आहाहा! गजब है। '**जिणवरिन्देहिं**' यह बात आत्मा को कर्ता-भोक्ता सहित ... अमूर्तिक अनादिनिधन दर्शन-ज्ञानमय ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? यह जीव दर्शन-ज्ञानमय है। दर्शन-ज्ञानवाला है, ऐसा नहीं कहा। वाला है, (ऐसा कहे) तो भेद पड़ गया। जिसे गुण-गुणी के भेद की भी आवश्यकता नहीं। ऐसा स्वभाव गुण-गुणी का अभेद स्वभाव वर्णन किया है। और उसके अतिरिक्त के पाँच हैं, वे अजीव हैं। और दोनों के सम्बन्ध से... यह (समयसार की) तेरहवीं गाथा में आता है न? एक को यह नव (भेद) नहीं पड़ते। अपेक्षा हो, निमित्त की अपेक्षावाला भाव, वह आस्रव, पुण्य, पाप और बन्ध। आत्मा में ज्ञानदर्शनमय होने पर भी, त्रिकाली स्वभाव होने पर भी उसकी वर्तमान पर्याय में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में निमित्त के सम्बन्ध से भाव होता है, वह पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध। तथा यहाँ स्वभाव। क्योंकि इतना स्वभाव के सम्बन्ध से छूटा है और पर का सम्बन्ध किया है। और फिर जितना स्वभाविक पर्याय ने सम्बन्ध किया... पहले पर्याय ने पर का सम्बन्ध किया था, निर्मल पर्याय ने जितना द्रव्य का सम्बन्ध किया, उतना अजीव का सम्बन्ध छूटा। उसे संवर कहते हैं। उग्ररूप से सम्बन्ध किया, उसे निर्जरा कहते हैं। इतना अजीव का सम्बन्ध छूटा। उग्ररूप से स्थिर हुआ, उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष, वह स्वरूप की पूर्ण स्थिरता की रमणता को मोक्ष कहते हैं। कहो, समझ में आया? अजीव का सम्बन्ध छूटा। पश्चात् पाँच पर्याय की प्रवृत्ति में इस प्रकार से निमित्त-निमित्त सम्बन्ध होता है।

इनका आगम के अनुसार स्वरूप जानकर... इनका आगम अनुसार स्वरूप जानकर। आगम अर्थात् परमात्मा-सन्तों ने कहे हुए आगम, हों! वे आगम-आगम दूसरे कहे हुए, वे नहीं। समझ में आया? शब्द तो आगम है। ऐसा तो सब नाम पाड़ते हैं। हमारे भी आगम है। आगम तो भगवान की परम्परा से जो आयी हुई चीज़, वह आगम कहलाती है। बीच में कल्पित बनाये और नाम दिया भगवान का, वह आगम नहीं कहलाता। बहुत कठिन लगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ६३ नहीं, ८४। ८४ बनाये हुए हैं। ये पहले वही थे न। स्थानकवासी थे कब? श्वेताम्बर ने ८४ बनाये। यहाँ वल्लभीपुर। उसमें से ४५ रह गये। बाकी सब फेरफार हो गया। यह ४५ और पश्चात् यह स्थानकवासी निकले, उसमें से ३२ में से ३१ रखे। ३२वाँ उनका था, वह नहीं माना। क्योंकि उसमें ३२ में तो मूर्ति और पूजा बहुत सब है। ३१ रखे अपनी कल्पनावाले। जिसमें अर्थ दूसरे हो सकें ऐसे। चैत्य का अर्थ जिसमें ज्ञान भी हो सके, ऐसे ३१ रखे और यह है, वह नया बनाया। श्वेताम्बर का आवश्यक है, वह इन्होंने मान्य नहीं रखा। क्योंकि उसे मानने जाए तो मूर्तिपूजा का पार नहीं होता उसे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाल डाला। ३२ में उनका बहुत बना। स्थानकवासी। मन्दिरमार्गी के जो ३२ आवश्यक हैं... परन्तु सब वाद-विवाद में झगड़े ऐसे हो गये, ऐसी खींचतान हो गयी।

यहाँ तो भगवान ने कहे हुए परमागम, उनके कहे प्रमाण जानना। **श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है,...** लो! इस प्रकार नव तत्त्व को सम्यग्दर्शन प्राप्ति का उपाय आगम अनुसार जानकर स्वरूप सन्मुख होकर प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रीति है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १४९

आगे कहते हैं कि यह जीव 'ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी है,... है तो ज्ञान-दर्शनमय उपयोगस्वरूप इसका। **किन्तु अनादि पौद्गलिक कर्म के संयोग से इसके ज्ञान-दर्शन की पूर्णता नहीं होती...** देखो! वस्तु तो ऐसी है कि जहाँ ऐसी वस्तु ज्ञान-दर्शन की पूर्ण,... पूर्ण ऐसी पूर्ण वस्तु है, परन्तु उसकी वर्तमान पर्याय में, वर्तमान दशा में अनादि कर्म का संयोग है, इसलिए ज्ञान की पूर्णता वर्तमान पर्याय में नहीं है। वस्तु ज्ञान-दर्शन पूर्ण स्वभाववाली होने पर भी, आत्मा का पूर्ण ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ही उसका स्वभाव है। ऐसा होने पर भी **अनादि पौद्गलिक कर्म के संयोग से...** अब पुद्गल के कर्म के सम्बन्ध से उसकी पर्याय में अनादि का पर ऊपर लक्ष्य-भाव है।

ज्ञान-दर्शन की पूर्णता नहीं होती है... इसलिए उसकी ज्ञान-दर्शन में, अवस्था में-हालत में पूर्णता पर के सम्बन्ध के कारण से दिखती नहीं, है नहीं। वस्तु पूर्ण है। उसकी शक्ति और गुण पूर्ण है। परन्तु पर्याय में, हालत में... देखो न! एक वस्तु। आहाहा! देखो! यह तीन को सिद्ध करते हैं। द्रव्य से पूर्ण है, गुण से पूर्ण है। ज्ञान-दर्शनभाव से वस्तु पूर्ण है। परन्तु पर्याय में-अवस्था में-हालत में कर्म के सम्बन्ध के कारण से; सम्बन्ध किया है स्वयं ने न? **अल्प ज्ञान-दर्शन अनुभव में आता है...** लो! इसलिए उसकी दशा में ज्ञान की अपूर्णता है और वह अल्प ज्ञान-दर्शन का अनुभव दिखता है। पूर्ण त्रिकाल ज्ञान-दर्शन है, वह दिखता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पर्याय में भूल है, द्रव्य-गुण अभूल और पूर्ण है। आहाहा! देखो न! ऐसा न हो (तो) भी वस्तु दूसरी प्रकार से नहीं हो सकती। ऐसी सिद्ध करते हैं। वस्तु स्वयं है, वह तो पूर्ण अखण्ड एकरूप है। उसकी ज्ञान-दर्शन की शक्ति भी पूर्ण एकरूप अखण्ड पूर्ण है। पूर्ण कहो या सर्वज्ञ-सर्वदर्शी कहो। ऐसा उसका स्वरूप और शक्ति होने पर भी वर्तमान दशा में ज्ञान की अपूर्णता दिखती है, उसका कारण कि कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य से वह अपूर्णतारूप भासित होता है और वह अल्प ज्ञान-दर्शन अनुभव में भी आता है। आहाहा! ऐसा। थोड़ा ज्ञान है, ऐसा जानने में भी आता है। आहाहा! समझ में आया?

और उसमें अज्ञान के निमित्त से... उसमें और विशेष अर्थ करते हैं। अज्ञान तो है, अपूर्ण ज्ञान तो है परन्तु अब विशेष बात राग-द्वेष-मोह उत्पन्न करता है, उसकी बात है। **अज्ञान के निमित्त से...** वस्तु के स्वरूप के भान बिना **इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा ज्ञान-दर्शन में कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव अनुभव में आते हैं।** आहाहा! क्या कहा? एक तो यह कहा कि यह आत्मा वस्तु और उसका जानने-देखने का स्वभाव, वह पूर्ण है। परन्तु वस्तु है, इसलिए उसका स्वभाव भी पूर्ण ही है। तब वर्तमान दशा में वह पूर्ण क्यों नहीं दिखता? कि वर्तमान दशा में कर्म दूसरी चीज़ विलक्षण-अपने लक्षण से भिन्न जड़ चीज़ है, उसके सम्बन्ध में गयी पर्याय, (उसके कारण से) अपूर्ण ज्ञान दिखता है और अनुभव में भी अपूर्णपना आता है। अभी पर्याय में पूर्ण है, ऐसा है नहीं। ओहोहो! और उसमें भी अज्ञान से, निमित्त से **इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा...** लो! परचीज़ को इष्ट-अनिष्ट मानकर,... क्योंकि अपूर्ण ज्ञान है, वह पूर्ण त्रिकाल नहीं। इसलिए जो कुछ चीज़ उसके देखने में आवे, उसमें ठीक लगे, इष्टपना (करे), अठीक लगे उसमें अनिष्टपना (करता है)। ऐसी बुद्धिरूप से **राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा...** देखो! भाषा। कर्म के कारण से यह होता है, ऐसा यहाँ नहीं लिखा। मात्र कर्म का सम्बन्ध कहा। इससे सम्बन्ध के कारण ज्ञान अपूर्ण दिखता है और उस अपूर्ण ज्ञान में भी परवस्तु को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करता है और मोहभाव-मिथ्याभाव उत्पन्न करता है। आहाहा! जो चीज़ इसकी नहीं, उसे यह मानता है।

राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा ज्ञान-दर्शन में... यह जो ज्ञान-दर्शनमय है, उसमें अपूर्णता कही पहली, अब उस ज्ञान-दर्शन में इस कारण से कलुषता उत्पन्न हुई है। समझ में आया? बहुत स्पष्ट किया है। ज्ञान-दर्शन में जानने-देखने की वर्तमान दशा में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना की और मिथ्यात्वभाव के कारण... इष्ट-अनिष्टपना कोई चीज़ है ही नहीं। मिथ्याश्रद्धा द्वारा इष्ट-अनिष्ट मानकर, राग-द्वेष की और मिथ्यात्व की **कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव...** देखो! सुख-दुःख अर्थात् यह सांसारिक, हों! कल्पना में सुख-दुःख की कल्पना की कलुषता में भाव अनुभव में आते हैं। समझ में आया? लो! कैसी साबित हुई!

द्रव्य-गुण तो परिपूर्ण ज्ञान दर्शन से है। यहाँ से शुरु किया है। परन्तु पर्याय में पूर्णता क्यों नहीं? कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य से पूर्णता नहीं और वह अपूर्ण है, वह तो वेदन में भी दिखता है। तब अब दूसरी बात, वह तो अपूर्णता इतना। अब सुख-दुःख होते हैं वे? कल्पना में सुख-दुःख मानता है, उसका क्या? इष्ट-अनिष्ट देखकर राग-द्वेष करता है और उसमें मानता है कि यह मुझे ठीक है, अठीक है। मिथ्यात्वभाव। मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष से इसके ज्ञान-दर्शन की पर्याय में, वर्तमान दशा में अपूर्णता के साथ कलुषता भी दिखती है। कहो, समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है। बहुत सादी भाषा है। ऐई! कानजीभाई! बुद्धिवाले को पकड़ा।

वस्तु है या नहीं? आत्मा है या नहीं? है। है तो वह तो नित्य है या नहीं? नित्य। दो बात। नित्य है तो उसका गुण ज्ञान-दर्शन वह भी नित्य है या नहीं? नित्य है तो वह पूर्ण होगा या अपूर्ण? पूर्ण। बस। अब अवस्था में अन्तर है, उसका क्या कारण? यह बात सिद्ध करते हैं। समझ में आया? ऐसा तुम सिद्ध करते हो? (कि) आत्मा है, वह त्रिकाल है, त्रिकाल है तो उसका ज्ञान दर्शनभाव भी त्रिकाल है। त्रिकाल है तो वह जैसी पूरी चीज़ है, वैसा गुण भी पूरा पूर्ण है। तो यह पर्याय में दिखता नहीं, इसका क्या कारण? कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य से वर्तमान दशा में ज्ञान और दर्शन की हीन दशा दिखाई देती है, ऐसा अनुभव भी होता है। वह तो ज्ञान-दर्शन की हीन अवस्था की बात की। समझ में आया? परन्तु अब यह राग-द्वेष और सुख-दुःख होते हैं, उसका क्या? कि वह भी इष्ट-अनिष्टबुद्धि से ज्ञान में पर का इष्ट-अनिष्टपना मानकर राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव उत्पन्न करता है, इसलिए इसकी दशा में कलुषतारूप, ऐसी बात है, यह राग-द्वेष और मिथ्यात्वरूपी कलुषतारूप **सुख-दुःखादिक भाव अनुभव में आते हैं।** आहाहा! समझ में आया? यह तो निवृत्त लोगों का काम है। ऐसा कहते हैं। ऐई! पोपटभाई! नहीं, यह तो सब काम करनेवाले इतने सब लोहे लाना और यह लाना, कहते हैं। निवृत्त है और निवृत्त होना हो, उसका यह काम है। हें! किस प्रकार से सिद्ध करते हैं! देखो!

पहले सात तत्त्व सिद्ध किये। अब कहते हैं कि ज्ञान-दर्शन की पर्याय अपूर्ण कैसे? और उसमें सुख-दुःख की कल्पना कैसे? मोह इकट्ठा लिया। समझ में आया?

यह पूर्ण हुआ, इसलिए फिर ज्ञान-दर्शन भी अपूर्ण, वीर्य भी अपूर्ण। शक्ति अपूर्ण दिखती है। अब अपूर्ण के साथ यह कलुषता क्या? जानने-देखने का ज्ञान परिपूर्ण होने पर भी निमित्त के संग में रुक गयी दशा अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन और अल्प वीर्यरूप दिखती है। ऐसा ही उसका वेदन भी अल्प ज्ञान है, वह भी दिखता है। अब उसमें कलुषता है, वह क्या? कि ज्ञान-दर्शन जो है, उसकी जो वर्तमान बुद्धि है, वह परवस्तु को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करती है, और मिथ्यात्वभाव उत्पन्न करती है कि ये परिणाम मेरे और मुझे ठीक है, ऐसी कलुषतारूप इसकी दशा में सुख-दुःख का भाव वेदने में, जानने में आता है। कहो, समझ में आया? यह तो सादी भाषा में कितना रचा है! ऊपर भी कैसा सरस रचा था। यहाँ भी पण्डित जयचन्द्रजी ने रचा, लो!

मुमुक्षु : पूरा तत्त्व आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया। इतनी बात। ओहोहो!

दिगम्बर सन्तों की प्रणाली कोई ऐसी है। पूरी चीज़ आयी है। उसमें यह दशा क्या? यह दशा इस कारण से तूने खड़ी की है। एक तो ज्ञान-दर्शन परिपूर्ण वस्तु होने पर भी कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान-दर्शन और वीर्य की अवस्था यह ज्ञान-दर्शन हीन है, उसका वीर्य भी शक्ति-वीर्यशक्ति भी हीन है, यह अनुभव में देखने में आती है। परन्तु अब दूसरा? यह सुख-दुःख का मानना होता है, वह क्या? कि ज्ञान-दर्शन की बुद्धि जो पर्याय है, वह पर को देखकर ठीक-अठीक मानकर मिथ्यात्वभाव द्वारा राग-द्वेष उत्पन्न करता है। आहाहा! समझ में आया?

यह कलुषतारूप सुख-दुःख की कल्पना। पैसा, शरीर सुन्दर देखकर राग (हो) और फिर ठीक (पना लगे), ऐसी मिथ्यात्व की कलषुतारूप सुख-दुःख की कल्पना तुझे भासित होती है। आनन्दस्वरूप है जो ज्ञान-दर्शन-वीर्य से परिपूर्ण है और आनन्द भी (पूर्ण है)। क्योंकि जो कोई परिपूर्ण वस्तु है, उसमें दुःख नहीं हो सकता। वह सुखरूप ही होता है, आनन्दरूप ही होता है, तथापि वह आनन्द क्यों नहीं दिखता? कहते हैं। जैसे ज्ञान-दर्शन परिपूर्ण है तो वह पर्याय में परिपूर्ण क्यों नहीं दिखता? तब कहते हैं, इस सम्बन्ध के कारण जितना कुसंग, उसके कारण से ज्ञान-दर्शन और वीर्य

हीन दिखता है। तब कहते हैं, यह आनन्दमूर्ति ज्ञान-दर्शन जो वस्तु है, वह तो अकेली स्वाभाविक हो, वह तो सुखरूप ही होती है। स्वभाव में दुःख नहीं हो सकता। तो यह क्या है, यह सब खड़ा हुआ?

इस बुद्धि से इष्ट-अनिष्ट मानकर, जो इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं है। क्योंकि ज्ञान है, वह जाननेवाला है और सामने सब चीज़ ज्ञेय है। उस ज्ञेय के भाग नहीं और ज्ञान में भी भाग नहीं। परन्तु ज्ञान में भाग किये ज्ञेय के भाग से दो भाग कि यह वस्तु ठीक, शरीर सुन्दर ठीक, पैसा ठीक, धूल ठीक, प्रतिकूलता ठीक नहीं, ऐसी बुद्धि से दो भाग किये। इसलिए सामने चीज़ के दो भाग कर दिये। सब अकेली ज्ञेय चीज़ है, उसमें दो भाग कर दिये—एक यह ठीक और यह अठीक। यह मिथ्यात्वभाव से ये दो भाग किये हैं। इसलिए इसकी पर्याय में सुख-दुःख की कल्पनारूप कलुषता भासित होती है और यह अनुभव में भी वह सुख-दुःख आते हैं। आहा! इसे आनन्द का अनुभव नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द होने पर भी उसका अनुभव नहीं। क्यों? इस कारण से। समझ में आया?

ज्ञान समान न सुख... कुछ आता है न? भाई! सुख को कारण। ज्ञान समान अन्य नहीं सुख का कारण। छहढाला में आता है। ज्ञान के समान सुख का कारण दूसरी कोई चीज़ नहीं है। तो फिर भासित क्यों नहीं होता? कहते हैं कि ज्ञान ही उल्टा विपरीत पड़ा है। वह बुद्धि इसकी इष्ट-अनिष्ट में काम करती है। इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं, इष्ट-अनिष्ट ज्ञान में खण्ड होना, वह इसका स्वभाव नहीं। परन्तु खण्ड करके, भावेन्द्रिय का खण्ड करके और वस्तु ज्ञेय एकरूप होने पर भी उसके भी दो खण्ड किये। दो भाग कर दिये। आहाहा! यह इज्जत, कीर्ति, शरीर सुन्दरता, खाने-पीने का योग और ऐसी अनुकूलता, वह ठीक। भूखे-प्यासे, सर्दी, गर्मी, मार, त्राड़, बिच्छू-सर्प का डंसना, वह अठीक। ठीक-अठीक इसकी कल्पना की है।

मुमुक्षु : वह कल्पना...

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान से। कहा न, मिथ्यात्वभाव से। एक के दो भाग करके खण्ड कर दिया। और वहाँ... किया। आहाहा! समझ में आया?

यह **कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव अनुभव में आते हैं। यह जीव निजभावनारूप सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है...** अब वह अपूर्णता ज्ञान-दर्शन और वीर्य की और कलुषता सुख-दुःख की कल्पना की, वह कब टले? कैसे टले? **निजभावनारूप सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है...** देखो! सम्यग्दर्शन चीज़ ऐसी है कि निज की भावना करे, वह सम्यग्दर्शन। आहाहा! जिसमें स्वरूप शुद्ध पूर्ण की भावना करे, उसमें एकाग्र हो, वह सम्यग्दर्शन। समझ में आया? उस अपूर्ण और राग-द्वेष में जो एकाग्र है, वह मिथ्यात्वभाव है। क्या कहा? उस अपूर्ण पर्याय का ज्ञान, अपूर्ण दर्शन और अपूर्ण वीर्य और राग-द्वेष में एकाग्रता वह तो पर्यायबुद्धि, मिथ्यात्वबुद्धि है।

अब निज भावनारूप, स्वयं जो कहा पहला ज्ञान दर्शन से पूर्ण है वह तो। समझ में आया? ज्ञान-दर्शन से पूर्ण है। ऐसी निज वस्तु की भावना, उसकी जो अन्तर की एकाग्रता, उसरूप **सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है...** आहाहा! गजब! कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन की व्याख्या साथ ही कर डाली कि निज भावनारूप सम्यग्दर्शन। समझ में आया? सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? ऐसा वापस। और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा वह है? नहीं, नहीं; वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? **निजभावनारूप...** तो निजभाव की भावना। त्रिकाली ज्ञायकभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता। समझ में आया? उसरूप **सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है, तब ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य के घातक कर्मों का नाश करता है,...** देखा! वह ज्ञान-दर्शन और मोह की बात की थी, वापस यह वीर्य डाल दिया। ऐसा जब स्वरूप है, परन्तु उस स्वरूप का निज भावना की एकाग्रतारूपी सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर क्रम से इन सबका नाश करके, अपूर्णता का नाश करके पूर्णता को प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया? **सुख-वीर्य के घातक कर्मों का नाश करता है,...**

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो।।१४९।।

अर्थ :- सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है... जिनभावना से। है न? यह निजभावना, वही जिनभावना है। वस्तु जो स्वभाव परिपूर्ण अखण्ड विकल्परहित चीज़ अथवा एक समय की पर्यायरहित चीज़, ऐसी चीज़ की भावना अर्थात् एकाग्रता,

वही निजभावना और वही जिनभावना। समझ में आया? जिन, निज, इतना अन्तर। 'जिनपद निजपद एकता भेदभाव नहीं कोई।' आहाहा! 'लक्ष थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी।' **सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है...** अर्थात् कि आत्मा वीतरागस्वरूप और पूर्ण ज्ञान-दर्शन और आनन्दस्वरूप, इसकी जहाँ एकाग्रता की भावना सम्यग्दर्शन हुआ, वह जिनभावना है। क्योंकि वह वीतरागी पर्याय है। वह वीतरागभाव में एकाग्रता है। वह राग और अल्पज्ञ में एकाग्रता थी, वह वीतरागभाव में एकाग्रता (हुई)।

वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण,... लो! यह टलने का उपाय। इतने अपवास करना, इतने व्रत पालना, वह टालने का उपाय नहीं है। समझ में आया? **ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, इन चार घातियाकर्मों का निष्ठापन करता है...** अर्थात् क्षय करे। **सम्पूर्ण अभाव करता है।** लो! इस सम्यग्दर्शन की भावना द्वारा निजभावना द्वारा, निजभावना कहो, सम्यग्दर्शनभावना कहो, जिनभावना कहो। यह स्वरूप जो शुद्ध परिपूर्ण, उसकी एकाग्रता द्वारा धर्मात्मा चार कर्म का नाश करके परिपूर्णता को प्राप्त होता है। भावार्थ लेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसर कृष्ण १०, बुधवार, दिनांक २३-१२-१९७०
गाथा - १४९-१५०, प्रवचन-१५५

अष्टपाहुड़, १४९ गाथा, इसका भावार्थ। क्या कहते हैं यह?

अर्थ :- सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है... अर्थ लिया। जो कोई सम्यक् प्रकार से जिनभावना सहित भव्यजीव है। अर्थात्? आत्मा का जो वीतरागी त्रिकाली स्वभाव है, उसकी एकाग्रतारूपी जो भावना, उस सहित जीव है, वह चार घातिकर्म का नाश करता है। **इन चार घातिया कर्मों का निष्ठापन करता है अर्थात् सम्पूर्ण अभाव करता है।** अपना स्वभाव त्रिकाली आनन्द-ज्ञान और वीतरागी स्वरूप आत्मा है। उसकी भावना अर्थात् उसमें एकाग्रता, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसके द्वारा चार कर्म का नाश करता है।

भावार्थ :- दर्शन का घातक दर्शनावरण कर्म है,... चार की व्याख्या। दर्शन जो उपयोग है, उसका घात में निमित्तपना दर्शनावरणी कर्म है। अपने आ गया, १४८ में। है तो ज्ञान-दर्शन स्वभाव सम्पूर्ण स्वरूप इसका, परन्तु कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में इसकी अपूर्ण ज्ञान-दर्शन और वीर्य की दशा हो गयी है। यह उपोद्घात में से वह की वह बात है। है तो दर्शन और ज्ञान उपयोगस्वरूप सम्पूर्ण, तथापि अनादि कर्म के सम्बन्ध से हीन दशा है, उसे स्वभाव की एकाग्रता द्वारा उसका नाश कर सकता है। समझ में आया?

ज्ञान का घातक ज्ञानावरण कर्म है,... निमित्त। **सुख का घातक मोहनीय कर्म है,...** देखो! सम्यग्दर्शन और चारित्र, उसका घातक मोहनीय है। सुख में उसे समाहित कर दिया है। सम्यग्दर्शन में भी सुख है और चारित्र में भी सुख है। सुख का घातक निमित्त मोहनीय कर्म है। वीर्य का घातक अन्तराय कर्म है। चार कर्म निमित्त कहे। घातक अर्थात् स्वयं हीन दशा करता है, उसमें इन्हें निमित्त कहा जाता है।

इनका नाश कौन करता है? इनके नाश के लिये **सम्यक् प्रकार जिनभावना भाकर अर्थात् जिन आज्ञा मानकर...** जिन आज्ञा मानी इसलिए **जीव-अजीव आदि**

तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर श्रद्धावान हुआ हो, वह जीव करता है। इन आठ कर्मों का नाश करता है। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त बात की।

मुमुक्षु : आप समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है न वस्तु? उसके अन्दर स्वभाव है। ज्ञायकभाव कहो, वीतरागभाव कहो, दर्शन-ज्ञान के उपयोगरूप भाव कहो, उसकी श्रद्धा अर्थात् उसमें एकाग्रता। यह आठ कर्म अथवा चार कर्म के नाश का उपाय है। कितने अपवास करे तो हो, यह इसमें कुछ नहीं आया। वस्तु के स्वभाव में एकाग्र हो तो कर्म टले, ऐसा कहा। बहुत संक्षिप्त में। दूसरे शास्त्र में कहा हो, वे सब निमित्त के कथन हैं। तपसा निर्जरा और उपवास।

मुमुक्षु : दोनों शास्त्र भगवान के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों शास्त्र भगवान के, परन्तु क्या अपेक्षा और किस नय का कथन है, यह जानना चाहिए न। यह यथार्थ शक्ति का कथन।

मुमुक्षु : वस्तु के स्वभाव में एकाग्र होना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। चैतन्य भगवान वस्तु है न? पदार्थ है तो पदार्थ का स्वभाव है या नहीं? स्वभाव बिना स्वभाववान होगा? जैसे परमाणु स्वभाववान है तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श उसका स्वभाव है। इसी प्रकार आत्मा पदाथ है तो उसका त्रिकाली स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीतराग ऐसा त्रिकाली स्वभाव है। उस स्वभाव में एकाग्रता वह सम्यग्दर्शन और वह चार कर्म के नाश का उपाय है। समझ में आया?

जीव-अजीव आदि तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर... अर्थात् इसका अर्थ कि जीव का ज्ञायक... है, ऐसा निश्चय हुआ, तो उसमें अजीव नहीं, ऐसा भी निश्चय हो गया। वह **निश्चय कर श्रद्धावान हुआ हो...** अन्तर वस्तु का अन्तर विश्वास। पूर्ण स्वरूप आत्मा का पदार्थ है तो स्वभाव उसका पूर्ण है, ऐसा भाव में भासन होकर उसका निश्चय श्रद्धावान हो, वह कर्म का नाश करे। कहो, समझ में आया? **इसलिए जिन आज्ञा मानकर...** जिन आज्ञा का अर्थ ही यह—वीतराग की आज्ञा वीतरागभाव में—वीतरागभाव त्रिकाली में स्थिर होना, यह जिन आज्ञा। आत्मा त्रिकाली वीतरागस्वरूप है अर्थात् कि

निर्दोष निराकुल आनन्दस्वरूप है। उसमें श्रद्धा करना और स्थिर होना, वह जिन आज्ञा है। समझ में आया? ऐसे तो व्यवहार से कही न जिन आज्ञा प्रमाण यह व्रत और तप को। वह तो व्यवहार कहा। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह कहीं बन्ध के नाश का उपाय नहीं है। स्व चैतन्य का आश्रय जितना ले, उतना कर्मबन्धन नाश होता है। समझ में आया? चैतन्य सच्चिदानन्द आत्मा, उसके पक्ष में जितना जाए उतना पक्ष कर्म का छूटता जाए। आहाहा! समझ में आया?

यथार्थ श्रद्धान करो, यह उपदेश है। वास्तविक आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वैसा अनन्त शक्तिस्वरूप। दोपहर में आती है वह शक्ति। उस शक्तिस्वरूप पूरा तत्त्व, उसकी श्रद्धा अन्तर्मुख होकर, राग का लक्ष्य छोड़कर, मन का संग छोड़कर, असंग तत्त्व का संग करके... आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा असंगस्वरूप चैतन्य है, उसका संग करके एकाग्र होकर। संग करके कहो। उसका संग जितना करे, उतना कर्म खिरे। कहो, समझ में आया? यह इसकी संक्षिप्त व्याख्या। ओहोहो!

★ ★ ★

गाथा - १५०

आगे कहते हैं कि इन घातिया कर्मों का नाश होने पर अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं :- क्या कहते हैं? शक्तिरूप से तो है, ऐसा कहते हैं। आत्मा में स्वभाव पहला कहा न? स्वभाव में एकाग्रता। स्वभाव तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख (स्वरूप है)। ऐसी आत्मा में गुणरूप शक्ति का स्वरूप शक्तिरूप तो है। उसका नाश करे तब प्रगट होता है। किसका? कर्म का। चार घाति का नाश होने पर अर्थात् कि यह अनन्त चतुष्टय स्वभाव का आश्रय लेने पर अपूर्णता का नाश हो, उसे आवरण का भी नाश होता है। उस शक्ति में जो अनन्त ज्ञान भरा है, उसमें एकाग्र होने पर व्यक्त अर्थात् प्रगट होता है। है, वह प्रगट होता है। आहाहा! भरोसे तो पहले बात ली। ऐसा जिसे भरोसा अन्दर में आया हो, विश्वास अर्थात् प्रतीति। भान करके प्रतीति (हुई हो), वह जीव घातिकर्म के नाश से अनन्त चतुष्टय प्रगट करता है। शक्तिरूप है, उसे प्रगटरूप करता है।

बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पयडा गुणा होंति।
णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि।।१५०।।

देखो! शब्द यह है। 'पायडा' प्रगट।

अर्थ :- पूर्वोक्त चार घातिया कर्मों का... पूर्व में कहा न? ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अन्तराय और मोह। **नाश होने पर अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और बल (वीर्य) ये चार गुण प्रगट होते हैं।** लो! '**पायडा**' प्रगट होते हैं। शक्तिरूप से, सत्त्वरूप से, ध्रुवरूप से तो है। समझ में आया? यह जो चार चतुष्टय कहे। अनन्त ज्ञान, अनन्त बल, अनन्त सुख और अनन्त दर्शन, वे वस्तु के स्वरूप में हैं। उसका स्वरूप ही अनन्त चतुष्टय स्वरूप सम्पन्न ही आत्मा है। परन्तु वह ध्रुवरूप से, शक्तिरूप से है। उसमें एकाग्र होने पर वह '**पायडा**' अर्थात् प्रगट होते हैं। है, वैसी दशा प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

द्रव्य अर्थात् आत्मा, उसमें यह अनन्त चतुष्टयशक्ति गुणरूप तो है। उसमें एकाग्र होने पर पर्याय में प्रगट होती है, इसका नाम मोक्ष और इसका नाम चार कर्म का नाश किया कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बात तो बहुत सादी। समझ में आया? और संक्षिप्त। महाप्रभु, स्वयं अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का स्वामी। उसमें पूर्ण आनन्द, ज्ञान, दर्शन और वीर्य—बल पूर्ण पड़ा है। उसकी एकाग्रता होने पर, उसकी सन्मुख में लीनता होने पर वह दर्शन और चारित्र द्वारा चार कर्म का नाश होता है। कहो, समझ में आया इसमें? **ये चार गुण प्रगट होते हैं।** ऐसा कहते हैं। प्रगट होते हैं न? पर्याय में आते हैं। वस्तु में तो थे, शक्ति में तो थे। होवे उस प्राप्त की प्राप्ति होती है। न हो, उसमें से कुछ आवे?

जब जीव के ये गुण की पूर्ण निर्मल दशा प्रगट होती है, तब लोकालोक को प्रकाशित करता है। इतनी बात ... अधिक। इस प्रकार जब होता है तब... १५०। अन्तर है इसमें कुछ? तुम्हारी गाथा में बहुत संक्षिप्त। तब वह लोकालोक जाने। यह जानना लोकालोक का (होता है), उसकी महिमा नहीं। उस लोकालोक सम्बन्धी का अपना ज्ञान है, वह प्रगट होकर जाने, वह उसकी महिमा है। समझ में आया? जो सर्वज्ञपद स्वरूप था, सर्वज्ञ स्थान में ही पद आत्मा का था, उसे पर्याय में एकाकार होकर प्रगट

किया। तीन काल-तीन लोक जाने। उसके साथ अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य और अनन्त दर्शन भी साथ में होते हैं।

भावार्थ :- घातिया कर्मों का नाश होने पर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य ये अनन्त चतुष्टय प्रकट होता है। कोई कहे परन्तु घातिकर्म का नाश होता है, तब ऐसा होता है। परन्तु यह तो पहली बात कह गये कि अपने स्वरूप का आश्रय ले तो कर्म का नाश करे, यह तो पहले कह गये, १४९ में। ऐई! कह गये या नहीं? देखो न! '**सम्मं जिणभावणाजुत्तो**' यह तो फिर संक्षिप्त भाषा की। चार कर्म का नाश हो तो अनन्त चतुष्टय प्रगटे। परन्तु यह चार कर्म का नाश हो कैसे? कि अपना अन्तर स्वभाव जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और अनन्त ऐसा ध्रुवस्तम्भ स्वयं है, ध्रुवस्तम्भ। उस स्तम्भ के साथ मन को जोड़े, ज्ञान की पर्याय को जोड़े, उस स्तम्भ से पर्याय को बाँधे। आहाहा! ध्रुव के स्तम्भ से वर्तमान पर्याय को बाँधे, तब चार कर्म का नाश होता है। कहो, समझ में आया? ध्रुव धणी माथे कियो। ध्रुव लिया अन्दर में। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन का धनी स्वभाव रंक होकर फिरता है। मुझे राग चाहिए, मुझे इज्जत चाहिए, मुझे कीर्ति चाहिए, मुझे सुविधा चाहिए, मुझे यह चाहिए, मुझे वह चाहिए। मर गया भिखारी होकर। अनन्त सम्पदा का नाथ, जिसकी सम्पदा कम न हो, चाहे जितनी निकालो तो, ऐसा स्वयं है। यह माँगा करता है, मुझे कोई बड़ा कहो, मुझे अच्छा कहो। यह दया, दान, व्रत के विकल्प से मेरा कल्याण होगा, ऐसा कहो, विकार से आत्मा को लाभ होगा, ऐसा कहो। अरे! भिखारी हुआ। क्या हुआ? समझ में आया? तुझमें कहाँ नहीं पड़ा अन्दर? कहा न, प्रगट पड़ा है अन्दर। पड़ा है, वह प्रगट करना है। है, वह प्रगट करना है। कहो, सेठ! यह तो सादी भाषा है। वस्तु है अन्दर। जो पर्याय प्रगट करने की है, वह अन्दर है। वह कहीं बाहर से नहीं आती। आहाहा! अन्तर्दृष्टि से जो अनन्त चतुष्टयपना ध्येय में है, उसमें एकाग्र होने पर चार कर्म का नाश होता है। चार कर्म का नाश होने पर चार चतुष्टय प्रगट होते हैं। ऐसी बात की। यह तो फिर ऐसा करे, ऐसा बोले परन्तु वस्तु तो ऐसी है या नहीं?

अनन्त दर्शन-ज्ञान से... दोनों इकट्ठे लेते हैं अब। उसमें जो अनन्त दर्शन और ज्ञान। अनन्त सुख और वीर्य बाद में बात। परन्तु अनन्त दर्शन और ज्ञान से तो... क्या

जाने? **छह द्रव्यों से भरे हुए इस लोक में...** छह द्रव्य से भरा हुआ यह लोक है। छह द्रव्य है। सामने जीव अनन्तानन्त। छह द्रव्य में भी एक जीव ही अनन्तानन्त द्रव्य और **इनसे भी अनन्तानन्तगुणे पुद्गलों को...** षट् द्रव्य है। छह द्रव्य जगत के अन्दर (रही हुई) चीज़ है। उसमें जीव द्रव्य ही अनन्त हैं, उससे अनन्तगुणे पुद्गल हैं। **अनन्तानन्तगुणे पुद्गलों को तथा धर्म-अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्य (एक-एक) और असंख्यात कालाणु...** हैं। और कालाणु लोकालोक में ... हो गया है। कालाणु। असंख्यात तो कालाणु हैं। या आगे-पीछे हो गया है। कालाणु। आगे-पीछे हो गया है। कहो, समझ में आया? लोकाणु हो गया है। लोकाणु। लोक के अणु काल, ऐसा। परन्तु ऐसा नहीं, मूल कालाणु है। कालाणु है। लोक का अणु हो गया। परन्तु लोक का अणु तो परमाणु है। यहाँ तो कालाणु लेना है।

असंख्यात कालाणु इन सब द्रव्यों की... ऐसे जितने द्रव्य कहे... आहाहा! षट् द्रव्य, उसमें जीवद्रव्य अनन्त, पुद्गल उससे अनन्तगुणे। दो हो गये। काल, धर्म और अधर्म एक और कालाणु असंख्य। इतने द्रव्य कहे। **इन सब द्रव्यों की अतीत अनागत और वर्तमान काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों को भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है...** आहाहा! **सब द्रव्यों की...** सर्व द्रव्यों के भूतकाल की पर्याय, भविष्य की पर्याय, वर्तमान पर्याय सम्बन्धी, अनन्त पर्याय-दशा-अवस्था भगवान के ज्ञान और दर्शन में सर्व द्रव्य को **भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है।** देखे का अर्थ सामान्य है। परन्तु यह तो भिन्न-भिन्न का अर्थ समुच्चय लेना है। सब जाने और देखे, ऐसा कहना है। ओहोहो! अलग-अलग पर्याय है, ऐसा कहना है। भूत की यह पर्याय, वर्तमान की यह और भविष्य की यह। उसे भगवान का ज्ञान सब जानता है। कहो, अब इसमें बड़ा विवाद है। भगवान सब ऐसा नहीं जानते, सामान्य जानते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि जिस समय में जो पर्याय जिस द्रव्य की जहाँ होनेवाली है, उस रीति से केवली जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? भूत, भविष्य और वर्तमान सब जानते हैं। और कोई कहे कि भविष्य जाने तो मेरी अन्तिम पर्याय कैसी, कह दे। अन्तिम है नहीं और क्या भविष्य कहे तेरा? मेरी पहली पर्याय कह दे, यदि भूतकाल जाना हो, सब जाना हो तो। आहाहा! भारी तत्त्व उल्टा। श्रद्धा में बड़ा (अन्तर)।

मिथ्यादर्शन की तीव्र... जिसे अभी ज्ञान तीन काल एक समय की जो-जो पर्याय जहाँ-जहाँ... देखो न! **सब द्रव्यों की अतीत...** पर्याय। भूतकाल की अवस्थायें। जीव की, पुद्गल की, आकाश, धर्म, अधर्म और काल की। जीव की जाने या नहीं इसमें? जीव की अतीत काल की पर्याय।

मुमुक्षु : जीव एक को न जाने तो निपट गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो एक को अपने को नहीं जाना पूरा। भूत की, भविष्य की यह पर्याय होकर पूरा द्रव्य एक है। पूरा द्रव्य ही इस प्रमाण न जाने तो उसने द्रव्य को ही नहीं जाना। समझ में आया? अपनी भी आदिरहित पर्याय और अन्तरहित पर्याय भविष्य में। भूत को, भविष्य को और वर्तमान को एक समय में ज्ञान जाने और देखे, ऐसा उसका स्वभाव शक्तिरूप था, वह एकाग्रता के ध्यान द्वारा प्रगट हुआ। समझ में आया? देखो! क्या लिखा है?

सब द्रव्यों की अतीत... अर्थात् गत काल। **अनागत...** आगामी काल, वर्तमान काल सम्बन्धी **अनन्त पर्यायों को भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है।** दो लेना है न इकट्ठा? अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन ऐसा लेना है न दो का? आहाहा! अरे! एक भाव भी यदि यथार्थ बैठे न, तो सब बैठ जाए। जिसका स्वभाव जानना, उसे न जानना यह क्या रहे? और अन्त नहीं तो अन्त नहीं-ऐसा जाना है। अन्त नहीं, इसलिए भिन्न-भिन्न पर्याय लिखी है। तो पहली मेरी पर्याय न्यारी कौन सी थी कहो? परन्तु पहली कब होती है? पहली कहो तो फिर द्रव्य नहीं था। द्रव्य नहीं था तो वह पर्याय भी नहीं थी। पहली पर्याय अर्थात् उसके पहले पर्याय नहीं थी तो द्रव्य भी नहीं था— तो वस्तु नहीं थी। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ के मार्ग की कोई भी एक रीति सम्यक् प्रकार से समझे तो उसका सब हल हो जाए। भगवान ने मेरी पर्याय भविष्य की कैसी देखी है? देखी है या नहीं देखी? तो यह क्या कहते हैं यह? भविष्य की तेरी पर्याय समय-समय की कौन सी होगी, यह भगवान के ज्ञान में आ गया है। ऐसा ही द्रव्य जीव का स्वभाव है। तीन काल-तीन लोक की पर्याय को एक समय में जाने ऐसा जीव का, ज्ञानगुण का पर्याय में स्वभाव है। समझ में आया? ऐसे स्वभाववाली पूर्ण पर्याय यह सब न जाने तो वह पर्याय पूर्ण कहाँ हुई?

तब कहे, अतीत काल सब जाना? पहला काल कौन सा? परन्तु पहला नहीं, फिर क्या रहा? अतीत... अतीत... अतीत... अतीत... ऐसे भूत... भूत... भूत... है, ऐसा जाना। बस। ऐसे भविष्य... भविष्य... भविष्य... भविष्य... भविष्य का कभी अन्त आता है? आहाहा! सूक्ष्म बातें। परन्तु अन्दर स्पर्शे ऐसी बात है।

एक समय में अनन्त द्रव्य की भूत, भविष्य और वर्तमान सब पर्याय को भगवान जानते और देखते हैं। इतना माने, तब उसने एक जीव को माना कहलाये। नहीं तो उसने जीव माना नहीं। आहाहा! आत्मा-आत्मा तो ऐसा सब कहे कि आत्मा ऐसा। परन्तु यह ऐसा आत्मा। अपनी भी भविष्य की पर्याय सब अनन्त है, उसे न जाने तो अपना द्रव्य ही त्रिकाली पूरा है, उसे जाना नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! इसके स्वभाव की अचिन्त्य महिमा है। साधारण लोगों को अगम्य लगे। अगम्य नहीं; गम्य हो, ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि तेरा स्वभाव ही ऐसा है। अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप सम्पन्न स्वभाव ही ऐसा है। प्रगट हो, तब वह था उसमें से बाहर आता है और वह तीन काल-तीन लोक की पर्याय को जानता है। इतना तो एक ज्ञान की और दर्शन की पर्याय का स्वभाव है। इतनी पर्याय का ऐसा स्वभाव है, ऐसा जो न जाने, उसे तो गुण भी जानने में नहीं आता और द्रव्य भी जानने में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? तीन काल-तीन लोक के द्रव्य और उनकी पर्यायें। तब लोग ऐसा कहे, मेरी पर्याय अभी यह है और भविष्य में ऐसी होगी, ऐसा भगवान ने जाना हो तो फिर मेरे हाथ में तो कुछ भविष्य की पर्याय करने की रही नहीं। परन्तु ऐसा केवलज्ञान है, वह एक समय की पर्याय ऐसा जाने, वह तू निर्णय करे, तब तेरी दृष्टि द्रव्य पर जाती है और पुरुषार्थ प्रमाण फिर वहाँ आगे पर्याय जो होनेवाली वह होती है। ऐसा है।

आत्मा भगवान ने तो देखा कि इसकी पर्याय इस जगह होगी और इस प्रकार से होगी। परन्तु इसका जिसे विश्वास आया है, भगवान ने ऐसा देखा है और विश्वास आया कि उसका विश्वास द्रव्य के ऊपर ढल गया है। समझ में आया? क्योंकि एक समय की पर्याय की श्रद्धा पर्याय द्वारा नहीं हो सकती। वह द्रव्य द्वारा पर्याय की श्रद्धा होती है। ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड जो द्रव्य, उसकी श्रद्धा होने पर उसका

पुरुषार्थ अन्दर में जाग उठा। भगवान ने भी ऐसा देखा कि इसे इस समय पर्याय होगी इस प्रमाण, उसने भी माना। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन। बड़ी गड़बड़। केवलज्ञान को देखने की गड़बड़ बड़ी चली है अभी। हमारे तो ठेठ से, (संवत्) १९७२ से चलता है। ७२ के वर्ष से। ५५ वर्ष हुए। ऐई! पहले से विवाद। भगवान सब जाने नहीं। यह भव न जाने। तो हो गया फिर। अमुक। अरे रे! यह क्या करता है? बापू! मूलचन्दजी थे। यह १९७२ में चर्चा हुई थी। वींछिया में। मूल तो गामडा में हुई थी। भाई को बताया था, नहीं? क्या कहलाता है वह? 'सरा' में, 'सरा' में। यह जसदण का निवास है दरबार का, वहाँ उतरे थे। उसमें आहार करने के बाद कर रहे उसमें यह शुरु हुई थी। १९७२ में। फाल्गुन शुक्ल ११, १२ या १३ होगी। ७२ में, हों! भगवान ने ऐसा देखा, ऐसा होगा। अपना पुरुषार्थ कुछ काम नहीं करता। फलाणा, ढींकणा। हम इतने संथारा करें, नव-नव वाड़ से ब्रह्मचर्य पालें, नव-नव कोटि से सन्थारा करते हैं परन्तु भव तो भगवान ने देखा, तब घटेगा। कहा, ऐसा तुम्हें किसने कहा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारे भी न, हाँ परन्तु तुम्हारे गाँव के थे या नहीं? और फिर तुम्हारा संघाडो कहलाये वह। और ...भाई तो उनके भगत। हीराजी महाराज के भगत कहलाये। ... आहाहा! ७२ में बात चली, हों! बड़ी। भगवान ने देखा, वैसा होगा। अपना भव-बव घटने का नहीं है। अरे! तुम यह क्या कहते हो? कहाँ से यह भाषा लाये? यह आगम की भाषा नहीं है। उस दिन कहा था, हों! ऐसे के ऐसे घोटाले चलते ही आते हैं यहाँ। शास्त्र की भाषा नहीं। मिथ्यादृष्टि की भाषा है, कहा।

जिसे भगवान की भाषा बैठे, जिसके हृदय में भगवान बैठे, वह तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसे भगवान है। वे भगवान जिसे दृष्टि में बैठे, उसे भव-बव होते नहीं। भगवान ने भव देखे ही नहीं होते। समझ में आया? ७२ का फाल्गुन महीना। फाल्गुन आयेगा न अब? कब? कितने वर्ष होंगे? यह ५५ पूरे होंगे। ५५। दो पाँचड़े पचपन। संघवी! तब तो कितनों का जन्म भी नहीं होगा। आहाहा! ऐसी सब बातें हमारे ठेठ से चली आती हैं। ऐई! कान्तिभाई! यह क्या कहते हो? यह भाषा कहाँ से आयी?

देखो! यहाँ भगवान ने देखा, ऐसा हो, उसमें अनन्त पुरुषार्थ है। भगवान की

पर्याय की जिसे प्रतीति होती है, वह तो भगवान का पुत्र हो गया। वह साधक होकर अल्पकाल में भगवान हो जानेवाला है। अब उसे न हो, यह प्रश्न कहाँ आया? कहा, यह कहाँ लगायी? हमारे हीराजी महाराज ने स्वीकार किया परन्तु वापस दूसरे दिन बेचारों को मिलान करना आवे नहीं न। हीराजी महाराज के क्रियाकाण्ड कैसे। हीरा अेटला हीर अेवा। फिर दूसरे दिन उलझ गये। पहले दिन मेरा पक्ष लिया। दूसरे दिन उलझ गये। यह सूक्ष्म बातें। ऐई! यह तो हमारे सब ५५ वर्ष से ऐसा चलता है। हीराजी महाराज उलझ गये, हों! दूसरे दिन। अरे! मूलचन्दजी! फिर रात्रि में बात हुई थी। मूलचन्दजी! तू कहता है ऐसा होवे तो भगवान ने भव देखे। भगवान ने भव्य-अभव्य देखे हैं। ऐई... मार्या! बहुत भोले व्यक्ति थे न। यह क्रिया करना और यह करना और धूल करना। चार बजे, साढ़े चार की बात है, दूसरे दिन। भगवान ने जो उपदेश... भव देखें होंगे या नहीं? भगवान ने भव्य-अभव्य देखे।

मुमुक्षु : चढ़ बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चढ़ बैठे। ... वह मानो कि मैं पुरुषार्थ की पुष्टि करता हूँ। उसका हेतु ऐसा। ऐसा नहीं। भगवान ने तो सब देखा है। भव और अभव तथा सब भव्य, अभव्य भव इतने एक-एक भव... समयसार में भी पाठ है, कहा। एक भव में मोक्ष जाएगा, दो भव में मोक्ष जाएगा, चार, छत्तीस भव में मोक्ष जाएगा, ऐसा पाठ है। परन्तु उसका जिसे केवलज्ञान की एक समय की पर्याय इतनी... ओहोहो! जिसके काल की आदि नहीं, जिसकी पर्याय की आदि नहीं, जिसकी पर्याय का अन्त नहीं। अर्थात् कि द्रव्य का आदि-अन्त नहीं। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त द्रव्य की अनन्त पर्याय जो ज्ञान जाने, उस ज्ञान की कितनी महत्ता! माहात्म्य कितनी अचिन्त्यता! वह केवलज्ञान की पर्याय जिसके ज्ञान में बैठे, पूरा हो गया। आहाहा! समझ में आया? उसे पर्याय के सामने देखना नहीं रहता, उसे द्रव्य के सामने देखना रहता है। क्योंकि वह पर्याय इतनी बड़ी निकलती कहाँ से है? द्रव्य में से निकलती है। शक्तिरूप प्रगट हुआ न उसमें '**पायडा**' देखो न! उसमें शक्ति है तीन काल-तीन लोक को जानने की, ऐसी शक्ति में से प्रगट हुई। ऐसी शक्ति और शक्तिवान, उसकी जहाँ दृष्टि होती है, उसे भगवान की पर्याय बैठी। उस समकिती को भव नहीं होते। भगवान ने उसके भव देखे नहीं होते।

ऐसा विवाद उठा है, ऐई! वजुभाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : अनन्त द्रव्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त द्रव्य ... यह द्रव्य अनन्त नहीं? वस्तु। वस्तु अनन्त द्रव्य। यह द्रव्य अर्थात् आत्मा अनन्त। अनन्त परमाणु, ये सब द्रव्य कहलाते हैं।

मुमुक्षु : आपने बहुवचन लगाया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुवचन ही है न! अनन्त है न? आत्मा अनन्त, परमाणु अनन्त, यह तो सादी भाषा है। परन्तु इसे अभ्यास नहीं। ऊपर का अभ्यास है। अभी अन्दर का नहीं। अनन्त द्रव्य अर्थात् अनन्त आत्मा, अनन्त द्रव्य अर्थात् अनन्त परमाणु, असंख्यात कालाणु, यह तो पहले आ गया। द्रव्य अर्थात् वस्तु। अनन्त द्रव्य हैं और उन अनन्त द्रव्यों में एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। उसकी यह बात चलती है। अभ्यास नहीं। पहले से थोड़ा अभ्यास चाहिए। ऊपर के अभ्यास से यह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। पहले थोड़ा एकडिया का अभ्यास न हो तो इसे आगे अभ्यास बैठेगा नहीं। आहाहा!

अनन्त आत्मायें, वे सब द्रव्य कहलाते हैं। द्रव्य अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय, वह तो साधारण भाषा है। लड़के को बैठे ऐसा तो। आता है या नहीं? द्रव्य किसे कहते हैं? ऐई! किसे कहते हैं? लड़कों! गुण के समूह को द्रव्य कहते हैं। उसमें क्या प्रश्न है? और गुण किसे कहते हैं? द्रव्य के सर्व भाव और सर्व हालत में रहे, उसे गुण कहते हैं। पर्याय किसे कहते हैं? गुण के विकास को पर्याय कहते हैं। हो गया, तीनों भाव तो लड़कों में आ गये, बालक को। कहो, यह सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। पहला प्रवेश करने के लिये अभ्यास चाहिए।

यहाँ तो कहते हैं, देखो न! इसमें आ गया न यह सब? पहले आ गया। उन सर्व द्रव्य की। सर्व द्रव्य अर्थात् अनन्त हो गये। **अतीत अनागत और वर्तमान काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों को भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है।** पहले आ गया है, हों! पृष्ठ १३९। पहले आ गया है इसमें। पृष्ठ १३९ है, उसमें लिखा है। बोधपाहुड़ की ४१ गाथा। **क्रमरूप होता समयादिक व्यवहारकाल कहलाता है। इसकी**

गणना से अतीत, अनागत, वर्तमान द्रव्यों की पर्यायें अनन्तानन्त हैं, इन सब द्रव्य-पर्यायों को अरहन्त का दर्शन-ज्ञान एक समय में देखता और जानता है, इसलिए अरहन्त को सर्वदर्शी-सर्वज्ञ कहते हैं। लो! है? बहुत सरस बात। सर्व द्रव्य की पर्याय का अरहन्त दर्शन-ज्ञान एक काल में देखे-जाने। भाई! यह एक भाव भी बैठना सूक्ष्म है। अन्तिम है। बोधपाहुड़ की ४१वीं गाथा। एक ओर भावार्थ से पहले। अर्थ में भावार्थ है। परन्तु दूसरे भावार्थ के बाद है। उसमें दो भावार्थ हैं। यह कठिन है, नहीं। इस बार अभी पढ़ा नहीं। अरिहन्त का स्वरूप यह नहीं पढ़ा। समझ में आया? क्या कहा?

यहाँ तो केवलज्ञान और केवलदर्शन। आहाहा! जिसकी पर्याय में अनन्त काल पहले जो पर्याय थी, वह वर्तमान ज्ञात हो। भविष्य में अनन्त काल बाद पर्याय होगी, उस द्रव्य की वह यहाँ ज्ञात हो जाए। इसका बड़ा विवाद है न। वह अर्थ है और अमुक है और अमुक। गुणगणमणीमाला। भाषा तो देखो! ओहो! 'जीणमयगयणे साय मुणिदो जीणमय गयणे।' जिनमत के गण में ऐसे मुनि पकते हैं, कहते हैं। अन्यत्र धर्मात्मा हो नहीं सकते। आहाहा! अब अभी इतनी खबर नहीं होती कि वीतरागमार्ग, वह मार्ग है और दूसरा कोई मार्ग है नहीं। दूसरे में भी कुछ है, उसमें भी कुछ बताते हैं, ध्यान का, अमुक का, ढींकणे का। धूल भी नहीं, सुन न! एक सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव ने जो वस्तु का स्वरूप और धर्म कहा, उनके मार्ग में धर्मी पकते हैं। अन्यत्र कोई धर्मी हो नहीं सकता। आहाहा! फिर यह जैनधर्म अर्थात् हमारा धर्म और अमुक धर्म तुम्हारा, ऐसा यह नहीं। वस्तु-आत्मा ही स्वयं वीतरागस्वरूप है।

'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, कर्म कटे जिनवचन सों।' जिनवचन अर्थात् जिनभाव। ऐसा। भाषा वचन लेते हैं। श्रीमद् में शब्द है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म।' पुण्य-पाप आदि अन्य सब मत अन्य। उससे कोई माने, वह सब मत ही अन्य का है। 'कर्म कटे जिन वचन से' वचन शब्द से उसके भाव। वीतरागभाव से कर्म कटते हैं। भगवान ने कहा हुआ वीतरागस्वभाव, उसकी एकाग्रता द्वारा वीतरागभाव से कर्म नाश होते हैं। कर्म कटे जिनवचन सों। यह जिन का मर्म। यह वीतराग का मर्म है। आहाहा! तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर, जिसके सिर पर स्वामी नहीं, जिसकी दृष्टि में यह परमात्मा ऐसे हैं, ऐसा जिसे लक्ष्य में नहीं, उसके मत

में कोई धर्म-बर्म हो नहीं सकता। ऐसा कहते हैं। देखो! यह आता है अन्तिम। समझ में आया?

... आहाहा! पवनपन्थ। आकाश में, पवनपन्थ अर्थात् आकाश। जैसे यह पवन फिरती है न? कोई रोकनेवाला है? आकाश को पवनपन्थ कहा। पवन इसके ऊपर चले। ... पवनपन्थ आकाश में तारा की पंक्ति से। देखो! तारा। लाखों, करोड़ों तारा होते हैं। ... उन करोड़ों तारा से-परिवार से वेष्टित—पिरोया हुआ पूर्णमासी का चन्द्रमा। वह गगनपन्थ, आकाशपन्थ। जैसे पवनपन्थ में वह चन्द्रमा बहुत ताराओं से शोभता है। पूर्णिमा का चन्द्र, आहाहा! आहाहा! **वैसे जिनमतरूपी आकाश विषे...** वीतराग भगवान ने कहा हुआ जो मार्ग, ऐसा जो आत्मा का स्वभाव, ऐसे वीतरागभाव के मार्ग में गुणसमूह मणि की माला। वह गुण के समूह वह हुई मणि की माला। वहाँ मणि की माला गुण के समूह की होती है। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं होती। आहाहा! और उसने वीतराग में जन्मा, उसे वीतराग की खबर नहीं वापस। वाड़ा में जन्मा। भगवान सच्चे। जय नारायण, जाओ। समझ में आया? देखो! आचार्य अन्तिम गाथायें डालते हुए (कहते हैं)। 'जिनवर गयणे' वीतरागमार्ग का भाव, वह आत्मा वीतरागस्वरूप, उसमें एकाग्रता होकर वीतरागदशा प्रगट हो, वह जिनमत में ही होता है। अन्यत्र ऐसा नहीं होता। समझ में आया? कहो, जयन्तीभाई! अन्यत्र कहीं नहीं होता।

अभी सब ऐसे जगे हैं न कितने ही बेचारे जैन भी वहाँ सिर फोड़ते हैं। चलो सुनने, वहाँ कुछ है। धूल भी नहीं, सुन न! जिसका एक आत्मा पूर्ण सर्वज्ञपदवाला तत्त्व है, उसकी ही इसे पर्याय में सर्वज्ञपद प्रगट होता है। ऐसा जिसे आत्मा का और आत्मा के पद की पर्याय का भान नहीं, उन सबके मार्ग में किसी प्रकार धर्म का मार्ग नहीं हो सकता। समझ में आया? क्योंकि धर्म प्रगटे, वह धर्मी पूर्ण आत्मस्वभाव हो, उसके आश्रय से प्रगट होता है। पश्चात् वह सर्वज्ञपद और सर्वज्ञ पूर्ण आनन्द पदवाला ही उसका पद है। आहाहा! अर्थात् कि जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं, एक आत्मा तीन काल-तीन लोक को जाने—ऐसा जिसका मत नहीं, उसमें धर्म की गन्ध नहीं होती। आहाहा! आचार्य को यह कहना है, हों! अन्दर। 'जिनवर गयणे' वीतरागमार्ग के गगन में

जिन्होंने-परमात्मा ने आत्मा को ऐसा कहा, ऐसा जाना, अनुभव करते हैं, उसे अनुभव और धर्म होता है। आकाश में जैसे चन्द्रमा करोड़ों ताराओं से शोभता है पूर्णिमा का चन्द्र, उसी प्रकार यह धर्मात्मा जिनमत में शोभता है। जिनमत में यह शोभता है। समझ में आया? मुनिन्द्ररूपी चन्द्रमा शोभते हैं। आहाहा! देखो न! अपनी बात भी अन्दर (कहते जाते हैं)। आचार्य हैं, आचार्य। आहाहा! जिन्हें वीतरागी किरणें प्रगट हुई हैं और उसमें अनेक प्रकार के गुण की माला, उससे वे शोभते हैं, लो! जैसे वह ताराओं से शोभता है। कौन? चन्द्र। चन्द्र ताराओं से शोभता है, वैसे धर्मात्मा अनन्त गुण की निर्मल धारा से शोभता है। आहाहा! यह ताराओं का परिवार। समझ में आया? क्या कहते हैं। आहाहा!

भगवान चैतन्य प्रभु पूर्ण स्वरूप, ऐसी बात जिनमत में ही होती है। ऐसे पूर्ण स्वरूप को प्राप्त किया है जिसने श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र में, ऐसे अनन्त गुणों के तारारूपी वेष्टित होकर वे मुनि चन्द्रमा समान जैनशासन में शोभते हैं। यह व्रत पालनेवाला और अमुक, ऐसा इसमें नहीं लिया। आहाहा! देखो तो सही, क्या कहते हैं? अनन्त गुण जो परमात्मा ने आत्मा में देखे, ऐसे अनन्त गुण अन्यत्र कहीं हो सकते ही नहीं। ऐसे अनन्त गुणों का रूप, उसे जिसने आश्रय करके, स्थिरता करके उन अनन्त गुणों की धारा श्रेणी में प्रगट की है, वह जिनमत में चन्द्रमा समान शोभता है। समझ में आया? रागवाले और अधिक परिवारवाले और अधिक साधु किये हों, इसलिए शोभते हैं, ऐसा नहीं है-ऐसा कहते हैं। अधिक शिष्य बनाये, इसलिए यह बड़ा है। उसके अनन्त गुणों में से धारावाही श्रेणी प्रगट की, वे मुनि चन्द्रमा समान, जैसे आकाश में चन्द्र शोभता है, वैसे शोभते हैं। ऐसे आचार्य को एकदम वीतरागभाव का अन्दर हुलास आया है, लो! समझ में आया? विशेष आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १२, सोमवार, दिनांक १७-०६-१९७४
गाथा - १५१-१५२, प्रवचन-१७६

१५० हुई न? कहा कि ... यह भावपाहुड़ है। **अनन्त चतुष्टयरूप जीव का निजस्वभाव प्रकट होता है,...** ऐसा कहकर यह कहा कि जीव का स्वभाव ही अनन्त चतुष्टय है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य—ऐसा ही उसका चतुष्टय स्वभाव अनादि से उसमें है। उसे जिनभावना द्वारा प्रगट करना, ऐसा कहा गया है। जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। ४९ में आया है न? '**सम्मं जिणभावणाजुत्तो**'। वह जिनस्वरूप ही चतुष्टय है, उसे जिन अर्थात् वीतरागी पर्याय द्वारा, सम्यग्दर्शन द्वारा उसे शक्ति में है, उसे पर्याय में प्रगट करना। **ऐसा परमार्थ से श्रद्धान करना, वह ही सम्यग्दर्शन है।** है न? आहाहा!

आत्मा अनन्त ज्ञान-अपरिमित ज्ञान... कल तो पर्याय में आया था अक्षय अमेया। पर्याय भी प्रगट होती है मोक्षमार्ग की, वह भी अक्षय और अपरिमित अमेय—मर्यादारहित पर्याय है। ऐसा वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय में भी अक्षय, अमेयपना आता है। तो वस्तु तो अनन्त चतुष्टयमय है। उसकी सम्यग्दर्शन द्वारा भावना करने से प्रगट हो और उसकी उस प्रकार से श्रद्धा करना कि परमार्थ स्वरूप ऐसा आत्मा का है, वह इस प्रकार से प्रगट होता है, ऐसी श्रद्धा करना।

★ ★ ★

गाथा - १५१

आगे जिसके अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं, उसको परमात्मा कहते हैं। जितने विशेषण हैं, वे वस्तु में हैं और चैतन्यस्वभाव की भावना द्वारा प्रगट होते हैं, उसे भी यह नाम लागू पड़ते हैं। यहाँ यह कहते हैं, प्रगट होते हैं उसके नाम।

णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हू चउमुहो बुद्धो।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं॥१५१॥

उसे **परमात्मा ज्ञानी है,...** जिसे परम स्वरूप प्रगट हुआ, अन्तर सर्वज्ञपने की पर्याय, वह परमात्मा है और वह ज्ञानी है। **शिव है,...** वह शिव—निरुपद्रव दशा प्रगट हुई है। वह **परमेष्ठी है...** परम इष्ट पर्याय में प्राप्त हुए हैं, वह सर्वज्ञ परमेश्वर। ऐसी ही उसकी शक्ति भी है, उसमें से यह व्यक्तता हुई है, ऐसा कहते हैं। **विष्णु है,...** अर्थ करेंगे बाद में। सर्वव्यापक है। ज्ञान द्वारा सबको जानते हैं, इस अपेक्षा से उसे सर्वव्यापक विष्णु कहा जाता है। **चतुर्मुखब्रह्मा है,...** भगवान परमात्मा तीर्थंकर को चार मुख होते हैं। सब चारों ही दिशा के देव आदि उन्हें, भगवान मेरे सामने हैं, ऐसा देखते हैं।

मुमुक्षु : .... देखे परन्तु सामने ...

पूज्य गुरुदेवश्री : है उसमें। तब मुख है वहाँ। देखे का अर्थ ऐसा कहना कि चाहे जिस जगह बैठे हों और भगवान सामने ही है, ऐसा मुख (हो) वहाँ, ऐसा। उसका मुख ही इस प्रकार से होता है चारों ओर। ब्रह्मा को चार मुख कहते हैं न वे लोग? यह ब्रह्मा वह नहीं, ब्रह्मा यह भगवान। आहाहा! चतुर्मुख—चारों ओर चार मुख। अर्थात् चाहे जिस दिशा में बैठा हो तो उसे भगवान मेरे सामने है, ऐसा मुख वहाँ है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिखाई दे। यह तो प्रगट है। एक मुख और चार दिखते हैं, ऐसा नहीं। यह तो चार हैं और चार दिखते हैं, ऐसा कहना है। इसलिए सभा के लोगों को चाहे जहाँ बैठे हों तो उसे भगवान यहाँ हैं ऐसे। मुख वहाँ उस ओर उनका। उनका उस ओर, उनका उस ओर। ऐसा।

मुमुक्षु : चार अनुयोग से होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार अनुयोग की यहाँ बात नहीं। यह चारों ओर का मुख है, यहाँ तो इतना। वस्तु है। चार अनुयोग, इसलिए चार मुख हैं, ऐसा नहीं। यह तो वह चौमुख दशा ही ऐसी उनकी शक्ति से शरीर के चार प्रकार ही मुख दिखते हैं।

मुमुक्षु : .... के चार प्रकार है या .... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चार ही होते हैं। एक हो और चार दिखायी दे, ऐसा नहीं। चार होते हैं। चार होते हैं और चार दिखते हैं।

मुमुक्षु : सब छद्मस्थ को एक मुख होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक दिखता है ऐसे। वहाँ दूसरा, वहाँ तीसरा, वहाँ चौथा। ऐसा। ऐसी चतुर्मुख अथवा अनन्त चतुष्टय की दशा प्रगट हुई, इसलिए चार मुख हो गये जिनके। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं चार। दिखते हैं, ऐसा नहीं। यह तो भाई ने कहा न उस स्फटिक में दिखते हैं, ऐसा नहीं। स्फटिक में दिखते हैं ऐसे, खबर है न! यह तो चार (होते हैं)।

बुद्ध है... ब्रह्मा। **चतुर्मुखब्रह्मा है...** देखा! चतुर्मुख का अर्थ ब्रह्मा किया यह। वह स्वयं ब्रह्मा चार मुख से... वाणी तो अन्दर ध्वनि से निकले, वहाँ कहीं वाणी मुख से नहीं निकलती। भाषा ऐसी बोली जाती है, शास्त्र में ऐसा आता है कि भगवान मुख से बोलते हैं। आता है न पंचास्तिकाय में पहला शब्द आता है। मुख से वाणी निकली। परन्तु वह तो जगत की शैली है, इस अपेक्षा से कहा है, बाकी वाणी पूरे शरीर में से निकलती है। ॐ ऐसी ध्वनि पूरी उठती है। क्योंकि अखण्ड आत्मा पूर्ण स्वरूप दशा हो गयी, उनकी वाणी में अखण्डता ही खड़ी होती है। ऐसे ब्रह्मा, वह विष्णु चतुर्मुख है। वह बुद्ध है। देखा, विष्णु, ब्रह्मा, बुद्ध के सब नाम दिये। उन्हें और उन्हें। ऐसी दशावन्त को। उसे आत्मा कहते हैं। उसे आत्मा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। देखा! पूर्ण दशा प्राप्त हो गयी है परमात्मा सर्वज्ञ, उन्हें आत्मा कहते हैं, उन्हें परमात्मा कहते हैं। **और कर्मरहित है, यह स्पष्ट जानो।** उन्हें कर्म है नहीं।

भावार्थ :- ज्ञानी कहने से सांख्यमती ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यमात्र मानता है... उसका निषेध किया। सांख्यमतवाले (ऐसा कहते हैं), जानना यह और क्या? जानना नहीं। जानना, वह तो ... जानना जीव का स्वभाव ही है। तीन काल-तीन लोक, उन्हें नहीं, परन्तु अपनी पर्याय में... है न? इतना ही आत्मा है। पूरा आत्मा तब ही होता है। (द्रव्य से पूरा है) पर्याय में पूर्ण ज्ञान और दर्शन, आनन्द आदि हो, इतना होता है। कहा न यह? एक जीव के ... श्रद्धान करना, वह सम्यग्दर्शन है। ऐसा आत्मा है। **ज्ञानी कहने**

से सांख्यमती ज्ञानरहित उदासीन... उदासीन, ऐसा कहते हैं। ... ऐसा नहीं। व्यवहार से... अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को ... त्रिकाली है, उसे वह जानता है। वस्तु है जिसे... है। एक समय में त्रिकाल... ऐसा जो आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं।... उसे ज्ञान कहते हैं।...

(नोंध - १३ मिनिट से २२ मिनिट तक प्रवचन बराबर सुनाई नहीं देता। इसलिए वह भाग नहीं लिया गया है।)

चतुर्मुख कहने से केवली अरहन्त के समवसरण में चार मुख चारों दिशाओं में दिखते हैं, ऐसा अतिशय है,... केवली भगवान के समवसरण में, समवसरण में चार मुख... चारों ही दिशाओं में दिखाई देते हैं, **इसलिए चतुर्मुख कहते हैं—अन्यमती ब्रह्मा को चतुर्मुख कहते हैं...** ब्रह्मा भगवान। दिव्यध्वनि दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज। है अतिशय... दिखता है बराबर है। चार मुख दिखते हैं। एक है इसलिए चार दिखते हैं, (ऐसा नहीं), वहाँ चार दिखते हैं। **चारों दिशाओं में दिखते हैं, ऐसा अतिशय है, अन्यमती ब्रह्मा को चतुर्मुख कहते हैं—ऐसा ब्रह्मा कोई नहीं है। बुद्ध है अर्थात् सबका ज्ञाता है—बौद्धमती क्षणिक को बुद्ध कहते हैं...** यह तो तीन काल-तीन लोक को जाने, इसलिए बुद्ध।

आत्मा है... देखो! ... निकाला। मूल पाठ में है न '**अप्पो वि य परमप्पो**' आत्मा है परमात्मा। यहाँ भिन्न किया। **अपने स्वभाव में ही निरन्तर प्रवर्तता है...** अतति गच्छति... आत्मा अर्थात् अपने स्वभाव में प्रवर्ते, इसलिए आत्मा। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य है, यहाँ तो ज्ञानस्वभावी वस्तु... उस द्रव्य को भी आत्मा कहा जाता है, इस अपेक्षा से। अपने में प्रवर्तता है, इसलिए उसे भी आत्मा तो कहा जाता है। आत्मा अर्थात् उसका स्वरूप। आत्म अर्थात् उसका स्वरूप। आहाहा! उस द्रव्य का आत्मा अर्थात् उसका स्वरूप। यहाँ तो आत्मा स्वयं अतति गच्छति इति आत्मा। अपने अनन्त गुण ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि में प्रवर्तता है, इसलिए उसे आत्मा कहते हैं। यह द्रव्यसंग्रह में वह है।

अन्यमती वेदान्ती सबमें प्रवर्ते हुए आत्मा को मानते हैं... शासन अर्थात् पूर्ण रूप से। शासन का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पूर्णरूप। पूर्ण जिसकी शक्ति की व्यक्तता है अर्थात् कि वह पूर्ण पर्याय है, उसमें उस गुण की, उसकी पर्याय की .... इसलिए उसे आत्मा कहते हैं। **परमात्मा है अर्थात् आत्मा का पूर्णरूप अनन्त चतुष्टय उसके प्रगट हो गये हैं,...** वह परमात्मा परम... **कर्म जो आत्मा के स्वभाव के घातक घातियाकर्मों से रहित हो गये हैं, इसलिए कर्म विमुक्त है अथवा कुछ करनेयोग्य काम न रहा, इसलिए भी कर्मविमुक्त है।** ऐसी दो बातें की। करना रहा नहीं, इसलिए कार्यमुक्त है। आहाहा! आठ कर्म से रहित है और नया कार्य करना रहा नहीं अब, इसलिए कर्म से विमुक्त है, कार्य से विमुक्त है, ऐसा। आहाहा!

सांख्यमती, नैयायिक सदा ही कर्मरहित मानते हैं, वैसे नहीं है। सांख्यमती तो सदा ही कर्मरहित मानते हैं। यहाँ तो कर्मरहित होता है, तब कर्मरहित है, ऐसा कहते हैं। वे लोग तो सदा निर्मल विकाररहित (मानते) हैं। ऐसा नहीं। वस्तु त्रिकाल निर्मल है, यह बराबर है। परन्तु पर्याय में सदा ही निर्मल कर्मरहित है, ऐसा नहीं। **ऐसे परमात्मा के सार्थक नाम हैं। अन्यमती अपने इष्ट का नाम एक ही कहते हैं, उनका सर्वथा एकान्त के अभिप्राय के द्वारा अर्थ बिगड़ता है,...** वास्तविक अर्थ साबित नहीं होता। **इसलिए यथार्थ नहीं है। अरिहन्त के ये नाम नयविवक्षा से सत्यार्थ है।** जिस अपेक्षा से कहा, उस अपेक्षा से बराबर सत्यार्थ है। **ऐसा जानो।** लो! निश्चयनय से लिया। उसकी वास्तविक...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायनय से। यह प्रगट हुआ वह पर्यायनय से। शक्ति, वह द्रव्यार्थिकनय से। पर्याय से प्रगट हुआ, ... आहाहा! पूर्ण प्रगट हुआ पर्यायनय से। पूर्ण पर्याय हो गयी है, ऐसा जानते हैं।

आगे आचार्य कहते हैं कि ऐसा देव मुझे उत्तम बोधि देवे—ऐसे देव की व्याख्या-स्वरूप जानकर, अहो! परमात्मा! मुझे दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्तम बोधि दो। आहाहा! ... ख्याल में आया न सब। ऐसा-ऐसा आत्मा है, ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दे उसका अर्थ कि मैं जानूँ और मुझे प्रगट हो। यह तो देव

आया नहीं था पहला? आ गया है। देव सब दे। देव धर्म दे, पुण्य दे, पैसा दे, लक्ष्मी दे, भोग दे और मोक्ष दे। दे का अर्थ निमित्त हो, ऐसा कहना है। यह पाठ है। देव, ददाति इति देव। पाठ है कुन्दकुन्दाचार्य का।

मुमुक्षु : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष। है चारों ही... भगवान को जो पहिचानकर माने, उसे मोक्ष भी होता है, उसे बाकी बीच में रह जाये राग का भाव, तो उसे पैसा, लक्ष्मी भी मिले, उसे कुछ बाकी रहे तो 'कामदं मोक्षदं' कहा है न। 'ॐकार बिंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिन, कामदं मोक्षदं' साधक को राग बाकी रहता है तो सबसे उत्कृष्ट भोग मिले चक्रवर्ती के, बलदेव के, तीर्थंकर के, ऐसा कहते हैं। उसमें क्या, वस्तु स्वरूप है न! पैसा दे, काम दे, भोग दे, मोक्ष दे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त के कथन हैं। ददाति इति देव। उनके पास हो वही समझावे ने। ऐसा कहते हैं। जिसके पास नहीं, वह क्या समझायेगा? यह आ गया है इसमें। देव में आ गया है न उसमें?

मुमुक्षु : बोधपाहुड़ की २४ गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! २४?

आगे पाँच अणुव्रतों का स्वरूप कहते हैं :— ठीक! २४ गाथा। पृष्ठ १००।

सो देवो जो अत्थं, धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।
सो देह जस्स अत्थि हु, अत्थो धम्मो य पव्वज्जा॥२४॥

उनके पास हो वह दे, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसके पास सब नहीं और उनके पास सब है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब है, समझने के लिये। आहाहा! यह वहाँ आचार्य स्वयं कहते हैं न, हे नाथ! मुझे, मम उत्तम बोहि दो। यह गाथा है यहाँ देखो न १५२। देने का अपना भाव है न वह। मुझे यह वस्तु प्राप्त होओ। ऐसी दिव्यशक्ति की पर्याय पूर्ण प्रगट

हुई, उसकी मुझे श्रद्धा-ज्ञान है, चारित्र भी है, परन्तु उत्तम पूर्ण प्राप्त होओ। माँगे तब तो ऐसा ही बोला जाये न। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' नहीं आता लोगस्स में? 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'। मुझे दिखाओ। दो। इसका अर्थ कि वह सिद्धपद मुझे दिखाओ, मुझे केवलज्ञान हो, तब मैं सिद्धपद जानूँ, ऐसा। लोगस्स में आता है न। लोगस्स में आता है। लोगस्स आता है सामायिक में। सामायिक चलती है, उसमें एक लोगस्स है। लोगस्स उज्जोयगरे... यह अपने दिगम्बर में कम चलता है। सामायिक है, सामायिक में यह पाइ है दिगम्बर का। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'। हे सिद्ध भगवानो! वह सिद्धि मुझे बताओ, दो। इसका अर्थ यह सिद्धपद की प्राप्ति की भावना है वहाँ। ऐसा है भाई! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १५२

आगे आचार्य कहते हैं कि ऐसा देव मुझे उत्तम बोधि देवे— लो, यह वहाँ का यहाँ आया।

इय घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवविज्जिओ सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो देउ ममं उत्तमं बोहिं॥१५२॥

यहाँ तो सकल शरीरसहित ही भगवान को लिया है।

आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! भावना अपनी है न यहाँ? '**देउ ममं उत्तमं बोहिं।**' बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसकी पूर्णता प्रभु! मुझे दो। आहाहा! यह आत्मद्रव्य की भावना है। मेरी पूर्ण दशा है, वह मुझे प्राप्त होओ। ऐसा कहने से मुझे ऐसी बोधि दो, ऐसा कहा है। आहाहा! लो, ऐसे समयसार जैसे अध्यात्म शास्त्र के कर्ता (ऐसा कहते हैं)। एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य को दी जा सकती नहीं। लो! परन्तु व्यवहार से बोला जाता है। भाषा ऐसी आवे न! सर्वस्व आत्मा दिया। नहीं आता? प्रवचनसार चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में। सब दिया प्रभु! आपने मुझे। लो! श्रीमद् में आता है न 'वह तो प्रभु ने ही दिया।' वह किस अपेक्षा से है, ऐसा जानना चाहिए न! सर्वस्व आपने दिया प्रभु मुझे मेरा आत्मा, संयम, चारित्र, दर्शन, ज्ञान, वह सब मुझे दिया। आहाहा!

मुमुक्षु : .... बाकी रह गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ बाकी है न, इसलिए कहते हैं न! पूर्ण कहाँ है? केवल (ज्ञान) नहीं, इसलिए माँगता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है। आहाहा! बात तो इतनी ही आवे। '**देउ ममं उत्तमं बोहिं।**' तीन की एकता की पूर्णता मुझे दो, ऐसा। इसका अर्थ मुझे बोधि दो। बोधि में तीन आते हैं, कहीं अकेला सम्यग्दर्शन नहीं आता। बोधि में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों आते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... तोड़ता है वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : तोड़ता है वह। पर्याय में पूर्णता के लिये भावना आवे न। पर्याय में पूर्णता होने की भावना होवे न! विकल्प उठे, वह भले, परन्तु उसके पीछे जोर है पुरुषार्थ का। पूर्ण होने के पुरुषार्थ का जोर है अन्दर।

मुमुक्षु : विकल्प उठा....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उसका यहाँ काम नहीं।

यहाँ तो आहाहा! जो पर्याय प्रगट हुई है दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसकी उसमें एकाग्रता विशेष करना चाहते हैं और पूर्ण प्राप्ति करने की भावना है। आहाहा! भाषा तो ऐसी ही आवे न! उसमें नहीं आया? (समयसार) तीसरे कलश में कि प्रभु! मुझे यह टीका करने से मेरी परम विशुद्धि प्रगट होओ। टीका करने में तो विकल्प है। परन्तु उस टीका के काल में मेरा जोर जो द्रव्य के ऊपर जाता है, वह जोर वहाँ पूरा हो गया, ऐसा कहते हैं। टीका के काल में, भले टीका से कहा, (परन्तु) काल में। आहाहा! मेरी जो धुन चढ़ी है द्रव्य के ऊपर... आहाहा! वह धुन वहाँ पूरी हो जाओ अब, ऐसा कहते हैं। तब वे लोग ऐसा कहते हैं न कि देखो! यह टीका करने से परमविशुद्धि होगी। विकल्प से परमविशुद्धि होती है, कहते हैं। उसमें लिखा है, उसका अर्थ ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो उसमें ऐसा कहा न? तद् गुण लब्धये।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

(मोक्षशास्त्र, मंगलाचरण)

प्रभु! तेरे गुण की प्राप्ति के लिये वन्दता हूँ। तब वहाँ तो विकल्प है वन्दन का। तो विकल्प से तद्गुण की प्राप्ति होगी? यह अर्थ आया था, उस ओर से। उस ओर से आया था कि देखो, उसमें कहा है। है तो वन्दन का विकल्प, वन्दन करते हैं और उस वन्दन से गुण की प्राप्ति मुझे होओ। वह तो भावना का बोल है। विकल्प से होता होगा? मेरा जोर मेरे स्वभाव के ऊपर है, उसमें से मेरी पूर्ण प्राप्ति हो जाओ। वह गुण तुम्हारी पर्याय में जो है, ऐसी पर्याय में मेरे स्वभाव की धुन की धुन में चढ़ने से प्राप्त होओ, ऐसा कहते हैं। मेरे द्रव्य के स्वभाव में आरूढ़ होने से पूर्ण होओ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शब्द को पकड़े उसका अर्थ क्या? उसका तात्पर्य पकड़ना चाहिए न! यह आया था उस ओर से अर्थ। देखो! इसमें ऐसा लिखा है तद् गुण लब्धये। भगवान की भक्ति में फिर राग कहाँ आया? भगवान की स्तुति में राग कहाँ आया? वहाँ तो गुण की प्राप्ति होती है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं, भाई! वह तो राग के विकल्प के लक्ष्य में नहीं लिया, इसलिए उसे गौण करके अपना जो लक्ष्य जहाँ है, उसे बढ़ाने के लिये यह कहा है। आहाहा! द्रव्य का आश्रय जो है, उससे अधिक आश्रय करने की बात ... है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, परन्तु क्या हो? लोगों ने वीतराग मार्ग को पूरा फेरफार कर डाला। व्यवहार से निश्चय होता है, निमित्त से उपादान में होता है, क्रमबद्ध नहीं। सब गड़बड़ की है।

यहाँ तो जिस समय जिसकी पर्याय, पहले कहा था न कल, नहीं परसों। उत्पत्ति जो गुण की होती है, उस गुण की उत्पत्ति की पर्याय को दूसरा द्रव्य-गुण अपने की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति की अपेक्षा है और होता है, बापू! यह वस्तु में ऐसा नहीं है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी उत्पाद जो होता है, उसे पूर्व के मोक्षमार्ग की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! वह पूर्ण पर्याय जो होती है, अनन्त आनन्द, अनन्त सर्वज्ञपना, उस समय के उत्पाद को जिसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, पूर्व की पर्याय की अपेक्षा नहीं तो कर्म के अभाव और संहनन की अपेक्षा तो कहाँ है? आहाहा! इस प्रकार ही वस्तु का सत् प्रसिद्ध होता है। दूसरे प्रकार से (नहीं होता)। आहाहा!

भगवान से तो नहीं, पूर्व की पर्याय से भी नहीं, द्रव्य और गुण से नहीं। आहाहा! ऐसी जो वीतरागी केवलज्ञान की पर्याय अहेतुक है, कोई उसका हेतु नहीं, ऐसी वह सत्पर्याय प्रगट होती है। उसे किसी की अपेक्षा नहीं। पर कारकों की अपेक्षा नहीं, पर

निमित्त की अपेक्षा नहीं, उस पर्याय का दाता द्रव्य नहीं। लो! आया है या नहीं? योगसार (प्राभृत) में। आहाहा! इसका अर्थ वह पर्याय स्वतन्त्र सिद्ध की है। आहाहा! द्रव्य, गुण कारण हो तो द्रव्य, गुण तो एकसरीखे हैं। तो पर्याय एकसरीखी उत्पन्न होनी चाहिए और सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि की अपूर्ण उत्पन्न होती है, और वह बढ़ती है, इसलिए बढ़ती है उसका कारण क्या? द्रव्य-गुण से होती हो तो वह तो एकरूप त्रिकाल है। परन्तु पर्याय की अपनी योग्यता से वह पर्याय प्रगट होती है। आहाहा!

(नोंध—४३ से ५१ मिनिट तक का समझ में नहीं आता। इसलिए नहीं लिया गया है।)

उस समय ऐसी बात साधारण आ गयी है। लोगों को... परन्तु उस प्रकार के संस्कार रह गये हों इसलिए। क्षुधा-तृषा भगवान को कैसी? वह है उसमें। क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होते, वृद्धावस्था नहीं होती, ऐसी जिनकी दशा अठारह दोषरहित। श्वेताम्बर अठारह दोष दूसरे कहते हैं। नोकर्म के अभाव के। यहाँ तो यह सब है। और श्रीमद् ने बाद में रत्नकरण्डश्रावकाचार का अर्थ किया है अन्तिम... शब्दार्थ से। अठारह दोष यह होते हैं। यह अठारह दोष रहित भगवान हैं, ऐसा लिखा है। पुस्तक नयी है न उसके पीछे। परन्तु वे ऐसा (कहते हैं) कि उसका अनुवाद उन्होंने किया है। परन्तु उससे क्या? अन्त में तो संक्षिप्त कर डाला है। पत्र है। नयी पुस्तक में आया है, प्रकाशित हुआ है। भगवान अठारह दोषरहित होते हैं। रत्नकरण्डश्रावकाचार का अर्थ किया है। भगवान को क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होते, वृद्धावस्था नहीं होती। अरे! पूर्ण परमात्मदशा, उन्हें फिर असाता के उदय का प्रसंग कहाँ? वह आहार करे और आहार लेने जाये और दूसरे को आहार करने का कहे। भगवती (सूत्र) में है। भगवान को छह महीने तक दस्त। पेचीस क्या कहलाती है वह? छह महीने रही। छह महीने बाद दवा माँगी। ले आये। साधु को हुकम किया, जाओ ले आओ दवा। दवा ले आये, दवा खायी, रोग मिट गया। पन्द्रहवें शतक में अधिकार है पूरा। सब कल्पित बातें हैं। भगवान को क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होते, कुछ नहीं होता। ऐसे भगवान को भगवान अरिहन्त कहा जाता है। अभी तो अरिहन्त की भी खबर नहीं। आहाहा!

परमेश्वर अरिहन्तदेव 'णमो अरिहंताणं' वे कैसे होते हैं, उनका यह वर्णन है।

चार कर्म का नाश हुआ है, इसलिए उन्हें क्षुधा-तृषा आदि अठारह दोष से रहित हैं। हाँ। उनसे रहित परन्तु शरीरसहित हैं। ऐसा कहा। सकल कहा न सामने। सकल। अठारह दोष रहित हैं, परन्तु शरीरसहित हैं। शरीरसहित हैं, इसलिए क्षुधा-तृषा है, ऐसा नहीं। आहाहा! उन्हें तो अमृत का अनुभव है। आहाहा! प्रवचनसार में आता है पहले में (कि) शरीर सम्बन्धी सुख-दुःख केवली को नहीं। आता है न! सुख-दुःख नहीं केवली को बाहर में। क्षुधा लगे तो दुःख हुआ है। ... होवे तो दुःख होता है। सर्वज्ञ किसे कहना, उसकी व्याख्या की ही खबर नहीं। ऐसे के ऐसे वाडा में पड़े, यह मानकर बैठे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्रों में लिखा हो, वह पहले जो लिखनेवाला था, उसे खबर थी, तथापि अलग पंथ करने के लिये उसने अलग लिखा। लिखा है तो लिखा न! दर्शनसार में तो लिखा है। दर्शनसार में लिखा है कि पहला जो (उल्टा अर्थ) निकालनेवाला नरक में गया। जानकर ऐसा लिखा है। चलता पंथ ऐसा है। ... बताया था दर्शनसार। है न, है न सब बातें हैं। दर्शनसार में ... ऐसा मार्ग परमात्मा का अनादि से चलता आया, उसमें उसने बदल डाला, वह पहले नरक में गया है। पाठ है दर्शनसार में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है न। उसे ... बात आवे तब तो भाई! परसों कहा था, नहीं? तुम नहीं थे। परसों रात्रि को निकाला था। देवसेनाचार्य। आहाहा!

भगवान परमात्मा अरिहन्तदेव को क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, रोग नहीं। अनन्त आनन्द की दशा जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसे भगवान तीन शरीरसहित हैं। **और तीन भवनरूपी भवन को प्रकाशित करने के लिये प्रकृष्ट दीपक तुल्य देव है,...** लो! ... दूसरा है न? महा उत्तम दीपक है। आहाहा! तीन भवनरूपी भवन। तीन लोक को प्रकाशित करनेवाले परमात्मा दीपक के समान हैं। एक-एक बोल को यथार्थ माने... ऐसा नहीं चलता, ऐसा कहते हैं। उसे ... वे भगवान ऐसे थे और भगवान ऐसे हो गये। जाओ। ऐसा नहीं चलता। भाव ख्याल में आना चाहिए। तीन भुवन के भवन को प्रकाशित करने के लिये

प्रदीप हैं। प्र अर्थात् प्रत्यक्ष, दीपक तुल्य देव हैं। ऐसे देव परमात्मा हैं। महाविदेह में विराजते हैं, सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकरदेव अरिहन्तपद में महाविदेह में वर्तमान विराजते हैं। अठारह दोषरहित हैं। क्षुधा, तृषा नहीं। परम औदारिकशरीर है। परम औदारिकशरीर को रोग कैसे? जिसके प्रकाश में नजदीक मनुष्य आकर देखे तो उसे सात भव दिखायी दे। भूतकाल के तीन ... सब कल्पित किया हुआ है। वह तो न हो तो कहाँ से देखे? वह तो है नहीं। वह तो उसमें आ जाते हैं, ऐसा कहते हैं। होती नहीं यह बात... यह बात तो ठीक की। भविष्य में एक ही ... हो। यह तो उत्कृष्ट हो, उसे ऐसा भासित हो। ऊँची बात हो न।

भगवान तीन भवन के प्रकाशित करनेवाले हैं। **वह मुझे उत्तम बोधि...** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, आहाहा! ऐसे परमात्मा! जिन्हें लक्ष्य में लिया है और उस लक्ष्य का बाण मारा है ध्रुव के ऊपर। समझ में आया? आता है न वह? मति-श्रुत का बाण आता है। अष्टपाहुड़ में आता है। आहाहा! ऐसे भगवान मुझे परमात्मा... एक तो उनकी अस्ति सवीकार की, एक तो उनकी पूर्ण दशा को स्वीकार किया और उन्हें वाणी होती है, ऐसा स्वीकार किया, इसलिए हम कहते हैं कि प्रभु! हमको पूर्ण दो अब। आहाहा! ऐसा वाणी का योग मिलो और हमको पूर्ण प्राप्ति अन्दर में हो। आहाहा! क्योंकि अभी शरीर बाकी है न उनको? वर्तमान मुनि हैं, केवलज्ञान कहीं प्राप्त नहीं कर सके, स्वर्ग में जा सकते हैं। एक भव अभी बाकी है। हमको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दो। यही माँगते हैं, लो! हमको पुण्य मिले, स्वर्ग मिले, तीर्थंकर प्रकृति मिले, यह माँग नहीं यहाँ तो। आहाहा! हमारे मार्ग की पूर्णता हमको प्राप्त होओ।

वस्तु जो आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता की पूर्णता होओ। आहाहा! विकल्प है तो भी वह पूर्णता के लिये है। **इस प्रकार आचार्य ने प्रार्थना की है।** लो! कुन्दकुन्दाचार्य जैसे भी भगवान को इस प्रकार पहिचानकर अपनी भावना को प्रसिद्ध करते किया है भगवान के नाम से। तुम मुझे दो। परन्तु इस नाम से अपनी प्रसिद्धि की है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १३, मंगलवार, दिनांक १८-०६-१९७४
गाथा - १५२ से १५५, प्रवचन-१७७

भावार्थ है न १५२ का? १५२। आचार्य ने, अठारह दोषरहित भगवान तीन भुवन के दीपक समान... वह मुझे प्राप्त होओ। यहाँ तो मुझे दो, ऐसा कहा है।

भावार्थ :- यहाँ और तो पूर्वोक्त प्रकार जानना,... यह तो ठीक चार घाति (कर्मों) का नाश किया। **परन्तु सकल विशेषण का यह आशय है कि मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति करने के जो उपदेश हैं, वह वचन के प्रवर्ते बिना नहीं होते हैं और वचन की प्रवृत्ति शरीर बिना नहीं होती है,...** ऐसा सिद्ध करना है। **इसलिए अरिहन्त का आयु कर्म के उदय से शरीरसहित अवस्थान रहता है...** केवलज्ञान होने पर भी शरीर की स्थिति, अवस्था अर्थात् रहना, आयु प्रमाण रहते हैं। **और सुस्वर आदि नामकर्म...** दूसरी बात— भाषा कहनी है न। उपदेश निकलता है न। जो पूर्ण होने के बाद उपदेश न हो तो उपदेश सुननेवाले को तो कुछ मिले नहीं। **सुस्वर आदि नामकर्म के उदय से वचन की प्रवृत्ति होती है।** दो बातें। एक तो परम औदारिकशरीर। एक बात ऐसी कही है। उनको परम औदारिकशरीर होता है और वह शरीर होता है तो वाणी की प्रवृत्ति होती है।

इस तरह अनेक जीवों का कल्याण करनेवाला उपदेश होता रहता है। अन्यमतियों के ऐसा अवस्थान (ऐसी स्थिति) परमात्मा के सम्भव नहीं है, इसलिए उपदेश की प्रवृत्ति नहीं बनती है,... यह तो भगवान हुए पूर्ण तो हो गया, अनन्त में अनन्त समा गये, इसलिए उन्हें वाणी और शरीर होता नहीं, ऐसा। परन्तु यहाँ सिद्धान्त रखा है कि जब सर्वज्ञ हों और यदि शरीर न हो तो वाणी न हो। इसलिए वाणी का उपदेश सर्वज्ञ होने पर भी होता है, वह शरीर हो तो होता है। इसलिए भगवान को शरीर होता है, ऐसा सिद्ध करना है।

बड़ी चर्चा हुई थी एक बार। वडवा, भावनगर में वडवा है न वडवा, वहाँ (संवत्) १९८६ के वर्ष में। यह उपदेश क्या? पूर्ण होने के पश्चात् उपदेश क्या?

वडवा है न? भावनगर। भाई कुंवरजीभाई आये थे। कुंवरजी आणंदजी आये थे, वहाँ दर्शन करने आये थे। गाँव में नहीं आये थे। गाँव में थोड़े दिन रहे। परन्तु वहाँ उन्हें... आये थे। यह बात हुई थी कि पूर्ण परमात्मा हो, उनकी यह वाणी है, उसकी क्या सिद्धि? पूर्ण सर्वज्ञ हों, उन्हें शरीर होता है। शरीर न हो तो वाणी न हो और वाणी न हो तो उपदेश न हो, हो गया। तो सर्वज्ञ ने जाना, वह क्या जाना? और कैसे जाना? यह बात तो आवे नहीं।

मुमुक्षु : निमित्त का योग।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का योग नहीं, वह शरीर होता है, ऐसा कहना है वहाँ। जहाँ सर्वज्ञ पूर्ण दशा पूर्ण आनन्द का गोला भिन्न पड़ गया, तथापि वहाँ शरीर होता है। अघातिकर्म बाकी हैं न? शरीर होता है। घाति का नाश हुआ है। इसलिए वह शरीर होता है, वचन की प्रवृत्ति उपदेश की होती है। अन्यमत में वह होता नहीं। वह तो सर्वज्ञ हुए पूर्ण (हुए), इसलिए मिल गया दूसरे में। इसलिए उसे—अशरीरी को वाणी ऐसा कि भगवान थे और उन्हें नाद निकला, वह शरीर बिना। ऐसा नहीं। ऐसा करके पूर्ण परमात्मपद स्थापित किया, उसे अघाति के कर्म के कारण से अघाति है (तो) शरीर स्थापित किया और उसे नामकर्म उदय है अघाति में, इससे सुस्वर नामकर्म के उदय के कारण वाणी निकले। अन्यमतियों को यह नहीं। **तब मोक्षमार्ग का उपदेश भी नहीं बनता है,...** जो सर्वज्ञ पूर्ण दशा हुई और शरीर न हो तो वाणी नहीं होती तो उपदेश बनता नहीं और अल्पज्ञ का उपदेश पूरा समान होता नहीं, ऐसा। आहाहा! **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! '**सयलो**' शब्द करके दो स्थापित किये। '**सयलो**' अर्थात् कलसहित अर्थात् शरीरसहित अर्थात् परम औदारिकशरीर एक। और परम औदारिकशरीर तो वाणी निकले। दो इसके अर्थ।

★ ★ ★

गाथा - १५३

आगे कहते हैं कि जो ऐसे अरिहन्त जिनेश्वर के चरणों में नमस्कार करते हैं, वे संसार की जन्मरूप बेल को काटते हैं :— यह आधार आया... पत्रों का। देखो! यह भगवान को वन्दन करे, उसमें जन्मरहित होते हैं। यह गाथा आयी थी। यह तो सम्यग्दृष्टि है, जिनदशा, जिनदशा प्रगटी है। अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व गये, इतनी जिनदशा प्रगटी है। उसे जिनवर केवलज्ञान के प्रति बहुमान का विकल्प आता है, उसे उस स्वभाव का आश्रय है, उससे जन्मबेल कटती है। यह गाथा आयी थी। रतनचन्दजी ने रखी थी बहुत वर्ष पहले। देखो! कहते हैं।

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण॥१५३॥

अर्थ :- जो पुरुष... जो कोई आत्मा **परम भक्ति अनुराग से...** इतना शब्द प्रयोग किया है न यहाँ तो। '**परमभत्तिराएण**' परम भक्ति के अनुराग से। वह तो सम्यग्दृष्टि को ही होता है। आहाहा! पंचास्तिकाय में नहीं लिया? भक्ति वास्तव में तो समकिती को ही होती है। आता है, पंचास्तिकाय में टीका में आता है। अज्ञानी की भक्ति, वह भक्ति होती ही नहीं। क्योंकि वह तो राग को ही माननेवाला है। पंचास्तिकाय में टीका में है। आहाहा! जिसे आत्मा राग से भिन्न पड़ा है, जैसी वीतराग की दशा पूर्ण है, उस जाति की दशा जिसे प्रगट हुई है। विकल्पसहित आत्मा था, उसे विकल्परहित जाना है। रागरहित आत्मा है चैतन्य दल शुद्ध, ऐसा जिसे भान हुआ है, वह जीव जिनवरदेव की पूर्ण प्राप्ति दशा जिसे हुई है, उसे वह '**परमभत्तिराएण**' उसे ही सच्ची भक्ति होती है और उसे विकल्प होता है भले, परन्तु उस विकल्प से ही जन्मवेली का नाश नहीं होता। वे यह डालते हैं उसमें अभी। ऐसे तो पाठ बहुत आते हैं शास्त्र में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु '**वरभावसत्थेण**' परन्तु यह कहते हैं न '**परमभत्तिराएण। ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति**' ऐसा। वह वरभक्ति वह वरशस्त्र है शुभ। अन्दर राग से रहित, बहुमान ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव का बहुमान आया है अन्तर में से, वह जब

वीतराग का बहुमान भक्ति अनुराग से करता है, तब स्वभाव के आश्रय का शुद्धभाव जो है, उससे '**जम्मवेल्लिमूलं खणंति**'। वास्तव में तो उसे मिथ्यात्व का नाश है, इसलिए अनन्तानुबन्धी का भी नाश है और जन्म का मूल तो उसने नाश कर डाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मूल यह अर्थ करने में पूरा विवाद।

जो पुरुष परम भक्ति अनुराग से जिनवर के चरणकमलों को... 'णंबुरुहं' यह न कमल? **चरणकमलों को नमस्कार करते हैं...** जिसे अन्तर में रागरहित आत्मतत्त्व का अनुभव हुआ है, उसे ही परमात्मा के प्रति भक्ति, परम राग और अनुराग आता है। अज्ञानी को होती ही नहीं। समन्तभद्राचार्य ने कहा है, वहाँ चौबीस स्तवन में। हे नाथ! अभव्य आपको वन्दन नहीं कर सकता। क्यों? कि राग के प्रेमी (को) वीतराग के प्रति उसे बहुमान नहीं आता। अभव्य की बात ली है। चौबीस स्तवन है न। ग्रंथिसत्ता, ऐसा शब्द पड़ा है वहाँ। ग्रंथिसत्ता अर्थात् जिसे राग की गाँठ की सत्ता पड़ी है। जिसे राग की गाँठ की एकता है वह जीव, प्रभु! आपको वन्दन नहीं कर सकता। क्योंकि उसने रागरहित भाव क्या है, वह देखा नहीं, जाना नहीं; इसलिए वीतरागभाव के प्रति उसे बहुमान नहीं आता। समझ में आया? आहाहा!

वे श्रेष्ठभावरूप शस्त्र... वह श्रेष्ठभाव अर्थात्? अपना जो वीतरागस्वभाव, चैतन्य ज्ञायकस्वभाव का जो भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि का भाव, वह श्रेष्ठभाव शस्त्र है। उससे **जन्म अर्थात् संसाररूपी बेल के मूल जो मिथ्यात्व आदि...** देखा! अर्थात् कि जिसे अन्तर आत्मभाव के प्रति बहुमान आया है, उसे वीतराग के प्रति बहुमान आने पर उसे स्वभावरूपी भाव के शस्त्र द्वारा मिथ्यात्व आदि, अनन्तानुबन्धी आदि के कर्म को **नष्ट कर डालते हैं।** नाश कर डालता है। उन्होंने दृष्टान्त तो दिया था वह धवल में आता है न पहला? भगवान के जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है। आता है न? ऐसे उसे लगती यह पुष्टि दी थी। धवल में आता है, धवल।

मुमुक्षु : ....पहली श्रद्धा की बात की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, की है न वह। यह इन्होंने स्पष्टीकरण किया है। यह तो कहे, प्रतीति जिनेश्वरदेव की श्रद्धा-रुचि और प्रतीति है, ऐसा।

(भावार्थ।) **अपनी श्रद्धा-रुचि-प्रतीति से जो जिनेश्वरदेव...** परन्तु यह श्रद्धा-रुचि-प्रतीति किसकी ? स्व की, पर की नहीं। वहाँ अर्थ में अन्तर है न ? वहाँ भी **अपनी श्रद्धा-रुचि-प्रतीति से जो जिनेश्वरदेव को...** ऐसा। अपना भगवान आत्मा निर्विकल्प-स्वरूप है, आनन्द नाथ है, राग के अभावस्वभावरूप है, उसकी श्रद्धा, रुचि और प्रतीति, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मूल तो भाव के मूल अभिप्राय को समझे बिना शास्त्र के अर्थ हों, वे सब फेरफार हो जाये फेरफार। यहाँ कहते हैं कि **मिथ्यात्व आदि कर्म, उसको नष्ट कर डालते हैं (खोद डालते हैं)।** अर्थात् नाश हो जाता है, ऐसा। मूल में से निकल जाता है, मूल उखड़ जाता है ऐसा। आहाहा!

अपनी श्रद्धा-रुचि-प्रतीति से... अपनी अर्थात् अपना जो आत्मा, उसकी श्रद्धा, शुद्ध चैतन्य ज्ञायक हूँ, उसकी प्रतीति—रुचि से **जो जिनेश्वरदेव को नमस्कार करता है,...** पण्डित जयचन्द्रजी ने तो यह स्पष्टीकरण किया है। तो वे कहते हैं कि नहीं। यह जिनेश्वरदेव की भक्ति करते हैं, उससे ही संसार का नाश होता है। परन्तु उसे नहीं होता दूसरे को सच्ची। जिसे वीतरागभाव का प्रेम जगा नहीं, उसे पूर्ण वीतराग के प्रति सच्चा प्रेम आयेगा ही नहीं।

मुमुक्षु : उसे तो राग की ही भक्ति होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की ही भक्ति करे, ... सत्ता नहीं। आहाहा! बहुत बात!

राग विकल्प है, उसके प्रति जिसे प्रेम है, उसे तो स्वभाव के प्रति द्वेष है। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य के ऊपर जिसे प्रेम नहीं, उसे तो राग के ऊपर प्रेम है। राग के प्रति प्रेम है, उसे त्रिकाली शुद्ध ध्रुव स्वभाव उसके प्रति उसका अनादर है। परन्तु जिसे शुद्ध स्वभाव के प्रति आदर है, उसे राग के प्रति प्रेम और आदर नहीं। आहाहा!

यह नमस्कार... **सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपने को जानकर...** देखा! **उनके सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपने को जानकर भक्ति के अनुराग से नमस्कार करता है, तब ज्ञात होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह चिह्न है,...** ऐसा। आहाहा! सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का चिह्न बाह्य। अपने को बहुमान प्रगट हुआ है स्वभाव के प्रति, इससे स्वभाव प्राप्त पुरुष के प्रति उसे बहुमान आता है। यह उसका बाह्य लक्षण है। **इसलिए**

मालूम होता है कि इसके मिथ्यात्व का नाश हो गया,... लो! ठीक! यहाँ तो। उसने यह दृष्टान्त दिया था। जिनबिम्ब के दर्शन से मिथ्यात्व निद्धत-निकाचित का नाश होता है। परन्तु वह जिनबिम्ब का दर्शन कौनसा? जिनबिम्ब यह। वह धवल में आता है पहले भाग में। रतनचन्दजी वह दृष्टान्त बहुत देते हैं। जिनबिम्ब के दर्शन से, परन्तु जिनबिम्ब यह है निष्क्रिय, अकेला जाननेवाला, जिसमें क्रिया नहीं दिखती, ऐसा मैं हूँ। ऐसी जिसे दृष्टि हो, उसका निद्धत-निकाचित कर्म नाश होता है। आहाहा! उसने जिनबिम्ब के दर्शन किये कहलाते हैं। निष्क्रिय ऐसा पड़ा है बिम्ब भगवान का। भले सामने प्रतिमा है। कुछ हिले नहीं, चले नहीं, स्थिर। ऐसा ही मैं हूँ। जिसमें राग की क्रिया नहीं, वीतरागी बिम्ब प्रभु है, जिनबिम्ब आत्मा है। जिसे श्रीमद् ने चैतन्य प्रतिमा कहा है, नहीं? चैतन्य प्रतिमा। अर्थात् रागरहित चैतन्य प्रतिमा है, उसके जिसने दर्शन किये, उसके मिथ्यात्व का नाश होता है, उसकी संसार बेलड़ी टूट जाती है। आहाहा! परन्तु यह लोग तो ऐसा कहना चाहते हैं बाहर से सभी।

परद्रव्य के प्रति झुकाव है, वहाँ तो राग है। स्वद्रव्य के आश्रय बिना मिथ्यात्व का और अज्ञान का और कषाय का नाश नहीं होता। परद्रव्य के आश्रय से नहीं होता। यह तो कहा था न, मोक्ष अधिकार में आया था न! '**परदव्वादो दुग्गइ**' परद्रव्य के आश्रय से तो दुर्गति है, अर्थात् चैतन्य की जो परिणति है, वह खड़ी होती ही नहीं। समझ में आया? '**परदव्वादो दुग्गइ**' चाहे तो तीर्थंकर त्रिलोकनाथ हो, परन्तु उसकी ओर झुकाव हुआ तो वह राग है दुर्गति। दुर्गति अर्थात् वह आत्मा की गति नहीं। आहाहा! बहुत मार्ग! '**सदव्वादो हु सुग्गइ**' ऐसा लिया है वहाँ तो। दो शब्द पड़े हैं इतने में। स्वद्रव्य से सुगति अर्थात् सुपरिणमन है। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव का आश्रय करने से शुद्ध परिणति उत्पन्न होती है। इसके बिना पर के आश्रय से कभी शुद्ध परिणति नहीं होती। ऐसी बात है। अर्थ करने में पूरा बड़ा विवाद है। बहुत जोर से यह लेख आया। देखो! इस प्रमाण इसमें आया है। अष्टपाहुड़ में ऐसा आया है, फलाना में आया है। सब आया है, बापू! मूल वस्तु की दृष्टि किये बिना जितने अर्थ होते हैं, वे सब विपरीत होंगे, राग (के कारण) विपरीत होंगे, भाई! यह तो मार्ग अन्तर वीतराग का है। वीतराग ऐसा कहते हैं कि मेरे सामने देखता है, तुझे राग होगा। आहाहा! तेरे सामने तू

देख। वहाँ तुझे वीतरागता होगी। आहाहा! यह तो वीतराग की वाणी में ऐसा है। '**परदव्वा**' का कारण यह कहा न?

बात यह है कि स्ववस्तु है, वह महा आनन्ददायक शुद्ध चैतन्यघन है। उसका जिसे अन्तर में मान-बहुमान आया नहीं, उसे परमात्मा के प्रति बहुमान की सच्ची भक्ति हो सकती ही नहीं। समन्तभद्राचार्य ने ऐसा कहा है, नाथ! ग्रंथीसत्ता, जिसे राग की एकताबुद्धि है, ऐसे अभव्य हो या भव्य, वह आप वीतराग अक्रियबिम्ब पूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्द की परिपूर्णता जिसकी एक दशा में (प्रगट हुई), जिसे राग की गन्ध और अंश नहीं, ऐसी पर्यायवन्त की, जिसे राग की एकता है, वह वीतराग के प्रति बहुमान उसे नहीं हो सकता। आहाहा! अन्तर से नहीं आता है। समझ में आया?

यहाँ तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का चिह्न कहा। जिसे अन्तर में बहुमान आया है। जिसे परपदार्थ के प्रति झुकाव का राग भी जिसे रुचि में से छूट गया है। आहाहा! अन्तर्मुख भगवान चैतन्यस्वरूप के प्रेम में जो पड़ा है, वह तो वीतरागभाव के प्रेम में पड़ा है। प्रीति कहते हैं न, निर्जरा अधिकार में। वहाँ प्रीति कर, वहाँ रुचि कर, वहाँ सन्तोष कर। वहाँ कल्याणमार्ग वहाँ है। आहाहा! यह वीतरागपने को जानकर भक्ति (कर)। वीतरागपना ऐसा जाने कब? वीतराग को वीतरागपना जाने कब? आहाहा! उसके लक्ष्य में रागरहित आत्मा आवे, तब यह वीतराग है, ऐसा जान सकता है। आहाहा! इसका नमूना हाथ में आये बिना यह माल पूरा है, ऐसा जानेगा कौन? समझ में आया? ऐसी बात है परन्तु शब्दार्थ बदल डाले। वे ऐसा कहते हैं कि तुमने अर्थ बदल डाले।

मुमुक्षु : सोनगढ़ का अर्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ ने अर्थ बदल डाले। भगवान! शान्त हो न, भाई!

मुमुक्षु : अभी कितने अर्थ बदला करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था न, रामजीभाई के ऊपर आया था। सोमचन्दभाई का आया था। कलोल से। कलोल-कलोल। सब अर्थ बदलने के बदले तुम ही बदल जाओ न, ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! उसे बैठा हो, ऐसा कहे न। उसे भासित हो, ऐसा कहे। आहाहा! रामजीभाई के ऊपर आया था, सोमचन्दभाई का।

★ ★ ★

गाथा - १५४

अब आगामी संसार की वृद्धि इसके नहीं होगी,... आहाहा! संसार कैसा? राग की एकता संसार, (वह टूट गया), वह तो संसार था, मिथ्यात्व वह संसार था। आहाहा! स्वभाव में संसार है नहीं। राग की एकता, वह मिथ्यात्व, वह संसार था। आहाहा! वह जिसने तोड़ा है और जिसे स्वभाव में संसार नहीं, उसका जिसे आदर और अनुभव हुआ, उसे भविष्य में संसार नहीं। आहाहा! **इस प्रकार बताया है।** लो, यह १५३। बहुत ही सरस गाथायें हैं।

आगे कहते हैं कि जो जिनसम्यक्त्व को प्राप्त पुरुष है, सो वह आगामी कर्म से लिप्त नहीं होता है :— जिन समकित। वीतरागी समकित उसका अर्थ है। आहाहा! तब और यह दूसरा अर्थ पूरा आता है। चौथे गुणस्थान में वीतराग समकित नहीं होता, सराग समकित होता है। यह और यह प्रश्न आता है। वे रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं और एक यह ... पत्र आवे बेचारे उपदेशरूप से यहाँ। रतनचन्दजी का नहीं आता, इसका विकासचन्दजी का आता है। ऐसा कि तुम चौथे गुणस्थान में वीतराग समकित कहते हो। सब अर्थ उल्टा है, दुनिया को उल्टे रास्ते ले जाते हो। उसे लगे ऐसा कहे न। यहाँ तो जिनसमकित, यह चौथे गुणस्थान की बात है। जिन अर्थात् रागरहित आत्मा की प्रतीति हुई, वह वीतराग ही पर्याय है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप पूर्ण की प्रतीति तो वीतरागभाव की प्रतीति और वीतराग पर्याय की प्रतीति हुई। समझ में आया? वस्तु—आत्मा स्वयं वीतरागस्वरूप है, जिनस्वरूप है। उसकी प्रतीति जिनस्वरूप ही होती है पर्याय की, वीतरागता ही होती है उसकी। आहाहा! परन्तु क्या हो? चोर कोतवाले को दण्डे, ऐसा हुआ है।

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो॥१५४॥

लो! **अर्थ :- जैसे कमलिनी पत्र अपने स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता है,...** पानी में उसका लेप लगता नहीं। क्योंकि वह उस कमल के रोम कोरे होते हैं। कमल के रोम बारीक-बारीक होते हैं और रूखे-कोरे। उसे पानी छूता ही नहीं। **वैसे ही**

सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष है... आहाहा! **वह अपने भाव से ही क्रोधादिक कषाय और इन्द्रियों के विषयों से लिप्त नहीं होता है।** आहाहा! यह जो तीन कषाय का भाव फिर रहता है या दो का (रहता है), उसमें अपनी पर्याय में उसे एकता नहीं करता। **अपने भाव से ही क्रोधादिक कषाय और इन्द्रियों के...** विषय की वासना या क्रोधादि भाव, परन्तु स्वभाव की दृष्टि हुई है वीतरागी पर्याय, उस भाव में इस भाव का लेप नहीं लगता। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- सम्यग्दृष्टि पुरुष के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का तो सर्वथा अभाव ही है,... यह तो नाश हो गया है। आहाहा! **अन्य कषायों का यथासम्भव अभाव है।** यथासम्भव चौथे-पाँचवें आदि। **मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी के अभाव से ऐसा भाव होता है। यद्यपि परद्रव्यमात्र के कर्तृत्व की बुद्धि तो नहीं है,...** लो! परद्रव्य की कर्तृत्वबुद्धि तो है नहीं। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि लिप्त नहीं होता, उसकी व्याख्या करते हैं। **परद्रव्यमात्र के कर्तृत्व की बुद्धि तो नहीं है, परन्तु शेष कषायों के उदय से कुछ राग-द्वेष होता है, उसको कर्म के उदय के निमित्त से हुए जानता है,...** आहाहा! **इसलिए उसमें भी कर्तृत्वबुद्धि नहीं है,...** क्या कहा? दो बातें कीं। परद्रव्य की कर्तृत्वबुद्धि नहीं और कर्म के निमित्त से होते विकार की कर्तृत्वबुद्धि नहीं। दोनों उठाया। आहाहा! क्योंकि ज्ञाता-दृष्टा के भान में राग दिखे सही कर्म के निमित्त से, परन्तु उसकी कर्तृत्वबुद्धि नहीं है। आहाहा! और परद्रव्य की कर्तृत्वबुद्धि तो है ही नहीं। आहाहा!

तो भी उन भावों को रोग के समान हुए जानकर... ऐसा वापस। रागादि हों, वह रोग हुआ, रोग के समान जानता है। आहाहा! पानी कहा न, जैसे कमलिनी का पत्र पानी से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का आत्मा राग की कर्तृत्वबुद्धि नहीं मानता, पर का कर्ता नहीं, इसलिए उसे एकता नहीं, इसलिए लिप्त नहीं होता। आहाहा! इन्होंने दृष्टान्त दिया है अन्दर। रस्सी होती है न रस्सी? वह केवली का दृष्टान्त दिया है उसमें, परन्तु इसमें तो इसका दिया है। वह रस्सी जली हुई हो न रस्सी जली हुई? सिंदरी, सिंदरी। सिंदरी समझते हो? यह काथी। वह जले तो दिखाई दे आकार बराबर ऐसा ही, आकार तो ऐसा ही दिखाई दे परन्तु उसमें कस नहीं। जल गयी। कस नहीं। वह कहीं बाँधने में काम आवे या वहाँ पड़ी है, वह उठाने में काम आवे, (ऐसा नहीं है)। आकार

तो ऐसा लगे ऐसा। डोरा हो पक्का। डोरी जली हुई। जले हुए का आकार व्यवस्थित दिखाई दे, ऐसे जैसा है वैसा। कस नहीं, जल गया है। इसी प्रकार राग का आकार दिखाई दे अन्दर ज्ञानी को, दुनिया देखे, परन्तु वह अन्तर से जल गया है। आहाहा! तीन-चार दृष्टान्त दिये हैं। असतीनाथ का एक दृष्टान्त दिया है। व्यभिचारिणी स्त्री हो, ऐसे पति को खबर पड़े। सम्बन्ध रखे परन्तु अन्दर का प्रेम नहीं। ऐसा दृष्टान्त दिया है, असतीनाथ। अर्थात् व्यभिचारिणी के पति को व्यभिचारिणी के साथ सम्बन्ध हो, ऐसा रखे। घर में तो होता है, अन्दर प्रेम नहीं। इसी प्रकार आत्मा का भान रागरहित हुआ, उसे राग आता अवश्य है, होता अवश्य है, प्रेम नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का।

रोग के समान जानकर अच्छा नहीं समझता है। रोग अच्छा लगे? भाई! शरीर में क्षय रोग लागू पड़ा। ठीक, अब एकदम शरीर। ठीक किया। ऐसा होता है? क्या कहा जाता है वह? केन्सर। केन्सर आता है अन्दर। हाय! केन्सर का कहे वहाँ चिल्लाहट मचाये। केन्सर। अब तो कोई उपाय नहीं। क्षय का तो अभी कुछ उपाय-उपाय मनुष्य मानता है, मिटने का हो तो। यह तो कहे, हो गया, हाय... हाय। वह रोग को अच्छा नहीं मानता। उसी प्रकार धर्मात्मा राग भले शुभ आवे, अशुभ भी हो, परन्तु उसे भला नहीं जानता। आहाहा! धर्मी की दृष्टि वीतरागभाव स्वभाव पर होती है। वीतरागस्वभाव आत्मा का, उसके ऊपर दृष्टि होती है। इसलिए राग होने पर भी राग का कर्तृत्व नहीं, राग का स्वामी नहीं, वह वास्तव में राग से लिप्त भी नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है।

रोग के समान जानकर अच्छा नहीं समझता है। इस प्रकार अपने भावों से ही कषाय-विषयों से प्रीति-बुद्धि नहीं है,... लो! अपने ज्ञान-दर्शन के भाव के प्रेम से, ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव की रुचि और श्रद्धा के प्रेम से **कषाय-विषयों से प्रीति-बुद्धि नहीं है,...** कषाय-विषय हो, परन्तु प्रीति-बुद्धि नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? राग का प्रेम है, वह आत्मा का द्वेष है और आत्मा का प्रेम है, वहाँ राग के प्रति प्रेम नहीं। दो बातें। एक म्यान में दो नहीं रह सकते। जिसे आत्मा का प्रेम हुआ, उसे राग का प्रेम रहे, ऐसा नहीं रह सकता। राग रहे, प्रेम न रहे। यह बात ऐसी है। अक्रियबिम्ब चैतन्यप्रभु जहाँ आनन्द का नाथ... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से भरपूर भण्डार है, ऐसा जहाँ अन्तर प्रतीति में, प्रेम में, रुचि में, अनुभव में आया, उसे राग,

दु:ख और व्यभिचार ऐसे राग के प्रति प्रेम कैसे हो? व्यभिचार है। आहाहा! इस अपेक्षा से उसे विषय कषाय के प्रति प्रीति-बुद्धि नहीं। **इसलिए उनसे लिप्त नहीं होता है,...** ऐसा इस अपेक्षा से।

जलकमलवत् निर्लेप रहता है। आहाहा! धायमाता का दृष्टान्त दिया है। धायमाता नहीं? धाव खिलावे बाल। धायमाता होती है न, वह बालक को खिलावे। धायमाता बालक को खिलावे, बराबर पुत्र की भाँति खिलावे, परन्तु जानती है कि यह पुत्र मेरा नहीं। 'सम्यग्दृष्टि जीवडा करे कुटुम्ब प्रतिपाल, अन्तर से न्यारो रहे ज्यों धाव खिलावे बाल।' धायमाता का पच्चीस का वेतन करके रखा हो। अभी अब अधिक होगा लो न। पच्चीस-पचास की तो अभी गिनती ही नहीं रही। अभी लोग ऐसा कहते हैं। कुछ गिनती नहीं। साधारण नौकर हो तो कहे सौ रुपया वेतन, डेढ़ सौ का (वेतन)।

मुमुक्षु : उसका वेतन पूरा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा नहीं होता। आहाहा! इसलिए यह तो इतना वेतन...

परन्तु यहाँ तो कहते हैं, 'धाव खिलावे बाल।' धायमाता दूध पिलावे। अपने दृष्टान्त दिया है न उसमें भी। ईश्वर-ईश्वरनय। ४७ नय है न, प्रवचनसार। उसमें धायमाता का (दृष्टान्त) दिया है। ज्ञानी को राग होता है पराधीन(रूप से) परन्तु उसका वह स्वामी नहीं वस्तु की दृष्टि से, तथापि पर्यायरूप से स्वामी है। ईश्वरनय में वह है, ईश्वरनय में यह कहा है। ४७ नय चलते हैं न प्रवचनसार (में)। उसमें ईश्वर-अनीश्वरनय चला है। वह पर्याय को वहाँ सिद्ध किया है। उसमें है उतना। आहाहा! परन्तु मेरी है, ऐसा नहीं। वस्तु स्वभाव से मेरी है, ऐसा नहीं। पर्याय अपेक्षा से मुझमें है, ऐसा माना है। आहाहा! इसलिए यह दो प्रकार के कथन न, इसलिए लोगों को (ऐसा लगे)। कर्तृत्व नहीं, वहाँ और कहे कर्तृत्व है ज्ञानी को। वह परिणमता है, इस अपेक्षा से कर्तृत्व है, ऐसा। मालिकी स्वभाव की अपेक्षा से मालिक नहीं। ऐसा तो परिणमता है, इस अपेक्षा से मालिक है ज्ञान की अपेक्षा से। वह मालिक कहा है उसे, अधिष्ठाता कहा है, स्वामी कहा है। ज्ञानी भी राग का स्वामी है। परन्तु किस अपेक्षा से? कि पर्याय की अपेक्षा से। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरुगम बिना समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कठिन बातें। बात ऐसी है। वस्तुदृष्टि से वह स्वामी नहीं। दृष्टि और दृष्टि के स्वभाव की अपेक्षा से स्वामी नहीं, पर्याय अपेक्षा से स्वामी है। आहाहा! ऐसा स्वरूप पूर्ण स्वरूप, अखण्ड स्वरूप। उसकी पर्याय है उसमें है। क्या वह पर में है? आहाहा! एक ओर तो यहाँ कहते हैं कि वह लिप्त नहीं होता। वह इस अपेक्षा से—स्वभाव की अपेक्षा से। समझ में आया? परन्तु जितना राग हुआ है, उतना लेप है। ऐसी बात अब। प्रत्येक में ऐसी बात इसे लेनी चाहिए, स्यात् कथंचित्।

मुमुक्षु : दोनों पहलू।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों पहलू का ख्याल रखना चाहिए, वरना एकान्त हो जायेगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रीतिबुद्धि नहीं, इस अपेक्षा से लेप नहीं। राग के प्रति रुचि नहीं। राग अच्छा है—ऐसा नहीं, इसलिए इस अपेक्षा से लिप्त नहीं होता। आहाहा! ऐसे कहो तो दसवें गुणस्थान तक राग से छह कर्म का बन्ध पड़ता है। यहाँ अस्तित्व में राग है तो बन्ध पड़ता है। आहाहा! ज्ञान है, वह तो समय-समय की दशा का विवेक करता है। दृष्टि है, उसे तो अभेद के ऊपर ही, उसका विषय अभेद है। सम्यग्दर्शन ही स्वयं निर्विकल्प है, उसमें विकल्प नहीं, स्वयं अपने को जानता नहीं। उसका विषय सामान्य है पूरा। क्योंकि यह सामान्य है, ऐसा उसे ख्याल नहीं, परन्तु इस ओर ढला, इसलिए सामान्य है, ऐसा उसे कहा जाता है। यह सामान्य है, इसलिए मैं इसकी प्रतीति करूँ, ऐसा है वहाँ? आहाहा! यह तो ज्ञान जानता है कि यह सामान्य है। श्रद्धा सामान्य की करती है, वह तो ज्ञान जानता है। उसने की है न, परन्तु वही ज्ञान जब पर्याय में राग आता है, होता है, तब जानता है (कि) उसका पर्याय का राग का आधार मैं हूँ, राग का स्वामी मैं हूँ, राग का लेप मुझमें है, राग का कर्तृत्व मेरा है, राग का भोक्तृत्व मेरा है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। आहाहा! उसकी समय-समय की सम्हाल ली है।

यहाँ तो कहते हैं कि वह लेप नहीं, किस अपेक्षा से कहा? कि उसे अन्दर

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का नाश हुआ है, इसलिए उसे राग की एकता नहीं, भिन्नता है। इसलिए उसकी प्रीति नहीं, उसके प्रति रुचि नहीं, इस अपेक्षा से उसका उसे लेप है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब इसमें चर्चा करने जाये वाद-विवाद (करे) तो पता नहीं लगता। 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ वहाँ वह वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' यह आता है न! आहाहा! 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ वहाँ वह वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' अरे! देखो न, काल चला जाता है। आहाहा! ऐसी बातें सुनते हैं कि यह मर गया... यह मर गया... यह मर गया। चले जाते हैं देह बेचारे को, हो गया। भव का अभाव किये बिना। आहाहा! भव के भाव लेकर जाये धूल के देह में। कहीं चौरासी के गहन वन में अवतार हो। आहाहा! उसे तोड़ने का उपाय एक यह है। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, शुद्ध है, एक है, अभेद है। उसका आश्रय ले, उसे संसार की बेलड़ी टूटती है। कहा भले यहाँ भगवान की भक्ति से। समझ में आया? आहाहा! उसे ही सच्ची भक्ति होती है। यह पंचास्तिकाय में है।

जलकमलवत् निर्लेप रहता है। इससे आगामी कर्म का बन्ध नहीं होता है, संसार की वृद्धि नहीं होती है, ऐसा आशय है। लो!

★ ★ ★

गाथा - १५५

आगे आचार्य कहते हैं कि जो पूर्वोक्त भावसहित सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष हैं, वे ही सकल शील संयमादि गुणों से संयुक्त हैं, अन्य नहीं है :— यहाँ अब यह सिद्ध करना है कि जो सम्यग्दर्शन भावसहित है, उसे शील और संयम होता है, मुनिपना। अब उसे कहे हैं, विशेष अधिक है न। जिसे आत्मा का भान, वीतरागपने का भान है, उसे शील और संयम और चारित्र होता है, उसे मुनि कहते हैं, ऐसा अब कहते हैं।

ते च्चिय भणामि हं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं।
बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो॥१५५॥

आहाहा! **अर्थ :- पूर्वोक्त भावसहित सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं...** जिसे आत्मभावसहित सम्यग्दृष्टि है। रागभाव उसका नहीं, परन्तु अब उसे आसक्ति जो है, उसे भी जो टालता है। **शील संयम गुणों से...** ओहोहो! आत्मा का शान्तस्वभाव वीतराग जिसने प्रगट किया है। अब चारित्र की बात है यह। शील और संयम सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शनसहित जिसके यम अर्थात् स्वरूप में लीनता वर्तती है, ऐसे **गुणों से सकल कला अर्थात् सम्पूर्ण कलावान...** अर्थात् चारित्रवान। आनन्द, ज्ञान, चारित्र की कला जिसे प्रगट हुई है। आहाहा! **उन ही को हम मुनि कहते हैं।** लो! जिसे आत्मदर्शनपूर्वक शील और संयम जिसे प्रगट हुए हैं। आहाहा! और पूर्ण कला अर्थात् गृहस्थ को धर्मकला अपूर्ण है संयम की। संयम की कला अपूर्ण है। इसे पूर्ण है, ऐसा कहना है।

जैसे मोर खिलता है, उसी प्रकार यह चारित्र से खिल गया है, कहते हैं। आहाहा! यह कला खिल गयी है ऐसे। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन आत्म-अनुभव सहित ऐसा नहीं और शील, संयम (पालता है), उसे (शील, संयम नहीं), ऐसा कहना है। यह कहेंगे, यह पाठ यह कहना है। यह तो '**सुमलिणचित्तो**' है। राग की एकतावाला जीव बाहर से क्रियाकाण्ड पंच महाव्रतादि करे, वह तो मलिन चित्तवाला है। आहाहा! आचार्य स्वयं कहते हैं।

उन ही को हम मुनि कहते हैं। आहाहा! जिसे आत्मदर्शन (होकर) राग का कर्तृत्व छूट गया है, परद्रव्य की क्रिया का कर्तृत्व जिसे छूट गया है, जिसे ज्ञाता-दृष्टारूप से आत्मा है, ऐसा भासित हुआ है और वेदन में आया है, अनुभव में आया है। वह जीव जब शील और संयम, स्वरूप की ब्रह्मचर्य दशा, ब्रह्म अर्थात् भगवान, उसमें चरे अर्थात् रमण करता है, ऐसा जो शील और संयम है, अन्तर में लीनता करता है, ओहो! उसे हम मुनि कहते हैं। आचार्य ऐसा कहते हैं। जिसे श्रद्धा की खबर नहीं, सम्यग्दर्शन की अनुभवदशा की खबर नहीं, वह लोग यह महाव्रत और बारह (व्रत) लेकर बैठे, वे सब मलिन चित्तवाले हैं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि जहाँ राग की एकताबुद्धि तो टली नहीं, (वहाँ) मलिन चित्त है। आहाहा!

पूर्वोक्त भावसहित सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं... पूर्व में कहा यह। और **शील संयम**

गुणों से सकल कला अर्थात् सम्पूर्ण कलावान होते हैं,... आहाहा! जिन्हें चारित्र की कला खिल गयी है। ओहोहो! जिन्हें वीतरागता खिल गयी है। वह तो दृष्टि की वीतरागता थी, यह तो चारित्र की वीतरागता। आहाहा! वस्तु वीतराग, दृष्टि वीतराग और चारित्र वीतराग, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसकी कला वीतरागी कला खिले, उसे यहाँ कला कही है, भाई! क्योंकि वह वस्तु स्वयं वीतरागस्वरूप है। उसकी कला खिले, ऐसे चारित्र की, वह वीतरागी कला खिली है। राग और पंच महाव्रत, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? धन्य अवतार! धन्य जिसने सफल किये! चारित्र जो मोक्ष का कारण, वह सीधा चारित्र जिसने प्रगट किया, ओहो! ऐसा कहते हैं। चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान। उसके बिना चारित्र नहीं होता। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित जिसने अकषाय वीतरागदशा की कला जिसे (खिली है)। सकल कही है न? कला सहित है। वह वीतरागपर्याय की कलासहित है, कहते हैं। आहाहा! उसे हम मुनि कहते हैं। अब यह।

जो सम्यग्दृष्टि नहीं हैं,... देखो! नकार किया है वापस। '**बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो**' जिसका **मलिनचित्तसहित मिथ्यादृष्टि है...** देखो! मलिन चित्त की व्याख्या यह कि जिसे राग की एकता, शुभराग की एकता है, वह मलिन चित्त है। आहाहा! राग का विकल्प है, वह मलिन चित्तवाला जीव है। जिसे यह है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! **बहुत दोषों का आवास (स्थान) है...** वह तो दोष का स्थान है। सम्यग्दृष्टिसहित आनन्द है, वह तो आनन्द की कला का स्थान उसे प्रगट हुआ और राग की एकताबुद्धिवाला चित्त मलिन है। आहाहा! वह तो सब पंच महाव्रतादि चाहे जो क्रिया (करे), वह सब दोष के स्थान हैं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा रागरहित स्वरूप है, उसका भान नहीं और रागसहित हूँ, ऐसी अन्दर दृष्टि है, वह तो सब दोष के स्थान हैं। जितने प्रगट हों शुभभाव आदि, वे सब दोष के स्थान हैं। आहाहा! उसमें गुण का स्थान नहीं। ओहोहो! भावपाहुड़। मूल तो वह सम्यग्दृष्टि का जोर देना है। उस सहित जिसकी कला खिल गयी चारित्र की, धन्य अवतार, भाई! आहाहा! हम उसे मुनि कहते हैं।

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! हम तो वन्दन करते हैं, कहते हैं। आचार्य स्वयं। परन्तु जिसके राग से चित्त जिसका मलिन है। अर्थात् कि राग की एकतारूप से जिसकी बुद्धि पड़ी है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहना है। ऐसा जीव मलिनचित्तसहित अर्थात् कि राग के चित्तसहित शुभविकल्प भी मेरा है, ऐसा जिसका चित्त है, वह मिथ्यादृष्टि है।

बहुत दोषों का आवास (स्थान) है... आहाहा! वह चारित्र नहीं, मोक्ष का स्थान नहीं, परन्तु दोष का स्थान है। **वह तो भेष धारण करता है तो भी श्रावक के समान भी नहीं है।** लो! श्रावक है, भले चारित्र की कला खिली नहीं उसे, परन्तु सम्यग्दर्शनसहित... प्रगटी है ... मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है न। रत्नकरण्डश्रावकाचार (में आता है)। वे यह कहते हैं। अणगार हो परन्तु राग की एकताबुद्धि मिथ्यात्वभाव है। मोही प्राणी संसार... और गृहस्थाश्रम में भी जिसे राग की एकता टूटी है और अभी अस्थिरता का राग है, तथापि वह मोक्ष के मार्ग में है। वह तो श्रावक, श्रमण भी नहीं कहते हैं। जिसे राग की एकताबुद्धि का अभिप्राय पड़ा है, वे सब दोष के स्थान में खड़े हैं। वे श्रावक के समान भी नहीं। पाप का करनेवाला श्रावक हो, बहुत पाप करनेवाला हो, तथापि वह इस मिथ्यात्व के पुण्यसहित पापवाला वह, ऐसा श्रावक भी वह नहीं, कहते हैं। आहाहा! देखो, इसमें है। है इसमें, हों!

गृहस्थाचार के पाप सहित हो तो भी... है अन्दर अर्थ में। गृहस्थाचार के पापसहित हो **तो भी उनके बराबर वह—केवल भेषमात्र को धारण करनेवाला मुनि—नहीं है,...** भावार्थ में है पीछे। वह **गृहस्थाचार के पापसहित हो...** गृहस्थाचार का भले पाप हो उसे। तथापि **उसके बराबर वह—केवल भेषमात्र को धारण करनेवाला मुनि—नहीं है,...** आहाहा! जिसका अभिप्राय रागवाला है, रागसहित हूँ, राग से मुझे लाभ होता है—ऐसे मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा गृहस्थाचार के पापवाला समकिती ऐसा श्रावक हो सकता नहीं, ऐसा कहते हैं। वह मुनि उसे श्रावक समान भी नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १४, बुधवार, दिनांक १९-०६-१९७४
गाथा - १५५ से १५७, प्रवचन-१७८

भावपाहुड़। १५५ गाथा का भावार्थ है न? **जो सम्यग्दृष्टि है...** जिसने राग की एकता तोड़ी है... राग और स्वभाव दोनों भिन्न चीज़ है। स्वभाव केवलज्ञानलक्ष्मी सम्पन्न प्रभु आत्मा, अकेला ज्ञानस्वभाव और राग विभावस्वभाव। वह राग और स्वभाव की एकता जिसने तोड़ी है, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। तदुपरान्त मुनि की बात लेते हैं न! **शील (-उत्तरगुण) तथा संयम (-मूलगुण) सहित है, वह मुनि है।** प्रथम तो यह राग और स्वभाव दो भिन्न पड़े हैं जिसे। स्वभाव चैतन्यस्वरूप शुद्ध चैतन्य का समीपपना जिसे वर्तता है। राग की एकता में स्वभाव से दूर वर्तता है। इसलिए जिसे स्वभाव की एकता शुद्ध चैतन्य की प्रगट हुई है, वह तो सम्यग्दृष्टि है। अब तदुपरान्त मुनिपना... शील और संयमसहित है, वह मुनि है। वह मुनि, वह चारित्रवन्त और मोक्ष का अधिकारी है।

जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जिसका चित्त मिथ्यात्व से मलिन है... पाठ में यह है न? '**मलिणचित्तो**' '**सुमलिणचित्तो**' है ऐसा। मूल तो जिसके ज्ञानस्वभाव में शुभ रागादि विकार की एकता है, वह मलिन चित्त है। राग का विकल्प शुभ से मुझे लाभ होता है, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि करने से जीव को कल्याण होता है—ऐसी जिसकी बुद्धि है, उस राग से जिसका चित्त मलिन है। समझ में आया? राग से भिन्न पड़कर चैतन्य निर्मल की तो दृष्टि हुई नहीं और वह क्रियाकाण्ड जो व्रत, तप आदि, उनसे मेरा कल्याण होगा, ऐसा माननेवाला राग की एकतारूपी चित्त जिसका मलिन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जिसका चित्त मिथ्यात्व से मलिन है...** मिथ्यात्व अर्थात् यह (कि) जिसकी स्वसन्मुखता हुई नहीं, परन्तु परमुखता जिसे राग की सन्मुखता ही वर्तती है, उसका चित्त मिथ्यात्व से मलिन है। समझ में आता है? आहाहा!

जिसमें क्रोधादि विकाररूप बहुत दोष पाये जाते हैं,... है न पाठ? '**बहुदोसाणावासो**' क्योंकि स्वभाव त्रिकाली निर्मल आनन्द और राग मलिन, उसकी

जहाँ एकता है, वहाँ दोष का आवास है, वह दोष का स्थान है, वह संसार को भटकने का वह स्थान है। समझ में आया? '**दोसाणावासो**' उसमें ऐसा कहा था कि जिसे सम्यग्दर्शन है, उसे शील और संयम का वास करता है, इसलिए वह चारित्रवन्त है। और जिसे उस राग के विभाव परिणाम शुभ के, उनसे भी जहाँ हित मानता है, उसे राग से एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व से मलिन है। आहाहा! यह मार्ग है। यह दोष का स्थान है, ऐसा कहते हैं। भले वह बाह्य व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभाव करता हो, परन्तु वह सब दोष का स्थान है, वहाँ गुण का स्थान है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन परन्तु वस्तु तो ऐसी है। वस्तु यह है।

एक समय में पूर्ण वस्तु शुद्ध चैतन्यलक्ष्मी पड़ी है न! उसकी सम्पदा है न! आनन्द, ज्ञान पूर्ण उसकी सम्पदा है प्रभु की—आत्मा की। उस सम्पदा का स्वीकार नहीं होकर, राग का स्वीकार अर्थात् पर्यायबुद्धि है, ऐसा कहना है दूसरी भाषा से। जिसकी राग के ऊपर बुद्धि है, उस मिथ्यादृष्टि का चित्त मलिन है। वह विकारों का स्थान है। क्योंकि विकारभाव उसे जिसने अपना स्वीकार किया है, वह दोष का स्थान है। वह संसार के भव उत्पन्न हों, ऐसा वह भाव है।

यह तो मुनि का भेष धारण करता है,... मुनि का वेश धारण करे नग्नपना। **तो भी श्रावक के समान भी नहीं है,...** लो! क्योंकि श्रावक तो राग से भिन्न स्वभाव की एकता में उसकी दृष्टि पड़ी है। इसलिए उसे अनन्त गुणों का स्वभाव का स्वीकार हो गया है और राग का अस्वीकार है, ऐसे सम्यग्दृष्टि श्रावक से भी, यह वेशधारी साधु श्रावक के समान भी नहीं। **श्रावक तो सम्यग्दृष्टि हो और गृहस्थाचार के पापसहित हो...** आहाहा! गृहस्थाचार का उसे विषयवासना, रागादि, धन्धे आदि के भाव ऐसे गृहस्थाचार के पाप हों, **तो भी उसके बराबर वह—केवल भेषमात्र को धारण करनेवाला मुनि—नहीं है,...** देखो! दीयठ्ठो आया वह मोखमग्गो। आहाहा! जिसकी दृष्टि राग के ऊपर है, संयोगी भाव के ऊपर है, वह चाहे जैसा वेश धारण किया हो, साधु के पंच महाव्रतादि, कहते हैं, वह श्रावक के समान नहीं। श्रावक ने तो स्वभाव, राग और स्वभाव दो भिन्न जाने हैं और स्वभाव के समीप में जिसकी दृष्टि है, राग से जिसकी दृष्टि

दूर हो गयी है। आहाहा! ऐसे श्रावक पापसहित हो भले, कहते हैं। आहाहा! वह (वेशधारी) पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुणवाला साधु हो, परन्तु राग की रुचिवाला और राग की एकतावाला है तो वह मलिनचित्तवाला है, आहाहा! दोष का स्थान है, कहते हैं। आहाहा! और श्रावक हो, जिसे राग से भिन्नता में स्वभाव का भान हुआ है, ऐसे भानवाला, उसे गृहस्थाश्रम के पापाचार भी हों, तथापि मुनिवेशधारी की अपेक्षा वह ऊँचा है। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! ऐसी बात है। आहाहा!

आचार्य ने स्वयं कहा है न, देखो न! '**ति च्चिय भणामि हं जे सयलकलासील-संजमगुणेहिं।**' यह मुनि है। '**बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो।**' आहाहा! जिसे केवलज्ञान, आनन्द ऐसी स्वलक्ष्मी का जिसे अन्तर बहुमान आया नहीं और राग का ही बहुमान जिसे वर्तता है, शुभ रागादि क्रिया का, वह मिथ्यात्वसहित मलिनचित्तवाला है और दोष का स्थान है। राग और स्वभाव, जिसे राग की विमुखता होकर स्वभाव समीप-सन्मुख हुआ है, ऐसा सम्यग्दृष्टि श्रावक गृहस्थाश्रम के पाप के भाववाला हो, तथापि उसके जैसा मुनिवेशधारी नहीं। आहाहा! क्योंकि वह पापाचार जो गृहस्थ के हैं, वह चारित्रदोष है और दोष से भिन्न है, ऐसी दृष्टि तो हो गयी है। अभी दोष टले नहीं, चारित्र नहीं, इसलिए (टले नहीं है)। परन्तु उस दोष को अपना स्वरूप न मानकर दुःखरूप जानता है। वह व्रतादि के परिणाम को भी दुःखरूप जानता है और भगवान आत्मा सुखरूप, आनन्दरूप है—ऐसी दृष्टि हुई है। इसलिए वह श्रावक गृहस्थाश्रम के पापाचारसहित होने पर भी उस मुनि की अपेक्षा ऊँचा है और ऐसे श्रावक के समान भी वह मुनि है नहीं। ओहोहो!

यह तो अन्तर की बात के अन्तर (भेद) पड़े हैं, उसकी बातें हैं। आहाहा! जिसने भगवान चैतन्यस्वभाव की भेंट नहीं की, उसे राग की भेंट वर्तती है। इसलिए यह कहते हैं कि पंच महाव्रतादि, अट्ठाईस मूलगुण और वेश धारण किया हो तो भी वह मिथ्यादृष्टि मलिन चित्तवाला है। आहाहा! भावपाहुड़ है न! और सम्यग्दृष्टि, कहते हैं कि श्रावक और पापाचारसहित हो तो भी वह धर्म—मोक्ष के मार्ग में है, वह छूटने के पंथ में है। आहाहा! ऐसी बात है। यह बात अन्दर में कीमत न हो, उसे नहीं बैठती यह बात। ऐसी लगे कि यह तो यह क्या? यहाँ तो आचार्य ने कहा न? '**ण सावयसमो**' श्रावक को

लिया न। **गृहस्थाचार के पापसहित...** कहो, गृहस्थाश्रम का पाप विषयभोग की वासना, कमाना, कमाना, ऐसे धन्धे के भाव हों, तथापि जिसने राग और स्वभाव की एकता तोड़ी है और जिसका मुख मुड़ा है स्वभावसन्मुख, जिसका मुख राग के ऊपर था, वह मुख मुड़ गया है... आहाहा! ऐसा जो गृहस्थ... ऐसे वेशधारी साधु पंच महाव्रत पाले, वेशधारी, (तथापि) उस श्रावक समान उसे गिनने में नहीं आता। आहाहा! हजारों रानियों को छोड़ा होगा, पंच महाव्रत पालता होगा, तो भी वह श्रावक के समान गिनने में नहीं आता। समझ में आया?

उनके बराबर वह—केवल भेषमात्र को धारण करनेवाला मुनि—नहीं है,... आहाहा! ऐसा मार्ग! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। एक समय में द्रव्यस्वभाव... आगे कहेंगे धीर-वीर में। जिसे अन्तर चैतन्यस्वभाव के ऊपर धीरज आयी है। आहाहा! धी जहाँ बुद्धि, र अर्थात् जिसकी बुद्धि की प्रेरणा, शुद्ध चैतन्यस्वभाव के ऊपर जिसकी बुद्धि की प्रेरणा है, राग में नहीं... आहाहा! उसे यहाँ धीर कहा जाता है। और वही बुद्धिवाला है कि जिसकी बुद्धि स्वभाव के प्रति गयी है, विभाव से जिसकी बुद्धि उठ गई है। आहाहा! विभाव है, परन्तु रुचि उठ गयी है। आहाहा! उसे यहाँ पुरुषार्थ करनेवाला धीर कहा जाता है। लो!

★ ★ ★

गाथा - १५६

आगे कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि होकर जिनने कषायरूप सुभट जीते, वे ही धीर-वीर हैं :— लो! यह धीर और वीर। संग्राम में लाखों-करोड़ों लोगों को जीते, वह नपुंसक है और जिसने स्वभाव की दृष्टिपूर्वक राग और कषाय को जीता है, अकषायभाव जिसने प्रगट किया है, वह जगत में धीर है, वह जगत में वीर है।

ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेण विप्फुरंतेण।
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं॥१५६॥

अर्थ :- जिन पुरुषों ने क्षमा और इन्द्रियों का दमन वह ही हुआ विस्फुरता

अर्थात् सजाया हुआ मलिनतारहित उज्ज्वल तीक्ष्ण खड्ग,... अर्थात् कि जिसके स्वभाव की दृष्टि हुई है और तदुपरान्त स्वभाव का आश्रय लेकर जिसने निर्मलता प्रगट की है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और जिसने **क्षमा और इन्द्रियों का दमन वह ही हुआ...** तीक्ष्ण धारवाली तलवार—खड्ग। आहाहा! शुद्ध स्वभाव की दृष्टि है, तदुपरान्त शुद्ध स्वभाव में स्थिरता की है, ऐसा कहते हैं। ऐसी स्थिरता द्वारा जिसने क्रोध को, विकार को जीता है, उसे यहाँ धीर और वीर कहा जाता है। आहाहा! **सजाया हुआ मलिनतारहित...** खड्ग-खड्ग। सज्ज ऐसे करे न तैयारी करके उज्ज्वल। आहाहा! **खड्ग, उससे जिनको जीतना कठिन है, ऐसे दुर्जय प्रबल...** और दुर्जय। आहाहा! कषायों को जीतना, वह दुर्जय है और प्रबल है पुरुषार्थ। **बल से उद्धत कषायरूप सुभटों...** और महाप्रबल दुर्जय ऐसे बल से उद्धत राग और द्वेष के परिणाम को **सुभटों को जीते,...** लो! वह सुभट को जीते। आहाहा! वह सम्यग्दृष्टि बिना उन्हें जीत नहीं सकता, ऐसा कहना है। जिसे स्वभाव की दशा का अनुभव हुआ है, वह स्वभाव के आश्रय से कषाय को जीत सकता है। आहाहा! समझ में आया?

कठिन है, ऐसे... वे ही धीरवीर.... धीर और वीर। वीर का अर्थ ऐसा किया है इसमें और दूसरे प्रकार का। अन्यत्र दूसरा किया है। वी—विशिष्ट ऐसी जो अन्तर लक्ष्मी, उसे 'र' रांति अर्थात् स्वीकार करता है, ऐसा कहा। वीर-विशिष्ट लक्ष्मी आत्मा की, चैतन्यस्वभाव जो लक्ष्मी, वह विशिष्ट अर्थात् खास लक्ष्मी। यह तो सब समझने जैसी कहते हैं धूल।

मुमुक्षु : समझने जैसी तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझने जैसी अर्थात् धूल है, ऐसी समझने जैसी। आहाहा! यह (आत्मा) तो आनन्द का नाथ भगवान जिसकी केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेला वीर्य, ऐसा जिसका स्वभाव, वह विशिष्ट लक्ष्मी, उसे 'र' रांति—स्वीकृति, उसका जो अन्दर में स्वीकार करे। अनादि से राग और विकार का स्वीकार है, वह पामर प्राणी है। आहाहा! और ऐसे स्वभाव की जहाँ स्वीकृति... स्वीकार यह तो भाषा ली है। समीप हुआ, सन्मुख हुआ, स्वीकार हुआ—सब एक अर्थ में है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा के स्वभाव समीप हुआ,

सन्मुख हुआ अर्थात् कि 'वह है'—ऐसा स्वीकार हुआ, उसे यहाँ वीर कहा जाता है। समझ में आया? भावपाहुड़ है न! अन्तिम गाथायें हैं न! एकदम मक्खन रखा है। **वे ही धीर-वीर सुभट हैं, अन्य संग्रामादिक में जीतनेवाले तो कहने के सुभट हैं।** नाम से सुभट हैं। आहाहा! जिसने अन्तर के स्वभाव के आश्रय से विकार को जीता, उसे यहाँ धीर और वीर और सुभट कहा जाता है। आहाहा!

भावार्थ :- युद्ध में जीतनेवाले शूरवीर तो लोक में बहुत हैं, परन्तु कषायों को जीतनेवाले विरल हैं,... आहाहा! **वे मुनिप्रधान हैं...** यहाँ तो सम्यग्दर्शनसहित अकषायभाव की व्याख्या है न! कषाय को जीता है, ऐसा कहना है न, सम्यग्दर्शनसहित। आहाहा! **और वे ही शूरवीरों में प्रधान हैं।** वीरों में वह वीर मुख्य है। आहाहा! वह बात कही थी न एक बार? सब नेमिनाथ भगवान, पाण्डव, कृष्ण, बलदेव सब योद्धाओं की सभा भरी थी। उस सभा में बात निकली कि इनमें कौन बलवान है? कोई कहे कि श्रीकृष्ण बलवान हैं, कोई कहे कि पाण्डव बलवान हैं, कोई कहे कि कृष्ण के पिता वासुदेव बहुत सुन्दर और बलवान थे। ऐसी सब बातें करने लगे। बाहर के बलवान हों, वे तो अभी शरीर से। भगवान नेमिनाथ बैठे थे, वे कुछ बोले नहीं। किसी ने फिर ऐसा कहा कि भाई! सब ठीक। भगवान देखो बोलते नहीं। गृहस्थाश्रम में बैठे थे न तो सभा में बैठे थे। इनका बल है, ऐसा किसी का बल नहीं। सब तुम्हारे पाण्डवों और सब चाहे जैसे (बलवान हों), इनका बल जोरदार बल है। बापू! भगवान ने ऐसा कहा जरा... कृष्ण कहे, मैं बलवान हूँ। उन्हें सब बलवान कहते हैं। नेमिनाथ भगवान बैठे ऐसे पाटे पर बैठे थे पलंग के ऊपर। दोनों पैर नीचे रखे। पैर करो ऊँचा, कहे। वह श्रीकृष्ण को पैर ऊँचा करते-करते पसीना उतर गया, पैर ऊँचा नहीं हुआ। इतना तो शरीर का बल था। आत्मा के बल की तो बाल क्या करना? वह कहीं आत्मबल शरीर में काम नहीं करता। आत्मा का वीर्य कहीं शरीर में काम नहीं करता। आहाहा! आत्मा का वीर्य तो राग के नाश में काम करता है। समझ में आया? उस जाति का वह आता है (हरिवंश) पुराण में। भगवान को फिर, ऐसे जरा तीर्थंकर हैं न, इसलिए राग विकल्प है। इसलिए आया कि देखो दो पैर नीचे रखता हूँ। उठाओ योद्धाओं आओ। सबसे बड़े योद्धा कृष्ण थे। उठा नहीं सके। ऊँचा नहीं कर सके। पसीना उतरा ऐसे पसीना-पसीना। बापू! शरीर की

स्थिति का बल... वीतराग आत्मा है। तीन ज्ञान के धनी और तीर्थंकर का वह आत्मा है। उनके शरीर में इतना बल... आहाहा! उनके आत्मबल की क्या बात करना! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिसने अकषायस्वभाव भगवान आत्मा के पक्ष में चढ़कर जिसने कषाय को जीता है, वह सुभट कहा जाता है। आहाहा! **कषायों को जीतनेवाले विरले हैं, वे मुनिप्रधान हैं और वे ही शूरवीरों में प्रधान हैं। जो सम्यग्दृष्टि होकर...** सम्यग्दृष्टि होकर, हों! परन्तु वापस ऐसा। **कषायों को जीतकर...** यहाँ बात सीधी करनी है न। **चारित्रवान होते हैं, वे मोक्ष पाते हैं,...** यहाँ मोक्षपाहुड़ है न भावपाहुड़। सम्यग्दर्शन में पुरुषार्थ है, उसकी अपेक्षा चारित्र में बहुत पुरुषार्थ है। चारित्र में तो महापुरुषार्थ है, बहुत ही उसने स्वभावसन्मुख आश्रय लेने... अनन्त वीर्य है वह। आहाहा! तब उसे चारित्र प्रगट होता है और कषाय का अभाव होता है। **(कषायों को) जीतकर चारित्रवान होते हैं, वे मोक्ष पाते हैं, ऐसा आशय है।**

★ ★ ★

गाथा - १५७

आगे कहते हैं कि जो आप दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप होते हैं, वे अन्य को भी उन सहित करते हैं, उसको धन्य है :— ऐसा कहते हैं। जो कोई स्वयं ... दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, स्वभाव के अवलम्बन से दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसने प्रगट किये हैं, वह स्वयं... **अन्य को भी उन सहित करते हैं,...** निमित्त, ऐसा निमित्त होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें तो करते हैं, ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह करते हैं, इसका अर्थ निमित्त। करते हैं, ऐसी ही भाषा आवे न। उसे यह बताते हैं। भाषा तो ऐसी है न, देखो न!

धण्णा ते भगवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं।
विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं ॥१५७॥

मकर का क्या? मगर है मगर। आया था। यह मगरमच्छ है न। मगरमच्छ समुद्र में रहे न, इसलिए मकरहर। घर। क्या कहा यह? मगर-मगर। उसे धरनेवाला समुद्र।

'**विसयमयरहरपडिया**' विषयरूपी समुद्र में पड़े हैं, ऐसे जीवों को '**भविया उत्तारिया जेहिं**' ऐसे भव्य जीव को पार किया है, उन्हें धन्य है, ऐसा कहते हैं।

अर्थ :- जिन सत्पुरुषों ने विषयरूप मकरधर... मकरधर-समुद्र **(समुद्र) में पड़े हुए भव्य जीवों को...** विषयरूप मकरधर में पड़े हुए भव्यजीव। आहाहा! परविषय की ओर जिनका पूरा झुकाव है, ऐसे विषयों में, अपना विषय—ध्येय छोड़कर अकेले परविषय में पड़े हैं। आहाहा! **विषयरूप मकरधर (समुद्र) में पड़े हुए भव्य जीवों को...** है न '**भविया**' है न? **दर्शन और ज्ञानरूपी मुख्य दोनों हाथों से...** आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बराबर समझाया, ऐसा कहते हैं। उसके द्वारा उसका उद्धार किया है। भव्य जीव का भी उद्धार किया है व्यवहार से। ऐसा कहकर यह कहते हैं कि वही सम्यग्दर्शन और ज्ञान की सच्ची बात कर सकेगा। ऐसा कहते हैं। जिसे राग की एकता टूटकर दर्शन-ज्ञान हुए हैं, वही राग से तोड़कर दर्शन-ज्ञान की व्याख्या स्व के आश्रय से करेगा और वही समझेगा और वे समझनेवाले उससे तिरेंगे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऊपर आया था न चित्त मलिन और फिर कहा धीर वीर का। जिसने राग को जीता नहीं अर्थात् राग की एकताबुद्धि पड़ी है... आहाहा! भगवान पूरा पड़ा रहा है प्रभु, ऐसे जीवों को अपने स्वभाव की खबर नहीं तो वे स्वभाव की शुद्धता बता नहीं सकते कि प्रभु! तू आत्मा शुद्ध चिदानन्द सहज है, परमात्मस्वरूप है, उसकी ओर जा, उसकी भेंट कर। ऐसा दर्शन और ज्ञानस्वरूप मुनि अथवा समकिती ऐसे दर्शन-ज्ञान के अग्र-मुख्य-प्रवर हाथ द्वारा भव्य जीव का उद्धार करते हैं। उसका अर्थ कि वही सच्ची बात कह सकते हैं, ऐसा। वह (अज्ञानी) तो कहीं न कहीं आड़ी-टेढ़ी विपरीतता डालेगा कि व्यवहार से लाभ होगा, निमित्त से ऐसा होगा, पुण्य से ऐसा होगा। ऐसा न कहनेवाले ऐसे जीव होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जो सत्पुरुष विषयरूपी समुद्र में पड़े भव्य जीवों को **दर्शन और ज्ञानरूपी मुख्य दोनों हाथों से...** उसे विषय बदला देते हैं। ऐसा जो ध्येय पड़ा है अनादि का पर के ऊपर, वह पर के ऊपर विषय, वही विषय है वास्तविक तो। समझ में आया? उसे विषय को बदला देते हैं। भाई! दर्शन-ज्ञानरूपी तेरे भाव तू प्रगट कर। यहाँ तो दर्शन-

ज्ञान के हाथ द्वारा उसे तिराते हैं, ऐसा कहा न? दर्शन-ज्ञान के हाथ द्वारा उसे तिराते हैं। इसका अर्थ कि उसे दर्शन-ज्ञान बताते हैं कि भाई! दर्शन-ज्ञान तो यह है। वस्तु के स्वभाव में दृष्टि करके, एकाग्र होकर और जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान होते हैं, वही आत्मा को उद्धार का कारण है। भव से उद्धार का वह पंथ है। यह दर्शन-ज्ञान दो रखे हैं न। वह अकेले व्रत और तप की क्रिया से तिरते हैं और उनके सामने यह बात है कि यह दर्शन-ज्ञान से ही वे तिरते हैं। आहाहा! और तिरनेवाले को यह बताते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा महाप्रभु, उसकी प्रभुता का स्वीकार कर। राग और पर्यायबुद्धि का स्वीकार है, उसे छोड़ दे। यह दर्शन-ज्ञान के हाथ द्वारा अर्थात् ऐसी दृष्टि और ऐसे विषय द्वारा जगत के भव्य प्राणी का उद्धार करते हैं। अभव्य को तो कुछ है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मुख्य बात ली है। ये अन्तिम श्लोक हैं न। इन्हें ऐसा कहना है कि जो दर्शन, ज्ञान और चारित्रसहित मुनि हैं या दर्शन-ज्ञानसहित हैं, वे दर्शन-ज्ञान के हाथ द्वारा अपने कर—अग्र—मुख्य हाथ द्वारा दूसरे को तिराते हैं। मुख्यता यह बताते हैं इसे। आहाहा! भव्य प्राणी को यह बताते हैं कि, भाई! तेरी वस्तु आनन्द का नाथ प्रभु तू है। तेरी लक्ष्मी में अपार लक्ष्मी पड़ी है, उसका स्वीकार कर न! एक समय की पर्याय और राग का स्वीकार तो परविषय है। समझ में आया?

जिसे वह दर्शन-ज्ञान स्वीकार हो गया है, वह दूसरे को दर्शन-ज्ञान का इस प्रकार से स्वीकार कराता है, ऐसा। उसके उपदेश में यह बात आयेगी, ऐसा कहते हैं। उसके उपदेश में यह नहीं आयेगा कि तू राग की क्रिया कर और व्रत पालन कर और भक्ति कर, उससे तुझे कल्याण होगा। यह तो मिथ्या उपदेश है। समझ में आया? आहाहा! आचार्य का हृदय यह है कि जगत के प्राणी को दर्शन-ज्ञान के हाथ द्वारा—अग्र हाथ द्वारा—मुख्य हाथ द्वारा दूसरे का उद्धार करते हैं। आहाहा! उसे यह ऐसा ही उपदेश देते हैं, ऐसा कहते हैं और वही दे सकते हैं। राग के प्रेमी और राग से लाभ माननेवाले वे दर्शन-ज्ञान को नहीं प्राप्त, दर्शन-ज्ञान की प्ररूपणा नहीं कर सकते। कहीं न कहीं विपरीतता (डालेंगे)। आहाहा! आचार्य का हृदय यह है। आहाहा! गजब किया है कुन्दकुन्दाचार्य ने भी!

कहते हैं कि जिसे दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए हैं, वे जिसके प्रवर—मुख्य हाथ हैं,

ऐसा कहा न? और उसके द्वारा उसे—भव्य को तारेंगे। ऐसा कहा न? उसे व्रत करके तारेंगे, यह तो स्वयं मानता नहीं, तो वे उसे कहेंगे नहीं यह। समझ में आया? आहाहा! '**धण्णा ते भगवंता**' वे भगवन्त '**दंसणणाणग्गपरवरहत्थेहिं**' आहाहा! मुख्य जो है। उसमें आता है न प्रवचनसार (में)। आश्रम। भाई! प्रवचनसार में दर्शन-ज्ञान आश्रम। उस आश्रम में मिलते हैं, यह वहाँ आश्रम है। प्रवचनसार में है। मुख्य आश्रम। बराबर है। यह शैली है यहाँ तो। वे भी इनके शब्द हैं और वे भी। दर्शन-ज्ञान मुख्य आश्रम है। उस आश्रम में पहले जीव जाये, तब उसे स्थान मिले। आहाहा! लो, कहाँ का कहाँ आया, देखो! क्योंकि मूल चीज़ दर्शनस्वभाव का आश्रय और ज्ञानस्वभाव का ज्ञान, ऐसा। उसके द्वारा स्वयं तिरे हैं और उसके द्वारा, उस द्वारा तिरने का उपाय बताकर तिराते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ही साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधन है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो आत्मभाव, वह अग्र—प्रवर हाथ, मुख्य—प्रधान हाथ। हाथ से ऐसे तिराये न! खींचे न, ऐसे! पकड़कर खींचे ऐसे समुद्र में पड़ा हो उसे खींचे। आहाहा! कहो, चेतनजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रम है वह। सन्तों के रहने का आश्रम वह है। आहाहा!

'**धण्णा ते भगवंता**' आहाहा! वे भगवन्त हैं। मुनि की प्रधानता से कथन है, हों! मुनि की प्रधानता से कथन है। यह '**दंसणणाणग्गपरवरहत्थेहिं**' आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अग्र—मुख्य हाथ द्वारा भव्य जीव को तिराते हैं। आहाहा! क्योंकि उनके उपदेश में यह बात आयेगी। व्यवहार से लाभ होगा और व्रत पालने से निश्चय होगा, यह उनका उपदेश नहीं आता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! '**विसयमयरहरपडिया**' कहते हैं, भले विषय में पड़े हों गृहस्थ, परन्तु उसे दर्शन-ज्ञान के हाथ द्वारा ऊँचा हाथ करते हैं ऊँचा हाथ, खींचते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान स्वभाव का आश्रय कराकर उसे खींचते हैं, संसार से पार करते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह बात सब रह गयी और सब बाहर की बातें रह गयीं। करो व्रत और करो अपवास और करो भक्ति और करो पूजा। कहते हैं कि वह तिरने का उपाय नहीं और तिरने के

उपायवाले ने उससे तिरना, ऐसा जाना नहीं। समझ में आया? इससे तिरने का उपाय जो स्वयं जाना है, उस हाथ द्वारा—उस भाव द्वारा जगत को तिराते हैं। तू दर्शन-ज्ञान से ही तिर सकेगा। समझ में आया? आहाहा! उसमें समा, स्वभाव-सन्मुख में जा, स्वभावसन्मुख का ज्ञान कर और उस द्वारा संसार का उद्धार है। इसके अतिरिक्त संसार का उद्धार नहीं। बहुत सरस बात आयी है, लो! आहाहा! ऐसा कहकर आचार्य ऐसा कहना चाहते हैं कि '**दंसणणाण**' की ही जिसकी प्रधानता उपदेश की शैली है। जिसे यह बात बैठी है, उसके भाव में यह आता है, कहते हैं। और उस द्वारा—भव्य जीव को उस दर्शन और ज्ञान द्वारा तिराते हैं, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! अरेरे!

यह श्रीमद् ने कहा था न एक बार। अरे! इस मेरे नाद को कौन नाद देगा। मेरी आवाज को, ऐसा कुछ लिखा है, नहीं? दाद देगा। ऐसा लिखा है। वचनों को कौन दाद देगा? इसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं, ओहो! ऐसे वचन जिसके दर्शन और ज्ञान से तिरे हैं। भले चारित्रवन्त है। यहाँ तो उसकी बात है। परन्तु मूल तिरने का मूल उपाय तो दर्शन और ज्ञान है। उस सहित चारित्र है। तो वही बात उनके भव्य जीव को वे बतायेंगे। आहाहा! दर्शन-ज्ञान के मुख्य-प्रधान हाथ हैं, ऐसा वापस। ऐसा लिया है न? **मुख्य दोनों हाथों से...** दोनों हाथ लिये, परन्तु वह प्रवर शब्द पड़ा है प्रवर। ज्ञानरूपी मुख्य अग्र और प्रवर दो शब्द हैं मूल पाठ में। '**दंसणणाणग्गपवर**' अग्र और पवर। मुख्य और प्रधान। आहाहा!

पार उतार दिये, वे मुनिप्रधान... आहाहा! ... है सही न। मुनि की बात है। देखो! मुनि का ऐसा उपदेश होता है, ऐसा कहते हैं। उसमें आत है न भाई, मुनि? वीतराग-वीतराग मुहु-मुहु। आत्मावलोकन (में आता है)। मुनियों का उपदेश तो वीतराग... वीतराग... वीतराग... यह वीतरागपना बताते हैं। पर की उपेक्षा और स्व की अपेक्षा। आहाहा! जिसकी वाणी में स्वस्वभाव की अपेक्षा और पर की उपेक्षा, ऐसे वीतरागभाव को वे बारम्बार बताते-कहते हैं। आहाहा! वह यह। समझ में आया? आहाहा! गजब! यह भी किसी ने कहा है कि श्लोक कोई कहे कि उसने बनाये हैं और कोई कहे कि किसी के बने हुए हैं, यह उनके बतावे, ऐसा कहते हैं। श्लोक है न वह। उसमें यह लिखा है। श्लोक है। कोई कहे कि भाई! उनके—दीपचन्दजी के बनाये हुए। कोई कहे,

ऐसे मिले हुए हैं, उनका स्वयं ने अर्थ किया है। ऐसा कहते हैं। वस्तु बराबर है। मुनि का उपदेश ऐसा होता है, मुनि उसे कहते हैं कि जिनके उपदेश में वीतरागता झरती हो। मुहु-मुहु, ऐसा शब्द है। बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतराग... क्योंकि सर्व शास्त्र का तात्पर्य वीतराग है। पंचास्तिकाय १७२ गाथा। सर्व शास्त्र का सार तो वीतरागता है। अर्थात् कि स्वभावसन्मुख होना और पर से विमुख होना, वह शास्त्र का सार है। आहाहा! व्यवहार के राग और निमित्त से विमुख होना और स्वभाव के सन्मुख होना, वह वीतरागता का कारण है। ऐसा उपदेश मुनि जगत को यह देते हैं, ऐसा कहते हैं। आत्मावलोकन है। दीपचन्दजी का बनाया हुआ आत्मावलोकन। चिद्विलास है न? वैसा आत्मावलोकन है। उसमें लिखा है। ऐसा श्लोक है उसमें। मुहु-मुहु। वह तो आता है चौथे अध्ययन में अपने उत्तराध्ययन में। असंख्य ... वहाँ मुहु मुहु आता है। मुहु शब्द वहाँ आता है। इसी प्रकार यहाँ मुहु—बारम्बार। भूल गये गाथा, चौथा अध्ययन है न उत्तराध्ययन में। 'असंख्य ... पमावे...' पश्चात्? ऐई! यह भी भूल गये होंगे। बहुत समय हो गया। वहाँ मुहु आता है गाथा में। यह जब पढ़ा, तब (याद आया था कि) वहाँ मुहु आता है। आहाहा!

बारम्बार सन्त धर्मात्मा, भगवन्त मुनि वीतरागपने का उपदेश देते हैं। राग की बात करे, परन्तु उस राग को जानने के लिये उपदेश देते हैं, छोड़ने का देते हैं। आहाहा! चरणानुयोग की व्याख्या में राग की व्याख्या करे, परन्तु उसका तात्पर्य उससे छुड़ाने की बात करते हैं। आहाहा! इसका अर्थ यह हुआ कि सन्त अपने स्वभाव के आश्रय में जो स्थित हैं, वे जगत को स्वभाव के आश्रय की ही बात मुख्य करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यही वीतरागता उत्पन्न होने का साधन है। आहाहा! परसन्मुख के लक्ष्यवाला तो राग का साधन है। आहाहा! गजब शैली! सन्तों की कथनी चारों ओर से देखो, चारों ओर से एक ही बात खड़ी होती है। आहाहा! सबका लेखन, उसका सार यह सब खड़ा होता है। चारों पहलुओं से देखो तो। ओहो! ऐसी शैली सन्तों ने, दिगम्बर सन्तों ने की है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! तिरे थे, उन्होंने तिरने के उपाय की बातें की है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और तिरने का उपाय एक चैतन्य भगवान पूर्णस्वरूप का आश्रय लेना, वह वीतरागता उत्पन्न होने का साधन है। आहाहा!

'**भूदत्थोमस्सिदो खलु**' यह आया। भगवान पूर्णस्वरूप प्रभु है, उसका ऐसा एक समय की पर्याय में स्वीकार होना, वही धीर और वीर और समकिती है, ऐसा कहते हैं। जिसे स्वीकार करना आया नहीं अनन्त काल में, एक समय की पर्याय और शुभराग के स्वीकार की आड़ में ऐसा त्रिकाली चैतन्यस्वभाव स्वीकार नहीं किया, वह स्वीकार होना, वही वीतरागता की उत्पत्ति है। आहाहा! ऐसे द्वारा दूसरे को तिराया है, कहते हैं। तिराया जगत को। आहाहा!

लो, यह ऐसा नहीं कहते मुनि कि हमको आहार-पानी दो तो तुम तिरोगे। ऐसा भी नहीं कहा, देखो! तीर्थंकर जैसे छद्मस्थ हों और उन्हें आहार-पानी दे तो जीव तिरेगा, ऐसा नहीं, कहते हैं। वह तो पराश्रय राग है। आहाहा! वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है तो उसका आश्रय होने से वीतरागी समकित, वीतरागी चारित्र, वीतरागी ध्यान और वीतरागी केवलज्ञान प्रगट होता है। ऐसा भगवन्त सन्तों ने दर्शन-ज्ञान के हाथ द्वारा भव्य जीव को संसार में डुबने से उभारा है। आहाहा! विषय के समुद्र में पड़े थे, उन्होंने हाथ पकड़कर बाहर निकाला, कहते हैं। समझ में आया? यह दर्शन और ज्ञान हाथ उसे दिये। और दर्शन-ज्ञान जो मिला, उसे चारित्र तो आनेवाला ही है। उसे संयम हुए बिना रहे नहीं। दूज उगी, वह पूर्णिमा होनी ही है। दूज उगे, वह पूनम पूर्ण चन्द्र होगी ही वह। इसलिए इन दो की बात की है। आहाहा! देखो न! क्योंकि दर्शन-ज्ञान में श्रद्धा में यह आया है कि इसमें मैं स्थिर होऊँगा तो चारित्र होगा। इसमें स्थिर होऊँगा तो मेरी मुक्ति होगी। यह श्रद्धा में आ गया है पहले। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान में यह बात आ गयी है। यह अपने १७-१८ में है न। १७-१८ (गाथा समयसार)। उसे अनुसरण करेगा, तब चारित्र होगा। श्रद्धा ऐसा कहती है पहले कि इसका अनुचरण करेगा, इसमें स्थिर होगा तो चारित्र होगा। आहाहा! इसलिए श्रद्धा-ज्ञान में यह बात इकट्ठी आ गयी है कि तिरने के उपाय में श्रद्धा-ज्ञान से ही तिरे और उसमें स्थिर होगा, वह तिरने का उपाय है। कोई राग की क्रिया और व्रतादि की, वह कहीं तिरने का उपाय नहीं है। आहाहा!

ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य का उपकार अनन्त उपकार है। भगवान के पास गये और लेकर आये तो यह कहा जगत को। आहाहा! भगवान को ऐसा कहना है, भाई! कि

दर्शन-ज्ञान के हाथ द्वारा हम तिरे हैं और तुम भी इस द्वारा तिरो। ऐसा भगवान ने कहा है, ऐसा हम कहते हैं, (ऐसा) कहते हैं। अब यह दर्शन-ज्ञान की मूल जो बात स्व-आश्रय की, वह बात पड़ी रही और बाहर की यह थोथा पराश्रय की बात। उसमें— श्वेताम्बर में तो सब, चेतनजी! क्या कहलाता है? सिद्धचक्र, शान्तियज्ञ, यह और यह, आहाहा!

मुमुक्षु : उपधान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपधान दस-दस महीने के, उसमें क्या है? वहाँ धर्म कहाँ है? वह तो राग है। इतना राग मन्द हो तो पुण्य होता है। यह वापस उसमें धर्म माने तो मिथ्यात्वसहित पुण्य होता है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! जगत को कठिन पड़े। ऊपर कह गये न? वेशधारी कि जिसे... आहाहा! जिसे स्वभाव-सन्मुख की शरण मिली नहीं और मात्र विभाव की सन्मुखता के भाव कर रहा है, वह वेशधारी श्रावक जैसा भी नहीं। ऐसा पाप करे, ऐसा गृहस्थी विषय भोगे। राग है न! चारित्रदोष है न! उसमें सुखबुद्धि नहीं। वह राग आवे, उसे उसमें सुखबुद्धि नहीं। पूरी बुद्धि उड़ गयी, वहाँ से हट गयी है। आहाहा! ऐसे जीव गृहस्थाश्रम में रहे हों समकिती, उनके तुल्य भी ऐसे वेशधारी नहीं आ सकते हैं, कहते हैं। आहाहा! देखो तो उनकी वीतराग के आश्रय से दृष्टि, ज्ञान और शरण के रास्ते। वह **मुनिप्रधान भगवान इन्द्रादिक से पूज्य ज्ञानी धन्य हैं।** भगवन्त कहा है न? इन्द्र भी जिन्हें पूजें। ओहोहो! तूने भगवान का मार्ग पालन किया, रखा और भगवान का मार्ग तूने जगत को बताया। आहाहा!

भावार्थः-इस संसार-समुद्र से आप तिरें और दूसरों को तिरा देवें, उन मुनियों को धन्य है। आहाहा! **धनादिक सामग्रीसहित को धन्य कहते हैं...** लोक। पाँच-पचास करोड़ पैसा-धन मिले। यह धन मिला, उसे धन मिला। धूल मिली है, धन कहाँ मिला है? आहाहा! स्त्री, परिवार आदि, बड़ी इज्जत, बँगला आदि **सामग्रीसहित को धन्य कहते हैं, वह तो कहने के धन्य हैं।** कहनेमात्र धन्य है। धन्य तो यह है। आहाहा! जिसने दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित तिरने का उपाय प्रगट किया है, और दर्शन-ज्ञान से उद्धार करने का पंथ बताया, उस जीव को यहाँ धन्य और इन्द्रों से भी पूजनीक कहा जाता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल १, शुक्रवार, दिनांक २१-०६-१९७४
गाथा - १५८ से १६१, प्रवचन-१७९

गाथा - १५८

१५८ गाथा चलती है। भावपाहुड़। १५७ में कहा, **आगे फिर ऐसे मुनियों की महिमा करते हैं :—**

मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं ॥१५८॥

भावपाहुड़ है न! ज्ञानरूपी शस्त्र अर्थात् आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, उस ज्ञान को पकड़कर ज्ञान की निर्मल परिणति द्वारा इस माया बेलड़ी को मूल में से उखाड़ डाले, ऐसा कहते हैं। **माया (कपट) रूपी बेल जो मोहरूपी वृक्ष पर चढ़ी हुई है...** मायारूपी लता 'परपदार्थ मेरे', ऐसा मोहरूपी महावृक्ष, उस पर चढ़कर। **विषयरूपी विष के फूलों से फूल रही है...** और पाँच इन्द्रिय के विषयों के फूल से फूली। **फूलों से फूल रही है...** मायाबेली पाँच इन्द्रिय के विषय के फूल से फली है। आहाहा! यह तीन उपमायें दीं। **उसको मुनि ज्ञानरूपी शस्त्र से...** यह चौथी (उपमा) ज्ञानरूपी शस्त्र। जो आत्मा नोकर्म शरीर, द्रव्यकर्म जड़कर्म, भावकर्म विकार, अल्पज्ञ पर्याय—उसकी रुचि छोड़कर, पूर्ण स्वभाव ज्ञायकभाव सर्वज्ञस्वभाव, ऐसा आया, वह सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव, उसके आश्रय से उस ज्ञानरूपी परिणति का शस्त्र, उसके द्वारा मायारूपी लता परद्रव्य के मूल पर चढ़ी है। अनन्त पदार्थ पर, वे मेरे, इस (मोह) के ऊपर चढ़ी है और उसके फल फूल से फली है। पाँच इन्द्रिय के विषयों के फूल से फली है मायाबेल। आहाहा!

उसे मुनि ज्ञानरूपी शस्त्र, देखो यह। ज्ञायकस्वभाव कहो, सर्वज्ञस्वभाव कहो, पूर्ण स्वभाव की दृष्टि से, उसकी एकाग्रता से, ऐसी मायाबेली को छेद डालता है। अशेष शब्द पड़ा है न। '**असेसा**' पूर्ण। आहाहा! निर्मल पर्याय जो है, उसरूपी लता पूर्ण स्वभाव के ऊपर आरूढ़ हुई है। ऐसे माया मेरे परद्रव्यरूपी मोह (पर) आरूढ़ हुई है।

निर्मल पर्याय वस्तु के स्वभाव के ऊपर आरूढ़ हुई है। और जिसके फल स्वविषय के फल परम आनन्द है। उस द्वारा माया-कपट की जाल ठेठ मुनि तक पहुँचती है, ऐसा कहते हैं। ... भाग। स्वद्रव्य को छोड़कर परद्रव्य का महा लम्बा वृक्ष बड़ा। ओहोहो! उसे मेरा करके मानकर मायाबेलड़ी उसमें फेली है, विस्तार प्राप्त है परद्रव्य के ऊपर। उसके फल तो विषय के पाँच इन्द्रिय के विषय के फूल, उनसे वह फली है। आहाहा! उसे धर्मात्मा अन्तर ज्ञानरूपी बेलड़ी द्वारा स्वभाव में आरूढ़ होकर जिसका फल आनन्द है, उस द्वारा उस माया को छेदते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह शरीर, वह नोकर्म है; कर्म, वह जड़ कर्म है। दो। पुण्य-पाप के विकल्प, वह भावकर्म है। तीन। अल्पज्ञ पर्याय वह अंश है व्यवहार। इन चार से आगे जाकर पूर्ण द्रव्यस्वभाव का आश्रय ले, उस शस्त्र द्वारा माया और मोह, 'पर मेरे'—ऐसी जो माया की बेलड़ी फली है, उसे वे छेद कर सकते हैं। आहाहा! कोई अपवास करके या तपस्या करके, ऐसा इसमें नहीं कहा। पण्डितजी! अपवास करने से मायाबेलड़ी छिदेगी (नहीं)। उपवास से छिदेगी। उपवास—अपना निज स्वभाव परिपूर्ण ज्ञ—स्वभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, सर्वज्ञस्वभाव कहो, उसके द्वारा उसमें एकाग्रता द्वारा यह मायारूपी बेलड़ी वृक्ष के ऊपर चढ़कर फली, उसे वे छेद सकते हैं। अब उन्हें संसार नहीं फलेगा। उन्हें आत्मा का आनन्द फलेगा, ऐसा कहते हैं। स्वविषय में आनन्द फलेगा। परविषय में विषय के विषयरूपी फूल फलेंगे। आहाहा! समझ में आया?

माया अर्थात् कपट... परद्रव्य को मेरा मानने के महावृक्ष के ऊपर चढ़ी है। छेद होते... होते... होते... तीर्थंकर, वे परद्रव्य हैं, उनके ऊपर भी बेलड़ी चढ़ी (कि) ये मेरे हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। ऐसी जो मायारूपी लता मोह—पर में मेरापना परद्रव्य में यह बड़ा वृक्ष, यह लता वहाँ फली है ऊपर। आहाहा! वहाँ आगे यह पाँच इन्द्रिय के विषयों के फूल वहाँ तो आवे। उसे भगवान आत्मा ज्ञानशस्त्र से—पूर्ण स्वभाव मैं हूँ, ऐसी एकाग्रता के जोर से—मायारूपी बेलड़ी छेदी जा सकती है। दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है। ... आहाहा! भावपाहुड़ है न! अन्तिम गाथायें हैं न! एकदम अन्तर में वस्तु है वस्तु महाप्रभु, (वह) कर्म से तो पार, नोकर्म से तो भिन्न, भावकर्म से भिन्न, परन्तु अल्पज्ञ वर्तमान पर्याय से भी भिन्न तत्त्व पूरा है। अल्पज्ञ पर्याय एक समय की,

उस पर लक्ष्य देने से तो राग के ऊपर और पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, लम्बाता है।

स्व चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण स्वभाव का लक्ष्य करने से जो निर्मल दशा ज्ञान की, श्रद्धा की, शान्ति की, स्थिरता की दशा प्रगट हो, उसे ज्ञानशस्त्र कहते हैं। उस ज्ञानशस्त्र द्वारा मायाबेलड़ी छेदी जा सकती है। **शस्त्र से समस्ततया...** यह '**असेसा**' की व्याख्या है। '**असेसा**' **समस्ततया काट डालते हैं...** आहाहा! मूल में से खोद डालते हैं, कहते हैं। अनन्तानुबन्धी से लेकर जितनी माया और पर के प्रति ममतारूपी मिथ्यात्व, उसे आत्मा के अन्तर ज्ञानानन्द शस्त्र से मूल में से छेदा जा सकता है। यह अन्तर के ज्ञानानन्द स्वभाव के आश्रय की महिमा से। उसकी महिमा द्वारा मुनि इसे छेद सकते हैं, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- यह मायाकषाय गूढ़ है,... शल्य है न शल्य अन्दर? शल्य जाये तो भी माया रह जाती है। शल्य जाये तो भी माया रह जाती है। ऐसी माया गूढ़ है, कहते हैं। **मायाकषाय गूढ़ है, इसका विस्तार भी बहुत है,...** मुनि को तीन शल्य होते नहीं। निःशल्योव्रति। है न? मिथ्यात्व, माया, निदान शल्य से रहित है मुनि, तथापि अमुक कषाय की माया है संज्वलन की। तीन शल्य रहित तो व्रती-संयमी हुए हैं, तथापि एक भाव रह गया है थोड़ा। परन्तु शल्य नहीं, परन्तु है माया का अंश, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **यह मायाकषाय गूढ़ है, इसका विस्तार भी बहुत है,...** बहुत विस्तार, परद्रव्य की ममता में माया फैलती है। वह परद्रव्य को मेरा मानता हूँ, उसकी माया में उसे खबर भी नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य से मुझे लाभ होता है और परद्रव्य मेरे, उसमें माया क्या है, उसकी उसे खबर भी नहीं पड़ती। बहुत बात डाली है, देखो! मानो कि परद्रव्य से मुझे लाभ होगा, ऐसा मोह जो परद्रव्य में गया, उसमें अन्दर सूक्ष्म माया ऐसी पड़ी होती है, कहते हैं। आहाहा! इस माया को छेद डाल, ऐसा कहते हैं।

आया था तो यह विचार में कि वीतराग की वाणी और वीतराग से भी लाभ होता है, ऐसा (माने तो वह माया है)। आड़ मारता है। वीतराग और वीतराग की वाणी, वह परद्रव्य है। उससे मुझे लाभ होगा—ऐसा जो मोह, वह माया वह मोह के ऊपर चढ़ी है। सूक्ष्म है जरा। आचार्य ... अकेला स्वद्रव्य चैतन्य भगवान के आश्रय से ही लाभ दर्शन का और ज्ञान का, चारित्र का ... माया से ऐसी आड़ मारकर परपदार्थ के मोह में फैल

गयी है। उसे, स्वपदार्थ चैतन्य भगवान का ज्ञान ... ज्ञान की तीक्ष्ण धारा चैतन्य के पूर्ण स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई ज्ञान की, श्रद्धा की तीक्ष्ण धारा से माया, परद्रव्य से लाभ—ऐसा जो मोह और उसकी जो माया, उससे छेदी जा सकती है। समझ में आया? ऐसी बहुत सूक्ष्म बात है। कहीं-कहीं इसे परद्रव्य से लाभ मनवा देता है मोह, उसमें माया चलती जाती है। आहाहा! माया अर्थात् आड़ मारकर परन्तु उसमें मानता है कि उसमें से लाभ है। आहाहा! उस माया को प्रभु! तेरे ज्ञानशस्त्र से छेद। दूसरा कोई उपाय नहीं। स्वद्रव्य के आश्रय से होती ज्ञानधारा, उसे परद्रव्य के आश्रय में जाता मोह और उसकी माया छेद। आहाहा!

यह मायाकषाय गूढ़ है, इसका विस्तार भी बहुत है,... फैलाव है बहुत विस्तार। **मुनियों तक फैलती है,...** देखा! माया का अंश है न! ... शल्य नहीं भले, परन्तु माया है। संज्वलन की माया है। आहाहा! **इसलिए जो मुनि ज्ञान से इसको काट डालते हैं...** चैतन्यस्वभाव के माहात्म्य द्वारा ज्ञान गुण, ज्ञान का गुण गम्भीर, गहन, अपरिमित ऐसे गुण को पकड़कर जो पर्याय—शस्त्र प्रगट हुआ, उस द्वारा माया छेदी जाती है, माया का व्यय होता है, ज्ञान शान्ति की उत्पत्ति होती है, ध्रुवता की शरण रहती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... माया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शल्य नहीं, माया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं-नहीं, यह माया आवे साधारण। उस समय आवे साधारण। माया है न। प्रमाद है न। प्रमाद-प्रमाद है वह। प्रमाद, वह बहिर् के ऊपर लक्ष्य जाता है, इतना भाव संसार है। यहाँ तो संसार बेलड़ी को छेदने की बात है न। यह संसार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, परन्तु है न। है या नहीं? है नहीं तो प्रमाद कहाँ से आया? प्रमाद, वही संसार है। प्रमादी जगत पर (ढुकता है)। पाठ है न ऐसा। प्रमादी छठे गुणस्थानवाला संसार की ओर झुकता है। आहाहा! यह राग संसार है न! उदयभाव

संसार है। चाहे तो भले शुभराग हो। आहाहा! वह संसरणं संसार। स्वरूप से हट गया है। उस संसार को छेदने का उपाय कर्म, नोकर्म, भावकर्म से रहित अकर्म वस्तु। अकर्म वस्तु अर्थात्! अबद्ध वस्तु। नोकर्म, कर्म, भावकर्म से रहित अकर्म—अबद्ध। भावकर्म और जड़कर्म से बँधा हुआ नहीं, ऐसी अकर्म वस्तु। आहाहा! उसके आश्रय से प्रगट हुई ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति की दशा, उसे ज्ञानदशा ही कहते हैं। राग का अभाव, इससे वह सब ज्ञानदशा है। चैतन्य शुद्ध ध्रुव के आश्रय से प्रगट हुई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि वह सब (दशा) ज्ञानशस्त्र कही जाती है। वह ज्ञान अर्थात् कि उसमें राग नहीं, ऐसा। ऐसे ज्ञानशस्त्र द्वारा मायाबेलड़ी मोहरूपी वृक्ष में बड़े विस्तार से फैल गयी है, (वह कट जाती है)। आहाहा!

बाहुबलीजी लो न, वह संज्वलन का लोभ था। भावलिंगी मुनि थे, वह रह गयी जरा। भरत की जमीन के ऊपर हूँ, भरत को दुःख लगा होगा, यह काँटा रहा अन्दर। यह उसने स्थिर नहीं होने दिया। केवलज्ञान लेने से अटका दिया उसने। इतना काँटा, कण्टक। यह बाहुबलीजी बारह महीने तक ध्यान में (खड़े रहे)। मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, परन्तु उस राग का भाग संज्वलन का (कि) इस जमीन के ऊपर, ऐसा कि उनको दुःख लगा होगा, ऐसा भाग अन्दर रह गया। उसने श्रेणी नहीं होने दी, अन्दर धारा में न जा सके। ऐसे भरत आते हैं, ऐसे चरण-वन्दन करते हैं, पूजा करते हैं। ओहो! इन्हें तो कुछ नहीं। छूट गया। छूटे, साथ ही अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान)। धारा चैतन्यमूर्ति शक्ति का पिण्ड प्रभु, उस शक्ति की पूर्णता का विकास पर्याय में हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : भरत की भूमि मानी और उसके ऊपर मैं खड़ा हूँ। ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी कषाय है न आंशिक। किसी की जमीन में कहाँ हैं? राग में भी नहीं। जरा यह हुआ है। मूल तो उन्हें दुःख हुआ—भरत को दुःख हुआ होगा।, ऐसा लगा।

यहाँ कहते हैं कि **सच्चे मुनि हैं, वे ही मोक्ष पाते हैं।** लो! **मायाकषाय गूढ़ है, इसका विस्तार भी बहुत है, मुनियों तक फैलती है,...** देखो न, वहाँ तक लिया। **इसलिए जो मुनि ज्ञान से इसको काट डालते हैं, वे ही सच्चे मुनि हैं, वे ही मोक्ष पाते हैं।**

आहाहा! द्रव्यलिंग में भाव की खबर नहीं, इसलिए द्रव्यलिंगी को माया बहुत आती है। किसी प्रकार से कुछ हम भावमुनि में हैं, ऐसा खताने के लिये मायाजाल बहुत खड़ी होती है। वह तो द्रव्यलिंगी की (बात)। यह तो भावलिंगी को भी है, ऐसा कहते हैं। भावलिंगी तक माया अंश। आहाहा!

मुमुक्षु : .... द्रव्यलिंगी है न ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे तो बहुत माया अनन्त... क्योंकि उसे खटक-खटक, ऐसा नहीं, उसे मनवाने का भाव रहता है। साधुपना मनवाने का, दुनिया में महत्ता लेने का, मिथ्यात्व का भाव है।

मुमुक्षु : मिथ्यात्वभाव सही परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्वभाव-मिथ्यात्वभाव। वह मिथ्यात्वभाव की माया है अन्दर। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिपूर्वक इतना राग है। है न अन्दर। वह इतना नहीं। है ऐसे शुभभाव परन्तु अन्दर मिथ्यात्व का भाव ऐसा है जरा। मिथ्यात्व का भाव है। मिथ्यात्व भाव ऐसा भले हो अन्दर मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

★ ★ ★

गाथा - १५९

आगे फिर उन मुनियों के सामर्थ्य को कहते हैं :— अन्तिम गाथायें हैं न!

मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता।
ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण॥१५९॥

लो! उसमें '**णाणसत्थेहिं**' और '**चारित्तखग्गेण**'। उसमें ऐसा था कि ज्ञान और दर्शन के अग्र—प्रवर हाथ द्वारा भव्य जीवों को तिराते हैं। सब उपमा दी थी। इसका अर्थ कि मुनि धर्मात्मा का उपदेश दर्शन और ज्ञान का मूल होता है। स्वद्रव्य के आश्रय से ज्ञान और स्वद्रव्य के आश्रय से श्रद्धा, ऐसा ही उनका उपदेश मुख्य होता है। उस

उपदेश को सुनकर, वह भाव जो कहे थे, वे भाव जिसने प्रगट किये, उसे इन्होंने तिराया, ऐसा कहा जाता है।

अर्थ :- जो मुनि मोह-मद-गौरव से रहित हैं... १५९। जो मुनि मोह—परद्रव्य की ममता। **मद...** अभिमान। **गौरव...** साता आदि **रहित हैं और करुणाभाव सहित हैं, वे ही चारित्ररूपी खड्ग से...** स्वरूप की रमणतारूप चारित्र, चरना, आनन्द में रमना। आहाहा! चारित्ररूपी खड्ग-तलवार से **पापरूपी स्तम्भ को... 'दुरिय'** है न? **'दुरिय'** पाप। **'दुरिय'** रूपी स्तम्भ—खम्भा। आहाहा! **हनते हैं अर्थात् मूल से काट डालते हैं। 'हणंति' 'सव्वदुरियखंभं हणंति'** आहाहा! भावपाहुड़ की अन्तिम गाथायें हैं न!

भावार्थ :- परद्रव्य से ममत्वभाव को मोह कहते हैं। अपने द्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य मेरे हैं अथवा परद्रव्य से कुछ लाभ, ऐसा जो मोह, उसे मिथ्यात्वभाव कहते हैं। **मद—जाति...** कुल, सूत्रमद, तपमद **आदि परद्रव्य के सम्बन्ध से गर्व होने को मद कहते हैं।** आहाहा! जाति, कुल। मेरी माता की जाति यह है, हमारा कुल ऊँचा, हम राजकुल में जन्मे हैं, हमारी माता राजा की पुत्री थी, ऐसा गहरा मद रह जाये गर्व। आहाहा! उसे मद कहते हैं। **गौरव तीन प्रकार का है—ऋद्धिगौरव, सातागौरव और रसगौरव। जो कुछ तपोबल से अपनी महन्तता लोक में हो...** तपस्या बहुत हो, दुनिया बहुत माने। राजा, गृहस्थ। **उसका अपने को मद आवे,...** यह हमको राजा मानते हैं। उस मद को छेद, ऐसा कहते हैं। ऐसे मदरहित हो। वह मद क्या तुझे लाभ करता है? नुकसान है। राजा माने या वह माने, उसमें तुझे क्या लाभ है? तेरा आश्रय तूने उग्र लिया, उसमें तुझे लाभ है। पर का मद माने अधिक। हमको करोड़पति मानते हैं, हमको राजा नमते हैं, हमने राजाओं को धर्म प्राप्त कराया है—ऐसा मद छोड़। आहाहा! **ऋद्धि...** उसे ऋद्धिगौरव कहते हैं।

यदि अपने शरीर में रोगादिक उत्पन्न न हों... शरीर में कभी रोग ही न आया हो, दवा न ली हो, सोंठ न चोपड़ी हो, उसका इसे अभिमान। देखा! हमारा शरीर ऐसा है। उसका भी मद। वह सातागौरव। शरीर की साता रही हो न। ८०-८० वर्ष हुए हों, १०० वर्ष हुए हों, परन्तु जरा भी कोई रोग न आया हो। उसके शरीर की ऐसी स्थिति का उसे गौरव-अभिमान रहे, लो! उसे छोड़ दे। वह तो शरीर की अवस्था उस प्रमाण रहने की

हो तो रही है। उसमें तेरे लिये कहाँ रही है? वह तेरी कहाँ है? सातागौरव। **प्रमादयुक्त होकर अपना महन्तपना माने...** ऐसा। सुखी शरीर रहे, कभी रोग न हो, उसका इसे अभिमान, महन्तपना माने।

सनतकुमार चक्रवर्ती को रोग हुआ, लो! मोक्षगामी चक्रवर्ती। कितना पुण्य! यह दीक्षा ली और रोग। गलित कोढ़, अँगुलियाँ गले। उससे क्या नुकसान है? उसमें किसकी दीनता है? और साता का किसका गर्व है? अनुकूल शरीर रहे कि देखा, हमको सौ वर्ष हुए परन्तु सिर पर सोंठ चुपड़ी नहीं कभी, ऐसा कहे। हमको बुखार आयी नहीं। बहुतों को होता है। और आवे तो फिर समाप्त। वहीं का वहीं मर जाता है। ऐसे भी होते हैं अभी। बुखार न आया हो कभी, यदि आया तो समाप्त। ऐसी स्थिति शरीर की हो, उसमें क्या है? जड़ के परमाणुओं का ऐसा परिणमन होता है, उसका अभिमान क्या? उसमें अधिकता क्या? यह हुआ इससे अधिक क्या हुआ तुझे? यह सातागौरव छोड़। आहाहा!

यदि मिष्ट-पुष्ट आहारादिक मिले... आहार में सब ऊँची-ऊँची चीज़ मिले पुण्य के कारण, **तो उसके निमित्त से प्रमत्त होकर...** आहार खाकर भी ऐई! निश्चिन्त पड़ा रहे शैय्या में। प्रमाद का पोटला होकर। **शयनादिक करे रसगौरव है।** अच्छे रस मिले, दूधपाक, मैसूर, मौसम्बी, आम का बढ़िया रस खाकर फिर प्रमादी होकर पड़े, वह रसगारव है। उसे छोड़, कहते हैं। अब उस रस में क्या? आत्मरस के समक्ष यह रस क्या? आहाहा! आत्मा के आनन्द के रस के समक्ष इस रस का अभिमान क्या? यह तो जड़ है। आहाहा!

मुनि इस प्रकार गौरव से तो रहित हैं... तीनों—साता, ऋद्धि, रसरहित है। **और परजीवों की करुणा से सहित हैं...** ऐसा कहकर यह कहते हैं कि ऐसा परजीव को पररूप से माना, इसलिए अब कुछ नहीं, चाहे जैसे हो, ऐसा नहीं। उसे करुणा का राग का अंश होता है। परजीव को न मारने का करुणा अंश उसे होता है। **परजीवों से मोहममत्व नहीं है, इसलिए निर्दय होकर उनको मारते हैं,...** ऐसा नहीं। ऐसा। **परन्तु जब तक राग अंश रहता है, तब तक परजीवों की करुणा ही करते हैं,...** अस्थिरता की करुणा की बात है। परजीव के कारण से करुणा उत्पन्न हो, उसे तो मिथ्यात्व कहा है।

तिर्यंच मनुष्येशु... प्रवचनसार में। तिर्यंच और मनुष्य को दुःखी देखकर उसके हेतु से राग उत्पन्न हो, वह मिथ्यात्व है। यह वह बात नहीं।

मुमुक्षु : करुणा करे बेचारा और मिथ्यात्व ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करुणा कहाँ थी ? उसे दुःख होता है, इसलिए मुझे राग आया है, यह मिथ्यात्वभाव है। अपनी कमजोरी के कारण राग आवे, वह अलग बात है। वह यह करुणा उसे यहाँ कहते हैं। कमजोरी का राग आता है, राग का अंश होता है। अनन्त जीव... कल पत्रिका में तो बहुत आया था एकेन्द्रिय का। पत्रिका में है कहीं एकेन्द्रिय जीव। उसमें ही है जैनप्रकाश में। एकेन्द्रिय जीव है, उसे वृत्ति है, उसे दुःख होता है, आवेश आ जाता है ऐसा अन्दर आया। जगदीशचन्द्र बसु। जगदीशचन्द्र बसु नहीं ?

मुमुक्षु : जगदीशचन्द्र बसु।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। उसने वनस्पति में जीव है, एकेन्द्रिय में जीव है, (ऐसा) सिद्ध किया है। कल तो उसमें बहुत लिखा था। कितना ही अन्तर भी होगा। ऐसा कि वहाँ उसे आवाज होती है। उसका अभ्यास होवे तो उसकी आवाज सुन सके। ऐसा लिखा था। दुःखी हो तब। यह रिसामणी का वृक्ष नहीं ? रिसामणी का। रिसामणी का वृक्ष होता है। हाथ छुए तो संकुचित हो जाता है। उसमें बहुत लिखा है। जीव है, बराबर दुःख होता है। जहाँ उसके नजदीक जाये हाथ छूने को, वहाँ तो उसे आवेश आ जाता है अन्दर से।

मुमुक्षु : लजवन्ती के पत्ते होते हें।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। यह कहा न। लजवन्ती कहा। यह हमारे रिसामणी कहते हैं। वह रिसामणी का वृक्ष कहलाता है। छुए तो रिसाई जाये। संकुचित हो जाये, पत्ते ऐसे हो जायें। वह जीव है न अन्दर जीव है। अनन्त गुण का पिण्ड है। आहाहा! एक मन नहीं। यह संज्ञा है या नहीं चार ? आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा। शास्त्र में तो ऐसा आता है कि जहाँ निधान हो, कहीं निधान गाड़ा हो। वनस्पति उगी हो तो वनस्पति की बेल उस ओर जाती हैं। परिग्रहसंज्ञा है न। अव्यक्तरूप से भी, मन नहीं तो भी। ऐसा पाठ है। समझ में आया ? निधान हो कहीं और बेल उगी हो बेल। तो उस

बेल की दिशा उसकी ओर जाती है। परिग्रहसंज्ञा है न। देखो! फिर एक व्यक्ति ने ऐसा किया था। कहा था न एक बार। शास्त्र में ऐसा आता है। तब उसने घर में वृक्ष बोया। घर के अन्दर कोने में। बेल जिसकी ओर जाये। फिर बेल तो बोयी हुई हो तो ऊपर कहाँ से जाये फिर? वह तो ऐसे तो जाये। वहाँ खोदा तो कुछ निकला नहीं। ऐसा कि निधान (मिलेगा)। बात आयी बोटाद व्याख्यान में आते थे। महाराज कहते थे कि ऐसा है। कमरे में बेल बोयी। वह बेल तो मुड़े तो सही न? फिर ऊपर न जाये तो ऐसे मुड़े। यहाँ निधान होगा। खोदा, सिर तक खोदा। कुछ निकला नहीं।

यह तो उसमें नहीं आता समयसार में? ऐसा कि लोहे का सोना होता है, ऐसी वनस्पति को स्पर्श करावे तो। परन्तु पुण्य हो तो होता है, ऐसा वापस लिखा है। जयसेनाचार्य की टीका में है। पुण्य हो तो यह सब होता है। नाग ... औषधि और ऐसा सब है। परन्तु उसमें क्या है?

यहाँ आत्मा महाप्रभु भगवान होकर जगे, अब वह तुझे किस काम का? आहाहा! तेरी पर्याय की बेल उसकी ओर झुका न। आहाहा! यह निधान पड़ा है वहाँ। उस पर्याय की बेलड़ी वहाँ झुका निधान में। निधान खिल जाये। तुझे आनन्द आयेगा, सुख मिलेगा, केवलज्ञान होगा। आहाहा! यह कहाँ व्यर्थ प्रयास किया मारे तूने? महानिधान है वह। आहाहा! जिसमें अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें अन्दर पड़ी हैं। अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें जिसके निधान में पड़ी हैं। स्वभावरूप है, शक्तिरूप है, सामर्थ्यरूप है, वस्तु है, अस्ति है। ऐसे निधान की ओर जा न! तुझे अन्दर केवलज्ञान के फल प्रस्फुटित होंगे। आहाहा! स्वविषय में केवलज्ञान प्रस्फुटित होगा, परविषय में संसार प्रस्फुटित होगा। आहाहा!

परन्तु जब तक राग अंश रहता है... राग का अंश रहे। **तब तक परजीवों की करुणा ही करते हैं, उपकारबुद्धि रहती है। इस प्रकार ज्ञानी मुनि पाप जो अशुभकर्म...** **'दुरिय'** शब्द है न? **'दुरिय'** अर्थात् दुरित पाप। **अशुभकर्म उसका चारित्र के बल से नाश करते हैं।** सम्यग्दर्शनसहित जिसे चारित्रदशा द्वारा ऐसे राग का नाश करता है, ऐसा कहते हैं। स्वयं मुनि हैं कुन्दकुन्दाचार्य। अपनी दशा भी वर्णन करते हैं। आहाहा! हम इस दशा में हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तुम भी उसमें आओ न! तुम्हारे पास है न

तुम्हारी ऋद्धि। दूर कहाँ है कि तुमको खोजने जाना पड़े, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तर पड़ा है न चैतन्य आनन्द का निधान। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का गंज है वह तो। अतीन्द्रिय आनन्द की अपरिमित शक्ति का सत्त्व है वह। जिसे द्रव्यस्वभाव ज्ञायकभाव शास्त्र ने कहा है। यहाँ ऐसा आया कि भाई सर्वज्ञस्वभावी, ऐसा। सर्वज्ञस्वभाव। अल्पज्ञ की रुचि छोड़कर सर्वज्ञ का स्वभाव और रुचि कर। अथवा अल्पज्ञ द्वारा सर्वज्ञ में जा। क्योंकि पर्याय तो उसकी है न! राग द्वारा नहीं जाया जाता। ज्ञान की पर्याय द्वारा जाया जायेगा।

इस प्रकार ज्ञानी मुनि पाप जो अशुभकर्म, उसका चारित्र के बल से नाश करते हैं। लो! दो गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - १६०

आगे कहते हैं कि इस प्रकार मूलगुण और उत्तरगुणों से मण्डित मुनि हैं, वे जिनमत में शोभा पाते हैं :— वीतरागमार्ग में ऐसे शोभा को पाते हैं। आहाहा! मूलगुण और उत्तरगुणसहित हैं वे।

गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो।
तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइंदुव्व पवणपहे ॥१६०॥

'**णिसायरमुणिंदो**' रात्रि को प्रकाश करनेवाला चन्द्र।

आहाहा! कितनी अधिक उपमा ही आयी इतने में। बहुत गाथायें, अन्तिम है न।

अर्थ :- जैसे पवनपथ (-आकाश) में... पवनपंथ अर्थात् आकाश। पवन चलती है वह आकाश में पवनपंथ उसे कहते हैं। पवन रुकती नहीं परन्तु चलती ही जाती है ऊपर, ऐसा आकाश। पवनपंथ अर्थात् आकाश। **ताराओं की पंक्ति के...** उस आकाश को ताराओं की पंक्ति-श्रेणी। आहाहा! ऐसे **परिवार से वेष्टित...** ऐसे ६६९७५ क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। उनकी पंक्ति में चन्द्र शोभता है, ऐसा कहते हैं। **वेष्टित पूर्णिमा का चन्द्रमा शोभा पाता है,...** देखा! '**पुण्णिमइंदुव्व**' पूर्णिमा का इन्दु, ऐसा। आहाहा! **वेष्टित पूर्णिमा का**

चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही जिनमतरूप आकाश में... लो! वीतराग अभिप्राय के मत में। आहाहा! पवनपंथ अर्थात् आकाश। यह जिनमतरूपी आकाश, वीतरागभावरूपी आकाश। आहाहा!

वीतरागमतरूपी **आकाश में गुणों के समूहरूपी मणियों की माला से...** मूलगुण और उत्तरगुणरूपी गुणों की समूहरूपी मणिओं की माला, (उससे) **मुनीन्द्ररूप चन्द्रमा शोभा पाता है।** आहाहा! चारित्र और मुनिपना कैसा है, यह वर्णन करते हैं। आहाहा! जिसके अवतार सफल हुए, जिसके भव गल गये। आहाहा! भव गये, सफल हुए और जिसकी दशा, ताराओं में जैसे चन्द्र वेष्टित होने से शोभता है, वैसे गुण वेष्टित से वह मुनि चन्द्रमा समान शोभता है। आहाहा! मुनिपना केसा है चारित्र, लोगों को खबर नहीं होती। जिसे-तिसे मान ले। वस्त्र बदले वहाँ जय नारायण। आहाहा!

जिनमतरूपी आकाश में... निरालम्बी अभिप्राय। आहाहा! जैसे पवनपंथ आकाश, वैसे जिनमतरूपी आकाश। वीतराग परिणमन, वह जिनमत। वीतरागी स्वभाव का ज्ञान-श्रद्धारूपी जिनमत। आहाहा! उस **जिनमतरूपी आकाश में गुणों के समूहरूपी...** वह तारों का परिकर। उसी प्रकार यह उत्तरगुण और मूलगुण का समूह **मणियों की माला से मुनीन्द्ररूप चन्द्रमा शोभा पाता है।** आहाहा! अन्तिम गाथायें हैं न यह! बस पाँच रही। १६५ (गाथायें) हैं। थोड़ी गाथा छोड़ी गयी है, बाद में लेंगे अन्दर। ३४ से थोड़ी छोड़ी गयी है।

भावार्थ :- अट्ठाईस मूलगुण, दसलक्षण धर्म,... अट्ठाईस मूलगुण। आहाहा! छह आवश्यक। उनके लिये बनाया हुआ आहार न ले। पाँच समिति, तीन गुप्ति। गुप्ति उसमें नहीं आती। ऐसे अट्ठाईस मूलगुण साधु के हैं न। नग्नपना, दिगम्बरपना, छह आवश्यक, छह काय की दया का भाव, संयम इत्यादि। ऐसे **मूलगुण, दसलक्षण धर्म,...** क्षमादि उत्तमधर्म। क्षमा के सागर। मुनि तो क्षमा के सागर, सरलता के सरोवर, आहाहा! निर्लोभता के निर्ग्रन्थ दशावन्त ऐसे दस प्रकार के धर्म से शोभित हैं। चारित्र की व्याख्या है न! चारित्र कोई नग्नपना, वह कुछ नहीं। यहाँ अट्ठाईस मूलगुण डाले हैं, है विकल्प। परन्तु ऐसा भूमिका में होता है। दशलक्षण धर्म। तीन गुप्ति अलग की, देखा!

वह अट्ठाईस में नहीं। पाँच समिति है, उसमें—अट्ठाईस में, तीन गुप्ति नहीं।

तीन गुप्ति और चौरासी लाख उत्तरगुणों की... लो! ओहोहो! चौरासी लाख योनि में से निकलने के चौरासी लाख उत्तरगुण। चौरासी लाख की व्याख्या आ गयी है पहले इसमें अर्थ में। ऐसे **चौरासी लाख उत्तरगुणों की मालासहित मुनि जिनमत में...** वीतरागमार्ग में निर्ग्रन्थदशा में, ओहो! **चन्द्रमा के समान शोभा पाता है,...** आहाहा! **ऐसे मुनि अन्यमत में नहीं हैं।** ऐसा लिखा है। यहाँ जिनमत शब्द था सही न? वीतरागमार्ग में ऐसे मुनि होते हैं, अन्यत्र तो होते नहीं। कहीं है ही नहीं। पूर्ण स्वरूप ही नहीं। जिसने सर्वज्ञपना नहीं जाना, सर्वज्ञपना जिसे प्रगट नहीं हुआ, ऐसा जो भगवान आत्मा, सर्वज्ञपर्याय से प्रगट ज्वाज्लयमान ज्योति प्रगट हो, उनके मत में ऐसे सन्त होते हैं, कहते हैं। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द की दशा प्रगट हुई है, शान्ति का उग्र वेदन अन्दर है। आहाहा! जिसे वीतरागता की दशा में निर्ग्रन्थदशा हुई है। निर्ग्रन्थ है न? राग की गाँठ से तो निकल गये हैं। एकत्व से तो निकल गये हैं परन्तु अस्थिरता से निकल गये हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा, ऐसी जो चारित्रदशा, वे **शोभा पाते हैं,...** लो!

ऐसे मुनि अन्यमत में नहीं हैं। वीतराग अभिप्राय। तीन लोक का ज्ञान जिन्हें, तीन काल-तीन लोक के ज्ञान की दशा, उसमें ऐसे सन्त पकते हैं, कहते हैं। जिसे तीन काल-तीन लोक का ज्ञान नहीं, ऐसे देव ही नहीं, उसमें ऐसे (सन्त) नहीं पकते। उसमें ऐसे साधक जीव नहीं पकते, ऐसा कहते हैं। ऐसा जहाँ साध्य पूर्ण दशा प्रगटी है, ऐसे मत में ऐसे साधक जीव पकते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ऐसे मुनि अन्यमत में नहीं हैं।**

★ ★ ★

गाथा - १६१

आगे कहते हैं कि जिनके इस प्रकार विशुद्ध भाव हैं... जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु और उसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की विशुद्धता जिसे है **विशुद्ध भाव हैं, वे सत्पुरुष तीर्थंकर आदि पद के सुखों को पाते हैं :—** आहाहा! '**जिण**' शब्द है न? '**सवसुरवरजिण**' ऐसा शब्द है। सभी नाम हैं।

चक्कहररामकेसवसुरवरजिणहराइसोक्खाइं।
चारणमुणिरिद्धीओ विसुद्धभावा णरा पत्ता॥१६१॥

जिसने सम्यग्दर्शन, सम्यक् जिनभावना जिसे है, उसे ऐसे पद की प्राप्ति होती है, ऐसा कहते हैं। जिनभावना वीतरागस्वरूप भगवान का जिनसमकित, वीतराग की अनुभव में प्रतीति, ऐसा अन्दर जिनसमकित है, वह ऐसे सुख प्राप्त करके मुक्ति पाता है, ऐसा कहते हैं।

अर्थ :- विशुद्ध भाववाले ऐसे नर मुनि हैं, वे चक्रधर (-चक्रवर्ती, छह खण्ड का राजेन्द्र).... छह खण्ड के राजेन्द्र, वह चक्रवर्ती। भरत के छह खण्ड हैं यह भरत। वैताढ पर्वत बीच में है। उसके तीन खण्ड उस ओर हैं और तीन खण्ड इस ओर। छह खण्ड के राजेन्द्र को चक्रवर्ती राजा कहते हैं। वह आत्मा के सम्यग्दर्शन के भानवाले जीव ऐसे पद को पाते हैं, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को ऐसे पद होते नहीं। आहाहा! चक्रवर्ती **राम (बलभद्र)...** रामचन्द्रजी आदि हुए न जितने, वे सब बलभद्र। **केशव (नारायण, अर्धचक्री)...** वे पूर्ण पूरे। **सुरवर (-देवों का इन्द्र)...** ऐसे जो बाहर के सुख, सब समकिती आत्मज्ञानी को, आत्मस्वभाव आनन्द का नाथ प्रभु, ऐसा जिसे भान हुआ है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को, जिन भावनावाले जीव को ऐसे सुख होते हैं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को यह चक्रवर्तीपना, बलदेवपना, वासुदेवपना हो नहीं सकता। भले वासुदेव ... परन्तु पहले समकिती थे, चारित्रवन्त थे। उन्हें ऐसा पुण्य बँधता है। दूसरे अज्ञानियों को ऐसा पुण्य नहीं बँधता। आहाहा!

सुरवर (-देवों का इन्द्र) जिन (तीर्थंकर पंचकल्याणकसहित, तीन लोक से पूज्य पद)... लो! तीर्थंकर हो पंच कल्याणकसहित। जिसके जन्मकल्याणक हो,

गर्भकल्याणक हो, दीक्षा कल्याणक हो, केवलज्ञानकल्याणक हो, मोक्षकल्याणक हो। सौ-सौ इन्द्र की उपस्थिति जिनके जन्म के समय, दीक्षा के समय, ऐसा तीर्थंकरपद। वह आत्मा के सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे पद को पा सकते हैं, ऐसा कहते हैं। उन्हें ही ऐसा भाव होता है, ऐसा। आत्मदर्शन शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्ण पवित्र का नाथ वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर, उसकी जिसे सम्यक् जिनभावना है, वीतरागभावना कहो, जिनभावना कहो, समकित कहो, ऐसे जीव को ऐसे पद प्राप्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा! **पंचकल्याणक सहित, तीन लोक से पूज्य पद।** तीन लोक के पूज्य। आहाहा! जिनके जन्म के समय देवों के आसन कम्पित हों। कुदरत का ऐसा नियम देखो न! ओहो! जिनके गर्भ के समय कम्पित हों। जन्म के समय, दीक्षा के समय। आहाहा! महापुरुष दीक्षित होते हैं। ऐसे तीर्थंकर के दीक्षा के समय भी पंच कल्याणक में देवों के आसन कम्पित होते हैं। आहाहा! उनके केवलज्ञान के समय, मोक्ष के समय। **गणधर (चार ज्ञान और सप्तऋद्धि के धारक मुनि)...** वे भी सम्यग्दर्शन निर्मल जिनभावनावाले हो सकते हैं। **इनके सुखों को तथा चारणमुनि (जिनके आकाशगामिनी आदि ऋद्धियां...)** आकाश में मुनि चलें, ऐसी ऋद्धि होती है। ऐसी **ऋद्धियाँ पाई जाती हैं...** लो!

भावार्थ :-पहिले इस प्रकार निर्मल भावों के धारक पुरुष हुए, वे इस प्रकार के पदों के सुखों को प्राप्त हुए, अब जो ऐसे होंगे वे पावेंगे,... प्रथम में जो यह सब तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव हुए, वे सब सम्यग्दृष्टिसहितवाले सुख को प्राप्त हुए। भविष्य में भी वह सम्यग्दर्शनसहित होंगे, उन्हें ऐसे सुख होंगे। आत्मा के भानसहित के पुण्यबन्ध के ऐसे प्रकार होते हैं, ऐसा कहते हैं। यह अन्तिम बात है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल २, शनिवार, दिनांक २२-०६-१९७४
गाथा - १६२ से १६४, ३५ से ३७, प्रवचन-१८०

चैतन्य के परिणमन से हुआ भाव, ऐसा जो **भावित जीव हैं, वे ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं। कैसा है सिद्धसुख ?** यहाँ तो कहते हैं कि शुद्ध चैतन्यस्वभाव के सन्मुख की जो एकता, ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, उससे सिद्ध के सुख को पाते हैं। भावपाहुड़ है न! दोपहर में तो आता है कि व्रतादि के विकल्प, वह सब बन्ध का कारण है। बन्धरूप है, बन्ध का कारण है। यह मोक्षरूप है और मोक्ष का कारण है। शुद्ध चैतन्य आनन्ददल की एकाग्रता, शुद्ध परिणति, शुद्ध परिणति में तीनों ही आये—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। वह जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता द्वारा मोक्ष को पाता है।

कैसा है सिद्धसुख ? शिव है, कल्याणरूप है,... मोक्ष का सुख उपद्रवरहित है, ऐसा कहते हैं। आत्मा के आनन्द से उत्पन्न हुआ सुख है, कल्याणस्वरूप है। शिवमलय आता है न नमोत्थुणं में ? **किसी प्रकार उपद्रवसहित नहीं है,...** नकार से बात की है। आनन्दस्वरूप मोक्ष का सुख कल्याणरूप, उपद्रवरहित है। उसमें किसी प्रकार का उपद्रव है नहीं। ऐसे सुख को शुद्ध चैतन्य के परिणमन द्वारा पाते हैं, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय बीच में आवे, वह बन्ध का कारण है, वह बन्धस्वरूप ही है। यह भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है। अबन्धस्वरूप है कहो या मुक्तस्वरूप कहो। उसकी परिणति, वह मुक्तस्वरूप है। इसलिए उससे मुक्ति का सुख पाते हैं।

अजरामरलिंग है अर्थात् जिसका चिह्न वृद्ध होना और मरना, इन दोनों से रहित है,... सिद्ध का सुख—मोक्ष का सुख; जरा—वृद्धावस्था रहित, मरण—अन्त आवे उससे रहित, ऐसा उसका सुख है। जरा है न ? **जिसका चिह्न वृद्ध होना और मरना इन दोनों से रहित है,...** सिद्ध का सुख, वह जीर्ण क्या हो ? ताजा-ताजा आनन्द है। उन्हें मरण नहीं, अन्त नहीं। ऐसे सिद्ध के सुख को शुद्ध चैतन्य की परिणति द्वारा पाया जाता है। **अनुपम है, जिसको संसार के सुख की उपमा नहीं लगती है,...** संसार का सुख तो

जहर है। आत्मा का सुख तो अतीन्द्रिय आनन्द है, उसे जगत के सुख के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

उत्तम (सर्वोत्तम) है,... किसी के सुख की उपमा उसे नहीं दी जाती। सर्वोत्तम है। **परम (सर्वोत्कृष्ट) है,...** आहाहा! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है ध्रुवरूप से, उसकी परिणमन दशा होकर सुख का पूर्ण परिणमन होना, वह सर्वोत्कृष्ट है। ऐसा सुख कहीं अन्यत्र है नहीं। **महार्घ्य है अर्थात् महान अर्घ्य-पूज्य प्रशंसा के योग्य है,...** वह परमार्थ मोक्ष का सुख ही प्रशंसनीय है। महिमायोग्य हो तो वह है। यह दुनिया के अरबोंपति और करोड़ोंपति और बाहर की सुविधा हो तो, ओहोहो! बादशाही है इसे, सुखी है। वह सुखी नहीं, वह तो दुःखी है। वह प्रशंसायोग्य नहीं। आत्मा का परमानन्द सुख, वह मोक्षमार्ग से प्राप्त होता है, वह प्रशंसायोग्य है, कहते हैं। वह महिमायोग्य है, पूजनेयोग्य है।

विमल है कर्म के मल तथा रागादिकमल से रहित है। मोक्ष के मार्ग से प्रगट हुआ मोक्ष, मोक्ष के मार्ग से प्रगट हुआ मोक्ष, वह कर्ममल रहित है, रागादि रहित है। राग भी नहीं। आहाहा! **अतुल है, इसके बराबर संसार का सुख नहीं है,...** अनुपम आया था। उपमा नहीं। यहाँ अतुल है। उसके साथ बराबर संसार के सुख का कोई मेल है नहीं। **ऐसे सुख को जिन-भक्त पाता है,...** जिनभक्त अर्थात् वीतरागीस्वरूप भगवान आत्मा का, उसका भक्त जिनभक्त, वह जिनभक्त। आहाहा! वीतरागस्वरूप से भगवान परमात्मस्वरूप, वह जिनस्वरूप है। उसका भक्त, उसकी एकाग्रतावाला ऐसे सुख को पाता है। ऐसा सुख अन्यत्र नहीं हो सकता। **जिन-भक्त पाता है, अन्य का भक्त नहीं पाता है।** क्योंकि दूसरों में तो राग के विकल्प के भाव में धर्म मनावे, ऐसों को माननेवाले ऐसा सुख प्राप्त नहीं कर सकते।

★ ★ ★

गाथा - १६३

अब **आगे आचार्य प्रार्थना करते हैं कि जो ऐसे सिद्धसुख को प्राप्त हुए...** ऐसे जो सिद्ध के सुख को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान, **वे मुझे भावों की शुद्धता देवे :-** आहाहा! भावना अपनी है न! ऐसे भगवान मुझे सिद्धसुख दें, शुद्धता दें। अर्थात् कि मेरा स्वरूप जो पवित्र शुद्ध है, उसकी भावना में आगे बढ़ जाऊँ, वह मुझे सुख दे, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा।
दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य॥१६३॥

अर्थ :- सिद्ध भगवान... लोगस्स में भी आता है न, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु। सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु। आता है लोगस्स में। आता है? किया था या नहीं लोगस्स? उसमें आता है सिद्धा सिद्धिं। हे सिद्ध भगवान! हे परमात्मा! मुझे सिद्धपना बताओ। दिसंतु—दिखाओ। इसका अर्थ कि मुझे केवलज्ञान होओ और मैं सिद्धपद को जानूँ, ऐसा। आहाहा! **सिद्ध भगवान मुझे दर्शन, ज्ञान में...** सिद्ध भगवान मेरे दर्शन में—आत्मा की श्रद्धा सम्यग्दर्शन में, आत्मा का ज्ञान, उस स्वसंवेदनज्ञान में और आत्मा का चारित्र, वह स्वरूप शुद्ध चैतन्य में आनन्द में रमणता, **श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता देवें।** ऐसे मेरे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में श्रेष्ठ उत्तम भाव की शुद्धता दो, भगवान! ऐसा कहते हैं। यह तो भावना का बोल है। भगवान कहाँ देते हैं? देते हैं किसी को? तब ऐसी माँग किसलिए करे? यह विनय के वाक्य हैं।

अन्तर का भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द से भरपूर प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में मुझे शुद्धता दो। मेरी इन तीन की शुद्धता बढ़ो, ऐसा कहते हैं। स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जो है, उसकी शुद्धता मुझे बढ़ो, ऐसा सिद्ध को कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता देवें। कैसे हैं सिद्ध भगवान? तीन भुवन से पूज्य हैं,... 'तिहुवणमहिया' उसमें भी आता है न? ऐवं मये... वंदिये महिया। लोगस्स में आता है। कित्तियवंदिपमहिया जो ऐ लोगस्स उत्तम सिद्धा। लोगस्स किया है? किया तो

होगा न! उसमें आता है कि त्तियवंदिपमहिया जो ऐ लोगस्स उत्तम सिद्धा आरुग्गबोहिलाभं समाहिवर मुत्तमं दिंतु। यह महिआ में से वहाँ गारीयाधार में थे न बहुत वर्ष पहले। एक साधु कहते कि देखो! इसमें भगवान की पूजा कही है। महिआ अर्थात् उसे तो यह बतलाना हो न! मन्दिरमार्गी साधु थे। वे और वह मणिसागर। सागरानन्द के भाई बड़े भाई और तब गाँव में मोहनलालजी थे। मोहनविजय, प्रतापविजय और धर्मविजय, ये तीनों थे वहाँ। फिर आये थे। वहाँ इकट्ठे नहीं उतरे। ... सेठ के कमरे में वहाँ उतरे थे। गये थे दोपहर में सुनने। मैं अलग पढ़ूँ। फिर यह लाये। दीक्षा लेनेवाले हैं। महिया... जिनपूजा वीतराग। देखो लोगस्स में कही है। महिया आता है न? महिया का अर्थ पूजा आता है न देखो! है? '**तिहुवणमहिया**' तीन लोक, तीन भुवन में महिया अर्थात् पूज्य है। पूजनेयोग्य है, भगवान। आहाहा! वहाँ भी महिया कहा है, इसलिए ऐसा कि ... परन्तु वह तो पूजनेयोग्य है, ऐसा। स्थानकवासी के सामने उसका अर्थ निकालते उसमें से। (संवत्) १९६८ के वर्ष की बात है।

मुमुक्षु : .... ऐसा कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे तो महिया शब्द आया न। वे कहते थे। निकालते हैं बहुत उसमें से मन्दिरमार्गी। साधारण लोगों को (दिखाये), देखो! इसमें महिया आता है पूजना। भगवान की पूजा आती है इसमें। तुम मानते नहीं। तब गारियाधार की बात है। ६९ का वर्ष है, संवत् १९६९।

यहाँ कहते हैं, '**तिहुवणमहिया सिद्धा**' तीन लोक में पूज्य हैं। आहाहा! सबको पूज्य है? बड़े पुरुषों को पूज्य है, उसमें यहाँ तीन भुवन में सब जीव आ गये। कितने ही तो सिद्ध को इनकार करते हैं। यहाँ तो कहते हैं, '**तिहुवणमहिया**' तीन लोक में उत्तम पुरुषों को पूज्य है। वे उत्तम पुरुष ही तीन भुवन में आ जाते हैं। **शुद्ध हैं,... 'सिद्धा' 'तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा'** शुद्ध है भगवान परमात्मा। जिन्हें—द्रव्यकर्म नहीं, जड़कर्म नहीं, भावकर्म—पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वह नहीं, ऐसे वे निर्मल हैं, शुद्ध हैं। **नोकर्मरूप मल से रहित हैं, निरंजन हैं...** जिन्हें कर्म का अंजन अर्थात् मैल नहीं। ऐसे सिद्ध भगवान **रागादि कर्म से रहित हैं, जिनके कर्म की उत्पत्ति नहीं है,... 'णिरंजणा'** १०८ कलश में है। (कलश टीका)

यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप आचरणरूप चारित्र है, वह करनेयोग्य तो नहीं, तथा वर्जनयोग्य भी नहीं। (समयसार) १०८ कलश है। ***उत्तर इस प्रकार है कि वर्जनयोग्य है।*** यह पंच महाव्रत के परिणाम, शुभभाव भक्ति आदि का भाव, व्यवहारचारित्र, व्यवहारचारित्र वर्जनयोग्य है। ***क्योंकि व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है।*** व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत के परिणाम होते हुए दुष्ट हैं, अनिष्ट हैं। व्यवहारचारित्र अनिष्ट है। और तीसरा बोल है—घातक है। व्यवहारचारित्र, हों! निश्चयचारित्र के सहित (वाला)। जिसके स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति वर्तती है, उसे जो पंच महाव्रत के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह व्यवहारसमिति—गुप्ति का विकल्प आवे, भगवान की भक्ति आदि का बहुमान, विनय आदि का आवे, ऐसा जो व्यवहारचारित्र वर्जनयोग्य है, ऐसा कहते हें। करनेयोग्य नहीं, ऐसे वर्जनयोग्य नहीं, ऐसा नहीं। करनेयोग्य नहीं और वर्जनयोग्य है। आहाहा!

और वह ***व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है...*** आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं। होता हुआ है न? होवे तो सही। है दुष्ट। आहाहा! अब यह पाँच महाव्रत के परिणाम से निश्चयचारित्र पावे, ऐसा लोग कहते हैं, लो! अभी एक पुस्तक प्रकाशित हुई, उसमें ऐसा लिखा है, व्यवहारचारित्र पालते-पालते निश्चयचारित्र आवे। यहाँ कहते हैं कि व्यवहारचारित्र निश्चयचारित्रवाले को भी दुष्ट है। आहाहा! पक्ष में, दृष्टि में बहुत अन्तर! बात यह कि अन्दर पहुँच सके नहीं, इसलिए राग की क्रिया करते-करते अन्दर पहुँचूगा, (ऐसा मानते हैं)। यह बड़ी शल्य है। व्यवहार के व्रत, तपादि की क्रियायें, वे सब दुष्ट है, अनिष्ट है। दुष्ट, अनिष्ट, घातक।

वह विषयकषाय की भाँति क्रियारूप चारित्र निषेध है। लो! विषयकषाय की भाँति। कठोर लगे न यह लोगों को—उनको रतनचन्दजी को। गये वे कहाँ गये? देवचन्दजी गये? जूनागढ़ गये। जूनागढ़ गये देवचन्दजी? विषयकषाय का भाव जैसे अशुभ है, वह वर्जनयोग्य है, उसी प्रकार क्रियारूप चारित्र भी निषेध है, ऐसा कहते हैं। तत् निषेध्यते। आहाहा! त्यजनीय है। पाठ है न। अर्थ तो पहले किया। परन्तु यह तत् निषेध्यते तत्। निषेधनेयोग्य है। करनेयोग्य तो नहीं, परन्तु निषेधनेयोग्य है। मूल पाठ है।

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥१०८॥

(समयसार कलश १०८)

आहाहा! कठिन बात। लोगों को यह भारी कठिन लगे।

मुमुक्षु : व्यवहार शब्द नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं था। आहाहा! उसमें कहा है उसमें। भाषा। राग है न! अमृतस्वरूप को लूटनेवाला है। भगवान आत्मा का स्वरूप तो अतीन्द्रिय अमृत है। उसमें राग की उत्पत्ति, वह तो जहर है। विष का घड़ा है, ऐसा कहा है। आचार्य ने कहा है, भाई!

मुमुक्षु : यह आप कहो और ऐसा हो, वह न कहो। तो फिर दोनों कहते हों तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विष का घड़ा कहा न। विष का घड़ा है, दुष्ट है।

मुमुक्षु : शुद्ध भी कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह शुद्ध क्यों कहा? वह तो शुद्ध है यहाँ, उसका निमित्तपना राग का है और इसका आरोप देकर शुद्ध कहा। आहाहा! वास्तविक शुद्ध नहीं, परन्तु शुद्ध के साथ है, जैसे सम्यग्दर्शन निश्चय आत्मा के अवलम्बन से होता है, वहाँ व्यवहार समकित जो है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है, वह समकित है नहीं, परन्तु निश्चय समकित के साथ राग का ऐसा निमित्त है, उसे आरोप करके समकित व्यवहार कहा। उस बन्ध के कारण को व्यवहार समकित कहा। आहाहा! ऐसा है। भारी कठिन लोगों को।

इसी प्रकार व्यवहार ज्ञान है, वह बन्ध का कारण है, तथापि सम्यग्ज्ञान जो स्वसंवेदन निश्चय हुआ, वहाँ शास्त्र का व्यवहार ज्ञान वर्ते, उसे ज्ञान का आरोप देकर कहा। वरना वह ज्ञान नहीं, वह तो बन्ध का कारण है। निमित्त को देखकर, सहचर देखकर। शुद्ध समकित, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र के सहचर—साथ में देखकर उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आरोप कहा। आहाहा! ऐसी बात है।

इसी प्रकार यहाँ शुद्धभाव के साथ शुभभाव देखकर शुद्धभाव का आरोप किया।

आहाहा! प्रमाणज्ञान कराया। ऐसा व्यवहार साथ में होता है। आहाहा! परन्तु वह शुद्धभाव प्रमाणज्ञान कब सच्चा कहा? कि शुद्धभाव जो है, वह सत्य और शुद्ध धर्म का कारण है, यह बात प्रमाण में रखकर, निमित्त को सहचर देखकर, उसे भी व्यवहार समकित आदि कहा। परन्तु वह निश्चय रखकर इसको कहा। प्रमाण ने इसे (निश्चय को) निषेध करके कहा नहीं। समझ में आया? आहाहा! शुद्धभाव, वह शुद्ध यथार्थ है, उसे ऐसे रखकर निश्चय में, फिर व्यवहार मिलाया कि साथ में शुभ है, उसे व्यवहार से शुद्ध कहते हैं। प्रमाण मिलाने को। यह शुद्ध और वह शुद्ध, ऐसा करके प्रमाणज्ञान कराया। परन्तु उस प्रमाणज्ञान में जो शुद्धदशा है, उस प्रमाण में तो निश्चय रखा ही है। उसे रखकर उपरान्त व्यवहार शुभ को शुद्ध कहकर मिलाया। ऐसा है। ऐसी बात है। बहुत झगड़े बेचारे को। यह बड़ा देखो न, यह। किसी ने कितना लिखा है। कोई प्रेमचन्द है। आया है कल। किसी ने उत्तर दिया है। अब यहाँ तो किसी ने उत्तर दिया नहीं। ऐसा लिखा है उसमें या नहीं? दो-तीन पत्र आये हैं। एक कार्ड और दो कवर, ऐसा लिखा है। यहाँ कौन जवाब देता है, कोई देता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिया होगा उसे किसी ने वाँचकर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिखा है। यहाँ तो किसी को जवाब भी देते नहीं। पत्र आवे। चाहे जो कहे नहीं, चाहे जो माने उसमें क्या? सच्चे प्रश्न पूछे तो उसका जवाब देते नहीं न। यह तो सब शिक्षा के हैं। तुम निश्चय के साथ व्यवहार की प्ररूपणा करो, व्यवहार करो। वरना तो लोग ऐसे होंगे। क्या हो? उसे शुद्धता की श्रद्धा की खबर नहीं, मूल चीज़ है उसकी खबर नहीं और यह निश्चय बिना की उपचारिक चीज़ के ऊपर बातें करना है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय बिना उपचार तो आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार आता नहीं। और यह बात करनी है, अब क्या करना? सत्य को दूसरे प्रकार से कहे, ऐसे लोप होता है। आहाहा! देखो न, यहाँ कितना कहा

है! पाठ है, हों! '**निषिध्यते**' '**मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।**' बन्धस्वरूप है, मोक्ष का घातक है। '**मोक्षहेतुतिरोधायि**' मोक्ष के कारण को नाश करनेवाला है। '**तत्निषिध्यते**' इसलिए व्यवहारचारित्र निषेध है। लो! व्यवहारचारित्र निषेध है। आहाहा!

अब अपने अभी बाकी है कलश १०८ है न? **सब ही शुद्धभाव में समस्तरूप से स्थित है।** लो! देखा! मन्त्र, यन्त्र ऊँचे अच्छे साध्य हों तो भी कहते हैं कि शुद्धभाव से होता है। वह तो शुद्धभाव अपना है अपने आश्रय से, उस समय का ऐसा जीव को जो शुद्ध विकल्प हो तो उसे ऐसा हो, उसमें कहा जाता है। आहाहा! शुद्धभाव बिना के प्राणी को कुछ सफल नहीं होता, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

भावार्थ :- पुरुष के चार प्रयोजन प्रधान हैं... मुख्य प्रयोजन चार हैं। गौण में बहुत सब। **धर्म...** अर्थात् पुण्य। **अर्थ...** अर्थात् पैसा। **काम...** अर्थात् भोग। **मोक्ष...** सिद्धपद। चार, लो। **अन्य भी जो...** यह वर्ग लिया और यह अपवर्ग आता है न समयसार में। अपवर्ग है। मोक्ष अपवर्ग है। धर्म, अर्थ और काम, यह वर्ग है। यह संसार का वर्ग। वह मोक्ष अपवर्ग है। **अन्य भी जो कुछ मंत्रसाधनादिक व्यापार हैं, वे आत्मा के शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप भाव में स्थित हैं।** लो! ऐसा शुद्धभाव जहाँ है, वहाँ सहज ऐसा कोई विकल्प आया और उसका मन्त्र आदि सिद्ध हो जाता है, ऐसा कहते हैं। **मन्त्रसाधनादिक...** आहाहा!

आत्मा के शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप... आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वरूप, परिणाम अर्थात् पर्याय—ऐसा जो भाव, उसमें यह सब स्थित है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी उसमें मन्त्र साधना, ऊँची मन्त्र साधना आदि हो, वह सब शुद्धभाव के आधीन है। अर्थात् शुद्धभाव की भूमिका में ऐसा विकल्प आ जाये तो हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पाठ ऐसा है। '**अण्णे वि य वावारा**' इन चार के अतिरिक्त अनेक भी व्यापार, ऐसा। धर्म-पुण्य, अर्थ-लक्ष्मी और काम-भोग और मोक्ष। इनके अतिरिक्त '**अण्णे वि य वावारा**' दूसरे भी ऊँचे मन्त्र आदि के साधन, वे सब '**भावम्मि परिट्ठिया**' वे शुद्धभाव में रहे हुए हैं। क्या कथन शैली है उसे जानना चाहिए न! ऐसे का ऐसा पकड़ रखे।

चैतन्य परिणामस्वरूप भाव में स्थित है। शुद्धभाव से सब सिद्धि है,... लो! भगवान आत्मा शुद्ध स्वभाव का आश्रय लेकर जो शुद्धभाव प्रगट हुआ, उसमें सब

अरिहन्तपद, सिद्धपद, तीर्थंकरपद, चक्रवर्तीपद, बलदेवपद, ऐसे सब पद उसमें प्राप्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन बिना के प्राणी को ऐसे ऊँचे पद के साधन नहीं होते, इसलिए प्राप्ति नहीं होती। **शुद्धभाव से सब सिद्धि है,...** लो! **इस प्रकार संक्षेप से कहना जानो,...** संक्षिप्त में जानो। **अधिक क्या कहें ?** अब कहाँ से पड़ी रही है गाथा ? अन्तिम बाद में।

मुमुक्षु : ३४।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३४ चलनी है। ३४ हो गयी। ३४ चल गयी है पहले। ३५वीं गाथा। पहले पड़ी रही है यह। कहाँ तक ? ५०। बाकी है ऐसा न ? ली है। '**भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढिओ विसुद्धमइ। परीत्तसंसारिओ जादो**'

★ ★ ★

गाथा - ३५

३५ गाथा। **आगे पुद्गलद्रव्य को प्रधानकर भ्रमण कहते हैं :-** कहते हैं कि तूने द्रव्यलिंग साधुपद का अनन्त बार धारण किया। आत्मदर्शन और सम्यग्दर्शन बिना जैन साधु अनन्त बार हुआ। उसमें अनन्त बार परिभ्रमण किया। कोई स्थल बाकी नहीं कि तूने द्रव्यश्रमणपना धारण करके भटका न हो। ऐसा कहते हैं। है न, यह बात है मूल।

'**जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण**' ३४ में यह है। ३३ में भी यह है।

सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो ॥३३॥

अरे! तूने आत्मदर्शन बिना, सम्यग्दर्शन बिना जैन द्रव्यलिंग धारण करके अनन्त बार कोई क्षेत्र बाकी नहीं कि जहाँ जन्मा और मरा न हो। आहाहा! द्रव्यलिंग धारण करके भी, पंच महाव्रत पालन करके भी, ऐसा कहते हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन चैतन्य के आनन्द का आश्रय लेकर प्रतीति हो, उसे स्पर्शकर प्रतीति हो, ऐसा तूने कभी किया नहीं। साधुपना अनन्त बार पालन किया, द्रव्यलिंग धारण किये। नग्न मुनि, हों! द्रव्यलिंग अर्थात्। वस्त्रवाले को द्रव्यलिंगी नहीं कहा जाता। जो वस्त्रसहित साधु कहलाते हैं, वे

तो द्रव्यलिंगी साधु भी नहीं हैं वे तो। आहाहा! यह तो नग्न मुनि द्रव्यलिंगी, जिन्होंने पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण चुस्त पालन किये हों, तथापि सम्यग्दर्शन बिना उसने कोई क्षेत्र जन्म-मरण से बाकी नहीं रखा। आहाहा! यह अब पुद्गलद्रव्य को प्रधान करके कहते हैं।

पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं।
गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीव॥३५॥

आहाहा! **अर्थ :- इस जीव ने इस अनन्त अपार भवसमुद्र में लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उन प्रति समय समय और पर्याय के आयुप्रमाण काल...** शरीर का। **अपने जैसा योगकषाय के परिणमनस्वरूप परिणाम और जैसा गति जाति आदि नामकर्म के उदय से हुआ नाम और काल जैसा उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी उनमें पुद्गल के परमाणुरूप स्कन्ध, उनको बहुत बार अनन्त बार ग्रहण किये और छोड़े।** आहाहा! भवसमुद्र के चौरासी के अवतार में। आहाहा! सम्यग्दर्शन जिनलिंग जो भावलिंग, उसके बिना जितने लोक के प्रदेश, वहाँ अनन्त बार जन्मा, मरा। प्रत्येक समय-समय में जन्मा, मरा। आयु प्रमाण काल, वह समय-समय में। **जैसा योगकषाय के परिणमनस्वरूप परिणाम...** वह भी मरा, जन्मा। **गति जाति आदि नामकर्म के उदय से हुआ नाम और काल जैसा उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी उनमें पुद्गल के परमाणुरूप स्कन्ध, उनको बहुत बार अनन्त बार ग्रहण किये और छोड़े।** परन्तु सम्यग्दर्शन पाया नहीं तो उसे परिभ्रमण करना पड़ा।

★ ★ ★

गाथा - ३६

आगे क्षेत्र को प्रधान कर कहते हैं :—

तेयाला तिण्णि सया रज्जूणं लोयखेत्तपरिमाणं।
मुत्तूणट्ठ पएसा जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो॥३६॥

अर्थ :- यह लोक तीन सौ तेतालीस राजू परिमाण क्षेत्र है,... यह चौदह ब्रह्माण्ड।

३४३ राजू। एक राजू में असंख्य योजन। एक राजू में असंख्य योजन। ऐसे-ऐसे चौदह राजू। यह ३४३ राजू परिमाण क्षेत्र। **उसके बीच मेरु के नीचे गोस्तनाकार आठ प्रदेश हैं,...** मेरुपर्वत है न, वहाँ आठ प्रदेश है आकाश। **उनको छोड़कर अन्य प्रदेश ऐसा न रहा जिसमें यह जीव नहीं जन्मा-मरा हो।** प्रत्येक प्रदेश में अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार मरा। आहाहा! वह द्रव्यश्रमणपना पाकर, आत्मा के सम्यग्दर्शन अनुभव बिना ऐसे अनन्त प्रदेश के ऊपर भव किये।

भावार्थ :- 'ढुरुढुल्लिआ' इस प्रकार प्राकृत में भ्रमण अर्थ के धातु का आदेश है और क्षेत्रपरावर्तन में मेरु के नीचे आठ लोक के मध्य में हैं... लोक के मध्य में है। उसे छोड़कर **उनको जीव अपने शरीर के अष्टमध्य प्रदेश बनाकर मध्यदेश उपजता है, वहाँ से क्षेत्रपरावर्तन का प्रारम्भ किया जाता है।** वहाँ से शुरु किया, ऐसा। आठ प्रदेश छोड़कर अनन्त-अनन्त बार वहाँ भटका। **इसलिए उनको पुनरुक्त भ्रमण में नहीं गिनते हैं।** उन आठ को नहीं गिना। आठ रुचक है, उन्हें नहीं गिना। उनसे सभी प्रदेश में अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार मरा। आहाहा! अपार-अपार क्षेत्र और परिभ्रमण अपार। यह सम्यग्दर्शन बिना मिथ्यात्व के कारण से ऐसे भव किये। **उनको पुनरुक्त भ्रमण में नहीं गिनते हैं।**

★ ★ ★

गाथा - ३७

आगे यह जीव शरीरसहित उत्पन्न होता है और मरता है, उस शरीर में रोग होते हैं, उनकी संख्या दिखाते हैं :— एक शरीर में कितने रोग?

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया॥३७॥

अर्थ :- इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवें-छयानवें रोग होते हैं,... एक अंगुल इतना। एक अंगुल इतना रखे, उसमें ९६ रोग। ऐसे पूरे शरीर प्रमाण रोग है। भगवान आत्मा अमृत से भरा है, शरीर अकेले रोग से भरा है, ऐसा कहते हैं।

... रोग दिखता नहीं ऐसे शरीर में, परन्तु रोग की शक्ति है अन्दर। फटे जब रोग (तब) एक अंगुल में ९६ रोग। एक अंगुल में ९६ रोग। ९६ समझते हो? सौ में चार कम। ९६। आहाहा! इतना एक अंगुल, (उसमें) ९६ रोग। आहाहा! यह मरते हुए फटते हैं न कितनों को, लो! कितने रोग होते हैं। हाय.. हाय!

मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवें-छयानवें रोग होते हैं, तब कहो, अवशेष समस्त शरीर में कितने रोग कहें। आहाहा! इतने प्रमाण में पूरे शरीर में। शरीर रोगवेदना की मूर्ति है। आत्मा आनन्द की वेदना की मूर्ति है। यह (शरीर) रोग की मूर्ति है। आहाहा! इस शरीर को मेरा मानकर, शरीर के लिये चौबीस घण्टे खिलाना, पिलाना, सुलाना, नहलाना, धुलाना। आहाहा! जगत के रजकण हैं यह। और इन रजकणों में ऐसी स्थिति है कि अंगुल में ९६ रोग भरे हैं। आहाहा! बहुत रोग हों तब। साधारण रोग तो अन्दर हों थोड़े-थोड़े। उनकी गिनती गिने नहीं। बहुत रोग आवे, तब दिखाई दे बाहर। चारों ओर फटे, कहीं चैन नहीं। आहाहा!

वह तो यह शीतला की बात नहीं की थी? शीतला निकली तो एक-एक दाने में एक-एक ईयळ। शीतला। क्या कहते हैं उसे? माता। माता कहते हैं। ईयळ, ऐसे फिरे वहाँ ईयळ ऐसे झरे। ऐसे फिरे तो ऐसे। आहाहा! बाई कहे, माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। छोटी उम्र की बाई थी। १८-२० वर्ष की थी मुश्किल से। दो वर्ष की विवाहित। एकदम शीतला के दाने-दाने में ईयळ। रजाई में सोवे तो ईयळ बटका भरे। कीड़ा-कीड़ा समझते हो? कीड़ा, बारीक कीड़ा। ईयळ—लट। आहाहा! उस समय कितने रोग होंगे अन्दर? कहो। आहाहा! लाठी में वह सुखलाल नहीं? सुखलाल रहते हैं वहाँ। वह क्या कहलाये? डेला के अन्दर। फिर बाई मर गयी। परन्तु ऐसा बोलती बेचारी, हों! ऐ माँ! ऐसे पाप मैंने इस भव में नहीं किये। सहा नहीं जाता, बैठा नहीं जाता, सोया नहीं जाता। हवा नहीं सुहाती, पानी नहीं पीया जाता है। ऐसे तड़पन... तड़पन... तड़पन... करे। ऐसे दु:ख। ऐसे तो अनन्त बार प्रत्येक जीव ने सहन किये हैं। आहाहा! वह आत्मज्ञान बिना, आत्मा के सम्यग्दर्शन के भान बिना ऐसे क्रियाकाण्ड भी किये। परन्तु उस क्रियाकाण्ड के फल में चार गति है, कहते हैं। आहाहा! पंच महाव्रत और व्यवहारचारित्र, कहते हैं कि ऐसे अनन्त बार पालन किये। उसके फलरूप से चार

गति भटकने की है। आहाहा! कहो, व्यवहार पाँच महाव्रत, समिति, गुप्ति, उन सब भाव का फल संसार है। वह राग है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा! उस राग की क्रियारहित भगवान के स्वरूप के अनुभव बिना, उसके स्वरूप की प्रतीति बिना,... यह तो ऐसा स्वरूप है, उसका इसे निर्विकल्प भरोसा न आया। इसके बिना ऐसी क्रियायें करके अनन्त बार। कहते हैं कि ऐसे रोग फटकर मरकर अनन्त बार मरा है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... भरोसा नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भरोसा नहीं आया। निर्विकल्प। विकल्प से भरोसा आया, वह नहीं। अन्दर स्पर्शकर नहीं आया। आहाहा! उसकी जाति का भरोसा नहीं आया। राग से किया, वह कहीं... वह तो धारणा है। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के सागर को इसने नहीं देखा, इसने नहीं जाना। इसके बिना क्रियायें पंच महाव्रत की साधु की अनन्त बार की, मर गया उसमें। उसमें कुछ एक भी भव घटा नहीं। अनन्त भव उसमें हुए। आहाहा! ऐसा कहते हैं। परन्तु चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति से भरपूर चैतन्य पिण्ड का स्पर्श, उसका वेदन, उसका भान अन्तर में किया नहीं। आहाहा! आचार्यपद नाम धराये, गुरुपद नाम धराये, उपाध्यायपद नाम धराये, गणीपद और गणाव छेदक और यह सब आत्मा के ज्ञान बिना चार गति में भटकने के हैं। आहाहा! देखो, एक शरीर, आहाहा! वेदना की मूर्ति। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति। तब यह शरीर तो एक-एक अंगुल में ९६ रोग। वेदना की (मूर्ति)। ऐसे रोग भी अनन्त बार तूने सहन किये, आत्मज्ञान बिना। इसलिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति प्रगट के लिये यह बात कही जाती है। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोंध - प्रवचन नं. १८१ से १८३ भाग - तीन में से देखना चाहिए।

अषाढ़ शुक्ल ७, बुधवार, दिनांक २६-०६-१९७४
गाथा - १६५, प्रवचन-१८४

गाथा - १६५

आगे इस भावपाहुड़ को पूर्ण करते हुए इसके पढ़ने-सुनने व भावना करने का (चिन्तन का) उपदेश करते हैं :—

इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं॥१६५॥

कहते हैं कि **इस प्रकार इस भावपाहुड़ का सर्व बुद्ध...** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ कथन है। आचार्य कहते हैं कि मेरा यह कथन अकेला नहीं। मुख्य कथन सर्वज्ञ परमेश्वर ने (कहा हुआ है)। **इसको जो भव्य जीव सम्यक् प्रकार से पढ़ते हैं,...** वह '**सम्मं**' वहाँ लिया। यह ठीक है। ६६ में ऐसा लिया है न ६६ गाथा। '**पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिए**' ६६ में लिया है। भाव सम्यग्दर्शन। राग के भाव से भिन्न चैतन्यस्वभाव की दृष्टि और उसके ज्ञान बिना अर्थात् उसके भाव बिना जो कोई पढ़े-गुने, वह भी सब मिथ्या में जाता है। ६६ में कहा है यह। ६६ गाथा है न?

पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिए।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं॥६६॥

देखो! मुख्य तो जिनभावना अर्थात् कि चैतन्य शुद्धस्वरूप, पवित्र पवित्र परमानन्द की मूर्ति भगवान आत्मा की श्रद्धा, उसकी भावना, उसकी एकाग्रता—ऐसा जो जिनभाव उसके लक्ष्य और दृष्टि बिना अकेला पढ़े और पढ़े तथा सुने उसका कुछ फल नहीं, ऐसा कहते हैं। इसलिए यह '**सम्मं**' शब्द रखा है। सम्यक् प्रकार से, ऐसा। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर को जहाँ भावपाहुड़ में जिनभावना कहनी है। द्रव्यश्रमण—साधु हो, क्रियाकाण्डी हो, पंच महाव्रत हो, परन्तु जिसे आत्मभाव, स्वभावभाव शुद्ध चैतन्य के स्वभाव का भान और भाव नहीं, वह सब निरर्थक है। यह भावपाहुड़ में मुख्य कहना है। यह

भावपाहुड़ सर्वबुद्ध—भगवान ने कहा हुआ उपदेश है।

इसको जो भव्यजीव... ऊपर से डाला न्याय से। सम्यक् प्रकार से पढ़े कौन? कि भव्यजीव हो वह। **सम्यक् प्रकार से पढ़ते हैं,...** अर्थात्? स्वभाव का लक्ष्य और दृष्टि रखकर जो इस भावपाहुड़ को पढ़ते हैं, सुनते हैं **और इसका चिन्तन करते हैं...** सूक्ष्म बात है, भाई! कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुए अपनी पर्याय में शुभ और अशुभभाव, वह अशुद्धभाव है। वह भावना जिसने छोड़ी है और जिसने शुद्ध चैतन्य पवित्र भगवान आत्मा की जिसने भावना—सम्यग्दर्शन प्रगट किया है। ऐसे भावसहित जो यह भावपाहुड़ भगवान ने कहा, उसे सम्यक् प्रकार से पढ़े। ऐसा तो कहा वहाँ ६६ में '**किं पढिएण भावरहिए**' ऐसा तो ग्यारह अंग पढ़ा अनन्त बार। आहाहा! जो हेतु है, वह सफल न हो... मोक्ष का हेतु, वह तो स्वभाव की दृष्टि करे तो सफल होता है। वह कोई पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के भाव से कहीं सफल नहीं होता। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! व्रत और तप, दया, पूजा और भक्ति भगवान की, वह सब पुण्यभाव है, शुभभाव है, बन्ध का कारण है। उसमें से मोक्ष के कारण की उत्पत्ति नहीं होती। सूक्ष्म बात है, भाई! इसने अनन्त काल से किया नहीं। बाहर का ऐसा का ऐसा घोटाला किया। यह शुभभाव करके धर्म माना। व्रत किये और तप किये, पूजा की और भक्ति की और सिद्धचक्र की पूजा। वह सब शुभभाव, राग की मन्दता हो तो शुभभाव है। मान के लिये करता हो, तब तो पाप है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इस (शुद्ध) भाव की भी भावना जिसने छोड़ी है, अर्थात् यह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहना है। अशुद्धभाव की भावना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। शुद्धस्वरूप जो त्रिकाली चैतन्यस्वभाव, उसकी एकाग्रता अर्थात् भावना, वह जिनभावना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! उस भावना बिना मात्र शास्त्र पढ़े या क्रियाकाण्ड करे, सब निरर्थक है, चार गति में भटकने का है। भव्यजीव शुद्ध आत्मा के लक्ष्यपूर्वक, आत्मा के ध्येयपूर्वक जो शास्त्र को पढ़ता है, सुनता है, उसका चिन्तवन करता है, **शाश्वत् सुख के स्थान मोक्ष को पाते हैं।** उसे परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। आहाहा! मोक्ष अर्थात् क्या, इसकी खबर नहीं होती। आत्मा में परम आनन्द की प्राप्ति, पूर्णानन्द अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति, वह मोक्ष। उस मोक्ष में परम आनन्द है, उसका

जिसे प्रयोजन अर्थी है मोक्ष का। अपना स्वभाव चैतन्य पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी ओर की उसकी भावना होती है। धर्मी को अशुद्धभाव का भाव होता है, उसकी भावना नहीं होती। और शुद्धभाव त्रिकाली शुद्धभाव की भावना, उसकी श्रद्धा होती है और उसकी भावना भी होती है कि यह शुद्ध पूर्ण होओ। इसी प्रकार जो यह पढ़े, वह शाश्वत् सुख के स्थान को पावे। सूक्ष्म बात, भाई! साधारण रीति से लोगों ने मोक्ष मनवा लिया है। भक्ति की और यात्रा की शत्रुंजय की, सम्मेदशिखर की यात्रा की, हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। वह तो पुण्यभाव यदि राग मन्द हो तो, परद्रव्य की ओर का अशुद्धभाव है। यहाँ तो चैतन्य भगवान आत्मा की जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शनभावना करके जो यह शास्त्र पढ़े—पढ़े उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

भावार्थ :- यह भावपाहुड़ ग्रन्थ सर्वज्ञ की परम्परा से... परमेश्वर वीतरागदेव तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञानी प्रभु ने अरिहन्त ने जो (कहा, ऐसा) सर्वज्ञ की परम्परा से अर्थ यह आया है। सर्वज्ञ ने कहा, उनकी परम्परा से आचार्यसहित यह सब अर्थ आया है। आहाहा! **आचार्य ने कहा है... परम्परा से अर्थ लेकर आचार्य ने कहा है, इसलिए सर्वज्ञ का ही उपदेश है,...** यह तो सर्वज्ञ का ही उपदेश है। **केवल छद्मस्थ का ही कहा हुआ नहीं है,...** अकेले छद्मस्थ—जिसे केवलज्ञान नहीं, ऐसे की कही हुई यह बात नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव तीर्थंकरदेव जो केवलज्ञानी, उन्होंने जो भाव कहा था, वह आचार्य की परम्परा से आया हुआ यह भाव कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

इसलिए आचार्य ने अपना कर्तव्य प्रधान कर नहीं कहा है। देखो! मुख्य मेरा कर्तव्य है, यह कहने में, ऐसा नहीं कहा। मुख्य तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा है। इसमें पूरे वजन में द्रव्यलिंग की निरर्थकता बतलायी है, पूरे भावपाहुड़ में। आत्मा के दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि शुद्ध चैतन्य की भावना बिना जो कुछ महाव्रतादि पाले, नग्नपना ले, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार (छोड़कर) साधु हो, वह सब द्रव्यलिंग निरर्थक है। उसे जन्म-मरण मिटाने का कारण वह नहीं, ऐसा कहते हैं। जिनभावना कही है न मुख्य? भावलिंग बिना, भावलिंग अर्थात् गुणस्वरूप गुण की परिणति निर्मल शुद्ध, उस भावलिंग बिना अकेला द्रव्यलिंग धारण करे, नग्नपना मुनि का। उसे यहाँ ... ऐसा कहा है न? वस्त्रसहित है, वह तो साधु व्यवहार से भी नहीं। निश्चय से तो नहीं,

परन्तु व्यवहार से भी वह साधु नहीं। वह तो द्रव्यलिंग नहीं। आहाहा! ऐसी बात जगत को कठोर पड़े। द्रव्यलिंग तो नग्नपना... जहाँ-जहाँ बहु शब्द प्रयोग किया है इसमें। ... अकेला नग्नपना अकार्यकारी है। उसके साथ अट्ठाईस मूलगुण साधु के पालन करे, वह राग की क्रिया, वह भी निरर्थक है। स्व-प्रयोजन के लिए निरर्थक; संसार को फलने के लिए सार्थक। आहाहा! अर्थ में करेंगे सब।

इसके पढ़ने-सुनने का फल मोक्ष कहा,... भगवान ने कहा हुआ यह भावलिंग-स्वरूप, इसका जो उपदेश, उसे समझे, जाने, माने, अनुभव करे (तो) मोक्ष (होता है)। **शुद्धभाव से मोक्ष होता है...** अपना शुद्धभाव, जो कर्म के निमित्त की अपेक्षावाला अशुद्धभाव, उससे रहित शुद्धभाव, स्वभाव शुद्ध की अपेक्षावाला भाव। क्या कहा, समझ में आया? कर्म के निमित्तवाला अशुद्धभाव, उसे छोड़कर शुद्धस्वभाव की अपेक्षावाला भाव, ऐसा जो शुद्धभाव, उससे मोक्ष है। **इसके पढ़ने से शुद्धभाव होते हैं।** क्योंकि इसमें शुद्धभाव की ही व्याख्या की है। आहाहा! शुद्धभाव कहो, जिनभावना कहो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्धभाव त्रिकाली के आश्रय से हो, उसे भावलिंग कहो, उसकी इसमें व्याख्या की है।

नोंध डाली है। **(यहाँ स्वाश्रयी निश्चय में शुद्धता करे तो निमित्त में शास्त्र पढ़नादि में व्यवहार से निमित्तकारण-परम्परा कारण कहा जाये।)** निश्चय बिना उपचार व्यवहार नहीं। यहाँ तो ऐसा कहना है, यह तो आगे आयेगा पाठ के अन्दर, निश्चय और व्यवहार दोनों को शुद्ध कहा है। शुद्धभाव कहा है न! अन्तिम पेरेग्राफ, अन्तिम पेरेग्राफ है। **निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्ग का संक्षेप है। इसी को शुद्धभाव कहा है।** शुद्धभाव तो आत्मा के अवलम्बन से जो चैतन्य का शुद्धभाव निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वह शुद्धभाव है। परन्तु साथ में अर्थ नीचे आता है, १६५ गाथा। पंचास्तिकाय, शुद्ध सम्प्रयोग। पंचास्तिकाय में आता है। यह है डाला है। शुद्ध सम्प्रयोग अर्थात् वह शुद्ध स्वभाव के साथ में उसका विकल्प जो उठे शुद्ध को ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... वह शुभभाव, उसे भी यहाँ उपचार से शुद्धभाव का आरोप दिया है। समझ में आया?

जैसे सम्यग्दर्शन का प्रकार एक है। निश्चयस्वभाव का आश्रय दृष्टि, वह निश्चय

सम्यक्, परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प ऐसा जो साथ में सहचर होता है, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन का आरोप देकर, निरूपण करके सम्यग्दर्शन कहा। इसी प्रकार शुद्धस्वभाव अपना निर्मल त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से हुआ शुद्धस्वभाव, उसमें आया हुआ जरा शुभभाव, उसे भी आरोप से यह शुद्धभाव कहा जाता है। वास्तविक तो बन्ध का ही कारण है वह, परन्तु निरूपण—कथन की अपेक्षा से शुभभाव को शुद्ध कहा जाता है। जैसे सम्यग्दर्शन, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, वह तो राग है, परन्तु उसे सम्यग्दर्शन आरोप से, निमित्त को सहचर देखकर कहा जाता है। वास्तव में तो वह शुभभाव तो बन्ध का ही कारण है। यह तो यहाँ वर्णन करना है। आहाहा!

भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव, जिसकी श्रद्धा में गहन गुण की प्रतीति हुई। अन्दर जो गुण गहन अपार—अपरिमित ऐसा जो उसका स्वभाव गहरा-गहरा अपार, उसकी जो अन्दर प्रतीति और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, उसे यहाँ शुद्धभाव कहकर मोक्ष का कारण कहा। पुण्य और पाप के रागभाव, वह तो छिछले भाव के आश्रय से हुए हैं। अर्थात्? कर्म के वर्तमान निमित्त के लक्ष्य से उस क्षण की अवस्था जड़ की, उसके लक्ष्य से शुभ और अशुभभाव हुआ है। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन-ज्ञानभाव, गम्भीर स्वभाव अपार... अपार... अपार... उसके आश्रय से हुआ भाव, उसे शुद्ध कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? छोटे लड़के को न समझ में आये। इसलिए नहीं समझना, ऐसा होगा? साधारण बुद्धिवाला कहे, हमारी बुद्धि ऐसी नहीं, इसलिए वे ज्ञानी हों, वह जाने। ऐसा नहीं। शरीर का भरोसा कल का किसको है? आहाहा! वह आता है। धर्मराजा के यहाँ दान लेने आया। धर्मराजा ने कहाँ कल आना। भीमराजा ने जाकर नगाड़ा बजाया। ओहो! बड़े भाई को कल का भरोसा आया, कल रहेंगे। किसे खबर कल की क्या हो? यह तो जड़ की अवस्था है। आहाहा! अर्थात् कि बालक हो, वृद्ध हो या जवान हो, सबके लिये यह कर्तव्य, तत्काल का कर्तव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : उम्र में सब समान ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उम्र में समान ही हैं। अनादिसान्त तक आये हैं। आगे कहाँ कोई बढ़ गये हैं? अनादि से है और अभी तक आये हैं। यह तो शरीर की अवस्था की बात है। शरीर को और इसे (आत्मा को) क्या है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ओहो! स्वाश्रय निश्चय जो भाव, यहाँ स्व आश्रय शब्द है न! मूल तो शुभभाव है, वह पराश्रय है। सुनना, वह सब परभाव है, शुभभाव है। तथापि यहाँ सुनना और उससे मोक्ष होता है, ऐसा कहा है न? वह इस अपेक्षा से। सम्यक् प्रकार अर्थात् है तो सुनने का विकल्प, परन्तु उसके स्व के लक्ष्य से आश्रय करके जो सुने, उसका स्व-आश्रय बढ़ जाता है। उससे मुक्ति होती है। तब यह सुनने का विकल्प है, पढ़ने का '**पढइ**' है न। पढ़ना-भणना और चिन्तवना, है तो यह सब विकल्प, परन्तु स्व-आश्रय के भाव से जब शान्ति, मुक्ति होती है, तब साथ में इस राग से भी मुक्ति होती है, ऐसा कहने में आता है। यह व्यवहार है। यह सुनकर भी होता है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में सुनकर तो परलक्ष्यीज्ञान होता है। पढ़ने से भी परलक्ष्यीज्ञान होता है। आहाहा! परन्तु इस प्रकार से बोला जाता है। चैतन्य के आश्रय से हुआ श्रद्धा-ज्ञान का भाव, उसके साथ ऐसा विकल्प होता है, इसलिए उससे होगा, ऐसा परम्परा कहने की अपेक्षा से कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ? संसार में एक तो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता। स्त्री-पुत्र को निभाने के लिये उनका क्या करना? आहाहा!

मुमुक्षु : स्त्री-पुत्र अकेले को कहाँ निभाना है? लाज-इज्जत।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाज-इज्जत, बड़ी कीर्ति के प्रमाण में पुत्र व्यवस्थित वरे, पुत्रियाँ व्यवस्थित वरे। २२-२२ वर्ष की लड़कियाँ हों, कलेजे में कितने विकल्प आते हों उसे, लो! अब उसे यह वस्तु कहाँ? बापू! वह सब पराधीन परवस्तु का कर्तव्य, वह आत्मा का नहीं। आहाहा! अरे! उसमें निमित्त के अवलम्बन से होनेवाला शुभभाव, आहाहा! वह भी आत्मा को लाभदायक नहीं। इसके अवलम्बन से हुआ (या) इसके अवलम्बन से हुआ, बस दो बात है। चैतन्य शुद्ध वस्तु ध्रुव पवित्र भगवान आत्मा के अवलम्बन से—आश्रय से भाव हो, वह स्वाश्रय भाव मुक्ति का कारण है। परन्तु उसमें सुनने से होता है, वह उपचार से कथन परम्परा से किया जाता है। आहाहा! बहुत अधिक आ गया है। ग्यारह अंग का पढ़ा अभव्य... नहीं आया इसमें? ... ग्यारह अंग पढ़ा अभव्य, लो! यह आ गया है। लिंग से ही शुरु किया है। भाव-भावलिंग, द्रव्यलिंग, बस दो ही बात शुरु की है। आहाहा! लिंग तो उस प्रवचनसार में कहा है न! गुण को लिंग कहा है न। लिंग से द्रव्य भिन्न ज्ञात हो, गुण से द्रव्य भिन्न ज्ञात हो ऐसा। आहाहा!

लिंग कहो, गुण कहो, वहाँ लिया है, प्रवचनसार। गुण-लिंग से द्रव्य भिन्न ज्ञात होता है, उसके गुण से भिन्न ज्ञात होता है। ऐसी इसकी शुद्ध परिणति से आत्मा भिन्न पड़े पर से। शुद्ध परिणति, वह उसका वास्तविक लिंग और गुण है। यहाँ परिणति को... समझ में आया?

त्रिकाल शुद्ध ध्रुव वस्तु, उसकी जो परिणति, उसके लक्ष्य से, उसके अवलम्बन से हुई वह शुद्ध परिणति, वह मोक्ष का कारण है। उससे मोक्षमार्ग राग से भिन्न पड़ता है। शुभराग से... लिंग अर्थात् मोक्ष की परिणति से वह राग से भिन्न मोक्षमार्ग पड़ता है। आहाहा! इसलिए कहते हैं, **इस प्रकार इसका पढ़ना, सुनना, धारणा और भावना करना परम्परा मोक्ष का कारण है।** वह विकल्प है न सुनने का? इसलिए फिर उससे छूट जायेगा... ज्ञान अपने आश्रय से हो, उसमें यह भाव बीच में आवे, उसे छोड़कर स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी।

मुमुक्षु : स्वभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ तो विपरीत है। सुनने-बुनने का विकल्प विपरीत है। परन्तु इसे सुनने का लक्ष्य आश्रय से है, स्व के आश्रय से, इसलिए इसे परम्परा से उससे छूटकर सिद्ध होगा, ऐसा। आहाहा! कठिन सूक्ष्म बातें। ऐसे तो सर्वज्ञ के निकट वाणी अनन्त बार सुनी नहीं समवसरण में? भगवान की देशना सुनी है। परन्तु वह तो परद्रव्य का कथन परद्रव्य के लक्ष्य से सुना और ज्ञान हुआ। आहाहा! उसे निश्चय के स्वभाव के आश्रयवाले को वह लक्ष्य परम्परा से मोक्ष का कारण है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! है तो वह परसत्तावलम्बी ज्ञान। सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व जाने के बाद की बात इसमें तो है। यहाँ तो यह कहा। ६६ (गाथा) में तो यह कहा। '**पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिए**' ऐसा कहा। भावरहित अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान। और प्रवचनसार में ऐसा कहा है न, ज्ञेय अधिकार शुरु किया वहाँ। ज्ञेय अधिकार शुरु किया तब (कहा कि) स्वलक्ष्य से अभ्यास कर, ऐसी गाथा आती है, भाई! ज्ञान और ज्ञेय के बीच में सन्धि करते हैं। ज्ञान

अधिकार का ज्ञेय दर्शन अधिकार। उसका विशेष अभ्यास स्व के लक्ष्य से करे। आहाहा! जिसे धारे, सुने, परन्तु सब स्वलक्ष्य रखकर, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। स्वलक्ष्य नहीं। इसलिए वहाँ लक्ष्य बदल डाले। उसे सुनने का सार्थक कहलाये व्यवहार से। ऐसा कहते हैं। वरना तो पूर्वापर विरोध हो। ग्यारह अंग का ज्ञान, नौ पूर्व का ज्ञान हुआ है, अनन्त बार और समवसरण में; परमात्मप्रकाश में (ऐसा कहा कि) भवे भवे जिन पूजियो—अनन्त भव में अनन्त बार जिन की पूजा की है। उससे क्या? वह तो परद्रव्य है। और वह भाव उत्पन्न होता है, वह कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। ऐसे परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य है और यहाँ निमित्त के लक्ष्य से शुभराग होता है। आहाहा!

यहाँ तो शुद्धस्वभाव की शुरुआत करके जिसने लक्ष्य के ध्येय में आत्मा रखा है, उसका यह पढ़ना-वाँचने का विकल्प हो, वह परम्परा मोक्ष का कारण कहा जाता है। ऐसा है। वस्तु की स्थिति तो ऐसी है। भाषा तो ऐसी ही कहे न! भगवान ने कहा और ज्ञान हुआ, गुरु ने कहा और ज्ञान हुआ। लो, ऐसी ही कही जाती है भाषा। गुरुगम से ज्ञान होता है, लो, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : गुरु बिना ज्ञान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाषा तो ऐसी ही होती है न, दूसरा क्या हो? इसका अर्थ कि उस समय ऐसा कहा था जो परलक्ष्य उस ज्ञान को छोड़कर स्व का आश्रय किया, वह इसका कारण हुआ। ऐसा कहा जाता है। आहाहा! गजब मार्ग भाई! ओहोहो! चौरासी के अवतार के कारण ऐसे भाव को छोड़कर, मोक्ष के कारण ऐसा भाव जो द्रव्य का आश्रय, वह एक ही मुक्ति का कारण है। वाद-विवाद करे तो पार न आवे। पूरे भावपाहुड़ में द्रव्यलिंग की निरर्थकता बतलाकर भावलिंग की सार्थकता बतलायी है। पहले से शुरु किया है। दूसरी गाथा हैं। भावपाहुड़। '**भावो हि पढमलिंगं**', देखा! यहाँ से शुरु किया, दूसरी गाथा। '**भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।**' यहाँ से ही शुरु किया है। भगवान ने कहा, वह मैं कहूँगा। नमस्कार करके कहा न?

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा॥१॥

आचार्य, उपाध्याय, साधु को भी वन्दन करते हैं। '**भावो हि पढमलिंगं**' सम्यग्दर्शन जिनश्रद्धा... वह जिनश्रद्धा (अर्थात्) यह अधिक उस वीतराग की श्रद्धा वीतराग की श्रद्धा (ऐसा) अर्थ करे। परन्तु वीतराग की श्रद्धा का अर्थ वीतरागस्वभाव आत्मा की श्रद्धा। अकेला वीतराग... वीतराग की श्रद्धा तो परद्रव्य की श्रद्धा है। जिनभावना आवे सही न, परन्तु उस जिनभावना का अर्थ ही आत्मा। आत्मा वीतरागी स्वरूप की श्रद्धा, वह जिनभावना है। केवली की स्तुति नहीं कही? प्रभु! केवली की स्तुति किसे कहना? कि आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें एकाग्र होना, वह केवली की स्तुति है। ले! पूछा शिष्य ने, केवली की भावस्तुति कब कहलाती है? कि भावस्तुति तब कहलाती है... तब उस द्रव्यस्तुति को उड़ावे। यह भगवान की भक्ति देखो इसमें इनकार किया है। यह कहते हैं, यह देखो न! पढ़े सही न उसका। देखो इसमें द्रव्यस्तुति का निषेध किया। भगवान की स्तुति, ऐसा नहीं। परन्तु भाव कब है तुझे? तुझे तो व्यवहार का ठिकाना नहीं। आहाहा! ऐसा गड़बड़िया विचारता है। वहाँ द्रव्यस्तुति का इनकार किया है तीर्थंकर की, मूर्ति की नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा की स्तुति कही है, लो! जब यह निश्चय की स्तुति कहना चाहे, तब वह व्यवहार उड़ावे, व्यवहार की स्तुति कहे तब कहे, व्यवहार स्तुति से लाभ होता है (-ऐसा माने)। ऐसी बात है। क्या हो? अनादि से इस प्रकार से जीव ने अपना उल्टे स्वरूप से बिगाड़ा है इसने। आहाहा! दूसरा कोई इसका बिगाड़नेवाला नहीं।

'**भावो हि पढमलिंगं**' यहाँ से तो शुरु किया है पूरा। '**ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।**' '**भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिण वेन्ति**' वीतराग.. वीतराग... परमेश्वर की वाणी में भाव को कारण कहा है। द्रव्यलिंग कुछ नहीं, निरर्थक है। आहाहा! यहाँ तो पूरी शैली ही यह उठाई है। अब अपने लिंगपाहुड़ आयेगा। **भावो और निरन्तर अभ्यास करो जिससे भाव शुद्ध हों और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता को पाकर मोक्ष को प्राप्त करो तथा वहाँ परमानन्दरूप शाश्वत सुख को भोगो।** मोक्ष अर्थात् परमानन्दरूप शाश्वत् सुख। आहाहा! एक समय का परमानन्द अनन्त सुख उसे

है। एक समय का परमानन्द अनन्त आनन्द का सुख, उसका नाम मोक्ष। वह यह भावपाहुड़ को सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्णता को प्राप्त हो, यदि ऐसी भावना करके शुद्ध करे तो। आहाहा!

इस प्रकार श्री कुन्दकुन्द नामक आचार्य ने भावपाहुड ग्रन्थ पूर्ण किया। अब स्वयं अर्थकार जरा कहते हैं। **इसका संक्षेप ऐसे है—जीव नामक वस्तु का एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतनास्वभाव है।** अब उठाया है यहाँ से। देखो, वह शुद्ध-अशुद्ध सिद्ध करने को। भगवान जीव नाम का वस्तु एक पदार्थ **असाधारण शुद्ध अविनाशी...** ऐसा शुद्ध अविनाशी दूसरा है नहीं। ऐसी चेतना, ऐसा। शुद्ध अविनाशी चेतना जिसका स्वभाव है। जीव नामक वस्तु का एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव। यहाँ स्वभाव लेना। स्वभाववान जो जीव, ऐसी जो वस्तु, उसका एक असाधारण (अर्थात्) दूसरा नहीं, दूसरे में नहीं, ऐसा शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है इसका।

इसकी शुद्ध, अशुद्ध दो परिणति हैं। लो! अब लिया। **एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव...** जीव का त्रिकाल। अब उसकी दो परिणति अर्थात् अवस्था। अविनाशी शुद्ध चेतना, वह जीव का अविनाशी शाश्वत् स्वभाव, उसकी परिणति अर्थात् पर्याय शुद्ध और अशुद्ध। **शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना शुद्ध परिणति है,...** शुद्ध जो अविनाशी चेतना है, उसके अवलम्बन से जो शुद्धदर्शन-ज्ञानरूप से परिणमन, वह शुद्ध परिणति। अविनाशी शुद्ध चेतना जो स्वभाव, जीव वस्तु, उसका चेतना अविनाशी स्वभाव, उसके आश्रय से जो परिणति हो, वह **शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना...** उसका नाम शुद्ध परिणति। जीव नाम की वस्तु, उसकी शुद्ध चेतना अविनाशी त्रिकाली, उसका स्वभाव, उस स्वभाव के आश्रय से जो शुद्ध परिणति हो, उसका नाम मोक्ष का मार्ग। उसे शुद्धभाव कहते हैं, लो! उस शुद्ध परिणति को शुद्धभाव कहते हैं। अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो ध्रुव वस्तु का स्वभाव, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और रमणता, वह शुद्ध परिणति, वह शुद्धभाव। वह शुद्धदशा, वह शुद्धभाव यहाँ। इस भावपाहुड़ में यह कहना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नये लोगों को तो ऐसा लगे कि ... बेचारे आये थे दो व्यक्ति बैठे थे। नहीं समझ में आया, उठ गये। समझ में नहीं आया, यह क्या कहते हैं यह? अब बात आवे तब पूजा, भक्ति, व्रत और

तप, वह बन्ध का कारण। लो! मुश्किल से अभी यह करते नहीं, उसमें करे कभी तो कहे (यह धर्म) नहीं।

बापू! यहाँ तो धर्म की बात है न! परद्रव्य के लक्ष्य से देखो न यह कहा न! देखो न, कहते हैं। देखो, कहते हैं। **कर्म के निमित्त से राग-द्वेष-मोहादिक विभावरूप परिणमना अशुद्ध परिणति है,...** देखो! दो सिद्धान्त सिद्ध किये कि एक तो जीववस्तु का अनादि असाधारण शुद्ध चेतनास्वभाव। उसके अन्तर स्वभाव में जाकर... आहाहा! यह शुद्ध चेतना के अवलम्बन से जो शुद्ध परिणति सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे शुद्धभाव कहते हैं। यह शुद्धभाव की व्याख्या। भावपाहुड़ में यह शुद्धभाव की व्याख्या है। समझ में आया? अशुद्धभाव, वह अपना जो शुद्धस्वभाव, उसके अवलम्बन से हुई दशा, उससे विरुद्ध कर्म के निमित्त से होती दशा, वह अशुद्धभाव। उस अशुद्ध में शुभ और अशुभ दोनों आते हैं। आहाहा!

राग, द्वेष और मोह अर्थात् मिथ्यात्व, हर्ष-शोक आदि, रति-अरति आदि। **विभावरूप परिणमना...** विकाररूप अवस्था होना, वह अशुद्ध परिणति है। उसे अशुद्धभाव कहते हैं। उसको—शुद्ध परिणति को शुद्धभाव, अशुद्ध परिणति को अशुद्धभाव। और किस कारण से उत्पन्न होती है, यह दोनों के ... दिये। आहाहा! शुद्ध परिणति की पर्याय अविनाशी चैतन्यस्वभाव, स्वभाववान वस्तु, उसकी अविनाशी चेतनास्वभाव के आश्रय से होती परिणति, उस शुद्ध परिणति को शुद्धभाव कहते हैं और राग-द्वेष तथा मोहादि कर्म के निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हो, उसे अशुद्ध परिणति कहते हैं। और वह अशुद्ध परिणति, उसे अशुद्धभाव कहते हैं। उस अशुद्धभाव में शुभ और अशुभ दोनों आये। आहाहा! कितना स्पष्ट किया है! वस्तु तो ऐसी है।

कहा न? उसमें ऐसा कहा। **चेतना स्वभाव है। इसकी शुद्ध, अशुद्ध दो परिणति हैं। शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना शुद्ध परिणति है,...** ऐसा। और वह शुद्धभाव। **कर्म के निमित्त से राग-द्वेष-मोहादिक विभावरूप परिणमना अशुद्ध परिणति है,...** वह अशुद्धभाव। **कर्म का निमित्त अनादि से है, इसलिए अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है।** लो! इससे शुभ-अशुभभावरूप अशुद्धभाव से अनादि से परिणमता है, दशा हो रही है उसकी, ऐसा कहते हैं। वह कोई नयी दशा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग

सुनने को मिलता नहीं, वह सुने तब कठिन पड़े इसे। मार्ग तो यह है, बापू! जन्म-मरण से रहित होने के लिए। आहाहा! देखो न, द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों का वर्णन किया। द्रव्य जीववस्तु, गुण अनादि शुद्धचेतना, उसके आश्रय से होती श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वह पर्याय। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन हुई। और उसमें द्रव्य वस्तु अनादि, उसका गुण अनादि। परन्तु कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से जो अशुद्ध परिणति-पर्याय होती है, वह विभाव। शुभ और अशुभभाव, वह अनादि से हो रहा है, ऐसा कहते हैं। वह कहीं नया नहीं है। आहाहा!

इस भाव से शुभ-अशुभ कर्म का बंध होता है,... देखो! **अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है।** उसमें अशुद्ध में दोनों—शुभ-अशुभ आये। **इस भाव से शुभ-अशुभ कर्म का बन्ध होता है,...** कर्म के निमित्त के लक्ष्य से जो शुभभाव हो तो उसका बन्धन शुभ, पुण्य। कर्म के लक्ष्य से, लक्ष्य से अर्थात् करनेवाला स्वयं, अशुभभाव हो, उसका बन्धन अशुद्धभाव। आहाहा! **इस बन्ध के उदय से फिर शुभ या अशुभ भावरूप परिणमन करता है,...** और बन्ध के लक्ष्य से शुभ और अशुभभाव करता है। आहाहा! **इस प्रकार अनादि सन्तान चला आता है।** अनादि प्रवाह इस प्रकार से चला आता है। अनादि चला आता है। आहाहा!

जब... अब स्पष्टीकरण करते हैं शुभ-अशुभ का। अशुद्ध के दो प्रकारों का स्पष्टीकरण करते हैं। **इष्टदेवादिक की भक्ति,...** इष्ट देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह शुभराग है। अशुद्धरूप शुभराग। आहाहा! कहो, अब यह भक्ति। **जीवों की दया,...** वह भी एक शुभभाव है। **उपकार, मन्दकषायरूप परिणमन करता है...** पर को कुछ उपकार करे। **मन्दकषायरूप परिणमन करता है, तब तो शुभकर्म का बन्ध करता है;...** लो! इष्ट देवादि की भक्ति, गुरु-शास्त्र की भक्ति भी शुभकर्म का बन्ध करती है, ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं कि भाई! भगवान की भक्ति में राग कहाँ से आया? और उसे भट्ठी कहा। वह तो कषाय है। आहाहा! आकुलता होती है न शुभराग की।

इसके निमित्त से देवादिक पर्याय पाकर... शुभभाव के कारण से बन्धन शुभ होता है, उसमें से कुछ देव हो, कोई यह सेठिया हो पैसे का, उसे पाकर **कुछ सुखी होता है।** मानती है दुनिया कि सुखी है, ऐसा। पैसेवाले सुखी हैं, गरीब दुःखी हैं, ऐसा

लोग मानते हैं। **जब विषय-कषाय तीव्र परिणामरूप परिणमन करता है...** विषय-कषायरूप तीव्र पर के लक्ष्य से, **तब पाप का बन्ध करता है, इसके उदय से नरकादिक पर्याय पाकर दुःखी होता है।** लो! यह अनादि का वर्णन किया यह पहला। आहाहा! अनादि के कर्म का निमित्त का सम्बन्ध है और सम्बन्ध के लक्ष्य से वह अशुद्धभाव पुण्य-पाप करता है। वह पुण्यभाव हो तो पुण्य बन्धन होता है और कुछ सामग्री मिले तो सुखी जैसा कहलाता है दुनिया को। और पापभाव से अशुभ बँधे, उससे नरक और तिर्यंच आदि गति मिलती है। दुःखी होता है।

इस प्रकार संसार में अशुद्धभाव से अनादि काल से यह जीव भ्रमण करता है। अब यहाँ शुद्धभाव की... भावपाहुड़ है न! शुद्धभाव जिनभावना का अधिकार है न, इसलिए पहले यह बात की है। **इस प्रकार संसार में अशुद्धभाव से अनादि काल से यह जीव भ्रमण करता है।** शुभ-अशुभभाव से परिभ्रमण करता है। शुभ हो तो स्वर्गादि, अशुभ हो तो नरकादि, परन्तु है तो गति चार। **जब कोई काल ऐसा आवे...** आहाहा! उसका पुरुषार्थ जब स्वभावसन्मुख जाये, तब उसका काल अच्छा आया कहलाये। आहाहा! **जब कोई काल ऐसा आवे जिसमें जिनेश्वरदेव—सर्वज्ञ वीतराग के उपदेश की प्राप्ति हो...** जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ वीतराग। आहाहा! वीतरागता जिन्हें प्रगटी है, सर्वज्ञपना है, उनके उपदेश की प्राप्ति, ऐसे भगवान के उपदेश की प्राप्ति। अज्ञानी के उपदेश की नहीं। यहाँ से शुरु किया है, देखो! अज्ञानी ने कहे हुए शास्त्र, उसके उपदेश की नहीं।

जिनेश्वरदेव—सर्वज्ञ वीतराग के उपदेश की प्राप्ति हो और उसका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करे... प्राप्ति तो हुई, परन्तु स्वयं जब **उसका श्रद्धान...** उनके उपदेश में तो (ऐसा आया कि) आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसकी श्रद्धा कर। अनादि कर्म के निमित्त की होती अशुद्ध परिणति की श्रद्धा तुझे है मिथ्यात्व की। यह शुद्धभाव त्रिकाल की श्रद्धा कर, ऐसा सुनाया, सुनकर इसने श्रद्धा की। आहाहा! उसकी रुचि की, प्रतीति की और आचरण-चारित्र (किया)। **तब स्व और पर का भेदज्ञान करके...** ऐसा हुआ तो स्व और पर का भेद हुआ। रागादि अशुद्ध वह पर, त्रिकाली शुद्ध चैतन्य, वह स्व—ऐसे स्व-पर का भेद हुआ। **शुद्ध-अशुद्ध भाव का स्वरूप जानकर...** और शुद्ध स्वरूप वस्तु के आश्रय से होती दशा, वह शुद्धभाव, निमित्त के लक्ष्य से—आश्रय से

होता वह अशुद्धभाव। दोनों का स्वरूप जानकर **अपने हित-अहित का श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण हो...** लो, ठीक! अपने हित का और अहित का उसका श्रद्धारूपी प्रतीति-आचरण हो **तब शुद्धदर्शन ज्ञानमयी शुद्ध चेतना परिणमन को तो हित जाने,...** लो! शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी शुद्ध चेतना परिणति, ऐसा। वस्तु के स्वभाव की शुद्ध चैतन्य परिणति, **शुद्ध चेतना परिणमन को तो हित जाने,...** लो! आहाहा! उस शुद्धभाव को हित जाने, ऐसा कहते हैं।

इसका फल संसार की निवृत्ति है... शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी शुद्धचेतना, शुद्धदर्शन-ज्ञानमयी शुद्धचेतना को हित जाने। क्योंकि उसका फल संसार की निवृत्ति है। **इसको जाने, और अशुद्धभाव का फल संसार है...** चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, आहाहा! दोनों अशुद्धभाव हैं। उनका फल संसार है। **इसको जाने,...** जानने में कहाँ दिक्कत है, कहते हैं। शुद्ध को शुद्ध जाने और अशुद्ध को अशुद्ध जाने। शुद्ध का फल मोक्ष और अशुद्ध का फल संसार जाने। आहाहा! **तब शुद्धभाव के ग्रहण का और अशुद्धभाव के त्याग का उपाय करे।** शुद्धभाव का ग्रहण होना, उसका उपाय करे। अन्तर्मुख होने का उपाय करे, ऐसा कहते हैं।

दोनों को और दोनों के फल को जानकर शुद्ध का प्रयास-उपाय करे। क्योंकि उसका फल मोक्ष है। अशुद्धता का फल संसार है। जिसे मोक्ष करना हो, उसे शुद्धभाव का उपाय करना चाहिए। आहाहा! क्योंकि पर्याय में द्रव्य का गुण का जहाँ लक्ष्य जाये, महागम्भीर स्वभाव का आश्रय जहाँ अन्दर हुआ, तो उसकी परिणति शुद्ध हुई और शुद्ध परिणति का फल तो मोक्ष है। उसे यहाँ भाव शुद्ध कहा गया है। शुद्ध परिणति भाव। उसे भावलिंग कहा गया है और ऐसे भावलिंग बिना अकेले शास्त्र और बाहर के क्रियाकाण्ड को ग्रहण करे, द्रव्यलिंग मुनि धारण करे, उस द्रव्यलिंग का फल संसार है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो यहाँ स्पष्टीकरण किया है, भाई! व्यक्ति के लिये कुछ नहीं। वह व्यक्ति ओढ़ ले अपने माथे कि अरे! हमको ऐसा कहते हैं। वह स्वतन्त्र है, बापू! यह तो हित के लिए बात है।

हित तो यह है। शुद्ध स्वभाव का दर्शन, ज्ञान और चारित्र की परिणति, वह हितकर्ता है। देखो! संवर हितकर, संवर उपादेय, निर्जरा हितकर आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक

में। संवर को उपादेय, निर्जरा को हितकर, मोक्ष को परमहितकर। आहाहा! आस्रव को हेय, बन्ध को अहितकर, बन्ध को अहितकर। लो! बन्ध के सामने निर्जरा और मोक्ष को हितकर और परमहितकर, इस प्रकार से लिया है, वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में। एक घण्टे में कितना आवे और कितना याद रखना। परन्तु उसमें कितना याद रहे? यह स्वद्रव्य के आश्रय से शुद्धता और पर के आश्रय से अशुद्धता, इतनी बात है यहाँ तो। संक्षिप्त तो यह है। यह बाद में इसका विस्तार करे तब समझवे तब तो (सभी बात आवे)। आहाहा!

तब शुद्धज्ञान के ग्रहण का और अशुद्धभाव के त्याग का उपाय करे। आहाहा! शुभ-अशुभभाव को छोड़ने का उपाय करे और शुद्धता में परिणमन को ग्रहण करे विशेष। **उपाय का स्वरूप जैसे सर्वज्ञ-वीतराग के आगम में कहा है, वैसे करे।** उपाय का स्वरूप जैसा सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने परम आगम में जो कहा, वह करे। उस करे। आहाहा! अर्थ भी कितना सरस किया है! यह भावपाहुड़ की १६५ गाथा हुई। परन्तु यहाँ १६५ छपी नहीं। यहाँ ६५ हो गयी थी। छपी नहीं न अभी तो? उपाय का स्वरूप तो जैसा सर्वज्ञ वीतराग ने परमागम में कहा, वैसा करे। उसकी व्याख्या विशेष करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल ९, शुक्रार, दिनांक २८-०६-१९७४
गाथा - १६५, प्रवचन-१८५

२३१ पृष्ठ है न? २३१। उपाय की बात चलती है न अन्त में। '**उपाय का स्वरूप जैसे सर्वज्ञ-वीतराग ने आगम में कहा है वैसे करे। इसका स्वरूप निश्चय-व्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग कहा है।** पहली लाईन। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने आगम में उसका स्वरूप—मोक्षमार्ग का, (निश्चय और) व्यवहारस्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग कहा। अब उसे कहते हैं कि निश्चय किसे कहना? जो आत्मा ज्ञान, आनन्द आदि स्वभावस्वरूप है, शुद्धस्वरूप लिया है न! चैतन्य का शुद्धस्वरूप जो ज्ञान, आनन्द आदि अविनाशी जिसका स्वरूप है, उसके स्वरूप में शरीर, वाणी, कर्म और पुण्य-पाप के विकल्प और राग होता नहीं। उसका अनादि अविनाशी स्वरूप ज्ञान, आनन्द आदि शुद्धस्वरूप की श्रद्धा। आत्मा वस्तु, उसका आनन्द और ज्ञानादि स्वभाव अविनाशी गुण और उसकी श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन पर्याय।

शुद्धस्वरूप के श्रद्धान... अर्थात् कि अविनाशी चैतन्यस्वभाव, ऐसा आत्मा का अविनाशी आनन्द आदि स्वभाव, वह शुद्ध है। उसके पवित्र स्वभाव का निर्णय अनुभव करके (करना), उसका नाम सम्यग्दर्शन है। जैसे वस्तु द्रव्य आत्मा द्रव्य अविनाशी है, वैसे उसके आनन्द और ज्ञानस्वभाव भी अविनाशी शुद्ध हैं। ऐसे शुद्धस्वरूप का अन्तर्मुख होकर उसका स्वीकार होकर श्रद्धा हो, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। उस शुद्धस्वरूप का ज्ञान, जो ज्ञान त्रिकाल ज्ञान का ज्ञान। त्रिकाली शुद्ध ज्ञान, वह अविनाशी वस्तु, उसका त्रिकाली शुद्ध ज्ञान, उसका ज्ञान। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र का ज्ञान नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। वह शुद्ध ज्ञान चैतन्यवस्तु का जो ज्ञान त्रिकाल अविनाशी शुद्धस्वभाव का ज्ञान, उसे मोक्षमार्ग का अवयव, उसे ज्ञान कहा जाता है और चारित्र—वह शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप ध्रुव अविनाशी शुद्धस्वरूप की अन्तर में रमणता, वह द्रव्य और उसका गुण, उसमें रमणता, उसका नाम चारित्र।

मुमुक्षु : पंच महाव्रत नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में कहेंगे। वह तो विकल्प-राग है। यह वस्तु, वह स्वभाव है, मोक्ष का उपाय है। महाव्रतादि, वह तो विकल्प-राग है। यह तो कहते हैं न? वह तो कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में संग से उत्पन्न होता विकल्प है, अशुद्ध है। वह वस्तु नहीं। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव जिसका चेतन... चेतन द्रव्य ऐसा जो अविनाशी ऐसा उसका चैतन्यस्वभाव अविनाशी, उसमें रमणता करना, उसका नाम चारित्र है। वह चारित्र कब होता है? कि प्रथम जो चीज़ ज्ञानस्वभावी अनादि-अनन्त, आनन्दस्वभावी अनादि-अनन्त, शान्तस्वभावी वीतरागस्वरूप शान्त अनादि-अनन्त, उसकी दृष्टि हो, उसका ज्ञान हो, तब उसमें रमणता होती है। इस संसार से छूटने का यह उपाय है। संसार की दुःखदशा अनादि की चौरासी के अवतार की परिभ्रमण की दुःखदशा है, उसे टालने का यह उपाय है। कहो, समझ में आया? उसे निश्चय कहा। क्योंकि स्व चैतन्यस्वरूप... चैतन्यस्वरूप वस्तु और उसका स्वरूप ज्ञान-दर्शन ध्रुव अविनाशी, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह स्व की हुई, इसलिए निश्चय। वह निश्चयमोक्षमार्ग है, वह सच्चा मोक्षमार्ग है।

अब जरा व्यवहार की बात करते हैं। **और जिनदेव सर्वज्ञ-वीतराग...** वह परद्रव्य है। **जिनदेव सर्वज्ञ-वीतराग तथा उनके वचन...** आगम की श्रद्धा, वह व्यवहारश्रद्धा है। सर्वज्ञ जिनदेव वीतरागस्वरूप परमात्मा की श्रद्धा (कि) यह सर्वज्ञ वीतराग है, परन्तु वह परद्रव्य है। इसलिए शुद्ध अविनाशी चैतन्य की श्रद्धा से परद्रव्य की श्रद्धा, वह राग है। ऐसा भाव होता है। ऐसा व्यवहार भाव होता है। **वीतराग तथा उनके वचन...** आगम कहते हैं। भगवान के कहे हुए आगम की श्रद्धा, वह भी एक शुभराग है। **और उनके वचनों के अनुसार...** सर्वज्ञ भगवान के वचन के अनुसार **प्रवर्तनेवाले मुनि श्रावक...** आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग के वचन के अनुसार। अर्थात् कि जो कोई स्वभाव शुद्ध चैतन्य के अनुसार श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में वर्तता है, व्यवहाररूप, उसे रागादि होते हैं। ऐसा श्रावक, जो सर्वज्ञस्वभाव वीतराग त्रिकाल अविनाशी वस्तु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता का अंश होता है, उसे ऐसे **श्रावक उनकी भक्ति...** ऐसे मुनि और ऐसे श्रावक की भक्ति, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : राग है, ऐसा कहीं नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार कहा न। क्या कहा?

उनकी भक्ति वन्दना विनय वैयावृत्य करना व्यवहार है,... यहाँ तो उसे स्थापित करना है न कि ऐसा इसे करना अर्थात् ऐसा भाव उसे आता है। उपकारी का उपकार हो, ऐसा भाव सिद्ध करना है, निश्चय के साथ व्यवहार। उसकी भक्ति, मुनि-श्रावक की वन्दना, मुनि-श्रावक का विनय और वैयावृत्य करना—सेवा, उसे व्यवहार कहते हैं। **क्योंकि यह मोक्षमार्ग में प्रवर्ताने को उपकारी है।** देखो! यह कारण रखा है न! मोक्षमार्ग में प्रवर्ताने को उपकारी निमित्त है। आहाहा! **उपकारी का उपकार मानना न्याय है,...** व्यवहार सिद्ध करना है न। **उपकारी का उपकार मानना न्याय है, उपकार लोपना अन्याय है। स्वरूप के साधक अहिंसा आदि महाव्रत...** अब लिया। स्वरूप का साधक, (वह) निमित्तरूप से। **अहिंसा आदि महाव्रत तथा रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति,...** व्यवहार। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रवृत्ति व्यवहार, उसे व्यवहार कहते हैं, उसे ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसमें शुभराग है। परद्रव्य की प्रवृत्ति के झुकाव में उतना राग है। स्वद्रव्य के अविनाशी स्वभाव में चिद्घन के स्वभाव में प्रवृत्ति, वह निवृत्ति है। वह राग से निवृत्ति है, स्वरूप में प्रवृत्ति है। यह है वह परसन्मुख के झुकाववाला राग, वह प्रवृत्ति है। आहाहा!

समिति, गुप्तिरूप प्रवर्तना... पाँच समिति व्यवहार, गुप्तिरूप अशुभ से निवृत्ति। **और इनमें दोष लगने पर अपनी निन्दा गर्हादिक करना,...** यह व्यवहार की भूमिका के योग्य जो राग था, उसमें किंचित् खण्ड हो, दोष लगे (तो) **अपनी निन्दा-गर्हादिक करना, गुरुओं का दिया हुआ प्रायश्चित लेना, शक्ति के अनुसार तप करना,...** आहाहा! **परीषह सहना, दसलक्षणधर्म में प्रवर्तना इत्यादि शुद्धात्मा के अनुकूल क्रियारूप प्रवर्तना,...** इतनी बात है यहाँ। शुद्धात्मा स्वयं है, उसके दर्शन-ज्ञान और चारित्र है, उसके अनुकूल यह निमित्त है, प्रतिकूल नहीं, इतनी बात। स्वभाव से तो विरुद्ध है, परन्तु वह निमित्त कहना है न, इसलिए उसे अनुकूल कहा है। आहाहा!

इनमें... क्रियारूप प्रवृत्ति, ऐसा है न? **शुद्धात्मा के अनुकूल क्रियारूप प्रवर्तना,**

इनमें कुछ राग का अंश रहता है... आया देखो! आया न स्पष्टीकरण? राग है न? थोड़ा राग है न? वस्तु का स्वभाव सदा अविनाशी ज्ञान-आनन्दस्वभाव, ऐसे स्वभाव की प्रतीति, ज्ञान, रमणता, वह तो वीतराग पर्याय है, ऐसा कहते हैं और यह है वह किंचित राग है, ऐसा। सर्व राग नहीं, परन्तु किंचित् राग है। सर्व राग की एकता हो, तब तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु शुद्धस्वभाव के स्वीकार की भूमिका में ऐसा किंचित् राग है, उसे व्यवहार कहा जाता है। **तब तक शुभकर्म का बन्ध होता है,...** लो! यह प्रवर्तना, ऐसे प्रवर्तना समिति में, गुप्ति में इत्यादि और ऐसे मुनि और श्रावक की भक्ति-वंदन करना, वह सब शुभराग है। आहाहा! यहाँ तो निश्चय और व्यवहार साबित करना है न? धर्मी को निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग दोनों होते हैं, अर्थात् क्या? ऐसा। निश्चय स्व चैतन्य... कलश में कहेंगे छप्पय में, जीव सदा चिद्भाव एक अविनाशी धारे। यह भगवान आत्मा तो चिद्भाव, ज्ञानभाव, आनन्दभाव सदा धारे। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह तो निश्चय। परन्तु ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और रमणतावाले जीवों के प्रति भक्ति, वन्दन आदि, वह शुभराग है, पुण्यबन्ध का कारण है; धर्म नहीं।

मुमुक्षु : जरा भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! महा चैतन्य शुद्ध ध्रुव सत् के पक्ष में जाकर जो दशा हो, वह निश्चयमोक्षमार्ग कहलाती है और परद्रव्य के पक्ष में जाकर जो राग हो, उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! होते हैं दोनों, ऐसा कहते हैं। पूर्ण वीतराग न हो, उसे यह होता है।

शुभकर्म का बन्ध होता है, तो भी वह प्रधान नहीं है,... ऐसा कहते हैं। उसकी मुख्यता नहीं। मुख्यता तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र का भाव है। उसके बहुमान का विकल्प, उसकी प्रधानता यहाँ गिनने में आती नहीं। आहाहा! **क्योंकि इनमें प्रवर्तनेवाले के शुभकर्म के फल की इच्छा नहीं है,...** यह कहते हैं। आहाहा! यह देव-गुरु-शास्त्र, उनकी वाणी और मुनि तथा श्रावक और स्वयं भी समिति आदि में वर्ते, उसमें उस राग के फल की इच्छा नहीं, ऐसा कहते हैं। होता है। इतनी फल की इच्छा नहीं, इसलिए उसे अबन्धतुल्य कहा जाता है। अबन्धतुल्य कहा जाता है। अबन्ध नहीं (परन्तु) अबन्धतुल्य है। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! दुनिया ने तो बाहर से यह व्रत

पालना, भक्ति करना, पूजा करना, यह धर्म—ऐसा मनवा लिया है, जो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसे यह है परन्तु उसका फल अथवा उस राग का स्वामी नहीं और उसके फल की उसे इच्छा नहीं। ऐसा बन्ध हो, ऐसा उसे भाव नहीं, ऐसा। आहाहा! ऐसा लेना है न यहाँ तो व्यवहार। दोनों को शुद्ध कहेंगे आगे बाद के पेरेग्राफ में, आरोपित। अबन्धतुल्य है। क्योंकि वह भी खिरने के लिये ही आता है। क्योंकि स्वभाव के अन्तर जहाँ चैतन्य भगवान ज्ञानस्वरूप अविनाशी प्रभु और आनन्द स्वभाव से अविनाशी आत्मा की दृष्टि और ज्ञान हुआ, उसके समक्ष यह शुभराग तो बहुत साधारण करने में आया है। यहाँ तो धर्मी की भूमिका में आनेवाले राग की बात है न? अज्ञानी के राग की यहाँ बात नहीं है। जिसे वस्तु के स्वभाव का, वीतरागपना, जिसे अन्तर में भासित हुआ है.... वस्तु भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है। जैसे सदा ज्ञानस्वभाव है, वैसे सदा चारित्रस्वभाव वीतरागस्वभाव है, उसकी अन्तरदृष्टि, ज्ञान और रमणता का जहाँ स्वीकार हुआ, बाद में कहेंगे जरा राग परद्रव्य की ओर के झुकाववाला उपकारी के उपकार के लिए आवे स्वयं को, ऐसा कहना है। मूल तो ऐसा कहना है ! परन्तु वह अबन्धतुल्य है।

इत्यादि प्रवृत्ति आगमोक्त... भगवान की वाणी में जो व्यवहार आया, निश्चय आया तत्प्रमाण, **व्यवहार-मोक्षमार्ग है।** लो! **इसमें प्रवृत्तिरूप परिणाम हैं...** प्रवृत्तिरूप परिणाम है **तो भी निवृत्तिप्रधान है,...** अशुभ से निवृत्त हुआ है न, और निवृत्तिस्वरूप की ओर के झुकाववाला राग है न, इसलिए उसे निवृत्ति मुख्य कही। **इसलिए निश्चयमोक्षमार्ग में विरोध नहीं है।** ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग में उस राग की वह दशा... अपने दोपहर में आता है, वह है। निश्चय है, वहाँ ऐसा राग होता है, इसलिए निश्चय को विरोध नहीं करता। वर्तमान साथ में रहने में विरोध नहीं, एक साथ रहने में विरोध नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति के साथ राग—कर्मधारा है। यह ज्ञानधारा, आत्मधारा, (और) विकारधारा दोनों (के साथ में) रहने में दिक्कत नहीं, दोनों रह सकते हैं। समझ में आया?

इस प्रकार निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्ग का संक्षेप है। इस प्रकार निश्चय अर्थात् सच्चा और व्यवहार अर्थात् उपचार, ऐसे मोक्षमार्ग का संक्षिप्त स्वरूप है। आहाहा! **इसी को शुद्धभाव कहा है।** लो! इस शुद्धभाव का आरोप करके, शुद्धभाव जो आत्मा के अविनाशी स्वभाव के आश्रय से होती शुद्धता, वह शुद्धता सच्ची शुद्धता और उसे भूमिका में जो विकल्प-राग-व्यवहार उठता है, उसे शुद्धता का आरोप करके व्यवहार से शुद्धता कही है। आहाहा! खींचतान करे इसमें कि देखो! शुद्ध कहा। ऐसा कि व्यवहार को शुद्ध कहा है। किस अपेक्षा से? वह तो प्रमाण का ज्ञान कराते हैं। यहाँ निश्चय स्वभाव चैतन्य त्रिकाल ऐसा आनन्दधाम उसकी रुचि, ज्ञान और रमणता की भूमिका का जो विकल्प, वह अशुद्धता का, उसे आरोप देकर उसको भी शुद्ध कहा। व्यवहार शुद्ध। आहाहा! निमित्त है, उसे आरोप करके (कहा है)। जैसे सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्दर्शन तो द्रव्य का अवलम्बन लेकर चैतन्य पूर्णानन्द प्रभु की—ध्रुव की अन्तर दृष्टि, वह वस्तु अविनाशी नित्य है, ऐसा ज्ञान में ज्ञेय होकर प्रतीति होना, ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन, वही... सम्यग्दर्शन। परन्तु साथ में उसके अनुकूल निमित्त होते हैं देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि, उसे भी समकित का आरोप करके समकित कहा, (परन्तु) वह समकित है नहीं। इसी प्रकार इस शुद्धभाव के साथ ऐसा शुभभाव है, वह शुद्ध है नहीं, परन्तु आरोप से शुद्ध कहककर व्यवहार से उसे शुद्ध कहा है, ऐसा कहा है। आहाहा!

यह तो मोक्षमार्ग (प्रकाशक में) बहुत स्पष्टीकरण कर डाला है। मोक्षमार्ग दो नहीं। मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से, कथन दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग तो एक ही प्रकार से है। इसी प्रकार शुद्धभाव तो एक ही प्रकार से है, उसका साधन तो एक ही प्रकार से है, उसका कारण तो एक ही प्रकार से है। आहाहा! उसका कथन दो प्रकार से आता है। निमित्त को भी शुद्ध कहे, निमित्त को समकित कहे, निमित्त को ज्ञान कहे, निमित्त को चारित्र कहे। आहाहा! ऐसा है, भाई! खींचतान करना, ऐसा यहाँ नहीं। आहाहा!

जिसकी नजरों में भगवान अविनाशी, अविनाशी और अविनाशी गुणवाला जिसकी नजर में आया, अब कहते हैं कि उसे थोड़ा राग बाकी है, उसे हम शुद्धता में व्यवहार

से कहते हैं, ऐसा कहते हैं। अबन्धतुल्य, ऐसा कहकर कहा न ऊपर? फल की इच्छा नहीं, इसलिए अबन्धतुल्य इस अपेक्षा से। बन्ध तो है, परन्तु अबन्धतुल्य है क्योंकि वह भी क्रम-क्रम से टूटनेवाला है। आहाहा! धर्मी की नजर का वह विषय नहीं व्यवहार। वह तो ज्ञान जानता है कि यहाँ राग आदि है। वह क्रम से हट जायेगा। यह शुद्ध चैतन्य का उग्र आश्रय होगा, (तो) वह छूट जायेगा। इसलिए उसे वर्तमान में शुद्ध और अबन्धतुल्य कहकर, बन्ध नहीं—ऐसा भी कहा गया है। ऐसा है। आहाहा! जैसे शुद्ध से बन्ध नहीं, वैसे शुभ से बन्ध नहीं, ऐसा आरोप करके कथन किया है। आहाहा! देखो न! कितना स्पष्ट किया है। पण्डित जयचन्द्रजी गृहस्थ हैं। श्वेताम्बर के साधु भी इस प्रकार से नहीं कह सकते। तब यह तो गृहस्थ इतना स्पष्टीकरण करते हैं, लो! आहाहा! सत्य है न पंथ। सत्य पंथ मिला है न! सत्य के पंथ में तो ऐसा ही स्पष्टीकरण होता है। आहाहा!

यह शुद्ध कहा। **इसमें भी सम्यग्दर्शन को प्रधान कहा है,...** जिनभावना... जिनभावना आयी है न सब जगह? **क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं है...** देखा! आहाहा! चैतन्य वस्तु पूरी और उसका अविनाशी शक्तिरूप स्वभाव, उसकी अविनाशी सत्ता का स्वीकार (और) जो प्रतीति करे, ज्ञेय करके, उसकी यहाँ प्रधानता कही गयी है। **क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं है...** यह पहले सम्यग्दर्शन हो तो राग आदि को व्यवहार मोक्ष के कारण का आरोप दिया जाता है, परन्तु जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, उसे तो कुछ है नहीं। आहाहा! क्योंकि भगवान पूर्ण अनन्त शुद्ध ध्रुव गुण का धारक, अनन्त शुद्ध ध्रुव गुण का धारक ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका जहाँ अन्तर सन्मुख होकर निश्चय प्रतीति हुई नहीं, वहाँ उसे क्या व्यवहार? कहते हैं। समझ में आया?

कहा था न कि भावलिंग, वह लिंग। द्रव्यलिंग को लिंग कहे कौन? ऐसा कहा न? द्रव्यलिंगी को। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! आहाहा! उसकी श्रद्धा में राग का अभाव, ज्ञान, उसका राग के अभाववाला और चारित्र उसका राग के अभाववाला। आहाहा! उसे वीतरागमार्ग में मोक्षमार्ग (कहते हैं) और उसमें भी सम्यग्दर्शन की प्रधानता है। क्योंकि शुद्ध चैतन्यद्रव्य पूर्ण ध्रुव अविनाशी आनन्द आदि शक्ति का सागर,

उसका जहाँ स्वीकार हुआ, तब फिर व्यवहार को व्यवहाररूप से कहो, शास्त्रज्ञान को ज्ञानरूप से, व्यवहारचारित्र को महाव्रत को व्यवहार (कहो)। इस वस्तु बिना कोई व्यवहार हो नहीं सकता। आहाहा! जिसे पूरा भगवान ही जहाँ स्वीकार में, प्रतीति में आया नहीं... वीर कहा था न वीर? विशिष्ट जो लक्ष्मी आत्मा की खास त्रिकाल अनन्त-अनन्त अर्थात् जिसका स्वभाव, उस स्वभाव को हद क्या है, उसकी शक्ति की? ऐसा ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, स्थिर स्वभाव अर्थात् वीतरागस्वभाव त्रिकाल, श्रद्धास्वभाव— ऐसे अनन्त गुण स्वभाव, ऐसा उसका एक स्वरूप, ऐसा आत्मा, उसका जहाँ स्वीकार जहाँ अनुभव में नहीं, उसे सम्यग्दर्शन बिना क्या कहना? आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म मार्ग परन्तु, भाई! आहाहा! लोगों को बाहर से चाहिए है, वस्तु अन्दर है। बाहर से भगवान खोजने जाता है, भगवान अन्दर है।

जिसमें खास लक्ष्मी पड़ी है, कहते हैं। आहाहा! चैतन्यलक्ष्मी, आनन्दलक्ष्मी, शान्तलक्ष्मी, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अनन्त लक्ष्मी का भण्डार आत्मा। आहाहा! ऐसे भण्डार का रखनेवाला आत्मा, उसका जिसे स्वीकार नहीं, उसकी सन्मुखता होकर आदर नहीं, उसका आश्रय लेकर दर्शन नहीं... आहाहा! कहते हैं कि उस सम्यग्दर्शन बिना सब निरर्थक है। द्रव्यलिंग, पंच महाव्रत हो, नग्नपना हो। आहाहा! क्योंकि जिसमें सत् टिका रहे, ऐसी चीज़ तो आयी नहीं। असत् परिणाम दया, दान, व्रतादि के या व्यवहार के, वे तो असत् हैं। वे तो नाश हो जायेंगे। आहाहा! भविष्य में आत्मा सत् में टिके, वह चीज़ तो प्रगट की नहीं और व्यवहार अकेले विकल्प, वह तो सत् है नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द सत् से भरपूर प्रभु, उसके स्वीकार बिना वह सत् में नहीं रह सकेगा। अकेली असत् की क्रिया व्यवहार, वह कहीं सत् में आता नहीं। आहाहा! तो ऐसा सत्स्वभाव, शुद्धस्वभाव, ऐसा कहा था न ऊपर? शुद्धस्वरूप का श्रद्धान, ऐसा। ऐसा सत् शुद्धस्वभाव का टिकना, टिकी हुई ऐसी चीज़ है, ऐसी श्रद्धा सम्यग्दर्शन में आये बिना, वह सत् है त्रिकाल, वह भी प्रतीति में आया नहीं और उसकी पर्याय में भी सम्यग्दर्शन ऐसी सत्, वह श्रद्धा तो आयी नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा इसका मार्ग है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन वह प्रधान है। आहाहा! वीतरागमार्ग में सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में

सर्वज्ञस्वभावी आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु, ऐसे आत्मा का जहाँ स्वीकार नहीं, उसका आदर नहीं, उसका सम्यग्दर्शन नहीं, उसे सब व्रत, तप की क्रियायें सब निरर्थक है। चार गति में भटकने का है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! अर्थात्? कि आत्मा सब अनन्त गुणों का पिण्ड है, वे अनन्त गुण वीतरागी स्वभावी हैं। आहाहा! वस्तु जो है आत्मा, जिसे परमेश्वर सर्वज्ञ वीतरागदेव ने आत्मा कहा, वह आत्मा तो वस्तु है उसका स्वभाव, वस्तु स्वभाववान है, उसका स्व-भाव, अपना भाव अविनाशी ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, वह सब अविनाशी उसका भाव है। ऐसे सत् का सत्पना जिसे प्रतीति में यह ऐसा है, ऐसा है—ऐसा प्रतीति में आया नहीं, उसे सत् कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? ऐसा वह भगवान आत्मा एक समय में—सेकेण्ड के असंख्य भाग का एक समय, उसमें प्रभु आत्मा अनन्त शान्ति, स्वच्छता आदि अविनाशी गुण से भरपूर भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसे महा अस्तित्व का जिसे ज्ञान में ज्ञात होकर अस्तित्व है, वह भासित नहीं हुआ अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे यह दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प, वे तो एक शुभराग, नाशवान चीज़ है। आहाहा! उसके फलरूप से पुण्य बँधे, वह धूल है, वह नाशवान है। उसके फलरूप से यह धूल की लक्ष्मी मिले पाँच-पचास लाख या धूल, वह नाशवान है। वह कोई चीज़ स्थिर रहे, ऐसी नहीं है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि **सम्यग्दर्शन को प्रधान कहा है, क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार...** वह तो विकल्प नाशवान चीज़, उसकी क्या कीमत? कहते हैं। आहाहा! ओहोहो! **व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं है और सम्यग्दर्शन के व्यवहार में...** अब जरा भक्ति सिद्ध करनी है न! **सम्यग्दर्शन के व्यवहार में...** सम्यग्दर्शन, जो आत्मा पूर्ण स्वरूप भगवान ने—सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा जो यह आत्मा अनन्त अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि लक्ष्मी का भण्डार प्रभु, उसकी जिसे प्रतीति हुई, उसे व्यवहार में जिनदेव की भक्ति प्रधान आवे उसे, ऐसा कहते हैं। उसे जिनेश्वर वीतरागदेव परमात्मा की भक्ति ऐसे सम्यग्दृष्टि को ही आती है। आहाहा! भाषा समझते हो, भाई? थोड़ी-थोड़ी। उज्जैन। यह तुम्हारे उज्जैन के है न! उज्जैन में क्या... आहाहा! पहिचानते हो? आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन में सम्यक्—सत्य, सत्य का दर्शन हुआ, सत्य त्रिकाली

वस्तु स्वभाव भगवान आत्मा की सन्मुखता होकर दर्शन हुआ उसे, जिसकी दशा पूर्ण प्रगट हुई है, ऐसे जिनराज वीतराग के प्रति ऐसे जिनभाव की दशा जिसे प्रगट हुई है, उसे जिनेश्वरदेव की भक्ति आती है। समझ में आया? उसे ही वास्तव में भक्ति आती है। पंचास्तिकाय में कहा है न, भाई! ज्ञानी की ही भक्ति, भक्ति है। अज्ञानी को भक्ति ही नहीं। पंचास्तिकाय में कहा है। आहाहा! धन्य तेरा...! क्या परन्तु मार्ग की शैली! ओहोहो! चारों ओर देखो तो मार्ग की एक स्थिति खड़ी होती है। आहाहा!

कहते हैं कि धर्मी, जिसे पूर्ण वीतरागस्वरूप आत्मा का जिसे भान होकर प्रतीति हुई, उसे ही पूर्ण वीतराग परमात्मा के प्रति भक्ति का भाव आता है। आहाहा! उसे सच्चा भाव आता है। यह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में त्रिकाल ज्ञान और पूर्ण वीतरागदशा ऐसी जिसे निश्चय प्रतीति यहाँ हुई, उसे व्यवहार प्रतीति की भक्ति आये बिना नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु जिसे अभी आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती और भगवान की भक्ति (करे), वह तो फिर अकेला राग और पुण्य बाँधे मिथ्यात्वसहित। आहाहा! अर्थात् कि सत्य के स्वीकार बिना अकेला राग का और असत्य का स्वीकार। आहाहा! क्या प्रभु की अमृतवाणी! यह वाणी और वीतराग के प्रति जिसे वीतरागी निर्विकल्प स्वभाव की प्रतीति हुई है, उसे ही सच्चा वीतराग के प्रति भक्तिभाव उल्लसित होता है। उसे भरोसे में आया है कि यह स्वरूप ही ऐसा है, ऐसा भान हुआ है। इसलिए यह स्वरूप जिन्हें पूर्ण प्रगट हुआ, उनकी प्रतीति मोक्षतत्त्व की इकट्ठी आ जाती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जिसे ऐसे जीवतत्त्व की प्रतीति आयी, उसे मोक्ष की ऐसी पर्याय पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, ऐसा मैं होनेवाला हूँ—ऐसा सम्यग्दृष्टि को भान हुआ है, इसलिए जो हुए हैं, उनकी भक्ति-वन्दन आदि करता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म का मार्ग! आहाहा! इसकी अपेक्षा भाई! व्रत पालना, अपवास करना, भक्ति करना (यह सरल था)। वह तो सब राग की क्रिया है, बापू! वह कहीं धर्म नहीं। क्या हो? ऐसा करना नहीं आया अनन्त काल में? आहाहा! वह तो असत् का विकल्प है। आहाहा! सत् स्वरूप जो प्रभु स्वयं उसकी जिसे प्रतीति और श्रद्धा अन्तर से हुई, उसे ऐसी दशा जिसे पूर्ण प्रगट हुई है, उनके प्रति का भाव आता है,

ऐसा सिद्ध करना है। उसे व्यवहार सच्चा कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन बातें हैं।

यह तो प्रभु तो चैतन्यमूर्ति है आत्मा तो। कहेंगे अन्दर, नहीं? छप्पय है नहीं? **जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै,...** आहाहा! भगवान आत्मा, यह भगवान वे (पर) भगवान नहीं, यह भगवान। आहाहा! **जीव सदा चिदभाव...** भगवान आत्मा जीव सदा चिद्भाव को धारे, सदा चिदभाव को धारे, सदा ज्ञानस्वभाव को धारे। आहाहा! **एक अविनाशी धारै,...** देखा वापस! ज्ञानभाव भी एकरूप और नाश न हो, ऐसे को धारे, वह आत्मा। आहाहा! अरे! उसे खबर नहीं पड़ी भगवान की, उसे खबर नहीं पड़ी आत्मा की। ऐसा का ऐसा मूढ़रूप से अनादि से जैन के वाड़ा में आकर भी जैन परमेश्वर को आत्मा किसे कहना है? और जैन परमेश्वर की पर्याय का स्वरूप कैसा? वह तो द्रव्य का स्वरूप। और उसकी पर्याय का स्वरूप वीतरागी कैसे होते हैं? उसका इसे अन्तर के स्वभाव के सत् की प्रतीति बिना ऐसी सत् की पर्याय का भरोसा व्यवहार से भी इसे नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि यह शरीर, वाणी, मन वे तो जड़ हैं। वे कहीं आत्मा ने नहीं धारे हैं, आत्मा ने नहीं रखे हैं। अन्दर आठ कर्म हैं जड़, वे आत्मा ने रखे नहीं, आत्मा ने धारे नहीं। उसमें पुण्य-पाप के भाव हैं, वे आत्मा ने धारे नहीं, आत्मा ने रखे नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय है, वह आत्मा ने धारी नहीं, आत्मा ने रखी नहीं। आहाहा! वह तो भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञानादि अनन्त गुण को उसने धारा है। **जीव सदा चिदभाव एक...** ऐसा एक लिया है न, भाई! वह भेद नहीं। आहाहा! एक शुद्ध एकरूप। आहाहा! दो हुए वहाँ बिगड़े। एकड़े एक और बिगड़े दो। आहाहा! चैतन्यस्वरूप की इसे खबर नहीं। मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? इसकी खबर नहीं होती और पर की माँडे सब। आहाहा! घर के लड़के चक्की चाटे और पड़ोसी को आटा। मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ और कितना हूँ, इसकी खबर नहीं होती और धर्म हो। धूल में भी धर्म नहीं होता। उसे तो पुण्य भी अच्छा नहीं बँधता। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। उसमें कहा न अबन्धतुल्य, उसे पुण्य बँधता है, तीर्थंकरगोत्र आदि। वह सब अबन्धतुल्य है, वह उसे अन्दर वास्तव में खिरा डालेगा। आहाहा! क्योंकि उसकी दृष्टि के स्वीकार में उसका स्वीकार नहीं।

अर्थात् महाप्रभु का स्वीकार जिसकी दृष्टि में है, उसे यह स्वीकार नहीं, इसलिए वह सब हट जायेगा। उसके सामने देखना नहीं, इसलिए चले जायेंगे वे तो। आहाहा! भूपतभाई! ऐसा मार्ग है! आहाहा!

जिनदेव की भक्ति प्रधान है, यह सम्यग्दर्शन को बताने के लिए मुख्य चिह्न है,... लो, ठीक! व्यवहार है न! वीतराग परमेश्वर जिन्होंने एक 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं, उसके एक समय में जिन्होंने केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उसकी वह श्रद्धा किसे आवे? भाई! ऐसा भगवान है और हम मानते हैं। बापू! वह तो सब ऊपर-ऊपर से है। आहाहा! इस जगत में सर्वज्ञ परमेश्वर एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिन्हें ज्ञान में त्रिकाली अपना स्वरूप जिसे ज्ञात हो गया, त्रिकाली अपना स्वरूप ज्ञात हो गया तो उसकी सब पर्यायें जो निर्मल, ऐसी वे ज्ञात हो गयी। उसकी निर्मल पर्याय में पूर्ण जाने, वह सब उसमें आ गया। आहाहा! समझ में आया? ऐसे वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का सच्चा भरोसा व्यवहार का, जिसे आत्मा की वीतरागता की स्वभाव महासत् की श्रद्धा हुई है, उसे ऐसे पर्यायवाले जीव की सत्ता का स्वीकार व्यवहार से होता है और इसीलिए व्यवहार से उनकी भक्ति होती है। आहाहा! क्या परन्तु निश्चय-व्यवहार की सन्धि! आहाहा! इसने कभी अपने को देखने का, अपने को जानने का प्रयत्न किया नहीं और मांडी सब पर की। आहाहा! जाननेवाले को जाना नहीं और बाकी सब (मांडी)। आहाहा!

अविनाशी भगवान आत्मा। आत्मा का नाश होता है? उसकी उत्पत्ति होती है? वह तो अनुत्पन्न और अविनाशी वस्तु है। आहाहा! तो उसके जितने ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वह भी अनुत्पन्न और अविनाशी गुण हैं। ऐसे स्वभाव का भान करके जिसे प्रतीति हुई है, ऐसा त्रिकाली स्वभाव को ज्ञान की वर्तमान दर्शा में ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ है, उसकी जिसे प्रतीति हुई है, और ऐसी पूर्ण प्रतीति, पूर्ण जिन्हें वीतरागता हुई, सर्वज्ञता है, उनके प्रति उसे बहुमान और श्रद्धा आये बिना नहीं रहती। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भावपाहुड का योगफल करते हैं। आहाहा! कहो, चेतनजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! उसकी समझण, बापू! तू कौन है, इसकी तुझे खबर नहीं। धर्म करनेवाला कौन है? कितना है? कहाँ है? कैसे है? इसकी खबर नहीं और इसे धर्म हो जाये? राग की,

पुण्य की कोई क्रिया हो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा (तो) मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधे। आहाहा! वह पुण्य तो अघाति का बाँधे, इसलिए कुछ संयोग बदले। स्वभाव बदले नहीं। आहाहा!

बताने के लिये मुख्य चिह्न है, इसलिए जिनभक्ति निरन्तर करना और जिन-आज्ञा मानकर आगमोक्त मार्ग में प्रवर्तना, यह श्रीगुरु का उपदेश है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु जीवन्त स्वामी—जीवन्तस्वामी केवली परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में जमीन के ऊपर विराजते हैं। उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में गये थे। साक्षात् भगवान विराजते हैं, वे अभी। करोड़ पूर्व का आयुष्य है, पाँच सौ धनुष का देह है, चार कर्म नाश हुए हैं, चार कर्म बाकी हैं, उपदेश की दिव्यध्वनि खिरती है, इन्द्र और गणधर, नाग और बाघ सुनने आते हैं। आहाहा! उनके पास गये थे। वह आकर यह शास्त्र रचे हैं। वहाँ से आकर यह शास्त्र (रचे हैं)। भगवान का यह आदेश है, भगवान की यह आज्ञा है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य आड़तिया होकर वीतराग का माल जगत को देते हैं। आहाहा! अरे! इसे कुछ खबर नहीं होती। मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? क्या करता हूँ? भगवान कहाँ हैं? भगवान हुए हों तो कहाँ हैं? हुए हैं या नहीं? साधकरूप से जिन्होंने स्वरूप का साधनपना प्रगट किया, उसे अल्प काल में केवलज्ञान परमात्मा हुए बिना रहे नहीं। तो ऐसे साधक जीव सिद्ध हुए अर्थात् मोक्ष हुए कहाँ हैं? और वह भाव कैसा है? उसे—सम्यग्दृष्टि को ही उसका बहुमान और भक्ति आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अन्य जिन-आज्ञा सिवाय... वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो यह सम्यग्दर्शन का मार्ग कहा, उसके सिवाय जितने कुमार्ग हैं, वीतराग परमेश्वर की आज्ञा विरुद्ध जिन्होंने कल्पना करके मार्ग बाँधा है, वे सब कुमार्ग हैं। **उनका प्रसंग छोड़ना;...** इनकी भक्ति करना और उनका प्रसंग छोड़ना, ऐसा। अब इसे पहिचानना पड़ेगा या नहीं? आहाहा! वीतराग के नाम से भी वीतराग की आज्ञा बाहर के मार्ग जगत ने चलाये। आहाहा! अरे! कहाँ था भाई? नरक और निगोद में अनन्त भव किये। उसमें से मुश्किल से बाहर आया है। आहाहा! यह दुःख की परम्परा इसने भोगी है। भगवान जाने, इसने दुःख भोगे,

उसकी इसे खबर नहीं अभी। आहाहा! निगोद में नरक के निगोद के दु:ख अनन्त भव कर-करके वहाँ रहा। उस मिथ्यादर्शन के कारण। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं कि दु:ख से छूटने का उपाय हो तो यह एक है। आहाहा! वीतराग की आज्ञा का सम्यक्, वीतरागी आज्ञा का ज्ञान, वीतरागी आज्ञा का चारित्र। आहाहा! वीतरागीस्वभाव की प्रतीति, वीतरागस्वभाव का ज्ञान और वीतरागस्वभाव में रमणता। आहाहा! एक ही (मोक्षमार्ग है), इसके अतिरिक्त सब कुमार्ग है।

इस प्रकार करने से आत्मकल्याण होता है। लो! ऐसा मार्ग साधने से उसका कल्याण होगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अषाढ़ शुक्ल १०, शनिवार, दिनांक २९-०६-१९७४
गाथा - १६५, लिंगपाहुड़-१-२, प्रवचन-१८६

भावपाहुड़ का अन्तिम है छप्पय।

(छप्पय)

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै।
कर्म निमितकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै॥
कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमैं संसारै।
पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै॥
सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।
निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमैं न तब॥

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै। जीव का स्वभाव तो ज्ञानभाव है। वह त्रिकाल जैसे वस्तु स्वयं है, वैसे त्रिकाल उसका चिद्भाव ज्ञानभाव है। **एक अविनाशी धारै।** एकस्वरूप है ज्ञानभाव। ऐसे अविनाशी गुण को—स्वभाव को जीव धारता है। उसे जीव कहते हैं। आहाहा! जीव उसे कहते हैं कि जो एक चिद्भाव—ज्ञानभाव—जानने की शक्तिरूप भाव एक, सामान्य अविनाशी—नाश न हो ऐसा, उसे यह जीव चिद्भाव को धारता है। आहाहा! एकरूप रहनेवाला। ऐसा जो जीव ज्ञानभावस्वभाव एक अविनाशी सामान्य को त्रिकाल धारता है, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा आत्मा ज्ञानभाव अविनाशी है, ऐसी जिसे दृष्टि होती है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। क्योंकि जो ज्ञानस्वभाव—जाननस्वभाव, उसे धारता है जो जीव, ऐसे स्वभाव की जो दृष्टि करे, उसे पर्याय में सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है।

जीव अर्थात् आत्मा। वह तो ज्ञानभाव। आत्मा भाववान है, स्वभाववान है। उसका स्वभाव ज्ञानभाव त्रिकाल ज्ञानभाव है। ऐसे अविनाशी स्वभाव को धार रखे, वह जीव। वास्तव में तो वह शरीर को, कर्म को, राग को भी धार रखता नहीं। आहाहा! वास्तव में तो उसकी एक समय की पर्याय बदले, उसे भी धार नहीं रखता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा। वह जीव ज्ञानभाव—ज्ञानस्वभाव, जो ध्रुव स्वयं उसका ज्ञानस्वभाव, वह ध्रुव त्रिकाल अविनाशी ऐसे स्वभाव को धारे, उसे जीव कहते हैं। आहाहा! वह शरीर को नहीं धारता, वाणी को नहीं धारता, वह कर्म को नहीं धारता, वह पुण्य-पाप के विकल्प को भी नहीं रखता। आहाहा! इसी प्रकार एक समय की पर्याय है, वह तो बदलती है। सदा ही उसका धारना तो चिद्भाव—ज्ञानभाव का धरना है। सूक्ष्म बात है। कल दो लड़के आये नहीं थे तुम्हारे? उज्जैन से। वह छोटा कहता था कि मेरा मन तो किसी को मानता नहीं। धर्म-बर्म की अपने को कुछ खबर नहीं। परन्तु तुमने कहा कि अन्दर देखो कुछ है। तब से कुछ लगा है, कहता है। दो लड़के आये थे न कल! उज्जैन से आये थे। दिगम्बर थे? वह छोटा लड़का जरा... अन्दर है कुछ। मैंने कहा, बाहर जो है वह नहीं, परन्तु अन्दर चीज़ है। कुछ लगा अवश्य कुछ। ले गया कितने ही फोटो और ले गया थोड़े... अरे! भाई! तू जो है, वह कहाँ है? किसमें है? तू है, वह ज्ञान में है—चिद्भाव में है। ऐसे ज्ञानस्वभाव, ऐसे भाव को धरनेवाली चीज़, उसे सर्वज्ञ के उपदेश द्वारा पहले जानकर, फिर अनुभव में लाना, इसका नाम धर्म की पहली शुरुआत, सम्यग्दर्शन इसे कहते हैं।

कर्म निमितकूं पाय... परन्तु पर्याय में कर्मरूपी निमित्त एक जड़ है, उसके संग के कारण **अशुद्धभावनि विस्तारै।** आहाहा! यह पुण्य और पाप और संकल्प-विकल्प, उस अशुद्ध निमित्त के कारण से अशुद्धता विस्तारता है। स्वभाव में वह अशुद्धता विस्तारने का कोई गुण नहीं, कोई शक्ति नहीं उसकी कि अशुद्धता विस्तरे। आहाहा! अशुद्धता का विस्तार हो, अशुद्धता जन्मे, ऐसा उसका कोई गुण नहीं अन्दर। आहाहा! मात्र वह कर्म के निमित्त के संग से वर्तमान पर्याय—हालत संग में जुड़ जाती है, इससे अशुद्धभाव का विस्तार करे। आहाहा! शुभ-अशुभ के असंख्य प्रकार हैं, वे सब कर्म के निमित्त के संग से, स्वभाव का संग, स्वभाव का संग भूलकर पर्याय का संग करे, उस निमित्त का संग करे, उतना उसे अशुद्धभाव का विस्तार होता है। अशुद्धभाव अर्थात् कि शुभाशुभभाव दोनों। आहाहा! यह कहते हैं अब।

कर्म शुभाशुभ बांधि... यह अशुद्धभाव के कारण, अशुद्ध के दो प्रकार—एक

शुभ—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि और एक अशुभ—काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग आदि। वह अशुद्ध का एक प्रकार जो शुभभाव, उससे शुभकर्म बाँधे और अशुद्ध का एक (प्रकार) अशुभभाव, वह अशुभ कर्म बाँधे। **कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमैं संसारै।** और उसका उदय होने पर फिर स्वयं राग-द्वेष को करे और संसार में भटके। आहाहा! **पावै दुःख अनंत...** आहाहा! देखो! यहाँ शुभाशुभ कर्म, शुभाशुभभाव, वह अशुद्धभाव, वह दुःखरूप और उससे बँधे कर्म, उसका फल भी दुःखरूप। आहाहा! चारों ही गति दुःखरूप। स्वर्ग में जाये तो भी दुःख है, नरक में भी दुःख है। आत्मा के आनन्द, ज्ञान त्रिकाल स्वभाव ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का त्रिकाल स्वभाव, उसे धरनेवाला भगवान आत्मा, उस आनन्द के स्वभाव को पकड़कर जो दर्शनशुद्धि प्रगट करे, उसे आनन्द का स्वाद आता है अर्थात् कि उसे दुःख नहीं होता और सुख होता है। आहाहा! परन्तु कर्म के निमित्त के संग में दौड़ते हुए अनादि से उसे शुभाशुभभाव अशुद्ध होते हैं, यह शुभ-अशुभ से शुभाशुभ कर्म बँधते हैं। उसके कारण चार गति में भटकता है। आहाहा! वह कहीं सुखी नहीं। शुभ और अशुभभाव से बन्धन करे और बन्धन के फल में चार गति मिले। कहीं सुख नहीं है। सुखस्वरूप तो भगवान आत्मा है। जैसे जीव अविनाशी ज्ञान को धरता है, ऐसा ही अविनाशी आनन्द को आत्मा धरता है। उसे आत्मा कहते हैं। जिसे आत्मा जानना हो, उसे अविनाशी आनन्द के धारक को पकड़ना चाहिए। आहाहा!

पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै। चार गति में डुले, भटके। आहाहा! मनुष्यगति हो, देवगति हो, नरक हो या तिर्यंच हो, वह सब दुःख की गतियाँ हैं। आहाहा! कोई मनुष्यपना मिले, शरीर ठीक रहे, उसमें शरीर की जवानी की अवस्था हो तो उसमें उसे मजा लगे। अरे! भगवान! वह तो मिट्टी है न, प्रभु! उस मिट्टी का स्वामी तू नहीं। तू तो आनन्द और ज्ञान का स्वामी का स्वभाव है तू। ज्ञान और आनन्द ऐसा जो त्रिकाल ध्रुव स्वभाव, उसे धरनेवाला भगवान, उसके समीप में जा न, भाई! आहाहा! उसके समीप को छोड़कर कर्म के समीप में जायेगा तो शुभ-अशुभभाव ऐसे अशुद्धभाव उत्पन्न होंगे, कर्म बँधेंगे और चार गति में भटकेगा। आहाहा!

सर्वज्ञदेशना पायकै... सर्वज्ञदेशना। सर्वज्ञ जो ज्ञानस्वभाव अविनाशी, उसे

धरनेवाला भगवान, वह ज्ञान सम्पूर्ण स्वरूप शक्ति उसकी है। उसकी जिसे व्यक्ति—प्रगट दशा सर्वज्ञ परमेश्वर को हुई। तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी भगवान, वे सर्वज्ञ ज्ञ-स्वभाव को जो आत्मा त्रिकाल धारता था, उसका आश्रय लेकर जो त्रिकाल ज्ञानस्वभाव पूर्ण सर्वज्ञशक्ति थी, उसे पर्याय में प्रगट किया। उनकी देशना पाकर... जिसने भगवान आत्मा को त्रिकाली देखा और त्रिकाली जाननेवाले की पर्याय में त्रिकाली जानना प्रगट किया, आहाहा! ऐसे भगवान ने जो उपदेश दिया।

सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब। इसका अर्थ यह कहा कि सर्वज्ञ की देशना ऐसी होती है कि स्वभाव की दृष्टि कर, मिथ्यात्व को टाल अर्थात् कि सुख को प्रगट कर, दुःख को टाल। आहाहा! समझ में आया? सुखी होना हो तो सर्वज्ञ की देशना ऐसी है कि यह सर्वज्ञस्वभाव सन्मुख जाने की बात करती है वह। यह राग और निमित्त और अल्पज्ञ से हटकर त्रिकाल स्वभाव के समीप में जा, तुझे सुख होगा और दुःख टलेगा। मिथ्यात्व अर्थात् दुःख; समकित अर्थात् सुख। आहाहा! **सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।** इसका अर्थ कि भगवान की देशना में यह आया था कि सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा तू, जिसने अनन्त अविनाशी ज्ञानस्वभाव को धार रखा है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके सन्मुख देख। आहाहा! उसके सन्मुख देखने से तुझे सुख होगा और मिथ्यात्वरूपी दुःख का तुझे नाश होगा। आहाहा! उन भगवान का यह उपदेश था। आहाहा!

तजै भाव मिथ्यात्व जब। ऐसा है न? मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता। अर्थात् राग मुझे लाभ करेगा, निमित्त मुझे लाभ करेगा, अल्पज्ञ दशा इतना मैं—ऐसी जो मिथ्या श्रद्धा। वह सर्वज्ञ की देशना में यह आया कि यह निमित्त, राग और अल्पज्ञ की जो दृष्टि है, वह दुःखरूप है। आहाहा! त्रिकाल ध्रुवस्वभाव नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करने से तुझे सुख होगा, तू सुख के पंथ में पड़ेगा। आहाहा! ऐसा मार्ग भगवान का। यहाँ तो पहले ही यह कहा। **सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।** आहाहा! ज्ञानस्वभाव से भरपूर भगवान को पकड़ने से, उसके सन्मुख होने से पर्याय, राग और निमित्त से विमुख होता है और स्वभाव के सन्मुख होता है, उसे सुख होता है। सम्यग्दर्शन होने पर उसे

दु:ख, मिथ्यात्व का नाश होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। लोगों ने भगवान के नाम से दूसरा सब सुना। व्रत करना, अपवास करना, भक्ति करना, पूजा करना, वह तो सर्वज्ञदेशना में नहीं आया इसमें। इसमें तो यह आया कि स्वभाव के सन्मुख हो और विमुख जो है स्व से, उसका नाश कर। आहाहा! कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से होते अशुद्धभाव की एकताबुद्धि तोड़ और स्वभाव की एकताबुद्धि कर। यह भगवान की देशना थी। आहाहा! कहो, समझ में आया?

अरे! तेरा वीर्य पर में अशुद्धभाव में उल्लसित हुआ है, कर्म के संग में तेरा वीर्य उल्लसित हुआ है, वह मिथ्यात्वभाव और वह संसार और वह दु:खरूप है। आहाहा! तेरा नाथ आनन्द से भरपूर अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है तू, उसमें वीर्य को झुका। तेरी आनन्ददशा जो सुखरूप शक्ति है, उसमें से आनन्द का प्रवाह आयेगा और एकताबुद्धि का जो दु:ख है, वह टल जायेगा। आहाहा! यह चार अनुयोग में सर्वज्ञ की देशना यह है। आहाहा! वीतरागता तात्पर्य कहा है न? उसका अर्थ यह। चारों अनुयोगों में तात्पर्य तो वीतरागता है। अर्थात् कि परसन्मुख के राग और विकल्प से हटकर स्वभाव सन्मुख होते ही वीतरागता प्रगट होती है और वह चारों ही अनुयोगों का तथा भगवान की देशना का आगम का यह सार है। समझ में आया?

निजशुद्धभाव धरि... देखा! जब सर्वज्ञ की देशना मिली कि प्रभु! तू तो पूर्ण आनन्द और ज्ञान-ज्ञानस्वभाव, चिद्भाव का धारक है न तू! रागादि की और एक समय की पर्याय भी रखनेवाला तू नहीं। आहाहा! अव्यक्त में आता है न छठवाँ बोल अव्यक्त का (समयसार गाथा ४९)। स्वयं अपने से बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव में आता होने पर भी व्यक्त के प्रति उदासीन है। आहाहा! यह पर्याय की आनन्द की दशा एक समय की, उससे उदास है। वहाँ टिकता नहीं। ऐसे पड़ता है। छठवाँ बोल है न अव्यक्त का? आहाहा! पाँचवाँ बोल ऐसा है कि व्यक्त और अव्यक्त इन दोनों का ज्ञान एकसाथ होने पर भी व्यक्त को स्पर्शता नहीं, पर्याय को छूता नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसा तेरा स्वभाव! आहाहा! एक समय की पर्याय को वह स्पर्शता नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यक्त जो प्रगट दशा... आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव चैतन्य भरा सत्त्व, उसे अव्यक्त

कहते हैं, पर्याय की प्रगट अवस्था की अपेक्षा से। आहाहा! ऐसे अव्यक्त भगवान आत्मा के सन्मुख होने से, (उसका) आदर होने से, स्वीकार होने से जो दशा होती है, उसे वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। समझ में आया? भगवान की देशना यह है। आहाहा!

बारह सभा में इन्द्रों और गणधरों की उपस्थिति में इच्छा बिना की दिव्यध्वनि, दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज ऐसी आयी, उसे सर्वज्ञ की देशना कहते हैं। उसे पाकर भी, ऐसा। वह जिसे मिली है, उसे पाकर यह स्वभावसन्मुख होता है। आहाहा! वह **निजशुद्धभाव धरि...** पर्याय के अन्दर अब। **कर्महरि...** अपना त्रिकाल शुद्ध ध्रुव स्वभाव ज्ञानभाव, उसे त्रिकाल धरनेवाला जीव, उसे पकड़कर जिसने निज शुद्धभाव धारण किया। कर्महरि—और कर्म को नाश किया। **लहे मोक्ष...** वह मोक्ष को पाता है। आहाहा! **भरमैं न तब।** वह भ्रमणा में आता नहीं, संसार में भटकता नहीं। आहाहा! संक्षिप्त में बहुत कहा। आहाहा! छप्पय किया है उसमें से।

(दोहा)

मंगलमय परमातमा, शुद्धभाव अविकार।
नमूँ पाय पाऊँ स्वपद, जाचूँ यहै करार॥

कहते हैं, भावपाहुड़ पूर्ण करते हुए मैं मंगलमय परमात्मा को, शुद्धभाव अविकारी जो है पूर्ण, उसे मैं नमता हूँ। मेरा नमन, झुकाव पूर्ण परमात्मादशा जिसे प्राप्त हुई है, अविकारी शुद्धदशा जो भगवान को मिली—प्राप्त है, वह मुझे प्राप्त करनी है, इसलिए ऐसे परमात्मा को मैं नमता हूँ। ऐसे परमात्मा को मेरा विनय उनके वहाँ जाता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें न, इसलिए लोगों को सुनना नये सुनने आवे, उन्हें तो ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? मार्ग ऐसा सूक्ष्म हैं। जिसे यह शरीर, वाणी, मन की क्रिया के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। वह तो नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव के साथ चैतन्य को सम्बन्ध नहीं। आहाहा! वह तो निमित्त (आधीन) उत्पन्न हुआ विकारी भाव, कृत्रिम भाव है। अकृत्रिम त्रिकाली ज्ञान, आनन्द जो नहीं किया हुआ स्वभाववाला तत्त्व, उसकी दृष्टि कर, और राग की एकताबुद्धि का मिथ्यात्व वहाँ टल जायेगा। वहाँ शुद्धभाव रहेगा। आगे बढ़कर स्थिरता होकर पूर्ण शुद्ध होगा। आहाहा! यह मार्ग है।

नमूँ पाय पाऊँ स्वपद... देखा! मैं तो मेरे स्वपद को पाऊँ, यह मेरी (भावना) है। आहाहा! परमपद ऐसे परमात्मा को नमूँ सही, परन्तु मुझे पाने का तो स्वपद है। आहाहा! 'निजपद जिनपद एकता।' आहाहा! 'भेदभाव नहि कांई' ऐसा मेरा निजपद, जिनपद स्वरूप से, उसे मैं पर्याय में प्राप्त करूँ, यह मेरी भावना है। दुनिया गिने, न गिने, माने न माने, उसके साथ मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। **जाचूँ यहै करार।** मैं तो मेरे स्वपद को जाँचूं, ऐसा कहते हैं। यह मेरा कोलकरार है। आहाहा! भगवान को वन्दन करके भी मेरे स्वपद को जाँचूं यह मेरा कोलकरार है। आहाहा! देखो! एक यह पण्डित जयचन्द्रजी गृहस्थाश्रम में रहे हुए भी कैसे भाव को स्पष्ट करते हैं। **जाचूँ यहै करार।** मेरा कोलकरार तो यह है। मेरा निजपद भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में मुझे पूर्ण प्राप्त होओ, यह मेरी स्वयं की, यह मेरा कोलकरार है। स्वर्ग भी चाहिए नहीं, पुण्यभाव भी चाहिए नहीं। आहाहा! भगवान को वन्दन करते हुए विकल्प उठे, उसका फल मुझे चाहिए नहीं, कहते हैं। मुझे तो निजपद की प्राप्ति, वह चाहिए है।

इति श्री कुन्दकुन्दस्वामीविरचित, भावप्राभृत की जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ा कृत देशभाषामय वचनिका समाप्त हुई, लो! भावपाहुड़ पूरा हुआ, लो।

—७—
लिंगपाहुड़

अब लिंगपाहुड। मोक्षपाहुड हो गया है। सातवाँ लिंगपाहुड। छह पाहुड हो गये।

अर्थ लिंगपाहुड़ की वचनिका का अनुवाद लिखते हैं :—

(दोहा)

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय॥१॥

जिसने वीतरागमुद्रा धारण की। आहाहा! बाह्य वीतरागमुद्रा नग्नदशा, अन्तर वीतरागमुद्रा अविकारीदशा। ऐसा जिन का स्वभाव जीव का, जिन, उसका निज स्वभाव, ऐसी मुद्रा जिसे पर्याय में प्रगट हुई। आहाहा! जिसे तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव, ऐसी वीतरागमुद्रा प्रगट हुई, उसे मुनि कहते हैं।

मुमुक्षु : पंचम काल में मुनि ही कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि तो ऐसे हो, पंचम काल हो या चौथा काल हो। तीन काल में मुनिपने कील दशा में अन्तर नहीं।

जिनमुद्राधारक... अहो! जीव का स्वरूप ही जिनस्वरूप है। अविनाशी ज्ञान का धारक कहो या वीतरागीस्वभाव को धरनेवाला कहो। चारित्र को धारनेवाला अर्थात् वीतरागस्वभाव को धरनेवाला ऐसा जो आत्मा, उसका आश्रय लेकर, उसके पक्ष में आकर जिसने वीतरागता प्रगट की। वह अन्दर में थी, उसे प्रगट किया। उसे जिनमुद्रा कहा जाता है। बाह्य में नग्नमुद्रा। आहाहा! मुनि को वस्त्र का धागा नहीं होता। ओहो! पात्र, वस्त्र नहीं होते। अन्दर में वीतरागता प्रगटी है, उसे एक शरीरमुद्रा रह गयी है। आहाहा! उसे एक विकल्प उठे तो पंच महाव्रत का आदि तो, वह द्रव्यलिंग है। वह हो, परन्तु **जिनमुद्राधारक मुनी..** देखा! **जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं...** अपना निजस्वरूप है, उसका ध्यान करते हैं। मुनि तो निजस्वरूप के ध्यानी होते हैं। शुद्ध उपयोगवाले होते हैं न! आहाहा! अब उसकी तो अभी ना करते हैं कि शुद्ध उपयोग होता नहीं। अरे! भगवान! तो फिर हो गया। सम्यग्दर्शन भी नहीं और साधु भी नहीं कोई।

निजस्वरूपकूं ध्याय। भगवान पूर्ण आत्मा, परमात्मा ऐसा जो निजस्वरूप उसका इसे ध्यान होता है। उसे राग का, पुण्य का ध्यान होता नहीं, ऐसा कहते हैं। बीच में आवे सही,, उसका ध्यान नहीं, ध्यान तो आत्मा के स्वरूप का है। आहाहा! **जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।** निजस्वरूप वीतरागमूर्ति आनन्द का नाथ भगवान, उसे जिसने ध्यान में विषय किया है, ध्यान में जिसने उसे विषय बनाया है, वह उसका ध्यान करता है। आहाहा! मुनि की बात है न!

मुनि पंच परमेष्ठी में सम्मिलित हैं। आहाहा! णमो लोए सव्व साहूणं। जिन्हें गणधर नमस्कार करें। तीर्थंकर के वजीर—दीवान, वे नमस्कार (करे), वह मुनिपना कैसा होगा, भाई! जिसे अन्तर में वीतरागता की लहरें उठती हैं। आहाहा! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द की धारा (बहती है)। उसे मुनि कहते हैं कि अतीन्द्रिय धारा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष (हो)। प्रचुर स्वसंवेदन आता है न? स्व अर्थात् आत्मा का संवेदन—प्रत्यक्ष (वेदन) आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन जिसे धारावाही होता है। आहाहा! उसे भावलिंगरूपी जिनमुद्रा कहते हैं। ऐसी बातें कैसी? वह तो कहे भगवान की भक्ति करना, यात्रा करना, पालीताणा जाना, सम्मेदशिखर जाना। चैत्र शुक्ल पूर्णिमा। आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा आयेगी यह अब। भाई! वह तो सब शुभभाव होता है, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! वह तो अशुद्धभाव का एक भाग है। उससे पुण्यबन्ध होता है और उससे संसार मिलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : संसार तो मीठा नहीं लगता?

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठा धूल मीठा कहा यहाँ तो। चार गति मिले, दुःख की दशा है। आहाहा! अशुभ हो तो नरक और ढोर। शुभ किंचित् थोड़ा हो तो मनुष्य और विशेष हो तो देव (होता है)। भटकने के सब दुःख के स्थान हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भूलकर जो शुभाशुभभाव हो, अरे! भूले बिना भी हो। आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र का दोष।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र का दोष। तथापि फल तो दुःख है न! आहाहा! (समयसार, गाथा) ७४ में कहा नहीं? शुभभाव, वह दुःख है और दुःख का फल है।

आहाहा! गजब बात! वीतराग की बातें। स्वयं कहते हैं कि मेरी वन्दना, विनय करने से मुझे शुभभाव होंगे। वह शुभभाव वर्तमान भी दुःख है और भविष्य में उससे संयोग मिलेंगे वीतराग की वाणी या वीतराग, वह परद्रव्य मिलेंगे, वहाँ तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। वहाँ भी दुःख है। आहाहा! वीतराग ऐसा कहते हैं, हों!

मुमुक्षु : .... वीतरागी ही हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे निजस्वरूप को ध्याकर मुनि... परमेश्वर कहते हैं कि मेरा ध्यान नहीं। उसका निजस्वरूप अन्दर आनन्द का नाथ भगवान है, शुद्ध चैतन्यघन है... आहाहा! जिसे ध्यान में लेने से जिसे आनन्द आवे, उसे ध्यान में ले नहीं? जिसे ध्यान में लेने से राग हो, वह तो दुःख होता है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई!

निजस्वरूपकूं ध्याय। देखो! मुनि तो अपने स्वरूप का ध्यान करते हैं, ऐसा कहते हैं। यह पंच महाव्रत पाले और अट्ठाईस मूलगुण पाले, उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा! होते हैं, उसे वे जानते हैं। क्योंकि जीव का ज्ञानस्वभाव है और वह ज्ञानस्वभाव ध्रुव है। उसमें से प्रगट हुई दशा भी ज्ञान है। वह ज्ञान राग हो, व्यवहार हो, उसे जाने। आहाहा! सवेरे एक प्रश्न कहा था सवेरे दस्त जाते हुए। कहा, इस लोक की तृष्णा... चैतन्य सर्व को जाने, ऐसा स्वभाव है, ऐसा जिसे भान नहीं, उसकी तृष्णा अनन्तगुणी ऐसे पर में गई। आहाहा! क्योंकि वस्तु तीन काल, तीन लोक को जाने एक समय में, ऐसी उनकी शक्ति और इतना उसका स्वरूप है। वह जब लक्ष्य में आया नहीं, तब परसन्मुख द्रव्य को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वह इच्छा भी अनन्त हुई। आहाहा! तृष्णा। वह तो आया है न आशा गर्त, नहीं आता? आशारूपी गड्ढे में। बापू! यह लोक तो एक ही है और तेरी तृष्णा पूरे लोक को लेने की है। पूरे लोक को जानने की जो (शक्ति) है, वह गुलाँट खा गयी बात। इसलिए पूरे लोक को लेने की तृष्णा है। किसके भाग (हिस्से में कितना) आयेगा? ऐसा आया है न, भाई! आशा लोक। उसमें आता है उन लोगों में, उत्तराध्ययन में भी आता है। तेरी तृष्णा ऐसी अनन्त, अनन्त को लूँ। तो लोक तो एक ही चीज़ है, और ऐसी तृष्णा जीव की अनन्त बहुतों को... उसे कितना भाग आयेगा यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह। परन्तु हाँ, तेरा भगवान ज्ञानस्वभाव है, वह एक-एक आत्मा परिपूर्ण को जाने, उसमें विभाजन करने का कुछ नहीं। सब जानो। आहाहा! यह साधक जब से हुआ, तब से राग से लेकर पूरी दुनिया को जानो। दूसरा भी जानो, तीसरा भी जानो, असंख्य समकिती जाने। आहाहा! उसमें कोई भाग करने की आवश्यकता नहीं। आहाहा! क्या वस्तु की मर्यादा!

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय, कर्म नाशि... यह निजस्वरूप के ध्यान से कर्म का नाश होता है। आहाहा! कोई व्रत, तप, अपवास-बपवास से कहीं कर्म नाश नहीं होते। वह तो शुभ की क्रिया राग है। आहाहा! **कर्म नाशि शिवसुख लियो...** कर्म का नाश करके, जिसने मुनिपना, वीतरागपना धारण करके जो अपने स्वरूप का ध्यान करके शिवपद को प्राप्त हुए। **बंदूं तिनके पांय।** उनके चरणकमल को मैं वन्दन करता हूँ। क्योंकि मुझे भी वह मुक्ति चाहिए है। आहाहा! तुमने प्राप्त किया, उसे मुझे प्राप्त करना है, इसलिए तेरे चरणकमल को वन्दन करता हूँ, ऐसा कहकर लिंगपाहुड़ की वचनिका शुरु करते हैं।

इस प्रकार मंगल के लिये जिन मुनियों ने शिवसुख प्राप्त किया... जिन अर्थात् जिन्होंने। **उनको नमस्कार करके श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत गाथा...** है यह सब। **प्राकृत गाथाबद्ध लिंगपाहुड़ नामक ग्रन्थ की देशभाषामय वचनिका का...** प्रचलित भाषा में इसका **अनुवाद लिखा जाता है—प्रथम ही आचार्य मंगल के लिये इष्ट को नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं:—** अब कुन्दकुन्दाचार्य मांगलिक करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुसत्थं समासेण॥१॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि मैं अरहंतों को नमस्कार करके... आहाहा! जिन्होंने सर्वज्ञपना प्रगट किया केवली भगवान परमात्मा, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। **और वैसे ही सिद्धों को नमस्कार...** जिन्होंने शरीररहित होकर अकेली सिद्धदशा को प्राप्त हुए, ऐसे सिद्ध भगवान को भी नमस्कार करता हूँ। **तथा जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है, इस प्रकार पाहुड़शास्त्र को कहूँगा।** ऐसा कहते हैं। इसमें साधु का लिंग कैसा हो बाह्य और अभ्यन्तर। बाह्य नग्नदशा, अभ्यन्तर वीतरागदशा। उस वीतरागदशा के लिंग बिना अकेला नग्नपना और पंच महाव्रत की क्रिया, वह सब निरर्थक है। ऐसा इस लिंगपाहुड में कहा जायेगा। भावपाहुड में भी यही बहुत कहा था। दूसरी गाथा से शुरु किया था न? 'लिंगं' नहीं? द्रव्यलिंगं। दूसरी गाथा से। भावलिंग से शुरु किया था।

कुन्दकुन्दाचार्य हुए, तब सब फेरफार बहुत हो गया था। श्वेताम्बर पंथ निकल चुका था और वे वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मनवाने लगे थे, इसके लिए यह सब बनाया है। मार्ग वह नहीं, भाई! और सम्प्रदाय में भी अकेला द्रव्यलिंग धारण करके, भावलिंग की खबर नहीं होती, प्रगट दशा नहीं होती और अकेला नग्नपना धारण करे, उसका भी निषेध किया है। वह भी वस्तु नहीं, वस्तु नहीं। जिसमें श्रमणलिंग का कथन है। पाठ है न '**पाहुसत्थं**'। यह पाहुड़ अर्थात् प्राभृत शास्त्र को कहूँ। लिंग प्राभृतशास्त्र। ऐसे लिंग के प्राभृत कहने के शास्त्र को मैं कहूँगा। अथवा उसका सार है।

भावार्थ :- इस काल में मुनि का लिंग जैसा जिनदेव ने कहा है, उसमें विपर्यय हो गया,... आहाहा! इस काल पंचम काल भगवान कुन्दकुन्दाचार्य थे तब। दो हजार वर्ष पहले। संवत् ४९। अरे! इस काल में मुनि का लिंग जैसा जिनदेव ने कहा, उससे विपरीत **उसका निषेध करने के लिये यह लिंगनिरूपण शास्त्र आचार्य ने रचा है, उसकी आदि में घातिकर्म का नाशकर अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके अरहन्त हुए,...** उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ, (ऐसा) कहते हैं। **उन्होंने यथार्थरूप से श्रमण का मार्ग प्रवर्ताया...**

वे अरिहन्त परमेश्वर सर्वज्ञ वीतरागदेव ने जो यथार्थरूप से श्रमण का मार्ग प्रवर्ताया। **और उस लिंग को साधकर सिद्ध हुए, इस प्रकार अरहन्त सिद्धों को नमस्कार करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की है।** लो! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २

आगे कहते हैं कि जो लिंग बाह्यभेष है, वह अन्तरंग धर्मसहित कार्यकारी है:— लो! यहाँ से शुरु किया।

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥२॥

आहाहा! **अर्थ :- धर्मसहित तो लिंग होता है...** धर्म अर्थात् वीतरागभाव। आहाहा! धर्म, वह वीतरागभाव। जैसा वीतरागस्वभाव है, वैसा ही वीतरागभाव पर्याय में प्रगट किया है। ऐसा जो धर्म होवे तो **धर्मसहित तो लिंग होता है...** तब तो अभ्यन्तर और बाह्यलिंग बराबर है। **परन्तु लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** आहाहा! परन्तु द्रव्यलिंग धारण करे, मुनि नग्नदशा, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, ऐसे द्रव्यलिंग से कहीं धर्म की प्राप्ति नहीं। आहाहा! **धर्मसहित तो लिंग होता है...** वीतरागी स्वभाव का जो धर्म अन्तर में हो, उसे तो बाह्यलिंग हो नग्न आदि। **परन्तु लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** आहाहा! नग्न (पना) धारण करे, उस समय भी गड़बड़ तो उठी हो न थोड़ी। आहाहा! मुनिपना किसे कहना, यह जगत को खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि नग्नपना हुआ। हजारों रानियों को छोड़कर नग्न हुए, अट्ठाईस मूलगुण पाले तो उस लिंग से कहीं धर्म की प्राप्ति नहीं। आहाहा! वह द्रव्यलिंग है, वह तो सब। बाह्य नग्नपना, अन्दर में व्यवहार के पंच महाव्रत के भाव, यह छह आवश्यक के भाव, उस लिंगमात्र से कहीं धर्म की प्राप्ति नहीं। ऐसे लिंग को धारण करने से सम्यग्दर्शन और ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति नहीं। आहाहा!

इसलिए हे भव्य जीव! तू भावरूप धर्म को जान... अन्तर में भगवान आत्मा

ज्ञानस्वभावी आनन्दस्वरूपी प्रभु के अनुभव में से जो वीतरागता प्रगट हो, वह भावलिंग और धर्म है। ऐसे धर्म को तू प्राप्त कर, जान। ऐसे धर्म को पहले जान। आहाहा! चैतन्यस्वभाव के आश्रय से वीतरागता प्रगट हो, वह धर्म है, उसे तू जान। आहाहा! **और केवल लिंग ही से तेरा क्या कार्य होता है...** अकेला नग्नपना धारण किया। यह वस्त्र रखने की बातें तो कहीं रह गयीं। वह तो लिंग भी नहीं, वह तो कुलिंग है। सूक्ष्म बातें, भाई! परन्तु जिसने नग्नपना धारण किया, पंच महाव्रत के भाव रखे, उस द्रव्यलिंग से तुझे क्या कार्य है? उससे तुझे क्या लाभ है? कहते हैं। आहाहा! लो! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं आचार्य मुनि हैं, वे ऐसा कहते हैं।

भावरूप धर्म को जान... भाव जो वीतरागस्वभाव, जो पंच महाव्रत के विकल्प से पार वस्तु जो है, ऐसे आत्मा के स्वभाव का जो धर्म वीतरागभाव, से जान। वीतरागभाव, वह धर्म है। वीतरागमार्ग में वीतरागभाव, वह धर्म है। वीतरागमार्ग में वीतरागी स्वभाव की दशा श्रद्धा, वीतरागी समकित वह समकित है और आत्मा का ज्ञान स्वसंवेदन ज्ञान वीतरागी ज्ञान, वह ज्ञान है और उस स्वरूप में रमणता, अकषायता, वीतरागता वह चारित्र है। ऐसे धर्म को पहले जान।

इसकी (संस्कृत) टीका नहीं, सूत्र (पाहुड़) की टीका नहीं परन्तु स्वयं ने भरा है, पण्डित जयचन्द्रजी ने। छह की टीका है।

लिंग ही से तेरा क्या कार्य होता है अर्थात् कुछ भी नहीं होता है। ओहोहो! अन्तरंग धर्म वीतरागस्वभाव चैतन्यस्वभाव से भरपूर भगवान के समीप, पक्ष में जाकर जो पर्याय प्रगट होती है, वह वीतरागधर्म है। ऐसे वीतरागधर्म को बाह्यलिंग से तुझे क्या काम है? उससे कुछ प्रगट हो, ऐसा नहीं। आहाहा! बाहर के आश्रय से पंच महाव्रत, छह आवश्यक, वन्दन-स्तुति इत्यादि सब आता है न! सामायिक, चोविसंथो वन्दन, छह आवश्यक, बाह्य आवश्यक क्रिया। आहाहा! ऐसे बाह्यलिंग से तुझे क्या लाभ है? **कुछ भी नहीं होता है।** यह पंच महाव्रत की क्रिया के भाव, अट्ठाईस मूलगुण से तुझे कुछ लाभ नहीं। आहाहा! देखो, यह वीतरागी मुनियों के कथन। आहाहा! यहाँ तो अभी पंच महाव्रत का ठिकाना न हो और हम साधु हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमको साधु न माने, वे सब मूर्ख।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख हैं वे सब। रामजीभाई उसमें आये। मूर्ख मण्डल ठहराया है। क्या हो? आहाहा! ऐसी बात है। जगत को बाहर को पसन्द हो, वह बाहर का भभका हो तो लोगों को ठीक लगे। आहाहा! उपदेश करते हुए भाषा भभका लोगों को २०-२० हजार इकट्ठे हों। ऐसा कि आहाहा! क्या है उसमें? बापू! आहाहा! और तेरे पंच महाव्रत हों कदाचित्, तो उससे क्या कार्य है? भाई! वह तो शुभराग, उसका शुभबंधन, वह तो संसार है। यह तो पहले कह गये। आहाहा! अनन्त बार किया है। नया क्या है? भगवान में से वीतराग के अंकुर फोड़े नहीं तूने। वह तो राग निकला। आहाहा! निजस्वरूप का ध्यान करके, जिसने वीतरागता प्रगट की है, वह धर्म है। पर के ऐसे ध्यान शुभ के रखकर क्या कार्य है तुझे? उसमें से वीतरागता कहाँ से आयेगी? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... नग्नपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्नपना क्या, परन्तु शुभभाव क्या? उस शुभभाव में से वीतरागता कहाँ से आयेगी? आहाहा! कुछ भी कार्यकारी नहीं, ऐसा कहते हैं। '**भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।**' बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! वह तेरा बाह्यलिंग क्या करेगा?

चैतन्यमूर्ति भगवान उस राग की क्रिया से भिन्न रहा हुआ है, उसे भिन्न किये बिना तुझे प्राप्ति किस प्रकार होगी? राग की क्रिया से वह प्राप्ति होगी? आहाहा! कठिन काम! लोगों को ऐसा लगे कि यह हमारी निन्दा करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो वस्तु का स्वरूप वर्णन करते हैं। उसमें उसे भी समझाते हैं, बापू! द्रव्यलिंग कहीं तेरा कार्य नहीं कर सकेगा। आहाहा! हमने लाखों लोगों को समझाया, इसलिए तुझे कुछ लाभ हो (—ऐसा नहीं है)। वह तो शुभराग है। और वे समझे हों तो उनकी पर्याय से समझे हैं, उसमें तुझे कुछ लाभ मिले (—ऐसा नहीं)। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग! राग से वीतरागता नहीं प्रगट होती। द्रव्यलिंग सब क्रियायें दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग की क्रियायें हैं। तो उस द्रव्यलिंग से तुझे क्या कार्य है? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'किं ते लिंगेण कायव्वो।' भावधर्म को जान। **'किं ते लिंगेण कायव्वो।'** आहाहा! भगवान राग की क्रिया से पार अन्दर है न, प्रभु! पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर महाप्रभु है, उसे जान न! उसे जान और वहाँ धर्म होगा। ऐसे बाहर क्रियाकाण्ड से तुझे क्या कार्य होगा? आहाहा! **तेरा क्या कार्य होता है अर्थात् कुछ भी नहीं होता है।**

भावार्थ :- यहाँ ऐसा जाने कि लिंग ऐसा चिह्न का नाम है, यह बाह्य भेष धारण करना मुनि का चिह्न है, ऐसा यदि अन्तरंग वीतरागस्वरूप धर्म हो तो उस सहित तो यह चिह्न सत्यार्थ होता है... देखो! आहाहा! जिसे राग की एकता टूटकर धर्मस्वभाव प्रगट हुआ है, जिसे स्वभाव की एकता होकर धर्म प्रगट हुआ है... आहाहा! जो ज्ञानस्वभावी भगवान में एकाग्र हुआ, एकाग्र होकर जो वीतरागता प्रगटी है, ऐसे लिंगवाले को द्रव्यलिंग नग्न हो, पंच महाव्रत तो ठीक कहलाते हैं। वह तो व्यवहार ऐसा होता है, परन्तु धर्म के भान बिना के ऐसे लिंग तुझे क्या लाभदायक हैं? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

:प्रकाशक:
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबइ
www.vitragvani.com

अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत
अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्ट